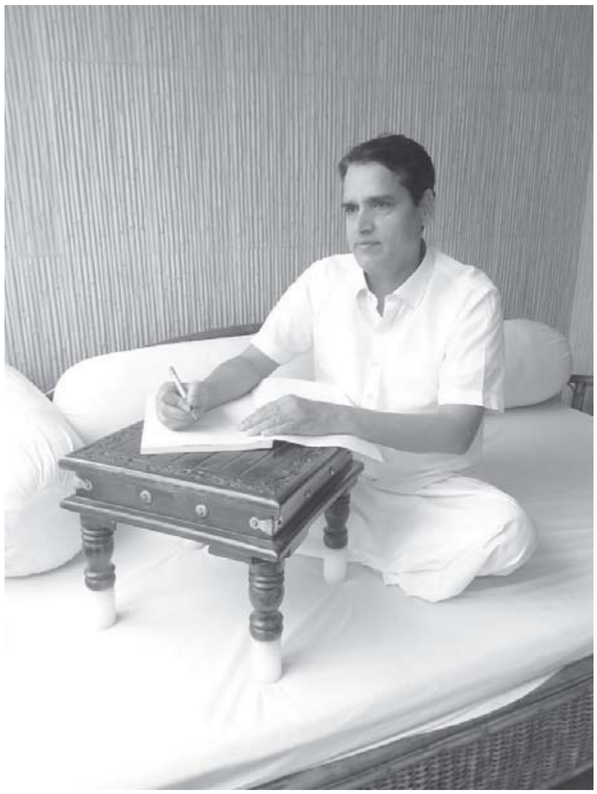
मानव धर्मशास्त्र



लेखक :

लक्ष्मी नारायण

प्रथम संस्करण : 2013
संख्या : 1000
द्वितीय संस्करण : 2018
संख्या : 20000
तृतीय संस्करण : 2019
संख्या : 10000
चतुर्थ संस्करण : 2021
संख्या : 10000
पंचम संस्करण : 10 अगस्त, 2023
संख्या : 10000
षष्ठम संस्करण : 25 मार्च, 2024
संख्या : 10000

मूल्य : 700/-

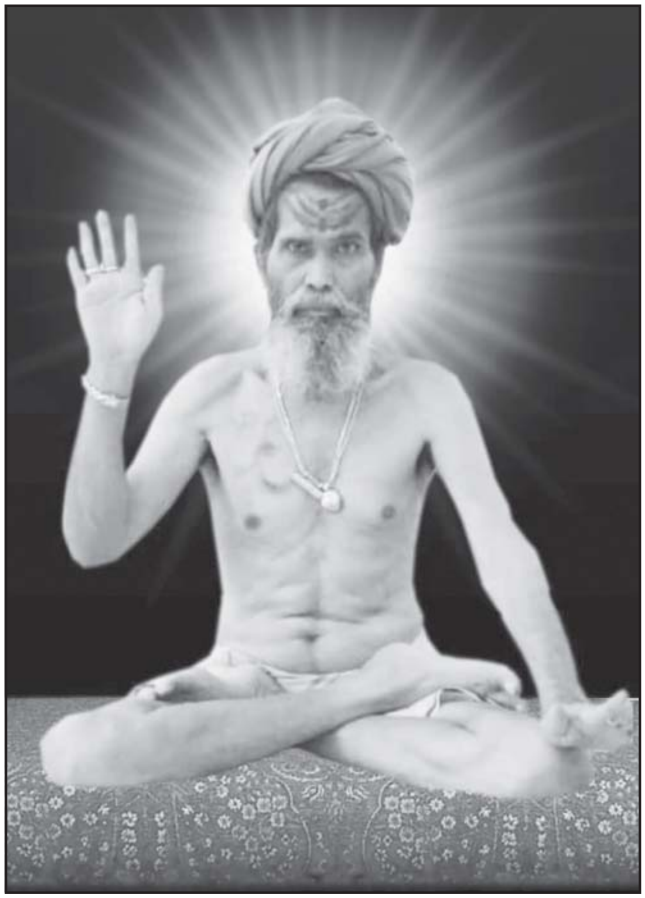
ISBN : 978-81-965006-1-0

प्रकाशक :
कीर्ति पब्लिकेशन्स
कोलकाता - 7000156

डिस्ट्रीब्यूटर :
एस. बी. इन्टरप्राइज
कोलकाता - 700094
Email : sbenterprisekolkata@gmail.com

मुद्रक :

।। जय गुरुदेव ।।



प्रेरक

अवधूत देवीदास

यदा न लीप्यते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।
अनिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥

ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ ... ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण ... यण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम ... राम ॐ राम
नारायण राम ... नारायण राम
ॐ राम नाराय ... राम नारायण
राम ॐ राम ... राम ॐ राम
नारायण राम ... नारायण राम

मानव

धर्मशास्त्र

ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण
राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम
नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम
ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण राम ॐ राम नारायण

विषय-सूची

आमुख

मानव धर्मशास्त्र संसार में परमपिता परमेश्वर का प्रमाणित धर्मग्रन्थ है। इस अमृततुल्य महाग्रन्थ के एक-एक शब्द स्वयं परमशक्ति की प्रेरणा एवं कृपा का साक्षात् प्रमाण हैं । इस पवित्र व अनमोल महाग्रन्थ में किसी दूसरे द्वारा कही या सुनी गयी बातों को नहीं दोहराया गया है । ब्रह्म की सनातन सत्यवाणी को ज्यों का त्यों लिखा गया है । ब्रह्म की वाणी को जगत की वाणी बनाना ही इस दिव्य ग्रन्थ का प्रमुख उद्देश्य है । यह ग्रन्थ मानव मात्र के लिए अखण्ड, अद्वितीय, अभेद व सर्वव्यापी परमा त्मा का सर्वश्रेष्ठ वरदान है । इसलिए इस ग्रन्थ का जितना अधिक प्रसार व प्रचार होगा, उतना ही अधिक मंगलमय संसार होगा । इसे घर-घर पहुँचाना सम्पूर्ण मानव जाति का परम कर्तव्य है । सम्पूर्ण जगत एक ही महाशक्ति की रचना है । सारी सृष्टि का मूल एक ही परमात्मा है, जिसे विद्वानों ने समय-समय पर ईश्वर, अल्लाह, महाकाली, महादुर्गा, नारायण आदि कई नामों से पुकारा है । वास्तव में सब नाम मनुष्य की बुद्धि की भिन्नता का ही परिणाम है । यह प्रथम धर्मग्रन्थ है, जिसे सभी जाति, पंथ व भाषा के लोग एक साथ बैठकर पढ़ सकते हैं । इसका श्रद्धा व विश्वास के साथ पठन एवं मनन करने से क्षण भर में ही सारे शरीर में एक अद्भुत रोमांच फैल जाता है तथा जीव पल भर में ही असीम ईश्वरीय कृपा का रसास्वादन करने लगता है । ब्रह्मज्ञान के मूल तत्वों को इस ग्रन्थ में बहुत ही सहज एवं रोचक भाव से समझाया गया है, ताकि साधारण संसारिक एवं साधक दोनों ही इस गम्भीर विषय को अति सहजता से ग्रहण कर सकें । यह अखण्ड महाग्रन्थ सभी सम्प्रदायों व मतावलम्बियों के लिए समान रूप से लाभकारी है । इस ग्रन्थ में सारे पंथों एवं मतों का सार लिखा गया है । यह सम्पूर्ण मानव जाति को एक सूत्र में बाँधने वाला, हर एक खण्ड को अखण्ड बनाने वाला,

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है, ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

परमशक्तिशाली अखण्ड ब्रह्म का अखण्ड धर्मशास्त्र है ।

यह ग्रन्थ कोई कथा कहानियों वाला ग्रन्थ नहीं, बल्कि साक्षात् ईश्वर का दर्शन है । ईश्वर को मानने से ज्यादा जानना जरुरी है । कौन है सृष्टि का मूल ? प्रकृति क्या है ? माया क्या है ? चारों युगों का रहस्य क्या है ? धर्म क्या है ? देवी-देवता कौन हैं ? अवतारों का रहस्य क्या है ? नाम व रूप का रहस्य क्या है ? नर नारी (नाड़ी) का भेद क्या है ? पाप पुण्य क्या है ? यज्ञ क्या है ? ध्यान क्या है ? कर्म व भाव क्या हैं ? क्यों सब कुछ करनेवाला परमात्मा अकर्ता कहलाता है ? प्रकृति शक्ति को कैसे प्रसन्न किया जाय ? रोग व चिन्ता से मुक्ति के सहज उपाय क्या हैं ? घर, कृषि व व्यापार में कैसे ईश्वर की कृपा को पाया जाय ? इतना ही नहीं, समाज, परिवार, लोकतंत्र, शिक्षा इत्यादि को कैसे आदर्श बनाया जाय । अपना राष्ट्र ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को कैसे शान्ति, प्रेम व अहिंसा के महामंत्र से जोड़ा जाय ? ऐसे अनेक प्रश्नों का सविस्तार मार्गदर्शन किया गया है । ताकि सम्पूर्ण संसार का मंगल हो एवं यह संसार ही स्वर्ग बन जाए । सारे धर्म व पंथों के सन्तों ने किस मार्ग से ईश्वर का दर्शन किया ? तुलसी, व्यास, राम, कृष्ण, एकलव्य, कबीर, पैगम्बर मोहम्मद, नानक, नामदेव, ओशो, ईसा, गौतम बुद्ध, महावीर, लोकनाथ, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, बालक ब्रह्मचारी, साँई बाबा, देवगिरि आदि महा सन्तों ने जिस गूढ़ रहस्य को समझा व समझाना चाहा, वह परम सनातन सत्य क्या है? यह सर्वधर्मो के लिए सर्वोपकारी अखण्ड महाग्रन्थ है, जिसमें सारे धर्मो का सार निहित है । स्वयं भगवान प्रसन्न होकर जिस शास्त्र में निवास करते हों, उसकी महिमा का आकलन करना ही अज्ञानता है। परमात्मा सब जीवों के हृदय में प्राण के रूप में एक समान निवास करते हैं । प्रभु कहते हैं कि मेरे व माया के बीच केवल भाव का अन्तर है । मैं सदा भावों में ही निवास करता हूँ तथा भावों के अनुरूप मैं

ही नाना नाम व रूप धारण कर लेता हूँ। मैं ही माया के रूप में और मैं ही ईश्वर के रूप में आभासित होता रहता हूँ। नाम का भी नाम, राम का भी राम मैं ही हूँ। मैं ही ईसा का ईश्वर हूँ तथा इस्लाम का नूर हूँ। महावीर का भगवान व बुद्ध का ज्ञान भी मैं ही हूँ। मैं ही ज्ञानियों का ज्ञान व अभिमानियों का मान हूँ। मैं ही सब घटो में निवास करने वाला सबका मालिक हूँ।

इस पवित्र महाग्रन्थ को नौ भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक स्कन्ध अनमोल व अद्वितीय हैं। यह पवित्र ग्रन्थ अनुभूति पर आधारित है, इसलिए इसकी प्रमाणिकता स्वतः सिद्ध है। मानव जाति के लिए यह ग्रन्थ सत्गुरुदेव का वरदान है।

मानव धर्मशास्त्र का महात्यम्

यह धर्म शास्त्र ब्रह्म वाणी है। इसलिए यह ब्रह्म स्वरूप है तथा इसमें ब्रह्म का ही वर्णन किया गया है, इसलिए यह ब्रह्ममय है। इस ग्रन्थ का प्रत्येक वाक्य ब्रह्म का ही चिन्तन कराता है तथा ब्रह्म की जानकारी कराता है, इसलिए यह ''ब्रह्मवेद'' है। इसमें धर्म के सत्य स्वरूप का वर्णन किया गया है, इसलिए यह धर्म के मर्म को जनाने वाला होने के कारण इसका दूसरा नाम ''धर्म वेद'' भी है। यह ग्रन्थ धर्म के रहस्य को समझाने वाला है, इसलिए ''राजधर्म'' भी है। इस ग्रन्थ में साक्षात् परमात्मा की वाणी को ही लिखा गया है। इसलिए यह ग्रन्थ सभी पंथों के लिए सर्वमान्य होगा। इसमें पंथों के नाम पर दीवार खड़ी नहीं की गयी है। इसलिए यह अखण्ड महापंथ दिखाने वाला है। इसमें समस्त साधना पंथों के मर्म को सूक्ष्मता के साथ लिखा गया है, जिससे मानव जाति को कोई भ्रम नहीं रह जाये। इस ग्रन्थ में परमात्मा के रहस्य को स्वयं परमात्मा की वाणी द्वारा समझाया गया है। इसलिए इसकी सत्यता व प्रमाणिकता पर कोई संदेह नहीं है। इसमें प्रत्येक अनुभूत सत्य के सूत्रों को लिखा गया है। आत्मा क्या है ? आत्मा को कैसे पहचाना जाये ? मन क्या है ? मन का खेल क्या है ? जीव सुख-दुःख क्यों भोगता है ? प्रारब्ध क्या है ? देवताओं का रहस्य क्या है ? प्रकृति व पुरूष का रहस्य क्या है ? सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होती है ? जन्म-मरण क्या है ? मोक्ष क्या है ? सुखी कैसे रहा जाये ? पंथों की उत्पत्ति कैसे हुई ? पंथों का रहस्य क्या है ? राज धर्म क्या है ? शासन व समाज व्यवस्था कैसी हो ? वैभवता कैसे प्राप्त हो ? आरोग्य कैसे मिले ? आनन्द में कैसे रहें ? प्रकृति कैसे अनुकूल हो ? ग्रह-नक्षत्र कैसे अनुकूल हों ? भूत-प्रेतों से कैसे मुक्ति मिले ? स्वर्ग-नरक का क्या रहस्य है ? चार युग क्या हैं ? परमात्मा को कैसे जानें ? सिद्धियाँ क्या हैं ? मूर्ति रहस्य क्या है ? ध्यान, ग्यान व भक्ति के रास्ते क्या हैं ? परिवार में प्रेम व शान्ति कैसे रहे ? तलाक आदि परिवार की समस्याएँ कैसे मिटें ? आदि-आदि जटिल से दिखने वाले प्रश्नों को इस ग्रन्थ में बहुत ही सरलता से समझाया गया है। इसलिए पाठकों व श्रोताओं को यह ग्रन्थ मनोकामना सिद्धि प्रदान करने वाला है।

यह ग्रन्थ खण्डन व मण्डन की प्रवृति से पूर्णतः मुक्त है तथा इसमें यथार्थ सत्य की सत्ता का ही वर्णन किया गया है। गुरु शक्ति के परम रहस्य को इसमें बहुत सरलता से समझाया गया है। इसमें हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख,

जैन, बौद्ध व अन्यान्य पंथों के रहस्य को समझाकर सत्य की परम सत्ता के रहस्य को जनसाधारण को समझाने का प्रयास किया गया है, जिससे पंथवादिता की दीवार मिट सके । इसमें कबीर, नानक, रविदास, नामदेव, ओशो, लोकनाथ, साँई, देवगिरि, रामकृष्ण आदि सन्तों के साधना अनुभवों को बताया गया है । यह ग्रन्थ सामाजिक समरसता व एकता स्थापित करने वाला है तथा पूरी तरह से पाखण्डवाद से मुक्त है । यह ग्रन्थ मानव जाति के कल्याण के लिए साक्षात् परमात्मा का वरदान है।

इस ग्रन्थ के प्रत्येक शब्द में ब्रह्म तत्व का ही वर्णन है । इसलिए यह पुरूषार्थ के चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) को देने वाला है । यह ग्रन्थ ब्रह्मशक्ति से परिपूरित है । इसलिए जिस घर में इस ग्रन्थ की पूजा होगी, वहाँ पर भूत, प्रेत व पिशाच आदि शक्तियाँ नहीं रह पायेंगी । जो भी श्रद्धापूर्वक इस ग्रन्थ को अपने घर में रखेंगे, उनको अतुलनीय पुण्य की प्राप्ति होगी तथा समस्त ग्रह-नक्षत्र सदा अनुकूल बने रहेंगे और जो लोग नित्य इसका पाठ करेंगे, उनको नवद्या भक्ति स्वतः प्राप्त हो जायेंगी । यह ग्रन्थ ब्रह्म स्वरूप है । इसलिए इसका प्रचार व प्रसार स्वयं ब्रह्म का ही प्रसार-प्रचार होगा, जिससे अक्षय पुण्य की प्राप्ति होगी । इस ग्रन्थ का एक बार पाठ करना ही सैकड़ों करोडों रामायणों के पाठ करने के बराबर होगा । इस ग्रन्थ के एक बार का पाठ ही दस हजार गीताओं के पाठ के बराबर होगा तथा बाइबिल व कुरान को पढ़ने का फल स्वतः प्राप्त हो जायेगा । इस ग्रन्थ में दुनिया के अब तक के समस्त ग्रन्थ निवास करेंगे, इसलिए यह अतुलनीय ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ का एक बार का अध्ययन ही एक हजार करोड़ गायों के दान का फल देने वाला है तथा जो नित्य बार-बार अध्ययन करेंगे, उनको इन्द्र तुल्य पद की प्राप्ति होना अवश्यम्भावी है । इस ग्रन्थ का एक बार का श्रद्धापूर्वक किया गया पाठ ब्राह्मण व गौ हत्या के पाप से मुक्त करा देता है ।

इस ग्रन्थ में स्वयं ''पार ब्रह्म'' की शक्ति निवास करती है । इसलिए इसकी निन्दा व अपमान करना घोर अपराध होगा । जो भी इस ग्रन्थ की निन्दा व अपमान करेंगे, उनको चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा तथा घोर चिन्ता रूपी नरक की यातनाएँ मिलेंगी । इस ग्रन्थ में परम गुरु शक्ति भी निवास करती है, इसलिए इस ग्रन्थ के अपमान व निन्दा के पाप से जीव को ब्रह्माण्ड में कोई भी शक्ति नहीं बचा सकती है । जानबुझकर निन्दा व अपमान करने पर जीव को कहीं भी शान्ति नहीं मिल सकती है । परन्तु अपनी भूल

स्वीकार करके पूरी श्रद्धा के साथ इस ग्रन्थ की शरण में आने से क्षमादान मिल जायेगा । अन्यथा क्षमा का दूसरा कोई रास्ता नहीं है ।

आम के वृक्ष के नीचे इस ग्रन्थ का सात बार पाठ करने से समस्त सात्विक मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा बरगद के नीचे बैठकर सुनने या सुनाने से सिद्धियों की प्राप्ति होने लग जाती है तथा हृदय में ब्रह्मज्ञान उतर आता है। पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर पाठ करने व ध्यान करने से परम शक्ति का साक्षात्कार हो जाता है । इस ग्रन्थ पर प्रवचन करने से वाणी की सिद्धि प्राप्त होगी तथा प्रवचन कर्ता को मोक्ष की प्राप्ति अवश्यम्भावी होगी । इसमें बतायी गयी रोग निवारण विधि से असाध्य रोग भी ठीक हो जाते हैं । इस ग्रन्थ में लिखी गयी ''कृपा कुञ्जिका'' का पाठ करने से परमात्मा की कृपा प्राप्त हो जाती है । इस ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार करने वाले को अपूर्व वैभव, यश व परम ज्ञान की प्राप्ति होगी और परिवार सहित परम सुख की अनुभूति होगी ।

जन्मोत्सव के समय इस ग्रन्थ का दान करने से बच्चों में दिव्य संस्कार आ जाते हैं तथा वह भगवान की भक्ति करने वाला हो जाता है । विवाह के शुभ अवसर पर ग्रन्थ की प्रतियाँ दान करने से पति-पत्नी में अटूट सम्बन्ध बना रहता है तथा वैवाहिक जीवन सुखद बना रहता है । व्यवसाय की शुरूआत करते समय ग्रन्थ का दान करने से व्यवसाय में बढ़ोतरी होने लग जाती है तथा कोई विघ्न बाधाएँ नहीं आती हैं । नए गृह प्रवेश के समय ग्रन्थ का दान करने से उस घर में वैभव व शान्ति बनी रहती है । कुण्डली में काल सर्प योग होने पर धर्म शास्त्र की प्रतियाँ श्रद्धा अनुरूप दान करने व ग्यारह बार पाठ कराने से समस्त कुण्डली के दोष दूर हो जाते हैं । जिस दम्पति के सन्तान नहीं होती हो, तो स्वयं दम्पति द्वारा धर्मशास्त्र का एक सौ आठ बार पाठ करने से सन्तान पैदा हो जायेगी । इस धर्मशास्त्र को श्रद्धापूर्वक घर में रखने से कोई भी भूत, प्रेत आदि के करतूत नहीं सताते हैं तथा समस्त आसुरी बाधाओं से मुक्ति मिल जाती है।

इस धर्मशास्त्र का पूर्णिमा के दिन पठन-पाठन करने से सहस्र अश्वमेध यज्ञों के फल की प्राप्ति होती है तथा हृदय में गुरु शक्ति जागृत होने लग जाती है, जो जीव को समस्त बन्धनों से मुक्त करा देती है । सामूहिक पाठ करने से ग्राम, नगर, राज्य व देश पर आयी हुई विपदा टल जाती है और अकाल व सूखा से राहत मिल जाती है । सामूहिक पाठ करने से समस्त प्राकृतिक आपदाएँ दूर हो जाती हैं । जहाँ पर सामूहिक पाठ किया जाता है, उस जगह

की मिट्टी अड़सठ तीर्थों के फल को देने वाली हो जाती है । स्वयं की अनुभूति ही इस धर्म शास्त्र की सत्यता का प्रमाण होती है ।

स्वयं परमात्मा ने धर्मशास्त्र के महत्व को बताते हुए कहा है कि –

दो०- सरल सुचि सुलभ सकल सरस मधुर सुधा समान ।
ध्यान ग्यान मरम बुझावहिं ग्रन्थ इहँ सतगुरु करि जान ॥

अर्थात यह ग्रन्थ सरल, पवित्र व सबके लिए है तथा सरस, मधुर व अमृत के समान है । इसमें ध्यान व ज्ञान के रहस्य को समझाया गया है। इसलिए इसे सत्गुरु के समान ही मानना चाहिए ।

इहँ शास्त्र धर्म वेद सुहाई । परम ते परम ग्यान बताई ॥
बुध जन हेतु इहँ ज्ञान आधारा । साधक हेतु भा धरम आचारा ॥

यह शास्त्र धर्म का वेद है, जिसमें परम से परम ज्ञान को बताया गया है । यह ग्रन्थ विद्वानों के ज्ञान का आधार है तथा साधक लोगों के लिए आचरण करने का धर्म है ।

पावन परम हय गंग समाना । सत्य सरूप मम बचन प्रमाना ॥
गुरु सम मानहिं इहँ शास्त्र जेही । बिनहिं प्रयास सब सुख लेही ॥

यह गंगा के समान पवित्र है तथा सत्य स्वरूप है । मेरे वचन ही इसका प्रमाण हैं । जो लोग इस ग्रन्थ को गुरु के समान मानते हैं, वे सहज में बिना प्रयास के ही समस्त सुखों को प्राप्त कर लेते हैं ।

राज धर्म इहँ हेतु सरकारा । आचरण हेतु जग व्यवहारा ॥
सिद्ध जन हेतु इहँ सिद्धि मूला । करइ प्रकृति सकल अनुकूला ॥

सरकारों के लिए यह राज धर्म है तथा आचरण करने के लिए जगत का व्यवहार है । सिद्ध लोगों के लिए सिद्धियों का मूल है तथा प्रकृति को अनुकूल करने वाला है ।

कामना हेतु कल्पतरू गाछा । कामधेनु सम इहँ भगत बाछा ॥
तन्त्र मन्त्र इहँ मरम बुझाई । गुरु कृपा बिनु हेतु बरसाई ॥

कामना पूर्ण करने के लिए यह कल्पतरू का पेड़ है तथा बछड़ों रूपी भक्तों के लिए कामधेनु रूपी गाय है । यह तन्त्र व मन्त्र के रहस्य को बताने वाला तथा अकारण ही गुरु कृपा बरसाने वाला ग्रन्थ है ।

इहँ माझ में करूँ सदा निवासा । मोर नाम रूप सब भ्रम नासा ॥
भूत प्रेतादि मिटहिं सब ब्याधा । कामद सिन्धु कहा कहूँ ज्यादा ॥

इस ग्रन्थ में मैं स्वयं निवास करता हूँ क्योंकि यह मेरे नाम व रूप के समस्त

संशयों को मिटाने वाला है । इससे भूत-प्रेत आदि की समस्त बाधाएँ दूर हो जाती हैं । मैं ज्यादा क्या कहूँ, यह ग्रन्थ कामना पूर्ण करने वाला समुद्र है।

इहँ शास्त्र पूजा मोर समाना। प्रगट रूप मोर जानि सुजाना ॥
जेहि पढ़हिं सुनहिं इक बारा। पावहिं पुण्य प्रताप अपारा ॥

इस शास्त्र की पूजा मेरी पूजा करने के समान ही है । इसलिए इस ग्रन्थ को मेरा प्रकट रूप जानना चाहिये । जो लोग इसे एक बार भी पढ़ते व सुनते हैं, उन्हें अपार पुण्य की प्राप्ति होती है ।

दो० - सत कोटि रामायण सम सहस्र भागवत गीता समान ।
वेद पुराण सब मरम इहाँ वास बाइबिल कुरान ॥

यह करोड़ों रामायणों के समान व हजारों भागवत व गीताओं के समान है। इसमें समस्त वेदों व पुराणों का रहस्य है तथा इसमें बाइबिल और कुरान भी निवास करते हैं ।

सकल ग्रन्थन इहँ सार सुहाई। ऐहि सम ऐहि अरु कोउ नाई ॥
साधक हेतु पथ मंजिल भाई। सरल प्रयास तहँ मोहि पाई ॥

इसमें समस्त ग्रन्थों का सार है, इसलिए इसके समान तो यही ग्रन्थ है और कोइ नहीं है । साधक लोगों के लिए यह मंजिल का रास्ता है, जिससे सरलता से ही मुझे प्राप्त किया जा सकता है ।

इहँ ग्रन्थ महापंथ अखण्डा। मानहिं एक सकल ब्रह्माण्डा ॥
जे अनुसरहिं तेहि होइब संता। मुक्ति मार्ग सरल इहँ पंथा ॥

यह ग्रन्थ अखण्ड महापंथ दिखाता है, जो समस्त ब्रह्माण्ड को ही एक मानता है । जो इसका अनुसरण करते हैं, वे सन्त हो जाते हैं । यह मुक्ति प्राप्त करने का सरल रास्ता है ।

सकल पंथ इहाँ आइ मिलाइ। नहिं भेद भाव भ्रम किछु भाई ॥
ग्रन्थ सब करहिं मोर इसारा। प्रथम ग्रन्थ देइब जो सहारा ॥

समस्त पंथ इसमें आकर मिल जाते हैं, इसलिए इस ग्रन्थ में किसी प्रकार के भेद-भाव का भ्रम नहीं है । समस्त ग्रन्थ तो मेरी तरफ इशारा मात्र करते हैं परन्तु यह पहला ग्रन्थ है, जो मुझसे मिलने के लिए सहायता करता है।

कामद सिन्धु इहँ मोर सरूपा। अनुसरहिं पावहिं भक्ति अनूपा ॥
निन्दा स्तुति इहँ उभय पारा। सत्य सनातन नहिं मोते न्यारा ॥

यह कामना पूर्ति का समुद्र है तथा मेरा स्वरूप है अतः जो अनुसरण करते हैं, उनको अनुपम भक्ति प्राप्त होती है । यह निन्दा व स्तुति दोनों से परे हैं । यह

सनातन सत्य है, जो मुझसे अलग नहीं है ।

मंगल मूल सकल सुखदाई । मानव जाति कल्याण कराई ॥
मास दिवस जेहि करहिं पाठा । आवइ तिन्ह गृह विभूति आठा ॥

यह मंगल का मूल व सबको सुख देनेवाला है तथा मानव जाति का कल्याण करने वाला है । जो लोग एक महीने इसका पाठ करते हैं, उनके घरों में आठ प्रकार की विभूतियाँ आ जाती हैं ।

जेहि पाठ करहिं बरस इक्कीसा । तिन्ह आइ मिलहुँ मैं जगदीसा ॥
श्रद्धा सह करहिं पाठ इकबारा । कटहहिं अघ सहस्र अपारा ॥

जो इक्कीस वर्ष पाठ करेंगे, उनको मैं स्वयं आकर मिल जाऊँगा और जो श्रद्धापूर्वक एक बार भी पढ़ेंगे, उनके हजारों पाप नष्ट हो जायेंगे ।

जेहि करहिं इहँ पाठ अखण्डा । हियँ प्रटगइ शक्ति प्रचण्डा ॥
जय रूप यश वैभव अपारा । पावहिं सुख शान्ति परिवारा ॥

जो इसका अखण्ड पाठ करते हैं, उनके हृदय में प्रचण्ड दिव्य शक्ति पैदा हो जाती है तथा उन्हें अपार जय, रूप, यश व वैभव प्राप्त हो जाता है और परिवार में सुख-शान्ति आ जाती है ।

दो०- जेहि गृहस्थ नित्य पूजहिं जानि मोर रूप इहँ ग्रन्थ ।
धर्म अर्थ काम मोच्छ मिलहिं पावइ जग यश अनन्त ॥

जो गृहस्थ लोग इस ग्रन्थ को मेरा ही रूप मान कर नित्य पूजा करेंगे, उनको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी तथा संसार में अनन्त यश की प्राप्ति होगी।

निज मुख प्रभु महिमा बखानी । सो नहिं कोउ इहँ समानी ॥

परमात्मा ने स्वयं अपने मुख से इसकी महिमा को बताया है । इसलिए इस ग्रन्थ के समान दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है । यह ग्रन्थ अपने-आप में अद्वितीय व अनुपम है तथा भक्ति का सागर है ।

इस ग्रन्थ में धर्म के सत्य स्वरूप को सरल भाषा में बताया गया है । इसलिए यह ''मानव धर्म शास्त्र'' है । धर्म के सूक्ष्म राज को खोला गया है इसलिए यह शास्त्र ''राज धर्म'' भी है । इस ग्रन्थ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें सभी पंथों को समान महत्व दिया गया है, इसलिए सब पंथों के लिए यह अनुसरणीय है । यह ग्रन्थ सामाजिक सद्भाव के लिए सेतु बन्ध का काम करेगा । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ भक्ति का सागर व ज्ञान का घर है तथा परमपिता परमेश्वर का साक्षात् प्रकट स्वरूप है ।

॥ अवधूत देवी दास ॥

ॐ परमात्मा शलाका प्रश्नावली

मानव कल्याण के लिए परमात्मा शलाका प्रश्नावली दी जा रही है। इसकी महत्ता स्वतः सिद्ध है । इसका स्वरूप सत्गुरु की कृपा से प्रकट हुआ है । यहाँ पर इसके स्वरूप को अंकित करके प्रश्नोत्तर निकालने की विधि दी जा रही है । परमात्मा शलाका से प्रश्नों का उत्तर कोई भी जाति, धर्म व सम्प्रदाय के लोग निकाल सकते हैं, क्योंकि परमात्मा तो समस्त जड़-चेतन के पिता हैं । जाति, पंथ व सम्प्रदाय तो सब मानव निर्मित हैं । पाठकों की सुविधा के लिए विधि व स्वरूप नीचे लिखा जा रहा है ।

मं	स	स	हो	र	हो	जो	जो	उ	ग	र	म	इ	ह	इ
प	क	चि	ल	ल	र	ब	हिं	ब	ढ़	क	त	भा	सु	स
पू	श	कृ	हि	हिं	नि	व	ग	म	र्ण	र	त	इ	स्	त
ना	म	म	अ	ण	कृ	हँ	तु	क	र	मं	न	भि	बि	त्
स्	ति	र	ख	ग	हिं	ला	ग	य	तु	मं	हिं	हि	ल	मा
ष	त	म	ति	ग	मं	म	दा	र	तु	स	ो	पा	ल	ग
न	य	ग	म्	ब	र	व	क	ल	मा	क	दू	हा	बा	दा
न	ा	पा	हीं	न	जा	री	धा	सा	पू	री	ठा	ति	हिं	न
सु	म	पू	र	हो	हो	न्	सं	हिं	न	र	र्ण	ण	इ	व
ह	श	द	इ	म	हो	क	ब	इ	ज	य	र	हँ	स	व
र	स	अ	ग	कुञ्	का	सत्	र	हिं	हि	त	नु	दु	ज	र
य	ल	स	मा	इ	कु	र्ल	का	ज	आ	न	क	तु	च्	ल
भ	भ	प	शी	हिं	ल	म	छा	प्र	कि	व	त	ष	कि	अ
न	पू	कृ	छु	ता	प	ह	छु	भि	भा	र्ण	ति	ना	र	पू
मा	ज्या	ला	व	सा	आ	हीं	क	जा	री	दा	षा	न	री	ठा

इस शलाका द्वारा जिस किसी को भी अपने अभिष्ट प्रश्न का उत्तर जानना हो, तो उसे सर्वप्रथम हाथ जोड़कर परमपिता परमेश्वर को नमस्कार करना चाहिये तथा स्वयं को परमपिता का पुत्र मानकर, जाति व पंथ के सब भेद भुलाकर, प्रश्न का मन में चिंतन करके शलाका के किसी भी मन चाहे कोष्ठक में अँगुली रख कर अक्षर को सादे कागज या स्लेट पर लिख लें। फिर प्रत्येक नौंवे अक्षर को लिखना शुरू कर दें। इस प्रकार लिखने से चौपाई पूर्ण हो जायेगी। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि किसी-किसी कोष्ठक में केवल ''आ'' की मात्रा (ा) और किसी-किसी कोष्ठक में दो-दो अक्षर हैं। इसलिए गिनते समय न तो मात्रा वाले कोष्ठक को छोड़ें और न ही दो अक्षरों वाले कोष्ठक को दो बार गिनना चाहिये।

इस परमात्मा शलाका प्रश्नावली से जो भी चौपाइयाँ बनती हैं, उन सबका फल सहित नीचे उल्लेख किया जा रहा है।

मंगल भावना रखहि मन माहीं। तिन्ह जग दुर्लभ किछु नाहीं॥

फल :- प्रश्नकर्ता की इच्छा भावों पर आधारित है, इसलिए मंगल भावना रखने पर ही मन इच्छा पूर्ण होगी।

सरल सुगम मंगल दायक। नहिं संशय कुञ्जिका भव तारक॥

फल :- प्रश्नकर्ता की इच्छा सुगमता से पूर्ण हो जायेगी, अगर वह इस ग्रन्थ में लिखी गयी कृपा कुञ्जिका का पाठ करेगा।

समरप सम नहिं मारग दूजा। नहिं दरकार जप तप पूजा॥

फल :- प्रश्नकर्ता को अपने ईष्ट देव के सामने पूरी तरह समर्पण कर देना चाहिये। उसकी इच्छा पूर्ण हो जायेगी।

होइब पूर्ण अभिलाष तुम्हारी। सुन इहँ सत्य आशीष हमारी॥

फल :- प्रश्नकर्ता की इच्छा पूर्ण होगी।

रहहिं शरण बिगत सब बाधा। मरम सरल नहिं किछु ज्यादा॥

फल :- प्रश्नकर्ता को भगवान की शरण में रहना चाहिये, जिससे उसकी समस्त बाधाएँ मिट जायेंगी और इच्छा पूर्ण हो जायेगी।

होइब कृत कृत्य मोर दासा। पूर्ण होवहिं सकल अभिलाषा॥

फल :- प्रश्नकर्ता को भगवान के भरोसे रहने से कर्म का फल नहीं बाँधेगा तथा सहज में ही इच्छा पूर्ण हो जायेगी।

जो पढ़हि इहँ स्तुति पावन। पूरण करहि मातु मन भावन॥

फल :- प्रश्नकर्ता को धर्मशास्त्र में लिखी हुई प्रकृति माता की स्तुति श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये । जिससे इच्छा पूर्ण हो जायेगी ।

जो करहि स्तुति मंगलकारी। होइब सत इच्छापूर्ण सारी ॥

फल :- प्रश्नकर्ता अगर ग्रन्थ में लिखी हुई मंगला स्तुति को नित्य करेगा तो समस्त सात्विक इच्छाएँ पूर्ण हो जायेंगी ।

उचित नित करहिं मंगलपाठा। होवइ अनुकूल प्रकृति आठा ॥

फल :- प्रश्नकर्ता के लिए उचित होगा कि वह ग्रन्थ में लिखे गए मंगल पाठ को नित्य करे, जिससे प्रकृति अनुकूल होकर इच्छा पूर्ण कर देगी।

●●●

मानव धर्मशास्त्र के परायण की विधि

''मानव धर्म शास्त्र'' का पाठ करने के लिए किसी भी प्रकार के नियमों की आवश्यकता नहीं होती है । फिर भी पाठक अगर नित्य स्नान व ध्यान करके एकान्त में बैठकर पठन व मनन करे, तो शीघ्र मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जायेगी । पीपल, बरगद व आम के पेड़ के नीचे बैठकर पाठ करने से कई गुना फल की प्राप्ति होती है । इस शास्त्र को जिस भी स्थान पर बैठकर सुनाया जाता है, वह स्थान ''नारायण'' का स्थान हो जाता है अर्थात वहाँ पर स्वयं भगवान अवतरित हो जाते हैं । इसलिए इस शास्त्र का आचार्य ''नारायण पीठ'' का आचार्य कहलाता है । नारायण पीठ पर बैठने के लिए किसी भी जाति व पंथ का भेदभाव नहीं होता है । क्योंकि भगवान के लिए तो ब्राह्मण और शूद्र दोनों बराबर ही होते हैं । श्रद्धा व सच्चे विश्वास के साथ जो भी आचार्य नारायण पीठ से बोलेगा, उसकी प्रत्येक बात की भगवान स्वयं लाज रखते हैं। नारायण पीठ से बोला गया प्र त्येक शब्द ''भगवत वाणी'' बन जाता है । आवाहन और ध्यान की सरल विधि नीचे लिखी गई है ।

अथ आवाहन मंत्र :-

गुरु आवाहन मंत्र :-

ॐ कृपा निधानम् अज्ञान निवारणम् सृष्टि संचालकम् ।
मम सर्व पाप हरो गुरुदेव नमस्तुभ्यम् नमस्तुभ्यम् ॥

श्रद्धापूर्वक गुरु शक्ति का आवाहन करने के बाद आसन पर नारायणी शक्ति का आवाहन करें ।

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है, ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

ॐ नारायणायः नमः

हाथ में जल लेकर ॐ नारायणायः नमः बोलें और जल को आसन व आसन के आस-पास छिड़क दें तथा दोनों हाथ जोड़कर मन ही मन नारायणी शक्ति का आवाहन करें कि हे प्रभु ! आप के नाना नाम व रूप सुने हैं । मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है । प्रभु ! आप तो हृदय स्थित नर को ही अयन (घर) बनाकर रहते हैं, इसलिए मैं तो आपका नारायण के नाम से ही आवाहन करता हूँ । हे प्रभु ! आप स्वयं आसन पर आकर बिराजें तथा मेरे हृदय में रथी बनकर मेरी वाणी के माध्यम से प्रकट होइये । हे प्रभु! धर्मशास्त्र आपका ही स्वरूप है, इसलिए आप अपनी पूरी दिव्य शक्ति सहित इस मानव धर्मशास्त्र में आकर निवास कीजिए । हे परमपिता ! यह नारायण पीठ जगत का कल्याण करे, ऐसा आशीर्वाद दीजिए । श्रद्धापूर्वक इतना कहकर आसन पर बैठ जाएँ और मन ही मन मानव धर्म शास्त्र को प्रणाम करें । धर्म शास्त्र को प्रणाम करने के बाद प्रकृति शक्ति का आवाहन करें ।

ॐ प्रकृति दैव्यायः नमः

दोनों हाथ जोड़कर मन ही मन बोलें कि हे प्रकृति माँ ! आप परमपिता की योग माया हैं । इसलिए आप आपकी समस्त विभूतियों सहित मेरे अनुकूल रहिये तथा नारायण पीठ को अपनी दिव्य विभूतियों से सुशोभित करिए, जिससे जनकल्याण हो सके । हे माँ प्रकृति ! समस्त श्रोताओं को दिव्य ज्ञान व दिव्य दृष्टि प्रदान कीजिए । हे माँ ! आप प्रेरणा करके समस्त ग्रह नक्षत्रों को हमारे अनुकूल कर दीजिए तथा समस्त वातावरण को सौम्य व सुखी बना दीजिए। हे माँ ! हम सबके मन एक हों तथा हम जन कल्याण की भावना से परिपूरित हों । हे माँ प्रकृति ! समस्त दिशाएँ आपकी प्राण हैं, अतः समस्त दिशाओं को हमारे अनुकूल कर दीजिए । अब दोनों हाथ जोड़कर चारों दिशाओं की तरफ नजर डालें तथा मन ही मन प्रकृति शक्ति को नमस्कार करते हुए, मन ही मन में आभार व्यक्त करें ।

इत्यावाहनम्

हृदय स्थितं नारायणं दिव्यास्तरणं शोभितम् ।
आसनं हि मया दत्तं गृहाण मणि चित्रितम् ॥

इति षोडशोपचारैः पूजयेत्

ॐ अस्य मानव धर्मशास्त्रस्य श्री देवगिरी लक्ष्मीनारायण ऋषयः श्री नारायण देवता श्री

नारायण बीज भव रोग हरी भक्तिः शक्ति मन नियन्त्रिता शेष विघ्नतया श्री परमात्मा प्रीतिपूर्वकम् सकल मनोरथः सिद्धयर्थम् पाठेः विनियोगः ।

अथाचमनम्

ॐ गुरु देवाय नमः

ॐ नारायाणाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

ॐ ईश्वरायः नमः

ॐ रामायः नमः

ॐ शिवायः नमः

अथ करन्यासः

ॐ नारायणाय नमः अंगुष्ठाभ्याम् नमः, ॐ नारायणाय नमः तर्जनीभ्याम् नमः, ॐ नारायणाय नमः मध्यमाभ्याम् नमः, ॐ नारायणाय नमः अनिकाभ्याम् नमः, ॐ नारायणाय नमः कनिष्ठाकाभ्याम् नमः, ॐ नारायणाय नमः करतलकर पृष्ठाभ्याम् नमः ।

अथ् ध्यानम

ध्यान करने से पहले दोनों हाथ जोड़कर परमपिता से भाव विभोर होकर प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमपिता ! यह समस्त जगत आपका ही अंश है । हे प्रभु ! यह जगत तो आपका ही विस्तार है । हे प्रभु ! मैं आपका ही अंश हूँ परन्तु विषय वासनाओं के जाल में पड़कर, मैं आपको भूल गया हूँ । हे प्रभु ! अब आप मुझ पर कृपा कीजिए और मुझे इच्छाओं से मुक्त करा कर, आपकी शरण में ले लीजिए । हे प्रभु ! आप न तो हिन्दू हैं और न ही आप मुसलमान हैं । प्रभु आप तो एकरस, अखण्ड, अजन्मा, अजय व अद्वितीय हैं। प्रभु आप की महिमा को तो आप ही जानते हैं । हे परमपिता ! आपने तो जीव को मात्र आनन्द के लिए पैदा किया है, परन्तु आपसी स्वार्थो के कारण जीव आनन्द को छोड़कर भावों के भवसागर में डूब रहे हैं । अतः हे प्रभु ! आप मुझ पर कृपा कीजिए और मुझे भावों के भवसागर से बचा कर आपकी शरण में ले लीजिए । प्रभु आप तो जाति, पंथ, सम्प्रदाय व समस्त भेदभावों से परे हैं। आप तो प्रभु आनन्दस्वरूप हैं । अतः हे परमपिता ! मुझे आपकी शरण में ले लीजिए । हे प्रभु ! अब मैं धर्म शास्त्र के प्रवचन के लिए नारायण पीठ पर आसीन

हो रहा हूँ। इसलिए मुझे दिव्य ज्ञान व दिव्य वाणी प्रदान कीजिए। हे प्रभु ! मुझे जनकल्याण की भावना से परिपूरित कर दीजिए। ऐसी प्रार्थना करके आसन पर बैठ जाएँ और मन में आभास करें कि परमपिता दिव्य ज्ञान प्रदान कर रहे हैं, जिससे वाणी में मधुरता और ओजस्विता आ रही है। फिर दोनों हाथ जोड़कर मानव धर्म शास्त्र को प्रणाम करें और मानव धर्म शास्त्र की निम्न स्तुति का पाठ करें।

॥ स्तुति धर्मशास्त्र की ॥

सर्व देवस्य सुख सदनं सारं सकलेन ग्रन्थम् ।
परमपुरुषस्य वाणीम् मोक्षार्थम् सहज साधनम् ॥
कलिमल अघ नाशकम् नाश्यति सकल विपदाम् ।
ज्ञान वैराग्य भक्ति दायकम् ददाति शुभ संपदाम् ॥
विधि हरिहर सेवितम् वासति अत्रपरमपुरुषाम् ।
गुरुरूपेण साक्षातम् नाश्यति सकलेन कल्मषाम् ॥
जयरूपयशवैभवम् दायकम् करोति सर्वकल्याणम् ।
ग्रहनक्षत्रादि अनुकूलम् करोति त्वम् मोक्षप्रदायकम् ॥
पंचम् वेदम् पथअखण्डम् परमपुरुषस्य सरल मार्गम् ।
अहम् त्वमेव शरणम् ब्रह्मरूपेण सर्वमंगल दायकम् ॥

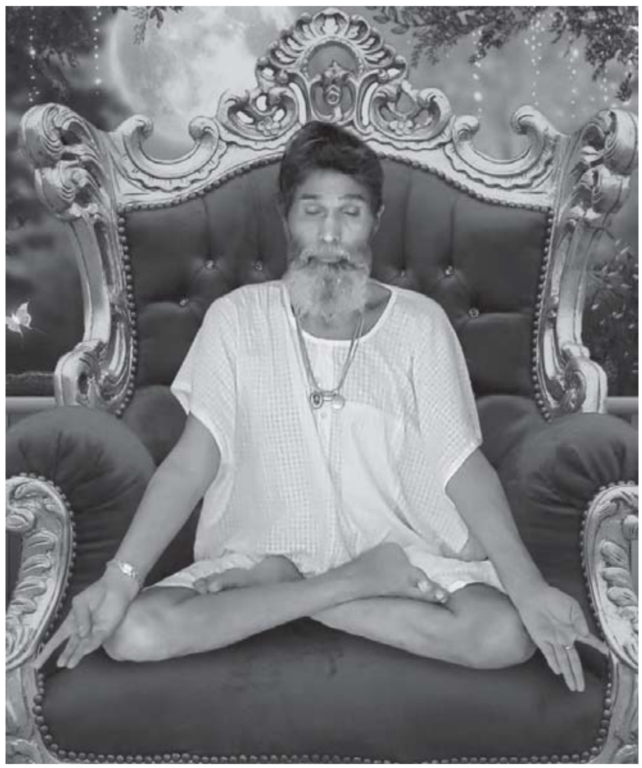
मानव धर्म शास्त्र की उपर्युक्त स्तुति को करने के बाद दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करके पाठ की शुरुआत करें।

कथा विसर्जन विधि

जब पाठ पूर्ण हो जाए, तो प्रवचनकर्ता या पाठक को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमपिता ! हम आज धर्मशास्त्र की कथा को विराम देते हैं । हे प्रभु ! आप समस्त श्रोताओं के हृदय में निवास कीजिए और हम सब पर कृपा कीजिए, जिससे हमें शान्ति, वैभव, यश, रूप और आपकी अनुपम भक्ति प्राप्त हो । हे प्रभु ! हमारे समस्त अवगुणों को क्षमा कर दीजिए और हमें अभय दान प्रदान कीजिए । हे प्रभु ! हम सब के परिवारों में प्रेम व सौहार्द की हवा चलती रहे और हम सब सदा आपका स्मरण करते रहें । हमारे हृदय में सदगुण पैदा होते रहें और आपका सत्संग हमें प्राप्त होता रहे । हे परमपिता ! हम सब आपकी सन्तान हैं, इसलिए आप हम पर कृपा कीजिए । हे प्रभु ! हमें आपकी शरण प्राप्त हो तथा सदैव आपका कृपा हस्त हमारे ऊपर बना रहे । हे प्रभु ! हम सबके हृदय में प्रेम, सहयोग, भ्रातत्व, दया, दान व परहित के भाव पैदा होते रहें तथा आपके चरणों में हमारे मन में श्रद्धा व विश्वास बना रहे । हम आपको कोटि-कोटि नमस्कार करते हैं । हे प्रभु ! हम आपकी शरण में हैं । हे प्रभु ! समस्त ग्रह-नक्षत्र हमारे अनुकूल हों तथा आपकी प्रकृति शक्ति हमारे अनुकूल बनी रहे तथा समस्त चराचर जगत का मंगल हो । पंचभूत मंगलमय हों व समस्त वनस्पति मंगलमय हो । हे प्रभु ! चारों तरफ मंगल ही मंगल हो।

इसप्रकार प्रार्थना करके पाठक या प्रवचनकर्ता को धर्मशास्त्र की आरती करनी चाहिए और फिर कथा को विराम देना चाहिए ।

।। जय गुरुदेव।।



अवधूत देवीदास

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है।
ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है।।

ॐ गुरुदेवाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

प्रथम स्कन्ध

ॐ सृष्टि मूलं करुणाधामं सहज दयालं अखिलेश्वरं ।
सर्वव्यापकम् आनन्दस्वरूपम् परमेश्वरम् नमो नमः ॥ १ ॥

व्याख्या - सृष्टि के मूल, करुणा के धाम, सहज में ही दया करनेवाले, समस्त ब्रह्माण्ड के ईश्वर, आनन्द के रूप में सर्वत्र व्यापक हे परमपिता! मैं आपको नमन करता हूँ ।

ॐ जन्म मरण रहितं अद्वितीयम् अखण्डं निरविकारम् चैतन्यम् ।
सर्व विभूतिधारकम् विश्वेश्वरम् अहम् त्वमेव शरणम् ॥ २ ॥

व्याख्या - जन्म-मरण से रहित, अद्वितीय, अखण्ड, निर्विकार, चैतन्य एवं समस्त विभूतियों को धारण करनेवाले, हे जगत के ईश्वर ! मैं आपकी शरण में आया हूँ।

दो० - तुम समान जग दूजा नहिं, तुम्हीं नाथ तुमार समान ।
दौ कर जोरि विनती करूँ अब द्रवहउ कृपानिधान ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके समान संसार में और कोई नहीं है। आपके समान तो प्रभु केवल आप ही हैं । हे कृपानिधान ! मैं दोनों हाथ जोड़ कर आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे ऊपर अनुकंपा कीजिए।

दीन दयाल प्रभु सहज कृपालु । लेहउ शरण अब मोहि दयालु ॥
तुम्हहीं छाड़ि नहिं कोऊ दूजा । मम हृदय नहिं भगति न पूजा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप तो दीनों पर दया करनेवाले और सहज में ही अनुकंपा करनेवाले हैं । अतः मुझे आपकी शरण में ले लीजिए । हे प्रभु! आपको छोड़ कर मेरा और कोई सहारा नहीं है। परन्तु मेरे हृदय में न तो भक्ति-भाव ही है और न पूजा का भाव है ।

कपटी कुटिल मैं महा अभिमानी । क्षमा करहउ नाथ मोर नादानी ॥
तुम सहज सरल हितकारी । सो जानि आयहुँ शरण तिहारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं कपटी, कुटिल और महा अभिमानी हूँ । अतः हे नाथ ! मेरी नादानी क्षमा कर दो । हे परमपिता ! आप सहज, सरल और हित करने वाले हैं । अतः यह जान कर मैं आपकी शरण में आया हूँ।

स्वारथ हेतु जगत मैं जाना । निगम-पुराण सकल बखाना ॥
बिनु स्वारथ किछु नहिं जग माहिं । काह संभव परमारथ चलाहिं ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! स्वार्थ के कारण जगत आभासित होता है । वेद-पुराण और सभी संत जन ऐसा ही कहते हैं । बिना स्वार्थ के संसार में कुछ भी नहीं है । तब ऐसी अवस्था में क्या परमार्थ पर चलना सम्भव हो सकता है ?

छन्द बन्द किछु नहिं ग्याना । मोहि सम नहिं जग अग्याना ॥
चाह बड़ मोर बुद्धि अति छोटी । स्वारथ रत करणी खोटी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मुझे छन्द आदि का कोई ज्ञान नहीं है और संसार में मेरे समान कोई अज्ञानी भी नहीं है । हे परमपिता ! मेरी चाह तो बहुत बड़ी है । परन्तु मेरी बुद्धि बहुत छोटी है और स्वार्थ के कारण मेरे कर्म भी बहुत खोटे हैं ।

जानइ दयाल करूँ हठधर्मी । क्षमहउ नाथ जद्यपि कुकर्मी ॥
स्वारथ हेतु करहुँ सब कर्मा । जानहउँ नहिं काह मोर धर्मा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपको दयालु जान कर ही हठ कर रहा हूँ कि मुझे क्षमा कर दीजिए । हालांकि मैं कुकर्म करनेवाला ही हूँ । हे प्रभु ! मैं तो सब कर्म स्वार्थ के लिए ही करता हूँ और मैं जानता भी नहीं हूँ कि मेरा क्या धर्म है ।

दो०- मोहि सम नहिं कोऊ स्वारथी परमारथी नहिं तोर समान ।
क्षमा करहु नाथ सोहि अब जानि कपटी कुटिल अज्ञान ॥ २ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरे समान संसार में कोई स्वार्थी नहीं है और आपके समान कोई परमार्थ करनेवाला नहीं है । इसलिए मुझे कपटी, कुटिल और अज्ञानी जान कर क्षमा कर दीजिए ।

तोर चरण करहुँ इक अरजी । निज छाड़ि सकल खुद गरजी ॥
कृपा करि देवहु हियँ विवेका । होई सम्भव परमारथ अनेका ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मैं आपके चरणों में अपने समस्त स्वार्थो को छोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हृदय में ऐसा विवेक पैदा कर दीजिए, जिससे परमार्थ सम्भव हो सके ।

परहित काव्य होवहि रचना । सो करहु कृपा जानि मोहि अपना ॥
सरल सरस जनु हितकारी । देवहिं जो पुरुषार्थ फल चारी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! परमार्थ के लिए ऐसे काव्य की रचना हो सके, जो सरल, सरस और जन कल्याण करनेवाली हो तथा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों को देनेवाली हो । अतः आप मुझे आपका अपना समझ कर, मुझ पर अनुकंपा कीजिए ।

जाति पंथ नहिं होवहहि भेदा । पढ़हिं-सुनहि मिटावहि खेदा ॥
पल पल प्रभु तोर याद दिलाई । करि दया ऐसी देहउ लिखाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! कृपा करके ऐसी काव्य रचना करवा दीजिए, जिसमें जाति व पंथों का भेद नहीं हो तथा पढ़ने व सुनने से ही कष्टों का निवारण हो जाए तथा क्षण-क्षण आपकी याद दिलाये ।

बुद्धि विवेक नहिं बल हिय मोरे। सकल सम्भव अनुग्रह तोरे ॥
कृपा तुमार सफल सब काजा। शरण तिहारी रखहउ लाजा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! बुद्धि और विवेक का बल मेरे हृदय में नहीं है। केवल आपकी अनुकंपा से ही सब सम्भव हो सकता है। हे प्रभु ! आपकी कृपा से ही समस्त कार्यो में सफलता मिलती है । अतः मेरी लाज रखिए । मैं आपकी शरण में हूँ ।

दो० - राज धर्म लिखत चाहूँ जो परमारथ पथ दिखलाय ।
राजा अरु प्रजा जे पालहिं उभय आनन्द सागर नहाय ॥ ३ ॥

व्याख्या - मैं यहाँ ऐसे धर्म के रहस्य को लेखनीबद्ध करना चाहता हूँ, जो परमार्थ की राह दिखानेवाला हो तथा राजा और प्रजा अगर पालन करें, तो दोनों आनन्द के सागर में स्नान कर सकें अर्थात अपार आनन्द की प्राप्ति कर सकें ।

सत् धर्म आज अति दरकारा। बिनु ताइ मिटहिं नहिं विकारा ॥
छल छद्म दम्भ कपट अपारा। राजा प्रजा उभय भयउ लाचारा ॥

व्याख्या - आज सत् धर्म के पालन करने की बहुत आवश्यकता है । क्योंकि बिना सत् धर्म के समाज के विकारों का नाश नहीं हो सकता है। आज समाज में छल-छद्म, दम्भ, कपट बहुत बढ़ गये हैं । जिससे राजा और प्रजा दोनों असहाय हो गये हैं ।

राजा बनइ बिनु जानइ नीति। धरम न पालहिं करइ अनीति ॥
नृप खोजहिं जुगति प्रजा शोषण। दुष्कृत बहु हेतु निज पोषण ॥

व्याख्या - आज बिना नीति जाने राजा बन रहे हैं । इसलिए राज धर्म का पालन नहीं करके अन्याय के रास्ते पर चल रहे हैं । आज राजा सब समय अपनी प्रजा के शोषण के उपाय खोजता रहता है और स्वयं का स्वार्थ पूरा करने के लिए बहुत से बुरे कार्य करता है ।

निसि-दिवस नृप करइ चतुराई। प्रजा मूढ़ जानइ नहिं नृपताई ॥
करहिं मन मानि बनइ भूपा। प्रजा बिकल परइ अंध कूपा ॥

व्याख्या - आज कल राजा रात-दिन चालाकी करता रहता है और अज्ञानतावश प्रजा राजा की कूटनीति को जान नहीं पाती है । राजा बनने के बाद मन-मानी करता है और प्रजा व्याकुल होकर अज्ञान रूपी अंधकार में भटक रही है ।

आतंक बहुरि बढ़हिं समाजा । स्वारथ अंध हो बैठई राजा ॥
मार काट बहु छद्म छलावा । अकारण सरिता रक्त बहावा ॥

व्याख्या - आज समाज में बहुत आतंक बढ़ रहा है और राजा स्वार्थ में अन्धा होकर बैठा है । समाज में मार-काट और झूठ-फरेब का बोलबाला हो रहा है तथा बिना कारण ही खून की नदियाँ बह रही हैं ।

दो० - हिंसा प्रति हिंसा बहुत जगत में, विषमता आकाश छुवाय ।
इक दिग् भण्डार कोटि भरा, दूजा दिक् उदर न भर पाय ॥ ४ ॥

व्याख्या - आज संसार में बहुत हिंसा-प्रतिहिंसा बढ़ रही है तथा विषमता आकाश को छू रही है । एक तरफ तो करोड़ों भंडार भरे पड़े हैं और दूसरी तरफ लोग भूखे मर रहे हैं ।

राज काजी भयउ भ्रष्ट आचारी । नीति बिमुख प्रजा अहित कारी ॥
लोक शाही बनइ शोषण यन्त्र । जनहित वादा सोइ बना मन्त्र ॥

व्याख्या - आज राज कर्मचारी भ्रष्ट आचरण करनेवाले हो गये हैं और नीति त्याग करके जनता का नुकसान करनेवाले बन गये हैं । लोकतन्त्र जनता के शोषण का यन्त्र बन गया है और जन-कल्याण का वादा करना ही शोषण करने का मन्त्र हो गया है ।

लोक संस्था सब भई असहाई । दशा दुर कहि सकहि न जाई ॥
बिकइ न्याय जिमि हाट बाजारा । धन सन्मुख भयउ असहारा ॥

व्याख्या - समस्त लोक संस्थाएँ असहाय-सी हो गयी हैं, उनकी दुर्दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता है । आज न्याय हाट के बाजार की तरह बिक रहा है तथा न्याय पूर्णतः धन-बल के सामने असहाय हो गया है ।

धन अरु पद लालसा बढ़ाई । सत् असत् ताते भेद मिटाई ॥
सेवक बनि करहिं पाखण्डा । जद्यपि हियँ स्वारथ अखण्डा ॥

व्याख्या - धन और पद की लालसा बढ़ गयी है । जिससे सत्य-असत्य का भेद मिट गया है । जनसेवक बन कर पाखण्ड करते हैं । हालांकि उनके हृदय में प्रबल स्वार्थ ही छिपा रहता है ।

पंथ कुपंथ भयउ इकसारा । वाद बहु बिकल भा जग सारा ॥
जाति धरम भाषा नस्ल भेदा । सकल भयउ हेतु जग खेदा ॥

व्याख्या - मार्ग-कुमार्ग सब एक जैसे हो गये हैं तथा बहुत से वादों के कारण सारा संसार अशान्त हो रहा है । जातिवाद, धर्म, भाषावाद व नस्ल भेद के कारण संसार में अशान्ति पैदा हो रही है ।

दो० - सब जगत विवश भया मुक्ति मार्ग नहिं दिखत कोय ।
नाम धर्म फसाद हुआ पल-पल हिंसा-प्रतिहिंसा होय ॥ ५ ॥

व्याख्या - सारा संसार विवश हो गया है और इस विवशता से मुक्त होने का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है। धर्म के नाम पर झगड़ा हो रहा है। जिससे पल-पल हिंसा-प्रतिहिंसा की घटनाएँ घट रही हैं।

लुप्त साधु सज्जन सत धर्मा। बढ़त दुष्ट जन अशुभ कर्मा ॥
नारी विवश भई वासना साधन। नित घटित बधु निरजातन ॥

व्याख्या - आज साधु, सज्जन और सत् धर्म लोप हो रहा है और समाज में दुष्ट लोग और अशुभ कर्म बढ़ रहे हैं। नारी वासना का साधन बन गयी है और नि त्य प्रतिदिन बहुओं पर अत्याचार हो रहे हैं।

पति-पत्नी माझ बढ़हि कटुता। उभय मिलि करहि दुष्टता ॥
उभय न मानहिं गृहस्थ धर्मा। गृह कटुता हेतु दम्भ कर्मा ॥

व्याख्या - पति-पत्नी के बीच कटुता बढ़ रही है और दोनों ही एक दूसरे के प्रति दुष्टता का व्यवहार कर रहे हैं। दोनों ही गृहस्थ धर्म का पालन नहीं कर रहे हैं और काज-कर्म में दम्भ के कारण गृहस्थ जीवन में कटुता बढ़ रही है।

मातु-पितु करहिं न सेवकाई। भयउ अलग सुत ले लुगाई ॥
कर्त्तव्य न पालहि चाह अधिकारा। केहि विधि मिटहिं समाज विकारा ॥

व्याख्या - माता-पिता की पुत्र सेवा नहीं कर रहे हैं और अपनी स्त्री को लेकर माता-पिता से अलग हो जाते हैं। कोई भी कर्त्तव्यों का पालन नहीं करना चाहता है। परन्तु अपने अधिकारों की चाह सब समय रखते हैं। ऐसी अवस्था में समाज की विकृत्ति कैसे दूर हो सकती है ?

धन अरु भुज बल चलइ राजा। नीति विगत होवहिं सब काजा ॥
लोलुप लम्पट अरु व्यभिचारी। सोइ जानइ बड़ राज आचारी ॥

व्याख्या - आज राज्य का संचालन धन बल और भुज बल के आधार पर हो रहा है और राज्य के कार्य बिना नीति के ही हो रहे हैं। जो लोलुप, लम्पट और व्यभिचारी होता है, उसी को बड़ा राजनीतिज्ञ माना जाता है।

दो०- लोभ लालसा बहु प्रबल राजा प्रजा उभय लिपटाय ।
जनहित सपनेउ नहिं निज स्वारथ रहा सताय ॥ ६ ॥

व्याख्या - समाज में लोभ और लालसा बहुत प्रबल हो रहे हैं तथा राजा और प्रजा दोनों ही लोभ-लालच में फँसे हुए हैं। परमार्थ (जन कल्याण) की बात कोई

सपने में भी नहीं सोचता है और स्वार्थ की भावना सबको सता रही है ।

नीति परायण अति अल्प सुजाना । करहिं दुष्ट पल-पल अपमाना ॥
भल मानुष मन भयउ कुण्ठा । सहहिं अनीति करहिं न टण्ठा ॥

व्याख्या - नीति पर चलनेवाले लोग बहुत कम हो गये हैं तथा दुष्ट प्रवृत्ति के लोग सज्जन लोगों का क्षण-क्षण अपमान करते रहते हैं । सज्जन लोगों के मन कुण्ठित हो गये हैं । इसलिए अपमान सह लेते हैं, परन्तु दुष्टों से झगड़ा नहीं करते हैं ।

दया दान अरु पर उपकारा । दिखावा प्रबल नहिं ज्ञान आधारा ॥
स्वारथ हेतु करहिं सेवकाई । नहिं सहज कोउ लोग लुगाई ॥

व्याख्या - दया, दान और परोपकार करने के पीछे केवल दिखावे का भाव ही प्रबल रहता है । ज्ञान के आधार पर कोई भी दया, दान व परोपकार नहीं करते हैं । स्वार्थ के कारण ही सेवा करने का दिखावा किया जा रहा है । वास्तव में तो कोई भी स्त्री-पुरुष सहज होकर सेवा नहीं करते हैं ।

प्रवचन करहिं मर्म न जानहिं । बनि गुरु निज सर्वज्ञ मानहिं ॥
अहम ब्रह्मास्मि कह बखानहिं । निज अज्ञ पर सर्वज्ञ जनावहिं ॥

व्याख्या - प्रवचन करते हैं, परन्तु प्रवचन का रहस्य नहीं जानते हैं तथा गुरु बन कर स्वयं को सब कुछ जाननेवाला मानते हैं । स्वयं को ही ब्रह्म बताते हैं जबकि स्वयं अज्ञानी होते हैं, परन्तु स्वयं को लोगों के सामने सब कुछ जाननेवाला ही बताते हैं ।

बहु पाखण्ड भयउ समाजा । शोषण चरम करहिं न लाजा ॥
अधम निलज्ज बनि बैठहिं राजा । तब केहि विधि होवहिं सुकाजा ॥

व्याख्या - समाज में बहुत पाखण्ड हो गया है तथा शोषण चरम सीमा पर पहुँच गया है । परन्तु किसी को भी शर्म नहीं आती है। आज अधम व निर्लज्ज लोग राजा बन बैठे हैं, तब कैसे अच्छे कार्य समाज में हो सकते हैं ?

दो०- लघु अरु बड़ राज गुमास्ता सकल भयउ चाटुकार ।
निज स्वारथ प्रबल अति केहि विधि करहिं उपकार ॥ ७ ॥

व्याख्या - आज राजा के समस्त छोटे-बड़े प्रतिनिधि चापलूस हो गये हैं और उनके अन्दर स्वार्थ बहुत प्रबल हो गया है । तब ऐसी अवस्था में कैसे लोक कल्याण हो सकता है ?

धनवन्त गृह संग्रह विराटा । निर्धन न दाल जुरहिं न आटा ॥
पूंजीपति करहिं शोषण कंगाला । उभय भोगहिं नरक विशाला ॥

व्याख्या - धनवानों के घर में आवश्यकता से अधिक जमा किया हुआ है । परन्तु

गरीब दाल-रोटी भी नहीं जुटा पाता है । पूंजीपति गरीबों का शोषण करते हैं । इसलिए गरीब व अमीर दोनों चिन्ता रूपी नरक भोगते हैं ।

अति संग्रह सोउ कष्टदायक । क्षुधा उदर सोउ भयवायक ॥
गरीब-अमीर बहु गहरी खाई । बढ़त नित्य हेतु नृपताई ॥

व्याख्या - आवश्यकता से ज्यादा संग्रह भी कष्ट देनेवाला होता है तथा पेट की भूख भी भयानक कष्ट देनेवाली होती है । गरीब और अमीर के बीच बहुत गहरी खाई है, जो राजनीति के कारण नित्य बढ़ती जा रही है ।

नित मरहिं मानुष कीट समाना । बहुरि अतिचार हेतु अग्याना ॥
गृह अभाव यद्यपि अन्न दाना । पर भरहिं दम्भ इन्द्र समाना ॥

व्याख्या - आज अज्ञान के कारण बहुत अत्याचार बढ़ रहे हैं तथा मनुष्य कीट-पतंगों की तरह मर रहे हैं । घर में लोगों के पास चाहे खाने को दाना नहीं है, परन्तु दम्भ इन्द्र के समान भरते हैं ।

बात बात कहहिं बात सवाला । महामूढ़ पालहिं अज्ञान विशाला ॥
जे देहवहिं सीख लागइ गाली । कर्म कुटिल सदा भाव कुचाली ॥

व्याख्या - मूर्ख लोग बहुत अज्ञान में फँसे हुए हैं और बातों ही बातों में अपनी बातों का सवाल बनाते रहते हैं अर्थात झूठा दम्भ भरते रहते हैं तथा ऐसे लोगों को अगर अच्छी सलाह भी दी जाय, तो वह भी गाली के समान लगती है । ऐसे लोग बुरे कर्म करते रहते हैं तथा मन में कुचाल ही सोचते रहते हैं ।

दो० - पर अपमान मान समझि मूढ़ करहिं अभिमान ।
मानव धर्म जानइ नहिं दुःख सागर फँसहि अज्ञान ॥ ८ ॥

व्याख्या - दूसरों के अपमान को ही दुष्ट लोग अपना सम्मान समझते हैं । ऐसे मूर्ख लोग इन्सानियत को नहीं जानते हैं तथा दुःख रूपी सागर से बाहर नहीं निकल पाते हैं ।

राजा प्रजा उभय उलझ परहिं । मन उत्ताल शान्ति बिस्मरहिं ॥
बिनु प्रजा सुधरहिं नहिं राजा । बिनु राज न बनहिं सुसमाजा ॥

व्याख्या - आज समाज व राज व्यवस्था इतनी जटिल हो गयी है, जिसके कारण शान्ति स्वप्न बन कर रह गयी है । बिना समाज सुधार के राज्य व्यवस्था नहीं सुधर सकती है और बिना अच्छी राज व्यवस्था के समाज नहीं सुधर सकता है।

राजा प्रजा करहिं प्रति आरोपा । सत धरम दिखावहिं आलोका ॥
प्रभु प्रेरहउ मम हियँ माहिं । राज धर्म जन हित सकूँ बताहिं ॥

व्याख्या - प्रजा और राजा आज आपस में एक दूसरे को दोष दे रहे हैं। अतः

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है, ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

ऐसी अवस्था में केवल सत्‌धर्म ही दोनों (प्रजा और राजा) को सही रास्ते पर ला सकता है। अतः हे परमपिता ! मेरे हृदय में सत्‌धर्म को समझाने की प्रेरणा कर दीजिए, जिससे मैं जन कल्याणकारी सत्‌धर्म का वर्णन कर सकूँ ।

परमारथ हेतु लिखउ सारा। करहउँ हियँ प्रेरणा अपारा ॥
हियँ तुम्हार मरम बुझाउँ। राजा प्रजा उभय हित कराउँ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम परमार्थ की भावना से लिखना शुरू करो, मैं तुम्हारे हृदय में सत्‌धर्म की प्रेरणा कर देता हूँ । मैं तुम्हारे हृदय में ही सत्‌धर्म के मर्म को समझाऊँगा। जिसका पालन करने से राजा व प्रजा दोनों का कल्याण होगा।

कृपा तुम्हार बहुरि आभारी। जानिन चाहउँ मरम अपारी ॥
वर्तमान काह तुम उपजाई। जा फिर निज इहँ प्रगटाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मैं आपकी अनुकंपा का बहुत-बहुत आभारी हूँ। अब मैं जानना चाहता हूँ कि वर्तमान व्यवस्था कैसे पैदा हुई है ? क्या यह वर्तमान व्यवस्था आपने पैदा की है या फिर अपने आप प्रकट हुई है ?

दो०- तुम नहिं उपजाए जगत को तो कैसे प्रगटहिं अपनेउ आप ।
काह मूल भयउ तब कृपा करि समझावउ मोहि तात ॥ ९ ॥

व्याख्या - अगर यह वर्तमान राज व समाज व्यवस्था आपने पैदा नहीं की है, तो यह स्थिति अपने-आप कैसे पैदा हो गयी है ? आप कृपा करके मुझे समझाइए कि आप की मूल व्यवस्था क्या थी ?

राजा प्रजा काह भयउ अधिकारा । मूल अवस्था काह कर्त्तव्य अपारा ॥
काह आचरण कीन्ह सम्राटा। पावहिं प्रजा सन्मान विराटा ॥

व्याख्या - मूल प्राकृतिक अवस्था में राजा व प्रजा के क्या दायित्व व अधिकार थे? राजा किस प्रकार व्यवहार करता था, जिससे प्रजा राजा का सम्मान करती थी ?

प्रजा पालहिं जो विधि व्यवहारु। केहि विधि सम्भव इहँ आचारु ॥
जाति पंथ ऊँच-नीच मत नाना। कैसे उपजै घृणादि अग्याना ॥

व्याख्या - समाज में कानून व आचरण विधि का लोग कैसे पालन करते थे? जाति व ऊँच-नीच की भावना समाज में कैसे पैदा हुई तथा घृणा और संघर्ष का वातावरण कैसे बना ?

तुम सर्वज्ञ प्रभु शक्तिशाली। काह हेतु न बचाई विधि निराली ॥
बाल वृद्ध पुरुष अबला नारी। भ्रमहि सब दुःख सिन्धु अपारी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप सर्वशक्तिशाली हैं। फिर भी आप आपकी मूल आनन्द की व्यवस्था को क्यों नहीं बचा पाये ? आज जिसके कारण बाल-बृद्ध,

स्त्री-पुरुष सब लोग दुःख रूपी सागर में फँस गये हैं ?

काह प्रभु तुमार मूल सिखावन । काह भयी भाषा हेतु समझावन ॥
केहि हेतु प्रगटई भाषा नाना । विखण्ड समाज हेतु अग्याना ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपकी मूल शिक्षा व्यवस्था क्या थी तथा आपकी मूल भाषा क्या थी तथा विभिन्न प्रकार की भाषाएँ कैसे पैदा हो गयीं ? जिससे अज्ञानता के कारण समाज की एकता खण्डित हो गयी है ।

दो० - नारी भोग वस्तु बनी चरम यौन दुराचार ।
काह विधि तुमार भयी काह अबहु उपचार ॥ १० ॥

व्याख्या - आज यौन सम्बन्धों के कारण नारी की दुर्दशा हो रही है। इस सम्बन्ध में आपकी मूल व्यवस्था क्या थी तथा वर्तमान समस्या का क्या उचित समाधान हो सकता है ?

केहि विधि उद्‌भव परिवारा । काह उत्तम पति-पत्नी आचारा ॥
निसि दिवस बढ़त कटुता भारी । कारन कवन कहउ असुरारी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! पति-पत्नी के सम्बन्धों का उचित आधार क्या है ? तथा परिवार संस्था की उत्पत्ति कैसे हुई ? तथा आज पति-पत्नी व पारिवारिक सम्बन्धों में कटुता बढ़ती जा रही है। हे परमपिता ! इसका कारण क्या है ?

रहइ समता सकल परिवारा । काह उपाई जन जन मधु आचारा ॥
सर्व अंग पाव विकास समाजा । सो सब कहवउ होइ सुकाजा ॥

व्याख्या - परिवार में समरसता रहे तथा व्यक्ति सम्बन्धों में मधुरता किस प्रकार लाई जा सकती है ? परिवार व समाज की सर्वांगीण समृद्धि, सम्पन्नता व शक्ति किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है ? ये सब उपाय बताइए, जिससे अच्छे कार्य हो सकें।

काह व्यवहार उचित नातेदारी । कैसे बचहिं मोह कुटुम्ब अपारी ॥
भाषा सरल प्रभु मोहि समझाई । जन-जन सोइ सकहउँ बताई ॥

व्याख्या - नातेदार और रिश्तेदारों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिए तथा किस प्रकार परिवार की मोह रूपी व्याधि से बचा जा सकता है ? हे प्रभु ! मुझे सरल भाषा में समझा कर बताइये, जिससे मैं जन-साधारण को बता सकूँ ।

कृषि - उद्योग अरु व्यवसाई । काह विधि उचित कहु समझाई ॥
जीव न परहिं संग्रह विकारा । करहिं विकास सहज आचारा ॥

व्याख्या - कृषि, उद्योग और व्यवसाय की क्या व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे मनुष्य परिग्रह की बुराई से बच सके तथा सहज बन कर विकास के कार्यो में लगा रहे ?

दो० - कैसे आवइ समता समाज में मिट सकइ भेद अपार ।
न धनवन्त न कंगाल रहे सब मिल करहिं प्यार ॥ ११ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! समाज में समानता कैसे लाई जा सकती है? जिससे भेद-भाव मिट सकें तथा समाज में कोई गरीब व अमीर नहीं रहे तथा सभी लोग मिल कर प्रेम के साथ रह सकें ।

चहुँ दिस भागम भाग मचाई । भय अरु हताशा जीव फँसाई ॥
करि दया प्रभु मोहि देउ बताई । निशंक निर्भय आनन्द मिलाई ॥

व्याख्या - आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी से मनुष्य भय और हताशा में फँसता जा रहा है । अतः ऐसा कोई उपाय बताइए, जिससे जीव निर्भय और आनन्द के साथ जीवन को जी सके ।

क्रोध मोह घृणा अरु निन्दा पराई । छल छद्म चहुँ दिसि रहइ छाई ॥
सरल सहज उपाय बताऊ । जीव ताते निज लहई बचाऊ ॥

व्याख्या - क्रोध, पराई निन्दा, घृणा, कटुता, छल-छद्म आदि बुरे भावों से कैसे जीव अपने आपको बचाए, इसका कोई सरल और सर्वग्राही उपाय बताइए ।

जप तप अरु संयम आचारा । नहिं सम्भव आज व्यवहारा ॥
आहार विहार तामस अधिकाई । जोग जग्य नहिं किछु उपाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आज जप-तप और संयम सांसारिक जीवन में सम्भव नहीं हो पा रहे हैं । आज खान-पान और व्यवहार में तामसिकता बढ़ गयी है। जिससे योग व यज्ञ आदि का कोई उपाय नहीं है ।

परबस जीव सकल गुँसाई । निज भूलि पर रहहिं फँसाई ॥
प्रभु देउ मारग सरल बताई । भाषा बद्ध जाइ सकउँ कराई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आज समस्त जीव एक दूसरे के अधीन हो रहे हैं तथा स्वयं को भूल कर दूसरे के व्यवहार से प्रभावित हो रहे हैं। अतः प्रभु कोई सरल रास्ता बता दीजिए, जिसे मैं लिख सकूँ ।

दो० - निर्मल मन नयन बन्द करि धरहुँ हिय ध्यान तुम्हार ।
राज धर्म मोहि समझाऊ जन जन होइ उपकार ॥ १२ ॥

व्याख्या - मैं मन को निर्मल करके हृदय में आप का ध्यान करता हूँ। हे परमपिता ! मेरे हृदय में धर्म के रहस्य को समझा दीजिए, जिससे प्रत्येक जीव का कल्याण हो सके ।

तुम प्रभु दयाल प्रेरणा दायक । जीव अरु जगत उभय नायक ॥
मम हिय जेहि आवइ विचारा । लिखहुँ सकल मति अनुसारा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप प्रेरणा देने वाले हैं तथा आप ही जीव और जगत दोनों के स्वामी हैं । मेरे हृदय में अब जो भी विचार आ रहे हैं, उनको मेरी बुद्धि के अनुसार लिख रहा हूँ ।

तुम दयाल मैं शरण तिहारी । करहु कृपा मोहि जानि गँवारी ॥
सर्वग्य प्रभु सकल हियँ जानी । क्षमहउ मोहि जानि अग्यानी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप दयालु हैं । मैं आपकी शरण में आया हूँ । इसलिए मुझे मूर्ख समझ कर कृपा कीजिए । हे प्रभु ! आप सबके हृदय की बात जाननेवाले हैं । अतः मुझे अज्ञानी समझ कर, मेरे सब अपराध क्षमा कर दीजिए ।

कर जोरि करहउँ अब निहोरा । मन बुद्धि जानि सकल प्रभु तोरा ॥
तुम समान नहिं कोउ जग दूजा । सोइ जानि करहउँ मानस पूजा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे मन व बुद्धि सब आप ही के हैं । अतः मैं हाथ जोड़ कर निवेदन करता हूँ । आपके समान संसार में कोई दूसरा नहीं है । मैं यह जान कर मन में ही आप की पूजा करता हूँ ।

तुम्हीं जगत तुम्हीं जग नायक । तुम्हीं जीव तुम्हीं जीव पायक ॥
तुम्हीं ग्यान तुम्हीं ग्यान दायक । काह कहूँ प्रभु तुम सब नायक ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही जगत हैं और आप ही जगत के स्वामी हैं । हे प्रभु ! आप ही जीव हैं तथा आप ही जीव के सहायक हैं । आप ही ज्ञान रूप हैं तथा आप ही ज्ञान देनेवाले हैं । हे परमपिता ! मैं क्या कहूँ ? आप तो सबके मालिक हैं ।

दो० - तुम गुरु मैं शिष्य प्रभु आवहुँ सब तजि शरण तिहार ।
गुरु-शिष्य संवाद करहिं द्रष्टा बनि होवउँ लेखनहार ॥ १३॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही मेरे गुरु हैं तथा मैं आपका शिष्य हूँ । इसलिए सब कुछ छोड़ कर, मैं आपकी शरण में आया हूँ । अब गुरु-शिष्य संवाद शुरू कीजिए । जिसको मैं द्रष्टा बन कर लिखता रहूँ।

त्वम मम सुत उभय अभेदा । माया हेतु बनहिं इहँ जग भेदा ॥
अब तोहि कहउँ असल कहानी । सुनत मिटहिं सकल नादानी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम और मैं तो दोनों एक ही हैं । माया के कारण इस संसार में भेद दिखाई पड़ रहा है । अब मैं तुमको मेरी मूल कथा बताता हूँ, जिसको सुनने से सब प्रकार का अज्ञान मिट जाता है ।

होई संशय जो सुत मन माहि । तुरत सो मोहि देइब जनाहिं ॥
भ्रम सकल मिटाउँ सुत क्षण में । मोर दास समझाउँ तोरे मन में ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हारे मन में अगर कोई शंका हो, तो मुझे तुरन्त बता देना । मैं तेरे समस्त संशयों को क्षणमात्र में दूर कर दूँगा । हे वत्स ! तू मेरा दास है, इसलिए मैं तेरे मन में ही सब कुछ समझा कर कहूँगा ।

मैं जग सृजक पालक संहारी । द्रष्टा बनि रहऊँ असुरारी ॥
सकल सृष्टि मम उपजाई । जीव चराचर सकल सुहाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं ही इस संसार का सृजन कर्ता, पालन कर्ता और संहार करनेवाला हूँ । मैं हमेशा द्रष्टा बन कर प्रकृति पार (असुरारि) अवस्था में रहता हूँ । ये समस्त सृष्टि मेरे द्वारा पैदा की गयी है । जिसमें समस्त चराचर के जीव आते हैं ।

तुम सकल प्रभु काह प्रमाणा । काह नाम धाम कहाँ अस्थाना ॥
जानिन काह तुम्हार उपाई । कहऊ समझाई मोर गुँसाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही जगत के सब कुछ हैं । इसका क्या प्रमाण है तथा आपका नाम क्या है तथा आपके रहने का स्थान कहाँ है ? हे प्रभु आपको जानने का उपाय क्या है ? कृपा करके मुझे समझा कर कहिए ।

दो० - मोर परिचय प्रमाण सकल तबहिं मिलै नाम अरु धाम ।
जो पहिचानहिं मुझको ताहि देउँ भगति निष्काम ॥ १४ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मेरा परिचय ही मेरा प्रमाण है कि मैं जगत का मूल हूँ । मेरा परिचय होने पर ही मेरे नाम और धाम का रहस्य समझ में आता है । जो कोई मुझको पहचान लेता है, उसको मैं दुर्लभ निष्काम भक्ति प्रदान करता हूँ ।

निज चिन्हहिं जेहि जानई मोहि । दूसर उपाई नहिं जग कोहि ॥
निज मन निज परिचय कराई । मारग सरल देहवउँ बताई ॥

व्याख्या - जो स्वयं को पहचानते हैं, वे लोग ही मुझे जान पाते हैं और मुझे जानने का कोई उपाय नहीं है । हे वत्स ! स्वयं का मन ही स्वयं का परिचय कराता है । स्वयं को जानने का तुमको बहुत सरल मार्ग बताता हूँ ।

भाव सकल सुत मन कहाई । प्राण सोई जननी जनक सुहाई ॥
करि ध्यान समझ अब भावा । ब्रह्म ब्रह्माण्ड समझ तव आवा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जीव के भाव ही मन कहलाते हैं तथा प्राण वायु से ही समस्त भावों की उत्पत्ति होती है । अतः अब तुम ध्यान करके भावों को समझने का प्रयास करो, जिससे समस्त ब्रह्माण्ड व ब्रह्म का रहस्य समझ में आ जायेगा।

नयन मूँद देखि निज श्वासा । होवहिं अनुभव हियँ उजासा ॥
लगाव सुखासन बैठहु सोजा । आवत जावत सास पाव मोजा ॥

व्याख्या - आँखें बन्द कर स्वयं के श्वास को देखिए। ऐसा करने से हृदय में ज्ञान का अनुभव होने लग जाता है। हे वत्स ! सुखासन लगा कर सीधा बैठने से श्वास के आने-जाने का अनुभव करने पर शरीर में आनन्द आने लग जाता है।

सुत अब करहु अनुसरना। बहवहिं हियँ ग्यान झरना ॥
मम वचन करइब ना शंका। कहहुँ सत्य बजाइक डंका ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब तुम मेरी बताई हुई विधि का अनुसरण करो। तुम्हारे हृदय में ज्ञान का स्रोत बह उठेगा। हे वत्स ! मेरे वचनों पर सन्देह मत करो। मैं तुम्हें खुल कर सत्य बता रहा हूँ।

दो० - गुरु वचन प्रीत फलदायनि इहँ मम मन दृढ़ विश्वास।
तोर विधि अब अनुसरहुँ करहऊ कृपा जानि निज दास ॥ १५॥

व्याख्या - गुरु के वचनों पर विश्वास फल देनेवाला होता है। यह मेरे मन में दृढ़ विश्वास है। अतः हे गुरुदेव ! मैं आपकी बताई हुई विधि का अनुसरण करूँगा, आप मुझे आपका दास समझ कर कृपा कीजिए।

धन्य प्रभु मैं करइब प्रयासा। पूर्ण करहु नाथ मम अभिलाषा ॥
तोहि छाडि मोर गति दूसर नाहिं। सोइ नाथ मोहि लेहहु अपनाहिं ॥

व्याख्या - हे गुरुदेव ! मैं आपकी विधि के अनुसरण का प्रयास करता हूँ। कृपा करके मेरी अभिलाषा पूरी कर दीजिए। आपको छोड़ कर मेरा दूसरा कोई आधार नहीं है। अतः हे स्वामी ! आप मुझे अपना लीजिए।

सुन जहाँ कहुँ अनुभव अपना। मिटहिं भ्रम जिमि जागत सपना ॥
अनुभूति वर्णन अति कठिना। होई सम्भव गुरु कृपा अधिना ॥

व्याख्या - हे जगत के निवासियों, मैं यहाँ अपने अनुभव का वर्णन करने जा रहा हूँ। जिसके सुनने से भ्रम वैसे ही मिट जाता है, जैसे जागने पर स्वप्न मिट जाता है। यद्यपि अनुभूति का वर्णन करना बहुत कठिन होता है। परन्तु गुरु की कृपा से यह सम्भव हो जाता है।

प्रातः उठि करि मज्जन पाना। बैठि आसन कीन्ह गुरु ध्याना ॥
श्वास अनुभव जब मैं कीन्हा। अद्‌भुत घटना परा मन चीन्हा ॥

व्याख्या - सुबह उठ कर नित्य क्रियादि करके, आसन लगा कर, मैं परमपिता का ध्यान करने लगा। आसन पर बैठे हुए जब मैंने श्वास के आने-जाने का अनुभव किया, तो अद्‌भुत घटना घटित हुई तथा मन का परिचय होने लगा।

मनहि मन अब होत विचारा। देखउँ तहँ ब्रह्माण्ड विस्तारा ॥
मन माझ सकल जग समाई। निज प्रसार सो कहा न जाई ॥

व्याख्या - अब ध्यान में मन ही मन में विचार करने लगा तथा मन के अन्दर ही ब्रह्माण्ड का विस्तार दिखाई देने लगा। मन के अन्दर ही समस्त संसार बसा हुआ है। स्वयं के मन के विस्तार को कहा नहीं जा सकता है।

दो० - मन तें बड़ कोऊ नहिं नहिं लघु मन ते कोय ।
मन हेतु बन्धन परई मन तेहि मुक्ति होय ॥ १६ ॥

व्याख्या - मन से बड़ा संसार में कोई नहीं होता है तथा मन से छोटा भी कोई नहीं होता है। मन के कारण ही बन्धन पड़ता है और मन से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

भाव तें भाव पुनि भाव तें भावा । भाव सोइ भव सागर कहावा ॥
भाव ही मन मन ही सोइ भावा । मम हियँ समझ इहँ आवा ॥

व्याख्या - भावों से भाव पैदा होते हैं तथा भावों का समूह ही भवसागर कहलाता है। भाव ही मन होता है तथा मन ही भाव होता है। यह मुझे मेरे हृदय में ही समझ में आ गया।

दृष्टि बनहिं भाव अनुरूपा । दिखहिं सृष्टि सोई भाव सरूपा ॥
नयन बन्द चलहिं भाव विचारा । हियँ माझ देखहुँ सृष्टि विस्तारा ॥

व्याख्या - भाव के अनुरूप दृष्टि बनती है तथा भाव के अनुरूप ही सृष्टि का स्वरूप दिखाई देता है। मेरी आँखें बन्द थी, परन्तु भावों का विचार चलने लगा, जिससे मैंने हृदय के भीतर ही समस्त सृष्टि का विस्तार देखा।

अंग अंग भ्रमण करहिं भावा । बूझहु निज देह सृष्टि समावा ॥
जहँ जहँ जावहहिं मन मोरा । देखहुँ तहँ प्रभाव प्रभु तोरा ॥

व्याख्या - ध्यान में मेरा मन (भाव) अंग-अंग में भ्रमण करने लगा, तब स्वयं के शरीर में ही समस्त सृष्टि समझ में आने लगी। मेरा मन जहाँ-जहाँ गया, वहाँ सब जगह प्रभु आपका ही प्रभाव दिखाई पड़ने लगा।

देखहउँ नक्षत्र नदिया नारे । सकल भयउ देह नस जारे ॥
जो जो कल्पना मन विचारा । त्यों त्यों होई ब्रह्माण्ड विस्तारा ॥

व्याख्या - मैंने समस्त नक्षत्र, नदियाँ आदि को देखा तथा पाया कि ये सब शरीर के नस जाल का ही विस्तार मात्र है। जो कल्पना मन में आने लगी, वैसे-वैसे ही ब्रह्माण्ड का विस्तार होने लगा।

दो० - कोटि कोटि ब्रह्माण्ड देह बसै कोटि कोटि सूरज चन्द ।
सचराचर वनस्पति बसै समझ जीव मूढ़ महामन्द ॥ १७ ॥

व्याख्या - इस शरीर में ही करोड़ों ब्रह्माण्ड बसे हुए हैं तथा करोड़ों सूर्य व चन्द्रमा भी इसी शरीर में समाये हुए हैं। चराचर जगत सहित समस्त वनस्पति

भी शरीर में समाई रहती है। ये सब देख कर मेरा मन कहने लगा कि हे मूर्ख जीव, अब तो समझो।

ध्यान गभीर होवन जब लागा। हृदयँ माझ विवेक तब जागा॥
पल तें होइ अनुभव अनेका। मन दृष्टि श्वास भयउ ऐका॥

व्याख्या - जब ध्यान गंभीरता से लगने लगा, तब हृदय के भीतर विवेक पैदा होने लगा तथा क्षण भर में बहुत अनुभव होने लगे। मन, दृष्टि व श्वास तब एक होने लग गये।

समझ परहिं तब हियँ माहिं। बिनु प्राण मन अरु दृष्टि नाहिं॥
बिनु प्राण बनहि नहिं भावा। भाव अभाव न दृष्टि सुहावा॥

व्याख्या - तब मेरे हृदय में समझ आ गया कि बिना प्राण शक्ति के मन और दृष्टि नहीं बन पाते हैं। बिना प्राण शक्ति के भाव नहीं पैदा हो पाते हैं तथा बिना भावों के दृष्टि नहीं बन पाती है।

दृश्य बिनु नहिं जगत सुहाई। जगत अभाव न माया उपजाई॥
मन ही जग मन जग विस्तारा। निगम-पुराण सकल पुकारा॥

व्याख्या - बिना दृष्टि के संसार का आभास नहीं होता है तथा बिना संसार के माया पैदा नहीं हो पाती है। इसलिए वेद-पुराण सभी ने कहा है कि मन ही जगत होता है तथा मन के अनुरूप ही संसार का विस्तार होता है।

ध्यान माझ बुझहु मन खेला। जग सकल हेतु मन अकेला॥
करहिं मन हियँ भाव दीवारा। भूलहिं जीव जगत करतारा॥

व्याख्या - मुझे ध्यान करते हुए मन का समस्त खेल समझ में आया कि अकेला मन ही समस्त संसार का कारण है। मन ही जीव के हृदय में भावों की दीवार पैदा कर देता है, जिससे जीव संसार में परमात्मा को भूल जाता है।

दो० - मन जानइ मन जीत हय, मन भूलहिं तब हार।
प्राण तें मन उपजत हय, प्राणन चित्त आधार॥ १८॥

व्याख्या - मन को पहचान लेने पर, मन को जीतना संभव हो जाता है तथा मन को भूल जाने पर, जीव हार जाता है। प्राण से मन पैदा होता है और प्राण चित्त से पैदा होते हैं।

मन वश होवहिं चित्त निरोधा। सो जन कहावहिं जोगी पुरोधा॥
सकल बूझहुँ ध्यान लगाहिं। मन बाहिर जगत कछु नाहिं॥

व्याख्या - मन को वश में कर लेने पर चित्त का निरोध हो जाता है तथा जो चित्त

का निरोध कर लेते हैं, वे योगी कहलाते हैं। मुझे ध्यान लगाने पर समझ में आया कि मन के बाहर जगत में कुछ भी नहीं है ।

होइ द्वन्द भाव बुद्धि उपजाई। भाव अनुरूप त्रिमति सुहाई ॥
परहित रत जो होवइ भावा। बुद्धि सात्विक तहँ उपजावा ॥

व्याख्या - भावों के आपसी द्वन्द से बुद्धि पैदा होती है, इसलिए भावों के अनुसार ही बुद्धि भी तीन प्रकार की होती है। अगर परोपकार के भावों में द्वन्द पैदा होता है, तो बुद्धि सात्विक पैदा होती है ।

निज सुख हेतु जो द्वन्द सुहाई। नहिं संशय मति राजस आई ॥
परद्रोह भाव जो द्वन्द चलाई। बुद्धि तामस बहुरि उपजाई ॥

व्याख्या - भावों में आपसी द्वन्द अगर स्वयं के सुख के लिए चलता है, तो उससे राजसिक बुद्धि पैदा होती है तथा दूसरों को परेशान करने के भावों में अगर द्वन्द चलता है, तो तामसिक बुद्धि पैदा होती है ।

त्रिगुण पार जो चलहिं द्वन्दा। नहिं शंका मिटहिं जग फन्दा ॥
बुद्धि अनुरूप होवहिं कर्मा। ध्यान माझ बुझहुँ इहँ मर्मा ॥

व्याख्या - अगर भावों का द्वन्द त्रिगुणों (सत्, रज, तम) से परे होता है, तो जीव को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। बुद्धि के अनुसार ही समस्त कर्म होते हैं, यह रहस्य मुझे ध्यान में समझ आया है ।

दो० - भाव द्वन्द बुद्धि प्रगटहिं बुद्धि तें भासहिं इन्द्रियादि ।
बुद्धि गो मिलि क्रिया करहिं तातें घटइ कर्म अबाध ॥ १९ ॥

व्याख्या - भावों के आपसी द्वन्द से बुद्धि पैदा होती है तथा बुद्धि के कारण इन्द्रियाँ आदि अंगों का आभास होता है। बुद्धि और इन्द्रियों के मिलने से क्रिया घटित होती है तथा क्रिया के माध्यम से कर्म घटित होता है ।

सत रज तम सो बुद्धि आधारा। मति हेतु घटहिं कर्म त्रिप्रकारा ॥
परहित हेतु होवहिं जो कर्मा। कहहिं सात्विक सकल धर्मा ॥

व्याख्या - सत, रज व तमों गुण के भाव ही बुद्धि के आधार होते हैं, अतः बुद्धि के कारण ही कर्मो को भी तीन प्रकार का कहा गया है। जो कर्म परहित के लिये किये जाते हैं, उन्हें सभी धर्म सात्विक कर्म कहते हैं ।

सुख अरु यश इच्छा सुवाहहिं। घटहिं कर्म राजस कहावहिं ।
हेतु काम क्रोध मद लोभ अपारा। होहिं कर्म सोइ तामस प्रकारा ॥

व्याख्या - जब मन में सुख और यश प्राप्त करने की इच्छा होती है, तो जो कर्म होते हैं, वे राजसिक कर्म कहलाते हैं तथा जिन कर्मो का कारण काम, क्रोध,

मद और लोभ होता है, वे तामस कर्म कहलाते हैं ।

मति अनुरूप लागहिं जग सारा । सोई जगत भयउ त्रिप्रकारा ॥
त्रिगुण प्रबल भाव इक धारा । बहत चलत सकल संसारा ॥

व्याख्या - बुद्धि के अनुसार ही समस्त संसार दिखाई देता है । इसलिए संसार भी तीन प्रकार का होता है । सत, रज व तम गुणों की प्रबल भाव धारा होती है, जिसमें समस्त संसार बहता चला जा रहा है ।

दया दान परहित हियँ माहिं । सुख अरु धन इच्छा मन नाहिं ॥
सत गुण प्रबल रजोगुण थोरा । सोई जुग त्रेता अनुभव मोरा ॥

व्याख्या - जब हृदय में दया, दान और परोपकार के भाव रहते हैं और सुख और धन की इच्छा नहीं सताती है, उस अवस्था में सतोगुण प्रबल होता है तथा रजोगुण थोड़ा बचा रहता है । मेरे अनुभव से संसार की इसी अवस्था को त्रेता युग की अवस्था कहा जाता है।

सुत वित्त यश इच्छा जो गाढ़ी । तामस कम जानि रजो गुण बाढ़ी ॥
निज पर भाव परबल माया । जग द्वापर सोई मन समझाया ॥

व्याख्या - जब पुत्र, धन और यश की इच्छा प्रबल हो जाती है, तब तमोगुण कम हो जाता है तथा रजोगुण बढ़ जाता है । जिससे मेरे-तेरे के भाव पैदा होकर, माया को प्रबल कर देते हैं । मेरे मन में यही समझ में आया है कि यह अवस्था ही द्वापर युग की अवस्था होती है ।

दो०- काम क्रोध मदादि प्रबल चहुँ दिसि तम अन्धकार ।
कलि सम देह लगई तब जान इहँ जुग कलि विस्तार ॥ २० ॥

व्याख्या - जब, क्रोध और मद के भाव बहुत प्रबल होते हैं, तब चारों तरफ तामसिक भावों का अन्धकार छा जाता है और शरीर मशीन की तरह लगने लग जाता है । इसी को संसार की कलियुगी अवस्था कहा जाता है ।

गुण पार नहिं तहँ भलमन्दा । सत जुग सोहि मूल आनन्दा ॥
इहँ भाँति भयउ जुग चारी । कहुँ अनुभव सत्य विचारी ॥

व्याख्या - जब तीनों गुणों से जीव मुक्त हो जाता है, तब अच्छे-बुरे का भेद भी मिट जाता है । उसी गुणातीत अवस्था को सतयुग की अवस्था कहा जाता है, जो आनन्द का मूल होती है । इस प्रकार कलियुग, द्वापर, त्रेता और सत् युग की चार अवस्थाएँ होती हैं । मैं मेरे अनुभव को सत्य मान कर कह रहा हूँ ।

अब कहुँ जुग लक्षण विस्तारी । मति अनुरूप हियँ विचारी ॥
करहु क्षमा प्रभु अवगुण मोरे । लिखहउँ सकल प्रेरणा तोरे ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ युगों के लक्षणों को विस्तारपूर्वक मेरी बुद्धि के अनुसार हृदय में विचार कर बताता हूँ। हे प्रभु ! मेरे अवगुणों को क्षमा करना। मैं तो सब कुछ आपकी प्रेरणा से ही लिख रहा हूँ।

तामस बहु कलियुग कहाई। माया परिवार तहँ लहलाई ॥
काम क्रोध मद लोभ अहंकारा। सकल जानउ माया परिवारा ॥

व्याख्या - तमोगुण जब बहुत बढ़ जाता है, तब वह कलियुग की अवस्था कहलाती है। जहाँ पर माया का परिवार बढ़ने लगता है। काम, क्रोध, मद, लोभ व अहंकार इन सबको माया का परिवार जानना चाहिए।

बहु सुत सुता माया उपजाई। छल छदम् ईरषादि कदुताई ॥
झूठ फरेब बहुरि मक्कारी। सकल जानउ माया नातेदारी ॥

व्याख्या - माया के बहुत से पुत्र-पुत्रियाँ पैदा किये हुए हैं। जिनमें छल, छद्म, ईर्ष्यादि तथा कटुता रूपी पुत्र-पुत्रियाँ हैं। झूठ-फरेब और धोखाधड़ी आदि भाव माया के रिश्तेदार होते हैं।

दो०- ममता मोह बन्धु जन, अरु वासना माया मातु।
देह बुद्धि सुन्दर सदन, निज पर भाव सोई तातु ॥ २१ ॥

व्याख्या - ममता और मोह के भाव माया के मित्र हैं तथा वासना ही माया की जननी है तथा मेरा-तेरा का भाव ही माया का पिता है और देह बुद्धि ही माया का सुन्दर घर है।

ज्यों-ज्यों बाढ़हि माया परिवारा। त्यों-त्यों होई कलियुग विस्तारा ॥
राजा प्रजा अरु सब नर नारी। परहिं भ्रम असमंजस भारी ॥

व्याख्या - जैसे-जैसे माया का परिवार बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे कलियुग का विस्तार होने लगता है तथा राजा-प्रजा व समस्त नर-नारी भ्रमित होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

बाढ़हि अग्यता ग्यान बिसारी। होहिं कर्म देह बुद्धि अनुसारी ॥
कलिजुग होहिं भूप अतिचारी। लोक शाही मानहि नहिं विकारी ॥

व्याख्या - कलियुग में अज्ञान बढ़ने लग जाता है, जिससे ज्ञान मिटने लग जाता है और जीव समस्त कर्म देह बुद्धि के अनुसार करने लग जाता है। कलियुग में राजा अत्याचार करनेवाला हो जाता है तथा विकारयुक्त राजा लोकतन्त्र में विश्वास नहीं करता है।

सैन्य बल करहिं सब काजा। भोग चरम पावहिं नहिं लाजा ॥
भययुक्त चलहि प्रशासन। दण्ड हेतु प्रजा अनुशासन ॥

व्याख्या - सेना के बल पर ही राज्य का संचालन होता है और राजा अति भोगवादी होता है, फिर भी लज्जा नहीं पाता है। सारा प्रशासन भय के कारण चलता है तथा जनता भी दण्ड के भय से अनुशासित होती है।

परहित बूझहहि नहिं कोई। शोषक अति होवहिं बड़ सोई ॥
नीति धरम जेहि मानहि प्रानी। हँसहहिं लोग जानि अग्यानी ॥

व्याख्या - कलियुग में परोपकार को कोई समझता ही नहीं है तथा जो जितना दूसरों का शोषण करनेवाला होता है, उसको उतना ही बड़ा माना जाता है। नीति का पालन करनेवाले लोगों को अज्ञानी समझ कर लोग हँसते हैं।

दो०- अग्यानी जद्यपि ग्यानी कहहि, सदा देखहहिं पर दोष ।
निज हिय अवगुण भण्डार भरा, तबहउ न समझे महाढ़ोल ॥ २२ ॥

व्याख्या - कलियुग में जीव अज्ञानी होते हुए भी स्वयं को ज्ञानी ही मानता है तथा हमेशा दूसरों के दोषों को ही देखता रहता है। यद्यपि उसके स्वयं के हृदय में अवगुणों का भण्डार भरा होता है। कलियुग में फिर भी मूर्ख जीव समझ नहीं पाता है।

कदम कदम नृप तानाशाही। भयउ अबला तहँ लोकशाही ॥
करहिं भूप परिग्रह विशाला। होहिं दीन जन सकल बेहाला ॥

व्याख्या - कलियुग में राजा कदम-कदम पर तानाशाही करता है तथा लोक भावना अबला स्त्री की तरह असहाय हो जाती है। राजा विशाल संग्रह में लगा रहता है, जिससे लोग गरीब होकर बेहाल हो जाते हैं।

जलहि समाज प्रतिशोध ज्वाला। राजा अरु प्रजा भयउ बेहाला ॥
नृप इच्छा सोई नीति सुहाई। परहित तहँ सपनेउ नाई ॥

व्याख्या - सारा समाज बदले की आग में जलता रहता है तथा राजा और प्रजा दोनों की बेहाल अवस्था रहती है। कलियुग में राजा की इच्छा ही नीति बन जाती है, जहाँ पर परोपकार स्वप्न में भी नहीं होता है।

दल फँसहि स्वारथ दल माहि। कथनी करनी बहु भेद बढ़ाहि ॥
नीति विमुख होइ दल प्रधाना। लच्छ हियँ तहँ सत्ता पाना ॥

व्याख्या - सभी राजनीतिक दल स्वार्थ रूपी दल-दल में फँस जाते हैं, जिससे दलों की कथनी और करनी में बहुत भेद हो जाता है। सभी प्रमुख दल नीति विमुख हो जाते हैं और सत्ता प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य हो जाता है।

स्वारथ हेतु हिंसा ताण्डव। नीति न चलहहिं कोउ मानव ॥
धरम अरथ आतंक चहुँओरा। भय बदरा बरषहि घन घोरा ॥

व्याख्या - स्वार्थ के कारण समाज में हिंसा का ताण्डव होता रहता है तथा कोई भी मानव नीति पर नहीं चलते हैं। धर्म और अर्थ के नाम पर चारों तरफ आतंक छाया रहता है, जिससे समाज में भय का वातावरण बन जाता है।

दो०- **झूठ साँच सब एक सम जग भयउ स्वारथ प्रधान ।**
परहित सपनेउ नहिं राजा प्रजा भई खींचा तान ॥ २३ ॥

व्याख्या - झूठ और सच एक समान हो जाते हैं और संसार में स्वार्थ ही प्रधान हो जाता है। परहित की बात तो कोई सपने में भी नहीं सोचता है तथा राजा-प्रजा के बीच खींचतान की स्थिति बनी रहती है।

तामस धरम देह कलि समाना। चिन्ता नरक हेतु अग्याना ॥
धर्म अनुरूप सदा भा समाजा। तामस धरम तब काह सुकाजा ॥

व्याख्या - जब तामसिक भावों को धारण किया जाता है, तब शरीर यन्त्र की तरह लगने लग जाता है। जिससे जीव अज्ञान के कारण चिन्ता रूपी नरक में पड़ जाता है। धर्म के अनुसार ही समाज का स्वरूप बन जाता है। अतः कलियुग में तामस धर्म होने पर अच्छे कार्य कैसे हो सकते हैं ?

भूत प्रेत अरु पूजहिं पिसाचा। जानहि नहिं कोउ झूठ न साचा ॥
परद्रोह हेतु करहिं सब पूजा। भूत प्रेतादि छाड़ि न जानहि दूजा ॥

व्याख्या - कलियुग में भूत और पिशाचों की पूजा करते हैं तथा झूठ और सत्य के भेद को कोई नहीं जानते हैं। दूसरों को परेशान करने के लिए ही पूजा करते हैं तथा भूत-प्रेत आदि को छोड़ कर दूसरा कोई देवता नहीं जानते हैं।

नाम धर्म करहिं बहु पाखण्डा। अग्यता हेतु चढ़ावहिं मुण्डा ॥
मरम धरम जानहिं नहिं कोई। पशुवत जीवहिं जीव अग्य सोई ॥

व्याख्या - धर्म के नाम पर कलियुग में बहुत पाखण्ड किये जाते हैं तथा अज्ञानता के कारण बलि दी जाती है। धर्म के रहस्य को कोई नहीं जानते हैं और अज्ञानी जीव पशु की तरह जीवन जीते हैं।

कर्म सब होहिं धर्म अनुसारी। बनहहिं समाज कृत्य विचारी ॥
धरम कर्म सदा मेल अटूटा। तामस धरम होई कर्म कलूटा ॥

व्याख्या - धर्म के अनुसार ही कर्म होते हैं तथा कर्मो के अनुसार समाज बनता है। इसलिए धर्म और कर्म का अटूट सम्बन्ध होता है तथा तामसिक धर्म होने पर दूषित कर्म ही होते हैं।

दो० - **भाव से धारणा बनै धारणा से धर्म महान ।**
धरम ते सब कर्म घटै कर्म ते सकल जहान ॥ २४ ॥

व्याख्या - जैसा भाव होता है, वैसी ही धारणा बन जाती है और धारणा के अनुरूप धर्म बन जाता है। धर्म के अनुरूप ही कर्म होने लगते हैं और कर्म के अनुसार ही समाज का स्वरूप बनता है।

तामस मन तो जीव असहाई। सोइ कलिजुग अन्ध कहाई ॥
जन्त्र तन्त्र बहु जादू टोना। पाखण्ड प्रसार दिसि चहुँकोना ॥

व्याख्या - जब जीव का मन (भाव) तामसिक होता है, तो जीव असहाय हो जाता है और उसी अवस्था को अन्धा कलियुग कहा जाता है। उस अवस्था में जन्त्र-तन्त्र और जादू टोना का बोल-बाला हो जाता है तथा चारों दिशाओं में पाखण्ड फैल जाता है।

आहार विहार बहु तामसताई। दशा दुर कलि जुग कहि न जाई ॥
नारी-पुरुष आत्म बल हीना। पशुबल प्रबल हेतु दशा दीना ॥

व्याख्या - आहार-व्यवहार में बहुत तामसिकता होती है। कलियुग की दुर्दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। कलियुग में नारी-पुरुष सब में आत्मबल की कमी होती है तथा पशुबल ही प्रबल होता है। जिससे दीन अवस्था आ जाती है।

ध्यान-ग्यान जानहि नहिं कोई। जप तप सपनेउ नहिं होई ॥
अबला बनहहिं भोग सामाना। सब डूबहिं समाज मद पाना ॥

व्याख्या - ध्यान-ज्ञान को कोई नहीं जानते हैं तथा जप-तप का विचार तो सपने में भी नहीं आता है। स्त्री को केवल भोग की वस्तु माना जाता है तथा पूरा समाज अहंकार के नशे में डूबा रहता है।

कलि देह बरतहिं नर नारी। भोगहिं चिन्ता नरक अति भारी ॥
कलिजुग नरक बहु प्रकारा। पावहिं जीव सो भाव अनुसारा ॥

व्याख्या - स्त्री- पुरुष शरीर को मशीन की तरह मानते हैं, जिससे चिन्ता रूपी नरक भोगते हैं। कलियुग में नरक रूपी चिन्ता बहुत प्रकार की होती है, जो जीव के भाव के अनुसार होती है।

दो० - स्वर्ग नरक देह बसै नहिं कहीं गगन के पार।
तामस भाव नरक देत हैं भल भाव स्वर्ग द्वार ॥ २५ ॥

व्याख्या - स्वर्ग और नरक की अवस्था शरीर में ही होती है। ये दोनों आकाश के पार नहीं होते हैं। तामसिक भाव चिन्ता रूपी नरक देते हैं और अच्छे भाव सुख रूपी स्वर्ग दिखाते हैं।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण प्रथम पड़ाव ॥

अब इहाँ कहुँ नरक विस्तारा। केहि विधि परहिं जीव बिचारा ॥
नरक मारग बहु कलि माहिं। काम क्रोध मदादि लोभ सबाहिं ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ चिन्ता रूपी नरक को विस्तारपूर्वक बताता हूँ। जिसमें बेचारा जीव कैसे फँस जाता है। कलियुग में चिन्ता रूपी नरक के बहुत से रास्ते होते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि तामसिक भाव चिन्ता रूपी नरक के मार्ग हैं।

होहहिं क्रोध जीव ताप विशेषा। सोई नरक जलन जीव क्लेसा ॥
जीव जब होवहि मद अन्धा। परहिं नरक मल मूत्र गन्दा ॥

व्याख्या - जब जीव को क्रोध आता है, तो विशेष कष्ट होता है। इसी को जीव का जलन रूपी नरक कहा जाता है तथा जीव जब मद में अन्धा हुआ रहता है, तब मल-मूत्र रूपी गन्दा नरक कहलाता है।

काम बिकल सोई नरक घोरा। घूम न होहि वासना क्षुधा हिलोरा ॥
लोभ लिप्त जीव जब होवहि। तेल गरम सो देह ढोवहि ॥

व्याख्या - जीव जब काम (इच्छा) की भावना से व्याकुल हो जाता है, तब वह घोर नरक की अवस्था होती है। जिसमें जीव वासनाओं के वशीभूत होकर सो भी नहीं पाता है। जीव जब लोभ की भावना में लिप्त हो जाता है, उसी को शरीर पर गर्म तेल डालनेवाला नरक कहा जाता है।

जीव हिय जब आव ईरिषाई। मारा-मारी सोई नरक सुहाई ॥
लालसा उठहिं जेहि मन माहि। बरषहि अँगार जलन छाहि ॥

व्याख्या - जीव के हृदय में जब जलन का भाव आ जाता है, उसी अवस्था को आपस में मारा-मारी करनेवाला नरक कहा जाता है तथा लालसा पैदा हो जाना ही आग बरसनेवाला नरक कहा जाता है। जिससे जीव को जलन होती रहती है।

दो० - तामस भाव देह सकल देवहिं जीव चिन्ता अपार ।
चिन्ता ते जीव बिकल अरु चिन्ता ही नरक प्रकार ॥ २६ ॥

व्याख्या - शरीर में सभी तामसिक भाव जीव को चिन्ता देते हैं तथा चिन्ता से जीव व्याकुल हो जाता है और चिन्ता को ही नरक के रूप में जाना जाता है।

जब जब आव तम अहंकारा। परहिं जंजीर नरक अपारा ॥
वासना बहुरि मन ललचाई। सो नरक तहँ अहिगन सताई ॥

व्याख्या - जब-जब जीव में तामसिक अहंकार आता है, तब वह बेड़ियों में बँध जाता है। इसी को बेड़ियोंवाला नरक कहा जाता है और जब मन वासनाओं में फँस जाता है, उसी मनोस्थिति को सर्पो द्वारा सतानेवाला नरक कहा जाता है।

होवहि कर्म जब चोर जुआरी। भय नरक पाव जीव विचारी ॥
लोलुप लम्पट गमन पर नारी। सो जीव अपयश नरक अधिकारी ॥

व्याख्या - जब जीव चोरी और जुआ का कर्म करता है, तो उसे भयभीत करनेवाला नरक सताता है अर्थात जीव सदा भयभीत रहता है। लोलुप, लम्पट और परनारी गमन करनेवाला जीव अपमान रूपी नरक प्राप्त करता है।

पर निंदक कपटी गुरु द्रोही। नरक अन्ध बंध पावहिं सोही ॥
मातु-पितु करहिं न सेवकाई। भोगहि नरक उलावहन ताई ॥

व्याख्या - परनिंदा करनेवाला, कपटी व गुरु का विरोधी अंधकार रूपी नरक प्राप्त करता है अर्थात उसे कभी अज्ञान से मुक्ति नहीं मिल पाती है। जो माता-पिता की सेवा नहीं करते हैं, उन्हें उलावहन रूपी नरक (चिन्ता) सताता है।

पति-पत्नी जो करहिं झगड़ा। परहिं नरक जातना तगड़ा ॥
ग्यानी जन जे करहिं अपमाना। सोई नरक अन्ध कूप समाना ॥

व्याख्या - पति-पत्नी जो आपस में झगड़ा करते हैं, वे यातना रूपी नरक में पड़ते हैं तथा ज्ञानी लोगों का अपमान करनेवाले, अन्धे कूप रूपी नरक में पड़ते हैं।

दो० - गुरु कपटी शिष्य स्वारथी खेलहि मिचौनी खेल ।
उभय दावानल परहि नरक करइ ठेलम ठेल ॥ २७ ॥

व्याख्या - जब गुरु कपटी और शिष्य स्वार्थी होते हैं, तो दोनों एक दूसरे से आँख-मिचौनी का खेल खेलते रहते हैं तथा दोनों दावानल रूपी नरक में एक दूसरे को धक्के मारते रहते हैं।

झूठ फरेब करहिं मक्कारी। विष कीट सतावहिं तहँ भारी ॥
तामस नरक बहु दुःखदाई। शत्रु तउ उचित नहिं पराई ॥

व्याख्या - जो झूठ, फरेब और मक्कारी करते हैं, उन्हें जहरीले कीड़े सतानेवाली चिन्ता सताती है। तामसिक भावों की चिन्ता (नरक) बहुत दुःख दायी होती है। इसलिए दुश्मन को भी तामसिक नरक नहीं मिलना चाहिए।

एहि भाँति नरक नाना प्रकारा। राजा-प्रजा तहँ परहिं अविचारा ॥
तन जर्जर मन बहु तनाई। सो चिन्ता बहुरि त्रास दिलाई ॥

व्याख्या - इस प्रकार नाना प्रकार के चिन्ता रूपी नरक होते हैं। जिसमें अज्ञानतावश राजा व प्रजा दोनों पड़ जाते हैं। चिन्ता रूपी नरक बहुत कष्ट देनेवाला होता है। जिससे शरीर जर्जर और मन तनावयुक्त हो जाता है।

कलिजुग भूप देह रजधानी। हेतु अज्ञान जीव करई नादानी ॥
माया कुटुम्ब सोई भूप वाहनी। अज्ञान प्रबल सो बन्ध निसानी ॥

व्याख्या - कलियुग रूपी राजा का शरीर ही राजधानी होता है। जहाँ अज्ञानता के कारण जीव फँस जाता है तथा माया का परिवार ही कलियुग

रूपी राजा की सेना होती है और अज्ञान ही राजा की जेल होती है ।

देह सुख सोई सर्ग कलिमाहिं । तामस हेतु सोई अल्प सुहाहिं ॥
नरक बहुरि सर्ग अति अल्पा । कलि त्रास लागहिं सम कल्पा ॥

व्याख्या - शारीरिक सुख ही कलियुग में स्वर्ग कहलाता है, जो तामसिकता के कारण बहुत थोड़ा होता है । कलियुग में नरक बहुत होता है । परन्तु स्वर्ग थोड़ा-सा होता है । इसलिए कलियुग का आभास कल्प के समान होता है ।

दो० - तामस मन कलि सदन नहिं कहीं अन्य ठौर ।
चिन्ता सोई नरक हय सत्य ज्ञान नहिं किछु और ॥ २८ ॥

व्याख्या - मन की तामसिक अवस्था ही कलियुग कहलाती है । कलियुग का दूसरा कोई स्थान नहीं होता है तथा चिन्ता ही नरक की अवस्था होती है । अतः इसके अलावा दूसरा कोई सत्य ज्ञान नहीं है ।

मन भाव सोई कलि जुग दाता । मन ते सम्भव कलि त्राता ॥
कलियुग लक्षण कहा बखानी । अब कहहउँ द्वापर कहानी ॥

व्याख्या - वास्तव में तो मन का भाव ही कलियुग का आभास कराता है तथा मन के द्वारा ही कलियुग के आभास से मुक्त होना सम्भव है। मैंने कलियुग के लक्षण बता दिये हैं और अब मैं द्वापर के लक्षण बताता हूँ ।

जुग द्वापर रज गुण प्रधानी । सुख इच्छा प्रबल सोई निसानी ॥
रहहिं द्वापर मान अपमाना । सकल कर्म फल इच्छा प्रधाना ॥

व्याख्या - द्वापर की अवस्था में रजोगुण प्रमुख होता है तथा रजोगुण होने पर सुख की इच्छा प्रबल हो जाती है । यही द्वापर की पहचान होती है । द्वापर की अवस्था में मान-अपमान के भाव प्रबल होते हैं तथा समस्त कर्म फल की इच्छा से ही होते हैं ।

देह श्रम कम मन बेशी तनावा । कर्म बन्ध जीव बहु उरुझावा ॥
स्वारथ प्रधान चिन्ता नहिं दूसर । भोग लच्छ मानहिं इहां भूपर ॥

व्याख्या - द्वापर में शारीरिक श्रम कम होता है । परन्तु मानसिक तनाव बहुत होता है तथा कर्म के बन्धन में जीव उलझ जाता है । द्वापर में स्वयं का स्वार्थ ही प्रधान होता है तथा दूसरों की चिन्ता नहीं होती है । भोगों की प्राप्ति को ही पृथ्वी पर जीव अपना प्रमुख लक्ष्य समझता है ।

बिनु फल करहिं न कर्म आरम्भा । इहँ रज प्रभाव नहिं अचम्भा ॥
सुख हेतु जीव करहि प्रयासा । मिटहिं नहिं पर मन संत्रासा ॥

व्याख्या - द्वापर में जीव बिना फल की इच्छा के तो कर्म करना शुरू ही नहीं

करता है। परन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि यह तो रजोगुण का प्रभाव है। जीव हमेशा सुख के लिए प्रयास करता है। परन्तु शारीरिक सुख से मन का दुःख नहीं मिट पाता है।

दो० - सुख हेतु संग्रह करै सुख हेतु भागम भाग मचाय ।
फल बन्धन ऐसा परै जीव निसि दिवस अकुलाय ॥ २९ ॥

व्याख्या - जीव सुख के लिए संग्रह करता है और सुख प्राप्ति को ही लक्ष्य बना कर कर्म के क्षेत्र में मारा-मारी करता है। परन्तु सुख के फल का बन्धन ऐसा पड़ जाता है, जिससे जीव रात-दिन चिन्ता में पड़ जाता है।

आज छाड़ि चिन्ता भावी सताई। निजहहिं परै जीव उरुझाई ॥
सुख हेतु नित्य करहिं कर्मा। मिलई दुःख जानहिं नहिं मर्मा ॥

व्याख्या - आज की चिन्ता नहीं करके जीव भविष्य के चिन्तन में पड़ जाता है और जीव स्वयं ही भविष्य की चिन्ता में उलझ जाता है। जीव नित्य उठ कर सुख प्राप्ति को लक्ष्य बना कर कर्म करता है। परन्तु फल की आसक्ति के कारण जीव को दुःख ही मिलता है और जीव इस रहस्य को जान नहीं पाता है।

फल आसक्ति द्वापर अति भारी। होवहिं सकल कर्म ता अनुसारी ॥
सुत वित्त यश मोह परिवारा। बाढ़हि द्वापर सकल अपारा ॥

व्याख्या - कर्म फल की इच्छा द्वापर (राजसिक अवस्था) में बहुत बढ़ जाती है तथा समस्त कर्म फल की इच्छा से ही होने लगते हैं। रजोगुण की प्रधानता होने पर पुत्र, धन, लोक प्रतिष्ठा और परिवार का मोह अत्यधिक बढ़ जाता है।

धर्म होहहिं इहाँ रज प्रधाना। ग्यान चाह तद्यपि हिय अग्याना ॥
फल हेतु पूजहहिं देव नाना। फल कारण परहित दया दाना ॥

व्याख्या - द्वापर युग की अवस्था में धर्म अर्थात धारणा राजसिक हो जाती है और ज्ञान की चाहत होते हुए भी जीव रजोगुण के कारण अज्ञानी बना रहता है। फल की इच्छा के कारण ही द्वापर में नाना प्रकार के देवताओं की पूजा की जाती है और दया, दान व परोपकार के कार्य भी फल की इच्छा से ही किये जाते हैं।

जप तप करहिं देव रिझावन। पूजहहिं मूरत मन भावन ॥
जावहिं तीर्थ समय अनुसारी। स्तुति करहहिं फल विचारी ॥

व्याख्या - द्वापर में जप-तप भी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए ही किये जाते हैं तथा मन की भावना के अनुसार देव-मूर्ति की पूजा की जाती है। समय की अनुकूलता के अनुसार लोग तीर्थों में भी जाते हैं, परन्तु स्तुति आदि फल की इच्छा से ही करते हैं।

दो० - इच्छा से इच्छा उपजत इच्छा हेतु तीरथ स्थान ।
निज घट प्रभु बसै मूरख सकै नहिं पहचान ॥ ३० ॥

व्याख्या - जीव की एक इच्छा से दूसरी इच्छा पैदा हो जाती है तथा इच्छा के कारण ही जीव तीर्थ यात्रा करता है । वास्तव में तो परमपिता जीव के हृदय में ही बसता है । परन्तु मूर्ख जीव पहचान नहीं पाता है ।

आचरण द्वैत बहु द्वापर माहिं । प्रवचन कहहिं आचरहिं नाहिं ॥
भेष देखि मानहिं साधु सन्ता । फल अंध जानइ नहिं अन्ता ॥

व्याख्या - द्वापर युग में बहुत दिखावे का आचरण होता है । लोग प्रवचन करते हैं, परन्तु अनुसरण नहीं करते हैं । भेष देख कर ही लोग साधु-सन्तों की पूजा करते हैं और फल की इच्छा में अन्धे हुए लोग अन्तः करण को जान नहीं पाते हैं ।

कर्म कुशल सो कहावई योगी । दोष न देहहिं कोई द्वापर भोगी ॥
पूंजीपति पावहिं तहँ सन्माना । जद्यपि संग्रह बहु अग्याना ॥

व्याख्या - कर्म में जो कुशल होता है, उसी को द्वापर में योगी कहते हैं तथा द्वापर में भोग को बुरा नहीं मानते हैं । हालांकि संग्रह घोर अज्ञान ही होता है, फिर भी पूंजीपति द्वापर में बहुत सम्मान प्राप्त करते हैं ।

साधु बोलहहिं ठकुर सुहाती । माया बहु तहँ सकल नचाती ॥
बहु विधि भौतिक ताप सताई । भोग अधीन सब लोग लुगाई ॥

व्याख्या - द्वापर में माया सब जीवों को नाच नचाती है तथा साधु लोग भी लोगों को खुश करनेवाली वाणी ही बोलते हैं । द्वापर में भौतिक सुखों की चिन्ता बहुत प्रकार से सताती है तथा सभी स्त्री-पुरुष भोग भावना के अधीन हो जाते हैं ।

जाति-पाँति अरु बहु मान बढ़ाई । नारी पुरुष ऊँच नीच उरझाई ॥
दम्भ श्रेष्ठ करावहहिं निन्दा । होइ उल्ट जानहिं नहिं अन्धा ॥

व्याख्या - द्वापर में जाति-पाति और बहुत मान-बढ़ाई की धारणा रहती है तथा स्त्री-पुरुष भी ऊँच-नीच की भावना में उलझे रहते हैं । श्रेष्ठ बनने की भावना के दम्भ के कारण ही दूसरों की बुराई करते हैं । परन्तु परिणाम तो उल्टा ही होता है । फिर भी अज्ञानी जीव समझ नहीं पाते हैं ।

दो० - परनिंदा जेहि जीव करै सपनेउ सुख नहिं पाय ।
उलट निंदा निज परै विधि तो विधान चलाय ॥ ३१ ॥

व्याख्या - परनिंदा करनेवाला जीव सपने में भी सुख प्राप्त नहीं कर पाता है । क्योंकि प्रकृति के कार्य-कारण सिद्धान्त के कारण निंदा लौट कर निंदा करनेवाले पर ही आ जाती है ।

ग्रन्थन ग्रन्थि जीव उरुझाई । अनुसरहिं बिनु मरम बुझाई ॥
पाप पुण्य बहु करहि बखाना । भेद न जानहि जीव अग्याना ॥

व्याख्या - द्वापर में जीव बिना समझे शास्त्रों का अनुसरण करने लगता है और वह ग्रन्थों की रहस्यमय ग्रन्थियों में उलझ कर भ्रमित हो जाता है । रात-दिन पाप-पुण्य की चर्चा करने में लगा रहता है। परन्तु अज्ञान के कारण पाप-पुण्य के रहस्य को नहीं जान पाता है।

पूजहिं ग्रन्थ मरम न गहहिं । पथ अन्धा तउ मूढ़ चलहिं ॥
शास्त्र सकल नहिं मूल अलादा । भेद बाहरी हेतु बंध मरजादा ॥

व्याख्या - द्वापर में ग्रन्थों की पूजा करते हैं । परन्तु शास्त्रों के मर्म को नहीं ग्रहण करते हैं और पंथ बना कर मूर्ख लोग अन्धे पथ पर चलते हैं । सभी शास्त्र मूल रूप में तो एक ही हैं । परन्तु मर्यादाओं के कारण बाहरी भेद दिखाई देता है।

जप तप मख पूजा विधि नाना । बिनु कर्म चाहि फल इन्साना ॥
हेतु आसक्ति करम सकला । सर्ग-नरक बन्ध जीव बिकला ॥

व्याख्या - द्वापर अर्थात रजोगुण की प्रधानता होने पर जीव जप, तप व यज्ञ आदि करने लगता है तथा बिना कर्म किये भगवान से फल की आशा करने लग जाता है । समस्त कर्म उस अवस्था में आसक्तियुक्त होते हैं, जिससे स्वर्ग-नरक की कल्पना के बन्धन में जीव फँस जाता है ।

चमक दमक भल तहँ लागहिं । देह नश्वर जद्यपि न मानहिं ॥
प्रभु गुण करहिं बहु बखाना । फल इच्छा पर हियँ प्रधाना ॥

व्याख्या - रजोगुण की प्रधानता होने पर चमक-दमक अच्छी लगती है तथा नश्वर होते हुए भी जीव शरीर की नश्वरता में विश्वास नहीं करता है । फल की इच्छा को हृदय में रखकर जीव द्वापर में नाना प्रकार से भगवान के गुणों का बखान करने लगता है ।

दो० - सुख लालसा मोह प्रबल सदा ता हेतु धन कमाय ।
पाप पुण्य कल्पना करै बिरथा कर्म बन्ध बढ़ाय ॥ ३२ ॥

व्याख्या - सुख प्राप्त करने की प्रबल लालसा मन में होती है और मोह भी प्रबल होता है तथा उसी के कारण हमेशा जीव धन कमाने में लगा रहता है। पाप-पुण्य की कल्पना करके जीव द्वापर में व्यर्थ में ही कर्म का बन्धन डाल लेता है ।

सुख लालच करहिं सब कर्मा । फल बंधन भूलहिं निज धर्मा ॥
कर्म काण्ड बहुरि विश्वासा । करि पाखण्ड फँसहिं मन आशा ॥

व्याख्या - सुख प्राप्त करने की लालसा में जीव सब कर्म करने लगता है, जिससे

फल-इच्छा का बंधन पड़ जाता है और जीव सहजता को भूल जाता है । द्वापर में कर्म काण्ड पर बहुत विश्वास होता है । जिससे जीव पाखण्ड में पड़ कर मन की इच्छाओं में फँस जाता है ।

इन्द्रियँ बिकल मन बस नाहीं । हियँ भोग वासना बहु बढ़ाहीं ॥
मानसिक व्यापहि अति रोगा । काह कहउँ बिकल सब लोगा ॥

व्याख्या - रजोगुण बढ़ने पर इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं तथा मन वश में नहीं रह पाता है तथा शारीरिक भोगों की वासना हृदय में प्रबल हो उठती हैं । जिससे जीव के मानसिक रोग बढ़ जाते हैं । क्या वर्णन करूँ ? सब लोग इच्छाओं के संताप से व्याकुल होते रहते हैं ।

निज जानहिं श्रेष्ठ अरु विद्वाना । दूसर सम लगहिं न अग्याना ॥
दया दान अरु परहित भलाई । धन अरु यश इच्छा रहि छुपाई॥

व्याख्या - द्वापर की अवस्था में जीव स्वयं को सबसे श्रेष्ठ और विद्वान मानने लगता है तथा दूसरों को अज्ञानी मानने लगता है । रजोगुण के प्रभाव में जीव दया, दान, परहित व भलाई आदि कार्य या तो धन कमाने के लिए करता है या फिर समाज में लोक प्रतिष्ठा पाने की इच्छा छिपी रहती है ।

समान बताए चराचर प्रानी । खुद कराइ पूजा महा अज्ञानी ॥
परम ज्ञान करहिं उपदेसा । गृह आसक्त मन बहु क्लेसा ॥

व्याख्या - रजोगुण प्रभावी जीव बातों-बातों में तो समस्त प्राणियों को समान बताता है । परन्तु मौका मिलने पर स्वयं की पूजा करवाने से नहीं चूकता है । वह परम ज्ञान का बहुत उपदेश करता है, परन्तु स्वयं घर की आसक्ति में पड़ कर दुःखी होता रहता है ।

दो० - सफलता का दम्भ भरै विफलता प्रभु दोष लगाय ।
वासना द्वापर प्रबल अति भोगी जीव जग भरमाय ॥ ३३ ॥

व्याख्या - रजोगुणी जीव सफल होने पर स्वयं को सफलता का कारण मान लेता है तथा असफल होने पर प्रभु को दोष देने लगता है । द्वापर में वासना बहुत प्रबल होती है । जिसमें भोग कामनावाला जीव पड़कर भ्रमित होता रहता है ।

हरम नाच पर नारी गमना । मदपानादि रजोगुण लखना ॥
प्रमाद बस्य सारी दिन चर्या । नारी चिंतन खण्डित ब्रह्मचर्या ॥

व्याख्या - जो हरम में नारियों का नृत्य कराते हैं और मद्यपान करते हैं तथा परस्त्री गमन करते हैं, ये सब रजोगुण के प्रभाव के लक्षण हैं। ऐसे लोगों की दिनचर्या प्रमाद वश ही होती है तथा परनारी के चिन्तन से ब्रह्मचर्य खण्डित होता रहता है ।

पद लिप्सा अरु चाटुकताई । भोग अधीन सब लोग लुगाई ॥
लोगन्ह हियँ लालच बहु भांति । सुख जुगत खोजहिं दिनु राति ॥

व्याख्या - पद प्राप्त करने की लालसा, चाटुकारिता और भोग इच्छा सब स्त्री-पुरुषों को अधीन किये रहती है । लोगों के हृदय में लालच बहुत प्रकार से छिपा रहता है तथा रात-दिन सुख प्राप्त करने की युक्ति खोजते रहते हैं ।

पर दारा चिन्तन मन माहिं । निज नारी अनुराग हियँ नाहिं ॥
भोगन्ह हेतु करहि सब कर्मा । जीव मूढ़ भूलहिं प्रकृति धर्मा ॥

व्याख्या - द्वापर में मनुष्य दूसरों की स्त्रियों का मन में चिन्तन करता रहता है और स्वयं की पत्नी के प्रति स्नेह नहीं रखता है । मूर्ख जीव द्वापर में भोग प्राप्ति के लिए ही सब कर्म करता है तथा प्रकृति के सहज धर्म को भूल जाता है ।

दरस परस करहिं मद पाना । देखअहिं भोग अति हरषाना ॥
जीव होवहिं तब भोग अधीना । अग्यान हियँ चिन्ता नवीना ॥

व्याख्या - रजोगुणी लोग मिल-जुल कर मद्यपान करते हैं तथा भोगों को देख कर हर्षित हो उठते हैं । रजोगुण से जीव भोगों के अधीन हो जाता है तथा जीव के हृदय में अज्ञान छा जाता है । जिससे नयी-नयी चिन्ताएँ पैदा होने लग जाती हैं ।

दो० - देह जर्जर गो असहाय सब तबहउँ न मन अघाय ।
भाव सागर उत्ताल भयउ चिन्ता दावानल जलाय ॥ ३४ ॥

व्याख्या - सारा शरीर जर्जर हो जाये, तब भी मन भोगों से नहीं अघाता है । भोगों से भाव रूपी सागर उत्ताल हो उठता है । जिससे चिन्ता रूपी अग्नि जीव को बहुत प्रकार से जलाने लगती है ।

द्वापर चित्त वित्त स्थिर नाही । बिरथा सकल जीव भरमाही ॥
कलि अरु द्वापर नहिं बहु भेदा । उभय हेतु पाइ जीव भव खेदा ॥

व्याख्या - रजोगुणी (द्वापर) अवस्था में जीव का चित्त और अर्थ स्थिर नहीं रह पाते हैं । इसलिए व्यर्थ में सब जीव भ्रमित होते रहते हैं । कलियुग (तामसिक) और द्वापर (रजोगुण) में बहुत ज्यादा अन्तर नहीं होता है । क्योंकि राजसिक व तामसिक गुण जीव को भाव रूपी कष्ट देते हैं ।

द्वापर सुख दुःख एक समाना । भँवर जाल तहँ जीव फँसाना ॥
अष्ट सुख होइ द्वापर माही । निगम पुराण सो सर्ग बताही ॥

व्याख्या - द्वापर युग (राजसिक अवस्था) में सुख-दुःख एक समान मात्रा में होते हैं। जिनके भँवर जाल में बेचारा जीव फँस जाता है । द्वापर में आठ प्रकार के सुख मूल रूप से होते हैं । जिनको वेद-पुराणों ने स्वर्ग के रूप में वर्णन किया है ।

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है, ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

मन सर्ग सोई कहऊँ बखानी । जाल भोग बूझई नहिं अज्ञानी ॥
यश प्रताप फैलहिं चहुँओरा । सोई भयउ स्वर्ग मन ठौरा ॥

व्याख्या - अब मैं मन में निवास करनेवाले स्वर्ग का वर्णन कर रहा हूँ । जिसको अज्ञानी लोग भोग के जाल में पड़ कर समझ नहीं पाते हैं । जब रजोगुण (द्वापर) के प्रभाव के कारण जीव का यश चारों तरफ फैलने लग जाता है, तो वह अवस्था ही मन को सुख (स्वर्ग) की अनुभूति देनेवाली होती है ।

भूषण बसन व्यंजन नाना । मिलहिं सकल मन अनुमाना ॥
सोई भा प्रथम स्वर्ग प्रकारा । पावहिं जीव करम अनुसारा ॥

व्याख्या - जब जीव को मनपसन्द खाना व वस्त्र मिल जाते हैं, तो वह स्वर्ग की प्रथम अवस्था होती है, जो कर्म की क्षमता के अनुसार ही जीव को मिल पाती है ।

दो० - सर्ग ठिकाना मन जीव का मन बाहिर किछु नाय ।
सुख अनुभूति जब मिलै सोइ सर्ग बैकुण्ठ कहाय ॥ ३५ ॥

व्याख्या - स्वर्ग का निवास स्थान जीव का मन ही होता है तथा मन के बाहर स्वर्ग-नरक कुछ भी नहीं होता है । जीव को जब सुख की अनुभूति होती है, वह अवस्था ही स्वर्ग व बैकुण्ठ की कहलाती है ।

द्वितीय सर्ग संभोग आधारा । कनक डोर बंधहि जीव बिचारा ॥
संभोग लिप्त तहँ नर नारी । सोइ लोक इन्द्र सकल पुकारी ॥

व्याख्या - दूसरा सुख संभोग की अवस्था होती है । जहाँ जीव सोने की जंजीर में बँध जाता है । जब स्त्री-पुरुष संभोग की अवस्था में होते हैं, उसी को इन्द्रलोक कहा जाता है ।

तीसर दम्भ तुष्ट सर्ग प्रकारा । सो स्वर्ग अधम युक्त विकारा ।
चउथ स्वर्ग भल परिवारी । सकल करहिं मरजाद विचारी ॥

व्याख्या - जीव को तीसरा सुख स्वयं के दम्भ (अहंकार) की सन्तुष्टि से मिलता है । दम्भ सन्तुष्टि करानेवाला सुख (स्वर्ग) अधम प्रकृति का होता है । चौथा स्वर्ग परिवार का सुख होता है । जहाँ पर सभी लोग मर्यादाओं का पालन करते हैं ।

पंचम सर्ग बन्धु सुखदाई । परस्पर प्रीत कपट भूलाई ॥
षष्ठं स्वर्ग भल प्रतिवेशी । कवनउ समय होइ न क्लेशी ॥

व्याख्या - पाँचवा स्वर्ग भाई का होता है, जो आपस में कपट भूला कर परस्पर प्रेम करते हैं। छठा स्वर्ग अच्छे पड़ोसी से मिलता है, जो किसी भी समय क्लेश नहीं करता है ।

सप्तम सर्ग हरि गुण गाना । मन मत्त होइ जीव मस्ताना ॥
दया दान तहँ अवसर पाई । श्रवणहिं यश जीव सुखदाई ॥

व्याख्या - सातवाँ स्वर्ग प्रभु का गुण-गान करने पर मिलता है । जिससे जीव का मन एकाग्र हो जाता है और जीव मस्त हो जाता है। इस अवस्था में जीव को दया, दान आदि का अवसर मिलता है । जिससे जीव को यश प्राप्त होने लगता है । जो जीव को सुख देनेवाला होता है।

अष्टम स्वर्ग जन सेवकाई । पावहहिं बिरला द्वापर माई ॥
ऐहि भांति द्वापर सर्ग सुहाई । नहिं गगन पार सत्य बताई ॥

व्याख्या - आठवाँ स्वर्ग वह अवस्था होती है, जिसमें लोग जीव की सेवा में लग जाते हैं । इस अवस्था के स्वर्ग को कोई बिरला जीव ही प्राप्त करता है । इस प्रकार द्वापर में मन के अन्दर ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है । मैं सत्य बता रहा हूँ, आकाश के परे कोई स्वर्ग नहीं होता है ।

दो० - मन कल्पना जग भ्रमित हियँ नहिं विवेक विचार ।
निज सुख दुःख निज बस बिरथा देइ दोष करतार ॥ ३६ ॥

व्याख्या - मन की कल्पनाओं के कारण सारा संसार भ्रमित हो रहा है तथा कोई हृदय में विचार करके नहीं देख रहा है कि जीव स्वयं ही स्वयं के सुख-दुःख का कारण होता है । परमपिता को तो व्यर्थ में दोष लगाया जाता है ।

द्वापर स्वर्ग नहिं सो स्थाई । छीजत तहँ नहिं बार लगाई ॥
छीजहिं स्वर्ग नरक आवहिं । बहु विधि सोइ जीव सतावहिं ॥

व्याख्या - द्वापर (रजोगुणी अवस्था) के सुख स्थायी नहीं होते हैं। इसलिए नष्ट होने में समय नहीं लगता है और जब स्वर्ग नष्ट होने लगता है, तो नरक (चिन्ता) आ जाता है । जो जीव को बहुत प्रकार का कष्ट देने लगता है ।

द्वापर नरकउ अष्ट प्रकारी । भोगहिं जीव सो करम अनुसारी ॥
प्रथम नरक भय अपमाना । ताप जीव तहँ हियँ अकुलाना ॥

व्याख्या - द्वापर (रजोगुण) में चिन्ता (नरक) भी आठ प्रकार की होती है । जो जीव को कर्मों के अनुसार सताती है । द्वापर में पहला नरक अपमान का भय होता है, जिससे जीव के हृदय में तपन होने लगती है।

दूसर नरक पर सुख देखी । हियँ जलन मन ताप विशेषी ॥
तीसर नरक पर निन्दा भावा । अकारण जीव बहु तड़पावा ॥

व्याख्या - द्वापर में दूसरे प्रकार की चिन्ता दूसरों के सुखों को देख कर होती है । जिससे जीव के हृदय में जलन व मन में तप्त होने लगती है । तीसरी चिन्ता दूसरों की निन्दा से होती है । जिसमें पड़ कर जीव बिना कारण के ही तड़पने लगता है ।

चउथ नरक होइ देह विकारी । भोग सुलभ सकै न भोग बिचारी ॥
पंचम नरक कलह परिवारा । पाइ पल-पल दुःख जीव बिचारा ॥

व्याख्या - चौथे प्रकार की चिन्ता देह के विकारों से पैदा होती है । उस अवस्था में जीव को सारे सुख सुलभ होते हैं । परन्तु शारीरिक विकारों के कारण जीव भोगों को भोग नहीं पाता है । पाँचवा नरक परिवार में क्लेश होने से होता है । जिससे जीव पल-पल में दुःख भोगता है ।

दो०- जो सुख नहिं परिवार में कबहुँ न बाहिर मिल पाय ।
नरक भोगहिं मूढ़ जन बिरथा जन्म मनुज का जाय ॥ ३७ ॥

व्याख्या - जब परिवार में ही सुख नहीं है, तो जीव को बाहर भी सुख नहीं मिल पाता है । मूर्ख लोग इस रहस्य को नहीं जान पाते हैं । इसलिए चिन्ता रूपी नरक भोगते रहते हैं । जिससे उनका मनुष्य जन्म लेना व्यर्थ ही चला जाता है ।

छठ नरक तहँ दम्भ अपारा । अग्यता बन्ध जीव लाचारा ॥
सप्तम नरक सकल विरोधी । अकारण बरतहिं भाव क्रोधी ॥

व्याख्या - छठा नरक (चिन्ता) दम्भ से मिलता है । जिससे जीव अज्ञानता की जंजीरों में बँध कर लाचार हो जाता है । सातवाँ नरक वह होता है, जिसमें सभी से विरोध हो जाता है और जीव बिना कारण के क्रोध करने लग जाता है ।

अष्टम नरक जाति अपमाना । पावहिं कष्ट तहँ मन नाना ॥
बहु भाँति द्वापर सर्ग नरका । फंसहि जीव निकसहिं अरका ॥

व्याख्या - द्वापर में आठवाँ नरक जाति का अपमान होता है (अर्थात अपने बराबरवालों में अपमान होना ही जाति अपमान कहलाता है), जिससे जीव का मन नाना प्रकार के कष्ट पाता है । इस प्रकार द्वापर में बहुत प्रकार के स्वर्ग-नरक होते हैं, जिनमें फँस कर जीव का तेल निकल जाता है ।

जुग द्वापर नहिं आनन्द मूला । होहिं दैविक, दैहिक भौतिक शूला ॥
अब कहउँ त्रेता जुग बखानी । आनन्द रस सकल गुन खानी ॥

व्याख्या - द्वापर युग (रजोगुण) आनन्द का मूल नहीं होता है । क्योंकि द्वापर युग में मानसिक, शारीरिक व आर्थिक कष्ट जीव को सताते ही रहते हैं । अतः अब मैं त्रेतायुग (सतोगुणी अवस्था) का वर्णन कर रहा हूँ, जो सब गुणों की खान व आनन्द देनेवाली है ।

सत प्रधान जो आनन्दाई । निगम-पुराण बहु महिमा गाई ॥
राजा प्रजा तहँ होइ सहयोगी । प्रजा हितकर भूप सत जोगी ॥

व्याख्या - त्रेतायुग की अवस्था सात्विक गुणोंवाली व आनन्द देनेवाली होती है, जिसकी वेदों व पुराणों ने बहुत प्रकार से महिमा गाई है । त्रेता युग की अवस्था में राजा और प्रजा एक दूसरे के सहयोगी होते हैं तथा राजा प्रजा का हित करनेवाला व सात्विक भावों में बरतनेवाला होता है ।

दो० - राज करहिं पर राजा नहिं त्रेता जुग इहँ बहु कमाल ।
प्रजा सेवक निज मानहिं सत गुण रत हृदय विशाल ॥३८ ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में राजा ही राज्य का संचालन करता है । परन्तु स्वयं राजत्व का बोध नहीं करता है और स्वयं को प्रजा का सेवक मान कर, हमेशा सात्विक भावों में बरतता हुआ, अपने हृदय को विशाल रखता है । यही त्रेता युग का चमत्कार होता है ।

करहहिं प्रजा भूप गुन गाना । भूप देवहहिं प्रजा सन्माना ॥
उभय बंधहि डोर विश्वासा । चहुँदिस होहिं सहयोग प्रयासा ॥

व्याख्या - त्रेता (सतोगुण) की अवस्था में प्रजा राजा के गुणगान करती है तथा राजा भी विनम्र होकर प्रजा को सम्मान देता है । राजा और प्रजा दोनों विश्वास रूपी रस्सी में बँधे हुए होते हैं और चारों तरफ आपसी सहयोग का ही प्रयास होता रहता है ।

दरिद्र अबुध नहिं लच्छ हीना । सकल नागरिक ग्यान प्रवीना ॥
करहिं करम क्षमता अनुसारी । नहिं हियँ भेद तहँ नर-नारी ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में सभी नागरिक गुण व ज्ञानवान होते हैं तथा कोई भी गरीब, अशिक्षित और लक्षणहीन नहीं होता है । सभी लोग अपनी क्षमता के अनुसार कर्म करते हैं तथा समाज में स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं होता है ।

दया दान अरु लोक कल्याणा । करहिं सहज नहिं भाव सयाना ॥
सत गुण उपवन लहलाई । त्रेता जुग महिमा अमित सुहाई ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में दया, दान व लोक कल्याण के कर्म दिखावे के लिए नहीं किए जाते हैं । बल्कि सहज में ही लोग दया, दान व लोक कल्याण करते हैं। त्रेतायुग की अपार महिमा होती है, जहाँ पर सतोंगुण रुपी उपवन लहराता रहता है ।

दया दान शुचिता फूल खिलाई । पर उपकार समीर चलाई ॥
फैलहिं सुगन्ध तहँ अनुरागा । झरहहिं मधु सहज बिरागा ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में सतगुण रूपी उपवन में दया, दान व पवित्रता रूपी फूल खिले रहते हैं तथा परोपकार रूपी हवा चलती रहती है। जिसमें अनुराग रूपी सुगन्ध चारों तरफ फैलने लगती है तथा सहज वैराग्य रूपी मधु फूलों से

निकलने लगता है ।

दो० - परम धर्म मानहि सब नहिं पालहिं तहँ पाखण्ड ।
प्रभु शरण सब सुखद हियँ राखहिं प्रीति अखण्ड ॥ ३९ ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में सब परमधर्म (अहिंसा) का पालन करते हैं तथा उपासना के नाम पर पाखण्ड नहीं करते हैं । सभी लोग परमपिता की शरण में सुख का अनुभव करते हुए प्रभु के प्रति अखण्ड प्रेम रखते हैं ।

पढ़हिं ग्रन्थ मरम पहिचानी । बूझत करहिं न जीव नादानी ॥
सकल बरतहिं सहज सुभावा । सोई धर्म परम अहिंसा कहावा ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में लोग ग्रन्थों का अध्ययन भी मर्म को जान कर ही करते हैं तथा ग्रन्थों को समझने में भूल नहीं करते हैं । सभी लोग अपने सहज स्वभाव में बरतते रहते हैं । उसी को परम धर्म अहिंसा कहा जाता है ।

जब जब कर्म हो वासना हीना । तबहिं जानहु अहिंसा प्रवीना ॥
वासना मुक्त त्रेता सब कर्मा । सोइ पालहिं सब सहज धर्मा ॥

व्याख्या - जब-जब कर्म वासनाओं से मुक्त होते हैं, तब वह अवस्था ही अहिंसा के पालन करने की होती है । त्रेतायुग में सब कर्म वासना मुक्त ही होते हैं, इसलिए सभी लोग त्रेतायुग में सहज धर्म का पालन करते हैं ।

मन प्रसन्न तन उल्लासा । मिले अपबर्ग सहज प्रयासा ॥
समरस रहहिं सब परिवारा । गुरु पितु मातु होइ पूजा अपारा ॥

व्याख्या - त्रेता युग की अवस्था में मन प्रसन्न रहता है तथा शरीर में उत्साह बना रहता है तथा सहज में ही जीव सुख-दुःख से मुक्ति (अपवर्ग) प्राप्त कर लेता है । समस्त परिवार में समरसता आ जाती है तथा गुरु, माता व पिता की पूजा होने लगती है ।

जाति पांति नहिं तहँ किछु पंथा । कर्म आधार सब जग संस्था ॥
नहिं कोउ दरिद्र अरु धनवंता । पावहहिं सन्मान साधु संता ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में जाति-पाति व पंथों का कोई भेदभाव नहीं होता है तथा समाज में कर्म ही सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है । त्रेतायुग में कोई गरीब व अमीर नहीं होते हैं तथा साधु-सन्तों का सम्मान किया जाता है ।

दो० - सत गुण रत जीव सदा तिन्ह हृदयँ बहु विशाल ।
निज पर मन भाव नहिं व्यापै नहिं तहँ माया जाल ॥ ४० ॥

व्याख्या - त्रेतायुग की अवस्था में जीव सदा सात्विक गुणों में बरतते रहते हैं तथा उनका हृदय भी विशाल होता है तथा वहाँ मन में मेरा-तेरा का भाव भी नहीं रहता

है । जिससे माया भी जीव को नहीं सताती है ।

संग्रह हेतु करहिं नहिं कर्मा । सहज सुभाव अनुसरहिं धर्मा ॥
पर दुख देखि दुखित समाजा । पीड़ा देतु पावहहिं बहु लाजा ॥

व्याख्या - त्रेतायुग (सतो गुण की अवस्था) में जीव संग्रह नहीं करते हैं तथा सहज स्वभाववश ही प्रकृति के धर्म का पालन करते हुए कर्म करते हैं । सतो गुण की अवस्था में जीव दूसरों के दुःखों को देख कर दुःखी हो जाते हैं तथा दूसरों को कष्ट देने में लज्जित होते हैं ।

सकल पालहिं निज मरजादा । बड़ छोट कहत होई अपराधा ॥
जन सुख हेतु कर्म सब राजा । स्वामी सेवक सम नहिं कछु लाजा ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में सब लोग अपनी-अपनी मर्यादाओं का पालन करते हैं तथा किसी को छोटा-बड़ा मानना ही त्रेता में अपराध होता है । राजा भी समस्त कर्म प्रजा के सुख के लिए ही करता है तथा स्वामी व सेवक को समान मानने में किसी को लज्जा नहीं आती है।

त्रेता नहिं कोई सतावहिं रोगा । होवहिं सहज जोग अरु भोगा ॥
तन अरु मन नहिं कछु पीरा । सकल मस्त आनन्द समीरा ॥

व्याख्या - सतोगुण की अवस्था में जीव को कोई रोग नहीं सताते हैं तथा सहज में ही योग और भोग में सामंजस्य बैठ जाता है । शरीर और मन में कोई कष्ट नहीं होता है तथा सभी जीव आनन्द मगन रहते हैं ।

नीति निपुण सकल जन वासी । परस्पर प्रीत जाई नहिं भाषी ॥
कोई गुनग्य कोउ पण्डित ज्ञानी । सेवक स्वामी सब निराभिमानी ॥

व्याख्या - समस्त लोग नीति में कुशल होते हैं तथा परस्पर निश्चल प्रेम करनेवाले होते हैं । जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । कोई पण्डित, कोई ज्ञानी व कोई गुणवान होते हैं तथा सेवक और स्वामी दोनों ही अभिमान रहित होते हैं ।

सुत सुता सकल आग्या कारी । जुग त्रेता सब उत्तम आचारी ॥
सपनेउ नहिं संग्रह विचारा । धन केवल होहिं दान आधारा ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में पुत्र-पुत्रियाँ सभी आज्ञाकारी होते हैं तथा सभी लोग त्रेता में उत्तम आचरण करने वाले होते हैं । सपने में भी लोग संग्रह करने का नहीं सोचते हैं तथा धन का महत्व केवल दान के लिए ही होता है ।

दो० - दया दान परहित प्रबल त्रेता सोइ सत गुण प्रधान ।
सहजहिं सब जीवन कटै नहिं हियँ मान अभिमान ॥ ४१ ॥

व्याख्या - त्रेतायुग की अवस्था में सात्विक गुणों की प्रधानता होती है तथा

दया, दान व परोपकार के भाव बहुत प्रबल होते हैं, जिससे सहज में जीवन कट जाता है तथा किसी के हृदय में मान-अभिमान नहीं आता है ।

सत प्रबल पाई हरि शरणा । सब सुख सुलभ जाई न बरणा ॥
करहिं उपदेस परहित हेतु । धन कमाइ भरहिं नहिं पेदु ॥

व्याख्या - सतगुणों की प्रबलता होने पर परमात्मा की शरण मिल जाती है, जिससे सब सुखों की प्राप्ति हो जाती है । जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । त्रेता में प्रवचन भी परहित के लिए ही करते हैं तथा प्रवचन आदि को पेट भरने का साधन नहीं बनाते हैं ।

परनिन्दा सुनहिं नहिं कोउ काना । जीव रत परहित दया दाना ॥
नहिं कोउ लम्पट चोर जुआरी । करहहिं कर्म रुचि अनुसारी ॥

व्याख्या - किसी की बुराई कानों में सुनाई नहीं पड़ती है । क्योंकि सभी जीव तो दया, दान व परहित के भावों में लगे रहते हैं । कोई लम्पट, चोर व जुआरी नहीं होता है तथा सभी लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप कर्म करने में लगे रहते हैं ।

मूरत पूजहिं नहिं त्रेता माई । नहिं हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई ॥
नहिं पंथ नहिं विधि उपासना । भाव समरप नहिं मन आसना ॥

व्याख्या - त्रेता की अवस्था में मूर्ति पूजा नहीं होती है तथा हिन्दू, मुसलमान व सिक्ख-ईसाई का भी भेद नहीं होता है । उस अवस्था में न कोई पंथ और न कोई उपासना विधि की जरूरत होती है । क्योंकि जीव तो परमात्मा के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होकर मन में कोई आशा ही नहीं रखता है ।

कर्म काण्ड करहिं नहिं पाखण्डा । सहज जीव सत वृति अखण्डा ॥
प्रेम सहज विगत राग द्वेषा । मन हुलस नहिं हियँ क्लेसा ॥

व्याख्या - त्रेता में कोई भी कर्म काण्ड करने का पाखण्ड नहीं करते हैं । क्योंकि जीव तो सहज होकर सात्विक वृत्तिवाला हो जाता है । उस समय सहज प्रेम की अवस्था आ जाती है । जिससे राग-द्वेष के भाव मिट जाते हैं और मन प्रसन्न हो जाता है तथा हृदय के क्लेश मिट जाते हैं ।

दो० - सहज प्रेम सहजहि बढ़ै जिमि उष्ण ज्वासा घास ।
सहजानन्द जीव मिलै व्यापहिं नहिं माया त्रास ॥ ४२ ॥

व्याख्या - त्रेता में सहज प्रेम सहजता से बढ़ने लगता है । जैसे गर्मी की ऋतु में ज्वासा का पेड़ बढ़ने लगता है । जिसके कारण जीव को सरलता से आनन्द की प्राप्ति होने लग जाती है और माया के क्लेशों से जीवमुक्त हो जाता है ।

जाति पांति नहिं धरम बढ़ाई । समरस रहहिं सब लोग लुगाई ॥
अहिंसा पालहिं सब नर-नारी । सपनेउ नहिं आव भाव विकारी ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में जाति-पाति व धर्म पद्धति का दम्भ नहीं होता है तथा सब लोग समता की अवस्था में होते हैं । सभी स्त्री-पुरुष विषय वासनाओं से मुक्त होते हैं तथा उनके मन में सपने में भी विकार नहीं आते हैं । विषय-वासना से मुक्त अवस्था ही अहिंसा के पालन की अवस्था होती है ।

चलहिं सहज राज सब काजा । बड़ छोट कहत पावहिं लाजा ॥
निज मानि करहिं काज अधिकारी । धन भुजबल नहिं होइ विकारी ॥

व्याख्या - राज के सब कार्य सहज में ही होने लगते हैं तथा किसी को छोटा-बड़ा कहने में ही लोगों को लज्जा आती है । राज अधिकारी राज कार्य को स्वयं का कार्य मान कर करने लगते हैं तथा धन व भुजबल से प्रभावित नहीं होते हैं ।

करहिं न्याय बिवेक बिचारी । देवहहिं दण्ड भाव अनुसारी ॥
लुप्त साम दाम दण्ड भेदा । सकल समाज भयउ अभेदा ॥

व्याख्या - राज अधिकारी विचार कर न्याय करते हैं तथा कर्म की भावना को देख कर ही दण्ड का निर्धारण करते हैं । त्रेता युग में साम, दाम, दण्ड व भेद की नीति का कोई पालन नहीं करता है । क्योंकि समस्त समाज तो एकता के सूत्र में बंधा होता है ।

कुल आधार सकल मरजादा । पालहिं सकल देइ नहिं बाधा ॥
सकल बड़ पावहिं सन्माना । निश्छल प्रेम सहज हरसाना ॥

व्याख्या - परिवार का आधार समाज की मर्यादाएँ होती हैं तथा सभी लोग मर्यादाओं का पालन करते हैं तथा दूसरों को बाधा नहीं देते हैं। सभी परिवार के बड़े-बुजुर्ग सम्मान प्राप्त करते हैं तथा परिवार में निश्छल प्रेम और सहज खुशी बनी रहती है ।

दो० - सहज कुटुम्ब जो रहे सहजहि समाज सुहाय ।
सहज ते सहज भये सो कुटुम्ब वसुधैव कहाय ॥ ४३ ॥

व्याख्या - जब परिवार सहज हो जाता है, तो समाज भी स्वतः ही सहज हो जाता है तथा सहजता से सभी सहज हो जाते हैं तथा उसी अवस्था को वसुधैव कुटुम्ब की भावना के रूप में जाना जाता है ।

संजुत रहहिं सब परिवारा । समता प्रेम सहयोग आधारा ॥
कर्म अनुरूप समाज सुहाई । राजा प्रजा उभय सुख पाई ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में (सतोगुणी अवस्था) संयुक्त परिवार होते हैं । जिनका समता,

प्रेम और आपसी सहयोग की भावना ही आधार होती है। कर्म के अनुरूप ही समाज का स्वरूप बनता है। अतः त्रेता में राजा और प्रजा दोनों ही सुखी रहते हैं।

करहिं कर्म सब रुचि अनुसारी। औसर समान सकल अधिकारी ॥
कर्म चयन सुतन्त्र जनवासी। रहत उमंग नहिं मन उदासी ॥

व्याख्या - सभी लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप कर्म करते हैं तथा सभी नागरिकों को कर्म के चुनाव की स्वतन्त्रता होती है तथा सभी को अवसर की समानता प्राप्त होती है। जिसके कारण नागरिकवृन्द उत्साहित रहते हैं तथा मन में कुण्ठा नहीं रहती है।

मद्यपान नहिं सहज सुभाउ। त्रेता जुग सो करहिं नहिं काउ ॥
करहिं मद्यपान होइ पछतावा। वात पित विकार देह अकुलावा ॥

व्याख्या - मद्यपान जीव का सहज स्वभाव नहीं होता है। इसलिए त्रेता युग में कोई भी मद्यपान नहीं करते हैं और अगर कोई भूल से मद्यपान कर लेता है, तो पश्चाताप करना पड़ता है। क्योंकि मद्यपान से वात और पित विकार हो जाते हैं। जिससे शरीर में कष्ट होने लग जाता है।

तन अरु मन होहहिं विकारी। हानि वित नहिं मद लाभकारी ॥
उचित करहिं नहिं मदपाना। प्रभु शरण रहि जीव मस्ताना ॥

व्याख्या - मद्यपान करने से तन और मन दोनों में विकार आ जाता है तथा धन की भी हानि होती है। इसलिए उचित यही है कि मद्यपान नहीं किया जाए। क्योंकि प्रभु की शरण में रहने पर जीव आनन्द में रहता है।

दो० - सत गुण ते प्रभु शरण मिलै ऐहि ते किछु संशय नाय।
प्रभु शरण सदा सुखद अति त्रेता सो सहजहिं मिल जाय ॥ ४४ ॥

व्याख्या - सात्विक भावों से परमात्मा की शरण मिल जाती है। इसमें कोई संशय नहीं है तथा परमपिता की शरण हमेशा सुख देनेवाली होती है, जो त्रेता की अवस्था में सहजता से ही मिल जाती है।

त्रेता मनरंजन हरि गुण गाना। स्तुति रत करहिं प्रभु ध्याना ॥
जुग त्रेता महिमा गुरु अपारा। पूजहिं शिष्य जानि करतारा ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में परमपिता का गुणगान करना ही मनोरंजन का साधन होता है और लोग परमात्मा की स्तुति और ध्यान में मगन रहते हैं। त्रेतायुग में गुरु की महिमा भी अपार होती है और शिष्य गुरु को भगवान मान कर पूजा करते हैं।

गुरु सहज दयाल अविकारी। धन हरण रखहिं न मन विचारी ॥
उभय मिलि जाहि प्रभु शरणा। सहज विराग आनन्द रमणा ॥

व्याख्या - गुरु भी सहज, दयाल और विकारों से मुक्त होते हैं तथा शिष्य के धन का हरण करने का विचार भी मन में नहीं रखते हैं। गुरु और शिष्य दोनों मिल कर परमात्मा की शरण में रहते हैं तथा सहज में ही वैराग्य और आनन्द की अवस्था रहती है।

गुरु कबहुँ करहिं न पाखण्डा। शिष्य हियँ चाइ भक्ति प्रचंडा॥
मिलि उभय हरि गुण गावहिं। नहिं संशय परमानन्द पावहिं॥

व्याख्या - गुरु कभी भी पाखण्ड नहीं करते हैं तथा हमेशा शिष्य के अन्दर प्रचण्ड भक्ति की कामना करते हैं। दोनों मिल कर परमात्मा के गुणों का बखान करते हैं। जिससे परम आनन्द को प्राप्त करते हैं। इसमें संशय नहीं है।

गुरु सिखावहिं गुरु मरमा। पालहिं सहज प्रकृति धरमा॥
वासना मुक्ति युक्ति बतावहिं। अकपट आनन्द राह दिखावहिं॥

व्याख्या - गुरु ही गुरु तत्व के रहस्य को बताते हैं तथा प्रकृति के सहज धर्म का पालन करते हैं। शिष्य को निष्कपट होकर वासनाओं से मुक्ति के उपाय बताते हैं तथा आनन्द का मार्ग दिखाते हैं।

दो० - गुरु सत शिष्य निर्मल भगवत कृपा ते होय।
उभय भव तरहिं पल्ला पकड़े नहिं कोय॥ ४५ ॥

व्याख्या - परमपिता की कृपा से गुरु सात्विक और शिष्य निर्मल होते हैं, जिससे दोनों भाव रूपी भवसागर को पार कर जाते हैं और उन्हें कोई बाधा नहीं आती है।

समरप भाव हियँ सिखावहिं। हरि गुण धाम बहु समझावहिं॥
परमारथ रत प्रभु शरणा। धन्य जीव जेहि अनुसरणा॥

व्याख्या - गुरु अपने शिष्य को बहुत प्रकार से परमात्मा के समक्ष समर्पण करना सिखाते हैं तथा परमात्मा के गुण, धाम आदि को बहुत प्रकार से समझाने की कोशिश करते हैं। जो लोग परमार्थ भाव में दृढ़ होकर परमपिता की शरण में होते हैं, वे बहुत धन्य होते हैं।

त्रेता जुग बहु नारी सन्माना। सहज प्रीत सदा तहँ सुजाना॥
वस्तु भोग नहीं मानहिं नारी। जुग त्रेता इहँ महिमा अपारी॥

व्याख्या - सतोंगुण की अवस्था में स्त्री का बहुत सम्मान होता है तथा लोग सहज में ही नारी से प्रीत करते हैं अर्थात निष्काम प्रेम करते हैं। नारी भोग की वस्तु नहीं मानी जाती है। इसलिए त्रेतायुग की महिमा अपार होती है।

सत पथ चलहिं सकल नारी। पर पुरुष न सपनेउ निहारी॥
करहिं पालन मरजादा सारी। धन्य धन्य जुग त्रेता नारी॥

व्याख्या - नारी भी सात्विक पथ पर चलनेवाली होती हैं तथा सपने में भी पराये पुरुष का चिन्तन नहीं करती हैं । नारी समस्त मर्यादाओं का पालन करती हैं । इसलिए त्रेता युग की नारी धन्य होती हैं ।

देवी गुण बसहिं हृदयँ माहि । सत जानइ पुरुष न सताहि ॥
पावन अति सम्बन्ध संभोगा । प्रकृति रत नहि कारण भोगा ॥

व्याख्या - नारी के हृदय में प्रकृति का निवास होता है । इस सत्य को जान कर पुरुष भी नारी को नहीं सताते हैं । संभोग के सम्बन्ध भी अति पवित्र होते हैं । क्योंकि संभोग प्रकृति के अनुरुप ही करते हैं तथा वहाँ भोग हेतु संभोग नहीं किया जाता है ।

दो० - नारी पूजहिं सहज जब तब तब समरस होई समाज ।
त्रेता इहँ सुलभ सब मिलि जुल करत सब काज ॥ ४६ ॥

व्याख्या - जब नारी को सहज (निस्वार्थ) सम्मान दिया जाता है, तब-तब समाज में समरसता आ जाती है । इसलिए त्रेता युग में समरसता आसान होती है और स्त्री-पुरुष सब मिल-जुल कर सदा सब कार्य करते रहते हैं ।

त्रेता जुग भल सब सुखदाई । तबहुँ यश इच्छा हियँ छुपाई ॥
यश चाह जीव दुःख उपजाइ । नहिं संशय इहँ त्रेता लघुताई ॥

व्याख्या - त्रेतायुग सब प्रकार के सुखों को देनेवाला होता है, परन्तु जीव के हृदय में यश की इच्छा छुपी रह जाती है और यश की इच्छा से जीव को दुःख हो जाता है, इसलिए त्रेतायुग भी पूरी तरह से मुक्तिदायक नहीं होता है, अतः यही त्रेतायुग की कमी है ।

सुख बहु त्रेता दुःख अति अल्पा । सत्य वचन इहँ नहिं गल्पा ॥
सतजुग उत्तम सब भाँति । नहिं दुःख आनन्द दिनु राति ॥

व्याख्या - त्रेतायुग में बहुत सुख की प्राप्ति होती है तथा दुःख बहुत ही कम व्यापता है । यह सत्य है, कोई कहानी नहीं है । परन्तु सतयुग सबसे उत्तम होता है, जहाँ पर दुःख का नामोनिशान नहीं होता है तथा दिन-रात आनन्द की अवस्था रहती है ।

ईश्वर अंश जीव अनुभूति । बरनिन जाई सत करतूति ॥
सोहम् सोहम् वृत्ति अखण्डा । भय गत हिय शक्ति प्रचण्डा ॥

व्याख्या - सतयुग की अवस्था में जीव को अपने अनुभव से समझ में आ जाता है कि मैं परमपिता का ही अंश हूँ । अतः उस सत की अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता है । उस समय जीव की सोहम् वृत्ति अखण्ड हो जाती है ।

जिससे समस्त भय का नाश हो जाता है और जीव के हृदय में परमपिता की प्रचण्ड शक्ति प्रकट हो जाती है।

कवि कोविद सकहिं नहिं गाई । मोहि सम अबुध कौन बसाई ॥
बाणी मौन नहिं वासना कोई । केहि विधि लेखन सम्भव होई ॥

व्याख्या - सतयुग की महिमा का बखान तो कवि और विद्वान भी नहीं कर सकते हैं । तब मेरे जैसे अज्ञानी की क्या बिसात है । सतयुग में तो वाणी भी मौन हो जाती है और कोई वासना मन में नहीं रहती है । तब बिना वाणी के वर्णन कैसे सम्भव हो सकता है ?

दो० - प्रभु प्रेरित सत भाव हियँ पायहउँ परम सहज सत ग्यान ।
सोइ सत इहाँ बरनहउँ सुनहु सत्य सकल जहान ॥ ४७ ॥

व्याख्या - मेरे हृदय में परमपिता की प्रेरणा से ही सत भाव आ रहे हैं। हालांकि मुझे सत का ज्ञान नहीं है । उसी सत का यहाँ मैं वर्णन कर रहा हूँ । हे जगत के लोगों ! मेरी सत्य बात को सुनो ।

शब्द बल सत जुग अपारा । वाणी अनुरूप प्रकृति आचारा ॥
जेहि बोलहि मानस होवइ सोई । सत जुग सम नहिं महिमा कोई ॥

व्याख्या - सतयुग में शब्द ब्रह्म की अपार शक्ति होती है । क्योंकि वाणी के अनुसार ही प्रकृति में घटनाएँ घटित होने लग जाती हैं । सतयुग में मन में बोलने से भी वाणी का प्रभाव हो जाता है । इसलिए सतयुग के समान दूसरे युगों की महिमा नहीं होती है ।

अनुसरहिं प्रकृति सदा मन भावा । सोइ मानस पाप पुण्य सुहावा॥
सरदी गरमी बर्षा उष्णताई । सतजुग काहु कबहुँ न सताई ॥

व्याख्या - प्रकृति सतयुग में मन की भावना का अनुसरण करती है। इसलिए मानसिक पाप-पुण्य भी होते हैं । सतयुगी साधक को सर्दी-गर्मी, वर्षा व उष्णता आदि नहीं सताते हैं ।

सम सब गृहस्थ साधु सन्ता । सब मस्त जानि प्रभु अनन्ता ॥
नहिं पंथ नहिं विधि उपासना । सहज सकल रहित आसना ॥

व्याख्या - सतयुग में परमपिता को अनन्त जान कर साधु, सन्त व गृहस्थ मस्त रहते हैं । वहाँ न कोई उपासना की विधि होती है और न ही कोई पंथ ही होता है । वहाँ तो सभी वासनाओं से मुक्त होकर सहज रहते हैं।

निज ब्रह्ममय सकल ब्रह्म जानी । नहिं ऊँच नीच सम सब प्रानी ॥
पशु पाखी सब बोलहिं निज भाषा । समझहिं मनुज सहज आभासा ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव स्वयं तो ब्रह्ममय होता ही है । बाकी सभी को ब्रह्ममय जान कर ऊँच-नीच की भावना से मुक्त होकर, वह सबको समान मानता है । पशु-पक्षी भी अपनी भाषा बोलते हैं । जिसको मनुष्य भी सहज अभ्यास से समझने लगते हैं ।

दो० - सत जुग सम जुग नहिं देखहउ मन ही मन विचार ।
सहज सुगम जीवन सरल कृपा बरषहिं करतार ॥ ४८ ॥

व्याख्या - सतयुग के समान दूसरा कोई युग नहीं होता है । मन में विचार करके देख लो । क्योंकि सतयुग में जीवन सहज, सुगम और सरल होता है तथा निरन्तर परमात्मा की कृपा बरसती रहती है ।

निज मन निज भूप सुहावहिं । सपनेउ पराधीन नहिं भावहिं ॥
देह गेह नहिं तहँ होवहिं मोहा । नहिं राग न लोभन क्षोभ न द्रोहा ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव अपने मन का राजा स्वयं ही होता है तथा सपने में भी पराधीनता का भाव नहीं आता है । शरीर और घर में जीव की आसक्ति नहीं होती है और न ही राग, लोभ, क्षोभ और द्वेष होता है ।

नारी पुरुष नहिं कामासक्ता । संभोग सहज प्रकृति अनुरक्ता ॥
मन वच कर्म सब ब्रह्मचारी । माया विमुक्त सब नर नारी ॥

व्याख्या - नारी-पुरुष काम भावना के आसक्त नहीं होते हैं और प्रकृति की ऋतु के अनुरूप ही संभोग करते हैं । मन, वचन और कर्म से सभी लोग ब्रह्मचारी (ब्रह्ममय) होते हैं तथा सब स्त्री-पुरुष माया से मुक्त होते हैं ।

नहिं मरजाद सहज सुभावा । मोह कुटुम्ब तहँ न सुहावा ॥
बोलहिं बचन सत्य सुहाई । सतजुग महिमा सब जन गाई ॥

व्याख्या - सतयुग में मर्यादाओं का बन्धन नहीं होता है । वहाँ तो सहज स्वभाव में जीव रहता है तथा परिवार का मोह भी नहीं होता है । वहाँ वाणी सत्य हो जाती है । इसलिए सभी ने सतयुग की अपार महिमा का वर्णन किया है ।

सरग नरग नहिं नाम निशाना । केवल तहँ अपबर्ग ठिकाना ॥
मान अपमान नहिं कछु भेदा । आनन्द उमंग रहित सब खेदा ॥

व्याख्या - सतयुग में स्वर्ग नरक की कोई कल्पना नहीं रहती है अर्थात सुख का कोई भाव नहीं रहता है । वहाँ तो सुख-दुख से परे अपवर्ग की अवस्था रहती है । वहाँ मान-अपमान का भी कोई भेद नहीं होता है तथा हृदय में दुःखमुक्त आनन्द व उमंग की अवस्था बनी रहती है ।

दो० - सत युग सत प्रधान भा नहिं तहँ मद मान अपमान ।
ग्यान अग्यान समान सब ब्रह्ममय सकल जहान ॥ ४९ ॥

व्याख्या - सतयुग सत प्रधान होता है, जहाँ पर मद, मान व अपमान की भावना नहीं रहती है तथा वहाँ ज्ञान-अज्ञान का भाव भी नहीं रहता है । जिससे समस्त संसार ब्रह्ममय दिखाई देने लगता है ।

अहार विहार रुचि अनुसारी । सकल जग संपदा अधिकारी ॥
निज पर नहिं भाव हिय माहिं । बिगत काम क्रोध मद सबाहिं ॥

व्याख्या - सतयुग की अवस्था में सभी जीव अपनी रुचि के अनुसार आहार-विहार करते हैं तथा सारा संसार ही समस्त सम्पदा का अधिकारी होता है । अर्थात स्वयं की कोई सम्पदा नहीं होती है । जीव के हृदय में मेरे-तेरे का भाव भी नहीं रहता है तथा काम, क्रोध, मद, लोभ आदि मिट जाते हैं ।

सरल सहज होय दिन चर्या । अनवरत रह भाव ब्रह्मचर्या ॥
तहँ नहि होइ भेद भलमन्दा । सहज सुभाव मन मुकुन्दा ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव की दिनचर्या सहज व सरल हो जाती है, जिससे वह निरंतर ब्रह्मभाव में स्थित हो जाता है । वहाँ कोई अच्छे-बुरे का भाव भी नहीं रहता है । जिससे जीव सहज हो जाता है और मन प्रसन्न रहता है ।

सपनेउ नहिं निज पर भावा । गत माया जीव बहु सुख पावा ॥
मन बचन कर्म साम्यता छाइ । सकल सम्पदा सकल सुहाई ॥

व्याख्या - वहाँ सपने में भी अपना-पराया नहीं होता है । जिससे माया समाप्त हो जाती है और माया के नहीं रहने से जीव बहुत सुखी रहता है । मन, वचन व कर्म से सतयुग में साम्यता आ जाती है । जिससे सभी लोग सभी सम्पदा को अपनी ही सम्पदा मानने लगते हैं ।

परम स्वाधीन जीव सुहाई । राजा प्रजा तहँ भेद मिटाई ॥
मन्दिर-मस्जिद नहिं संस्था । नहिं कोउ विधि नहिं कोइ पंथा ॥

व्याख्या - वहाँ जीव परम स्वाधीन अवस्था में रहता है तथा सतयुग में राजा-प्रजा का भी भेद मिट जाता है । वहाँ कोई मन्दिर-मस्जिद भी नहीं रहता हैं तथा कोई उपासना विधि और उपासना के पंथ भी नहीं होते हैं ।

दो०- सतजुग सहज सबहिं भिन्न न मानहिं भगवान ।
ब्रह्म भाव अवस्था भयी सब हियँ बसहिं ग्यान ॥ ५० ॥

व्याख्या - सतयुग में सभी की सहज अवस्था होती है । जिससे जीव भगवान को अपने से भिन्न नहीं मानता है । उस समय ब्रह्मभाव की अवस्था आ जाती

है । जिससे हृदय में अज्ञान नहीं बच पाता है और सबके हृदय में ज्ञान का निवास हो जाता है ।

नहिं गुरु शिष्य नहिं कोइ देवा । निज स्वामी निज करहिं सेवा ॥
नहिं ग्यान वान नहिं अग्याना । नहिं मद लोभ नहिं दया दाना ॥

व्याख्या - सतयुग में न कोई गुरु होता है और न कोई शिष्य होता है तथा जीव स्वयं ही स्वयं का मालिक और स्वयं ही स्वयं का सेवक होता है । कोई ज्ञानी और अज्ञानी भी नहीं होता है तथा मद, लोभ, दया, दान आदि का भ्रम नहीं रहता है ।

गुणातीत जीव नहिं कछु पीरा । प्रकृति लय होवहिं मन धीरा ॥
सोहूम सोहूम वृत्ति निरन्ता । तिन्ह हियँ बसहिं भगवन्ता ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव की गुणातीत अवस्था होती है तथा जीव प्रकृति लय व धीर मनवाला होता है । जीव की सतयुग में सोह्म वृत्ति अखण्ड हो जाती है, जिससे उसके हृदय में भगवान स्वयं निवास करने लग जाते हैं ।

वाणी निर्मल विगत राग द्वेषा । बोलहिं बचन सत्य हमेशा ॥
जप तप संयम नियम पारा । बनि द्रष्टा देखहिं जग सारा ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव की वाणी निर्मल हो जाती है, जिससे वह हमेशा सत्य ही बोलता है । जीव जप, तप, नियम व संयम के बन्धन से भी मुक्त होकर संसार को द्रष्टा बन कर देखता है ।

प्रकृति विधि तिन्ह नियम सुहाई । मन मत्त रहहिं सहज सदाई ॥
करहिं सहज जग व्यवहारा । खान-पान सब सरल आचारा ॥

व्याख्या - सतयुग में प्रकृति के नियम ही जीव के नियम होते हैं । इसलिए जीव मन में मस्त होकर सहज बना रहता है । संसार में भी जीव का व्यवहार सहज होता है तथा खान-पान भी प्रकृति के अनुरूप सरल होता है ।

दो० - सहज संतोष सुखद सदा निरइच्छा निराभिमान ।
निसि दिवस आनन्द रस जानि चराचर इक समान ॥ ५१ ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव सहज में ही संतोषी और सुख भाव में रहता हुआ निरइच्छा और अभिमानरहित रहता है तथा समस्त चराचर के जीवों को एक समान मान कर रात-दिन एक ही आनन्द अवस्था में रहता है ।

भूषण बसन नहिं किछु मोहा । सम सब पुर गिरि कानन खोहा ॥
आनन्द बह तिन्ह हियँ माहिं । धन्य धन्य जे जनु इहँ पाहिं ॥

व्याख्या - सतयुग में किसी भी प्रकार के आभूषण व वस्त्रों का कोई मोह नहीं होता है तथा जीव के लिए शहर, वन, पर्वत व गुफा एक जैसे ही लगते हैं ।

जीव के हृदय में तो हमेशा आनन्द बहता रहता है। अतः वे जीव धन्य हैं, जो सतयुग की अवस्था में प्रवेश करते हैं।

प्रकृति रत जद्यपि प्रकृति पारा। हियँ बसहहिं अहिंसा अपारा ॥
नारी-पुरुष सब प्रकृति गामी। सहज संभोग नहिं कोउ कामी ॥

व्याख्या - सतयुग में जीव प्रकृति के नियमों के अनुसार ही जीवनयापन करता है। हालांकि वह प्रकृति से परे ही होता है तथा उसके हृदय में अहिंसा का भाव बना रहता है। स्त्री हो या पुरुष सभी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं। इसलिए संभोग भी सहज भाव से करते हैं। उसके पीछे काम भावना नहीं होती है।

सतजुग नहिं कुटुम्ब दीवारा। मानहिं सकल जग इकसारा ॥
एक भाव सोई वसुदेव कुटुम्बा। सतयुग संभव नहिं अचम्भा ॥

व्याख्या - सतयुग की अवस्था में जीव परिवार की सीमा में नहीं बँधता है तथा समस्त संसार को एक जैसा ही मानता है तथा संसार को एक समान मानने का भाव ही वसुधैव कुटुम्ब की अवस्था होती है। यह सब सतयुग में सम्भव हो जाता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होती है।

जाति पांति नहिं तहँ नस्ल भेदा। सकल जगत दिखहिं अभेदा ॥
होवहिं न तहँ राज दरकारा। निज निज चलहिं निर विकारा ॥

व्याख्या - सतयुग में जाति-पाति व नस्ल आदि का भेदभाव नहीं होता है तथा समस्त संसार एक ही दिखाई पड़ता है। उस अवस्था में राजा की भी आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि सभी लोग स्वयं ही स्वयं को निर्विकार होकर संचालित करने लगते हैं।

दो० - सतजुग बन्धन नहिं तब काह साधना काम।
मोच्छ चाह शान्त भयी सोई परमारथ धाम ॥ ५२ ॥

व्याख्या - सतयुग में किसी प्रकार का बन्धन ही नहीं होता है। तो फिर साधना करने का क्या काम है ? वहाँ पर तो मोक्ष की भी इच्छा नहीं रहती है। उसी अवस्था को परमार्थ की अवस्था कहा जाता है।

अंशी अरु अंश भेद मिटाई। सोहम् वृत्ति जीव जाइ समाई ॥
माया रहित तब होहिं न भेदा। प्रभु मिलहिं रहहि नहिं खेदा ॥

व्याख्या - वहाँ पर अंश और अंशी का भेद मिट जाता है तथा जीव सोहम् वृत्ति में समा जाता है। माया के मिट जाने पर जीव और ईश्वर भिन्न नहीं रह पाते हैं और परमात्मा के मिल जाने पर समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है।

गत माया जीव परम सुहाए । आत्मा सोई परमात्मा कहाए ॥
भ्रम ग्रन्थि इहाँ जाई मिटाई । विगत भ्रम आनन्द दिवाई ॥

व्याख्या - जब माया चली जाती है, तो जीवात्मा शुद्ध होकर परम हो जाती है । उसी को आत्मा-परमात्मा कहा जाता है । उस अवस्था में भ्रम की सब ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं और भ्रम के मिट जाने से आनन्द पैदा हो जाता है।

सतजुग उत्तम जुग सुहाई । दुर्गम अति बिरला कोउ पाई ॥
जुग भल पर निवास कठीना । मिलहिं नहि सोई भगति हीना ॥

व्याख्या - सतयुग उत्तम युग होता है । परन्तु प्राप्त करना बहुत कठिन होता है। इसलिए कोई बिरला जीव ही इस अवस्था में पहुँच पाता है । सतयुग अच्छा युग होता है । परन्तु इस अवस्था में रहना बहुत कठिन होता है और बिना भक्ति के इसे प्राप्त भी नहीं किया जा सकता है ।

सरल सहज नहिं कुटिलाई । सोई अवस्था भगति कहाई ॥
नहिं वासना नहिं चाह मन माहि । तब तबहि संभव सहजताहि ॥

व्याख्या - जब जीव सरल और सहज होता है तथा कुटिलता मुक्त होता है। उसी अवस्था को भक्ति कहा जाता है और जीव सहज तभी रह सकता है, जब वह वासनाओं व इच्छाओं से मुक्त हो ।

दो०- **जब लगि वासना मन रहे तब लगि नहिं सहज सुभाव ।**
बिनु सहजता सतजुग नहिं बिनु सतजुग मुक्ति न पाव ॥ ५३ ॥

व्याख्या - जब तक मन में वासनाएँ रहती हैं, तब तक जीव का स्वभाव सहज नहीं हो पाता है और बिना सहजता के सतयुग की अवस्था में जाया नहीं जा सकता है और बिना सतयुग की अवस्था के मुक्ति नहीं मिल सकती है ।

असहज कोटि जतन कर कोई । पाखण्ड भल भगति न होई ॥
सतजुग रहित सकल पाखण्डा । आनन्द भाव रहत अखण्डा ॥

व्याख्या - असहज होकर अगर कोई करोड़ों प्रयास करे, तब भी भक्ति की अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता है । बल्कि वह सब पाखण्ड ही होता है। सतयुग की अवस्था तो समस्त पाखण्डों से मुक्त होती है तथा वहाँ एकरस आनन्द की अवस्था बनी रहती है।

तन मन सहज निरोगी काया । दाल न गलहहिं नटनी माया ॥
रहै अद्वेत जीव अष्ट यामा । भाव शान्त भयउ निष्कामा ॥

व्याख्या - सतयुग में तन और मन सहज हो जाते हैं । जिससे सहज में ही शरीर भी निरोग हो जाता है और वहाँ माया का प्रभाव भी नहीं पड़ता है । जीव

आठों पहर परमात्मा से एक रूप हो जाता है, जिससे समस्त भाव शान्त हो जाते हैं और जीव निष्काम हो जाता है।

सकल भरम नसावहिं जीवा । सोई कहावहिं अवस्था सीवा ॥
सतजुग पार नहिं कोई होई । धन्य धन्य जो पावई सोई ॥

व्याख्या - सतयुग की अवस्था में जीव के समस्त संशयों का नाश हो जाता है । अतः उसी अवस्था को परम शिव की अवस्था कहा जाता है । सतयुग से परे जीव की सीमा नहीं होती है, अतः वह जीव धन्य है, जो सतयुग की अवस्था में प्रवेश करता है ।

ऋषि मुनि सब हियँ अभिलाषा । केहि विधि पावहिं सत सुपासा ॥
सत विचार सोई होई उपकारी । नहिं कोउ महिमा सत अगारी ॥

व्याख्या - ऋषि-मुनि सभी के मन में यह इच्छा रहती है कि सतयुग की अवस्था को कैसे प्राप्त किया जाये ? सतयुग का विचार आना ही कल्याणकारी हो जाता है । अतः सतयुग के बराबर किसी की महिमा नहीं हो सकती है ।

दो० - सत पथ जे चलहि तिन्ह हिय बसै भगवान ।
जिन्ह हियँ भगवान रहे तहँ न बचहिं अज्ञान ॥ ५४ ॥

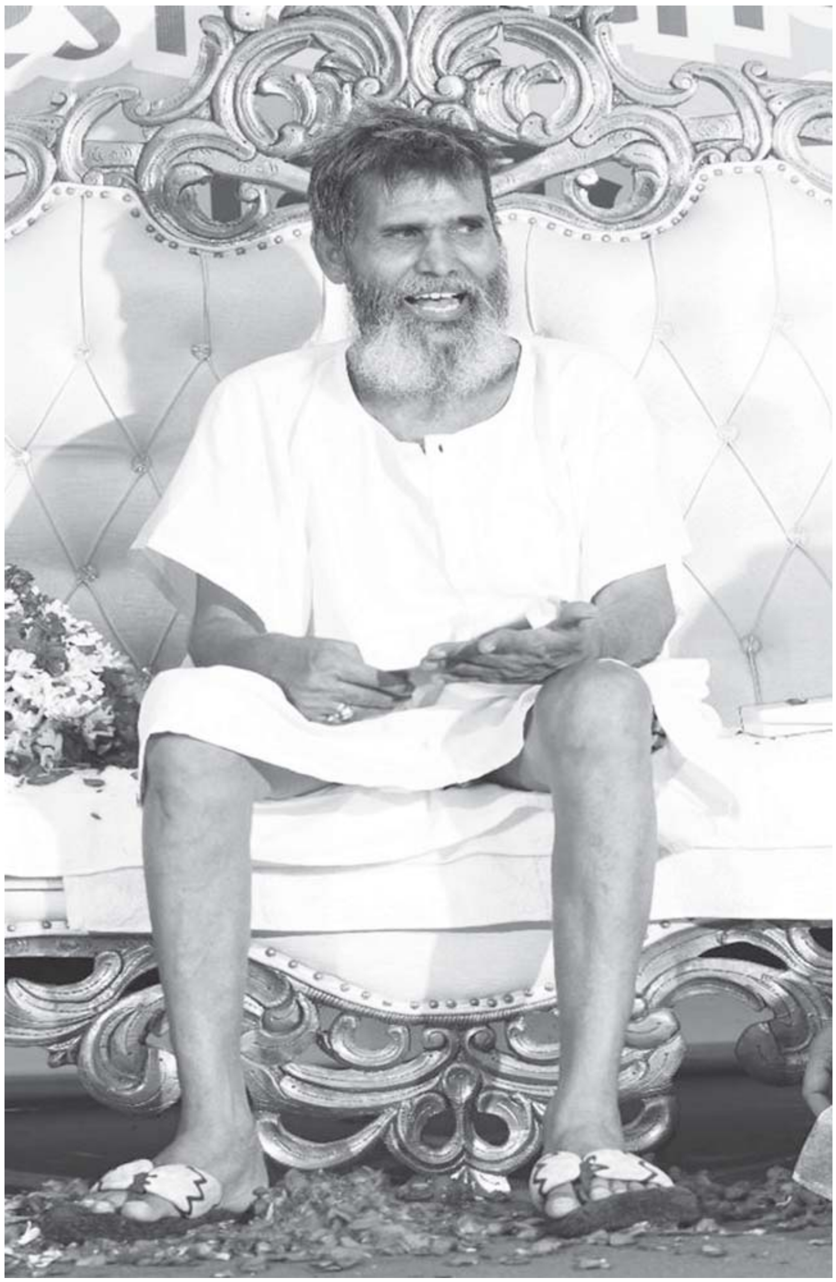
व्याख्या - जो सत्य (सहज) के रास्ते पर चलते हैं, उनके हृदय में भगवान निवास करते हैं और भगवान जिनके हृदय में निवास करते हैं, उनके हृदय में अज्ञान नहीं रह पाता है ।

छ० - कथा पावनि भ्रम नसावनि मतिअनुसार सब कही ।
लेखनी मोरी प्रेरणा तोरी लिखी अनुभूति सबही ॥
जे जनु पढ़हिं भव तरहिं सत्य वचन संशय नहीं ।
करहिं ध्याना होवहिं ग्याना भव बँध सकल नसहीं ॥

व्याख्या - यह कथा मैनें मेरी बुद्धि के अनुसार लिखी है । इसमें केवल लेखनी मेरी रही परन्तु प्रेरणा तो प्रभु आपकी ही रही है । जिससे समस्त अनुभूतियों को लिखा गया है । इसलिए जो लोग इस कथा को पढ़ेगें, वे भाव रूपी भवसागर को पार कर जायेगें, इसमें संशय नहीं है । जो परमपिता का ध्यान करेगें, उनके हृदय में ज्ञान हो जायेगा और भावों का बंधन मिट जायेगा।

॥ इति श्री मानवधर्मशास्त्रस्य सकल संशय नाशनार्थम प्रथम सोपान सम्पूर्णम ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण द्वितीय पड़ाव ॥



अवधूत देवीदास

ॐ गुरुदेवाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

द्वितीय स्कन्ध

ॐ शान्तम् सनातनम् शाश्वतम् सिद्धेश्वरम् संसारपारम् ।
हृदय देशेः वासितम् परमेश्वरम् अहम् त्वमेव शरणम् ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप शान्त, सनातन, शाश्वत, सिद्धियों के ईश्वर, संसार से परे, हृदय देश में निवास करनेवाले हैं । हे परमपिता! मैं आपकी शरण में हूँ।

ॐ वाणीपारम् अचिन्तयम् आनन्दघनम् एकरसम् भावाधारम् ।
निजस्वरूपमगनम् तिरोहितम् भक्तव त्सलम् जगतेश्वराय नमो नमः ॥ २॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप वाणी से परे, चिन्तन की सीमा से भी बाहर, आनन्द के घर, एकरस, समस्त भावों के आधार, स्वयं के स्वरूप में ही मगन रहनेवाले, छिपकर रहने वाले व भक्त वत्सल हैं। हे जगत के स्वामी ! आपको नमस्कार ! नमस्कार ।

दो० -तुम समान प्रभु तुम्हहीं अरु न जग दूजा कोय ।
सब तजि शरण तिहारी सद्बुद्धि दीजै मोय ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके समान तो आप ही हैं और संसार में आपके समान दूसरा कोई नहीं है । अब मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में पड़ा हूँ। मुझे सद्बुद्धि दीजिए ।

तोर कृपा जानऊँ जुग मरमा । अब कहु बुझाय मोहि धरमा ॥
पंथ मत सुनि सुनि बहु बाता । मन मोर निसि दिन अकुलाता ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपकी कृपा से मुझे चारों युगों का रहस्य समझ में आ गया है । अतः मुझे अब वास्तविक धर्म समझा कर कहिए । पंथ और मतों की बहुत-सी बातें सुन सुन कर मेरा मन रात-दिन व्याकुल हो रहा है ।

काह आचरण धरम आधारा । केहि विधि होवइ तोर दीदारा ॥
सकल सुलभ सब सुखदाई । सोई विधि मोहि देहउ बताई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! कौन सा आचरण धर्म का आधार होता है तथा कौन-सी विधि से आपके दर्शन होते हैं ? हे प्रभु ! मुझे ऐसी विधि बताइये जिसका सब लोग पालन कर सकें तथा सबको सुख देने वाली हो ।

सुन सुत कहऊँ बारम्बारा । देखहउ निज हृदय बिचारा ॥
मन अनुरूप धरम सुहाई । मन बाहिर जगत किछु नाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुमको बार-बार समझा कर कह रहा हूँ । तुम स्वयं के हृदय में विचार करके देखो । मन के अनुरूप ही धर्म का स्वरूप बनता है । मन के बाहर संसार में कुछ भी नहीं है ।

मन आधार सकल मत पंथा । मन ही हेतु जगत सब टंटा ॥
सो बुझहउ मन ध्यान लगाई । हियँ माझ सब देउ समुझाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मन ही समस्त पंथ व मतों का आधार होता है तथा मन के ही कारण संसार में समस्त फसाद होते हैं । इसलिए ध्यान लगा कर मन को समझो । मैं तुम्हारे हृदय में ही सब कुछ समझा दूंगा।

दो०- धान्य धान्य प्रभु धान्य धान्य जगत गुसांई ।
शरण आऊँ तोरी हृदय देश ध्यान लगाई ॥ २ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं, हे जगत के स्वामी आप धन्य हैं । हे प्रभु! मैं हृदय देश में ध्यान लगा कर आप की शरण में आ रहा हूँ ।

छ० - जय जग पालक जन सुखदायक सर्वव्यापक भगवंता ।
गुण गोतीता सहज प्रीता निरंजन अलख बिलख अनन्ता ॥
पालन देह धरनी जाई न बरनी मरम न जानई कोउ ।
दीन दयाला सहज कृपाला प्रसन्न अब मोहि पर होउ ॥

व्याख्या - हे जगत के पालन करनेवाले, सभी जीवों को सुख देनेवाले, सर्वत्र व्यापक भगवान आपकी जय हो ! हे प्रभु ! आप तो गुण और इन्द्रियों से परे हैं तथा जीवों से विशेष प्रीत रखनेवाले हैं, आप जानने में नहीं आने पर निरंजन हैं तथा जानने में आ जाने पर अनन्त हैं । आप ही जीवों के शरीरों का पालन करते हैं, जिसके रहस्य को कोई नहीं जानते हैं । इसलिए हे दीन दयाल, सहज कृपालु ! आप प्रसन्न होइए ।

छ० - अनुग्रह करउ मारग दिखाउ तुम बिनु अरु न दूजा कोई ।
भाव अनुसारा रूप तुम धारा सुन सब जग भ्रमित होई ॥
जानउँ मरमा पालउँ धरमा मन चाहूँ होई मुकुन्दा ।
अह निसि ध्यावऊँ शरण आवऊँ कृपा करहु सच्चिदानन्दा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! कृपा करके मुझे रास्ता दिखा दीजिए । क्योंकि आपके बिना मेरा दूसरा कोई नहीं है । आप तो भाव के अनुरूप रूप धारण कर लेते हो । इसलिए विभिन्न रूपों की बातें सुन सुन कर समस्त संसार भ्रमित हो रहा है । मैं आपकी शरण में आया हूँ । अतः मुझ पर कृपा कीजिए, जिससे मैं आपके मर्म को जान सकूँ

तथा वास्तविक धर्म का पालन कर सकूँ और रात-दिन आपको भज सकूँ।

छ० - **भव अति त्राता मन दुःख पाता तबहु तहँ जाइ रमहिं ।**
बुद्धि अनुरूपा पथ सरूपा सब जगत रहा उरझहिं ॥
अब काह उपाई तू ही सहाई करउ कृपा गुरुदेव की नाई ।
मन कर्म वाणी छाड़ि नादानी आवहउँ अब शरणाई ॥

व्याख्या - संसार के भावों का ताप मन को दुःख देनेवाला होता है। परन्तु मन फिर भी संसार में रमण करता है। बुद्धि के अनुरूप नाना पंथों का उद्भव हो गया है, जिसमें सारा संसार उलझ रहा है। अतः हे परमपिता ! अब आप ही गुरुदेव की तरह कृपा करके उपाय बताइये तथा आप ही सहायता कीजिए। मैं मन-वचन-कर्म से आपकी शरण में हूँ।

ध्यान मगन जब होवन लागा। हृदय माझ उमगइ अनुरागा ॥
नाना भाँति मैं अनुभव कीन्हा। निज हियँ प्रभु परहिं चीन्हा ॥

व्याख्या - जब परमपिता की शरण में जाकर, मैं ध्यान मगन होने लगा, तो मेरे हृदय में विशेष अनुराग पैदा हो गया तथा मैंने बहुत प्रकार की अनुभूति की तथा परमपिता का स्वरूप मेरे हृदय में ही पहचान में आने लगा।

प्राण डोर बंधहउँ प्रभु संगा। मन प्रसन्न हियँ बहु उमंगा ॥
मन ही मन उठइ प्रश्न नाना। पायउँ सकल सहज निधाना ॥

व्याख्या - जब मैं ध्यान में प्राण के माध्यम से परमात्मा से जुड़ गया, तब मन प्रसन्न हो उठा तथा हृदय में उमंग उठने लग गयी तथा मन ही मन में नाना प्रकार के प्रश्न उठने लगे तथा उनका मन में ही सहज समाधान मिलने लग गया।

हियँ माझ बुझहूँ अब धरमा। सहज छाड़ि नहिं कछु मरमा ॥
विगत वासना नहिं कुटिलाई। सहज सरल धरम सुहाई ॥

व्याख्या - अब मैंने मेरे हृदय में ही धर्म के रहस्य को समझ लिया कि सहजता के अलावा धर्म का कोई दूसरा रहस्य नहीं है। जब जीव के मन में विषय-वासना तथा कुटिलता नहीं होती है, तब वह अवस्था ही सहज व सरल होती है तथा वही धर्म होता है।

धरम आचरण कहुँ बखानी। मम हियँ माहि जो परा समानी ॥
नहिं कोउ दूसर धरम समाना। निगम पुराण नाना भांति बखाना ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ धर्म के आचरण को बताता हूँ, जो मुझे मेरे हृदय के अन्दर समझ में आया है। धर्म के समान संसार में दूसरा कोई नहीं है। इसी

को वेद-पुराणों में नाना प्रकार से बताया गया है।

दो० -बुद्धि मत नाना पंथ बनहि मनुज तहँ रहई उरझाय ।
हिन्दू मुस्लिम धारणा भयी धरम न कोउ समझाय ॥ ३ ॥

व्याख्या - बुद्धि की मत भिन्नता से नाना पंथों का उद्‌भव हो जाता है। जिससे मनुष्य पंथवादिता में फँस जाता है । पंथवादिता से ही हिन्दू-मुस्लिम की धारणा दृढ़ हो गयी है और यथार्थ धर्म को कोई नहीं समझता है ।

धरम एकहि बरनन नाना। मति भिन्नता सो हेतु सुजाना ॥
विगत वासना नहिं राग द्वेषा। अद्वेष तब काह जीव क्लेसा ॥

व्याख्या - वास्तव में तो धर्म एक ही होता है। परन्तु मति की भिन्नता के कारण एक ही अवस्था का नाना प्रकार से वर्णन किया जाता है । जब जीव विषय वासनाओं से मुक्त हो जाता है, तब उसके हृदय में राग-द्वेष नहीं टिक पाते हैं तथा बिना राग-द्वेष के जीव को क्लेश नहीं हो पाता है ।

सरल सहज अरु मन संतोषा। धरम पुरुष लच्छन विशेषा ॥
परनिंदा नहिं आवहहिं भावा। श्रेष्ठ बनिन नहिं मन चावा ॥

व्याख्या - सच्चे धार्मिक पुरुष की विशेषता यह होती है कि वह सहज, सरल और संतोषी होता है तथा दूसरे की निंदा करने का भाव उसके मन में ही नहीं आता है। क्योंकि उसके मन में श्रेष्ठ बनने की इच्छा ही नहीं होती है।

श्रेष्ठ दम्भ हेतु परनिंदा। नहिं समझै सो जीव महा अंधा ॥
भूत भविष्य करै नहिं चिंता। पुरुष सोइ धार्मिक अरु सन्ता ॥

व्याख्या - परनिंदा का कारण तो श्रेष्ठ बनने की चाह ही होती है। इसको जो जीव नहीं समझता है, वह मूर्ख होता है। जो जीव भूत काल और भविष्य काल की चिन्ता नहीं करता है, वही वास्तविक रूप में धार्मिक होता है तथा वही सन्त होता है ।

धरम रत मानहि नहिं भेदा। सम लगहि कुरान पुरान वेदा ॥
धीर वीर वर्तमान रमन्ता। प्रभु शरण सो जानि अनन्ता ॥

व्याख्या - वास्तविक धार्मिक पुरुष तो भेद करता ही नहीं है । उसके लिए कुरान, पुराण व वेद एक समान होते हैं। वह धीरजवान, वीर और वर्तमान में रमण करनेवाला होता है तथा परमात्मा को अनन्त जान कर, पूरी तरह उसकी शरण में होता है ।

दो०- धरम रत ब्रह्मवत सदा हियँ नहिं मान गुमान ।
सम लागहि प्राणी सब तब काह हिन्दू मुस्लमान ॥ ४ ॥

व्याख्या - धार्मिक वृत्तिवाला जीव ब्रह्मस्वरूप ही होता है तथा उसके हृदय में

कोई मान-गुमान का भाव भी नहीं होता है। धर्मरत जीव को तो समस्त प्राणी ही समान लगते हैं। तब वह हिन्दू-मुसलमान का कैसे भेद कर सकता है ?

बिनयशील गुण आत्म ग्यानी। ब्रह्मरत सुरता ईश समानी ॥
सहज रखहिं हिय क्षमा भावा। निज अपकर करहिं न दुरावा ॥

व्याख्या - धार्मिक जीव का विनय-भाव गुण होता है तथा वह आत्मज्ञानी होता है तथा सदा ब्रह्म भाव में सुरता लगा कर ईश्वरीय अनुभूति करता रहता है। उसके हृदय में सहज में ही क्षमा-भाव होता है तथा स्वयं का अपहित करनेवाले के प्रति भी वह दुराव नहीं रखता है।

सहज ईश शरणागति भावा। विगत वासना स्वाधीन सुहावा ॥
देह गेह सब गुमान भुलाई। परहित रत सहज सदाई ॥

व्याख्या - धर्मरत जीव सहज होता है तथा सदा परमपिता के प्रति शरणागत रहता है और समस्त वासनाओं से मुक्त तथा स्वाधीन होता है। वह शरीर और घर के अभिमान को भुला कर परहित (आत्मा का हित) में सहजता से लगा रहता है।

करहिं उपदेश समयानुसारी। दिखावहिं मारग मंगलकारी ॥
बुझावहि मरम बहु प्रकारा। जानत मिटहिं सकल विकारा ॥

व्याख्या - धर्मरत जीव समय के अनुकूल उपदेश करते हैं तथा जीवों को मंगलकारी राह दिखाते हैं। वे बहुत प्रकार से परमपिता के रहस्य को समझाते हैं। जिसको समझने से ही समस्त विकारों का नाश हो जाता है।

पाखण्ड रहित नहिं अभिलाषा। निमिष न छाड़हिं ईश सुपासा ॥
सोहम्‌ वृत्ति रखहिं अखण्डा। हियँ माझ बूझहिं सब ब्रह्मण्डा ॥

व्याख्या - धार्मिक जीव पाखण्डरहित तथा अभिलाषाओं से मुक्त होता है तथा क्षण भर के लिए भी परमात्मा से दूर नहीं होता है। उसके हृदय में सोहम्‌ वृत्ति अखण्ड रूप से रहती है तथा वह अपने हृदय में ही समस्त सृष्टि को समझ लेता है।

दो०- धरम करम पाखण्ड नहिं हिय नहिं लव लेस अज्ञान।
तिन्ह पालन प्रभु करै सोहि जीव ब्रह्म समान ॥ ५ ॥

व्याख्या - धार्मिक जीव धर्म-कर्म का पाखण्ड नहीं करता है तथा उसके हृदय में तनिक भी अज्ञान नहीं होता है। उस जीव का पालन स्वयं परमात्मा करते हैं तथा वही जीव ब्रह्म के समान होता है।

धरम रत लच्छन मैं बखानी। अब कहूँ धरम मूल कहानी ॥
धरम न दूसर सत्य समाना। अहिंसा भयउ ता ध्वजा निसाना ॥

व्याख्या - मैंने धर्मरत जीव के लक्षण बता दिये हैं। अब यहाँ मैं धर्म को बता

रहा हूँ । सत्य के समान और कोई दूसरा धर्म नहीं होता है तथा अहिंसा ही सत्य धर्म की ध्वजा-पताका होती है ।

सत्य ही धरम नहिं दूजा कोई । प्रकृति ऋतु सत्य हय सोई ।
नाना भांति सो ऋतु वेद बखानी । ऋषि मुनि निज अनुभव जानी ॥

व्याख्या - सत्य ही वास्तविक धर्म होता है और दूसरा कोई धर्म नहीं होता है तथा प्रकृति की ऋतु ही सत्य होती है । वेदों ने भी ऋतु का नाना प्रकार से वर्णन किया है तथा ऋषि मुनियों ने अपने अनुभव से उसी ऋतु को पहचाना है ।

सहज सोई ऋतु समझउ भाई । रहस्य परम सत्य बताई ॥
प्रकृति ऋतु महतत्व विशेषा । मोहादि विकार नहिं लव लेषा ॥

व्याख्या - प्रकृति की सहजता ही ऋतु होती है । यह परम गुप्त रहस्य है, मैं सत्य बता रहा हूँ । प्रकृति की ऋतु ही सृष्टि का महतत्व होती है । जहाँ पर मोह-विकार लेशमात्र भी नहीं होते हैं ।

महतत्व सोई प्रकृति नारी । ममतादि बसहि तहँ अपारी ॥
चेतनता सोहि नर कहावई । नर-नारी प्रभु चित्त सुहावई ॥

व्याख्या - जो सृष्टि का महतत्व होता है, वही परमपुरुष की प्रकृति नारी (नाड़ी) होती है । जहाँ ममता आदि मातृत्व के अपार गुण होते हैं । ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना ही परमपुरुष का नर कहलाता है तथा नर-नारी (नाड़ी) दोनों मिल कर ही परमपिता के चित्त कहलाते हैं।

दो०- नर-नारी प्रभु चित्त भया नर नारी ते सकल जहान ।
परम पिता के हम सब हिन्दु मुस्लिम एक समान ॥ ६ ॥

व्याख्या - नर (चेतन) नारी (प्रकृति) ही परमपिता के चित्त होते हैं तथा नर-नाड़ी से ही समस्त जगत की उत्पत्ति हुई है । इसलिए हम सब एक ही परमपिता की सन्तान हैं । अतः हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं है ।

सकल ब्रह्माण्ड प्रभु शरीरा । करहिं न संशय मतिधीरा ॥
ऋतु सोई प्रभु चेतना सुहाई । चेतन ते चलई सृष्टि सबाई ॥

व्याख्या - समस्त ब्रह्माण्ड ही परमपिता का शरीर होता है । इसमें बुद्धिमान लोग संशय नहीं करते हैं । प्रकृति की ऋतु ही परमपिता की चेतना है, जिससे समस्त सृष्टि का संचालन हो रहा है ।

रोम राज सोई वनस्पति सारा । सूरज चन्द नयन विस्तारा ॥
प्रभु श्वास सोई दस प्रकारा । दस दिशा जाहि निगम पुकारा ॥

व्याख्या - परमपिता के शरीर के जो रोम हैं, वह चराचर वनस्पति ही है । सूरज

व चन्द्र ही परमपिता के नयन हैं । परमपिता की प्राण वायु दस प्रकार की होती है । उसी को वेदों में दस दिशाओं के रूप में बताया गया है ।

अस्थि शैल सरिता नसजारा । प्रभु उदर भयउ जलधि सारा ॥
नासिका रन्ध्र अश्विनि कुमारा । निगम जाहि सुर वैद्य पुकारा ॥

व्याख्या - पर्वत ही परमपिता की हड्डियाँ हैं तथा समस्त नदियाँ ही नसों का जाल है तथा समुद्र ही परमपिता के उदर का विस्तार है । नाक ही अश्विनीकुमार हैं । जिनकों वेदों ने देववैद्य पुकारा है ।

घर धरती जानि एक समाना । संशय करहिं न मन सुजाना ॥
पिण्ड भीतर सोई ब्रह्माण्डा । जानई जेहि सो ग्यानी प्रचण्डा ॥

व्याख्या - जीव का शरीर और पृथ्वी दोनों एक समान होते हैं । इसमें विद्वान संदेह नहीं करते हैं । जो जीव के शरीर में होता है, वही ब्रह्माण्ड में होता है । अतः जो इस रहस्य को जान लेता है, वही सच्चा ज्ञानी होता है ।

दो०- जो जानहिं मरम पिण्ड का सोई धर्म समझ पाय ।
धरम जो समझ सकै वोहि जीव मुक्त कहाय ॥ ७ ॥

व्याख्या - जो जीव देह के रहस्य को समझ लेता है, वो ही धर्म के रहस्य को समझ पाता है और जो धर्म को समझ सकता है, वो ही जीव मोक्ष प्राप्त करने वाला कहलाता है ।

केहि विधि सुन्दर देह बनाई । नश्वर तद्यपि मोह नहिं जाई ॥
बीज इक तबहुँ भिन्न सरूपा । कोउ छोट बड़ कोउ रूप कुरूपा ॥

व्याख्या - हे परम पिता ! इस सुन्दर शरीर का निर्माण कैसे होता है क्योंकि शरीर नश्वर होते हुए भी इससे मोह नहीं छूटता है । एक ही ब्रह्म बीज से पैदा होते हुए भी कोई शरीर छोटा होता है, तो कोई बड़ा शरीर होता है, कोई रूपवान होता है और कोई कुरूप होता है ।

कवन हेतु कोह धरहिं शरीरा । सब समझाई कहउ रघुबीरा ॥
धारण हरण नित्य सुहाई । कारण क्वन इहँ देह बनाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! इस शरीर को कौन धारण करता है और किसलिए धारण करता है ? ये सब मुझे समझा कर कहिये । इस शरीर का नित्य जन्म और मरण होता है, फिर किसलिए इस शरीर को बनाया गया है ?

सुत जीव गेह सो देह सुहाई । पंच भूत मिलइ इहँ बनाई ॥
गगन अनल जल अरु समीरा । धरणी धरहिं अद्‌भुत शरीरा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जीव का घर ही शरीर के रूप में जाना जाता है, जो पाँच

महाभूतों के मिलने से बनता है । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से ही इस अद्‌भुत शरीर की रचना होती है ।

गगन शून्य अनल तेज सुहाई । जल रस समीर प्राण समाई ॥
धरणी धारण करहिं सबाई । एहि भांति जीव गेह उपजाई ॥

व्याख्या - आकाश शून्य रूप होता है तथा अग्नि का मतलब तेज है और जल रस होता है तथा प्राण के रूप में वायु तत्व होता है । पृथ्वी तत्व ही इन सबको धारण करता है । इस प्रकार जीव का घर पैदा हो जाता है ।

दो०- गृह ते गृही लगाव बहु कबहुँन चाई बिलगाय ।
बन्धन परहिं मोह का सोई हेतु जीव उरुझाय ॥ ८ ॥

व्याख्या - शरीर रूपी घर से जीव रूपी स्वामी का बहुत लगाव हो जाता है, इसलिए जीव रूपी स्वामी कभी भी शरीर से अलग नहीं होना चाहता है । घर और स्वामी के आपसी लगाव से ही मोह का बन्धन पड़ जाता है, जिसमें जीव उलझता ही चला जाता है ।

दस इन्द्रि दस रथ सुहाए । निश्चित अवधि अवध कहाए ॥
सहज सुभाव सोई सुख मूला । त्रिगुण ब्यारि चलहिं अनुकूला ॥

व्याख्या - इस शरीर की दस इन्द्रियाँ ही दशरथ होती हैं तथा शरीर की निश्चित अवधि होने के कारण ही इसे अवध के नाम से जाना जाता है । सत, रज, तम गुण जब अनुकूल होते हैं, तभी सहज स्वभाव बना रहता है, जो सुख का मूल होता है।

रिद्धि सिद्धि बसहहिं देह माहीं । काह कहहउँ बरनिन जाहीं ॥
त्रिवेणी संगम निर्मल नीरा । सोई आज्ञा चक्र सुनु मतिधीरा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! इस अवधि रूपी शरीर में समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ निवास करती हैं । क्या कहूँ ? उनका वर्णन करना बहुत कठिन है । भृकुटि स्थित आज्ञा चक्र ही इड़ा, पिंगला व सुष्मना (गंगा, यमुना व सरस्वती) का संगम है, जहाँ पर निर्मल गुण रूपी जल रहता है ।

दृढ़ परकोट नव दरवाजा । मंत्री अहंकार मन तहँ राजा ॥
भाव दास दासी अरु बुद्धि रानी । मन युवराज देह रजधानी ॥

व्याख्या - इस शरीर रूपी नगर में परकोटा बना हुआ है तथा नौ शरीर रूपी नगर के दरवाजे हैं, जहाँ पर मन राजा होता है और अहंकार राजा का मन्त्री होता है । भाव ही राजा के सेवक होते हैं तथा बुद्धि ही जीव रूपी राजा की रानी होती है तथा मन ही जीव रूपी राजा का युवराज होता है तथा शरीर ही जीव की राजधानी होता है।

चौदह भुवन प्राण पति होई । देह मरम नहिं जानई कोई ॥
स्वर्ग नरक नहिं देह पारा । उभय मिलहिं भाव अनुसारा ॥
व्याख्या - इस शरीर के रहस्य को कोई नहीं जानता है कि इसी में चौदह भुवन है, जिनका प्राण ही स्वामी होता है । स्वर्ग-नरक भी इस शरीर से बाहर नहीं होते हैं तथा दोनों का निर्धारण भाव के अनुसार ही होता है ।

दो० - **सकल भूमण्डल देह बसै जानइ सोहि ग्यानी कहाय ।**
बिनु जाने राह न मिलै मूरख जन जग भरमाय ॥ ९ ॥

व्याख्या - समस्त भूमण्डल ही इस शरीर में सूक्ष्म रूप से बसा हुआ है, अतः जो इस रहस्य को जान लेता है, वही ज्ञानी होता है । बिना जाने रास्ता नहीं मिल पाता है, इसलिए मूर्ख लोग संसार में भटकते रहते हैं ।

सुनहुँ देह भुवन विस्तारा । बिनु जानइ नहिं शंका निस्तारा ॥
ब्रह्मरन्द सोई कहहिं ब्रह्म लोका । जानहिं तबहिं गत सब शोका ॥
व्याख्या - हे वत्स ! शरीर में स्थित भुवनों को विस्तार पूर्वक बताता हूँ, क्योंकि बिना जाने शंका का समाधान नहीं होता है । ब्रह्मरन्ध्र ही ब्रह्मलोक होता है, जिसको जान लेने पर समस्त दुःखों का नाश हो जाता है ।

अमरावती नगरी चित्त प्रदेशा । चित्त इन्द्र करहिं राज हमेशा ॥
इन्द्रिय सकल परी कहावहिं । भाव भोग सोई देव सुवावहिं ॥
व्याख्या - चित्त ही अमरावती नगरी है तथा जिस नगरी का राजा चित्त रूपी इन्द्र ही होता है तथा समस्त इन्द्रियाँ ही इन्द्र की परी होती हैं और भोग भोगने के भाव ही देवता होते हैं ।

भाव अमर मरहिं नहिं मारे । देह हीन देव सकल पुकारे ॥
प्रति इन्द्रिय कोटि तीन भावा । दस मिलहिं कोटि तैंतीस गिनावा ॥
व्याख्या - भावों का कभी नाश नहीं होता है, इसलिए सभी देवों को अमर कहा जाता है । भावों के स्थूल शरीर का भी साधारण बुद्धि से आभास नहीं होता है, इसलिए समस्त देवता शरीर हीन ही माने जाते हैं । प्रत्येक इन्द्रि के भोगों के भावों की संख्या तीन करोड़ होती है, इसलिए दस इन्द्रियों के समस्त भाव मिलकर तैंतीस करोड़ कहलाते हैं ।

नासिका द्वार भाव गमनागमन । प्राण संग करहिं देह रमन ॥
अनुकूल भोग सुरपुर बासा । खलल भोग सोई असुर त्रासा ॥
व्याख्या - नासिका के द्वारा भावों का शरीर में आना जाना होता है तथा प्राण के साथ समस्त भाव शरीर में रमन करते हैं । जब तक जीव को मन-अनुकूल

भोग मिलते रहते हैं, तब तक उसका देवलोक में ही निवास करना माना जाता है और जब अनुकूल भोग नहीं मिल पाते हैं, तो उसी को देवलोक पर असुरों का आक्रमण माना जाता है।

चित्त ही इन्द्र चित्त ही दसरथ। ताते उपजइ सकल मनोरथ ॥
मनोरथ हेतु घटहिं सब काजा। सुरपुर पति चित्त देव राजा ॥

व्याख्या - चित्त ही इन्द्र और चित्त ही दसरथ कहलाता है और चित्त से समस्त मनोकामनाएँ पैदा होती हैं तथा मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए ही कर्म की प्रक्रिया होती है। इस प्रकार चित्त ही देवलोक का राजा इन्द्र होता है।

दो॰ - हृदयँ गूहा चित्त जीव का तहँ सकल जगत समाय।
भाव उपजत चित्त प्राण तें तातें पुनि मनोरथ उपजाय ॥ १० ॥

व्याख्या - हृदय रूपी गूफा ही जीव का चित्त होता है, जिसमें सूक्ष्म रूप से समस्त संसार समाहित रहता है। चित्त में प्राण से भाव पैदा होते हैं और भावों से इच्छाएँ पैदा होती हैं।

भाव आधार सदा प्राण सुहाहिं। ताते पुनि होत कर्म सबाहिं ॥
कर्म अनुसार सुख दुःख पाई। उभय घटित इहँ देह सदाई ॥

व्याख्या - प्राण से भावों की उत्पत्ति होती है और भावों के द्वारा कर्म की क्रिया घटित होती है तथा कर्म के अनुसार जीव को सुख-दुःख मिलता है तथा सुख-दुःख की घटना इस शरीर में घटित होती रहती है।

सुख सर्ग राह करम पुनिता। दुःख नरक हेतु सदा अनिता ॥
करहिं करम पाव फल सोई। क्रिया तें विधि विधि ते क्रिया होई ॥

व्याख्या - सुख मिलना ही स्वर्ग की अवस्था होती है, जिसका रास्ता पुण्य कर्म ही होते हैं तथा दुःखों का नाम ही नरक होता है, जिसका कारण अनीति होती है। जो जैसा कर्म करता है, उसको प्रतिक्रिया स्वरूप वैसा ही फल मिल जाता है, क्योंकि क्रिया से ही कर्म की विधि बनती है और विधि से ही क्रिया बनती है।

कार्य करण कर्म विधि विधाना। भाव हेतु करण भाव ही निघाना ॥
करम गहन भाव अनुरूपा। सोई मम विधि विधान अनूपा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! प्रकृति का कार्य-कारण सिद्धान्त ही विधि का नियम होता है। भाव से ही कारण पैदा होता है तथा भाव (विचार) से ही कारण का समाधान होता है। इसलिए भाव के अनुसार कर्म की गति अति गम्भीर होती है। भाव के अनुसार कारण पैदा होना और कारण के अनुरूप कर्म होना, यही मेरा विधि (क्रिया) का अनुपम नियम होता है।

काह भल मन्द जानिन कोई । बिनु जानइ सुत मुक्ति न होई ।
स्वारथ हेतु कर्म भल मंदा । निज दोष न देखइ जग अंधा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! संसार में कौन सा कर्म अच्छा है और कौन सा बुरा है, कोई नहीं जानते हैं और बिना कर्म की गति को जाने संसार में मुक्ति नहीं हो पाती है । स्वयं के स्वार्थ के आधार पर ही लोग कर्म को अच्छा-बुरा मानते हैं, इसलिए यह संसार अन्धा है, क्योंकि स्वयं के दोषों को कोई जानने का प्रयास ही नहीं करता है ।

दो० - भाव रजु सब जग बंधा वासना क्षुधा रहइ सताय ।
निज बंधन हेतु निज बना बिरथा मोहि दोष लगाय ॥ ११ ॥

व्याख्या - भाव (विचार) रूपी रस्सी में सारा संसार बँधा हुआ है और वासना की भूख संसार को सता रही है । स्वयं के बन्धन का कारण जीव स्वयं ही होता है, परन्तु मुझ परमेश्वर को व्यर्थ में ही दोष लगाया जाता है ।

मम भजन शुधु एक उपाई । नाहित भव बंध कटै न कटाई ॥
कटहिं बंधन सुख पाई जीवा । तबहिं सत् चित्त आनन्द सीवा ॥

व्याख्या - मेरा भजन ही भाव रूपी बन्धन को काटने का एक मात्र उपाय है, वरना किसी भी प्रकार से भावों का बन्धन काटने में नहीं आता है । जब भावों का बंधन कट जाता है, उस समय ही जीव को सच्चा सुख मिलने लगता है तथा तब ही जीव की अवस्था परम शान्त, सत्चित आनन्द स्वरूप की होती है ।

देह जानहुँ भव गृह समाना । तहँ मन बुद्धि चित्त अहम् स्थाना ॥
भाव ते मन अरु मन ते भावा । भाव तेहि जीव सुख दुःख पावा ॥

व्याख्या - शरीर को भावों का घर समझना चाहिये, जहाँ पर मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार अपना स्थान बनाकर रहते हैं । भावों से मन पैदा होता हैं और मन से भाव पैदा होते हैं तथा भावों से ही जीव को सुख-दुःख का आभास होता है।

कृत कृत्य भयउँ मैं कृपा निधाना । तुम्हार कृपा जानहुँ विधाना ॥
अबहुँ जिज्ञासा मम मन माहिं । भाव बस काह उत्तम उपाहिं ॥

व्याख्या - हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से अब मैं कृत कृत्य हो गया हूँ अर्थात कर्म बन्धन से मुक्त हो गया हूँ, परन्तु अभी भी मेरे मन में प्रबल जिज्ञासा हो रही है कि भावों को वश में करने का उत्तम उपाय क्या है ?

सुनु सुत कहुँ मरम गंभीरा । सकल भाव करहिं चित्त बसीरा ॥
मन अरु बुद्धि भाव उपजाई । उभय मिलि भव सिन्धु बनाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुमको बहुत ही गम्भीर रहस्य बताता हूँ, सुनो :- समस्त भाव चित्त में ही निवास करते हैं और मन व बुद्धि भी भाव से ही पैदा होते हैं

तथा मन व बुद्धि मिलकर ही भाव रूपी भव सागर बनाते हैं ।

धरकन चित्त निकसहिं ऊर्जा । सोई प्राण चलहिं देह पुरजा ॥
प्राण तेहि उपजइ भाव जीवाणु । सूक्ष्म अति देह जिमि परमाणु ॥

व्याख्या - चित्त की धड़कन से उर्जा निकलती है तथा उसी ऊर्जा को प्राण के नाम से जाना जाता है, जिससे शरीर के समस्त अंग चलायमान होते हैं। प्राण से भावों के जीवाणु पैदा होते हैं तथा भाव के जीवाणुओं का शरीर परमाणु की तरह सूक्ष्म होता है ।

दो० - **भाव जीवाणु सूक्ष्म सदा तद्यपि प्रजनन शक्ति अगाध ।**
एकहिं ते सहस्र उपजहिं ताते पल में खुशी पल में विषाद ॥ १२ ॥

व्याख्या - भाव के जीवाणु हमेशा सूक्ष्म ही होते हैं, परन्तु उनकी प्रजनन क्षमता बहुत विशाल होती है, इसलिए एक ही भाव के जीवाणु से पल भर में हजारों भाव के जीवाणु पैदा हो जाते हैं, जो क्षण भर में खुश कर सकते हैं और क्षण में दुःखी कर सकते हैं ।

दो०- **भाव गति गहन अति अरु भाव ही मन कहाय ।**
ताते मन समझत कठिन समझहिं सो भव तर जाय ॥ १३ ॥

व्याख्या - भाव ही मन होता है और भाव की गति बहुत गहन होती है, इसलिए मन को समझना बहुत कठिन होता है, परन्तु जो मन को समझ लेता है, वह भाव रूपी भवसागर को पार कर जाता है ।

मन ही मनु प्रथम सृष्टि भूपा । सत वृति सोई रानि शतरूपा ॥
शत वृत्ति भाव सौभाव कहाई । निज स्वभाव जीव बरताई ॥

व्याख्या - मन ही को सृष्टि का प्रथम रचयिता महाराज मनु के नाम से जाना जाता है तथा मन की सौ वृत्तियाँ ही रानी शतरूपा के नाम से जानी जाती हैं । भावों की सौ वृत्तियाँ ही सौ भाव (स्वभाव) कहलाती हैं और जीव हमेशा इन सौ वृत्तियों में ही बरतता रहता है।

मन अनुरूप दिखहिं जग सारा । सकल जगत मन विस्तारा ॥
पल पल मन जाई बदलाई । सो ब्रह्म सत्य जग मिथ्या कहाई ॥

व्याख्या - मन के अनुसार ही समस्त संसार दिखाई देता है, इसलिए सारा संसार मन का विस्तार मात्र होता है तथा मन के भाव क्षण-क्षण में बदलते रहते हैं, इसलिए ब्रह्म सत्य और जगत को मिथ्या कहा जाता है ।

जग पावन जो मन पावन । मीत अमीत सब मन भावन ।
मन जितहहिं बस जग सारा । ऋषि मुनि जन सब संत पुकारा ॥

व्याख्या - अगर मन पवित्र होता है, तो सारा संसार ही पवित्र दिखाई देता है तथा मित्र व शत्रु आदि तो मन की भावना के ही परिणाम होते हैं। ऋषि, मुनियों व सभी सन्तों ने यही कहा है कि मन को जीत लेना ही जगत को जीत लेना है।

तन दसरथ ध्वज अहंकारा। मन अश्व बुद्धि भइ असवारा ॥
श्वास रजु दृष्टि हर्यक पंथा। वासना मंजिल नहिं कहीं अंता ॥

व्याख्या - हे वत्स ! यह शरीर ही दस इन्द्रियों रूपी दस रथ हैं तथा अहंकार ही इस रथ की पताका है और मन रूपी घोड़ा रथ में लगा हुआ है, जिसको बुद्धि रूपी सवार चलाता है। मन रूपी घोड़ा श्वास रूपी लगाम से बंधा हुआ है और दृष्टि ही मन रूपी घोड़े की मार्ग होती है तथा मन रूपी घोड़े की भोग वासना रूपी मंजिल होती है, जिसका कभी अन्त नहीं होता है।

दो० - शब्द चाबुक मन अश्व का व्याधि सकल जगत व्यवहार।
दल दल मोह फँसहि तब होवहिं मन वाजि लाचार ॥ १४ ॥

व्याख्या - मन रूपी घोड़े का वाणी ही चाबुक होती है तथा समस्त सांसारिक व्यवहार ही मन रूपी घोड़े का रोग होता है तथा मन रूपी घोड़े का रथ जब मोह के दल दल में फँस जाता है, तब मन रूपी घोड़ा लाचार हो जाता है।

तन रथ फंसहि बढ़ै न बाढ़े। बुद्धि विकल अश्व मन ठाढ़े ॥
मन संताप दुखित तन सारा। मन विवश केहि विधि जाउँ पारा ॥

व्याख्या - शरीर रूपी रथ मोह रूपी दल-दल में फंसने से आगे नहीं बढ़ पाता है, जिससे बुद्धि रूपी सवार व्याकुल हो जाता है और मन रूपी घोड़े खड़े रह जाते हैं। जिससे मन में संताप हो जाता है और मन के संताप से सारे शरीर को कष्ट होने लगता है तथा उसी से मन विवश हो जाता है कि इस मोह के दल-दल से कैसे पार होउँ।

विवशवत् मन मोहि पुकारे। तब मम कृपा रथ आन उबारे ॥
जीव हियँ तबहि मैं प्रकटाउँ। मन तन सब संताप मिटाउँ ॥

व्याख्या - मन जब पूरी तरह विवश हो जाता है, तभी जाकर जीव मुझ परमात्मा को पुकारता है और तब मेरी कृपा ही मोह रूपी दल-दल से देह रूपी रथ को बाहर निकालती है। उसी समय मैं जीव के हृदय में प्रकट होकर मन और तन के सब कष्टों का निवारण करता हूँ।

प्रेरहउँ जीव तब विधि नाना। नासहि मूढ़ मति होहिं सुजाना ॥
शरणागत प्रिय प्राण समाना। सत्य शपथ वचन प्रमाना ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तब मैं जीव के हृदय में नाना प्रकार से प्रेरणा करने लगता हूँ, जिससे जीव की मूढ़ मति का नाश हो जाता है और वह सुजान बन जाता

है । हे वत्स ! शरण में आया हुआ जीव मुझे प्राणों के समान प्रिय होता है । मेरे वचन ही इसका प्रमाण हैं, यह सत्य शपथ है ।

जे मोर भरोस मन नहिं आसा । तिनि हियँ करउँ सदा मैं वासा ॥
मोर तोर कबहुँ करहिं न भेदा । ते सज्जन परहिं न भव खेदा ॥

व्याख्या - जो मेरा पूरा भरोसा करते हैं और मनुष्यों से अपेक्षा नहीं रखते हैं, मैं उनके हृदय में सदा निवास करता हूँ और जो संसार में अपने-पराये का भेद नहीं करते हैं, उनको कोई भी दुःख संसार में सताता नहीं है ।

दो० - परमारथ रत निसि दिवस पर दुःख हेतु न करहिं काज ।
ते जनु मम हृदय बसहिं जग में रखहउँ उनकी लाज ॥ १५ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जो लोग रात-दिन परमार्थ में लगे रहते हैं और कभी भी दूसरों को दुःख देने के लिए काम नहीं करते हैं, वे लोग मेरे हृदय में निवास करते हैं तथा संसार में ऐसे लोगों की मैं लाज रखता हूँ ।

छ० - जय जय जग स्वामी सब अन्तर्यामी अब आवहुँ शरण तुमार ।
सब गुण आगर करुणा सागर सो विनती सुनहउँ नाथ आमार ॥
परहित कारी होवउँ सदाचारी तजहउँ काम कोह मद अति चार ।
तोर सहारा जहाज हमारा करहु कृपा मिटहि तन मन विकार ॥

व्याख्या - हे जगत के स्वामी ! आपकी जय हो, जय हो । हे प्रभु ! आप सबके अन्तर्यामी हैं, इसलिए अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे परमपिता ! आप समस्त गुणों के भण्डार हैं तथा करुणा के समुद्र हैं, इसलिए हे प्रभु ! मेरी प्रार्थना सुनिए । हे प्रभु ! मैं परोपकार करने वाला होउँ तथा मेरे आचरण में सदाचार आ जाए तथा मैं काम, क्रोध, मद व अत्याचार का त्याग कर सकूँ, ऐसी शक्ति दीजिए । हे परमपिता ! आपकी कृपा का सहारा ही भाव रूपी भव सागर को पार करने का हमारा जहाज है । हे परमपिता, हे परमेश्वर ! आप कृपा कीजिए, जिससे मेरे मन व तन के समस्त विकार मिट जाएँ ।

छ० - भगति न पूजा जानुन दूजा तब केहि विधि करउँ मनुहार ।
तर्क कुतर्का मन भटका बुद्धि बिकल बंधन उरुझहि संसार ॥
कोमल चित्त भगतहित धरि आन उबारहउँ अब मोहि करतार ।
तुम पितु माता जग सब भ्राता सो हरि तारहउँ सकल जग परिवार ॥

व्याख्या - हे परम पिता ! मैं भक्ति और पूजा दोनों को ही नहीं जानता हूँ, अतः अब कैसे मैं आपको प्रसन्न करूँ ? मेरा मन भी तर्क व कुतर्क के जाल में भटक रहा है, जिससे बुद्धि व्याकुल होकर संसार के बन्धनों में उलझ गयी है। अतः हे परम पिता!

अब भक्त का कल्याण करने के लिए आप कोमल चित्त धारण करके आइये और इस भक्त को इस भव सागर से बचाइये। हे परम पिता ! आप सबके माता-पिता हैं, इसलिए यह समस्त संसार मेरा भाई है, अतः हे प्रभु! आप मुझे मेरे परिवार (जगत) सहित भव से पार कराइये अर्थात समस्त संसार का ही कल्याण कीजिए।

दो० - सब जग का कल्याण करो चराचर तुम्हार सन्तान ।
मन मुदित मंगल सब करें इह विनती रखहु भगवान ॥ १६ ॥

व्याख्या - हे परम पिता ! आप समस्त जगत का ही कल्याण कीजिए, क्योंकि समस्त चराचर जगत तो आपकी ही सन्तान है । सभी लोग प्रसन्न मन से मंगल कर सकें, हमारी इस प्रार्थना को भगवान पूर्ण कर दीजिए ।

सब घट सदा सद्‌गुण बासा। छुपत रहहिं वासना कुहासा ॥
सो दयालु अब बिलम्बु न करहु। करि कृपा सब कल्मष हरहु ॥

व्याख्या - हे परम पिता ! सभी के हृदय में सद्‌गुणों का निवास होता है, परन्तु सब सद्‌गुण वासना रूपी कोहरे से छुपे रहते हैं । अतः हे प्रभु ! आप विलम्ब मत कीजिए और कृपा करके समस्त कल्मषों को दूर कर दीजिए ।

प्रगटहिं कृपा तुम्हार अनयासा। होय सुजन जीव बिनु प्रयासा ॥
जग सुत सुता तुम्हार स्वामी। सो करहउँ करुणा अन्तर्यामी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जब आपकी कृपा अचानक मिल जाती है, तो बिना प्रयास के ही जीव सज्जन हो जाता है । ये समस्त संसार आपके पुत्र-पुत्रियाँ हैं, अतः हे अन्तर्यामी भगवान ! आप समस्त संसार पर करुणा कीजिए ।

सब हियँ प्रेम होई दिनु राति। मिटहिं भेद सकल जाति पाति ॥
मंगल हेतु करहिं सब कर्मा। पालहिं अहिंसा परमो धरमा ॥

व्याख्या - हे भगवन् ! सबके हृदय में रात-दिन प्रेम भावना पैदा होती रहे तथा जाति-पाति के भाव मिट जाएँ । सभी दूसरों के मंगल के लिए कर्म करें तथा सदा अहिंसा के परम धर्म का पालन करें ।

मंगलमय होय सब संसारा। तोर प्रेरणा बल महिमा अपारा ॥
सो सबहिं आशीष देउ भगवाना। सहज दयाल प्रभु कृपा निधाना ॥

व्याख्या - अतः हे भगवान ! हम सबको आप आशीर्वाद दीजिए कि समस्त संसार का मंगल हो। हे परमपिता! आपकी प्रेरणा की शक्ति की महिमा अपार होती है, अतः हे सहज में ही दया करने वाले, हे कृपा के धाम भगवान! आप कृपा कीजिए।

दो० - मंगल देखउँ मंगल सुनउँ मंगल हेतु करि सकउँ काज ।
धरम आचरण सदा करूँ सोइ करहउ कृपा प्रभु आज ॥ १७॥

व्याख्या - हे परम पिता ! चारों तरफ मंगल ही मंगल देखूँ तथा मंगल ही मंगल सुनु और मंगलदायक कर्म ही कर सकूँ तथा सदा मैं धर्म का आचरण करूँ, इसलिए हे प्रभु ! मुझपर कृपा कीजिए ।

मुक्ति मोक्ष नहिं अपर लोका । पावहिं ते जनु निज मन रोका ॥
विषय वासना मुक्त जब होई । तब तब धरम कहावहि सोई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मुक्ति या मोक्ष लोक की अवस्था नहीं होती है, इसको तो वे लोग पाते हैं, जो अपने मन को वश में कर लेते हैं । जब जब विषय वासनाओं से मन मुक्त होता है, उसी समय धर्म की अवस्था होती है ।

नहिं कोई धरम जुग अनुसारी । सदा भयउ इहँ जीव वृत्ति धारी ॥
ग्रन्थन लिखा मरम छुपाई । पुनि बरनिन बहु भरमाई ॥

व्याख्या - धर्म कोई युगों के अनुसार नहीं होता है । धर्म तो सदा जीव की वृत्ति के अनुसार बनता है । इसी रहस्य को शास्त्रों में छिपा कर लिखा हुआ है और व्याख्याकारों ने अपने मन से व्याख्या कर जीवों को ज्यादा भ्रमित कर दिया है।

वृत्ति अनुरूप भयउ जुग चारी । विप्र जन सो नाना भांति विचारी ॥
तम वृत्ति सोइ जुग कलि घोरा । काम क्रोध लोभ मदादि चहुँओरा ॥

व्याख्या - चारों युग (कलि, द्वापर, त्रेता व सतयुग) जीव की वृत्ति की अवस्था ही होते हैं । जिसको विद्वानों ने नाना प्रकार से विचार कर बताया है । जब जीव की तामसिक वृत्ति होती है, तब वह अवस्था ही घोर कलियुग की होती है । जिसके कारण काम, क्रोध, मद, लोभ आदि भाव चारों तरफ फैल जाते हैं ।

रज वृत्ति चावहिं सुख सदाई । द्वापर सोई सब ग्रन्थन गाई ॥
सतवृति तहँ सदा सेवा भावा । सोइ जुग त्रेता सब जन गावा ॥

व्याख्या - जीव की रजोवृत्ति सदा सुख चाहती है । उसी रजोवृति जीव की अवस्था को द्वापर के प्रतीक के रूप में ग्रन्थों में बताया गया है। जीव की सतोवृत्ति होने पर, उसमें सेवाभाव जागृत हो जाता है । जिससे जीव सेवा में लगा रहता है । उसी अवस्था को त्रेतायुग के प्रतीक के रूप में सब लोगों ने बताया है ।

निवृत्ति पूरन जब मन माहि । जुग सत सोइ सत्य बताहि ॥
अभिन्न धरम अरु जुग चारी । निज मन भयी अवस्था सारी ॥

व्याख्या - जब मन में पूर्ण रूप से निवृत्ति आ जाती है, तब जीव की वह अवस्था सतयुग की होती है । इस प्रकार धर्म और युग अवस्था एक ही होती

है । ये सब अवस्थाएँ स्वयं के मन की अवस्थाएँ ही होती हैं ।

दो०- त्रिगुण सोई तीन जुग त्रिगुण ही धारणा आधार ।
धारणा रूप धरम सकल कहऊँ सच हियँ विचार ॥ १८ ॥

व्याख्या - तम, रज व सत गुण ही कलि, द्वापर और त्रेता युग होते हैं तथा धारणा भी तीन गुणों के अनुरूप ही होती है और धारणा के अनुरूप ही धर्म (व्यवहार) बनता है । यह मैं हृदय में विचार कर सत्य कह रहा हूँ ।

कहुँ सरल धरम समझाई । जीव व्यवहार धरम कहाई ॥
जीव व्यवहार गुण अनुसारी । ताई हेतु धरम नाना प्रकारी ॥

व्याख्या - बहुत सरल तरीके से अगर धर्म को समझाया जाये, तो कह सकते हैं कि जीव का व्यवहार ही जीव का धर्म होता है और जीव का व्यवहार गुणों के अनुसार ही होता है । इसलिए नाना प्रकार के धर्म का उद्भव हो गया है ।

गुणमय धरम बन्धन कारी । कहऊँ सत्य पुकारी पुकारी ॥
गुण पार सोइ सत्य धरमा । मंगलमय नहि बंधन करमा ॥

व्याख्या - तीनों गुणों से पैदा होनेवाला धर्म हमेशा बन्धन देनेवाला होता है । मैं पुकार-पुकार के यह सत्य कह रहा हूँ । जो धर्म गुणों से पार होता है, वही सत्य, मंगलकारी और कर्म-बन्धन से मुक्त होता है ।

शुभाशुभ नहिं तहँ करमा । विगत देह गेह सोई धरमा ॥
जब जब होवइ गुण विचारा । नहिं धरम तहँ आई विकारा ॥

व्याख्या-जब शुभ-अशुभ का भाव भी मिट जाता है और जीव देह व गृह के मोह से मुक्त हो जाता है, तभी वह धर्म का अनुसरण करता है । जब जीव गुणों का विचार करने लग जाता है, तब धर्म नहीं होता है, बल्कि जीव विकारों में फँस जाता है।

जब हिय होय धरम अनुभूति । बूझ परहिं तब प्रभु करतूति ॥
सदा कर्ता तउ अकर्ता सुहाई । परइ समझ तब हिय माई ॥

व्याख्या - जब जीव के हृदय में धर्म की अनुभूति होती है, तब ही परमपिता की लीला समझ में आती है । परमपिता सब कुछ करनेवाले होते हैं, तब भी वे अकर्ता ही कहलाते हैं । यह सब मर्म तब जीव के हृदय में समझ आ जाता है ।

दो० -धरम घट अन्दर बसै नहिं बाहिर सकइ उपजाय ।
निज हियँ जो देख न सकै सो नयन सह अंध कहाय ॥ १९ ॥

व्याख्या - धर्म हृदय के अन्दर की अवस्था होती है । अतः सच्चा धर्म बाहर पैदा

नहीं होता है । जो जीव स्वयं के हृदय में धर्म को देख नहीं पाता है, वह मूर्ख तो आँखों के होते हुए भी अन्धा ही कहलायेगा ।

गुण युक्त करम नहिं धरमा । कहउँ सत्य अति गुप्त मरमा ॥
धारण रमण मंगल काजा । बड़ छोट तहँ नहिं लाजा ॥

व्याख्या - जब तक कर्म करते समय गुणों का विचार रहता है, तब तक धर्म की अवस्था नहीं होती है । मैं यहाँ बहुत ही गुप्त रहस्य को बता रहा हूँ । जब जीव सहज में ही परमार्थ को धारण करता है और परमार्थ में ही रमण करता है तथा छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं करता है, तभी धर्म की अवस्था होती है।

पूजा जप तप जग विधि नाना । मूढ़ जेहि इहँ धरम बखाना ॥
सकल पूजादि हेतु अभिलाषा । स्वारथ पूरण इहँ प्रयासा ॥

व्याख्या - पूजा, जप, तप आदि की संसार में बहुत-सी विधियाँ प्रचलित हैं, मूर्ख लोग ही इन विधियों को धर्म कहते हैं । समस्त पूजा आदि तो इच्छापूर्ति के कारण किये जाते हैं । अतः ये तो सब स्वार्थ पूर्ण करने के प्रयास मात्र होते हैं ।

जब लगि स्वारथ मन माहिं । नहिं धरम सत्य बताहिं ॥
हिय परमारथ नहिं अभिलाषा । सो धरम सहज ग्यान प्रकाशा ॥

व्याख्या - जब तक मन में स्वार्थ रहता है, तब तक धर्म नहीं होता है। जब हृदय में परमार्थ की भावना हो और कोई इच्छा नहीं हो, तभी धर्म की अवस्था होती है, जहाँ सहज में ज्ञान का प्रकाश होता है ।

नहिं बन्धन नहिं मुक्ति चाह । इदम परमारथ दूसर नाह ॥
जन्म मरण भय न सताई । तब बन्धन सकहिं कि टिकाई ॥

व्याख्या - जब कोई बन्धन नहीं होता है तथा मोक्ष की भी इच्छा नहीं रहती है, तब यह अवस्था ही परमार्थ की अवस्था होती है और कोई दूसरी अवस्था परमार्थ की नहीं होती है । जब जन्म-मरण का भय भी नहीं रहता है, तब बन्धन कैसे रह सकता है ?

दो०- परमारथ धरम आधार भया नहिं जग दूजा कोय ।
पथ परमारथ जब जीव चले तब तब धरम होय ॥ २० ॥

व्याख्या - परमार्थ ही संसार में धर्म का आधार होता है । दूसरा कोई नहीं है। अतः जब जीव परमार्थ के पथ पर चलता है, तब तब वह धर्म का पालन करता है ।

छ०- नाम न रूपा एक सरूपा नहिं तहँ कछु भेद बिलगाई ।
सबहिं एका एकहि अनेका मरम अद्‌भुत तब परइ बुझाई ॥
साधु सन्ता जानि अनन्ता निज मन भरम लहहिं मिटाई ।
नयन न दिखाहिं कथन न कथाहिं निज हियँ धरम प्रगटाई ॥

व्याख्या - नाम और रूप भी जहाँ एक हो जाते हैं तथा वहाँ कुछ भी भेद नहीं रह पाता है। तब सब में एक परमात्मा तथा एक में ही सब दिखाई देते हैं तथा ऐसी अवस्था में नाना स्वरूपों का रहस्य समझ में आ जाता है। साधु- सन्त भी परमात्मा को अनन्त समझ कर स्वयं के मन का भ्रम मिटा लेते हैं। धर्म की अवस्था तो जीव के स्वयं के हृदय में प्रगट होती है। जिसको आँखों से देखा नहीं जा सकता है तथा वाणी से बखाना नहीं जा सकता है।

छ० - जाति पंथा सकल अन्ता नहिं तहँ कोइ लघु बड़ भेदा ।
सहज सुभावा मन उछावा आनन्द मगन विगत भव खेदा ॥
ईश्वर अल्लाह एकहि भव मल्लाह जानि आव जीव शरणाई ।
ज्ञान प्रकाशा हिय उजासा समता भाव सहज मन उमगाई ॥

व्याख्या - जब हृदय में धर्म प्रकट हो जाता है, तब जाति व पंथों के समस्त भेद मिट जाते हैं तथा छोटे-बड़े का भी कोई भेद नहीं रहता है। उस समय जीव सहज स्वभाव में बरतने लग जाता है। जिससे मन में उत्साह छा जाता है तथा जीव आनन्द में मगन हो कर सब कष्टों को भूल जाता है। उस समय ईश्वर-अल्लाह आदि नामों का भेद मिट जाता है तथा एक ही परम शक्ति का ज्ञान हो जाता है। जिससे जीव में शरणागति का भाव आ जाता है। जब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, तब हृदय में समता का भाव आ जाता है।

दो०- जिन्ह हिय समता बसै तिन्ह हिय नहिं रहई द्वन्द ।
बिनु द्वन्द आनन्द सदा अब तो समझ मन मन्द ॥ २१ ॥

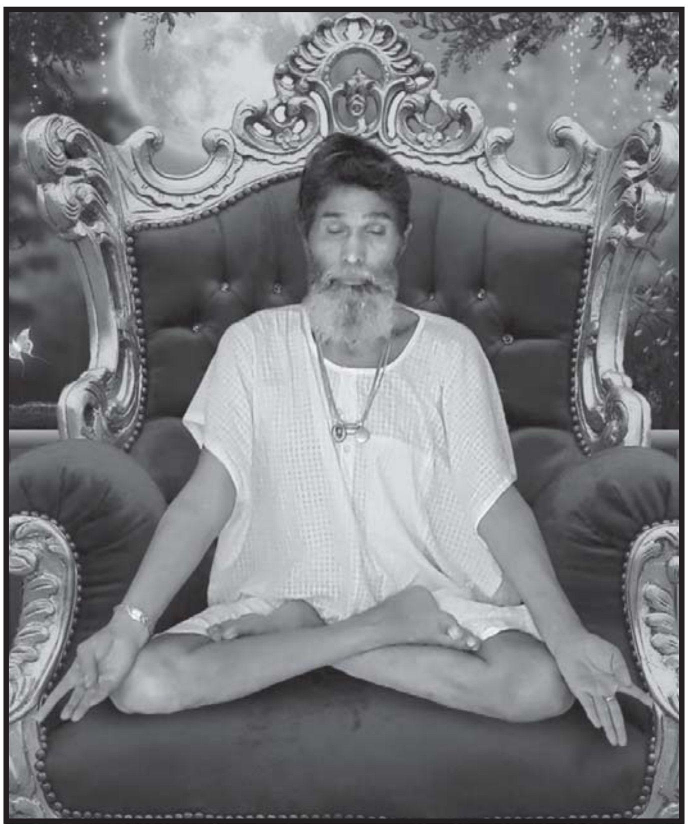
व्याख्या - जिनके हृदय में समता का भाव रहता है, उनके हृदय में कभी भी द्वन्द नहीं रहता है और बिना द्वन्द के सदा आनन्द की अवस्था रहती है। इसलिए मूर्ख मन अब तो समझो।

छ०- धन्य रघुराई धरम समुझाई संशय नहिं रहा मन माहिं ।
पढ़हिं गुनहि ते भव तरहि सुगम सरल इहँ सत बताहिं ॥
अबहु न मानहिं मूढ़ जानहिं तिन्ह हियहु ग्यान आवहिं ।
मम अनुरोधा करो मन बोधा देखउ निज आनन्द पावहिं ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं कि आपने नाना प्रकार से मुझे धर्म को समझाया है। जिससे मन में संशय नहीं रह गया है। इसको जो भी लोग पढ़ व सुनकर समझेगें, वे भवसागर पार कर जायेंगे। क्योंकि उनके लिए यह सुगम व सरल है। मैं सत्य बता रहा हूँ। अभी भी जो लोग इसको नहीं मानते हैं,

तो वे मूर्ख हैं। फिर भी उनके हृदय में यह अनुभूति-कथा ज्ञान ही पैदा करेगी। इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप स्वयं इसको पढ़ कर अनुभूति कीजिए। फिर देखिए आपको स्वयं को क्या आनन्द मिलता है ?

॥ इति मानवधर्मशास्त्रस्य ज्ञानार्थम च धर्मार्थमर्मम्
द्वितीय सोपान सम्पूर्णम् ॥
॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण तृतीय पड़ाव ॥
॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण प्रथम पड़ाव ॥



अवधूत देवीदास

ॐ गुरुदेवाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

तृतीय स्कन्ध

ॐ नामरूपं उपाधि धारकं जगत रूपं च जगतेश्वरम् ।
अस्ति नास्ति पारम् जगताधारम् अहम् त्वमेव शरणम् ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप नाम व रूप को उपाधि के रूप में धारण करने वाले हैं तथा जगत के रूप में आप ही हैं तथा आप ही जगत के ईश्वर हैं। आप हैं और नहीं हैं, की सीमा से परे हैं । हे प्रभु! आप जगत के आधार हैं । मैं आपकी शरण में हूँ ।

भल मन्दः पारम् निर्विकारम् त्वम् सर्वरूपम् न संशयम् ।
न केवलम् शरणागत रक्षकम् त्वम् सर्वरक्षकम् इदम् सत्यम् ॥ २ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप अच्छे-बुरे से परे, निर्विकार व सब रूपों में हैं। इसमें संदेह नहीं है । हे प्रभु ! आप केवल शरण में आनेवाले की ही रक्षा नहीं करते हैं, बल्कि आप तो सबके रक्षक हैं। यह सत्य है ।

दो०- तुम्ह सब प्रेरक दीनबन्धु करुणायतन सहज दयाल ।
सब तजि शरण तिहारी प्रभु करहु कृपा जग प्रति पाल ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप सबके हृदय में प्रेरणा करनेवाले, दीन बन्धु, करुणा के धाम तथा सहज में दया करनेवाले हैं । हे परमपिता! मैं सब छोड़ कर आपकी शरण में हूँ। हे जग के पालनकर्ता ! आप अनुकंपा करें ।

सुनहु नाथ अब विनति मोरी । जानत चहऊँ मरम मैं तोरी ॥
मति मम भोरी चाहत विशाला । हिय जनाउ जानि दास दयाला ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरी प्रार्थना सुनिए। हे प्रभु ! आपका वास्तविक रहस्य जानना चाहता हूँ। मेरी चाहत तो बहुत बड़ी है । परन्तु मेरी बुद्धि तो भोली है । अतः हे दयालु ! मुझे आपका दास समझ कर मेरे हृदय में आपका रहस्य समझा दीजिए ।

बिनु जानई होई न विश्वासा । बिनु विश्वास न तोर सुपासा ॥
सपनेउ सुख नाहिं बिनु तोरे । इहँ दृढ़ मत प्रभु मन मोरे ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपको जाने बिना आपका विश्वास नहीं होता है तथा बिना विश्वास के आप मिलते नहीं हैं तथा आपके बिना तो सपने में भी सुख नहीं मिलता है । यह मेरा दृढ़ मत है ।

सो दयाल कृपा अब करहऊ। निज रुप जथारत प्रेरहऊ ॥
तुम्हीं करउ ग्यान उजियारा। देवहउ दृष्टि दिव्य अपारा ॥
व्याख्या - हे दयालु ! आप अनुकंपा करके मेरे हृदय में आपके यथार्थ रूप की प्रेरणा कर दीजिए और आप ही ज्ञान का प्रकाश कर दीजिए तथा दिव्य दृष्टि प्रदान कर दीजिए।
नाम रूप काह मरम सुहाई। हेतु केहि माया जग उपजाई ॥
काह धाम काह तुम्हार स्थाना। सब कहऊ समझाई भगवाना ॥
व्याख्या - हे परमपिता ! आपके नाम और रूप का क्या रहस्य है तथा संसार में माया किस कारण पैदा की है ? आपका वास्तविक घर कहाँ है तथा आपका रहने का स्थान कहाँ है ? ये सब मुझे समझा कर कहिए ।
दो०- सुनु सुत तू प्रिय मोहि अति मरम न रखहऊँ लुकाई ।
निज घट तोहि समझावऊँ तू समझ मन बुद्धि चित्त लाई ॥ २ ॥
व्याख्या - हे वत्स ! तू मुझे बहुत प्रिय है, इसलिए तुझसे कुछ भी छिपा कर नहीं रखूँगा। अब मैं तुझे तेरे हृदय में ही समझा कर कहूँगा। इसलिए मन और बुद्धि को चित्त में समाहित करके समझने का प्रयास कर ।
नाम अरु रूप उभय संकेता। सज्जन हिय सो मोर निकेता ॥
करि विश्वास सत्य बताऊँ। नाम रूप मरम हिय समझाऊँ ॥
व्याख्या - नाम और रूप दोनों मेरे लिए संकेत मात्र हैं। सज्जन लोगों का हृदय मेरा घर होता है । हे वत्स ! तुम विश्वास करो, मैं तुम्हें नाम और रूप का रहस्य बताता हूँ ।
नाम अरु रूप नहिं मोरी सीमा। उभय पार मैं बसहउँ भीमा ॥
बिनु संकेत मिलहि नहिं राहा। सो नाम रूप भगत दरकाहा ॥
व्याख्या - हे वत्स ! नाम और रूप मेरी सीमा नहीं होती है । मैं तो इन दोनों से परे भाव में निवास करता हूँ । परन्तु बिना संकेत के रास्ता नहीं मिलता है । इसलिए भक्तों को नाम व रूप के संकेत की जरूरत होती है ।
नाम रूप सुत मारग मोरा। मैं मंजिल भिन्न सदा एकोरा ॥
सकल नाम रूप मोते समाई। तब जावहहिं भगत मोहि पाई ॥
व्याख्या - हे वत्स ! नाम और रूप तो मेरे रास्ते हैं। परन्तु मैं तो सदा इनसे भिन्न अकेला हूँ। जब नाम और रूप मेरे अन्दर समा जाते हैं, तब भक्त जन मुझे प्राप्त करते हैं ।
मरम सुत मैं कहउँ गंभीरा। निज हिय समझउ तुम धीरा ॥
नाम रूप मारग साधन विश्वासा। जीव पथिक श्रद्धा भयी उजासा ॥

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हें मैं गम्भीर रहस्य बताता हूँ । हे धीर ! तुम स्वयं के हृदय में समझो । नाम और रूप मेरे रास्ते हैं तथा विश्वास साधन होता है तथा जीव राहगीर होता है और जीव की श्रद्धा ही उसको प्रकाश करती है ।

रिद्धि सिद्धि मारग बहु पड़ावा । सुस्तावहिं जीव तो जाई फँसावा ॥
बहु भांति सुख सम्पदा ललचाई । मोहिं भूलि तहँ परइ उरुझाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! नाम व रूप के मार्ग में रिद्धि-सिद्धि रूपी बहुत से पड़ाव आते हैं, जहाँ अगर जीव सुस्ता जाता है, तो वहाँ फँस जाता है और वहाँ जीव नाना प्रकार की सुख सम्पदा में लालच कर बैठता है और मुझे भूल कर संसार में फँस जाता है।

सावधान जो होई जीव मतिधीरा । रुकहि न मारग भाव भव तीरा ॥
एहि भाँति पथिक जब चलहिं । नहिं संशय जीव मोहि मिलहिं ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जो जीव सावधान और धीर होता है, वह रिद्धि-सिद्धि रूपी रास्ते में नहीं रुकता है और जीव निरन्तर चलता रहता है, तो इसमें संदेह नहीं है, वह मुझे प्राप्त कर लेता है ।

दो०- नाम नामी मैं स्वयं हूँ करि देखि हृदय विचार ।
नाम रूप भिन्न मोहि ते फँसहि जीव तहँ बेकार ॥ ३ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम हृदय में विचार करके देखो । मैं ही नाम और नामी हूँ। नाम और रूप दोनों तो मुझसे भिन्न हैं । जहाँ जीव व्यर्थ में ही फँस जाता है ।

नाम रूप मग बहु मंजिल एका । निज हिय सुत करि देखि विवेका ॥
नाम जुरहिं जब नामी संगा । होवहिं मन तब प्रीति अभंगा ॥

व्याख्या - नाम और रूप के बहुत सारे रास्ते होते हैं परन्तु मैं मंजिल रूप में एक ही होता हूँ । तुम हृदय में विचार करके देखो । जब नाम का भाव मेरे साथ जुड़ जाता है, तब जीव के मन में मेरे प्रति अटूट प्रीत हो जाती है ।

भाव दीवार तहँ जाइ मिटाई । अंश अरु अंशी तब एक सुहाई ॥
नाम जब करहहिं संग रूपा । आवहि भाव तब तबहि दूता ॥

व्याख्या - प्रीत की अटूट अवस्था में भावों की दीवार टूट जाती है और मुझ अंशी से मेरा अंश जीव मिल जाता है तथा एक रूपता आ जाती है । परन्तु जब नाम किसी रूप का अनुसरण करने लग जाता है, तो जीव के हृदय में द्वैत भाव आ जाता है ।

द्वैत देखि माया आय प्रगटाई । पुनि जीव जाई मोह भरमाई ॥
मोह ते पुनि प्रगट संसारा । फँसहि जीव तहँ नाना प्रकारा ॥

व्याख्या - द्वैत भाव देख कर माया पैदा हो जाती है और माया से जीव मोह में फँस जाता है तथा मोह के कारण पुनः संसार पैदा हो जाता है तथा जीव

नाना प्रकार के विकारों में पड़ जाता है ।

नाम जपहिं जेहि जानइ नामी । रूप धरहिं जे भाव अनुगामी ॥
ते समझहिं हियँ मोर प्रतापा । अकथ इहँ बूझहिं आपहि आपा ॥

व्याख्या - जो लोग मुझ नामी को जान कर नाम जपते हैं तथा भाव के अनुसार मेरा रूप अनुसरण करते हैं, वे ही अपने हृदय में मेरे प्रताप को समझ पाते हैं। यह अवस्था अकथनीय है । इसको तो अपने आप ही समझा जा सकता है ।

दो०- निज हृदय तब समझहिं नाम रूप सकल भेद ।
अंशी से अंश मिलै मिटहिं सब जीव भव खेद ॥ ४ ॥

व्याख्या - उस अवस्था में जीव स्वयं अपने हृदय में नाम और रूप का भेद समझ पाता है तथा भेद समझ लेने से अंशी और अंश एक हो जाते हैं । जिससे जीव के समस्त दुःखों का निवारण हो जाता है ।

नाम रूप उभय मोर उपाधि । भिन्न दुइते मैं अलख अनादि ॥
अनन्त नाम अनन्त मोरे रूपा । कल्पहिं जीव निज मति अनुरूपा ॥

व्याख्या - नाम और रूप दोनों मेरी उपाधि हैं । परन्तु मैं तो इन दोनों से भिन्न अलख और अनादि हूँ । मेरे अनन्त नाम और अनन्त रूपों की कल्पना तो जीवों ने अपनी बुद्धि के अनुसार की है ।

मय सागर जीव बारि समाना । बिनु बारि न सागर सनुमाना ॥
एसउ नहिं मोर कछु महिमा । बिनु जीव सम पाथर गरिमा ॥

व्याख्या - मैं सागर की तरह हूँ तथा जीव सागर के जल के समान होता है तथा जैसे बिना जल के सागर की कोई महिमा नहीं होती है, वैसे ही बिना जीव के मेरी कोई महिमा नहीं होती है । बिना जीव के तो मैं पत्थर जैसा होता हूँ ।

जीव सहित मैं जगत समाना । सत कर्म सोइ प्रगट स्थाना ॥
नर नारी हियँ सुन्दर धामा । तहाँ बसहउँ मैं सहित कामा ॥

व्याख्या - जीवों सहित मैं जगत में समाहित हूँ तथा सात्विक कर्म मेरे प्रकट होने के स्थान हैं । नर-मादा का हृदय ही मेरा सुन्दर घर है । जहाँ मैं माया सहित निवास करता हूँ ।

मोतें भिन्न जगत किछु न सुहाई । निगम-पुराण ऋषि मुनि गाई ॥
माया विस्तार जग बंधनकारी । गत माया सोइ मोर रूप सँवारी ॥

व्याख्या - मेरे से अलग इस संसार में कुछ भी नहीं है । वेद-पुराण व ऋषि-मुनियों सबने यही बताया है । जब माया का विस्तार होता है, तो यह संसार बन्धन वाला हो जाता है और जब माया मिट जाती है, तो यही संसार मेरा

रूप बन जाता है ।

दो०- मैं अरु माया संग बसै जीव हृदयँ एक समान ।
मो ढ़िंग जीव आवत नहिं माया संग भटकत जहान ॥ ५ ॥

व्याख्या - मैं और मेरी माया जीव के हृदय में एक समान निवास करते हैं । परन्तु जीव मेरे पास तो आता ही नहीं है । वो तो माया के साथ संसार में भटकता रहता है ।

माया अरु तुम बसहिं इक संगा । केहि विधि सम्भव इहँ अनंगा ॥
तुम सन माया सकइ न रहहिं । साधु सन्त बुध इहँ सब कहहिं ॥

व्याख्या - हे अनंग ! माया और आप एक साथ रहते हैं । यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? आपके पास तो माया रह ही नहीं पाती है । सभी साधु-सन्त व विद्वान लोग ऐसा ही कहते हैं ।

सुन सुत कहउँ सत्य बिचारी । नर-नारी हियँ रहइ नर-नारी ॥
कैसे रहहिं मैं अरु माया संगा । सो सब कहउँ समझाइ प्रसंगा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! सब नर-मादा जीवों के हृदय में नर-नारी (नाड़ी) का स्थान होता है और मैं माया सहित वहाँ कैसे एक साथ रहता हूँ, यह प्रसंग तुम्हें समझाकर बताता हूँ ।

जीव हियँ सुन्दर भवन हमारा । तहँ रहहिं हम उभय इकसारा ॥
हियँ भवन दुई कक्ष सुहाई । नर नारी तिन्ह नाम कहाई ॥

व्याख्या - जीव का हृदय ही मेरा और माया का सुन्दर घर होता है, जहाँ पर हम दोनों (परमात्मा और माया) एक समान रहते हैं । हृदय रूपी घर में दो कमरे होते हैं, नर और नारी (नाड़ी) जिनका नाम है।

जद्यपि कक्ष दुई पर इक द्वारा । खुलहहिं सो सदा भाव अनुसारा ॥
प्रभुता भुवन बरनिन जाई । जानइ सोइ अनुमान लगाई ॥

व्याख्या - यद्यपि हृदय रूपी घर में दो कमरे होते हैं, परन्तु उन दोनों कमरों का दरवाजा एक ही होता है, जो हमेशा भाव के अनुसार खुलता है । हृदय रूपी घर की प्रभुता का वर्णन नहीं किया जा सकता है । उसको जो जानता है, वही अनुमान लगा सकता है ।

दो०- भाव अनुरूप हियँ सदन भाव अनुरूप सज्जा साज ।
भाव अनुरूप सुविधा सब भाव अनुरूप होइ सब काज ॥ ६ ॥

व्याख्या - हृदय रूपी घर भाव के अनुरूप आकार धारण कर लेता है तथा भाव के अनुरूप ही उसकी सजावट हो जाती है तथा भाव के अनुसार ही सब सुख-सुविधाएँ

उपलब्ध होती हैं तथा भाव के अनुरूप ही उस घर में सब कार्य होते हैं ।

नर अयन मैं करहुँ निवासा । नारी भुवन तहँ माया सुवासा ॥
भाव ही तहँ सेवक सेविकाई । भाव ही भूषन बसन भव्यताई ॥

व्याख्या - मैं नर रूपी कमरे में निवास करता हूँ तथा नारी रूपी घर में माया का निवास होता है । भाव ही सेवक और सेविका का काम करते हैं तथा भाव ही भूषन व वस्त्रादि की भव्यता होते हैं ।

मैं अरु माया माझ अनुबन्धा । भाव तें खुलइ नर-नारी कुन्दा ॥
नर खुलहिं मैं प्रबल सुहाउ । नारी खुलत शान्त होइ जाउँ ॥

व्याख्या - मेरे और माया के बीच में यह अनुबन्ध है कि भाव के अनुसार नर और नारी रूपी कमरों का दरवाजा खुलता है । जब नर रूपी घर का दरवाजा खुलता है, तो मैं प्रबल हो जाता हूँ और जब नारी रूपी घर का दरवाजा खुलता है, तो मैं शान्त हो जाता हूँ ।

इक दूसर उभय अनुसरहिं । माया अरु मोर भेद किछु नहिं ॥
दिखहहिं भेद भाव अनुसारी । बिरथा भरमित जीव संसारी ॥

व्याख्या - मैं और माया एक दूसरे का अनुसरण करते हैं । मुझमें और माया में कोई भेद नहीं है । जो भेद दिखाई देता है, वह तो भावों के अनुसार दिखाई देता है । जीव बेचारा व्यर्थ में ही संसार में भ्रमित होता रहता है।

हृदय सदन सब मरम छुपाई । इहँ मम अद्भुत लीला सुहाई ॥
भाव ही भा मूल सकल संसारा । भाव तें माया भाव ते मोर दीदारा ॥

व्याख्या - हृदय रूपी घर में मेरा समस्त रहस्य छिपा हुआ रहता है। यही मेरी अद्भुत लीला है । भाव ही संसार का मूल है अर्थात भावों से ही संसार का आभास हो रहा है और भाव ही माया है तथा भावों के द्वारा ही मुझ परमात्मा के दर्शन सम्भव हैं ।

दो०- भाव ही प्रबल सुत तोहि कहउँ मैं समझाय ।
भाव तें भावी बनहिं भाव तें जीव उलझाय ॥ ७ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! भाव ही प्रबल होते हैं तथा भावों से ही भविष्य का निर्माण होता है । जिसमें जीव उलझ जाता है ।

केहि विधि भाव करहिं खिलावन । सो सब कहउँ तोहि समझावन ॥
हिय भाव दया दान उपकारी । खुलहिं कपाट तुरत अमारी ॥

व्याख्या - किस प्रकार भाव जीव के साथ खिलवाड़ करते हैं, वो सब तुम्हें समझाने के लिए बताता हूँ । जब दया, दान व परोपकार के भाव हृदय में आते

हैं, तो तुरन्त मेरे हृदय स्थित घर का दरवाजा खुल जाता है ।

जब खुलहहिं द्वार सुत मोरा । माया अनुसरहिं करि निहोरा ॥
सहमान सब सुविधा प्रदानी । होवहिं सकल जीव रुख जानी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जब मेरा द्वार खुल जाता है, तो माया विनय भाव के साथ मेरा अनुसरण करने लगती है तथा जीव को सम्मान के साथ सब सुविधा प्रदान करने लग जाती है और सब कार्य जीव की इच्छा अनुसार घटित होने लग जाते हैं ।

सहज संतोष जो भाव सदाई । जीव निरंतर मोते मिल जाई ॥
लोग कहहिं जीव सिद्ध सुहाई । नाना भांति तहँ पूजा कराई ॥

व्याख्या - अगर जीव के हृदय में सहजता और संतोष का भाव हमेशा रहने लग जाए, तो वह जीव निरंतर मुझसे एकात्म हो जाता है । ऐसे जीव को लोग सिद्ध मानने लग जाते हैं और नाना प्रकार से उसकी पूजा करने लग जाते हैं ।

माया बस्य जीव मोरहि रूपा । इहँ पालहउँ मैं नीति अनूपा ॥
विगत माया सो आनन्द मूला । तबहिं होवउँ मैं जीव अनुकूला ॥

व्याख्या - जब माया जीव के वश में होती है, तो वह जीव मेरा ही स्वरूप हो जाता है । इस अद्‌भुत नीति का मैं सदैव पालन करता हूँ । माया का मिट जाना ही आनन्द का मूल होता है तथा उसी क्षण मैं जीव के अनुकूल हो जाता हूँ ।

दो०- सत भाव तें अनुकूलता असत् भाव तें मैं प्रतिकूल ।
उभय भाव जीव हियँ बसै सुत इहँ ज्ञान का मूल ॥ ८ ॥

व्याख्या - सात्विक भावों से मैं अनुकूल होता हूँ तथा असात्विक भावों से मैं प्रतिकूल हो जाता हूँ । सात्विक और असात्विक दोनों तरह के भाव जीव के हृदय में होते हैं । हे वत्स ! यही वास्तविक ज्ञान का मूल है ।

अब कहउँ माया मरम बुझाई । जेहि विधि दुवार हठात् खुलाई ॥
काम क्रोध मद लोभादि अपारा । आवहिं भाव खुलत माया द्वारा ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ माया के रहस्य को बताता हूँ कि किस प्रकार अचानक माया का द्वार खुल जाता है । जब काम, क्रोध, मद, लोभ आदि के भाव आते हैं, तो माया का दरवाजा तुरन्त खुल जाता है ।

जब जब खुलहहिं माया द्वारा । मैं अनुसरउँ माया ब्यापारा ॥
माया अधीन जीव जब सुहाए । सोइ बन्धन जगत सब गाए ॥

व्याख्या - जब असात्विक भावों से माया का दरवाजा खुल जाता है, तो उस अवस्था में मैं माया का अनुसरण करने लग जाता हूँ । उस अवस्था में जीव माया के अधीन हो जाता है । उसी को संसार में जीव का बन्धन बताया गया है ।

तोर मोर मोह भाव उपजाई । माया जाल जीव तब उलझाई ॥
माया प्रेरहिं मैं करु अनुसरणा । विधि विधान जाइ नहिं बरणा ॥

व्याख्या - तेरे-मेरे से मोह का भाव पैदा हो जाता है । तब माया के जाल में जीव उलझ जाता है । उस अवस्था में माया प्रेरित करती है और मैं माया का अनुसरण करता हूँ । यह मेरी विधि का विधान है। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

मोह बस्य जीव जग काह चावा । अमृत छाड़ि विषय विष धावा ॥
जो मांगहि जीव भाव अनुसारी । सब देउँ इहँ विधिना अमारी ॥

व्याख्या - मोह के वशीभूत जीव संसार में चाहता ही क्या है ? वह तो अमरत्व को छोड़ कर विषय रूपी जहर की तरफ ही दौड़ता रहता है और जो जीव भाव से जो माँगता है, मैं उसको वो सब कुछ देता हूँ । क्योंकि यही मेरा विधान (व्यवस्था) है ।

दो०- मोह अनुरूप भाव उपजत भाव ते क्रिया महान ।
क्रिया तें कर्म बनत कर्म अनुरूप फल देइ विधान ॥ ९ ॥

व्याख्या - मोह के अनुसार भाव पैदा होते हैं तथा भावों से क्रिया पैदा होती है तथा क्रिया के अनुसार कर्म घटित होता है तथा कर्म के अनुसार व्यवस्था फल प्रदान करती है ।

मोह बस जीव विधि बस होई । घटहिं सकल रचि राखा सोई ॥
बिरथा देहहिं दोष मोहि मूढ़ा । जानइ नहिं विधि विधान गूढ़ा ॥

व्याख्या - मोह के वशीभूत जीव मोह के अनुरूप क्रिया (कर्म) करने को बाध्य हो जाता है और जैसी विधि होगी, वैसा ही कर्म घटित होना सुनिश्चित हो जाता है । संसार में लोग मुझे व्यर्थ में ही दोष लगाते रहते हैं । वे मूर्ख लोग विधि (क्रिया) की व्यवस्था (विधान) के रहस्य को नहीं जानते हैं ।

भाव सब भव सागर बनाई । भाव ही माया भाव ही माया मिटाई ॥
ऐहि भांति मोर अरु माया संगा । जीव हियँ बसहिं बनि अनंगा ॥

व्याख्या - इस समस्त दृश्य संसार का भाव ही मूल है । क्योंकि भाव से ही माया पैदा होती है और भाव से ही मेरे दर्शन होते हैं । हे वत्स! इस प्रकार मेरा और माया का साथ बना हुआ है । जिससे हम जीव के हृदय में बिना शरीर के निवास करते रहते हैं ।

भाव माझ मैं सदा करूँ निवासा । भाव अनुरूप होइ मोर सुपासा ॥
भाव ही बंधन भाव ही रजु सुहाई । भाव ही ग्रन्थि भाव ही उलझाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं सदा भावों में निवास करता हूँ तथा भावों के अनुरूप ही

जीव मेरे पास आ पाता है। भाव ही बन्धन होते हैं तथा भाव ही बन्धन की रस्सी होते हैं और भाव ही बन्धन की गाँठ होते हैं तथा भाव ही भावों को बाँधते हैं।

भाव मूल मय भाव मोरे रूपा। इहँ लीला मोर अद्वितीय अनूपा ॥
मय ही माया मैं ही ईश कहाउँ। भाव अनुरूप सब नाम धराउँ ॥

व्याख्या - मैं ही भावों का मूल हूँ। इसलिए सब भाव ही मेरे रूप होते हैं। यह भावों की मेरी लीला अद्वितीय व अनुपम है। मैं ही माया के रूप में और मैं ही ईश्वर के रूप में आभासित होता रहता हूँ तथा भावों के अनुसार मैं ही नाना नाम धारण कर लेता हूँ।

दो०- मैं अरु माया भाव अन्तर नहिं कोउ दूजा आधार।
सब घट मैं ही बसहउँ प्राण रूप इक सार ॥ १० ॥

व्याख्या - मेरे और माया के बीच केवल भाव का अन्तर है और दूसरा कोई अन्तर नहीं है। मैं तो सब जीवों के हृदय में प्राण के रूप में एक समान निवास करता हूँ।

प्राण ही आत्मा प्राण ही अंश मोरा। सब एक रस देह भेद कोरा ॥
जेहि विधि नीर घट लेइ अकारा। ऐसउ सब देह प्राण प्रकारा ॥

व्याख्या - प्राण ही आत्मा होता है तथा प्राण ही मेरा अंश होता है। इसलिए समस्त प्राणियों में मैं एक रस होकर रहता हूँ। केवल शरीर का ही भेद होता है। जैसे जल बर्तन में रखने पर एक विशेष आकार धारण कर लेता है। ऐसे ही मेरा प्राण शरीरों में विभिन्न आकार धारण कर लेता है।

नीर एक भिन्न घट अनुसारी। घट विलग नीर नीर इक सारी ॥
सदा रहउँ मैं प्राण समाई। सो सब कहउँ तोहि समझाई ॥

व्याख्या - जैसे जल एक होता है। परन्तु बर्तन के अनुसार अलग दिखाई देता है तथा जब बर्तन जल से अलग कर लिया जाता है, तो जल-जल एक हो जाता है। वैसे ही मैं भी प्राणों में एक समान रहता हूँ। मैं सब जगह एक समान कैसे रहता हूँ, वो तुम्हें समझाकर कहता हूँ सुनो :-

काठ अनल जिमि घृत क्षीरा। ऐसउ बसहउँ हियँ मैं धीरा ॥
समझ तू श्वास पय समाना। प्राण सोहि करि घृत अनुमाना ॥

व्याख्या - जैसे लकड़ी में अग्नि और दूध में घी छिपा हुआ रहता है। ऐसे ही मैं जीव के हृदय में निवास करता हूँ। इसलिए वत्स ! तू श्वास को दूध के समान समझ और प्राण को दूध में घी की तरह समझ।

अनल अवट जामिन लगाना। सो सब जोग जप तप समाना ॥
ज्ञान बिराग सोइ दधि मथनी। निकसइ सोइ घृत तत बरनी ॥

व्याख्या - योग, जप व तप दूध को गर्म करना व जामिन (जावण) लगाने के समान है तथा ज्ञान व वैराग्य दही को मथनेवाली मथनियाँ समझ और मथने से जो निकलता है, वही आत्मतत्व रूपी घी है ।

दो० -वासना सकल छछि सम ग्यान नवनीत समान ।
छछि तजि नवनीत गहहिं सोइ जानि चतुर सुजान ॥ ११ ॥

व्याख्या - वासनाएँ छाछ के समान होती हैं और ज्ञान घी के समान होता है । इसलिए जो वासना रूपी छछिया का त्याग करके, ज्ञान रूपी घी ग्रहण करते हैं, उनको चतुर सज्जन जानना चाहिए ।

एहि भांति समझ सुत मोहि । मैं ही जगत सब अरु न कोहि ॥
भाव रूप मैं जगत समेता । प्रति हियँ मोर सुंदर निकेता ॥

व्याख्या - हे वत्स ! इस प्रकार तुम मुझको समझो । मैं ही संसार में सब कुछ हूँ और कोई दूसरा नहीं है । मैं ही भाव के रूप में जगत सहित हूँ तथा जीव का प्रत्येक हृदय मेरा सुन्दर घर है ।

मैं ही जगत मैं ही ईश कहाउँ । भाव आधार नाम रूप धराउँ ॥
भाव रूप मैं धरहउँ शरीरा । नाम रूप इहँ मरम गभीरा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं ही ईश्वर हूँ और मैं ही जगत कहलाता हूँ । मैं जीव के भाव के अनुसार नाम और रूप धारण कर लेता हूँ । भाव के अनुसार ही मैं शरीर भी धारण कर लेता हूँ । मेरे नाम और रूप का यह गम्भीर रहस्य है ।

निज मन लावहिं जीव जेहि भावा । सृष्टि सकल अनुरूप दिखावा॥
भाव अनन्त सोइ मैं अनन्ता । मैं ही ईश अल्लाह भगवन्ता ॥

व्याख्या - जीव स्वयं के मन में जो भाव लाता है, उसको सृष्टि उसी भाव के अनुसार दिखाई देती है । भाव अनन्त होते हैं । इसलिए मेरे रूप भी अनन्त होते हैं । मैं ही ईश्वर, अल्लाह व भगवान होता हूँ ।

जीव मोर अंश करइ विश्वासा । मिटहिं भेद पावइ मोर सुपासा ॥
जब लगि रह वासना मन माहि । दिखहिं माया मय जगत सबाहि ॥

व्याख्या - जीव मेरा ही अंश होता है । जो इस बात पर विश्वास करते हैं, उनके लिए सब भेद मिट जाते हैं और वे मेरे निकट आ जाते हैं । जब तक मन में वासना रहती है, तभी तक संसार माया से युक्त दिखता है ।

दो०- माया मिटि जगत मिटा जगत मिटे मंगल बच जाए ।
हंसा अब बेपरवाह भया नित आनन्द सरोवर नहाय ॥ १२॥

व्याख्या - माया के मिट जाने पर संसार मिट जाता है तथा चारों तरफ मंगल

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

ही मंगल बच जाता है। ऐसी अवस्था में जीव निश्चिन्त हो जाता है तथा सदा आनन्द रूपी सरोवर में गोता लगाने लगता है।

मैं सुख मूल आनन्द समेता। दुःख तबहिं जब माया सचेता ॥
जेहि जेहि भाव इच्छा उपजाई। सोई सब माया जानहउ भाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं आनन्द सहित सुख का मूल हूँ और दुःख तो तब पैदा होता है, जब माया जागृत हो जाती है। जो जो भाव इच्छा पैदा करते हैं, वो सब भाव माया के होते हैं।

विगत वासना मोते लय लाइ। सकल जगत मो सम दिखाइ ॥
पाप पुण्य सब माया सुहाई। सर्ग नरक बिरथा उरझाई ॥

व्याख्या - जब जीव की विषय-वासनाएँ मिट जाती हैं, तो उसकी मुझसे लौ लग जाती है और समस्त संसार उसको मेरा ही रूप दिखाई देने लग जाता है। पाप-पुण्य की कल्पना तो सब माया है, जो व्यर्थ में ही जीव को स्वर्ग-नरक की कल्पना में उलझा देती है।

पाप पुण्य मूल नहिं कर्म सुहाई। भाव उभय सब फल दिलाई ॥
भाव अनुरूप सुख दुःख पाई। बिरथा जग कर्म दोष लगाई ॥

व्याख्या - पाप-पुण्य का कारक कर्म नहीं होता है। भाव ही पाप-पुण्य को पैदा करनेवाला होता है। भाव के अनुरूप ही जीव सुख-दुःख भोगता है। संसार में व्यर्थ ही कर्म को दोष लगाया जाता है।

नाथ कर्म पाप-पुण्य आधारा। निगम-पुराण सकल पुकारा ॥
आप कहत नहिं आधार कर्मा। नहिं बुझहउँ नाथ इहँ मर्मा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! वेद-पुराण सब यही कहते हैं कि कर्म ही पाप-पुण्य का आधार होता है। परन्तु आप कह रहे हैं कि कर्म पाप-पुण्य का आधार नहीं होता है। हे प्रभु ! मैं आपके इस रहस्य को नहीं समझ पा रहा हूँ।

दो०- जस कर्म तस फल मिलै कहत सुनत सब संसार ।
आप कहत भिन्न मत प्रभु कैसे करहउँ इतवार ॥ १३ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जैसा कर्म किया जाता है। वैसा ही फल मिलता है, समस्त संसार ऐसा ही कहता और सुनता आया है। परन्तु आप फल का आधार भिन्न बता रहे हैं। ऐसी स्थिति में मैं आपकी बात को कैसे मानू ?

नहिं संशय सुत मरम गभीरा। भल विलख देखि कर्म हियँ धीरा ॥
कर्म अरु भाव नहिं बिलगाई। भाव सदा जीव कर्म करवाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! पाप-पुण्य का आधार कर्म नहीं होता है, इसमें संशय नहीं है।

तुम अच्छी तरह से हृदय में कर्म की प्रक्रिया को विचार करके देखो। कर्म और भाव अलग नहीं होते हैं । परन्तु भाव ही सदा जीव से कर्म करवाते हैं ।

दिखत कर्म इक फल भिन्ना । एक तें सुखद मन एक ते खिन्ना ॥
मन माहिं तुम करउ बिचारा । वैध हकीम कसाई व्यवहारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! कर्म दिखने में तो एक जैसा लगता है । परन्तु एक कर्म मन को सुख देनेवाला होता है और एक कर्म मन को दुःखी करनेवाला हो जाता है । मन में तुम वैध, हकीम और दुष्ट व्यक्ति के कर्मो का विचार करके देखो ।

वैध हकीम जो चलावइ छूरी । आरत हित जद्यपि कर्म कूरी ॥
जो दुष्ट करहिं छूरी आघाता । आरत बिकल भीषण संघाता ॥

व्याख्या - अगर वैध-हकीम चाकू से काट कर रोग का उपचार करते हैं, तो रोगी को सुख मिलता है । परन्तु कोई दुष्ट व्यक्ति अगर चाकू चलाता है, तो उससे जीव को भीषण कष्ट होता है ।

वैध हकीम कहावहिं उपकारी । दुष्ट जन सकल धिक्कारी ॥
इहाँ सरूप इक भाव अलादा । ता मत पाव सुख अरु ब्याधा ॥

व्याख्या - वैध-हकीम परोपकारी कहलाते हैं तथा दुष्ट लोगों को समाज में धिक्कारा जाता है । यहाँ कर्म का स्वरूप यानी छुरी चलाना एक जैसा ही है । परन्तु छुरी चलाने के पीछे भाव अलग होता है । इसलिए एक से सुख और दूसरे से दुःख मिलता है ।

दो०- कर्म ते बड़ भाव है भाव ही सब फल दिलाय ।
फल ते पुनि भाव उपजत बिरथा जीव फँस जाय ॥ १४ ॥

व्याख्या - कर्म से बड़ा भाव होता है तथा भाव ही सब फलों को दिलानेवाला होता है अर्थात भाव के अनुसार ही सब कर्मो का फल मिलता है । फल के चिन्तन से फिर भाव पैदा होने लग जाते हैं और जीव व्यर्थ में ही कर्म-फल में फँस जाता है ।

धन्य नाथ कर्म मरम बुझाई । तुम समान तुम्हीं जग गुसांई ॥
अबहु संशय मोर मन माहि । निष्काम कर्म काह समझाहि ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं धन्य हुआ कि आपने कर्म का रहस्य समझा दिया है । हे स्वामी ! आपके समान तो संसार में आप ही हैं । परन्तु प्रभु अभी भी मेरे मन में संशय है कि निष्काम कर्म कैसे होता है । दया करके मुझे समझाइए।

सुत कहुँ गूढ़ ते गूढ़ मरमा । जेहि विधि होहि कर्म निष्कर्मा ॥
करहि जेहि कर्म कामना हीना । बुध जन निष्काम कह दीना ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें कर्म के गूढ़ से गूढ़ रहस्य को समझा कर कहता हूँ। जिससे वास्तव में निष्काम कर्म घटित होता है । फल की इच्छा के बिना जो कर्म किया जाता है, उसे विद्वानों ने निष्काम कर्म कह दिया है ।

नहिं सत्य इहँ कहुँ समझाई । बिनु इच्छा कर्म कबहु सुहाई ॥
जब जब इच्छा रहइ मन माहि । तब तबहि फल बन्ध सुहाहि ॥

व्याख्या - परन्तु यह सत्य नहीं है । क्योंकि बिना इच्छा के क्या कभी कोई कर्म हो सकता है ? जब जब मन में इच्छा रहती है, तब तब फल का बन्धन रहता ही है।

इहाँ मरम अति गूढ़ छुपाई । सुनहउ मन बुद्धि चित्त लाई ॥
कहत सुलभ समुझत कठीना । कर्म कि सम्भव कामना हीना ॥

व्याख्या - यहाँ बहुत गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है । हे वत्स ! तुम मन और बुद्धि को चित्त में समाहित करके सुनो । कर्म का रहस्य कहने में आसान लगता है । परन्तु समझना बहुत कठिन है । क्योंकि बिना इच्छा के कर्म कैसे हो सकता है ? यह सबके मन में रहस्य बना रहता है ।

दो०- बिनु भाव इच्छा नहिं बिनु इच्छा कर्म न होय ।
कहत सुनत सब जग हय निज हिय समझै नहि कोय ॥ १५॥

व्याख्या - बिना भावों के इच्छा पैदा नहीं होती है और बिना इच्छा के कर्म नहीं हो सकता है । इस बात को संसार में सब कहते हैं और सुनते हैं । परन्तु हृदय में समझने का प्रयास नहीं करते हैं ।

जब जब कामना मन माहिं । तब तब फल बन्ध सुहाहिं ॥
बिनु कामना केहि विधि करमा । मम अनुग्रह समझहिं मरमा ॥

व्याख्या - जब जब मन में इच्छा रहती है, तब तब फल रूपी बन्धन रहता ही है । बिना इच्छा के कर्म कैसे होता है, इस रहस्य को मेरी कृपा से ही समझा जा सकता है ।

क्रिया अरु कर्म विराट भेदा । जद्यपि उभय सरूप अभेदा ॥
क्रिया ही कर्म जानत जग सारा । ताते परहि भ्रम जीव विचारा ॥

व्याख्या - क्रिया और कर्म में बहुत ही अन्तर होता है । हालांकि ऊपर से देखने पर दोनों एक से ही लगते हैं । इसलिए क्रिया को ही संसार कर्म मान लेता है। जिससे बेचारा जीव भ्रम में पड़ जाता है ।

क्रिया सकल जग फल अनुगामी । कर्म हय यज्ञ सोइ निष्कामी ॥
श्वास यजन सोइ यज्ञ कहाई । यज्ञ ही कर्म बाकी क्रिया भाई ॥

व्याख्या - समस्त क्रियाएँ फल की इच्छा का ही अनुगमन करती हैं । इसलिए केवल

यज्ञ ही कर्म होता है, जो निष्काम होता है। श्वास का श्वास में यजन ही वास्तविक यज्ञ होता है और यज्ञ ही कर्म होता है। बाकी सब क्रिया के अन्तर्गत आता है।

यथारथ कर्म यज्ञ नहिं दूजा। कर्मकाण्ड नहिं किछु तहँ पूजा ॥
ओ अहम सो मन्त्र ॐ कहाई। श्वास जानि घृत सम भाई ॥

व्याख्या - यथार्थ कर्म तो यज्ञ ही होता है और कोई दूसरा नहीं होता है। यज्ञ के लिए न कोई कर्मकाण्ड होता है और न ही वहाँ पर कोई पूजा विधान ही होता है। ओ अर्थात जीव और अहम यानी 'मैं'। अर्थात मैं और जीव एक हैं। इसी का प्रतीक ॐ मन्त्र होता है और श्वास को घी के समान समझना चाहिए।

दो०- कर्मकाण्ड जो यज्ञ करे क्रिया करि फल उलझाय।
फल इच्छा बन्धन बने जीव बिरथा जग भरमाय ॥ १६ ॥

व्याख्या - जो कर्मकाण्ड जैसा यज्ञ करते हैं, वे तो मात्र क्रिया करते हैं और फल में उलझ जाते हैं तथा फल की इच्छा बन्धन का कारण बन जाती है। जिससे जीव व्यर्थ में ही संसार में फँस जाता है।

सो कहउँ यज्ञ विधि समझाई। करहिं नित्य जेहि मुक्ति पाई ॥
सुरता सोई हय विधि यज्ञना। गमना गमन श्वास जपना ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ यज्ञ की विधि समझा कर कहता हूँ। जिसको अगर कोई नित्य करेगा, वही मुक्ति प्राप्त कर लेगा। सुरता ही यज्ञ की वास्तविक विधि है और श्वास का आना-जाना ही जप है।

चेतन पुरोहित जीव जजमाना। नाभी चक्र यज्ञ कुण्ड समाना ॥
हिरण्य गर्भ अनल अति पावन। प्राण हवि ग्यान लपटावन ॥

व्याख्या - वास्तविक यज्ञ का पुरोहित चेतन जीव होता है तथा जीव का नाभी मण्डल यज्ञ के कुण्ड के समान होता है। हिरण्य गर्भ ही पवित्र अग्नि होता है तथा प्राण ही हवि होता है। जिससे ज्ञान रूपी लपटें उठती हैं।

होवहि हवन श्वास-प्रश्वासा। सो यज्ञ असल करि विश्वासा ॥
उपजहिं भाव अन्न सरूपा। करहिं ग्रहण कल्याण अनूपा ॥

व्याख्या - श्वास का प्रश्वास में मिलना ही हवन होता है। यह यज्ञ ही वास्तविक यज्ञ होता है। इस यज्ञ क्रिया से जो भाव पैदा होते हैं, वे ही अन्न के समान होते हैं। जिनको ग्रहण करने से जीव का कल्याण सुनिश्चित हो जाता है।

करहहिं यज्ञ होहि निष्कामी। क्रिया सहज बिनु फल अनुगामी ॥
विगत चाह सकल फल देइ। इहँ सम क्रिया कर्म दूसर नेइ ॥

व्याख्या - जो यज्ञ करते हैं, वे निष्कामी हो जाते हैं और उनकी क्रिया सहज हो जाती

है। जिसमें फल का बन्धन नहीं रह जाता है। बिना इच्छा किये भी सब फल प्राप्त हो जाते हैं। अतः यज्ञ के समान क्रिया और कर्म संसार में दूसरा नहीं होता है।

दो०- यज्ञ ते अन्न उपजत अन्न ते मन पावन भाव ।
पावन भाव ते क्रिया बने सोइ क्रिया सहज कहाव ॥ १७॥

व्याख्या - यज्ञ से अन्न पैदा होता है अर्थात विशुद्ध प्राण पैदा होता है और अन्न से मन के भाव पवित्र हो जाते हैं तथा मन के पवित्र भावों से जो क्रिया पैदा होती है, वो सहज हो जाती है ।

क्रिया सहज जहँ भावी अभावा। बिनु भावी सकै कि काम सतावा॥
यज्ञ सदा वर्तमान रमाई। भावी चिन्तन तहँ न चलाई ॥

व्याख्या - जब क्रिया सहज हो जाती है, तब भविष्य का चिंतन मिट जाता है और भविष्य के चिन्तन के बिना इच्छाएँ नहीं सता सकती हैं। यज्ञ हमेशा वर्तमान में रमन कराता है। इसलिए यज्ञ क्रिया से भविष्य का चिन्तन नहीं हो पाता है।

भावी अभाव क्रिया सहज सुहाए। सोइ क्रिया कर्म निष्काम कहाए ॥
कर्म निष्काम यज्ञ आधारा। सत्य इहँ मोर दृढ़ विचारा ॥

व्याख्या - भविष्य के चिन्तन के अभाव में क्रिया सहज हो जाती है तथा वह सहज क्रिया ही निष्काम कर्म कहलाती है। निष्काम कर्म का आधार यज्ञ ही होता है। यह मेरा दृढ़ सत्य कथन है।

ध्यान ही यज्ञ बाकी पाखण्डा। लय योग सोइ शक्ति अखण्डा ॥
विगत चाह सकल फल दाई। इहँ सम क्रिया कर्म दूसर नाई ॥

व्याख्या - ध्यान की क्रिया ही वास्तविक यज्ञ होता है। बाकी यज्ञ के नाम पर पाखण्ड होते हैं। ध्यान से जब लय योग हो जाता है, तब अखण्ड शक्ति पैदा हो जाती है। उस अवस्था में समस्त इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं। जिससे समस्त फलों की प्राप्ति हो जाती है। अतः यज्ञ के समान न संसार में कोई क्रिया है और न दूसरा कोई कर्म है।

क्रिया कर्म भिन्न बिनु ग्याना। यज्ञ ते पुनि भयउ एक समाना ॥
पुनि तहँ क्रिया कर्म नहिं भेदा। उभय विगत सब जग खेदा ॥

व्याख्या - क्रिया और कर्म बिना ज्ञान के भिन्न लगते हैं। परन्तु यज्ञ से दोनों एक हो जाते हैं और क्रिया व कर्म का भेद मिट जाता है और दोनों सहज हो जाते हैं। जिससे सब कष्टों का निवारण हो जाता है।

दो०- यज्ञ ही ध्यान हय ध्यान ही ग्यान उमगाय ।
ग्यान से सहजता आवै सहजता सोइ निष्काम कहाय ॥ १८॥

व्याख्या - यज्ञ की क्रिया ही ध्यान होता है तथा ध्यान से ही हृदय में ज्ञान पैदा

होता है और ज्ञान से जीव में सहजता आ जाती है तथा सहजता ही निष्काम कर्म की अवस्था कहलाती है ।

यज्ञ सम नहिं कोउ पुण्य दूजा । पावहिं सकल मानस करि पूजा ॥
नित्य करहिं जो यज्ञ करमा । तिन्ह हियँ बसहहिं धरमा ॥

व्याख्या - यज्ञ के समान संसार में दूसरा कोई पुण्य नहीं होता है । यज्ञ के प्रभाव से मानसिक पूजा से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है । इसलिए जो नित्य यज्ञ करते हैं, उनके हृदय में धर्म का निवास हो जाता है ।

अहिंसा परम धर्म बेद बखाना । सोइ फल सहजहि यज्ञ प्रदाना ॥
विगत वासना अहिंसा कहाई । यज्ञ अनल सब वासना जलाई ॥

व्याख्या - अहिंसा को वेदों ने परम धर्म बताया है और यज्ञ सहज में ही अहिंसा प्रदान कर देता है । क्योंकि विषय-वासनाओं से मुक्त अवस्था अहिंसा कहलाती है और यज्ञ की अग्नि में विषय-वासनाएँ जल जाती हैं।

सो यज्ञ सहज धर्म प्रकटाइ । जानइ मरम सन्त कहाई ॥
सुत कहा मैं इहाँ यज्ञ प्रतापा । मिटावहिं जग सकल संतापा ॥

व्याख्या - इसलिए यज्ञ कर्म सहज में ही धर्म पैदा कर देता है और जो धर्म के इस मर्म को जान लेते हैं, वे सन्त कहलाते हैं । हे वत्स ! मैंने तुम्हें यहाँ यज्ञ के प्रताप को समझा दिया है । जो संसार में समस्त संतापों को मिटानेवाला होता है ।

नित्य यज्ञ जो तुम करइब । नहिं संशय परम पद लेइब ॥
रहइब सहज पर उपकारी । आनन्द मगन गत विकारी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अगर तुम नित्य यज्ञ करोगे, तो इसमें संदेह नहीं है कि तुम परम पद प्राप्त कर लोगे तथा सदा तुम सहज और परहित में रत रहोगे तथा समस्त विकार मिट जायेंगे और आनन्द में मगन रहोगे।

दो०- धन्य धन्य प्रभु तुम धन्य धन्य तुम जगतेश ।
मरम गभीर समझायउ मिटै मोर सकल क्लेस ॥ १९ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं, हे जगत के ईश्वर ! आप धन्य हैं, जो आपने मुझे गम्भीर रहस्य समझा दिया है । जिसको सुनकर मेरे समस्त क्लेशों का नाश हो गया है ।

छ० - मति मोरी अति भोरी लीला अनुपम केहि विधि गाउँ ।
जप जोग बिरागा नहिं मन अनुरागा तोर अनुग्रह मैं चाउँ ॥
ऋषि मुनि ध्यावहिं पार न पावहिं निज मति निज समझाई ।
नाना ग्रन्था बहुरि पंथा बिनु अनुभूति जीव जग उरु झाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरी बुद्धि तो भोली है और आपकी लीला अनुपम है । इसलिए आपकी लीला का मैं कैसे बखान कर सकता हूँ। मैं जप, योग, वैराग्य भी नहीं जानता हूँ तथा मेरे मन में आपके प्रति अनुराग भी नहीं है । फिर भी हे प्रभु ! मैं आपकी कृपा चाहता हूँ । ऋषि-मुनि आपका भजन करते हैं । फिर भी आपके रहस्य को नहीं जान पाते हैं । सब अपनी-अपनी बुद्धि से आपको समझते हैं । नाना प्रकार के ग्रन्थ और पंथों में जीव बिना निज अनुभूति के संसार में उलझ जाता है ।

छ० - **सुनहु दयाला करहु निहाला तोर शरण अब मैं आई ।**
आठों यामा जपूँ तोर नामा अन्तकाल तोर पुर जाई ॥
मन क्रम बानी छाडूँ नादानी सहज रहउँ जग सदाई ।
यह बर देहउ स्वामी हे अन्तरयामी तुम्हहीं मोर गुसाँई ॥

व्याख्या - हे दयालु ! मुझ पर कृपा करके निहाल कर दीजिए । मैं अब आपकी शरण में आया हूँ । हे प्रभु ! मैं आठों पहर आपका नाम जपूँ तथा अन्तकाल में आपके धाम को प्राप्त होऊँ, ऐसी कृपा कीजिए । हे प्रभु ! मैं मन-वचन और कर्म की चतुराई छोड़ कर सदा संसार में सहज रह सकूँ । हे प्रभु ! मुझे वरदान दीजिए। आप तो अन्तर्यामी हैं । आपके सिवा संसार में मेरा और कोई नहीं है ।

दो०- एवमस्तु सुत सदा भगति रहइब हियँ तोर ।
मागउँ अरु बरु नहिं अदेय किछु मोर ॥ २० ॥

व्याख्या - हे वत्स ! ऐसा ही होगा तथा आपके हृदय में सदैव भक्ति बनी रहेगी। हे वत्स ! तुम और कुछ वर मांग लो । मुझे संसार में ऐसा कुछ भी नहीं दिखता है, जो मैं तुमको नहीं दे सकता ।

जानहउ नहिं मैं साँच असाँचा । देहउ बर जो तुम्हार मन राचा ॥
धन्य धन्य भगत प्रिय मोरे । रहइब संतोष सदा हियँ तोरे ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं तो उचित-अनुचित (सत्य-असत्य) का भेद नहीं जानता हूँ। इसलिए जो आपको अच्छा लगे, वो ही वर मुझे दीजिए । हे मेरे प्रिय भक्त! तुम धन्य हो ! इसलिए तुम्हारे हृदय में संतोष सदा निवास करेगा।

परहित भाव प्रबल मन माहिं । तू पाइब अनुग्रह मोर सदाहिं ॥
अबिरल भगति अरु सतसंगा । रहइब हियँ सदा तोर अभंगा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तेरे हृदय में परहित का भाव बहुत प्रबल है । इसलिए तू सदा मेरी कृपा प्राप्त करता रहेगा तथा तेरे हृदय में निरन्तर भक्ति और सत्संग का भाव बना रहेगा ।

जब जब करहि स्मरण मोहि । आइ सँभालउँ अविलम्ब तोहि ॥
जो जो तू कहइब जन हेतु । मैं करइब सब मरजादा सेतु ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तू जब जब मुझे याद करेगा, मैं तुरन्त तुझे आकर सम्भाल लूँगा। तू जन कल्याण के लिए जो जो कहेगा, मैं वो सब मेरी मर्यादा रखने के लिए करूँगा।

भोगहु भोग सकल निष्कामा । अन्तकाल पाइब मोरइ धामा ॥
मैं प्रसन्न सुत सत्य बखानी । लेखनी तुम्हार रहउँ समानी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम निष्काम हो कर समस्त भोगों का सुख लो और अन्त काल में मेरे ही धाम को प्राप्त करोगे । हे वत्स ! सत्य कह रहा हूँ । मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । इसलिए तुम्हारी लेखनी में निवास करता हूँ ।

दो०- परहित पावन शुभ लिखा हेतु मंगल सकल जहान ।
पढ़ गुन जेहि अनुसरहिं तिन्ह हियँ उपजाउँ मैं ग्यान ॥ २१ ॥

व्याख्या - तुमने सदा परहित की पवित्र भावना से शुभ लेखन लिखा है, जो समस्त संसार के लिए मंगल का साधन है । अतः जो इसको पढ़ कर व समझ कर अनुसरण करेंगे, मैं उनके हृदय में ज्ञान पैदा करूँगा ।

मोरहहिं रूप हय इहँ ग्रन्था । बिगत जाति पांति मुक्त सब पंथा ॥
इहँ ग्रन्थ मैं सदा करूँ निवासा । बचन सत्य करो मोर विश्वासा ॥

व्याख्या - यह ग्रन्थ मेरा ही रूप है तथा यह समस्त जाति व पंथों से मुक्त है । इसलिए मैं सदा इसमें निवास करता हूँ । ये मेरे सत्य वचन हैं । विश्वास करो ।

इहँ ग्रन्थ चारि फल खानि । इहँ माझ मोर मरम समानी ॥
सहित श्रद्धा करहिं जेहि पाठा । जीतहहिं सहज प्रकृति आठा ॥

व्याख्या - यह ग्रन्थ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों को देनेवाला है तथा इसमें मेरा रहस्य छिपा हुआ है । जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करेगें, वे आठ प्रकार की प्रकृति को वश में कर लेंगे ।

होवहिं सहज धरम आचारी । बिनुहिं प्रयास मुक्ति अधिकारी ॥
सकल विषमता छँटहिं कैसे । भानू प्रकाश नसई तम जैसे ॥

व्याख्या - नित्य पाठ करनेवाले सहज में धर्म का आचरण करने लग जाते हैं और बिना प्रयास के ही मुक्ति के अधिकारी बन जाते हैं तथा इसके अध्ययन से समस्त विषमताएँ वैसे ही हट जाती हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार मिट जाता है।

रिपु करहिं मित व्यवहारा । पल पल पावहिं मोर सहारा ॥
सुख वैभव परिवार समाई । अनुकूल रहिं पति पत्नी सदाई ॥

व्याख्या - शत्रु भी मित्र जैसा व्यवहार करने लग जाते हैं तथा प्रति क्षण मेरा

सहारा मिलने लग जाता है। परिवार में सुख-शान्ति आ जाती है तथा पति-पत्नी एक दूसरे के अनुकूल हो जाते हैं।

दो०- सागर सम गम्भीर है गंगा सम पावन ग्रन्थ ।
सर्व हिताय सुलभ यह अन्धहु दिखावहिं पंथ ॥ २२ ॥

व्याख्या - यह ग्रन्थ सागर की तरह गम्भीर है तथा गंगा की तरह पावन करनेवाला है। यह सभी के हित के लिए है तथा अन्धों को भी रास्ता दिखानेवाला है।

धन्य धन्य मैं भयउँ नाथा। मोहि पर रखहिं अनुग्रह हाथा ॥
जय जय भगवन्त अनन्ता। जय जय करुणा कर मुकुन्दा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मैं धन्य हो गया कि मेरे ऊपर आपने अपना कृपाहस्त रख दिया। हे भगवन् ! आपकी जय हो, हे अनन्त ! आपकी जय हो। हे करुणाकर ! हे मुकुन्द ! आपकी जय हो।

जय भवेश जय भव तारकं। जय तपेश जय माया निवारकं ॥
जय जगदीश जय सृष्टिकर्ता। जय महेश जय भव दुख हर्ता ॥

व्याख्या - हे भावों के ईश्वर ! आपकी जय हो, हे भावों से मुक्त करानेवाले आपकी जय हो। हे तप के ईश्वर, हे माया से मुक्ति दिलानेवाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे जगत के ईश्वर ! आपकी जय हो, हे सृष्टि के रचियता ! आपकी जय हो। हे महेश! आपकी जय हो, हे भावों के दुःख दूर करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो।

जय दीन बन्धु जय असुरारी। जय पालन कर्ता जय मुरारी ॥
जय गुणागार जय गुणातीता। जय त्रिकालज्ञ जय कालातीता ॥

व्याख्या - हे दीन बन्धु ! आपकी जय हो, हे असुरारी ! आपकी जय हो, हे जगत के पालनकर्ता ! आपकी जय हो, हे मुरारी ! आपकी जय हो। हे गुणों के घर आपकी जय हो, हे गुणातीत प्रभु ! आपकी जय हो। हे त्रिकालज्ञ ! आपकी जय हो, हे काल से परे प्रभु ! आपकी जय हो।

जय भगत वत्सलं जय रक्षकम्। जय सर्वज्ञं जय सर्व सहायकं ॥
जय निर्गुण सगुणं जय निराकारं। जय अजं अजेय जग पालकम् ॥

व्याख्या - हे भक्त वत्सल भगवन ! आपकी जय हो, हे सबके रक्षक प्रभु! आपकी जय हो। हे सर्वज्ञ ! आपकी जय हो, हे सबके सहायक प्रभु ! आपकी जय हो। हे गुणों से निर्लिप्त व गुणों से युक्त प्रभु ! आपकी जय हो। हे जन्म रहित प्रभु! हे अजय व जगत के पालनकर्ता प्रभु! आपकी जय हो।

जय अलखं जय निरञ्जनम्। जय माया पतिम भगत उद्धारकम् ॥
जय आनन्द कन्द जय मंगलं। जय कृपालं जय सर्व व्यापकं ॥

व्याख्या - हे अलख ! आपकी जय हो, हे निरञ्जन ! आपकी जय हो, हे मायापति! आपकी जय हो । हे भक्तों का उद्धार करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे अजेय! आपकी जय हो, हे जगत का पालन करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे आनन्द के मूल प्रभु ! आपकी जय हो, हे मंगल मूर्ति प्रभु ! आपकी जय हो । हे कृपालु ! आपकी जय हो, हे सर्व व्यापक प्रभु ! आपकी जय हो ।

दो०- तुम्ह समान तुम्हीं प्रभु अरु नहिं जग दूजा कोय ।
सोहि समझहिं नाथ आपको जेहि आपुन अनुग्रह होय ॥ २३॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके समान तो आप ही हैं प्रभु और दूसरा आपके समान कोई नहीं है । हे प्रभु ! आपको तो वो ही समझ सकता है, जिस पर आपकी अनुकंपा होती है ।

छ०- जय असुरारि जय मुरारि जय जय सृष्टि कर्ता ।
जय भगवन्ता जय अनन्ता जय जय जग भर्ता ॥
जय सुरेश जय महेश जय जय शरण सुख दाता ।
जय जगतेश जय विशेष जय जय भव दुःख त्राता ॥

व्याख्या - हे असुरारि ! आपकी जय हो, हे मुरारी ! आपकी जय हो, हे सृष्टि कर्ता भगवान ! आपकी जय हो । हे भगवन्त ! हे अनन्त ! आपकी जय हो, हे जगत के पालनकर्ता ! आपकी जय हो । हे देवताओं के ईश्वर ! आपकी जय हो, हे महा ईश्वर ! आपकी जय हो, हे शरण देनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे जगत के ईश्वर ! आपकी जय हो, हे अशेष ! आपकी जय हो, हे भावों के दुःख से मुक्त करानेवाले प्रभु ! आपकी जय हो ।

दो०- भगति ग्यानमय इहँ कथा पढ़हिं गुनहिं जेहि नर नारी ।
सत इच्छा पूर्ण सकल कृपा करहिं तिन्ह हिय असुरारि ॥ २४॥

व्याख्या - भक्ति और ज्ञान से पूर्ण इस कथा को जो भी स्त्री-पुरुष पढ़ कर समझेंगे! उनकी समस्त सात्विक इच्छाएँ पूर्ण हो जायेंगी तथा उन पर भगवान कृपा करेंगे ।

॥ इति श्री मानवधर्मशास्त्रस्य नाम रूप मर्मार्थम भगति ज्ञान दायकं तृतीय स्कन्ध सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण चतुर्थ पड़ाव ॥

ॐ **गुरुदेवाय नमः**

ॐ **परमात्मने नमः**

चतुर्थ स्कन्ध

अखण्डम् अनन्तम् सहज दयालम् परमेश्वरम् नमो नमः ।
अकथं अनादिम् अगाधं सर्वाकारं सर्वेश्वरम् नमो नमः ।।
गुणागारं गुण निर्लिप्तं गुणाभासितं गुणेश्वरम् नमो नमः ।
अक्षरम् निराकारम् जगताधारम् जगतेश्वरम् नमो नमः ।।

व्याख्या - हे अखण्ड, अनन्त, सहज में दया करने वाले परमेश्वर ! आपको नमस्कार । हे अकथनीय, अनादि, अगाध, सब आकारों में रहने वाले सबके ईश्वर ! आपको नमस्कार । हे गुणों के घर, गुणों से निर लिप्त रहने वाले तथा गुणों के द्वारा आभासित होने वाले गुणों के ईश्वर ! आपको नमस्कार । हे अक्षर, निराकार, जगत के आधार व जगत के ईश्वर ! आपको नमस्कार ।

विश्वसदृश्यं, विश्वमूलम् विश्वपारम् विश्वेश्वरम् नमो नमः ।
जीव रक्षकम् जीव भक्षकं जीव पादकं जीवेश्वरम् नमो नमः ।।
धर्माधारम् धर्मापारम, धर्म सदृश्यम् धर्मेश्वरम् नमो नमः ।
भक्तवत्सलम् भगतरक्षकम् भगताधारम् भगतेश्वरम् नमो नमः ।।

व्याख्या - हे विश्व के रूप में दिखाई पड़ने वाले, विश्व के मूल तथा विश्व से परे व विश्व के ईश्वर ! आपको नमस्कार हो । हे जीव के रक्षक-भक्षक तथा जीव को पैदा करने वाले जीव के ईश्वर ! आपको नमस्कार हो । हे धर्म के आधार, धर्म से परे व धर्म के सदृश्य, धर्म के ईश्वर ! आपको नमस्कार । हे भक्त वत्सल, हे भक्तों के रक्षक, हे भक्तों के आधार व भक्तों के ईश्वर ! आपको नमस्कार हो ।

प्रकृतिमूलम् प्रकृति पारम् प्रकृति सदृश्यम प्रकृतेश्वरम् नमो नमः ।
भावमूलम् भाव पारम् भाव रूपम् भावेश्वरम् नमो नमः ।।
उपमामूलम् उपमापारम् उपमारूपम् उपमेश्वरम् नमो नमः ।
अहम् त्वमेव शरणम् त्वमेव शरणम् शरणागतेश्वरम् नमो नमः ।।

व्याख्या - हे प्रकृति के मूल, प्रकृति से परे, प्रकृति के सदृश्य व प्रकृति के ईश्वर! आपको नमस्कार । हे भावों के मूल, भावों से परे, भावों के रूप व भावों के ईश्वर ! आपको नमस्कार हो । उपमा के मूल, उपमा से परे, उपमा के रूप व उपमा के ईश्वर ! आपको नमस्कार । हे शरणागतों के ईश्वर ! मैं आपकी शरण में हूँ, मैं आपकी शरण में हूँ ।

दो०- अजर अमर अलख विलख तुम निरञ्जन निराकार ।
बाहिर भीतर सब तुम्हीं करहउँ कोटि कोटि नमस्कार ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप अजर, अमर हैं । आप जानने में नहीं आने वाले हैं तथा आप ही भक्तों के लिए जानने में आने वाले हैं । आप निरञ्जन-निराकार हैं । हे प्रभु ! आप बाहर-भीतर सब जगह हैं । मैं आपको करोड़ों-करोड़ों नमस्कार करता हूँ ।

तुम्हहीं सकल इहँ मैं बूझा । तुम छाड़ि नहि हेतु जग दूजा ॥
सृष्टि सकल तुम उपजाई । नहिं संशय समझा मैं मन माई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही सब कुछ हैं, यह अब मेरी समझ में आ गया है तथा इस जगत का कारक आपके अलावा दूसरा कोई नहीं है । यह समस्त सृष्टि आपने ही पैदा की है । इसमें अब मुझे संदेह नहीं है । यह मेरे मन में समझ आ गया है ।

अबहु जिज्ञासा मोर मन माहि । केहि हेतु तुम सृष्टि उपजाहि ॥
केहि विधि प्रगटेउ सुर नाना । समझाइ कहउ कृपा निधाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे मन में अभी भी यह जानने की जिज्ञासा बनी हुई है कि आपने किस कारण से यह समस्त सृष्टि पैदा की है तथा किस प्रकार विभिन्न देवताओं को प्रगट किया है ? हे कृपानिधान! यह सब मुझे समझाकर कहिए ।

केहि विधि चलइ प्रकृति तोरी । कहु नाथ मम मति अति भोरी ॥
तुम कर्ता तउ अकर्ता कहाई । केहि विधि इहँ संभव गुसांई ॥

व्याख्या - हे नाथ ! आपकी प्रकृति कैसे संचालित होती है, यह मुझे बताइए। मेरी बुद्धि भोली है । आप ही सब कुछ करने वाले हैं, तो भी आप अकर्ता ही कहलाते हैं । यह सब कैसे सम्भव है ?

संक्षेपउ सुत कहउँ बखानी । सत्य वचन नहिं कोउ कहानी ॥
मोर संकल्प सृष्टि उपजाई । संकल्प सहज सो इहँ प्रकटाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं संक्षेप में तुम्हें बताता हूँ, सुनो । यह कोई कहानी नहीं है। यह तो सत्य बात है कि मेरे संकल्प से समस्त सृष्टि पैदा हुई है और संकल्प पैदा होना मेरा सहज स्वभाव है । इसलिए यह समस्त सृष्टि पैदा हुई है ।

दो०- संकल्प से सृष्टि भयी सृष्टि सकल प्रकृति अपार ।
द्रष्टा बनि मैं देखत रहूँ सब जगत नित्य व्यवहार ॥ २ ॥

व्याख्या - संकल्प से सृष्टि पैदा हुई है और समस्त संकल्प ही अपार प्रकृति के रूप में प्रकट है । मैं तो इसलिए द्रष्टा बन कर समस्त जगत के व्यवहार को

देखता रहता हूँ ।

जैसे वचन निकसत मुख तें । ऐसउ संकल्प प्रकट मुझ तें ॥
वचन सुतन्त्र जैसे वक्ता । ऐसउ भयउ संकल्प जगता ॥

व्याख्या - जैसे वक्ता के वचन मुख से निकल जाते हैं, ऐसे ही मुझसे संकल्प प्रगट हो गया है । जैसे वक्ता से वचन स्वतन्त्र हो जाते हैं, वैसे ही मेरा संकल्प मुझसे स्वतन्त्र हो गया है ।

वचन फिरत नहिं युक्ति कोई । संकल्पउ वापिस नहिं होई ॥
वचन प्रभाव दूसर वचना । ऐसउ प्रेरहउँ मोरी रचना ॥

व्याख्या - जैसे बोले हुए शब्दों को वापस लेने की कोई युक्ति नहीं होती है, वैसे ही मेरा संकल्प वापस नहीं हो पाता है । परन्तु दूसरा वचन बोलकर जैसे पहले वाले वचन को प्रभावित किया जा सकता है, वैसे ही मैं मेरी सृष्टि को प्रेरित करके प्रभावित करता रहता हूँ ।

वक्ता भिन्न अभिन्न वचना । समझ ऐसउ सुत इहँ रचना ॥
सोइ मैं कर्ता अकर्ता कहाउँ । इतनेउ समझ सत्य बताउँ ॥

व्याख्या - जैसे शब्द बोलने वाला वक्ता शब्द से भिन्न भी होता है और अभिन्न भी होता है, ऐसे ही मैं मेरी सृष्टि से भिन्न भी हूँ और अभिन्न भी हूँ । इसलिए मैं सब कुछ करने वाला और कुछ भी नहीं करने वाला कहलाता हूँ । हे वत्स ! सत्य बता रहा हूँ । मेरा भेद इतना ही है । तू समझ ले ।

मोर प्रेरणा चलइ प्रकृति सारी । नहिं संशय कहउँ सत्य विचारी ॥
मैं ही प्रगटउँ जग नाना रूपा । मैं ही देवी देवता कला अनूपा ॥

व्याख्या - मेरी प्रेरणा से ही समस्त प्रकृति संचालित होती है । मैं सत्य कह रहा हूँ । इसमें संशय नहीं है । मैं ही संसार में नाना रूपों में प्रकट हूँ । मैं ही देवी, देवता आदि अनुपम कलाओं से युक्त हूँ ।

दो०- लघु बड़ जीव जग सब मोरहि अंश जान ।
मोते प्रगट जीव सकल मोते मिलहि आन ॥ ३ ॥

व्याख्या - संसार के समस्त छोटे-बड़े जीव मेरे ही अंश जानने चाहिए। ये सब जीव मुझसे ही प्रकट होते हैं और मुझमें ही आकर मिल जाते हैं ।

उत्पति देव कहउँ मरमा । नहिं भिन्न इहँ प्रकृति धरमा ॥
जेहि भांति भयी मानुष दरकारा । सेहि मत देव कल्पना अपारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं देवताओं की उत्पत्ति के मर्म को कहता हूँ, सुनो- देव उत्पत्ति प्रकृति के धर्म से भिन्न नहीं है । जैसे-जैसे प्रकृति से मनुष्य की जरूरत

पड़ती गयी, वैसे-वैसे ही देवताओं की कल्पना होने लग गई ।

मैं ही भयउ सकल देवाधिदेवा । करहउ विश्वास वचन मेवा ॥
मोरहहि हियँ प्रेरणा अंशा । बनि देव करहहिं पूर्ण मंशा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं ही समस्त देवताओं का मूल हूँ । तुम मेरे वचनों का विश्वास करो । मेरे हृदय की प्रेरणा के अंश ही प्रकृति में देवता बन कर सब लोगों की मन की इच्छा को पूर्ण करते रहते हैं ।

मोर प्रेरणा प्रकृति उपजाई । क्षमता पूर्ण तहँ रहि समाई ॥
पंच भूत सोइ प्रकृति आधारा । मोर चेतना भइ तिन्ह सहारा ॥

व्याख्या - मेरी प्रेरणा ने प्रकृति को पैदा किया है । इसलिए उसमें समस्त क्षमता समाहित है । पाँच भूत (जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु व आकाश) ही प्रकृति के आधार हैं तथा मेरी चेतना प्रकृति का सहारा है ।

प्रति भूत देव कल्पना भाई । सब जद्यपि मोरहि प्रभुताई ॥
जल दरकार मानुष सुहाई । बरूण सोई जल देव कहाई ॥

व्याख्या - प्रत्येक भूत तत्व को आधार बना कर मनुष्य ने देवताओं की कल्पना शुरू कर दी । हालांकि कल्पना करने में भी मेरी ही क्षमता निहित होती है । जब मनुष्य को जल की आवश्यकता हुई, तो जल देवता के रूप में वरूण की कल्पना कर ली ।

धरण भरण सब भा जमी तें । अर्थ कल्पना की निज मति तें ।
अग्नि बिनु होहि नहिं अहारा । सोइ कल्प अग्नि देव पुकारा ॥

व्याख्या - सब जीवों का धारण होना व सबका भरण-पोषण पृथ्वी बिना सम्भव नहीं होता । इसलिए मनुष्य ने अपनी बुद्धि से कल्पना करके पृथ्वी देव मान लिया । बिना अग्नि तत्व के भोजन सम्भव नहीं है । इसलिए अग्नि देव की कल्पना हो गयी ।

जीवन आधार वायु सुहाई । सोइ कल्पित वायु देव बनाई ॥
भयउ आकाश अनन्त अपारा । सो कहहि देव मनुज पुकारा ॥

व्याख्या - जीवन का आधार वायु होता है । इसलिए कल्पना करके वायु देव बना लिया । आकाश अनन्त और अगाध होता है । इसलिए आकाश को भी देवता मान लिया ।

दो०- सब कल्पना देव भयी कीन्ह मनुज भावानुसार ।
मोर प्रेरणा सब करहि देखि जीव व्यवहार ॥ ४ ॥

व्याख्या - मनुष्य ने भावों के अनुसार कल्पनाएँ की हैं और ये कल्पनाएँ ही देवताओं का रूप धारण कर ली हैं । मेरी प्रेरणा ही सब फल देने वाली होती

है । जो जीव का व्यवहार देख कर ही सारे फल देती है ।

प्रतिइच्छा सुत देव उपजाई । मरम परम सोइ तोहि बताई ॥
मोहि छाड़ि नहिं कोउ जग दूसर । मैं ही देव मूल मैं ही ईश्वर ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मनुष्य की प्रत्येक इच्छा के अनुसार देवताओं की कल्पना हो गयी है । यह परम रहस्य मैंने तुमको बता दिया है । मेरे अलावा इस संसार में दूसरा कोई नहीं है । मैं ही सब देवों का मूल हूँ तथा मैं ही भगवान हूँ ।

मैं ही चेतन पुरुष सुहाई । नारी प्रकृति जग धारणि माई ॥
मोर नारी सोई शक्ति अपारा । नाना नाम परहि भाव अनुसारा ॥

व्याख्या - मैं ही जगत में चेतना के रूप में पुरुष हूँ और मेरी प्रकृति ही जगत को धारण करने वाली माता है । मेरी नारी (नाड़ी) होने के कारण उसमें अपार शक्ति होती है । इसलिए भावना के अनुसार उसके अनेक नाम हो गये हैं ।

सकल करहि वो परिचालन । सोइ नाम अन्नपूरणा धारण ॥
सब लच्छन युक्त शक्ति मोरी । सोहि मातु लक्ष्मी भयी सुत तोरी ॥

व्याख्या - वह शक्ति सबका पालन करती है । इसलिए अन्नपूर्णा नाम धारण किया है तथा मेरी प्रकृति शक्ति समस्त लक्षणों से युक्त है, इसलिए वह लक्ष्मी के नाम से जानी जाने वाली तेरी माता है ।

शव धारहि सोइ शिवा कहाई । स्ववस भयी सोइ स्वधा माई ॥
मंगल मूल वह त्रिगुण धारी । निगम पुराण मंगला पुकारी ॥

व्याख्या - जीव के शरीर को धारण करने वाली शक्ति होने के कारण वह शिवा कहलाती है तथा वह स्वयं के अधीन ही होती है, इसलिए स्वधा कहलाती है । वह शक्ति मंगल का मूल तथा तीन गुणों को धारण करने वाली होती है । इसलिए निगम-पुराणों ने मंगला शक्ति के रूप में वर्णन किया है ।

दो०- दुर्ग समान दुर्गम भयी सो जग दुर्गा कहाय ।
कालातीत एक रस महाकाली सोइ नाम धराय ॥ ५ ॥

व्याख्या - वह प्रकृति शक्ति दुर्ग के समान अभेद्य होती है, इसलिए दुर्गा कहलाती है तथा सदा एकरस व काल से अतीत होती है । इसलिए संसार में महाकाली के नाम से जानी जाती है ।

सकल गुण मयी सृष्टि आधारी । इहँ कर्ता भर्ता हर्ता जग सारी ॥
भाव आधार सो भवानी कहाई । सुर वास सरस्वती सुहाई ॥

व्याख्या - यह शक्ति समस्त गुणों से युक्त होकर सृष्टि का आधार बनी हुई है। यह समस्त संसार की कर्ता, भर्ता, वह हर्ता बनी हुई है । इसी से भाव पैदा होते

हैं । इसलिए यह भवानी है तथा सुरों (चन्द्र स्वर व सूर्य स्वर) में निवास करने के कारण सरस्वती कहलाती है ।

एहि भाँति भये नाम अनन्ता । सब घट वास मसक प्रजन्ता ॥
इहँ अधीन सब क्षमता भाई । महिमा शक्ति कोउ सकै न गाई ॥

व्याख्या - इस प्रकार प्रकृति शक्ति के अनन्त नाम हो गये हैं । यह शक्ति तो मच्छर से लेकर सभी जीव जन्तुओं में निवास करती है । इसके अधीन समस्त जगत की क्षमता समाहित होती है । इसलिए शक्ति की महिमा को कोई पूर्ण रूप से बता नहीं सकता ।

ग्यान विग्यान सब इहँ विभूति । होवत सकल विधान करतूती ॥
कारज कारण विधान आधारा । चलहिं विधि लेइ क्रिया सहारा ॥

व्याख्या - ज्ञान-विज्ञान सब प्रकृति की विभूतियाँ हैं तथा जो भी घटनाएँ घट रही हैं, वे सब विधान के अनुसार हो रही हैं । कार्य और उसका कारक ही विधान का आधार होता है तथा विधि क्रिया का सहारा लेकर चलती है ।

प्रकृति सोइ मातु जगदम्बा । घट घट बास सब अवलम्बा ॥
आदि अन्त नहिं कोउ आधारा । निज बस निज सोहम् सहारा ॥

व्याख्या - प्रकृति शक्ति ही जगत माता जगदम्बा है । जो सब जीवों के हृदय में निवास कर सबको आधार देती है । इस जगदम्बा शक्ति की न कोई शुरूआत है और न ही इसका अन्त है तथा इसका कोई आधार भी नहीं है तथा यह केवल स्वयं के ही बस में होती है तथा स्वयं ही स्वयं को आधार देती है ।

दो०- महिमा अमित अपार अति ऋषि मुनि वेद न सकै बखान ।
सो हिय नारी प्रकृति मोरी जगत जननी सुत जान ॥ ६ ॥

व्याख्या - इस शक्ति की महिमा अमित व अपार है । जिसका पार ऋषि-मुनि व वेदों ने भी नहीं पाया है । यह प्रकृति शक्ति ही मेरी हृदय स्थित नाड़ी है । इसी को जगत को पैदा करने वाली जानों ।

मातु शरण सदा सुख दाई । जगत मातु मोर प्रकृति भाई ॥
उचित रहउ प्रकृति शरणा । सहजहि बहि आनन्द झरणा ॥

व्याख्या - माता की शरण हमेशा सुख देने वाली होती है और प्रकृति ही जगत की माता है । इसलिए उचित यही है कि जीव को प्रकृति की शरण में रहना चाहिए। जिससे सहज में ही आनन्द रूपी झरना बहने लग जायेगा ।

शक्ति मरम मैं कहा बखानी । अब सुन सुत देवन कहानी ॥
सकल भाव प्रकृति उपजाई । भाव ही सुर असुर सुहाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैंने शक्ति का रहस्य समझा दिया है। अब तुम देव उत्पत्ति सुनो। समस्त भाव प्रकृति शक्ति से ही पैदा होते हैं और ये भाव ही देवता व असुरों के रूप में जाने जाते हैं।

असुर सकल तामस भावा। सत रज भाव देव कहावा ॥
सो देवनहु मातु प्रकृति मोरी। इन्द्रादि देव जगत करोरी ॥

व्याख्या - तामसिक भाव असुर कहलाते हैं तथा सात्विक भावों से युक्त राजसिक भाव देवता कहलाते हैं। इस प्रकार देवताओं की उत्पत्ति भी मेरी प्रकृति शक्ति से ही होती है। इस प्रकार इन्द्र आदि करोड़ों देवता जगत में पैदा हुए हैं।

भाव हेतु मानस इच्छा आई। ताई हेतु भयी कल्पना भाई ॥
होई कल्पना मति अनुरूपा। सो भयउ नाना देवन रूपा ॥

व्याख्या - भावों के कारण मन में इच्छा पैदा हो जाती है और इच्छा से कल्पना पैदा हो जाती है तथा कल्पना बुद्धि के अनुरूप होती है। इसलिए नाना देवताओं का स्वरूप कल्पना में आ गया है।

विप्र जन करहिं नाना कल्पना। ताते भयी सब देव थरपना ॥
भाव छाड़ि नहिं देवन मरमा। संक्षेपउ जान प्रकृति धरमा ॥

व्याख्या - विद्वानों ने नाना कल्पना कर ली और कल्पना के अनुसार देवताओं की स्थापना कर दी। भाव के अलावा देव उत्पत्ति का कोई दूसरा रहस्य नहीं है। हे वत्स ! संक्षेप में तुम इसे प्रकृति का धर्म मान कर चलो।

दो०- **जो जो कल्पना मन भयी सोइ सोइ स्थूल रूप धराय।**
विप्र जन मरम जानहिं मूढ़ जन बिरथा फंसाय ॥ ७ ॥

व्याख्या - जो जो विद्वानों ने कल्पनाएँ की हैं, वे स्थूल बन कर देवता का रूप ले चुकी हैं। विद्वान लोग इसके रहस्य को जानते हैं। परन्तु मूर्ख लोग व्यर्थ में देव कल्पना में फँस जाते हैं।

धन्य धन्य जगत हितकारी। बूझा मरम तोर मति अनुसारी ॥
तू ही सर्वस्व सर्व आधारा। तू प्रकृति मूल तू ही प्रकृति पारा ॥

व्याख्या - हे जगत के हितकारी ! मैं मेरी बुद्धि के अनुसार आपका रहस्य समझा हूँ। हे प्रभु ! तू ही सब कुछ है और तू ही सबका आधार है। तू ही प्रकृति का मूल है तथा तू ही प्रकृति से परे है।

तू ही जगत पितु मातु सकला। तू ही पुरुष प्रबल नारी अबला ॥
तू ही दृश्य तू ही जग द्रष्टा। तू ही कर्ता भर्ता तू ही स्रष्टा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही जगत के माता-पिता हैं तथा आप ही पुरुष की प्रबलता

हैं और आप ही अबला नारी हैं। आप ही जगत को देखने वाले हैं तथा आप ही दृश्य बन कर दिखने वाले हैं। आप ही प्रभु कर्ता, भर्ता व जगत के स्रष्टा हैं।

तू ही देव अरु देवी सुहाई। बिरथा मोर मति भरमाई ॥
तू ही सकल मन अब माना। क्षमा करहु मोहि कृपा निघाना ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही देवता व देवी के रूप में प्रकट होते हैं। मेरी बुद्धि तो व्यर्थ में भ्रमित हो रही थी। हे प्रभु ! अब मेरे मन ने मान लिया है कि आप ही सब कुछ हैं। इसलिए हे कृपानिधान ! मुझे क्षमा कर दीजिए।

मरम अपार कोह सकै जानी। तुम हेतु नहिं कोउ ज्ञानी अज्ञानी ॥
तुम समरस आनन्दमूला। हरहु नाथ मोर सब जग शूला ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके रहस्य को पूर्ण रूप से कौन जान सकता है? आपके लिए तो कोई ज्ञानी-अज्ञानी होता ही नहीं है। हे प्रभु ! आप तो एक रस आनन्द के मूल हैं। इसलिए प्रभु ! मेरे समस्त जगत के कष्टों को दूर कर दीजिए।

दो०- रोम रोम तू रमै प्रभु सकल घट घट तेरा बास ।
सब कर सदा अकर्ता भया तउ जगते रहत उदास ॥ ८ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप रोम-रोम में रमण करते हैं तथा प्रत्येक जीव के घट में निवास करते हैं। आप सब कुछ करने वाले होकर भी हमेशा जगत से उदासीन बने रहते हैं।

तू जल प्रभु जीव लहर समाना। तू ही सागर जीव सरीता नाना ॥
सब तू ही नहिं जग कोउ आना। सकल पालहिं प्रकृति विधाना ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप जल के समान हैं और जीव आपकी लहर की तरह है। आप सागर की तरह हैं, जिसमें जीव रूपी नदियाँ समाती रहती हैं। हे प्रभु ! आप ही संसार में सब कुछ हैं। आपके अलावा दूसरा कोई नहीं है। आपकी प्रकृति ही समस्त सृष्टि का पालन कर रही है।

नर मादा सबहिं एक समाना। लीला तोरी जग कोउ नहिं जाना ॥
नेति नेति चारउ वेद बखानी। सब घट रहत कोउ कोउ जानी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! नर-मादा सब आपके लिए एक समान होते हैं। आपकी अद्भुत लीला को कोई नहीं जान पाता है। वेदों ने भी आपको नेति-नेति बताया है तथा कुछ-कुछ लोग ही आपको जान पाये हैं कि आप सबके हृदय में निवास करते हैं।

तोर शरण सदा सुखदाई। इहँ अब मोर हियँ समझाई ॥
सो नाथ शरण अब मैं चाउँ। सब छाड़हुँ तोहि अब ध्याउँ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपकी शरण सदा सुख देने वाली है, यह मेरे हृदय में समझ आ गया है । इसलिए हे परमपिता ! मैं आपकी शरण चाहता हूँ तथा सब कुछ छोड़ कर आप ही को याद करता हूँ ।

नाथ चराचर कृपा अब कीजै । दृष्टि समता हिय मोहि दीजै ॥
सदा रहउँ शरण में तोरी । ऐसी करहउ नाथ मति मोरी ॥

व्याख्या - हे जगत के स्वामी ! मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मेरे हृदय में समता की दृष्टि आ जाये । हे परमपिता ! मेरी बुद्धि ऐसी कर दीजिए, जिससे मैं सदैव आपकी शरण में रहूँ ।

दो०- सब में तुमको देख सकूँ ऐसी शक्ति दीजै प्रभु मोय ।
कर्तापन में भूलउँ सब तू ही करै अनुभव होय ॥ ९ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे सब जगह मैं केवल आप ही आप को देखूँ तथा मैं कर्तापन के भाव को भूल जाऊँ और ऐसा अनुभव करने लग जाऊँ कि सब कुछ आप ही कर रहे हैं ।

तू जिज्ञासु सुत प्रिय अति मोहि । आरत हरउँ करूँ सुखी तोहि ॥
रहइब ज्ञान अखण्ड हिय माहिं । आशीर्वचन मम मिथ्या नाहिं ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तू जिज्ञासु है, इसलिए मुझे बहुत प्रिय है । इसलिए मैं तेरे समस्त दुःखों को दूर कर तुमको सुखी करता हूँ । तेरे हृदय में अखण्ड एक रस-ज्ञान रहेगा । मेरा यह आशीर्वाद झूठा नहीं होगा ।

देव विपद सतावहिं नहिं तोहि । रहइब प्रिय तू सदा मोहि ॥
तन मन निरोग रहइब काया । सतावहिं नहिं तोय मोरी माया ॥

व्याख्या - तुमको दैवीय संकट नहीं सतायेगा तथा तू सदा मेरा प्रिय बना रहेगा। तेरा तन और मन निरोग रहेगा तथा मेरी माया का प्रभाव भी तेरे ऊपर नहीं पड़ेगा ।

भोग जोग सब तुम्हहिं समाना । तोर हृदय सदा मोर स्थाना ॥
पाइब अनुग्रह सदा तू मोरा । जन हित करइब लिखा तोरा ॥

व्याख्या - तुम्हारे लिए भोग और योग दोनों समान होगें तथा तुम्हारा हृदय सदा मेरा स्थान बना रहेगा । तू सदा मेरी कृपा प्राप्त करता रहेगा तथा तेरी लेखनी द्वारा लिखा हुआ जन कल्याण करेगा ।

प्रिय परिवार सदन सुखदाई । सब पाइब मोरे अनुग्रह भाई ॥
तू मोर दूत कहउँ सत बचना । हृदय माझ समझ सब रचना ॥

व्याख्या - अच्छा परिवार और सुख देनेवाला घर सब मेरी कृपा से प्राप्त होगा।

हे वत्स ! मैं सत्य कह रहा हूँ, तू ही मेरा संदेश वाहक है, अतः हृदय के अन्दर ही मेरी समस्त रचना को समझ ।

दो०- तू ही प्रिय पुत्र सुत मेरा तू ही हय प्रिय अंश मोर ।
माया दीवार जब मिटै नहिं आदि अन्त न छोर ॥ १० ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तू ही मेरा प्रिय पुत्र है तथा तू ही मेरा प्रिय अंश है । जब तेरे और मेरे बीच से माया की दीवार हट जाती है, तब न प्रारम्भ ही रहता है और न अन्त ही होता है और न ही कोई छोर ही आता है ।

धन्य धन्य परम हितकारी । तू सर्वस्व प्रभु जग पालनहारी ॥
सकल ब्रह्माण्ड प्रभु देह तोरा । मिटहिं भ्रम सकल अब मोरा ॥

व्याख्या - हे परम हित करने वाले प्रभु ! आप धन्य हैं । हे जगत का पालन करने वाले प्रभु ! आप ही सब कुछ हैं । हे प्रभु ! समस्त ब्रह्माण्ड ही आपका शरीर है । अब मेरा भ्रम मिट गया है ।

मोही दीन्ह सकल प्रभु दयाला । जग हित अब कहउ कृपाला ॥
बहुरि विषाद प्रभु जग माहि । जुगत सरल मुक्ति देउ बताहि ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपने मुझे तो सब कुछ दे दिया है । परन्तु अब जगत के कल्याण के लिए कुछ कहिए । हे प्रभु ! संसार में बहुत से दुःख हैं । अतः दुःखों से मुक्त होने के सरल उपाय बता दीजिए ।

तन मन रहइ निरोगी काया । सो कहउँ किछु सरल उपाया ॥
सुत परहित भाव जिन हिय माहिं । तिन्ह कहुँ दुर्लभ जग किछु नाहिं ॥

व्याख्या - मैं कुछ सरल उपाय बता रहा हूँ । जिससे मन और तन दोनों निरोगी बने रहेंगे । हे वत्स ! जिनके हृदय में परहित (अर्थात आ त्मा का हित) का भाव बना रहता है, उनको संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।

तुम धन्य परहित मन सूझा । एहि सम नहिं जग कारज दूजा ॥
अब कहउँ किछु जुगति बताई । मिटहिं कष्ट जगत सबाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम धन्य हो कि तुम्हारे अन्दर आत्म कल्याण का भाव (परहित) जाग्रत हो गया है । क्योंकि इसके समान संसार में दूसरा कोई नहीं है । अब मैं कुछ उपाय बता रहा हूँ, जिससे संसार में सभी कष्टों का निवारण हो जायेगा ।

दो०- भल मन्द जगत सब सुत प्रकृति मोरी उपजाय ।
सुख पावै जीव जबहिं सच्चे हियँ प्रकृति रिझाय ॥ ११ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! संसार में अच्छा-बुरा सब मेरी प्रकृति शक्ति से पैदा होता है । इसलिए जो सच्चे हृदय से प्रकृति को प्रसन्न कर लेता है, वह जीव हमेशा

सुख प्राप्त करता रहता है ।

प्रकृति अंग सब देव सुजाना । करु अराधना मन अनुमाना ॥
जेहि विधि सकै प्रकृति रिझाई । सो कहउँ सब उपाइ बुझाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! प्रकृति के अंगों में देवताओं की मन के अनुसार भावना करके अराधना करो । जिस प्रकार प्रकृति शक्ति प्रसन्न होती है, वह सरल उपाय बताता हूँ, सुनो ।

शक्ति रिझावन विधि समझाउँ । जेहि अनुसरइब सब दिलाउँ ॥
करु अराधना समरप सारी । कहउ तू ही पितु मातु हमारी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! शक्ति को प्रसन्न करने की विधि समझाता हूँ, सुनो । जो इस विधि का पालन करेंगे, उनको मैं सब कुछ दिलाऊँगा । पूर्ण समर्पण के भाव से प्रार्थना करके कहना चाहिए कि हे परम शक्ति आप ही मेरी माता और आप ही पिता हैं ।

नैसर्गिक अद्भुत तोरी करनी । सुनु मातु मोरी अन्तर नयनी ॥
सब जग प्रेम सोहार्द अपारा । तोर व्यवस्था इहँ आचारा ॥

व्याख्या - हे अन्तर्दृष्टि से देखने वाली माता ! आपकी नैसर्गिक व्यवस्था अद्भुत है । आपकी व्यवस्था में समस्त संसार में अपार प्रेम और सौहार्द है । प्रेम और सौहार्द ही तेरी व्यवस्था का व्यवहार है ।

नहि कोउ बड़ छोट तोरे हेतु । सकल मनोरथ मातु तुम देतु ॥
मम कामना मातु सत आधारी । पूर्ण करउ मैं शरण तिहारी ॥

व्याख्या - हे माता ! आपके लिए कोई भी बड़ा-छोटा नहीं होता है । आप तो सबके मनोरथ पूर्ण करने वाली हैं । हे माता ! मेरी इच्छा सात्विक है । इसलिए पूर्ण कर दीजिए । मैं आपकी शरण में हूँ ।

अबहुँ अजहुँ सुनु विनती मोरी । देहउ आशीष मम मति भोरी ॥
तन निरोग मन करि उल्लासा । कृपा तोर मातु सकल सुपासा ॥

व्याख्या - हे माता ! आज और अभी मेरी प्रार्थना सुनिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए । मेरी बुद्धि तो बहुत भोली है । मेरे शरीर को निरोग कर दो और मन को प्रसन्न कर दीजिए । हे माता ! आपकी कृपा से यह सब सम्भव हो जाता है।

तू दयाल सहज हित करनी । जग कर्ता भर्ता भव रमनी ॥
सकल ब्रह्माण्ड मातु देह तोरा । जानि दास करि अनुग्रह थोरा ॥

व्याख्या - हे माता ! तू सहज में ही दया करने वाली और मेरी भलाई करने वाली है । हे माता ! आप जगत की कर्ता और भरण-पोषण करने वाली हैं

तथा भाव में रमण करने वाली हैं। हे माता ! समस्त ब्रह्माण्ड ही आपका शरीर है। इसलिए आप मुझे अपना दास समझ कर, मुझ पर कृपा कीजिए।

दो०- मंगल चाउँ मंगल दायनी करि कृपा देहउ मोहि आज ।
सब तजि शरण तेरी आउँ पूरण करो मम सब काज ॥ १२ ॥

व्याख्या - हे मंगल करने वाली माता ! मैं मंगल चाहता हूँ, इसलिए कृपा करके मंगल होने का आशीर्वाद दीजिए। हे माता ! मैं सब छोड़ कर आपकी शरण में आया हूँ। इसलिए मेरी मंगल इच्छा पूर्ण कर दीजिए।

जय जय सूरज चन्द धारणी। जय स्वधा स्वबस बिहारणी ॥
जय जय भूधरा मंगल करणी। जय मातु प्रकृति जग भरणी ॥

व्याख्या - हे सूर्य-चन्द्र आदि को धारण करने वाली माता ! आपकी जय हो। हे स्वयं में स्थित रहने वाली तथा स्वयं की इच्छा अनुसार चलने वाली माता ! आपकी जय हो। हे पृथ्वी को धारण करने वाली तथा मंगल करने वाली माता ! आपकी जय हो। हे जगत का भरण-पोषण करने वाली प्रकृति माता ! आपकी जय हो।

जय मंगला जय कालातीता काली। जय भव भव विभव मतवाली॥
जय रोग नाशनी अभय दात्री। जय प्रकाशनी जय काल रात्री ॥

व्याख्या - हे मंगल करने वाली ! आपकी जय हो। काल से अतीत माँ काली! आपकी जय हो। हे भाव रूप व भाव से परे अपनी ही मस्ती में मस्त रहने वाली माता ! आपकी जय हो। सब रोगों का नाश करने वाली व अभय देने वाली माता ! आपकी जय हो। प्रकाश करने वाली व काल रूपी रात्रि! आपकी जय हो।

जय मधु कटु अहंकार नाशनी। जय त्रिगुण मयी जय भव तारणी ॥
जय मातु सब ग्रह नक्षत्र धारी। जय जननी जय जगत महतारी ॥

व्याख्या - समस्त प्रकार के मधु व कटु अहंकार का नाश करने वाली माता! आपकी जय हो। हे त्रिगुणमयी व भाव रूपी भव से पार कराने वाली माता ! आपकी जय हो। हे समस्त ग्रह - नक्षत्रों को धारण करने वाली माता ! आपकी जय हो। हे जगत जननी! आपकी जय हो, हे माता ! आपकी जय हो।

जय दिव्या जय दिव्य रूपणी। जय पूर्णा जय पूरण करणी ॥
जय करुणामयी करुणा सरूपा। जय माता जय दिव्य अनूपा ॥

व्याख्या - हे दिव्य शक्ति ! आपकी जय हो, हे दिव्य रूप धारण करने वाली माता ! आपकी जय हो। हे पूर्णा, समस्त इच्छा पूर्ण करने वाली माता ! आपकी जय हो। हे करुणामयी, हे करुणा के स्वरूप माता ! आपकी जय हो। हे प्रकृति

माता! आप दिव्य व अनुपम हैं, आपकी जय हो ।

जय आनन्द करणी आनन्द मूला । शरण तिहारी हरउ सब शूला ॥

व्याख्या - हे आनन्द करने वाली, आनन्द की मूल माता ! आपकी जय हो। हे माता ! मैं आपकी शरण में हूँ। इसलिए मेरे समस्त कष्टों का निवारण कर दीजिए।

दो०- मैं सुत तू मातु अमार सब जग तोरहि सन्तान ।
अनुग्रह अब करहउ मातु तू जग जननी महान ॥ १३ ॥

व्याख्या - हे माता ! मैं आपका पुत्र हूँ तथा आप ही मेरी माता हैं तथा समस्त संसार ही आपकी सन्तान हैं। इसलिए हे जगत जननी माता! मुझ पर कृपा कीजिए ।

एहि विधि करइ अनुराधन। इच्छा पूरण बस इहँ साधन ॥
नयन मूंदि श्वास संभारहि। मातु मातु बस उच्चारहिं ॥

व्याख्या - इस प्रकार प्रकृति शक्ति की अराधना करने से सब सात्विक इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सच्चे मन से अराधना करके आँखें बंद कर श्वास पर ध्यान देकर बार-बार माता प्रकृति को पुकारें ।

हियँ लाइ मन इच्छा जोहि। करि समरप मुक्त अब होहि ॥
लावहिं भाव अब मन माहिं। करत पूरण मातु सबाहिं ॥

व्याख्या - मन में जो भी इच्छा हो माता प्रकृति को समर्पित करके मुक्त हो जायें तथा मन में भाव लायें कि माता मेरी इच्छा को पूर्ण कर रही हैं।

ग्रह नक्षत्र सकल ब्रह्माण्डा। होत अनुकूल कृपा अखण्डा ॥
चराचर होवत अनुकूला। मिटन लगहिं जग सब शूला ॥

व्याख्या - मन में भावना लायें कि समस्त ग्रह-नक्षत्र ब्रह्माण्ड सहित माता प्रकृति की अखण्ड कृपा से मेरे अनुकूल हो रहे हैं। समस्त चराचर जगत भी मेरे अनुकूल हो रहा है तथा तीनों प्रकार के तापों का कष्ट मिट रहा है ।

मन उल्लास होत निरोगी काया। स्पन्दन देह आनन्द छाया ॥
मन्द सुगन्ध चलत बयारी। मिलत हय मातु किरपा अपारी ॥

व्याख्या - मेरा मन उत्साहित हो रहा है तथा शरीर निरोगी हो रहा है। शरीर में स्पन्दन हो रहा है तथा आनन्द छा रहा है। मन्द-मन्द सुगन्ध हवा चल रही है तथा हवा के माध्यम से माता की अपार कृपा प्राप्त हो रही है ।

कण-कण लता बिटप नाना। उमंग उत्साह हियँ अनुमाना ॥
अरि होइ मित बिषमता गई। कामना पूरण सब विधि भई ॥

व्याख्या - मन में भावना करनी चाहिए कि कण-कण और लताओं, पेड़-पौधों आदि में उमंग और उत्साह छा रहा है तथा दुश्मन भी मित्र बन रहे हैं और

सब प्रतिकूलता हटती जा रही है तथा मेरी कामना सब प्रकार से पूर्ण होती जा रही है ।

दो०- धन्य धन्य मातु तोहि धन्य धन्य जग हितकारी ।
धन्य धन्य अब मैं भयउँ पूर्ण होवत इच्छा सारी ॥ १४ ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! आप धन्य हैं, हे जग का हित करने वाली माता! आप धन्य हैं । हे माता ! मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है। इसलिए मैं भी धन्य हो गया हूँ ।

मन ते करहिं प्रकट आभारा । एहि विधि पावहिं कृपा अपारा ॥
धन्य प्रभु तुम मरम बुझाई । जन हित किछु मन्त्र देउ बताई ॥

व्याख्या - मन-ही-मन माता प्रकृति का आभार व्यक्त करें । ऐसा करने पर प्रकृति शक्ति की अपार कृपा प्राप्त हो जाती है । हे परमपिता ! आप धन्य हैं, जो आपने मुझे यह रहस्य बताया है । अब मुझे जन कल्याण के लिए कुछ मन्त्र बता दीजिए।

जीव सतावहिं जग नाना रोगा । लगत बिरथा जग सब भोगा ॥
सुनु सुत तुम अति प्रिय मोहि । कहउँ जुगति जनहित तोहि ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! संसार में जीव को नाना प्रकार के रोग सताते हैं । जिससे संसार के सुख भी व्यर्थ लगने लग जाते हैं । हे वत्स ! तुम मुझे अति प्रिय हो, इसलिए जन कल्याण के लिए तुम्हें सरल उपाय बताता हूँ, सुनो ।

सो रोग नाशन कहउँ उपाई । करहिं अनुपान आरोग्य आई ॥
जल लहहहिं निज दाहिन हाथा । तुलहहिं बाम पाँव अरु हाथा ॥

व्याख्या - रोग मुक्ति के लिए सरल उपाय बता रहा हूँ, जिसका श्रद्धा पूर्वक पालन करने से आरोग्य की प्राप्ति हो जाती है । स्वयं के दाहिने हाथ में जल लें और अपना बायाँ पाँव और बायाँ हाथ ऊपर उठा लें ।

तीन बार मन मन उचारउ । हे जल देव बरूण मोहि संभारउ ॥
सब औषध रस नीर सुहाई । सो कृपा करहउ बरूण आई ॥

व्याख्या - तीन बार मन ही मन जल देवता वरूण का नाम लें और प्रार्थना करें कि हे जल देव वरूण ! मुझे सम्भालों अर्थात मेरी रक्षा करो । हे वरूण देव! समस्त औषधियों का रस तो जल ही है । इसलिए आप कृपा कीजिए ।

तुम्हार कृपा हे बरूण देवा । जल बनि औषध करहिं सेवा ॥
सहित श्रद्धा मैं करहउँ पाना । भरोस तुम्हार नहिं कोउ आना ॥

व्याख्या - हे वरूण देव ! आपकी कृपा से जल ही औषधि बन कर सेवा का काम करती है अर्थात रोगों का नाश कर देती है । इसलिए मैं जल का श्रद्धा

पूर्वक पान करता हूँ । आपके अलावा मेरा और कोई नहीं है ।

मुक्त करहु मोहि सकल पापा । मूत्र मारग निकसहिं सब तापा ॥
अजहुँ अबहु मोहि करउ निरोगा । सम्भव सब तुमार कृपा जोगा ॥

व्याख्या - हे वरूण देव ! मुझे तुरन्त समस्त पापों से मुक्त कर दो । जिससे मूत्र मार्ग से मेरे समस्त विकार बाहर निकल जायें । मुझे आज, अभी निरोग कर दो । आपकी कृपा के योग से यह सब सम्भव है ।

दो०- श्रद्धा सहित जल पान करि मन ही मन करै विचार ।
मूत्र मार्ग विकार निकसत बरूण देव कृपा कीन्ह अपार ॥ १५ ॥

व्याख्या - इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ में लिए हुए जल को श्रद्धा पूर्वक ग्रहण कर लें तथा मन ही मन विचार करें कि वरूण देव की अपार कृपा से मेरे समस्त विकार मूत्र मार्ग से बाहर निकल रहे हैं।

किछु छन पुनि कर जल लहहिं । बाम पाँव हाथ पुनि तुलहहिं ॥
बरुण देव पुनि करि आहवाना । लहहिं जल तीन घूँट समाना ॥

व्याख्या - थोड़ी देर बाद पुनः हाथ में जल लें और बाएँ हाथ और पाँव को ऊपर उठा कर पुनः वरूण देव का आहवान करें और तीन घूँट के समान जल पी लें।

मुक्ति देवहउ मोहि सब पापा । करहउँ ग्रहण आपन आपा ॥
इहँ करहि नित्य पंच बारा । होवहहिं निरोग निर विकारा ॥

व्याख्या - हे वरूण देव ! मुझे सब पापों से मुक्त कर दो । आपके ही जल को ग्रहण करता हूँ । जो इस प्रकार वरूण देव का आवाहन करके प्रतिदिन पाँच बार जल ग्रहण करते हैं, वे निरोग और निर्विकार हो जाते हैं ।

कटहिं रोग ग्यात अग्याता । मानस पाप मिटहिं सब तापा ॥
जलहि औषध सकल संसारा । जल देव भयी शक्ति अपारा ॥

व्याख्या - इससे समस्त ज्ञात और अज्ञात रोगों का नाश हो जाता है तथा मानसिक पाप व शारीरिक कष्ट सब मिट जाते हैं । संसार में जल ही औषधि होता है । क्योंकि जल देव में अपार शक्ति होती है।

होइ ज्वर जेहि इकतारा । कहउँ सुत तोहि उपचारा ॥
प्रातः काल उठ करइ स्नाना । नयन मूंद धरे प्रकृति ध्याना ॥

व्याख्या - अगर इकतारा बुखार हो, तो सुनो, तुम्हें उपचार बताता हूँ । प्रातः काल उठ कर स्नानादि करके तथा आँख बन्द करके प्रकृति का ध्यान धरना चाहिए ।

दो०- निश्छल मन याद करूँ सुनहउ मोरी प्रकृति मातु ।
ज्वर व्याकुल करत अति जरत तड़फत सबु गातु ॥ १६ ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! मैं आपको निर्मल मन से याद करता हूँ । मैं बुखार से बहुत पीड़ित हो रहा हूँ तथा मेरे अंग जल रहे हैं और तड़फ रहे हैं ।

निश्छल मन करूँ अनुरोधा । सुनहउ मातु प्रकृति पुरोधा ॥
ज्वर करत अति व्याकुल । कफ पित्त वात भए प्रतिकुल ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! मैं आपसे निर्मल मन से अनुरोध कर रहा हूँ । हे माँ ! मुझे बुखार ने बहुत व्याकुल कर दिया है और कफ, पित्त, वात भी प्रतिकुल हो गए हैं ।

कम्पित गात मन मचलाई । दया करहु ज्वर देहु भगाई ॥
निश्छल मन कह आर्त बानी । तीन घूँट बासन लेहिं पानी ॥

व्याख्या - हे माता ! मेरे अंग कम्पित हो रहे हैं और मन मचल रहा है । अतः आप मेरे बुखार को दूर कर दो । इस प्रकार निर्मल मन से आर्त प्रार्थना करके बर्तन में तीन घूँट पानी ले लें ।

इक पद द्विपद त्रिपद जीवाणु । सकल नसहउ जल परिमाणु ॥
इकतरा चाहे होउ अन्य बुखारु । सकल भगउ इहँ जल अहारु ॥

व्याख्या - चाहे एक पदीय जीवाणु हों या दो पैरों या तीन पैरोंवाले जीवाणु हों । इस जल के सेवन से सब नाश को प्राप्त हों । चाहे इकतारा बुखार हो या अन्य कोई-सा भी बुखार हो, इस जल के सेवन से नष्ट हो जायें ।

लहहिं जल एहि बिधि सत बारा । दौ घड़ि अन्तर रखि इकसारा ॥
इहँ भाँति कहि करि जलपाना । मिटहिं ज्वर मम वचन प्रमाना ॥

व्याख्या - इस प्रकार सात बार बोलकर, दो दो घन्टे के समान अन्तर से सात बार जल को ग्रहण करने से किसी भी प्रकार का बुखार चला जाता है । मेरे वचन ही इसका प्रमाण हैं ।

दो०- श्रद्धा सह जल पान करै सब बिधि ज्वर भग जाय ।
अन्तर मन आभार से सब संकट सहज कटाय ॥ १७ ॥

व्याख्या - श्रद्धापूर्वक जल ग्रहण करने से सब प्रकार का बुखार दूर हो जाता है तथा अन्तःस्थल से प्रकृति का आभार प्रकट करने से सहज में ही सब संकट कट जाते हैं।

मन अशान्त जो चिन्ता सताई । सरल राह देहउँ सो बताई ॥
उठइ प्रातः करि रवि दर्शन । दोउ कर जोरि करउ घर्षण ॥

व्याख्या - अगर मन अशान्त हो और चिन्ता सताती हो, तो चिन्ता मुक्ति का सरल रास्ता बताता हूँ, सुनो - प्रातःकाल उठ कर सूर्य का दर्शन करके दोनों हाथों को जोड़ कर मसलना चाहिए ।

पुनि निज नयन रखहिं हाथा । पुनि दर्शन पुनि घर्षण ताता ॥
एहि क्रिया करहहिं दस बारा । प्रति बार क्रम क्रम लाइ विचारा ॥

व्याख्या - दोनों हाथों को मल कर स्वयं की आखों के लगायें तथा पुनः सूर्य का दर्शन करें और फिर हाथों का घर्षण करें । इस क्रिया को दस बार करना चाहिए तथा बार बार मन में विचार लाना चाहिए कि -

प्रथम कहहिं हे सूरज देवा । मन विकार सकल हरउ लेवा ॥
रश्मि तुमार जलावहिं विकारा । सो सब जलहिं चिन्ता विचारा॥

व्याख्या - सबसे पहले कहना चाहिए कि हे सूर्य देव ! आप मेरे मन के समस्त विकारों को दूर कर दो । हे सूर्य देव ! आपकी किरणें मेरे समस्त विकारों को जला रही हैं । इसलिए मेरी चिन्ता के समस्त विचार जल रहे हैं ।

रश्मि तुमार करत प्रवेशा । होवत भष्म सकल क्लेशा ॥
पायहउँ तेज अपार तुम्हारा । ताते भयउ मन मोर सकारा ॥

व्याख्या - हे सूर्य देव ! आपकी किरणें मेरे अन्दर प्रवेश कर रही हैं । जिससे मेरे समस्त क्लेशों का नाश हो रहा है । मैं आपका तेज प्राप्त कर रहा हूँ । जिससे मेरा मन सात्विक विचारोंवाला हो रहा है ।

व्यान वात सब विकार जलाई । भयउ शुद्ध धन्य तोर प्रभुताई ॥
भयी उदान अब परिष्कारी । विकार सकल रश्मि जला डारी ॥

व्याख्या - हे सूर्य देव ! आपकी किरणों ने मेरी व्यान वायु के समस्त विकार जला डाले हैं । जिससे व्यान वायु शुद्ध हो गयी है । आप धन्य हैं ! मेरी उदान वायु भी शुद्ध हो गई है । क्योंकि आपकी किरणों ने मेरे समस्त विकार जला डाले हैं।

दो०- अपान अब पावन भयी भष्मीभूत सकल विकार ।
विगत वासना सब अब बढ़हि सहज आचार ॥ १८ ॥

व्याख्या - मेरी अपान वायु भी पवित्र हो गयी और मेरे समस्त विकार जल गये हैं। जिससे मेरी समस्त वासनाएँ मिट गयी हैं और मेरे अन्दर सहजता बढ़ रही है ।

कृकर धनंजय देवदत्त नागा । गन्धर्वादि विकार गयउ भागा ॥
भयी प्राण अब अति बलवाना । करत समान कारज समाना ॥

व्याख्या - कृकर, धनंजय, देवदत्त, नाग और गन्धर्व प्राण वायु के समस्त विकार मिट गये हैं और प्राण वायु अब बहुत शक्तिशाली हो गयी है तथा समान वायु समान्य कार्य करने लगी है ।

एहि भांति करहि मन विचारा । प्रगटावहिं हृदयँ माझ आभारा ॥
धन्य धन्य रवि धन्य दिवाकरं । धन्य रश्मि पति धन्य प्रभाकरं ॥

व्याख्या - इस प्रकार मन में विचार लाकर हृदय से सूर्य देव का आभार व्यक्त करें कि हे सूर्य देव ! आप धन्य हैं । हे दिवाकर ! आप धन्य हैं । हे रश्मिपति, हे प्रभाकर ! आप धन्य हैं ।

जय मित्राय जय आदित्यम् । जय खगाय जय सर्वगतम् ॥
जय अरुणाय जय त्रिताप नाशकं । जय तेज पुँजम् दीप्त मण्डालकरं ॥

व्याख्या - हे मित्राय, हे आदित्याय ! आपकी जय हो । हे खगाय, हे सर्वत्र गमन करनेवाले ! आपकी जय हो । हे अरुणाय, हे तीनों तापों का नाश करनेवाले ! आप की जय हो । हे तेज पुँज, हे दीप्त मण्डलाकार ! आपकी जय हो ।

जय पूषान् जय आत्मानम् । जय वनस्पिताय कोटि नमनम् ॥
जय वेगवानं जय धर्मवानम् । जय सूरज देव सत सत नमनम् ॥

व्याख्या - हे पूषान्, हे आत्मानम् ! आपकी जय हो । हे वनस्पिति के मालिक! आपकी जय हो । आपको करोड़ों नमस्कार । हे वेगवान, हे धर्मवान, हे सूर्य देव! आपकी जय हो । हे देव ! आपको सैकड़ों नमस्कार ।

जय जय जग प्रतिपालकम् । अहम् त्वमेव शरणागतम् ॥
मम पाप ताप हर तू देवम् । त्वमेव शरणम् त्वमेव शरणम् ॥

व्याख्या - हे जग का पालन करनेवाले ! आपकी जय हो । मैं आपकी शरण में आया हूँ । हे देव ! आप मेरे समस्त पापों के कष्ट को दूर कर दो । मैं आपकी शरण में हूँ, मैं आपकी शरण में हूँ ।

दो०- एहि भाँति विनय करि जो नित्य करहिं प्रणाम् ।
बल बुद्धि आरोग्य मिलइब मन पावइ पूरण विश्राम ॥ १९॥

व्याख्या - इस प्रकार निर्मल मन से जो नित्य सूर्य देव को प्रणाम करते हैं । उनको बल-बुद्धि और आरोग्य की प्राप्ति होगी तथा उनका मन पूर्ण शान्ति को प्राप्त कर लेगा ।

सुत चित्त वित्त उभय अपारा । चित्त तें मैं वित्त ते जगत पसारा ॥
बिनु वित्त नहिं सुख जग होई । बिनु सुख सहज न होवइ कोई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! संसार में चित्त और वित्त दोनों की शक्ति अपार होती है। चित्त प्रबल होने पर मैं आभासित होता हूँ और वित्त प्रबल होने पर जगत का विस्तार होता है । बिना धन के संसार में सुख नहीं हो पाता है और बिना सुख के कोई सहज नहीं हो सकता है ।

धन हेतु कहउँ जुगत तोहि । ताते निर्वाह सहज जग होहि ॥
जग धन धान्य सम्पदा सारी । होवहिं सकल प्रकृति अनुसारी ॥

व्याख्या - इसलिए मैं तुम्हें धन प्राप्त करने की सरल युक्ति बताता हूँ। जिससे संसार में तुम्हारा सहज निर्वाह हो जायेगा । संसार में धन-दौलत आदि की प्राप्ति प्रकृति के अनुसार होती है ।

दरिद्रता देतु कष्ट अपारी । ग्यानी हियउँ करहिं विकारी ॥
सो उचित जाइ प्रकृति शरणा । करहि अराधन जानि पूरणा ॥

व्याख्या - संसार में दरिद्रता से बहुत कष्ट होते हैं । गरीबी ज्ञानियों के हृदय में भी विकार पैदा कर देती है । इसलिए उचित यही है कि प्रकृति शक्ति को पूर्ण करनेवाली मान कर, उसकी शरण में जाकर प्रार्थना करनी चाहिए ।

करि मन निर्मल कहहिं विचारी । मातु सुनहउ बिनती हमारी ॥
सकल सम्पदा तू अधिकारी । जानि आयहउँ शरण तिहारी ॥

व्याख्या - मन को निर्मल कर भाव लाना चाहिये और प्रकृति माता से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे माता ! आप ही समस्त सम्पदा की मालिक हैं, मैं यह जान कर ही आपकी शरण में आया हूँ ।

निज सुत जानि करु अनुकम्पा । मातु मोहि देहु धन सम्पदा ॥
जोग जग्य करइब बहु दाना । सोहि देइ मातु पण कोटि समाना ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! मुझे आपका पुत्र जान कर, मुझ पर कृपा कीजिए और मुझे धन सम्पदा दीजिए । हे माता ! मैं योग, यज्ञ और दान करूँगा, इसलिए मुझे करोड़ों धन-सम्पदा दीजिए ।

दो०- धन दौलत सुख सम्पदा देहु मातु वैभव अपार ।
मन इच्छा पूर्ण करहउ जाते सकउँ करि उपकार ॥ २० ॥

व्याख्या - हे माता ! मुझे धन-दौलत, सुख-सम्पदा और अपार वैभव दीजिए । हे माता ! मेरे मन की इच्छा पूर्ण कर दीजिए । जिससे मैं परोपकार कर सकूँ ।

एहि बोलि लेहहिं तीन उसासा । नयन बन्द करहिं आभासा ॥
मन्द सुगन्ध चलत बयारी । इहँ मम इच्छा ब्रह्माण्ड पसारी ॥

व्याख्या - विनय पूर्वक प्रार्थना करके तीन बार लम्बे श्वास लें और आँखें बन्द कर मन में अनुभव करें कि मन्द-मन्द सुगन्धित हवा चल रही है और इस मन्द-सुगन्ध हवा के साथ मेरी इच्छाएँ समस्त ब्रह्माण्ड में फैल रही हैं ।

होवत पूरण मातु कृपा तोरी । उमगत विश्वास हियँ मोरी ॥
ग्रहादि सकल होत अनुकूला । देव सकल बरसावत फूला ॥

व्याख्या - हे माता ! आपकी कृपा से मेरी इच्छा पूरी हो रही है तथा मेरे हृदय में विश्वास पैदा हो रहा है । समस्त ग्रह-नक्षत्र मेरे अनुकूल हो रहे हैं और

देवगण फूल बरसा रहे हैं ।

मातु तुम्ह कीन्ह कृपा अपारी । धन्य धन्य मैं बहुत आभारी ॥
निस दिवस बढ़त धन अपारा । मम हियँ आवत निर्मल आचारा ॥

व्याख्या - हे माता ! आपने मुझ पर अपार कृपा की है । इसलिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ । रात-दिन मेरा धन बढ़ रहा है और मेरा व्यवहार निर्मल होता जा रहा है ।

धन्य धन्य मातु कृपा करणी । धन्य धन्य दारिद्रय हरणी ॥
धन्य मातु तू इच्छा रमणी । धन्य जननी तू पूर्ण करणी ॥

व्याख्या - हे कृपा करनेवाली माता ! आप धन्य हैं । हे दुःख दारिद्रय का हरण करने वाली माता ! आप धन्य हैं । हे इच्छा में रमण करने वाली माता ! आप धन्य हैं । हे इच्छा पूर्ण करनेवाली माता ! आप धन्य हैं ।

दो०- तू ही इच्छा तू ही पूर्णा तू ही दाता तू ही लेत ।
तू ही कर्ता तू ही भर्ता मम हृदय अब तू चेत ॥ २१ ॥

व्याख्या - हे माता ! आप ही इच्छा हैं और आप ही इच्छा पूर्ण करनेवाली हैं । हे माता ! आप ही देनेवाली हैं और आप ही लेनेवाली हैं । हे माता ! आप ही कर्ता और भर्ता हैं । इसलिए अब आप मेरे हृदय में प्रकट होइए ।

जय माता जय ब्रह्माण्ड धारणी । जय भव कारण जय भव तारणी ॥
जय जग जननी जय जगदम्बा । जय जगत सरूपा जग अवलम्बा ॥

व्याख्या - हे ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाली प्रकृति माता ! आपकी जय हो । हे भाव रूपी भव की कारण व भाव रूपी भव से पार करानेवाली प्रकृति माता! आपकी जय हो । हे जगत की माता जगदम्बा ! आपकी जय हो । हे जगत सरूपा माता ! हे जगत की आधार माता ! आपकी जय हो ।

जय जया जय जयन्ती माता । शरण तुमार सकल सुख दाता ॥
जय दुर्गा जय दुर्गति नाशनी । जय सर्वव्यापा कण कण वासनी ॥

व्याख्या - हे जया, हे जन्म देनेवाली ! आपकी जय हो, जय हो । आपकी शरण सुख देनेवाली होती है । हे दुर्गा, हे दुर्गति दूर करनेवाली, हे सर्वव्यापी और कण-कण में वास करनेवाली ! आपकी जय हो, जय हो ।

करहउ मातु क्षमा अपराधा । मोरी हरहउ सकल व्याधा ॥
शरण तुमार सदा सुखदाई । आयउँ मैं तजि मन चतुराई ॥

व्याख्या - हे माता ! मेरे अपराधों को क्षमा कर दो और मेरी समस्त विपदाओं को दूर कर दो । आपकी शरण सदा सुखदेने वाली होती है, इसलिए मैं मन

की चतुराई छोड़ कर, आपकी शरण में आया हूँ ।

मातु देहउ मोहि अभय दाना । एक रस रहइ सदा हियँ ग्याना ॥
होवउँ न बिकल जगत आचारु । करउ सहज मोर ब्यवहारु ॥

व्याख्या - हे माता ! मुझे अभय प्रदान करो । जिससे मैं सदा एक रस होकर ज्ञान में अवस्थित रह सकूँ और जगत के व्यवहार से मैं व्याकुल नहीं होऊँ तथा मेरा आचरण सहज हो जाये ।

दो०- धन्य धन्य मातु तोहि करूँ समरप सकल भाव ।
मुक्त इच्छा अब होवउँ करो जेहि उचित लगाव ॥ २२ ॥

व्याख्या - हे माता ! आप धन्य हैं । आपको मेरे समस्त भावों का समर्पण करता हूँ और इच्छाओं से मुक्त होता हूँ । अब आपको जो उचित लगे, वही करना ।

एहि भांति करहि प्रार्थना जेही । मन वांछित फल सब लेही ॥
सरल सुगम इह उपाई । मिलहहिं सकल मातु रिझाई ॥

व्याख्या - जो इस प्रकार श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करते हैं, उनकी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । यह सरल व सुगम रास्ता है । माता प्रकृति को प्रसन्न करने पर समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

बिनु दाम्पत्य सुख ग्रहस्था । धन सम्पद सकल बिरथा ॥
जिन्ह गृह नित्य होइ क्लेशा । असुर वास तहँ जानि हमेशा ॥

व्याख्या - बिना दाम्पत्य सुख के धन-दौलत आदि व्यर्थ होते हैं । जिन घरों में रोजाना झगड़े होते हैं, उन घरों में आसुरी भावों का निवास होता है ।

तिन्ह गृह नरक नाना प्रकारा । प्रति बेशी तउ परहि बिचारा ॥
स्वर्ग नरक सुत घर परिवारा । निर्भर करत नित्य व्यवहारा ॥

व्याख्या - उन घरों में (जिनमें आसुरी भाव होते हैं) नाना प्रकार के नरक होते हैं, जिनमें पड़ोसी भी बेचारा पड़ जाता है । हे वत्स ! स्वर्ग और नरक घर और परिवार में ही होते हैं । जो नित्य प्रतिदिन के व्यवहार पर निर्भर करते हैं ।

सो दाम्पत्य सुख जुगति बताउँ । अनुसरहिं जेहि आनन्द दिलाउँ ॥
मातु-पितु सुतादि नात व्यवहारा । पति-पत्नी सब जानि परिवारा ॥

व्याख्या - इसलिए अब मैं तुमको दाम्पत्य सुख प्राप्त करने का उपाय बताता हूँ । जो इसका अनुसरण करते हैं, उन्हें मैं आनन्द प्रदान करता हूँ । माता-पिता, पुत्र-पुत्रियाँ, पति-पत्नी आदि परिवार कहलाते हैं ।

पति-पत्नी साम्यता जो मन माहिं । नहिं संशय तहँ बैकुण्ठ सुहाहिं ॥
विधि सन्मुख काह चलै बसाई । विधि हि सुख दुःख कारण भाई ॥

व्याख्या - जब पति-पत्नी के मन में साम्यता रहती है, तो इसमें संदेह नहीं है, उस परिवार में बैकुण्ठ का निवास होता है । परन्तु प्रकृति के आगे किसी का वश नहीं चलता है और प्रकृति ही सुख-दुःख का कारण होती है ।

दो०- विधि करे सोहि होत है चाहे कोटि करे कोउ प्रयास ।
इहँ जानि जो विधि शरण परे सो तरहिं भव अनायास ॥ २३ ॥

व्याख्या - जो प्रकृति करती है, वही होता है । चाहे कोई करोड़ों प्रयास क्यों नहीं कर ले । अतः जो इस रहस्य को जान कर, प्रकृति की शरण में आ जाते हैं, वे बिना प्रयास के ही भाव रूपी भवसागर को पार कर जाते हैं ।

दाम्पत्य सुख हेतु विधि शरणा । एकहिं उपाइ नहिं दूसर बरणा ॥
विधि शरण कहुँ जुगति समझाई । पालहिं जेहिं परमानन्द पाई ॥

व्याख्या - दाम्पत्य जीवन के सुख का कारण प्रकृति की शरण ही है । इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है । इसलिए मैं प्रकृति की शरण में जाने का उपाय समझा कर कहता हूँ । जिसका पालन करने से परम आनन्द की प्राप्ति होती है ।

प्रातः उठि पति-पत्नी दोउ । स्नानादि करि निर्मल होउ ॥
उभय बैठि जुगल कर जोरि । कहहिं मातु शरण अब तोरि ॥

व्याख्या - प्रातः काल पति-पत्नी दोनों उठ कर स्नान आदि नित्य क्रियाएँ करके, निर्मल होकर दोनों हाथ जोड़ कर बैठ जायें और दोनों कहें कि हे माता! अब हम आपकी शरण में हैं ।

उभय मन करहु मातु एका । देवहु हमहिं निर्मल बिवेका ॥
मातु-पितु सुतादि होहिं अनुकूला । वर देवउ मातु आनन्द मूला ॥

व्याख्या - हे माता ! आप हम दोनों (पति-पत्नी) के मन को एक कर दो तथा हमें निर्मल विवेक प्रदान कर दो । हे आनन्द की मूल माता ! आप ऐसा वरदान दीजिए, जिससे माता-पिता व पुत्र-पुत्रियाँ आदि हमारे अनुकूल रहें ।

मातु पितु हम करहिं सेवकाई । ऐसी देवउ शक्ति मातु सदाई ॥
बन्धु कुटुम्ब प्रतिवेशी परिवारा । करहिं सकल सद व्यवहारा ॥

व्याख्या - हे माता ! हमें ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे हम सदा माता-पिता की सेवा कर सकें और भाई, बन्धु, कुटुम्ब और पड़ोसियों के परिवार हमारे अनुकूल व्यवहार करें ।

दो०- अतिथि सेवा हम करें सदा प्रसन्न चित्त लाय ।
परहित मन भाव रखें कृपा करो हमरे मन आय ॥ २४ ॥

व्याख्या - हे माता ! हम सदा प्रसन्न चित्त होकर अतिथि सेवा करें तथा सदा परहित का भाव मन में रखें। इसलिए हमारे मन में आकर ऐसी कृपा कर दो।

मन नहिं आव कुटिल विचारा। उभय मिलि रहहिं परिवारा ॥
धन दौलत करहिं नहिं लोभा। काम क्रोधादि करै न मन छोभा ॥

व्याख्या - हे माता ! हमारे मन में कुटिलता के भाव नहीं आयें और हम दोनों परिवार में मिल-जुल कर रहें तथा धन दौलत का लोभ मन में नहीं आये और काम, क्रोध आदि के भाव हमारे मन में क्षोभ पैदा नहीं करें।

कर्तापन करहिं न अभिमाना। जथा शक्ति सकहिं करि दाना ॥
दया क्षमादि आवहिं हियँ हमरे। निज पर भूलहिं भाव सबरे ॥

व्याख्या - हम कर्तापन के भाव का अभिमान न करें तथा सामर्थ्य के अनुसार दान कर सकें। हमारे हृदय में दया, क्षमा, करुणा मैत्री आदि के भाव पैदा हों तथा अपने-पराये भावों को हम भूल जायें।

सदा रहइ मातु अनुकम्पा तोरी। करउ अनुग्रह हमरी मति भोरी ॥
सहज रहहिं हम परिवारा। करहिं स्नेह सदाहिं अपारा ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! आपकी कृपा हम पर सदा बनी रहे। हे माँ! आप हम पर अनुग्रह कीजिए। हमारी बुद्धि तो बहुत भोली है। हम दोनों (पति-पत्नी) परिवार में सहज बन कर रहें तथा सदा एक दूसरे से अटूट स्नेह करें।

सहज स्नेही रहहिं निर्मोही। याद रखहिं मातु सदा हियँ तोही ॥
तन रथ मातु बनि सारथी हमारी। सब विधि आए हम शरण तुमारी ॥

व्याख्या - हे माँ प्रकृति ! हम सहज में स्नेह करनेवाले बनें। परन्तु निर्मोही बने रहें तथा सदा आपको हृदय में याद रखें। हे माता ! आप हमारे तन रूपी रथ की सारथी बन जाओ, हम सब प्रकार से आपकी शरण में आये हैं।

दो॰- मातु एक हो मन हमारे एक हि होवँ सब भाव ।
अब शरण तुम्हारी आ परे करो पूरण हमारी चाव ॥ २५ ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! हमारे मन एक हों तथा हमारे भाव भी एक हों। अब हम आपकी शरण में आ गये हैं, इसलिए हमारी इस इच्छा को पूर्ण कर दो।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण पँचम पड़ाव ॥

एहि भाँति करि बिनय मन मांहि। उभय बैठहिं आसन लगाहिं ॥
नयन मूंद देखहिं निज श्वासा। कृपा बरसत लाइ विश्वासा ॥

व्याख्या - इस प्रकार प्रकृति माता से प्रार्थना करके दोनों पति-पत्नी को आसन

लगा कर बैठ जाना चाहिए तथा आँखें बन्द कर स्वयं के श्वास को देखते रहना चाहिए और मन में विश्वास लाना चाहिए कि माँ की कृपा बरस रही है ।

हियँ उठत उमंग अनायासा । होवत पूर्ण सकल अभिलाषा ॥
करहिं प्रकट हियँ माझ आभारा । सहज रहहिं जग व्यवहारा ॥

व्याख्या - हृदय में अनायास उमंग उठने लगती है और सब इच्छाएँ पूर्ण होने लगती हैं । ऐसा आभास होने लगता है । इच्छा पूर्ण करने के लिए हृदय के अन्दर माता प्रकृति का आभार व्यक्त करें तथा जगत में सहज होकर व्यवहार करें।

इहँ विधि जे नित्य अनुसरहि । नहिं संशय सब संकट टरहि ॥
मंगल होवइ उन परिवारा । बाढ़हि प्रेम निस दिवस अपारा ॥

व्याख्या - इस विधि का जो नित्य पालन करते हैं, उनके सब संकट कट जाते हैं । इसमें संदेह नहीं है और उन परिवारों का मंगल हो जाता है तथा रात-दिन परिवार में प्रेम भाव बढ़ने लग जाता है ।

मातु पितु नित देहि आशीषा । सहजहि मिटै सकल क्लेशा ॥
प्रकृति मोर रहइ अनुकूला । व्यापहिं नहिं त्रिविध शूला ॥

व्याख्या - माता-पिता नित्य आशीर्वाद देने लगते हैं । जिससे सहज में ही समस्त क्लेशों का नाश हो जाता है और मेरी प्रकृति शक्ति अनुकूल हो जाती है । जिससे दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट नहीं सताते हैं ।

दो०- मोते उत्पन्न प्रकृति सब मोरहि प्रेरणा नित्य चलाय ।
सब मनोरथ पूर्ण सुत जो मोर प्रकृति लेइ रिझाय ॥ २६ ॥

व्याख्या - मेरी समस्त प्रकृति शक्ति मुझ से ही प्रकट है तथा मेरी ही प्रेरणा से नित्य संचालित होती है । इसलिए जो मेरी प्रकृति को रिझा लेते हैं, उनके सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।

अब कहुँ नीति जग उपकारी । कृषि आदि काह उचित व्यवहारी ॥
नहिं कोउ जग कृषक समाना । पालहिं जगत बिनु अभिमाना ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुम्हें जगत के लिए कुछ और उपकार करनेवाले उपदेश कहता हूँ कि कृषि आदि के लिए क्या उचित व्यवहार होना चाहिए । संसार में किसान के समान कोई दूसरा नहीं होता है । क्योंकि किसान बिना अभिमान के संसार का भरण-पोषण करता है ।

उत्तम खेती मध्यम व्यापारा । कहत सुनत सकल संसारा ॥
तबहउँ नहिं कृषक सम्माना । निसि दिवस सहहिं कष्ट नाना ॥

व्याख्या - कृषि उत्तम होती है और व्यापार मध्यम होता है । यह सब संसार

कहता और सुनता आया है। परन्तु फिर भी किसान को उचित सम्मान नहीं मिलता है और वह समाज में नाना कष्ट सहन करता है।

कहउँ जुगति कृषक हितकारी। सरल सहज जग उपकारी ॥
कृषि अरु प्रकृति रहिं अटूटा। जानहिं जेहहिं आनन्द लूटा ॥

व्याख्या - अब मैं किसानों के हित के लिए सरल, सहज तथा जगत का उपकार करने वाली विधि बताता हूँ। कृषि और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध होता है, अतः जो इस रहस्य को जानते हैं। वे आनन्द प्राप्त कर लेते हैं।

जुग विज्ञान सुत आज सुहाई। सोहि कहउँ उचित समझाई ॥
प्रथमहिं उचित प्रकृति पूजा। करहिं पुनि बोनि काजादि दूजा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! आज विज्ञान का युग है। इसलिए मैं युग अनुरूप ही विधि बताता हूँ, सुनो। सबसे पहले किसान को प्रकृति शक्ति की पूजा करनी चाहिए। फिर उसके बाद ही बुआई आदि कार्य करने चाहियें।

दो०- प्रथम मनाई गृह मातु पितु चलइहिं लेइ बीज हाथु ।
क्षेत्र माझ पहुँचाइ कर पुनि मनावहि जगत मातु ॥ २७ ॥

व्याख्या - सबसे पहले अपने माता-पिता का आशीर्वाद लें और फिर बीज लेकर खेत में पहुँच कर, जगत की माता प्रकृति को मनाना चाहिए।

रखि बीज जुगल करि जोरि। करहिं बिनय प्रकृति निहोरि ॥
नहिं कोउ जग सम मानस पूजा। मन जोरहउ नहिं पाखण्ड पूजा ॥

व्याख्या - बीज को खेत के बीच में रख कर, प्रकृति की तरफ देख कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करें। मानसिक पूजा के बराबर दूसरी कोई पूजा नहीं होती है। इसलिए प्रकृति से अपने मन को जोड़ें तथा किसी प्रकार के पाखण्ड की जरूरत नहीं है।

मन निर्मल प्रकृति सुमरहिं। दोउ कर जोरि अस कहहहिं ॥
मातु तू ही बीज तू ही भूमि पावन। होइ निमित करहउँ मैं बावन ॥

व्याख्या - मन को निर्मल करके प्रकृति को याद करें तथा दोनों हाथ जोड़ कर कहें कि हे माता प्रकृति ! आप ही बीज हैं और आप ही पवित्र भूमि हैं। मैं तो माँ निमित्त होकर बुआई कर रहा हूँ।

दया मातु अब मोहि पर कीजै। उत्तम हो फसल सो वर दीजै ॥
हो भरण पोषण मोर परिवारा। बचहिं पुनि हेतु जग उपकारा ॥

व्याख्या - हे माता ! अब आप मुझ पर दया कीजिए तथा अच्छी फसल पैदा हो, ऐसा वरदान दीजिए। हे माँ ! मेरे परिवार का भरण पोषण हो जाये तथा

जगत के उपकार के लिए भी बच जाय, ऐसा वर दीजिए ।

सूरज चन्द मेघ देहउ आदेशा । रहहहिं अनुकूल सोइ हमेशा ॥
मातु तुम सब जानिन हारी । जल बातादि देइब दरकारी ॥

व्याख्या - हे माता ! आप सूर्य, चन्द्र व बादलों को आदेश दीजिए । जिससे ये सदा अनुकूल रहें । हे माता ! आप तो सब जानने वाली हो, इसलिए आवश्यकता के अनुसार हमें जल, वायु आदि प्रदान कीजिए।

दो०- मातु तू ही कर्ता भर्ता भइ मैं निमित्त हेतु किसान ।
सो कृपा करहु मोहि पर आयहुँ शरण जननी जान ॥ २८ ॥

व्याख्या - हे माता ! आप ही जगत की कर्ता और भर्ता हैं । मैं तो निमित्त मात्र किसान हूँ । इसलिए आप मुझ पर कृपा कीजिए। हे माता ! मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

एहि विधि कह करहिं बुआई । होहिं सहज निज गृह चलि आई ॥
मावस पूनम तिथि जब आवहिं । जाइ खेत पुनि विनय सुनावहिं ॥

व्याख्या - इस प्रकार प्रार्थना करके खेत की बुआई करके सहज होकर घर आ जायें तथा जब अमावस व पूनम तिथि आयें, तब खेत में जाकर पुनः प्रार्थना करें ।

मातु तू करि फसल रखवारी । मैं निमित्त तू मोर महतारी ॥
हियँ तें करहिं प्रकट आभारा । धन्य जननी कीन्ह कृपा अपारा ॥

व्याख्या - हे माता ! आप ही फसल की रक्षा कीजिए । हे माँ ! मैं तो निमित्त के लिए किसान हूँ । तू ही मेरी माता है । ऐसा कह कर हृदय से आभार प्रकट करें कि हे माँ आप धन्य हैं ! आपने मुझ पर अपार कृपा की है ।

कृपा तोरि रहि फसल लहलाई । चहुँ दिस अनुकूलता हय छाई ॥
एहि विधि प्रतिपक्ष पखवारा । सुनाइ विनय करहिं आभारा ॥

व्याख्या - हे माता ! आपकी कृपा से फसल लहलहा रही है तथा चारों तरफ अनुकूलता छा रही है । इस प्रकार प्रत्येक पखवाड़े में खेत में जाकर प्रार्थना करनी चाहिए ।

जेहि पालहिं इहँ विधि किसाना । तिन्ह देइ मातु बहु धन धाना ॥
जुगति सरल रहित पाखण्डा । इच्छा पूर्ण अनुकूल ब्रह्माण्डा ॥

व्याख्या - जो किसान इस प्रकार प्रकृति से प्रार्थना करते हैं, उनको माता प्रकृति बहुत धन-धान्य प्रदान करती है । यह विधि बहुत ही सरल व पाखण्ड से मुक्त है । इस विधि के पालन से समस्त ब्रह्माण्ड अनुकूल हो जाता है । जिससे समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

दो० - प्रकृति शक्ति अपार है मरम बिरला जानइ कोय ।
इहँ शरण जे जनु रहइ मनोरथ सब पूरण होय ॥ २९ ॥

व्याख्या - प्रकृति की शक्ति अपार होती है। इस रहस्य को कोई विरला ही जान पाता है। इसलिए प्रकृति माता की शरण में जो रहते हैं, उनके सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

धन्य धन्य हे परम ईशा। धन्य धन्य नाथ जगदीशा ॥
कृषक हेतु तुम्ह दीन्ह बताई। अब कहउ किछु हेतु व्यवसाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं। हे जगत के नाथ ! आप धन्य हैं। आपने किसानों के कल्याण की विधि तो बता दी है। अब दया करके व्यवसायियों के कल्याण के लिए कुछ कहिए।

फलहिं फूलहिं नित व्यापारा। सो कहउ नाथ सरल उपचारा ॥
सुनु सुत कहुँ सरल उपाई। फूलत फलत जाते व्यवसाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! ऐसी सरल विधि कहिए, जिससे नित्य व्यापार में बरकत हो। हे वत्स ! सुनो, मैं तुम्हें वह सरल विधि बताता हूँ, जिसका अनुसरण करने से नित्य व्यापार में बढ़ोतरी होगी।

रुचि अनुरूप हो सब धन्धा। नहिं कोउ छोट बड़ भल मन्दा ॥
निज निमित्त हेतु व्यवसाई। मन निरमल प्रकृति मनाई ॥

व्याख्या - जो भी उद्योग-धन्धा हो, अपनी रुचि के अनुसार करना चाहिए क्योंकि कोई भी धन्धा छोटा-बड़ा, अच्छा-बुरा नहीं होता है। स्वयं को निमित्त मान कर व्यवसाय करना चाहिए तथा निर्मल मन से प्रकृति शक्ति को मनाना चाहिए।

मोर प्रकृति सब लच्छन जुक्ता। मन भावन करहि फल चुक्ता ॥
कहुँ अब विधि हेतु व्यापारी। पावहिं फल भावना अनुसारी ॥

व्याख्या - मेरी प्रकृति समस्त गुणों से युक्त है। इसलिए मन की भावना के अनुसार हमेशा फल देती है। अब मैं व्यापारी के कल्याण की विधि कहता हूँ, जो भावना के अनुरूप फल देने वाली है।

दो०- दोउ कर जोरि विनय करइ लाइ भाव जन कल्याण।
मैं निमित्त मातु शरण तोरी करउ कृपा निज सुत जान ॥ ३० ॥

व्याख्या - दोनों हाथ जोड़ कर मन में लोक कल्याण की भावना लाकर प्रार्थना करनी चाहिए कि हे माता ! मैं तो व्यापार में निमित्त मात्र हूँ और आपकी शरण में हूँ। इसलिए मुझे अपना पुत्र मान कर, माता मुझ पर कृपा कीजिए।

मातु करु सब ब्रह्माण्ड अनुकूला। मोर मन रहत तोर बल फूला ॥
तू ही जननी तू ही जग धात्री। तू ही विधि तू ही मातु विधात्री ॥

व्याख्या - हे माता प्रकृति ! आप समस्त ब्रह्माण्ड को मेरे अनुकूल कर दीजिए।

क्योंकि मेरे मन को तो माता केवल आप ही का बल है। हे माता ! आप ही जन्म देने वाली हैं और आप ही इस जगत को धारण करने वाली हैं। हे माता ! आप ही विधि हैं और आप ही विधि को बनाने वाली विधात्री हैं।

निसि दिवस बढ़ावउ व्यवसाया। तोरहि कृपा सकल मैं पाया ॥
तू ही स्वामिन तू ही फैक्टरी। तू ही हित मोर तू ही हितकरी ॥

व्याख्या - हे माता ! रात-दिन व्यापार को बढ़ाइए। मैंने तो तेरी कृपा से सब प्राप्त किया है। हे माता ! आप तो मालिक हैं और आप ही फैक्टरी हैं। हे माता ! आप ही मेरी हित हैं और आप ही मेरा हित करने वाली हैं।

देवहउँ धनादि सकल सम्पदा। हरहउ मातु मोर सब विपदा ॥
सक्हउँ करु जन कल्याणा। सो देवहु मातु धन कोटि नाना ॥

व्याख्या - हे माता ! मुझे धन आदि सम्पदा प्रदान कीजिए और मेरी समस्त बाधाओं को दूर कर दीजिए। हे माता ! मैं लोक कल्याण कर सकूँ, इसलिए करोड़ों धन-सम्पदा दीजिए।

वस्त्रादि रहवइ नहिं अभावा। सकल देवहु शुभ मन आवा ॥
मैं कर्मी तू कर्म फल दायनी। देवउ वैभव वर हे भामनी ॥

व्याख्या - मुझे वस्त्र आदि का अभाव नहीं रहे और मेरी मन की समस्त शुभ इच्छाओं को पूर्ण कर दीजिए। हे माता ! मैं तो कर्म करने वाला हूँ और आप कर्म का फल देने वाली हैं। अतः हे माता! मुझे वैभव प्राप्त करने का वर दीजिए।

दो०- धन दौलत निस दिवस बढ़ै हियँ रहे भगति भाव ।
मन प्रसन्न तन निरोग रहे परहित सदा मन चाव ॥ ३१ ॥

व्याख्या - हे माता प्रकृति ! रात-दिन धन-दौलत बढ़ती रहे तथा मेरे हृदय में भक्ति का भाव बना रहे और मेरा मन प्रसन्न तथा शरीर निरोगी रहे तथा मन में परहित का उत्साह बना रहे।

एहि विधि करि विनय मन माहिं। बैठहिं शान्त आसन लगाहिं ॥
आवत जावत संभारहि श्वासा। मन ही मन करहिं आभासा ॥

व्याख्या - इस प्रकार मन में प्रार्थना करके शान्त होकर आसन लगा कर बैठ जायें तथा आने-जाने वाली श्वास को देखकर मन ही मन में आभास करें।

इच्छा होवत पूरण हमारी। करत कृपा जगदम्बा महतारी ॥
रोम रोम महतत्व हरषाई। चहुँदिसि रहि अनुकूलता छाई ॥

व्याख्या - हमारी इच्छाएँ पूर्ण हो रही हैं तथा जगत की माता प्रकृति हम पर कृपा कर रही है। सृष्टि के महतत्व का रोम-रोम हर्षित हो रहा है तथा चारों

तरफ अनुकूलता छा रही है ।

बढ़त बरकत बहु व्यापारा । धन्य मातु करहउँ आभारा ॥
मातु सदा कृपा मोहि पर कीजै । जुगल चरण शरण अब दीजै ॥

व्याख्या - व्यापार में बहुत लाभ हो रहा है । हे माता ! मैं आपका बहुत बहुत आभारी हूँ । हे माता ! अब मुझ पर कृपा कीजिए तथा आपके चरणों में मुझे शरण दीजिए ।

मोर मन भयउ अब संतोषा । सबु भांति मोहि मातु तोर भरोषा ॥
एहि भांति कहि होइ निश्चिन्ता । रखहि भरोस शक्ति अनन्ता ॥

व्याख्या - मेरे मन में अब संतोष आ रहा है तथा माता मुझे आप पर अब पूर्ण भरोसा हो गया है । इस प्रकार कह कर निश्चिन्त हो जाएँ तथा अनन्त प्रकृति शक्ति पर विश्वास रखें ।

दो०- निमित्त होय व्यवसाय करें तिन्ह भल करै प्रकृति अपार ।
हृदय सदा सन्तोष बसै रहइ सुख वैभव परिवार ॥ ३२॥

व्याख्या - जो निमित्त होकर व्यापार करते हैं, उनका प्रकृति शक्ति भला करती है तथा उनके हृदय में सन्तोष रहता है और परिवार में सुख-शान्ति व वैभव छाया रहता है ।

कर्मकाण्डी पुरोहित जेहु । तिन्ह हेतु जुगति किछु देहु ॥
सुनहु सुत कहुँ अति मरमा । पावन काज पुरोहित धरमा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जो कर्मकाण्ड करने वाले पुरोहित हैं, उनके हित के लिए कोई उपाय बताइए । हे वत्स ! तुम्हें रहस्य बताता हूँ कि पुरोहित का धर्म (आचरण) बहुत पवित्र होता है ।

पुरहित करहिं पुरोहित सोई । ग्राम नगर अरु देह पुर होई ॥
ग्राम पुर घर कुटुम्ब कबीला । देह पुर इन्द्री मन छबीला ॥

व्याख्या - जो पुर का हित करने वाला होता है, वही पुरोहित होता है । गाँव, नगर और शरीर को पुर कहा जाता है । गाँव के पुर में कुटुम्ब और परिवार होते हैं तथा शरीर रूपी पुर में मन और इन्द्रियाँ होती हैं ।

पर हेतु जो करहिं अराधन । सोइ जानउ देह हित साधन ॥
परहित पूजा पुरोहित कहाई । पिण्ड हेतु सोइ जानि पण्डिताई ॥

व्याख्या - जो स्वयं आत्मा के लिए प्रार्थना की जाती है, वह प्रार्थना ही शरीर का हित करने वाली होती है । जो परहित के लिए अर्थात आत्म कल्याणार्थ करता है, वही पुरोहित कहलाता है और जो शरीर के लिए करता है, वह

पण्डित कहलाता है ।

पुरोहित लच्छन कहुँ समुझाई । नहिं तव सम जग अरु भलाई ॥
मन संतोष नहिं हियँ पाखण्डा । जानहिं जेहि सकल ब्रह्मण्डा ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ पुरोहित के लक्षण समझा कर कहता हूँ । जिसके समान संसार में दूसरी कोई भलाई नहीं होती है । पुरोहित के मन में संतोष होता है तथा हृदय में पाखण्ड नहीं होता है तथा वह समस्त ब्रह्माण्ड के मर्म को जानने वाला होता है ।

कण कण माझ ईश आभासा । करहिं प्रकृति मातु सम विश्वासा ॥
जिन मन संतोष हियँ विश्वासा । पदारथ चारि होवहिं सुपासा ॥

व्याख्या - जो कण-कण में ईश्वरीय शक्ति का आभास करते हैं तथा प्रकृति शक्ति पर अपनी माँ की तरह विश्वास करते हैं । जिन लोगों के मन में संतोष और हृदय में विश्वास होता है, उनको चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सुलभ हो जाते हैं ।

दो०- परहित रत निस दिवस नहिं हियँ मान गुमान ।
ऊँच नीच सब एक सम सो सच्चा पुरोहित जान ॥ ३३ ॥

व्याख्या - जो आत्मा के कल्याण में रात-दिन लगा रहता है तथा हृदय में कोई मान-गुमान नहीं रखता है तथा ऊँच-नीच का भेद भी नहीं करता है, उसे सच्चा पुरोहित मानना चाहिए ।

जानहिं सकल शास्त्र मरमा । पालहिं सदा जेहि सहज धरमा ॥
विषय विगत प्रेम रस प्यासा । मोर भरोस नहिं किछु हिय आशा ॥

व्याख्या-जो समस्त शास्त्रों के मर्म को जानने वाला होता है तथा सहज धर्म का आचरण करने वाला होता है। वह विषय-वासनाओं से मुक्त तथा प्रेम रस का प्यासा होता है तथा उसे मेरा पूर्ण विश्वास होता है तथा मन में कोई इच्छा नहीं होती है।

पर सुख देखि होइ मन उल्लासा । पर दुःख पेखि द्रवहिं अनायासा ॥
निज हेतु चाह नहिं मन माहिं । रहहिं सहज सदा हरषाहिं ॥

व्याख्या - दूसरों के सुख को देख कर मन में प्रसन्न होता हो और पराये दुःख को देख कर सहज में द्रवित होता हो तथा स्वयं के लिए मन में कोई इच्छा नहीं हो तथा सहज रहता हो और हमेशा हर्षित रहता हो ।

शील सन्तोषी जो पुरोहित होई । नहिं संशय सत अराधक सोई ॥
परहित हेतु जे पढ़हिं इहँ ग्रन्था । बैठहिं सरस्वती तिन्ह कण्ठा ॥

व्याख्या - जो शीलवान और संतोषी पुरोहित होता है, वही सच्ची अराधना करने वाला होता है। जो परहित के लिए इस ग्रन्थ को पढ़ेगा, उसके कण्ठ में सरस्वती निवास करेगी, इसमें संदेह नहीं है।

करहउँ सकल कामना पूरी। तिन्ह ते रखहउँ नहिं मैं दूरी ॥
एहि सरल सुगम उपाइ सुहाई। सकहिं कर इहँ वर्ण सबाई ॥

व्याख्या - मैं ऐसे सच्चे पुरोहित की समस्त कामना पूर्ण कर देता हूँ तथा उससे मैं दूर नहीं होता हूँ। यही पुरोहित व कर्म काण्ड करने का सरल उपाय है। जिसको सभी वर्णो के लोग कर सकते हैं।

दो०- नारी पुरुष अबला सब पावहिं फल एक समान।
जैसा भाव मन रखहहिं तैसा फल पाइब इन्सान ॥ ३४ ॥

व्याख्या - स्त्री-पुरुष सब एक समान फल प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। जैसा भाव मन में रखते हैं, वैसा ही मनुष्य फल प्राप्त करते हैं।

अब कहउँ मन्त्र देह उपकारी। प्रकृति करहिं भाव अनुसारी ॥
सब दन्त रोग नाशन हेतु। होवहहिं प्रकृति मनसा मातु ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं देह के कल्याण के लिए कुछ उपाय बताता हूँ। क्योंकि प्रकृति तो भावना के अनुसार अनुसरण करती है। दाँतों के रोगों के नाश के लिए प्रकृति ही मनसा माता का रूप धारण करती है।

चर्म रोग जेहि जन सतावहिं। मिटहिं सकल शीतला मनावहिं ॥
मानसिक जेहि रहहिं तनावा। नासहिं अश्विनी कुमार मनावा ॥

व्याख्या - जिनको चर्म रोग सताते हैं, उनके रोग शीतला माता के रूप में प्रकृति को मनाने से मिट जाते हैं। जिनको मानसिक तनाव होता है, उनका तनाव अश्विनी कुमार के रूप में प्रकृति को मनाने से मिट जाते हैं।

तन कुष्ठादि नेहरवा रोगा। मिटहिं सब प्रकृति कृपा जोगा ॥
जो होवहिं नयन किछु विकारा। मिटहिं तुरत मीनाक्षी पुकारा ॥

व्याख्या - शरीर के कुष्ठ और नेहरवा रोग प्रकृति शक्ति की कृपा से मिट जाते हैं। आँखों में विकार हो जाने पर प्रकृति शक्ति को मीनाक्षी देवी के नाम से स्मरण करने से आँखों के रोग दूर हो जाते हैं।

कर्ण विकार सतावहिं व्याधि। सुमरहिं लाभ शब्द ब्रह्म अनादि ॥
कण्ठ अरु मूत्रादि विकारा। मिटहिं सेवत ब्रह्म जल धारा ॥

व्याख्या - कानों के रोग शब्द-ब्रह्म के स्मरण से दूर हो जाते हैं। गले और मूत्र

सम्बन्धी रोग ब्रह्म-जल पीने से मिट जाते हैं ।

दो०- भाव ते रोग उपजत अरु भाव ही रोग निदान ।
भाव ही औषध सब भाव ही प्रकृति शक्ति महान ॥ ३५ ॥

व्याख्या - भाव से ही सब रोग पैदा होते हैं तथा भाव से ही सब रोगों का नाश होता है तथा भाव ही सब प्रकार की औषधि होते हैं और भाव ही प्रकृति की शक्ति होते हैं ।

अनन्त भाव अनन्त विधाना । अनन्त कारण अनन्त निदाना ॥
प्रकृति मोर असीम आपारा । भाव अनुरूप पाव विस्तारा ॥

व्याख्या - भाव अनन्त होते हैं और भावों के कारण अनन्त विधियाँ बन जाती हैं तथा अनन्त कारण बन जाते हैं और अनन्त समाधान मिल जाते हैं । मेरी प्रकृति शक्ति असीम व अपार होती है । जो भावों के अनुसार विस्तार को प्राप्त होती है ।

प्रकृति बाहिर नहिं जग माहिं । पावइ सकल प्रकृति मनाहिं ॥
इहँ मरम सकल देव विधाना । मन अनुरूप थरपना नाना ॥

व्याख्या - प्रकृति से बाहर कुछ भी नहीं होता है । इसलिए प्रकृति को मनाने से समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं । यही देव विधान का रहस्य है कि लोगों ने मन की कल्पना के अनुसार विभिन्न देवताओं की स्थापना कर ली है ।

सो ज्ञानी जन तहँ नहिं उलझाई । सब तजइ बस मोहहिं ध्याई ॥
हियँ माझ जानि सकल मरमा । पालहिं सहज प्रकृति धरमा ॥

व्याख्या - इसलिए ज्ञानी लोग देवी-देवताओं में नहीं उलझते हैं तथा सबको छोड़ कर मुझ परमात्मा को ही भजते हैं तथा वे हृदय के अन्दर समस्त रहस्यों को जान कर, सहज होकर प्रकृति के धर्म का पालन करते हैं ।

धन्य नाथ कीन्ह कृपा अपारा । दियउ जनाइ मरम जग सारा ॥
हियँ माझ मरम अब मैं बूझा । तुम्हहिं छाड़ि नहिं जग दूजा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं । आपने असीम कृपा करके मुझे संसार का समस्त रहस्य समझा दिया है । अब आपकी कृपा से मैंने हृदय में सारा मर्म समझ लिया है कि आप को छोड़ कर दूसरा कोई नहीं है।

तुम्हीं देव तुम्हीं देवाधि देवा । तुम्हहिं सेवक स्वामी सेवा ॥
तुम्हीं जीव तुम्हीं जीव नायक । तुम्हीं जग तुम्हीं जग सायक ॥

व्याख्या - हे परमपिता! आप ही देवता हैं और आप ही देवताओं के देवता हैं। आप ही प्रभु सेवक, स्वामी और सेवा हैं। हे प्रभु! आप ही जीव हैं और आप

ही जीव के मालिक हैं। आप ही जगत हैं और आप ही जगत के कारक हैं।

दो०- स्वामी सखा पितु मातु सब तुम्हीं कण कण वासी भगवान ।
आदि मध्य अन्त नहिं तुम्हार कैसे सकहउँ करि गुण गान ॥ ३६ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही स्वामी, सखा, माता-पिता सब कुछ हैं । आप कण-कण में वास करने वाले भगवान हैं । आपका न आरम्भ है, न मध्य है और न ही अन्त है । तब मैं आपका वर्णन कैसे कर सकता हूँ ?

छ० - **जय जय अविनाशी कण कण वासी शरण तुम्हारी आई ।**
मरम पहिचाना मन अब माना तुम्हीं सकल जग गुसाई ॥
भाव अभावा निज सुभावा बिरथा जग जीव भरमाई ।
नाना पंथा सब मन मंता तुम्ह रहत एक रस सदाई ॥

व्याख्या - हे अविनाशी प्रभु ! आपकी जय हो । हे कण-कण में निवास करने वाले प्रभु ! मैं आपकी शरण में आया हूँ । हे प्रभु ! आपका मर्म अब मैंने पहचान लिया है और मेरे मन ने भी अब मान लिया है कि आप ही जगत के मालिक हैं । भाव और अभाव तो जीव के स्वभाव से पैदा होते हैं । जिसके कारण संसार में जीव व्यर्थ में फँस जाता है । हे परमपिता ! नाना पंथों का उद्भव तो मन के मतों के कारण हुआ है । आप तो सदा एकरस हैं ।

छ० - **तुम्हीं दृष्टा तुम्हीं सृष्टा जीव अरु तुम भेद किछु नाई ।**
मन अनुरूपा सकल सरूपा लीला अद्भुत आप बनाई ॥
मन बच कर्मा सहज धरमा तिन्ह हियँ तुम्ह प्रकटाई ।
ग्यान अग्याना बिरथा अभिमाना तुम्ह हेतु नहिं दरकाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही सृष्टा हैं और आप ही दृष्टा बन कर देखने वाले हैं । आप में और जीव में कोई भेद नहीं है । मन के अनुरूप ही विभिन्न स्वरूप दिखाई दे रहे हैं । यह अद्भुत लीला आपने ही बनायी है । जो मन, वचन, कर्म से सहज धर्म का पालन करते हैं, उनके हृदय में आप प्रकट हो जाते हैं । ज्ञान-अज्ञान का तो व्यर्थ अभिमान होता है। आपके लिए तो ज्ञान-अज्ञान किसी की भी आवश्यकता नहीं होती है ।

छ० - **श्रद्धा विश्वासा विगत सब आशा मन निर्मल जब होई ।**
हियँ उमंगा मन अनंगा मरम तुम्हार समझइ कोई कोई ॥
मिटहिं भेदा विगत सब खेदा मन ही मन तब हरषाई ।
निज पिण्डा सकल ब्रह्माण्डा निज उर ही परहि समझाई ॥

व्याख्या - जब हृदय में श्रद्धा विश्वास पैदा हो जाते हैं और मन की आशाएँ

मिट जाती हैं, तब मन निर्मल हो जाता है। उस समय हृदय में उमंग छा जाती है और मन अनंग अर्थात इन्द्रियों के जाल से मुक्त हो जाता है। तब कोई-कोई आपके मर्म को समझ पाते हैं। उस समय समस्त भेदभाव मिट जाते हैं और समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है तथा जीव मन ही मन हर्षित होने लग जाता है। उस समय जीव के स्वयं के हृदय में ही समझ में आता है कि समस्त ब्रह्माण्ड जीव के शरीर का ही विस्तार होता है।

दो०- अकथ अनादि अगाध अति तुम्हीं तुम्हार समान।
सब तजि शरण तिहारी आउँ करहु कृपा कृपा निधान॥ ३७॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप अकथ, अनादि और अगाध हैं। हे प्रभु ! आप ही आपके समान हैं। मैं सब छोड़ कर प्रभु आपकी शरण में आया हूँ। हे कृपा निधान! मुझ पर कृपा करो।

भाव तुम्हार रहउँ मैं स्वामी। सोइ देवहउ वर अन्तरयामी॥
जथा लाभ सदा रहहि संतोषा। तुम्हहिं छाड़ि कोउ नहिं भरोसा॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे मैं आपके भाव में स्थित हो जाऊँ तथा सदा मन में संतोष रहे तथा आपके अलावा और किसी का भरोसा नहीं रहे।

मम तन रथ तुम रथी होउ। करहउँ विनय जोरि कर दोउ॥
मंगलमय हो सकल परिवारा। पालहिं धरम सहज आचारा॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरा शरीर रथ है। आप इसको चलाने वाले रथी हो जाइए ! मैं आपसे दोनों हाथ जोड़ कर विनय करता हूँ। मेरा परिवार मंगलमय हो जाये तथा सभी लोग सहज व्यवहार करें।

एवमस्तु मंगलमय होउ। भाव अनुरुप पाव फल सोउ॥
सदा नहावहिं आनन्द गंगा। मन निर्मल रहइ सदा उछंगा॥

व्याख्या - हे वत्स ! ऐसा ही हो। आपकी भावना के अनुरूप फल प्राप्त हो। तुम सदा आनन्द रूपी गंगा में स्नान करो तथा तुम्हारा मन सदा उत्साहित और निर्मल बना रहे।

मोर भगति रहइब हियँ तोरे। पूर्ण मनोरथ अनुग्रह मोरे॥
निर्मल होइब मन तुम्हारा। पाइब तू सदा आशीष हमारा॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हारे हृदय में सदा मेरी भक्ति निवास करेगी तथा मेरी कृपा से तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होंगे। तुम्हारा मन निर्मल होगा तथा तुम हमेशा मेरा आशीर्वाद प्राप्त करते रहोगे।

दो०- मन निर्मल भगति बसै मम बचन सत्य जान ।
तरण तारण तब होवै एक रस रहइब ग्यान ॥ ३८ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जिनका मन निर्मल होता है, उनके हृदय में मेरी भक्ति निवास करती है। ये मेरे सत्य वचन हैं और जिसके हृदय में भक्ति बसती है, वो स्वयं भवसागर तैर जाता है और दूसरों को भी तार देता है तथा उसके हृदय में सदा समरसता का ज्ञान रहता है ।

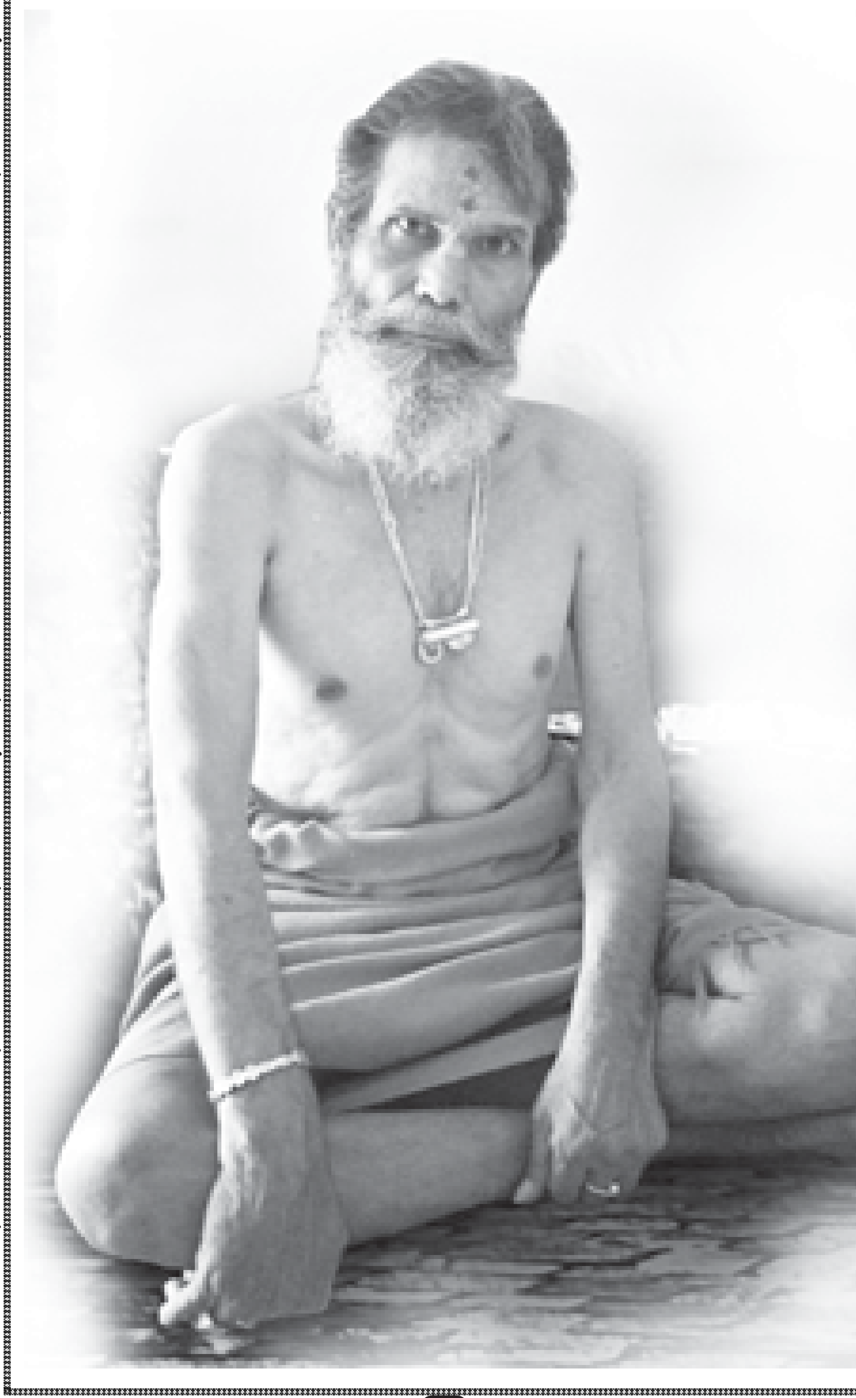
छ० - आत्म ग्याना हियँ जाना मति अनुरूप कहा मैं गाई ।
प्रभु प्रसादा गत सब विषादा सहजता अब मन छाई ॥
इहँ कथा हरहि व्यथा पढ़हिं गुनहि जे भव तर जाई ।
आनन्द मूला मिटावहिं शूला सहजहि परम पद दिलाई ॥

व्याख्या - मैंने आत्मज्ञान की अनुभूति मेरे हृदय के अन्दर की है तथा उसी को मेरी बुद्धि के अनुसार लिखा है। परमपिता की कृपा से मेरे समस्त कष्टों का निवारण हो गया है तथा मन में सहजता आ गयी है। यह आत्मज्ञान की कथा समस्त कष्टों का निवारण करने वाली है तथा जो पढ़ कर समझ लेगें, वे भावरूपी सागर को पार कर जायेंगे। यह कथा आनन्द की मूल और समस्त कष्टों को दूर करने वाली है तथा सहज में ही परम पद दिलाने वाली है ।

॥ इति श्री मानवधर्मशास्त्रस्य वेदमर्मार्थम सर्व शूल निवार्णार्थम्
चतुर्थः स्कन्धः सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण षष्ठम पड़ाव ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण द्वितीय पड़ाव ॥



ॐ गुरुदेवाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

पंचम स्कन्ध

ॐ नाम रूपम् पारम् जगताधारम् करुणा धामं मंगलदायकं ।
भगतप्रियम् भगत सर्वम् भगत वत्सलम् नारायणम् नमो नमः ॥ १ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप नाम व रूप की सीमा से परे हैं, आप जगत के आधार, करुणा के घर और मंगल देने वाले हैं । आप भक्तों के प्रिय व भक्तों के सब कुछ हैं तथा आप भक्तवत्सल हैं । हृदय स्थित नर को घर बना कर रहने वाले नारायण भगवान आपको नमस्कार हो ।

भावाधारम् भावबस्यम् भावप्रेरकम् भावसरूपम् भगवानम् ।
त्वम आनन्दमूलम् सुखदायकम् शरणागत रक्षकम् नमो नमः ॥ २ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप भावों के आधार हैं तथा भावों के वश में रहते हैं और आप ही भावों की प्रेरणा करने वाले हैं तथा आप ही भाव स्वरूप भगवान हैं। हे प्रभु ! आप आनन्द के मूल, सुख देने वाले व शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले हैं । आपको नमस्कार हो !

दो०- अकथ अगाध असीम प्रभु भगत हेतु तुम भगवान ।
शिष्य हेतु सतगुरु भए अरु नहिं किछु सत्य ग्यान ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप अकथनीय, अगाध और सीमारहित हैं तथा भक्तों के लिए आप भगवान हैं । आप शिष्य के लिए सतगुरु बन जाते हैं । यही यथार्थ है । इसके अलावा दूसरा कोई सत्य ज्ञान नहीं है।

बल बुद्धि विवेक मोर सब हारे । अब सब भाँति तुम्हार सहारे ॥
नाथ अब मोहि देहु उपदेशा । जग हित हेतु बनहि संदेशा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरे बल, बुद्धि व विवेक आपके सामने सब हार गये हैं । अब मैं सब प्रकार से आपके सहारे हूँ । हे नाथ ! अब मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, जो समस्त संसार के लिए संदेश बन जाय।

काह बड़ सुख सरल उपाई । प्रभु मोहि देहवउ समुझाई ॥
काह उचित जगत व्यवहारा । काह सुत दारा मातु पितु आचारा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! सबसे बड़ा सुख क्या है और उसे प्राप्त करने का सरल उपाय क्या है ? यह मुझे समझा कर कहिए । संसार में क्या उचित व्यवहार होना चाहिए तथा पुत्र-पुत्रियों, स्त्री व माता-पिता का क्या आचरण होना चाहिए ।

काह उचित नीति सेवक स्वामी । सब कहउ समझाइ अन्तर्यामी॥
कहहउ नीति हेतु लोकशाही । राजा प्रजा पावइ सुख सबाही ॥

व्याख्या - सेवक और स्वामी के लिए उचित नीति क्या है ? हे अन्तर्यामी! इसे मुझे समझा कर कहिए । लोकतन्त्र के लिए उचित नीति बताइए, जिससे राजा और प्रजा दोनों को सुख मिलता रहे ।

गरीब अमीर होवहिं समाना । सोइ कहउ उपाइ भगवाना ॥
समरस सुखद होइ समाजा । सपनेउ होइ न कोउ अकाजा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! गरीब-अमीर दोनों समान हो जायें, ऐसा उपाय बताइए। समाज में समरसता व सुख आ जाये तथा सपने में भी किसी का बुरा नहीं करें ।

दो०- मन क्रम बानी सकल सह, आवहउँ नाथ शरण तुम्हार ।
मम हियँ प्रेरणा करहउ, होय जाते जग उपकार ॥ २ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मैं मन, वचन व कर्म से आपकी शरण में आ गया हूँ । अब हे नाथ ! मेरे हृदय में प्रेरणा कीजिए, जिससे समस्त जगत का कल्याण हो जाए ।

सुन सुत बड़ सुख देउँ समझाई । मोर शरण सम कोउ सुख नाई ॥
जब आवइ जीव मोर शरणाई । हरउँ क्लेश तुरत सबाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुमको समझा कर कहता हूँ कि मेरी शरण के बराबर संसार में दूसरा कोई सुख नहीं होता है । जब जीव मेरी शरण में आता है, मैं उसी समय तुरन्त उसके समस्त क्लेशों का हरण कर लेता हूँ ।

विगत क्लेश जीव सुख पाई । सोइ मोर शरण एक उपाई ॥
श्रद्धा विश्वास शरण आधारा । पावहिं सकल करहिं आचारा ॥

व्याख्या - जब जीव के क्लेश मिट जाते हैं, तभी उसको सुख की प्राप्ति हो जाती है । इसलिए मेरी शरण ही सुख-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है । श्रद्धा और विश्वास ही मेरी शरण में आने के आधार हैं । इसलिए वे सभी लोग मेरी शरण प्राप्त कर सकते हैं, जो श्रद्धा और विश्वास का आचरण करते हैं ।

बिनु वासना होइ नहिं क्लेशा । इहँ मोर विधि सिद्धान्त हमेशा ॥
मोर शरण वासना मिटावहिं । समरप भाव हियँ उमगावहिं ॥

व्याख्या - बिना विषयों की वासना के जीव को दुःख नहीं होता है । यह मेरी विधि का अकाट्य सिद्धान्त है । मेरी शरण वासना को शान्त कर देती है । जिससे जीव के हृदय में समर्पण का भाव आ जाता है।

जब जब आव समरप भावा । तब तबहिं कर्ता भाव दुरावा ॥
अकर्ता कबहुँन पाइ क्लेशा । सिद्धान्त विधि विधान हमेशा ॥

व्याख्या - जब जब जीव के हृदय में समर्पण का भाव आता है, तब-तब कर्तापन का भाव मिट जाता है और बिना कर्तापन के भाव के कोई जीव कभी दुःख नहीं भोगता है । यह विधि के विधान का सिद्धान्त है ।

दो०- मोर शरण सुखदायनी, समर्पण सोहि अधार ।
श्रद्धा विश्वास बल हय करि देखि मन विचार ॥ ३ ॥

व्याख्या - मेरी शरण ही सुख देने वाली होती है । जिसके लिए समर्पण का भाव ही आधार होता है तथा श्रद्धा और विश्वास ही उसके बल होते हैं । यह मन में विचार कर देख लो ।

धन्य देव तुम दीन्ह समझाई । मोर मन भ्रम गयउ मिटाई ॥
अब भयउ मन दृढ़ विश्वासा । शरण तुम्हार पूर्ण अभिलाषा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप धन्य हैं, जो आपने मुझे समझा दिया है । अब मेरे मन का समस्त भ्रम मिट गया है तथा मेरे मन को दृढ़ विश्वास हो गया है कि आपकी शरण में जाने पर समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

सुन सुत कहुँ जगत व्यवहारा । आचरहिं पावहिं सुख अपारा ॥
सुत दारा कुटुम्ब परिवारा । इहँ सब मिलि बनहिं संसारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब तुमको मैं जगत का व्यवहार समझा कर कहता हूँ जिसका आचरण करने वाले अपार सुख की प्राप्ति करेगें । सन्तान, स्त्री, परिवार और कुटुम्ब सब मिलकर संसार बनाते हैं ।

प्रतिवेशी राजा प्रजा पुर नगरा । मिलि कहावहिं जगत सबरा ॥
सुत जड़ चेतन चराचर सारा । सकल अवयव जानि संसारा ॥

व्याख्या - राजा, प्रजा, पड़ोसी, ग्राम और नगर सब संसार के अर्न्तगत आते हैं । हे वत्स ! जड़-चेतन समस्त चराचर, ये सब संसार के अवयव हैं ।

सकल दिखहिं मन अनुसारा । मन तें नहिं बड़ इहँ संसारा ॥
मन भिन्नता दुःख उपजाई । मन मेल तउ सदा सुख पाई ॥

व्याख्या - समस्त संसार मन के अनुरूप दिखाई पड़ता है, इसलिए यह संसार मन से बड़ा नहीं है । संसार में मनों की भिन्नता ही दुःख पैदा करती है तथा मन का मेल ही सदा सुख देने वाला होता है ।

मंगल भावना मन मेल कराई । सो मंगला स्तुति कहुँ समझाई ॥
जो करइब इहँ मंगल स्तुति । होइब हियँ सदा सुख अनुभूति ॥

व्याख्या - मंगल भावना ही मनों का मेल कराती है, इसलिए मैं यहाँ मंगल स्तुति को समझा रहा हूँ । जो मंगला स्तुति को करेंगे, वे अपने हृदय में सुख का अनुभव करेंगे ।

मंगला स्तुति

दो०- मंगल चाहवउँ चहुँदिसि, मंगल मूर्त कृपा निधान ।
जग मात पिता तुम सब, तुम कर्ता जग कल्याण ॥ ४ ॥

व्याख्या - हे मंगल की मूर्ति कृपा निधान ! मैं चारों तरफ मंगल ही मंगल की चाह करता हूँ । आप ही जगत की माता-पिता हैं तथा आप ही समस्त जगत का कल्याण करने वाली हैं ।

आनन्दमूल ब्रह्म अविनाशी । सकल कर्ता तुम घट-घट वासी ॥
नाम रूप अनन्त मति अनुरूपा । तुम्ह तुम्हीं सम अद्वितीय अनूपा ॥

व्याख्या - आप आनन्द की मूल अविनाशी ब्रह्म हैं तथा आप ही सब कुछ करने वाली और प्रत्येक जीव के हृदय में निवास करने वाली हैं। बुद्धि के मतों के अनुसार आपके अनन्त नाम व रूप हैं, परन्तु माता आपके समान अद्वितीय व अनुपम तो आप ही हैं।

तुम दुर्ग समान अभेद सुहाई । ताइ नाम तुम्हार दुर्गा कहाई ॥
काल अतीत तुम त्रिगुण पारा । सोइ काली कहहिं जग पुकारा ॥

व्याख्या - हे माता ! आप दुर्ग के समान अभेद हैं, इसलिए आपका नाम दुर्गा भी है । आप समय (काल) और तीन गुणों (सत, रज, तम) से परे हैं, इसलिए जगत में आपको काली के नाम से जाना जाता है ।

तुम अजय स्वबस सदाई । सोइ तुम जया स्वधा कहाई ॥
मंगल मूल सो मंगला कहाई । जन्म हेतु तुम जयन्ती माई ॥

व्याख्या - हे माता ! आप अजय हैं, इसलिए जया कहलाती हैं और सदा स्वयं के वश में ही रहती हैं, इसलिए स्वधा हैं । आप मंगल की मूल होने कारण मंगला हैं तथा समस्त संसार के जन्म का कारण हैं, इसलिए जयन्ती माता के नाम से जानी जाती हैं ।

विधि मूल सोइ तुम विधात्री । जग सृजक पालक जगधात्री ॥
सरूप तुम्हार कोह सकै बखानी । सब गुण पार सकल गुण खानी ॥

व्याख्या - आप विधि की मूल हैं, इसलिए विधात्री हैं । आप जगत को पैदा व पालन करने वाली हैं, इसलिए जगधात्री माता हैं । आपके स्वरूप का कौन वर्णन कर सकता है क्योंकि आप तो समस्त गुणों से परे हो और समस्त गुणों को पैदा करने वाली भी हो ।

मरम तुम्हार अति गम्भीरा । जानइ इहँ कोउ कोउ मति धीरा ॥
नारी पुरुष तुम उभय पारा । धरहहिं रूप भाव अनुसारा ॥

व्याख्या - हे माता ! आपका मर्म बहुत गम्भीर है, जिसको कोई-कोई धीर पुरुष

ही जान पाता है। आप तो स्त्री-पुरुष दोनों से परे हैं तथा भाव के अनुरूप रूप धारण करती हैं ।

भाव माझ तुम करहिं निवासा। कृपा तुम्हार साधन सुपासा ॥
जय आनन्द मूल जय मंगला। करउ मंगल चराचर सबला ॥

व्याख्या - हे माता! आप तो भाव में निवास करती हो और आपकी कृपा ही आपके पास आने का साधन होती है। हे आनन्द की मूल,हे मंगला! आपकी जय हो। आप समस्त चराचर जगत का मंगल कीजिए।

रहइ सुख वैभव मोर परिवारा। देखउँ चहुँदिसि आनन्द अपारा ॥
मंगलमय हो वनस्पति सारी। रहवहिं सहज वृत्ति हमारी ॥

व्याख्या - मेरे परिवार में सुख और वैभव रहे तथा मैं चारों तरफ आनन्द ही आनन्द देखूँ। समस्त वनस्पति मंगल करने वाली हो तथा हमारी वृत्तियाँ सहज रहें ।

रहइ ब्रह्माण्ड हमरे अनुकूला। व्यापहिं नहिं जग त्रिविध शूला ॥
सुखी सम्पन्न रहे प्रतिवेशी। मंगल भावना हियँ रखे हमेशी ॥

व्याख्या - समस्त ब्रह्माण्ड हमारे अनुकूल रहे तथा हमें दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापें। हमारे पड़ोसी सुखी और सम्पन्न रहें तथा उनके हृदय में सदा मंगल भावना रहे ।

प्रेम सौहार्द चलहि बयारी। रहइ सहज चराचर सारी ॥
मंगलमय हो सदा मन हमारा। करहिं सब विधि भरोस तुम्हारा ॥

व्याख्या - प्रेम और सौहार्द की हवा चले तथा समस्त चराचर के जीव सहज होकर रहें। हे माता ! हमारा मन मंगलमय हो जाए तथा हम सदा आपका भरोसा करें ।

कबहुँन चलहिं कुमार्ग माहि। देहउ आशीष हमरे हियँ आहि ॥
मंगलमय करहउ जल सारा। हो मंगलमय आहार हमारा ॥

व्याख्या - हे माँ ! हमारे हृदय में आकर आशीर्वाद दीजिए, जिससे हम कभी भी बुरे रास्ते पर नहीं चलें। समस्त जल को मंगलकारी कर दीजिए तथा हमारा भोजन भी मंगलकारी हो जाए ।

करहिं काज सब मंगल हेतु। विगत वासना धरम हो सेतु ॥
मंगल भावना हो सेवक स्वामी। देहु इहँ वर मातु अन्तर्यामी ॥

व्याख्या - हम सब कार्य मंगल के लिए करें तथा हमारी समस्त वासनाएँ मिट जाएँ और धर्म ही हमारा रास्ता हो। सेवक व स्वामी दोनों की भावना मंगल करने वाली हो। हे अन्तः मन को जानने वाली माता ! हमें यह वरदान दीजिए।

मंगलमय हो सकल व्यवहारा। सपनेउ करहिं नहिं दुराचारा॥
गुरु शिष्य सब मंगल सोचहिं। स्वामी सेवक सब मंगल होवहिं॥

व्याख्या - हमारा समस्त व्यवहार मंगल करने वाला हो तथा सपने में भी हम लोग बुरा आचरण नहीं करें। गुरु-शिष्य सब मंगल ही मंगल सोचें तथा सेवक और स्वामी सबका मंगल हो।

मंगलमय हो राष्ट्र हमारा। भूलहिं जाति पांति भेद सारा॥
हो मंगल भावना सब मन माहि। करउ कृपा विश्व समता आहि॥

व्याख्या - हे माता ! हमारा राष्ट्र मंगल कारी हो तथा जाति-पाति के समस्त भेदों को भूल जाएँ। हमारे मनों की भावना मंगलकारी हो, जिससे विश्व में समता भाव आ जाए।

विश्व मंगल हो कृपा निधाना। लगहिं सब परिवार समाना॥
हो भावना वसुधैव कुटुम्बा। इहँ वर देउ मातु जगदम्बा॥

व्याख्या - हे जगत की माता, हे कृपानिधान ! हमें ऐसा वरदान दीजिए, जिससे विश्व का मंगल हो तथा समस्त विश्व परिवार के समान लगे तथा सबकी वसुधैव कुटुम्ब की भावना हो जाए।

प्रेम सहयोग रहहि अपारा। मंगलमय हो सकल संसारा॥
सब जन पालहिं अहिंसा नीति। मानव करहहिं सहज प्रीति॥

व्याख्या - प्रेम और सहयोग की अपार भावना रहे तथा समस्त संसार का मंगल हो। सब लोग अहिंसा का पालन करें तथा मनुष्य आपस में सहज प्रीत करें।

मंगलमय हो प्रकृति हमारी। सर्दी गर्मी वर्षा होय दरकारी॥
फूलहिं फलहिं सकल धन्धे। रहवहिं सहज जीव आनन्दे॥

व्याख्या - हमारी समस्त प्रकृति मंगल करने वाली हो तथा सर्दी, वर्षा और गर्मी आवश्यकता के अनुसार हो। सब उद्योग धन्धे फूलें-फलें तथा सभी जीव सहज आनन्द में रहें।

चहुँदिसि फैलहिं वैभव अपारा। बनहिं स्वर्ग इहँ जग सारा॥
कोउ न हो अबुध लच्छन हीना। मंगल करहु सकल नाथ दीना॥

व्याख्या - चारों तरफ को अपार वैभव हो तथा यह संसार ही स्वर्ग बन जाए। कोई भी अशिक्षित और लक्षण हीन नहीं हो। हे दीनों की नाथ माँ ! आप सबका मंगल कर दीजिए।

सुत सुता सब हो मंगलकारी। मातु-पितु मानहिं आज्ञा सारी॥
समरस रहे सकल परिवारा। करहिं सकल धरम आचारा॥

व्याख्या - पुत्र-पुत्रियाँ सब मंगल करने वाले हों तथा माता-पिता की आज्ञा मानने वाले हों । समस्त परिवार में समरसता रहे तथा परिवार के सभी सदस्य धर्म का आचरण करें ।

मंगल करहु मंगल दायनी । सहज दयाल तू भव तारनी ॥
सकल जगत तोर सन्ताना । तू ही मातु पितु तू ही भगवाना ॥

व्याख्या - हे मंगल देने वाली ! आप हमारा मंगल कीजिए । हे माता! आप तो सहज में ही दया करने वाली और भव सागर को पार कराने वाली हैं। समस्त जगत आपकी ही सन्तान हैं तथा आप ही माता-पिता हैं और आप ही भगवान हैं ।

प्रकृति पार तू प्रकृति सरूपा । करहु कृपा तोरी लीला अनूपा ॥
सृजक पालक तू ही संहारणि । परा अपरा स्वबस विहारणि ॥

व्याख्या - हे माँ ! आप प्रकृति स्वरूप हैं और प्रकृति से परे भी हैं । हे माँ ! आपकी लीला अनुपम है, आप हम पर कृपा कीजिए । आप सृजन, पालन व संहार करने वाली हैं । आप परा-अपरा दोनों हैं और स्वयं के वश में रहने वाली हैं ।

पंचभूत हों सब मंगलकारी । सुनहउ मातु विनय हमारी ॥
पृथ्वी जल अनल अरु बाताशा । होउ अनुकूल सहित आकाशा ॥

व्याख्या - हे माँ ! हमारी प्रार्थना सुनिए और पाँचों भूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को मंगलकारी तथा हमारे अनुकूल कर दीजिए ।

सूरज चन्द ग्रह नक्षत्र तारे । होउ मंगलमय मातु ये सारे ॥
सब भांति आयउँ शरण तोरी । करहु मंगल मातु अब मोरी ॥

व्याख्या - हे माता ! सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र ये सब मेरे अनुकूल हो जाएँ। हे माता ! मैं अब सब प्रकार से आपकी शरण में आया हूँ, अब आप मेरा मंगल कर दीजिए ।

दो०- पढ़ि गुन जे अनुसरहिं तिन्ह होवइ जग कल्याण ।
जय रूप यश वैभव मिलै होइब मंगलमूर्त इन्सान ॥ ५ ॥

व्याख्या - जो पढ़-सुन व समझ कर इसका अनुसरण करेंगे, उनका जगत में कल्याण होगा तथा उन्हें जय, रूप, यश और वैभव की प्राप्ति होगी तथा वे इंसान मंगल मूर्ति हो जायेंगे ।

जो करहिं स्तुति मंगलकारी । होइब सत इच्छा पूर्ण सारी ॥
बढ़हिं सहज प्रेम परिवारा । मन उमंग रहहिं निर विकारा ॥

व्याख्या - जो इस मंगलकारी स्तुति को करते हैं, उनकी सब सात्विक इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा परिवार में सहज प्रेम बढ़ जाता है, जिससे मन निर्विकार

होकर प्रसन्न रहने लग जाता है ।

धन्य देव कृपा कीन्ह अपारी । भयहउँ मैं तुम्हार आभारी ॥
तुम सम नहिं कोउ उपकारी । इहँ देखहउँ निज मन विचारी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं, आपने असीम कृपा की है । मैं आपका सदा के लिए आभारी हूँ । हे प्रभु ! मैंने मन में विचार करके देख लिया है कि आपके समान संसार में दूसरा कोई उपकार करने वाला नहीं है ।

जन हित भाव तुमरे हियँ माही । सोइ समझाइ कहुँ लोक शाही ॥
करहु सुत मन माझ विचारा । मन विस्तार जग हय सारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हारे मन में लोक कल्याण की भावना है, इसलिए मैं तुम्हें लोक व्यवस्था को समझा कर कहता हूँ सुनो – हे वत्स ! तुम मन में विचार करके देख लो, यह समस्त जग मन का ही विस्तार मात्र है ।

होवहहिं भूप मन अनुसारी । मनहि हेतु विकार अविकारी ॥
भूप मन जेहि होवहि पावन । नीति निपुण चलहहिं शासन ॥

व्याख्या - राजा तो मन की वृत्ति के अनुसार विकारी या निर्विकारी होता है । अगर राजा का मन पवित्र होता है, तो राज्य का संचालन नीति की कुशलता से चलता है ।

दो०- जन हित रत जो मन रहे, स्वारथ तहँ नहिं टिक पाय ।
बिनु स्वारथ शासन चले कोउ नहिं जग दोष लगाय ॥ ६ ॥

व्याख्या - अगर जनकल्याण में मन लगा रहे, तो स्वार्थ की भावना रह नहीं पाती है और बिना स्वार्थ के शासन करने पर संसार में कोई दोष नहीं लगा सकता है।

सो सुत कहुँ अब नीति बखानी । मन ही भा गुण अवगुण खानी ॥
लोकशाही मन रहहिं अनेका । तहँ दुरगम स्थिर बिवेका ॥

व्याख्या - इसलिए वत्स ! अब मैं तुमको नीति समझा कर कहता हूँ कि मन ही समस्त गुणों व अवगुणों का जन्मदाता होता है और लोकतन्त्र में लोगों के अनेक मन होते हैं, इसलिए स्थिर विवेक आना कठिन होता है ।

राजतन्त्र दुर्गुण एहि ते भारी । फँसहि भोग तहँ नृप अपारी ॥
स्वारथ रत नृप मद अन्धा । बनहिं वासना तहँ काल फन्दा ॥

व्याख्या - राजतन्त्र के दुर्गुण तो लोक तन्त्र से बहुत ज्यादा होते हैं क्योंकि राजा अपार भोगों में फँस जाता है तथा स्वार्थ के वशीभूत होकर अहंकार में अन्धा हो जाता है, जिससे भोग वासनाएँ ही राजा की काल के फन्दे बन जाती हैं ।

भोग लिपसा वासना प्रबलताई । माया तहँ नाना नाच नचाई ॥
परहहिं भूप तब माया जाला । नीति बिमुख जन गण बेहाला ॥

व्याख्या - राजा जब भोगों में लिप्त हो जाता है, तब वासनाएँ प्रबल हो जाती हैं, जिससे माया नाना नाच नचाने लगती है । तब राजा माया के जाल में पड़ जाता है, जिससे वह नीति छोड़ देता है और जनता दुःखी हो जाती है ।

सोइ उचित सुत लोकशाही । सुगम सरल पथ देहुँ बताही ॥
संसद गण चुनहिं जनता सारी । सो जन मन उचित हो अविकारी ॥

व्याख्या - इसलिए लोकतन्त्र ही जन कल्याण की उचित व्यवस्था है । उसके लिए मैं सरल और सुगम रास्ता बता देता हूँ । सांसदों का चुनाव जनता ही करती है, इसलिए उचित तो यह है कि जनता का मन ही निर्विकारी होना चाहिए।

दो०- जैसा बोवत बीज नर तैसा ही जामत गाछ ।
मत देवे बिनु सोच कर बिरथा मलता हाथ ॥ ७ ॥

व्याख्या - जैसा व्यक्ति बीज बोता है, वैसा ही पेड़ पैदा होता है । बिना सोच-समझ कर लोग मतदान करते हैं और फिर व्यर्थ में हाथ मलते रहते हैं अर्थात व्यर्थ में पश्चाताप करते हैं ।

संसद नहिं किछु दोष सुहाई । बोवत फसल सोइ होत कटाई ॥
दाता बड़ सब सन्त पुकारी । बड़ बोध उचित कहुँ विचारी ॥

व्याख्या - संसदीय व्यवस्था का कोई दोष नहीं होता है । जैसा बीज बोया जायेगा वैसी तो फसल कटेगी अर्थात जैसे नेता चुने जायेगें वैसे ही तो संसद चलेगी । दाता हमेशा बड़ा होता है, इसलिए बड़े को बोध होना उचित होता है । ऐसा सभी सन्त कहते हैं ।

सो मत दाता दायित्व अपारी । तार विवेक निर्भर संसद सारी ॥
दान कुपात्र सदा नरक गामी । निगम-पुराण सकल बखानी ॥

व्याख्या - इसलिए मतदान करने वाले का कर्त्तव्य बहुत बड़ा होता है क्योंकि मतदाता के विवेक पर ही संसद निर्भर करती है अर्थात जैसा मतदाता सांसद चुनेगा वैसा ही संसद का कार्य होगा । वेद-पुराण सभी कहते आए हैं कि कुपात्र को दान देना नरक देने वाला होता है।

सोइ घटित मतदाता संगा । मत कुपात्र होइ राज रस भंगा ॥
चुनहहिं कुपात्र प्रजा दुखारी । भोगहिं नरक सोइ यातना सारी ॥

व्याख्या - मतदाता के साथ भी ऐसा ही होता है क्योंकि कुपात्र को मत देने पर राज व्यवस्था बिगड़ जाती है । जब मतदाता कुपात्र नेता को चुन लेता है,

तो प्रजा दुःखी हो जाती है और नरक रूपी यातना भोगनी पड़ती है ।

लोकशाही देहिं दोष बिनु बिचारी । जानइ नहिं निज हेतु विपद सारी ॥
लोकतन्त्र विधि अति पावन । रखहिं क्षमता लोक लुभावन ॥

व्याख्या - लोक व्यवस्था को बिना विचारे लोग दोष देते हैं और यह समझने की कोशिश नहीं करते हैं कि हम स्वयं ही समस्त कष्टों का कारण हैं अर्थात मतदाता के रूप में हम सही चुनाव नहीं करते हैं । लोकतन्त्र की व्यवस्था तो बहुत ही पवित्र होती है । इसमें लोक कल्याण की क्षमता होती है ।

दो०- लोकमत ही ईश मत कहहिं सकल निगम पुराण ।
निस्वार्थ मत हित करहिं स्वारथ मत काल समान ॥ ८ ॥

व्याख्या - लोकमत ही ईश्वरी मत होता है, ऐसा सभी वेद-पुराण कहते हैं । अतः जो लोकमत निःस्वार्थ होता है, वह कल्याणकारी होता है और जो स्वार्थ के लिए होता है, वो काल के समान होता है ।

सो उचित जन मत विवेका । हानि लाभ सकल एहि टेका ॥
जन संस्था चलै सब सुचारु । सोइ दरकार विवेक व्यवहारु ॥

व्याख्या - इसलिए लोकमत के लिए बहुत विवेक की जरुरत होती है क्योंकि समस्त हानि-लाभ तो इसी लोकमत पर निर्भर करता है । जन संस्थाएँ ठीक तरीके से कार्य करें, इसके लिए विवेकपूर्ण व्यवहार की जरुरत होती है ।

दलगत नीति नहिं किछु दोषु । उचित नहिं सोइ बिरथा रोषु ॥
हो मतदान चेतना आधारी । सुनहु काह कहि आत्मा तुमारी ॥

व्याख्या - दलीय व्यवस्था का भी कोई दोष नहीं होता है, इसलिए व्यर्थ में दलीय व्यवस्था पर रोष नहीं करना चाहिए । मतदान करते समय विवेक करके देखना चाहिये कि आपकी अन्तर-आत्मा क्या कह रही है ।

विगत राग द्वेष सब जाति पंथा । परमारथ देखि देहिं निज मंता ॥
चुनहहिं जाइ जेहि निज नेता । अनुसरहिं नीति जो जुग त्रेता ॥

व्याख्या - मतदाता को राग-द्वेष, जाति-पाति और पंथ आदि से मुक्त होकर अपना मत देना चाहिये । जो नेता त्रेता युग (अर्थात सतोगुणी) की नीति का पालन करने वाला हो, उसे ही चुनना चाहिये ।

परमारथ रत सन्त समानी । निज पर हेतु करइ न नादानी ॥
सुख दुःख रहवहिं जन संगा । बाहिर भीतर होब मन चंगा ॥

व्याख्या - जो सन्त के समान परमार्थ में लगा रहने वाला हो तथा अपने-पराये के लिए कोई भेद न करे । जो सुख-दुःख में जनता का साथ देने वाला हो और

जिसका मन बाहर-भीतर से निर्मल हो ।

दो०- नीति परायण रहहिं सदा लोभ लालच नहिं सताय ।
सोइ जन नेता उचित लोक तन्त्र फूले फले अगाय ॥ ९ ॥

व्याख्या - जो नेतागण नीतिवान हो तथा लोभ-लालच मन में रखने वाला नहीं हो, वही सच्चा नेता होता है तथा तभी लोकतन्त्र सुचारु रूप से चल सकता है ।

सहज सरल रहित विकारा । निर्मल मन सो नेता दरकारा ॥
परहित भाव रह हिय उछँगा । संग्रह हेतु करइ न नीति भँगा ॥

व्याख्या - आज ऐसे नेताओं की जरूरत है, जो सहज, सरल व विकारों से रहित हो तथा जिनके मन में सदा जन कल्याण की भावना रहे और जो संग्रह करने के लिए नीति का उल्लंघन नहीं करें ।

भगनि सुता समझहिं पर नारी । सपनेउ नहि मोह परिवारी ॥
यश अपयश सदा समवेता । नीति परायण सोइ सत नेता ॥

व्याख्या - जो सपने में भी अपने परिवार के मोह में नहीं फँसे तथा परायी स्त्री को पुत्री और बहन के समान समझे तथा मान-अपमान में समान रहे और सदा नीति का पालन करने वाला हो, वही सच्चा जन नेता होता है ।

पंथ निरपेक्ष धरम आचारु । सहज करहिं सदा व्यवहारु ॥
मंगल सोच मंगलमय करणी । लोकशाही इहँ जानि बैतरणी ॥

व्याख्या - नेता पंथ निरपेक्ष हो परन्तु धर्म का आचरण करने वाला हो और हमेशा सहज व्यवहार करने वाला हो । जिसकी मंगल भावना हो तथा कर्म भी मंगलकारी हो । ऐसा नेता ही लोकतन्त्र की नाव समझिये ।

काम क्रोध मन नहिं किछु लोभा । राग द्वेष करइ कबहुँ न छोभा ॥
जन सेवक सदा जन अनुरागी । होवहिं नेता सो धरा बड़ भागी ॥

व्याख्या - जिसके मन में काम, क्रोध और लोभ नहीं हो तथा कभी राग-द्वेष की भावना से प्रभावित नहीं हो और सदा जन सेवा की भावना रखने वाला जन अनुरागी हो, तो वह जन्म भूमि धन्य हो जाती है, जहाँ ऐसा नेता पैदा हुआ हो।

दो०- भोग वासना लालच नहिं जन सेवा भाव अपार ।
एहि सम नेता जो चुनहिं भल चलहिं सरकार ॥ १० ॥

व्याख्या - जिस व्यक्ति में भोग वासना की लालच नहीं हो तथा जन सेवा करने का भाव हो, उसको अगर अपना नेता चुना जाए, तो सरकार अच्छी तरह चलती है।

भ्रष्ट आचरण सोइ भ्रष्टा चारा । तन मन धन सब व्यवहारा ॥
सकल मूल मन हय भाई । मन उपचार सो एक उपाई ॥

व्याख्या - तन, मन व धन के व्यवहार में भ्रष्ट आचरण करना ही भ्रष्टाचार कहलाता है । तन, मन और धन के आचरण का मूल मन ही होता है, इसलिए मन का उपचार करने पर ही समस्त समस्याओं का समाधान सम्भव होता है ।

बाल काल सब मन निरमाता । सहज असहज तहँ बन जाता ।
देखत बाल बड़न व्यवहारु । करहिं अनुसरण सोई आचारु ॥

व्याख्या - बाल्य काल ही मन का निर्माण करने वाला होता है । बाल्य काल से मन सहज या असहज बनना शुरू हो जाता है । जब बालक बड़ों के व्यवहार को देखता है, तो स्वयं भी वैसा ही आचरण शुरू कर देता है ।

देवउ ध्यान समाजी करणा । होवइ नहिं ठीक मन बरना ॥
पंथ परिवार अरु पाठशाला । सकल सीख जग देवन वाला ॥

व्याख्या - इसलिए समाजीकरण पर विशेष ध्यान देना चाहिये, वरना बिना उचित समाजीकरण के मन अच्छा नहीं बन पायेगा । पंथ, परिवार और स्कूल ये सब समाजीकरण करने वाली संस्थाएँ हैं ।

पंथ संस्था सब पाखंड सिखाई । सहज धरम परइ भुलाई ॥
इहाँ परहइ भ्रम की ग्रन्थि । छूटत कठिन नित उलझथि ॥

व्याख्या - पंथों की संस्थाएँ (मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे, मठ आदि) सब पाखण्ड सिखाती हैं, जिससे जीव अपने सहज धर्म को भूलने लग जाता है। इससे भ्रम की ग्रन्थि पड़ जाती है, जो नित्य नये पाखण्ड के कारण उलझती चली जाती है ।

मन्दिर मस्जिद अरु गुरुद्वारा । चर्च मठ सब पाखण्ड अपारा ॥
धरम छाड़ि तहँ सब सिखाई । सुनि सुनि झूँठी गवाह भरमाई ॥

व्याख्या - मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च व मठ आदि पंथ संस्थाएँ बहुत पाखण्ड करती हैं । इन संस्थाओं में धर्म के अलावा सब पाखण्ड सिखाया जाता है और लोग इन संस्थाओं की झूठी बातें सुन कर भ्रमित होते रहते हैं ।

दो०- बिनु धरम नीति नहिं बिनु नीति नहिं सुसमाज ।
बिनु सुसमाज सुख नहिं देखहउ परिणाम सब आज ॥ ११ ॥

व्याख्या - बिना धर्म के नीति का पालन नहीं हो पाता है और बिना नीति के अच्छे समाज का निर्माण नहीं हो पाता है और बिना अच्छे समाज के सुख नहीं मिल पाता है । आज इसी व्यवस्था का सब लोग परिणाम देख ही रहे हैं ।

पंथ परिवार स्कूल संस्था । तीनउ भयी सिखावन व्यवस्था ॥
इन सकल आज भयी दुर्दशाई । ताते भ्रमित बाल वृद्ध सबाई ॥

व्याख्या - पंथ, परिवार और स्कूल तीनों ही समाजीकरण की मूल संस्था हैं। इन संस्थाओं की आज दुर्दशा हो रही है, इसलिए सभी बाल व वृद्ध भ्रमित हो रहे हैं।

शिक्षक मौल्वी अरु पुजारी। पोप आदि सकल मठ धारी ॥
भल मन्द सिखावहिं सबरे। ताइ हेतु भये जग सब झगरे ॥

व्याख्या - शिक्षक, मौलवी, पुजारी, पोप और समस्त मठधारी आदि सब लोग समाज को अच्छा-बुरा सिखाते हैं और इन्हीं के कारण संसार में झगड़ते हैं ।

जाति पांति पंथ बँटा समाजा। नित होवत सोइ जग अकाजा ॥
तीनउ संस्था आधार समाजा। पर देखत नहि इन कोउ आजा ॥

व्याख्या - सारा समाज जाति-पाँति और पंथों में बट गया है, जिससे प्रतिदिन समस्याएँ पैदा हो रही हैं। तीनों संस्थाएँ (परिवार, पंथ और स्कूल) समस्त समाज का मूल होती हैं, परन्तु आज इन तीनों संस्थाओं की तरफ किसी का ध्यान नहीं है।

सकल भयउ उपेक्षा शिकारा। जानइ नहिं कोउ इन दरकारा ॥
पावइ नहिं जब कोउ रोजगारी। बनहिं मुल्ला मोल्वी पुजारी ॥

व्याख्या - आज ये तीनों संस्थाएँ उपेक्षा का शिकार बनी हुई हैं। इनके अपार महत्व को कोई समझ नहीं रहे हैं। जब कहीं रोजगार नहीं मिलता है, तो लोग या तो मौलवी बन जायेगें या फिर मन्दिर का पुजारी बन जायेंगे ।

बूझहिं नहिं मरम परिवारा। होवत लुप्त शुभ संस्कारा ॥
भरण पोषण सो लच्छ सुहाई। मरजादा सब परत भुलाई ॥

व्याख्या - परिवार के मर्म को कोई समझ नहीं रहे हैं और सब अच्छे संस्कार लुप्त होते जा रहे हैं। परिवार का लक्ष्य उदर पूर्ति बन कर रह गया है और मर्यादाओं को भूलते जा रहे हैं ।

दो०- शिक्षक हेतु सम्मान नहिं जो निर्माता सकल समाज ।
मुल्ला पुजारी स्वारथी भए केहि विधि होइ सुकाज ॥ १२ ॥

व्याख्या - शिक्षकों को समाज में उचित सम्मान नहीं मिल रहा है, जो कि समाज के निर्माता हैं। मुल्ला-पुजारी सब स्वार्थी हो गए हैं, तब ऐसी अवस्था में शुभ कार्य कैसे हो सकता है ?

झूँठी गवाह अरु झूँठ चबेना। मुल्ला पुजारी करें दिन रैना ॥
धरम भुलाइ करहिं पाखण्डा। बिस्मरहिं सब ब्रह्म अखण्डा ॥

व्याख्या - मुल्ला-पुजारी रात-दिन झूठी गवाही देते रहते हैं तथा झूठ बोलकर आजीविका चलाने में लगे रहते हैं। वे वास्तविक धर्म (सहजता) को भूला करके पाखण्ड में लगे रहते हैं तथा अखण्ड ब्रह्म को भूल जाते हैं ।

इन्साँ-इन्साँ करावहिं भेदा । बढ़त कटुता होइ जग खेदा ॥
मुल्ला-पुजारी विवश सब भाई । नहिं किछु साधन तिन्ह कमाई॥

व्याख्या - मुल्ला-पुजारी इन्सान में भेद कराते रहते हैं, जिससे संसार में कटुता बढ़ रही है । मुल्ला-पुजारियों के पास आजीविका के अन्य साधन नहीं हैं, इसलिए वे भी ऐसा करने के लिए विवश हैं ।

उदर हेतु बोलहिं झूँठ सदाई । ताइ हेतु बढ़त जग कटुताई ॥
पंथ महन्त करत ठेकादारी । स्वारथ अन्ध फंसहि संसारी ॥

व्याख्या - पेट भरने के लिए पंथ संस्थाओं के मुल्ला-पुजारी सदा झूठ बोलते हैं, जिससे संसार में कटुता बढ़ जाती है । पंथों के महन्त धर्म के नाम पर ठेके दारी करते हैं, और स्वयं स्वार्थ में अन्धे होकर संसार में फँस रहे हैं ।

निज निज पंथ सब धर्म बताई । मानव मानव देवहिं बटाई ॥
निज पक्ष करहिं कुतर्क वितण्डा । स्वारथ हेतु सकल पाखण्डा ॥

व्याख्या - स्वयं के पंथ को ही महन्त लोग धर्म बताने लगते हैं, जिससे मानव-मानव से दूर होता चला जाता है । स्वयं के पंथ की श्रेष्ठता के लिए कुतर्क और वितण्डा करते रहते हैं । ये सब पाखण्ड स्वार्थ के कारण ही करते हैं ।

दो०- पंथ महन्त धर्म गुरु बने छुप छुप साधहिं स्वारथ ।
भोले-भाले लोग फँसहिं केहि विधि होय परमारथ ॥ १३ ॥

व्याख्या - पंथों के महन्त ही अपने-आपको धर्म गुरु बना बैठते हैं और छुप-छुप कर स्वार्थ की पूर्ति करते रहते हैं । सीधे-सादे लोग इनकी बातों में फँस जाते हैं। ऐसी अवस्था में किस प्रकार परमार्थ हो सकता है ।

त्रय संस्था सुधार दरकारा । तबहि सम्भव लोक उपकारा ॥
शिच्छा मूल सकल संस्कारा । प्रथम सुधार तहँ दरकारा ॥

व्याख्या - इसलिए तीनों संस्थाओं (पंथ, परिवार और स्कूल) में सुधार करने की जरूरत है, तभी जाकर लोक कल्याण हो सकता है। शिक्षा ही संस्कारों की मूल होती है, इसलिए सबसे पहले शिक्षण संस्थाओं में सुधार करने की आवश्यकता होती है ।

शिक्षक चरित बहु महत्वताई । सहजहिं शिष्य प्रभाव कराई ॥
जेहि विधि होइ शिक्षक समाजा । तेसइ करहिं युवा सब काजा ॥

व्याख्या - शिक्षक का चरित्र बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि शिक्षक के चरित्र का शिष्य पर सहज में ही प्रभाव पड़ जाता है । अतः जैसा शिक्षक समाज होता है, वैसा ही समाज का युवा वर्ग कार्य करता है।

मधुर भाषी सहज बिरागी । रहइ सदा करतव्य अनुरागी ॥
गुरु हियँ होवइ नहिं सत्ता लोभा । काम क्रोध मद करहिं न छोभा ॥

व्याख्या - शिक्षक मधुर भाषी तथा सहज वैराग्यवान होना चाहिये तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति अनुराग रखने वाला होना चाहिये । गुरु के हृदय में कभी सत्ता का लोभ नहीं होना चाहिये तथा काम, क्रोध, मद आदि से कभी क्षुब्ध नहीं होना चाहिये।

निज जलहि हेतु शिष्य प्रकाशा । मन शान्त विगत अभिलाषा ॥
ब्रह्म रत मर्मग्य विग्याना । जानइ इतिहास वेद पुराना ॥

व्याख्या - गुरु शिष्य को प्रकाशित करने के लिए स्वयं दीपक की तरह जलने वाला हो तथा मन शान्त व इच्छाओं से मुक्त होना चाहिये । गुरु ब्रह्म लीन और विज्ञान को जानने वाला हो तथा इतिहास, वेद, पुराण आदि के ज्ञान वाला हो।

दो०- एक हि पिता जगत का तहँ नहिं पंथ भेद भाव ।
हिन्दू मुस्लिम कोउ नहिं उचित इहँ नित्य पढ़ाव ॥ १४ ॥

व्याख्या-समस्त संसार के एक ही पिता हैं, इसलिए कोई पंथ आदि का भेद भाव नहीं होता है। हिन्दू-मुसलमान कोई नहीं होता है, यह नित्य शिष्यों को पढ़ाना चाहिये ।

चरित प्रधान हो शिच्छा सारी । इतिहास विग्यान अनुसारी ॥
मन वश हेतु नित्य अभ्यासा । सहज ध्यान हो ईश उपासा ॥

व्याख्या - शिक्षा की विषय वस्तु इतिहास व विज्ञान के अनुसार और चरित्र प्रधान होनी चाहिये तथा मन को वश में करने के लिए नित्य अभ्यास करना चाहिये । सहज ध्यान करके एक ईश्वर की उपासना सिखानी चाहिये ।

पंथ भेद मानइ नहिं कोई । पालइ अनुशासन शिक्षा सोई ॥
धर्मरत विगत सब पाखण्डा । सब हियँ जनाइ ब्रह्म अखण्डा ॥

व्याख्या - कोई भी पंथ का भेद नहीं मानना चाहिये तथा अनुशासन का पालन करना ही शिक्षा हो । शिक्षा धर्म युक्त हो, जिसमें कोई पाखण्ड नहीं हो तथा सब के हृदय में एक अखण्ड ब्रह्म को जनाने वाली होनी चाहिये ।

बाल सुभाव अति निर्मल होई । मानहिं सब गुरु कहवहिं सोई ॥
सो उचित रह गुरु सावधाना । देखि आचार पाव शिष्य ग्याना ॥

व्याख्या - बालक का स्वभाव बहुत निर्मल होता है, इसलिए गुरु जो कह देता है, उसी को मान लेता है । अतः उचित यह है कि गुरु बहुत सावधान रहे क्योंकि गुरु के आचरण से ही शिष्य ज्ञान प्राप्त करता है ।

शिक्षा पावन हो सब अधिकारा । व्यवस्था इहँ आज दरकारा ॥
नहिं कोउ हो अबुध लच्छन हीना । दायित्व सरकार उचित लीना ॥

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

व्याख्या - शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सबको होना चाहिये । आज इस व्यवस्था की बहुत आवश्यकता है । समाज में कोई भी बिना पढ़ा-लिखा नहीं होना चाहिये । सरकार को यह दायित्व लेना चाहिये।

दो०- अधिकार ते कर्त्तव्य बड़ा भलि भाँति इहँ समझाय ।
बिनु कर्त्तव्य अधिकार नहीं बूझहिं झंझट मिट जाय ॥ १५ ॥

व्याख्या - कर्त्तव्य अधिकार से बड़ा होता है, इस बात को शिष्यों को अच्छी तरह समझा देना चाहिये । बिना कर्त्तव्य पालन के अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता है। यह समझ आ जाने पर समस्त समस्याएँ ही मिट जाती हैं ।

कर्त्तव्य ही स्रोत सब अधिकारा । पालहिं कर्त्तव्य मिटहिं विकारा ॥
सो उचित शिक्षा कर्त्तव्य प्रधानी । विज्ञानादि तकनीक समय अनुमानी ॥

व्याख्या - कर्त्तव्य से ही समस्त अधिकार पैदा होते हैं, इसलिए कर्त्तव्य पालन करने पर समस्त समस्याएँ मिट जाती हैं । इसलिए शिक्षा व्यवस्था कर्त्तव्य प्रधान होनी चाहिए, जिसमें समय के अनुसार विज्ञान आदि तकनीकि ज्ञान शामिल होना चाहिए ।

तन संग मन अटूट सम्बन्धा । सो उचित व्यायाम प्रबन्धा ॥
तन मन जो रहवहिं निरविकारी । सहज सुधरइ समाज आगारी ॥

व्याख्या - तन और मन का अटूट सम्बन्ध होता है, इसलिए शिक्षा व्यवस्था में योग-व्यायाम की व्यवस्था होना जरुरी है । जब तन और मन स्वस्थ रहेंगे, तो आगे चलकर समाज अपने आप सुधर जायेगा।

उचित नित करहिं मंगल पाठा । होवइ अनुकूल प्रकृति आठा ॥
खुलहिं स्कूल जब प्रातः काला । हो स्तुति मंगल प्रथम शाला ॥

व्याख्या - नित्य स्कूल में मंगल पाठ करना चाहिये, जिससे अष्ट प्रकृति अनुकूल हो जाती है । अतः जब स्कूल खुलता है, तो प्रथम कक्षा में ही मंगल स्तुति करनी चाहिये।

नित्य करहिं नियम बनाई । पुनि हो विषय अन्य पढ़ाई ॥
सो मंगल पाठ कहउँ सुनाई । उचित करहिं पंथ भेद भुलाई ॥

व्याख्या - मंगल पाठ नियम बना कर रोजाना करना चाहिये । उसके बाद ही दूसरे विषयों की पढ़ाई शुरू होनी चाहिये । मैं यहाँ मंगल पाठ बता रहा हूँ, जिसको पंथ आदि का भेद भूलाकर करना चाहिये ।

दो०- मंगलमय सकल सृष्टि मंगलमय तुम पिता परमेश ।
मंगल चाहउँ चहुँदिसि करहउ मंगल हे जगतेश ॥ १६ ॥

व्याख्या - यह समस्त सृष्टि मंगलमय है तथा हे परमपिता ! आप भी मंगल

करने वाले हैं। मैं चारों तरफ मंगल ही मंगल चाहता हूँ। हे जगत के ईश्वर ! आप मंगल कर दीजिए।

निर्मल होवहिं नाथ मन मोरा। चाहवउँ अनुग्रह प्रभु तोरा ॥
नाम रूप अनन्त प्रभु तोरे। सब भाँति अवलम्ब नाथ मोरे ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरा मन निर्मल हो जाए, इसलिए मैं आपकी कृपा चाहता हूँ। हे प्रभु ! आपके नाम व रूप तो अनन्त हैं। परन्तु मेरे आप ही सब प्रकार से अवलम्ब हैं।

तुम्हीं जगत पितु मातु हमारे। तुम्हहिं जानइ मरम तुम्हारे ॥
ग्रह नक्षत्र करहु अनुकूला। मिटावउ नाथ हमार सब शूला ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही जगत में हमारे माता-पिता हैं तथा आपके रहस्य को तो आप ही जानते हैं। हे प्रभु ! ग्रह-नक्षत्रों को आप अनुकूल कर दीजिए और मेरे समस्त कष्टों को दूर कर दीजिए।

सदगुण भरहिं हियँ तालाबा। पूर्ण करहउ नाथ इहँ ख्वाबा ॥
मंगल देखहिं हम चहुँओरा। मंगलमय होइ प्रभु मन मोरा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरा हृदय रूपी तालाब सद्‌गुणों से भर जाए, अतः मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर दीजिए। मैं चारों तरफ मंगल ही मंगल देखूँ तथा मेरा मन भी मंगलमय हो जाए।

विद्या पाइ करहिं मंगल काजा। चराचर सब हो मंगल आजा ॥
मंगलमय होय प्रकृति सारी। सुनहउ नाथ विनय हमारी ॥

व्याख्या - विद्या प्राप्त करके हम मंगल कार्य करें तथा समस्त चराचर जगत का आज मंगल हो। समस्त प्रकृति मंगलकारी हो, हे प्रभु ! हमारी इस प्रार्थना को सुन लीजिए।

दो०- मम मंगल हो सब मंगल हो प्रतिवेशी परिवार।
कुटुम्ब कबिला मंगल हो मंगलमय हो सब संसार ॥ १७ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरा सब प्रकार से मंगल हो तथा मेरे पड़ोसी परिवार का भी मंगल हो। सब कुटुम्ब और कबीलों का मंगल हो तथा समस्त संसार मंगलमय हो जाए।

इहँ भाँति करहिं मंगल पाठा। होवइ अनुकूल प्रकृति आठा ॥
नीतिवान शिक्षा रोजगारमुखी। मंगल होइ सब रहइब सुखी ॥

व्याख्या - इस प्रकार मंगल पाठ करने पर प्रकृति अनुकूल हो जाती है। नैतिकता प्रधान और रोजागारोंन्मुखी शिक्षा पद्धति होनी चाहिए, जिससे

सबका मंगल हो तथा सभी सुखी रहें ।

अवसर देहिं रुचि अनुसारा। प्रति विभाग होइ न्यारा न्यारा ॥
मूलतः हो शिक्षा चार विभागी। कृषि उद्योग विज्ञान विरागी ॥

व्याख्या - शिक्षा प्राप्त करने का अलग-अलग विभाग होना चाहिए तथा सबको अपनी रुचि के अनुरूप मौका देना चाहिए। मूल रूप से शिक्षा पद्धति को चार विभागों (कृषि, उद्योग, विज्ञान और वैराग्य) में बाँटना चाहिए ।

सकल नागरिक शिक्षा अधिकारी । कक्षा आठ पर्जन्त हो बाध्यकारी ॥
नीति विग्यान इतिहास पुराना । देवहिं शिच्छा सामान्य ग्याना ॥

व्याख्या - सभी नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए तथा कक्षा आठ तक शिक्षा प्राप्त करना बाध्यकारी होना चाहिए । प्राचीन इतिहास, विज्ञान व सामान्य ज्ञान की शिक्षा सबको देनी चाहिए ।

नारी पुरुष नहिं किछु अन्तर। योग्यता होइ शिक्षा मन्तर ॥
अष्टम तक शिक्षा हो इकसारी। पुनि क्षमता देखि करें विचारी ॥

व्याख्या - शिक्षा का आधार योग्यता ही होना चाहिये। स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं करना चाहिए । आठवीं कक्षा तक शिक्षा की विषय वस्तु समान होनी चाहिए तथा उसके बाद क्षमता देख कर विचार करना चाहिए ।

दो०- अष्टम श्रेणी पढ़ि जे, आगे नहिं पढ़न की चाह ।
कृषक श्रमिक से होउ, निज रुचि काज चलाह ॥ १८ ॥

व्याख्या - जो आठवीं कक्षा पढ़ने के बाद आगे नहीं पढ़ना चाहते हैं, उनको कृषक या श्रमिक होकर रुचि के अनुसार कार्य करना चाहिए।

अष्टम पार करहिं विभागा। कृषि उद्योग विज्ञान विरागा ॥
बांटहि विभाग रुचि अनुसारी। देवहिं औसर क्षमता विचारी ॥

व्याख्या - आठवीं कक्षा के बाद कृषि, उद्योग, विज्ञान और वैराग्य का अलग-अलग विभाग कर देना चाहिए । विभागों का बँटवारा रुचि और क्षमता के अनुसार होना चाहिए ।

एकादश पार पुनि हो छँटनी। क्षमताहि होइ आधार बंटनी ॥
कुशाग्र अरु लगनी जे होई। नहिं संशय आगे पढ़इब सोई ॥

व्याख्या - ग्यारहवीं कक्षा के बाद दोबारा योग्यता के आधार पर छँटनी होनी चाहिए। जो लोग पढ़ने में होशियार और लगन रखने वाले हों, उनको आगे पढ़ाना चाहिए।

आगे पढ़न नहिं जिन्ह चाही। सैन्य बाबू आदि पद हो दाही ॥
तृतीय चतुर्थ श्रेणी हो नियोगा। योग्यतानुसार मिलइ सुजोगा ॥

व्याख्या - जिन लोगों की ग्यारहवीं के बाद पढ़ने की इच्छा नहीं हो, उनको सेना या बाबू आदि पदों पर नौकरी करने का मौका देना चाहिए और योग्यता अनुसार उनको चतुर्थ श्रेणी या तृतीय श्रेणी के विभागों में अवसर देना चाहिए ।

उच्च शिक्षा लेवन जो चाई । सरकार उचित लेवहिं दाई ॥
प्रति क्षेत्र हो विशेष पढ़ाई । नीति संग सब तकनीक सुहाई ॥

व्याख्या - उच्च शिक्षा प्राप्त करने की जिसकी इच्छा हो, उसका दायित्व सरकार को लेना उचित है । उच्च शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष पढ़ाई होनी चाहिए तथा तकनीकि शिक्षा के साथ-साथ नीति की शिक्षा भी देनी चाहिए।

एकादश पार हो बहु विभागा । वैद्य चिकित्सा कानूनादि अलादा ॥
कृषि आदि विज्ञान होहिं सबरे । दर्शन गम्भीर पढ़ाई अबरे ॥

व्याख्या - ग्यारहवीं के बाद बहुत से विभाग होने चाहियें, जिनमें वैद्य, डॉक्टर, कानून आदि अलग अलग विभाग होने चाहियें । कृषि, उद्योग, विज्ञान आदि के भी सभी विभाग होने चाहियें और दर्शन की पढ़ाई अब बहुत गम्भीरता से होनी चाहिए ।

चतुर्दश जब करहिं पासा । पुनि उचित छँटनी प्रयासा ॥
जेहि जनु नहिं चाइ आगे पढ़ाई । चाकरी औसर देवउ सबाई॥

व्याख्या - चौदहवीं परीक्षा पास कर लेने के बाद फिर छँटनी का प्रयास करना चाहिए। जो लोग आगे पढ़ना नहीं चाहते हों, उनको सरकारी नौकरी का अवसर देना चाहिए।

दो०- आगे पढ़न की चाह नहिं तिन्ह देवहउ विश्राम ।
मध्यम वर्ग अधिकारी हों मिलै रुचिया सब काम ॥ १९ ॥

व्याख्या - जिनको आगे पढ़ने की इच्छा नहीं हो, उनको पढ़ने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए तथा मध्यम वर्ग के अधिकारी बनने का मौका देना चाहिए तथा सबको अपनी रुचि के अनुसार कार्य मिलना चाहिए ।

प्रतियोगी होइ परीक्षा सबारी । क्षमतानुसार बनहिं अधिकारी ॥
भेद जाति पांति नस्ल अरु पंथा । सपनेउ आवइ नहिं इहँ चिन्ता ॥

व्याख्या - सबके लिए प्रतियोगी परीक्षा होनी चाहिए और क्षमता के अनुसार अधिकारी बनाना चाहिए । जाति-पाति नस्ल और पंथ का भेद सपने में भी चिन्तन में नहीं आना चाहिए ।

चतुर्दश पार जो चाइ पढ़ाई । देवउ उचित अवसर सदाई ॥
दर्शन विज्ञान तकनीकि ग्याना । होव अलग समय अनुमाना ॥

व्याख्या - जो लोग चौदहवीं के बाद पढ़ना चाहते हैं, उनको हमेशा अवसर देना चाहिए । चौदहवीं के बाद दर्शन, विज्ञान, तकनीकि ज्ञान आदि के विभाग

समय की आवश्यकता अनुसार अलग-अलग होने चाहियें ।

कृषि उद्योग व्यापार अलादा । होहिं विशेषज्ञ सकल विभागा ॥
योग व्यायाम अरु ध्यान ग्याना । सकल विभाग देवहिं स्थाना॥

व्याख्या - कृषि, उद्योग, व्यापार आदि विभागों के अलग-अलग विशेषज्ञ होने चाहिये। योग-व्यायाम और ध्यान का ज्ञान सभी विभागों में होना चाहिए ।

षष्ठादश पर्जन्त हो पढ़ाई । पुनि हो इहाँ दच्छता छँटाई ॥
जो आगे नहिं चाइ अरु पढ़ाई । तिन्ह देवहउ अवसर सेवाई ॥

व्याख्या - सोलहवीं कक्षा तक पढ़ाई होनी चाहिए । उसके बाद दक्षता के अनुसार छँटनी होनी चाहिए । जो आगे पढ़ना नहीं चाहते हैं, उनको सरकारी सेवा का अवसर देना चाहिए ।

होवइ प्रतियोगी परीच्छा । पावहिं चाकरी निज इच्छा ॥
हो प्रतियोगी परीक्षा नीति प्रधाना । विषय इतिहास दर्शन विज्ञाना ॥

व्याख्या - सोलहवीं परीक्षा के बाद प्रतियोगिता परीक्षा होनी चाहिए, जिससे अपनी योग्यता और इच्छा अनुसार सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकें। प्रतियोगिता परीक्षा में नीति की प्रधानता होनी चाहिये तथा साथ में इतिहास, दर्शन और विज्ञान के विषय भी होने चाहियें ।

ध्यान ग्यान हो मरम विशेषा । कारण समझ सुख दुख क्लेसा ॥
समाज भूगोल इतिहास पुराना । अंक अर्थ देह मन विग्याना ॥

व्याख्या - ध्यान के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हो तथा सुख दुःख के कारणों की विशेष समझ होनी चाहिए । समाजशास्त्र, भूगोल, प्राचीन इतिहास, गणित, अर्थशास्त्र, शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान के विषय होने चाहियें।

वाणिज्य व्यापार अरु कानूना । वनस्पति राजनीति कला नमूना ॥
सकल विषय सामान्य ग्याना । उचित देवहिं परीक्षा स्थाना ॥

व्याख्या - वाणिज्य, व्यापार, कानून, वनस्पति, राजनीति और कला विज्ञान के विषय हों तथा सभी विषयों का सामान्य ज्ञान परीक्षा की विषय-वस्तु होनी चाहिए।

दो०- ज्ञानवान प्रशासक बने निर्भय होय शासन चलाय ।
मन वश जब रहइ विकार सकल मिट जाय ॥ २० ॥

व्याख्या - प्रशासक ज्ञानी होने पर निर्भय होकर शासन चला पाता है क्योंकि जब मन वश में होता है, तो सब विकार मिट जाते हैं ।

प्रशासक पद हो फल अनुसारी । योग्यता होवहिं माप सबारी ॥
होइ च्यन पुनि हो प्रशिक्षण । तहँ होइ पढ़ाई नीति आदि लक्षण ॥

व्याख्या - प्रशासक का पद परीक्षा के फल के अनुसार मिलना चाहिये, जिसका योग्यता ही माप होनी चाहिए। परीक्षा में चयन हो जाने के बाद प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें नीति आदि की पढ़ाई होनी चाहिए।

प्रतिवर्ग प्रशिक्षण दरकारा। ध्यान ग्यान अभ्यास हो सारा ॥
साधु सम होहिं सेवक सरकारी। देवहिं प्रशिक्षण संयम अपारी ॥

व्याख्या - प्रत्येक वर्ग के सरकारी सेवकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें ध्यान व ज्ञान का अभ्यास कराना चाहिए। सरकारी सेवक साधु के समान होने चाहियें, इसलिए उन्हें विशेष संयम का प्रशिक्षण देना चाहिए।

करावहिं नित्य योग व्यायामा। मन वश हेतु करे प्राणायामा ॥
समझावहिं देह विग्याना। ग्यान वैराग्य देवहिं सम्माना ॥

व्याख्या - प्रतिदिन योग और व्यायाम करवाना चाहिए तथा मन को वश में रखने के लिए प्राणायाम कराना चाहिए। शरीर विज्ञान को समझाना चाहिए तथा ज्ञान-वैराग्य को उचित सम्मान देना चाहिए।

प्रशासक होवइ योगी समाना। मन हो चाह कर्त्तव्य निभाना ॥
संग्रह विचार नहिं मन माहिं। विगत राग द्वेष सहज सदाहिं ॥

व्याख्या - प्रशासक को योगी के समान होना चाहिए और उसके मन में कर्त्तव्य निर्वाह करने की चाह होनी चाहिए। उसके मन में संग्रह करने का विचार नहीं होना चाहिए तथा उसे राग-द्वेष से मुक्त होकर सदैव सहज रहना चाहिए।

दो०- लघु बड़ सकल सेवक वर्ग प्रशिक्षण बहु दरकार ।
ग्यान-बिराग हियँ बसै भल चलहिं काज सरकार ॥ २१ ॥

व्याख्या - सभी स्तर के सरकारी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है क्योंकि जब ज्ञान-वैराग्य हृदय में रहते हैं, तो सरकार के समस्त कार्य अच्छी तरह से होते हैं।

प्रशिक्षण विधि कहउँ बखानी। सरल सुगम जन कल्यानी ॥
त्रिमास नित्य करावहिं ध्याना। संग पढ़ावहिं धरम विज्ञाना ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ प्रशिक्षण की सरल, सुगम व जन-कल्याण करने वाली विधि बताता हूँ। तीन महीने तक प्रशिक्षुओं को ध्यान का अभ्यास कराना चाहिये तथा साथ में धर्म की जानकारी देनी चाहिये।

ध्यान विधिहु कहउँ समुझाई। करत अभ्यास कल्मष मिटाई ॥
बैठहिं विश्राम सुखासन लगाई। नयन मून्द मोही स्मराई ॥

व्याख्या - अब मैं यहाँ ध्यान की विधि समझा कर कहता हूँ, जिसके अभ्यास

से शरीर और मन के समस्त विकार मिट जाते हैं। सुखासन लगा कर शरीर को पूरी तरह विश्राम करके बैठ जाना चाहिये और मुझ परमपिता को याद करना चाहिए।

हे आदि अनन्त अकथ अगाधा। मानव जीवन तुम्हहीं साधा ॥
इच्छा अनन्त बन्धन मोरी। आवहउँ नाथ शरण अब तोरी ॥

व्याख्या - हे आदि, अनन्त, अकथनीय, सीमा रहित प्रभु ! आपको प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का ध्येय है। मैं अनन्त इच्छाओं से बंधा हुआ हूँ। अब मैं आपकी शरण मे आ रहा हूँ।

इहँ कहहिं बैठहिं चुपचापा। दिव्यता आवइ हियँ अपने आपा ॥
हियँ धड़कन दृष्टि लगाई। घड़ी भर नित्य अभ्यास कराई ॥

व्याख्या - यह कह कर चुपचाप बैठ जाएँ। इससे हृदय में अपने आप दिव्यता आ जाती है। फिर हृदय की धड़कन पर दृष्टि लगा कर एक घड़ी भर बैठे रहें। यह अभ्यास रोज करना चाहिये।

दो०- जप तप मख पूजादि नहिं घृतादि दरकार।
नित्य करहिं ध्यान जो मन होइ परिष्कार ॥ २२ ॥

व्याख्या - ध्यान का अभ्यास करने के लिए किसी भी प्रकार के जप, तप, यज्ञ, पूजा व घृत-बाती आदि की आवश्यकता नहीं होती है। जो प्रतिदिन ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनके मन शुद्ध हो जाते हैं।

एहि विधि नित्य करहिं ध्याना। नहिं संशय उमगहिं हियँ ग्याना ॥
ग्यान कर्त्तव्य बोध कराई। सहजहिं सकल होइ भलाई ॥

व्याख्या - जो इस विधि द्वारा नित्य ध्यान करते हैं, उनके हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। ज्ञान से कर्त्तव्य का बोध हो जाता है, जिससे सहज में ही सभी की भलाई हो जाती है।

प्रातः हो ध्यान योग व्यायामा। दिवस होइ पंच ईश प्रणामा ॥
ईश प्रणाम विधि कहुँ समझाई। पावहिं मुक्ति जेहिं अनुसराई ॥

व्याख्या - प्रातः काल ध्यान, योग और व्यायाम होना चाहिए तथा दिन में पाँच बार ईश्वर को प्रणाम करना चाहिए। यहाँ अब मैं ईश्वर को प्रणाम करने की विधि बताता हूँ, जिसका अनुसरण करने से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

प्रातः उठि दोउ कर जोरी। करहिं विनय आकाश निहोरी ॥
करउ प्रकृति मोर अनुकूला। व्यापहिं नहिं जग कोउ शूला ॥

व्याख्या - प्रातः उठकर दोनों हाथ जोड़कर आकाश की तरफ देखकर प्रार्थना

करनी चाहिए कि हे प्रभु ! समस्त प्रकृति को हमारे अनुकूल कर दीजिए, जिससे हमें संसार में कोई कष्ट नहीं हो ।

आवहिं सद्गुण मोर हियँ माहिं । रहउँ शरण प्रभु तोर सदाहिं ॥
सुख वैभव रहइ परिवारा । सकहउँ करि जग उपकारा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरे हृदय में सद्गुण आ जाएँ और मैं सदा आपकी शरण में रहूँ । मेरे परिवार में सुख व वैभव रहे तथा मैं जगत में उपकार कर सकूँ ।

दो०- इहँ कहहिं इक बार सुत मन तें करहिं प्रगट आभार ।
पुनि सहज कर्म करहिं हियँ राखि जग करतार ॥ २३ ॥

व्याख्या - ऐसा कह कर मन के अन्दर परमपिता का आभार व्यक्त करें और परमा त्मा को हृदय में रखकर सब सहज कर्म करते रहें ।

दो०- प्रातः दोपहर तिपहर संध्या पुनि सोवत करहिं इक बार ।
नित्य जेहि इहँ अनुसरहिं नहिं संशय होवहिं भव पार ॥ २४ ॥

व्याख्या -सुबह, दोपहर, तीसरे पहर, संध्या समय और सोने से पहले एक-एक बार नित्य करने पर भाव रूपी भव सागर पार हो जाता है । इसमें संदेह नहीं है ।

दिवस माझ हो अन्य पढ़ाई । इतिहास पुराण विज्ञान सबाई ॥
एहि विधि चलहिं जो प्रशिक्षण । आवहहिं हियँ दिव्य लच्छण ॥

व्याख्या - दिन में अन्य विषयों की पढ़ाई होनी चाहिए, जिसमें इतिहास, पुराण व विज्ञान आदि सभी विषय होने चाहियें । इस प्रकार प्रशिक्षण चलने पर सबके हृदय में दिव्यता के लक्षण प्रगट हो जाते हैं ।

चले प्रशिक्षण जो नव मासा । सकल हियँ होव दिव्य आभासा ॥
सकल होइब नीति परायण । राज काज करहहिं मुदितायन ॥

व्याख्या - इस प्रकार अगर प्रशिक्षण नौ मास कराया जाए, तो सबके हृदय में दिव्यता की अनुभूति हो जायेगी तथा सभी लोग नीति का पालन करने वाले हो जायेगें और प्रसन्न मुख सब राज-काज करने लगेगें ।

कर्त्तव्य बोध रहहिं हिय माहिं । चलहिं सुशासन संशय नाहिं ॥
मंगल सोचहिं मंगल होवहिं । राग द्वेष सब विषमता खोवहिं ॥

व्याख्या - हृदय में सदा कर्त्तव्य की भावना रहेगी, जिससे सुशासन चलता रहेगा। इसमें संदेह नहीं है । मंगल सोचने पर मंगल ही मंगल होता है, जिससे राग-द्वेष सब मिट जाते हैं और विषमता भी मिट जाती है।

नित्य सुमरहिं ईश पंच बारा । बनावहिं इहँ सहज व्यवहारा ॥
आवहिं भाव वसुधैव कुटुम्बा । करहु अनुभव नहिं अचम्बा ॥

व्याख्या - नित्य पाँच बार ईश्वर को याद करने से जीव का व्यवहार सहज हो जाता है तथा हृदय में वसुधैव कुटुम्ब की भावना आ जाती है। इसमें आश्चर्य नहीं है, अनुभव करके देख लिजिए।

दो०- शिक्षा अरु प्रशिक्षण उभय जो होवहिं नीति प्रधान।
सकल जन सुधरहिं सब हियँ आव कर्त्तव्य भान ॥ २५ ॥

व्याख्या - शिक्षा और प्रशिक्षण दोनों अगर नीति प्रधान हों तो सब लोग सुधर जायेगें और सबके हृदय में कर्त्तव्य का बोध हो जायेगा।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण सप्तम पड़ाव ॥

षष्ठादश पार जे चाहि पढ़ाई। तिन्ह देवहउ अवसर सदाई ॥
शोधादि होवउ कारज विशेषा। च्यन होइ क्षमतानुसार हमेशा ॥

व्याख्या - जो लोग सोलहवीं के बाद भी पढ़ना चाहते हैं, उन्हें हमेशा पढ़ने का अवसर देना चाहिए। शोध आदि के विशेष कार्य होने चाहियें तथा योग्यता के आधार पर ही चयन होना चाहिए।

कृषि उद्योग वाणिज्य व्यापारा। होवहिं विशेषज्ञ रुचि अनुसारा ॥
दर्शन आदि हो विशेष पढ़ाई। करहिं सरकार सहाय सदाई ॥

व्याख्या - कृषि, उद्योग, वाणिज्य और व्यापार के क्षेत्र में अपनी रुचि के अनुसार विशेषज्ञ होने चाहियें तथा दर्शन आदि विषयों की भी विशेष पढ़ाई होनी चाहिए और सरकार को हमेशा सहायता करनी चाहिए।

समयानुकूल हो विज्ञान विकासा। जनहित लच्छ होव सुपासा ॥
सकल विशेषज्ञ हो सम्माना। सलाह समिति देवहिं स्थाना ॥

व्याख्या - समय की आवश्यकता के अनुसार विज्ञान की प्रगति होनी चाहिए, जिससे जनकल्याण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। समस्त विशेषज्ञों का उचित सम्मान होना चाहिए तथा उन्हें सलाहकार समितियों में स्थान देना चाहिए।

दर्शन विशेषज्ञ होहिं वक्ता। धर्म कर्म समझावहिं जगता ॥
देवहि प्रवचन समयानुसारी। जाति पंथ भेद भूलावहिं सारी ॥

व्याख्या - दर्शन के विशेष जानकारों को उपदेष्टा होना चाहिए और संसार को धर्म व कर्म के रहस्य को समझाना चाहिए। समय की आवश्यकता अनुसार प्रवचन देना चाहिए और जाति-पंथ आदि भेद भावों को मिटाना चाहिए।

दो०- एक ब्रह्म सकल समझावहिं पंथादि नहिं बिरथा भरमाय।
आत्म ग्यान जुगति बतावहिं सब समाज सुधरहिं आय ॥ २६ ॥

व्याख्या - प्रवचन करने वालों को पंथ आदि में भ्रमित नहीं होना चाहिए तथा

सबको समझाना चाहिए कि जगत में ब्रह्म एक ही है तथा आत्म ज्ञान प्राप्त करने के उपाय बताने चाहियें, जिससे समस्त समाज अपने आप सुधरने लग जायेगा।

जे जनु विशेषज्ञ आत्म ग्यानी। नीति निपुण जन कल्यानी ॥
वक्ता भल होवहिं आचारी। मिटावहिं अग्यता संसारी ॥

व्याख्या - जो लोग विशेषज्ञ, आत्म ज्ञानी और जनकल्याण की नीति में निपुण हों, उनको आचार्य बन कर संसार में अज्ञान दूर करना चाहिए ।

तेहि चुनाव संसद अधिकारी। होइ मतदान विवेक विचारी ॥
भल मानुष जोहि संसद जाई। नहिं संशय सब विकार मिटाई ॥

व्याख्या - वे लोग सांसद के चुनाव लड़ने के लिए योग्य होने चाहियें और मतदान सोच समझ कर होना चाहिए । अगर अच्छे लोग संसद में जायेंगे, तो सब समस्याएँ मिट जायेंगी । इसमें संदेह नहीं है ।

मन निर्मल सत व्यवहारा। मिटहिं सकल भ्रष्ट आचारा ॥
सुखी सम्पन्न रहहिं समाजा। होवहहिं सहज सकल काजा ॥

व्याख्या - अगर मन निर्मल हो और व्यवहार सात्विक हो, तो भ्रष्टाचार स्वतः मिट जायेगा तथा समाज सुखी और सम्पन्न हो जायेगा और सभी कार्य सहज हो जायेगें।

सांसद पावन संसदपावन ताही। संसद मूल सकल लोकशाही ॥
शिक्षा मिटावइ सब मन शूला। सो उचित शिक्षा नीति अनुकूला ॥

व्याख्या - सांसदों की पवित्रता ही संसद की पवित्रता होती है और संसद ही समस्त लोकतन्त्र का मूल होती है । शिक्षा ही मन के कष्टों को दूर करती है, इसलिए शिक्षा नीति समाज के अनुकूल होना जरुरी है ।

दो०- शिक्षा मूल संस्कार का, संस्कार हय मूल समाज ।
संस्कार ही नीति बने जसि समाज तसि होइ राज ॥ २७ ॥

व्याख्या - संस्कारों का मूल शिक्षा होती हैं तथा संस्कार ही समाज का मूल होते हैं और जैसे संस्कार होते हैं, वैसी समाज की नीति बन जाती है और जैसा समाज होता है, वैसा राज हो जाता है ।

सुन सुत अब ध्यान लगाई। पंथ संस्था कहुँ सुधार उपाई ॥
अशिक्षा ही मूल अन्ध विश्वासा। बिनु शिच्छा नहिं हियँ उजासा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब तुम ध्यान लगाकर सुनो, तुम्हें पंथ संस्थाओं में सुधार के उपाय बताता हूँ । अन्ध विश्वास का मूल कारण अशिक्षा ही होती है क्योंकि बिना शिक्षा के हृदय में प्रकाश नहीं हो पाता है।

धरम न जानइ धरम बखानी । ते निसि दिवस करहिं जग हानी ॥
पंथ कबहुँ नहिं धरम सुहाई। सहज आचार सोइ धर्म भाई ॥

व्याख्या - जो धर्म को नहीं जानते हैं और धर्म पर प्रवचन देते हैं, वे रात-दिन समाज की हानि करते हैं । पंथ कभी भी धर्म नहीं होते हैं। सहज आचरण ही वास्तविक धर्म होता है ।

धर्म छाड़ि पंथ सकल आचारा । केहि विधि होइ जग उपकारा ॥
मुल्ला पुजारी सह सब पोपा । धन हेतु सब देवहिं जग घोखा ॥

व्याख्या - धर्म के आचरण के अलावा पंथ के लोग सब आचरण करते हैं। ऐसी अवस्था में जगत का उपकार कैसे हो सकता है? मुल्ला-पुजारी, पोप आदि सभी लोग धर्म के नाम पर संसार को धोखा देते रहते हैं ।

बिनु धन चलइ नहिं संसारी । काह करहिं मुल्ला पुजारी ॥
सो उचित होइ वित प्रबन्धा । होव मासिक पगार अनुबन्धा ॥

व्याख्या - बिना धन के संसार (गृहस्थी) नहीं चलता है, इसलिए मुल्ला-पुजारी धन कमाने के लिए पाखण्ड करते हैं । अतः पंथ-संस्थाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए वित्त का प्रबन्ध होना चाहिए और मुल्ला-पुजारी आदि के साथ मासिक वेतन का अनुबन्ध होना चाहिए ।

दो०- पंथ संस्थापक दायित्व घना उचित प्रशिक्षण देइ सबाय ।
लोभ लालच जिन हियँ नहीं तिन्हहिं संस्था सम्लाय ॥ २८ ॥

व्याख्या - पंथ के संस्थापक का दायित्व बड़ा होता है, इसलिए उसे अपने अनुयायियों को विशेष प्रशिक्षण देना चाहिए । जिनके हृदय में लोभ-लालच नहीं हो, उन्हीं को पंथ की संस्था की जिम्मेदारी देनी चाहिये ।

पंथ संचालन नीति कहुँ बखानी । पालइ तबहिं मिटइ नादानी ॥
बंशानुगत देइ नहिं अधिकारा । होव संचालक बिनु परिवारा ॥

व्याख्या - अब मैं पंथ को ठीक तरीके से चलाने की नीति बताता हूँ, जिसका पालन करने से पंथ विकृतियों से बच सकते हैं । पंथ का संचालक कोई भी परिवार वाला नहीं होना चाहिए तथा पीढ़ी दर पीढ़ी किसी को गद्दी का अधिकार नहीं मिलना चाहिए ।

ग्यानी बिरागी बिरत संसारी । आत्म रत होइ जग उपकारी ॥
भूल न देवहिं झूँठी गवाही । मूरत सूरत मरम बूझाही ॥

व्याख्या - पंथ संचालक ज्ञानी और वैराग्यवान हो तथा संसार से सहज में ही विरक्त हो तथा आत्मा में रमण करने वाला व जग उपकारी होना चाहिये । भूल कर के भी झूठी गवाही (ईश्वर के स्वरूप व नाम के बारे में) नहीं देने वाला हो तथा ईश्वर की मूर्ति व स्वरूप के रहस्य को जानने वाला हो ।

सहज सरल सदा सत भाषी । ईश भरोष नहिं जग अभिलाषी ।
मुल्ला पुजारी संस्था प्रधाना । होवहिं ते जनु हियँ ब्रह्म ग्याना ॥

व्याख्या - संचालक सहज, सरल व सत्य बोलने वाला हो तथा ईश्वर का पूर्ण भरोसा करने वाला हो और जगत से उसकी कोई अपेक्षा नहीं हो । मुल्ला, पुजारी और दूसरी संस्थाओं के संचालक, उन्हीं लोगों को बनाना चाहिए जो ब्रह्म ज्ञान को जानने वाले हों ।

उदर हेतु जेहिं पंथ चलाई । होवइ नहिं जग किछु भलाई ॥
पंथ मूल होव जग उपकारा । धर्म रत सकल व्यवहारा ॥

व्याख्या - पेट पालने के लिए जो पंथ संस्था चलाते हैं, उससे संसार में कुछ भी भलाई नहीं हो सकती है । पंथ स्थापना का मूल उद्देश्य जगत का उपकार करना होना चाहिये तथा समस्त आचरण धर्मरत (सहज) होना चाहिए ।

दो०- धन लोलुप परदारा रत नहिं होव संस्था प्रधान ।
ईश भजन रत रह सदा तबहिं सम्भव जग कल्याण ॥ २९ ॥

व्याख्या - संस्था के प्रधान को धन का लालची और पर-स्त्री गमन करने वाला नहीं होना चाहिये । संस्था प्रधान ईश्वर के भजन में लीन रहने वाला होगा तभी जगत का कल्याण सम्भव है ।

पंथ श्रेष्ठता दम्भ न भरहिं । सहज जनहित रत रहहिं ॥
ध्यान ग्यान मरम बखानहिं । ऊँच-नीच किछु भेद न जानहिं ॥

व्याख्या - पंथ की श्रेष्ठता का दम्भ नहीं करना चाहिये और सहज होकर जन कल्याण में लगा रहना चाहिये । पंथ संचालक को ध्यान व ज्ञान के रहस्य को समझाना चाहिये तथा ऊँच-नीच आदि का भेद नहीं करना चाहिए ।

पाप पुण्य नहिं भय दिखावहिं । सहजहिं सब मरम बूझावहिं ॥
दया दान अरु पर उपकारा । सहज सुभाव इन दरकारा ॥

व्याख्या - पंथ संचालक को सहज में ही समझाना चाहिये कि दया, दान व परोपकार की आवश्यकता सहज में ही होती है । इनके लिए पाप-पुण्य का भय जनता को नहीं दिखाना चाहिये । सहज में ही पाप-पुण्य के रहस्य को जनता को समझाना चाहिये ।

भल हो काज विगत पाखण्डा । निज हियँ जानहिं ब्रह्म अखण्डा ॥
पंथ नीति होवइ नहिं कठोरा । बदलहिं देखि समय की ओरा ॥

व्याख्या - पंथ संचालकों को चाहिये कि पाखण्ड से मुक्त होकर अच्छा कार्य करें तथा स्वयं एक अखण्ड ब्रह्म को अपने हृदय में समझ लें । पंथ के नियम कठोर नहीं

होने चाहियें और समय के अनुसार बदल लेना चाहिये।

क्षमता होव पंथ सकल समाई । होइ दरकार निज जाइ मिलाई ॥
अहिंसा हो आधार सकल पंथा । जानहिं ब्रह्म विस्तार अनन्ता ॥

व्याख्या - पंथ में इतनी विराटता होनी चाहिये कि उसमें सभी लोग सम्मिलित हो सकें और जरूरत पड़ने पर स्वयं भी दूसरों में सम्मिलित हो सकें । सभी पंथों का आधार, अहिंसा की नीति होनी चाहिए तथा एक अखण्ड ब्रह्म का ही विस्तार सर्वत्र जानना चाहिए।

दो०- ब्रह्म राह पंथ सकल पंथ नहिं ब्रह्म सुहाय ।
पंथहिं ब्रह्म जेहि मानहि सोहि भव सागर डुबाय ॥ ३० ॥

व्याख्या - समस्त पंथ ब्रह्म को प्राप्त करने के रास्ते हो सकते हैं परन्तु पंथ कभी भी ब्रह्म नहीं हो सकते हैं । जो पंथ को ही ब्रह्म मान लेते हैं, वे भव सागर में डूब जाते हैं ।

पंथ साधन नहिं साध्य सुहाए । उचित इहँ जन जन बताए ॥
पंथ वाद सोइ घोर अग्याना । सो पंथ बन्ध परहिं न सुजाना ॥

व्याख्या - जन साधारण को यह भलि भाँति समझाना चाहिये कि पंथ तो साधन होते हैं, वे कभी साध्य नहीं हो सकते हैं । पंथवादिता ही घोर अज्ञान होती है, इसलिए समझदार पंथों के बंधन में नहीं पड़ते हैं ।

परहित नाम बहु न्यास चलाई । देवहहिं धोखा धन कमाई ॥
पूर्ण करहिं निज स्वारथ । करावहिं भान जग परमारथ ॥

व्याख्या - परोपकार के नाम पर बहुत से ट्रस्ट चलाते हैं और लोगों को धोखा देकर धन कमाते हैं । संसार में तो परमार्थ करने का नाटक करते हैं और स्वयं के स्वार्थो को पूर्ण करने में लगे रहते हैं ।

कोउ विधि उचित नहिं सो भाई । सबहिं कहउँ मैं समझाई ॥
न्यास हो सकल राष्ट्र अधीना । करहहिं परहित नित नवीना ॥

व्याख्या - ट्रस्ट के नाम पर धन कमाना किसी भी विधि से उचित नहीं होता है। मैं यह सबको समझा कर कहता हूँ । सभी ट्रस्ट राष्ट्र के अधीन होने चाहियें । फिर भले ही वे नित्य नये-नये परोपकार के कार्य करें ।

प्रति न्यास हो राज अधिकारी । देखहिं काज नियम अनुसारी ॥
पंच बरस बदलहिं एक बारा । संभव तबहिं पर उपकारा ॥

व्याख्या - ट्रस्ट की गतिविधियों को नियम अनुसार देखने के लिए प्रत्येक ट्रस्ट में एक राज अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिये तथा उसकी भी पाँच साल में एक बार बदली होनी चाहिए, तभी परोपकार सम्भव है ।

दो०- मान सम्मान चाह नहिं परमारथ ही लच्छ सुहाय ।
विगत विषय सहज सदा सोइ सच्चा ट्रस्टी कहाय ॥ ३१ ॥

व्याख्या - मान सम्मान की इच्छा नहीं हो तथा परमार्थ ही सदा लक्ष्य हो तथा जो विषय-वासनाओं से दूर रहकर सहज होता है, वही सच्चा न्यासी (ट्रस्टी) होता है ।

वंशानुगत हो नहिं कोउ न्यासी । सहज बिरत हो मन संन्यासी ॥
एकहि जाति पंथ अरु परिवारा । होवहिं नहिं न्यासी गण सारा ॥

व्याख्या - न्यास (ट्रस्ट) में कोई भी पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकारी नहीं होना चाहिये तथा न्यासी सहज वैराग्यवान और मन का सन्यासी होना चाहिये। एक ही जाति, पंथ और परिवार के लोग ही न्यास के सदस्य नहीं होने चाहियें ।

होहहिं प्रतिनिधि सकल बरगा । मन्दिर-मस्जिद चाहे हो दरगा ॥
पंथ संस्था हो सकल समाजा । मिल जुल देखहहिं सब काजा ॥

व्याख्या - मन्दिर, मस्जिद, दरगाह आदि किसी का भी ट्रस्ट हो, उसमें समाज के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व होना चाहिए । पंथ की संस्थाएँ सभी समाज की हों तथा सब मिल जुल कर कार्य करें ।

ऊँच नीच जाति अरु पंथ विभेदा । करहिं न न्यासी रहहिं अभेदा ॥
परहित रत रहवहिं सदा । सपनेउ करहिं न मन मदा ॥

व्याख्या - ऊँच-नीच, जाति व पंथ आदि का न्यासी लोगों को भेद नहीं करना चाहिए । उन्हें तो सब से बिना भेदभाव के व्यवहार करना चाहिए। न्यासी सदा परोपकार में लगे रहते हैं तथा सपने में भी मन में घमण्ड नहीं करते हैं ।

मंगल सोचहिं करइ मंगला । निज मानइ चराचर सबला ॥
विषय बिरत सहज दयासी । परमारथी सोइ जोग्य न्यासी ॥

व्याख्या - जो मंगल सोचते हैं और मंगल ही करते हैं तथा समस्त चराचर जगत को अपना मानते हैं और सहज में दयावान और विषयों से विरक्त होते हैं, वे ही न्यास के योग्य सदस्य होते हैं ।

दो०- मन बच कर्म पावन तबहिं सच्चा न्यासी होय ।
मन कल्मष स्वारथ प्रबल जानि पाखण्डी सोय ॥ ३२ ॥

व्याख्या-जो मन, वचन व कर्म से पवित्र होता है, वो ही सच्चा न्यासी होता है और जिसके मन में कल्मष होती है और स्वार्थ प्रबल होता है, उसे पाखण्डी जानना चाहिये।

धन्य प्रभु सहज हितकारी । दीन्ह उपदेश जग उपकारी ॥
जय मंगल मूल मंगल कारी । सब विधि नाथ शरण तिहारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप धन्य हैं । आपने जगत का उपकार करने वाला उपदेश दिया है । हे मंगल के मूल प्रभु ! आप मंगल करने वाले हैं । मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ ।

केहि विधि सुधरहिं परिवारा । सो कहउ नाथ मोहि उपचारा ॥
सरल सुगम सुलभ उपाई । करि कृपा देवउ नाथ बताई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! परिवार संस्था में सुधार कैसे हो, यह उपाय बता दीजिए । हे प्रभु! सरल, सुगम व सुलभ उपाय आप कृपा करके बता दीजिए ।

सुनु सुत कहुँ तोहि समुझाई । सभ्यता मूल परिवार सुहाई ॥
भल जो होवहिं जीव संस्कारा । सुधरहिं सहज सब परिवारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें समझा कर कहता हूँ कि किसी भी सभ्यता का मूल परिवार ही होता है अर्थात जैसे परिवार के संस्कार होंगे, वैसी ही समाज की सभ्यता बनती है । अगर जीव के संस्कार अच्छे होते हैं, तो परिवार सहज में ही सुधर जाता है ।

नारी मूल सकल संस्कारा । नारी अनुरुप सब परिवारा ॥
गृह नारी देहहिं उचित माना । भूलि न मारहिं ताहि कटु ताना ॥

व्याख्या - नारी ही समस्त संस्कारों का मूल होती है तथा नारी के अनुरुप ही परिवार बनता है । इसलिए घर की नारी को भूलकर भी कटु ताना नहीं मारना चाहिये तथा सदा उसका सम्मान करना चाहिये ।

दो०- पति पत्नी व्यवहार प्रथम पुनि मातु पितु आचार ।
उभय मिलि गृह बनावहिं ताते उपजत सब संस्कार ॥ ३३ ॥

व्याख्या - पहले पति-पत्नी के रूप में व्यवहार और फिर माता-पिता के रूप में व्यवहार करने पर परिवार बनता है तथा दोनों के आचरण से परिवार के संस्कार बनते हैं ।

नर पुरुष नारी प्रकृति रूपा । उपजावहिं उभय सृष्टि अनूपा ॥
तन नर नारी साम्यता रहाहिं । मन प्रसन्न उमंग हियँ माहिं ॥

व्याख्या - पुरुष चेतन रूप होता है और स्त्री प्रकृति स्वरूपा होती है और दोनों मिलकर सृष्टि की सृजना करते हैं, अगर शरीर के नर-नारी में साम्यता रहती है, तो मन प्रसन्न और हृदय में उमंग रहती है ।

देह सम रहहिं घर नर नारी । सुख दुख पाइ साम्य अनुसारी ॥
नारी विकल देह उकलाई । सहज सुभाव जाइ बिसराई ॥

व्याख्या - शरीर के नर-नारी के समान ही घर के नर-नारी होते हैं । इसलिए सुख-दुःख भी नर-नारी की साम्यता पर निर्भर करते हैं । अगर देह स्थित नारी

(नाड़ी) व्याकुल हो जाती है, तो जीव सहजता को भूल जाता है ।

ऐसउ घटइ गृह नारी संगा । होइ विकल सब शान्ति भंगा ॥
सम आचार देह अरु गृह नारी । जानइ सोइ ग्यान अधिकारी ॥

व्याख्या - तन की नारी के समान ही घर की नारी के साथ घटित होता है । जब घर की नारी (स्त्री) व्याकुल हो जाती है, तब परिवार की शान्ति भंग हो जाती है । तन की नारी और घर की नारी के आचरण समान होते हैं, अतः जो इस रहस्य को जानते हैं, वे ज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं ।

नारी जननी सकल संस्कारा । नारी पावन होहहिं न विकारा ॥
नारी समता रखहहिं मन में । पावहिं सुख जग अरु तन में ॥

व्याख्या - नारी ही समस्त संस्कारों को पैदा करने वाली होती है, इसलिए नारी पवित्र रहने पर कोई विकार पैदा नहीं हो सकते हैं। जो लोग नारी के प्रति मन में समता का भाव रखते हैं, वे शरीर और संसार दोनों जगह सुख की प्राप्ति करते हैं ।

दो०- नारी-नारी जग करता नारी जगत की खान ।
निज अरु घर नारी भेद करे मूरख सकै न जान ॥ ३४ ॥

व्याख्या - संसार नारी-नारी का बखान करता रहता है परन्तु नारी तो जगत की मूल होती है । मूर्ख लोग नारी के रहस्य को नहीं जान पाते हैं, इसलिए तन की नारी और घर की नारी में भेद करते रहते हैं ।

गुण अवगुण सब नारी निवासा । नारी निर्भर मन तन उल्लासा ॥
अष्ट गुण सदा नारी सुहावहिं । निगम-पुराण सब जनावहिं ॥

व्याख्या - समस्त गुण-अवगुण नारी में निवास करते हैं अतः मन और तन की प्रसन्नता नारी पर ही निर्भर करती है । वेद पुराण सभी बताते हैं कि नारी में सदा आठ गुण (अष्ट प्रकृति) निवास करते हैं।

साहस दुसाहस बुद्धि कुबुद्धि । चंचल अचल शुद्धि अशुद्धि ॥
निष्ठा अनिष्ठा मान अपमाना । भय अभय दया अदया थाना ॥

व्याख्या - साहस-दुःसाहस, बुद्धि-कुबुद्धि, चंचलता-स्थिरता, शुद्धि-अशुद्धि, विश्वास-अविश्वास, मान-अपमान, भय-अभय, दया-निर्दयता के आठ गुण सदा नारी में निवास करते हैं ।

अष्ट प्रकृति सो माया उपजाई । तन मन तहँ परइ उरुझाई ॥
सोहि सोहि घटे परिवार संगा । नारी विकल गृह शान्ति भंगा ॥

व्याख्या - नारी की अष्ट प्रकृति से ही माया पैदा होती है, जिसमें मन और

तन उलझ जाता है । जैसा शरीर में घटित होता है, वैसा ही परिवार में घटित होता है, इसलिए घर की नारी दुःखी हो जाने पर परिवार की शान्ति भंग हो जाती है ।

पीयूष सरिस जो रहहिं नारी । होहहिं धन्य सकल परिवारी ॥
नारी हृदय सदा सहज उदारा । प्रेम डोर बांधहि सब परिवारा ॥

व्याख्या - अगर घर की नारी अमृत की तरह मधुर रहती है, तो वह परिवार धन्य हो जाता है । नारी का हृदय सहज में ही उदार होता है, अतः नारी समस्त परिवार को प्रेम रूपी डोर में बांध कर रखती है ।

दो०- नारी जग में अनल सम हवन सम करहि कल्याण ।
कुपथ यदि चल परहिं चिता बनि करे भष्म जहान ॥ ३५ ॥

व्याख्या - नारी संसार में अग्नि की तरह होती है, जो चाहे तो हवन की अग्नि के समान कल्याणकारी हो जाती है और अगर कुपथ पर चल पड़ती है, तो चिता की अग्नि बन कर संसार को भस्म कर देती है ।

उचित सो सुत नारी मेल मिलापा । समय पाइ सुख दुख अलापा ॥
नारी मन्त्रणा सदा हितकारी । नारी जो होहहिं मन सदाचारी ॥

व्याख्या - इसलिए घर की नारी के साथ मेल-मिलाप रखना चाहिए तथा समय-समय पर नारी के साथ घर के सुख-दुःखों की चर्चा करनी चाहिए । अगर नारी सदाचार वाली होती हैं, तो उसकी सलाह परिवार के लिए बहुत ही हितकारी होती है ।

अब कहउँ किछु नारी धरमा । पालहिं जे पावहिं सुख परमा ॥
पति पद सेवा पुण्य अनूठा । पति शरण तबहिं बैकुण्ठा ॥

व्याख्या - अब मैं नारी के कुछ कर्तव्यों को बताता हूँ, जिनका पालन करने पर परम सुख की प्राप्ति हो जाती है । पति के चरणों की सेवा एक अनुपम पुण्य होता है और पति की शरण में रहने पर ही पत्नी बिना कुण्ठा (चिन्ता) के रह पाती है ।

पति निन्दा करइ न सपनेउ । मन बच कर्म सहज सनेउ ॥
सास ससुर करइ सेवा मन लाई । भगनि भ्राता पालहिं जिमि माई ॥

व्याख्या - सपने में भी पति की निन्दा नहीं करनी चाहिए और मन, वचन व कर्म से पति के प्रति सहज स्नेह रखना चाहिये । सास और श्वसुर की मन लगाकर सेवा करनी चाहिये और पति के भाई-बहनों का पालन माता की तरह करना चाहिए ।

पति भावना निज राह जानहिं । पर पुरुष भ्रात पितु मानहिं ॥
अवसर पाइ देवहिं मन्त्रणा । पति विपद जानि निज जन्त्रणा ॥

व्याख्या - पति की भावना को ही पत्नी को अपना रास्ता मानना चाहिए तथा पराये पुरुष को भाई और पिता के रूप में देखना चाहिये। अवसर आने पर पति को सलाह देनी चाहिये और पति के कष्ट को स्वयं का कष्ट मान कर चलना चाहिये।

दो॰- धन लालसा मन नहिं अकारण करहिं न अपवाद ।
द्रष्टा बनि गृह पालहिं समय पाइ पति संग संवाद ॥ ३६ ॥

व्याख्या - पत्नी को धन की लालसा मन में नहीं रखनी चाहिये तथा अकारण पति के साथ कुतर्क नहीं करने चाहियें तथा द्रष्टा की तरह परिवार का पालन-पोषण करना चाहिये और समय की आवश्यकता के अनुसार पति को सलाह देनी चाहिए।

जे पति लंपट लोलुप अतिचारी । नारी सोई त्यागन अधिकारी ॥
स्वामी दीन असहाय होय अपंगा । रूप कुरूप भल न छाड़हि संगा ॥

व्याख्या - जो पति लंपट, लोलुप और अत्याचार करने वाला हो, तो पत्नी को ऐसे पति को छोड़ देने का अधिकार है। परन्तु पति गरीब, असहाय, अपाहिज, रूपवान या कुरूप हो, तो पत्नी को अपने पति का साथ नहीं छोड़ना चाहिये।

जननी जनक जो इन्द्र समानी । करहि न मद सोइ नारी सुजानी ॥
कथा अप्रिय जो सुनहि काना । पिहर कबहुँ न जाइ बखाना ॥

व्याख्या - अगर माता-पिता इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान हों, तो भी जो नारी अभिमान नहीं करती है, वो सज्जन होती है। अगर ससुराल में कोई अप्रिय बात सुन भी ले, तो भी अपने मायके में जाकर कभी नहीं बताना चाहिये।

सास ससुर निज करे सेवकाई । जद्यपि गृह सेवक बहुताई ॥
पति बिनु करइ नहिं आहारा । गृहणी लक्षण उत्तम आचारा ॥

व्याख्या - सास-श्वसुर की सेवा स्वयं करे, चाहे घर में बहुत सारे सेवक क्यों नहीं हों। बिना पति के भोजन नहीं करे, यही गृहिणी के अच्छे लक्षण होते हैं।

अरथ प्रधान आज जुग सारा । सोइ आचरहि समय अनुसारा ॥
दौ प्रकार धर्म पत्नी जग माहीं । काज काजी अरु गृहणी सुहाहीं ॥

व्याख्या - परन्तु आज का युग अर्थ प्रधान है, इसलिए समय के अनुसार आचरण करना चाहिये। संसार में दो प्रकार की धर्म पत्नी होती हैं, एक तो वे जो घर का काम धन्धा देखती हैं और दूसरी वे जो घर के बाहर नौकरी या व्यवसाय आदि करती हैं।

दो॰- काम काजी नारी भयी तहँ नहिं मर्यादा निभ पाय ।
पति सम सब काज करे तब क्यों बिरथा दोष लगाय ॥ ३७ ॥

व्याख्या - जब धर्म पत्नी बाहर कार्य करने वाली होती है, तो मर्यादाओं का

पालन नहीं हो पाता है । जब पत्नी पति के समान ही बाहर काम करती हैं, तो फिर व्यर्थ में क्यों दोष लगाया जाए ।

छाड़हि मरजादा समय अनुरूपा । सार सार गहि लहहि जिमि सूपा ॥
सील सुभाव सदा नारी भूषण । रखहिं खयाल लगहिं न दूषण ॥

व्याख्या - समय के अनुसार मर्यादाओं की रूढ़िता को छोड़ देना चाहिये और मर्यादाओं के सार-सार को ग्रहण कर लेना चाहिये । शीलता का स्वभाव सदा नारी का आभूषण होता है, अतः नारी को हमेशा सावधानी बरतनी चाहिये कि उसकी शीलता पर कोई दोष न लग जाए ।

आहार-विहार मरजादा भंगा । लगहि न दोष जो शील अभंगा ॥
निज आय करहिं न अहंकारा । रहत सुखी सदा सोइ परिवारा ॥

व्याख्या - खाने-पीने और घूमने की मर्यादाओं के टूट जाने पर तब तक कोई दोष नहीं लगता, जब तक नारी का शील भंग नहीं होता है। स्वयं की आमदनी का जो स्त्री घमण्ड नहीं करती, वो परिवार सदा सुखी रहता है ।

दम्पति सुख विश्वास आधारा । विनय व्यवहार सुख परिवारा ॥
पालहिं परिवार जिमि मुख शरीरा । तहँ सर्ग निवास नहिं किछु पीरा ॥

व्याख्या - पति-पत्नी के सुख का आधार आपसी विश्वास होता है और विनय पूर्वक किया गया व्यवहार ही परिवार के सुख का मूल होता है । जैसे मुख समस्त शरीर का पालन-पोषण बिना भेदभाव के करता है, वैसे ही जो परिवार का पालन करते हैं, उनके परिवार में स्वर्ग निवास करता है तथा किसी प्रकार के कष्ट नहीं होते हैं।

नारी अनुरूप सकल परिवारा । नारी प्रथम गुरु मूल संस्कारा ॥
पूजहिं नारी सदृगुण उपजाई । घर परिवार सदा सुख पाई ॥

व्याख्या - नारी के अनुरूप ही परिवार बनता है क्योंकि नारी ही संस्कारों को पैदा करने वाली प्रथम गुरु होती है । इसलिए जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ सद्गुण पैदा होते हैं, जिससे सदा परिवार में सुख मिलता रहता है ।

दो०- नारी भल मन्द मूल भयी नारी आदिशक्ति महान ।
नारी अनुकूल सुख दायनी प्रतिकूल हेतु कष्ट जहान ॥ ३८ ॥

व्याख्या - नारी ही समस्त अच्छे-बुरे का मूल होती है तथा नारी ही आदि शक्ति होती है । अतः नारी की अनुकूलता सुख देने वाली होती है और नारी की प्रतिकूलता ही संसार में कष्ट का कारण होती है ।

नारी समता भाव सुख दायक । लघु बड़ विचार दुःख सायक ॥
सोई चतुर पण्डित ग्यानी । बिनु हेतु नारी सदा सम मानी ॥

व्याख्या - नारी के प्रति समानता का भाव रखना ही सुख देने वाला होता है और नारी को छोटा-बड़ा मानने से ही दुःख पैदा होते हैं । वही चतुर, विद्वान और ज्ञानी होता है, जो बिना कारण के ही नारी को समान मानकर चलता है ।

स्वारथ हेतु बहु देइ नारी माना । बिनु हेतु करहिं सो अल्प सुजाना ॥
बिनु ग्यान न समता आवइ । समता बिनु नहिं सुख पावइ ॥

व्याख्या - स्वार्थ के लिए नारी को सम्मान देने वाले बहुत होते हैं परन्तु बिना स्वार्थ के नारी को सम्मान देने वाले बहुत कम सज्जन होते हैं । बिना ज्ञान के समता नहीं आ पाती है और बिना समता के सुख नहीं मिल पाता है ।

कोह जग त्यागी नारी समाना । मातु पितु गृह तजहि बिनु माना ॥
सुत सोइ नारी मान अधिकारी । मूढ़ होहहिं जेहिं देहहिं गारी ॥

व्याख्या - नारी के समान संसार में कौन त्यागी हो सकता है ? नारी तो सहज में ही बिना मान किए अपने माता-पिता के घर को छोड़ देती है । इसलिए नारी सम्मान प्राप्त करने की अधिकारी होती है । वे लोग मूर्ख होते हैं, जो नारी को गाली देते हैं ।

मीत सचिव सेवक हितकारी । सकल गुण बसहिं हियँ नारी ॥
सुता भगनि सजनी महतारी । सब अवस्था भयी गृह नारी ॥

व्याख्या - मित्र, सलाहकार, सेवक और कल्याण कारक आदि सभी गुण नारी के हृदय में निवास करते हैं । पुत्री, बहीन और माता ये सभी एक ही नारी की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं ।

दो०- भाव वासना विकार बनइ नहिं नारी का दोष ।
निज दृष्टि माया उपजत मूरख करे नहिं होश ॥ ३९ ॥

व्याख्या - भावों से पैदा होने वाली वासना ही विकार बनती है, इसमें नारी का दोष नहीं होता है । स्वयं की भाव दृष्टि से ही माया पैदा होती है परन्तु मूर्ख लोग समझ नहीं पाते हैं ।

भगिनि देखहिं प्रेम उमगाए । पर युवती पेखि काम सताए ॥
मातु देखि श्रद्धा सीस झुकावहिं । नारी इक भाव नाच नचावहिं ॥

व्याख्या - बहन को देखकर प्रेम पैदा हो जाता है तथा दूसरी लड़की को देखकर काम भावना पैदा हो जाती है तथा माता को देखने से श्रद्धा से सिर झुक जाता है । नारी तो एक ही होती है परन्तु भाव दृष्टि ही भिन्न-भिन्न प्रकार से जीव को नाच नचाने लग जाती है ।

देह नारी सुत भाव उपजाई । मूरख गृह नारी दोष लगाई ॥
इहँ जग माया मरम गंभीरा । जान सकइ जो होइ मतिधीरा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! शरीर स्थित नारी (नाड़ी) से ही भावों की उत्पत्ति होती है परन्तु मूर्ख लोग घर की नारी को भावों (माया) का कारण मान कर व्यर्थ में दोष लगाते हैं। यह संसार की माया का गम्भीर रहस्य है, जिसको धैर्यवान बुद्धि वाले लोग ही समझ पाते हैं।

नारी पुरुष सम जीव सुहाई । काह कहहुँ सुत कथा बढ़ाई ॥
गृहस्थ हेतु करउँ उपदेसा । सुनतहिं मिटइ जग अंदेसा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! कथा बढ़ा कर क्या कहूँ ? नारी तो पुरुष के समान ही एक जीव है। अब मैं गृहस्थ सुख के लिए कुछ बातें बताता हूँ, जिनको सुनने से ही जगत का अज्ञान मिट जायेगा ।

गृहस्थ मूल सुत परिवारा । बनहिं सरूप पति-पत्नी आचारा ॥
उभय करहि जो प्रेम व्यवहारा । संतति पाइब भल संस्कारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! गृहस्थ का मूल परिवार ही होता है, जिसका स्वरूप पति-पत्नी के आचरण के अनुसार बनता है । अगर पति-पत्नी प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, तो उनकी सन्तानों में अच्छे संस्कार ही पैदा होंगे ।

संतति जो होहि भल संस्कारी । समाज सब सुधरहिं आगारी ॥
सहज प्रीति पालहिं नर नारी । सोइ परिवार सर्ग अधिकारी ॥

व्याख्या - अगर संतान अच्छे संस्कारों वाली होती है, तो आगे चल कर समाज सुधर जाता है। जो पति-पत्नी सहज में ही प्रेम करते हैं, उनका परिवार स्वर्ग (सुख) को प्राप्त करता है ।

दो०- दाम्पत्य सुख मोदक नहिं जेहिं कोइ लेवहहिं खाय ।
पशु सम संभोग सब करहिं कोउ बिरला ही सुख पाय ॥ ४० ॥

व्याख्या - दाम्पत्य सुख कोई लड्डू की तरह नहीं है, जिसको हर कोई खा ले। जानवरों की तरह संभोग तो सभी करते हैं परन्तु कोई बिरला ही दाम्पत्य जीवन का सुख उठा पाता है ।

नर अरु नारी यन्त्र समाना । मन विकार मान अपमाना ॥
मन हेतु जग मरजादा सारी । नहिं किछु देखि हियँ विचारी ॥

व्याख्या - नर और नारी दोनों यन्त्र के समान होते हैं तथा मान-अपमान तो मन के विकार मात्र हैं । मन के कारण ही समस्त मर्यादाएँ होती हैं । मन के बाहर कुछ नहीं होता है, विचार करके देख लीजिए।

मन चंचल सब नर नारी । दिखावहिं भिन्न-भिन्न आचारी ॥
जहँ लगि रहइ मोह विस्तारा । तहँ लगि मरजाद विकारा ॥

व्याख्या - स्त्री-पुरुषों के मन की चंचलता ही भिन्न-भिन्न व्यवहार कराती है । जहाँ तक मोह का विस्तार होता है, वहीं तक मर्यादाओं के विकार होते हैं ।

विगत मोह नहिं मान अमाना । कारण कारज निज अग्याना ॥
निज मोह दूसर थोपहिं प्राणी । निज मन जानहिं नहिं अभिमानी ॥

व्याख्या - मोह के मिट जाने पर कोई मान-अपमान नहीं रहता है क्योंकि मान-अपमान का कार्य और कारण तो जीव का स्वयं का अज्ञान ही होता है । जो स्वयं के मोह को दूसरों पर आरोपित करने का प्रयास करते हैं, वे मूर्ख अभिमानी लोग स्वयं के मन को जान नहीं पाते हैं ।

विषम-विष मरजादा सारी । सम्भोग मूल मन विकारी ॥
संत जन करहिं नहिं बिचारा । तजहिं मरजाद समय अनुसारा ॥

व्याख्या - मर्यादाएँ बहुत ही तीव्र जहर की तरह होती हैं, जिनका मूल स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध होते हैं तथा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध ही मन के विकार के कारण होते हैं । इसलिए सन्त लोग मर्यादाओं का विचार नहीं करते हैं और समय के अनुसार मर्यादाओं का त्याग कर देते हैं।

दो०- मातु-पितु आयुस न मानहिं जेहिं चलहिं निज विचार ।
सोइ सुत सुता तुरत तजउ जो चावहिं निज उपकार ॥ ४१ ॥

व्याख्या - अगर स्वयं का उपकार चाहते हैं, तो जो पुत्र-पुत्रियाँ माता-पिता की आज्ञा नहीं मानकर स्वयं की मन मर्जी से चलते हैं, उन्हें तुरन्त छोड़ देना चाहिये।

युवक युवती काम बिकल सारे । भोग अधीन करहिं कारज सारे ॥
जानहिं नहिं निज भल मन्दे । काम विकल मूढ़ महा अन्धे ॥

व्याख्या - युवक-युवतियाँ काम के वशीभूत होकर समस्त कार्य भोग के लिए करते हैं । काम में व्याकुल मूर्ख अन्धे स्वयं का अच्छा बुरा नहीं जानते हैं ।

तजहहिं पितुमातु परिवारा । काम वश बनहिं भर्ती भरतारा ॥
मोह वश पितु मातु विलापहि । काम विकल संतति संतापहि ॥

व्याख्या - काम के वशीभूत होकर परिवार को छोड़कर पति-पत्नी बन जाते हैं और मोह के कारण माता-पिता विलाप करते रहते हैं । परन्तु काम के वशीभूत सन्तान कष्ट देती रहती है ।

मातु पितु देवहहिं अभिशापा । समय पाइ उभय पाव संतापा ॥
प्रेम विवाह नहिं किछु दोषा । जे करहिं मातु-पितु परितोषा ॥

व्याख्या - माता-पिता दुःखी होकर अभिशाप देते हैं, जिससे पति-पत्नी दोनों समय आने पर कष्ट पाने लगते हैं। अगर माता-पिता को सन्तुष्ट करके प्रेम विवाह किया जाता है, तो उसमें कुछ दोष नहीं होता है।

उचित करहहिं देव विवाहा। मातु पितु आज्ञा करि अवगाहा॥
तेहि जनु पावहहि सुख अपारा। मातु पितु भावना करहिं अचारा॥

व्याख्या - इसलिए उचित यही है कि माता-पिता की आज्ञा मानकर देव विवाह किया जाए। जो लोग माता-पिता की भावना का आदर करते हैं, उन्हें अपार सुख की प्राप्ति होती है।

दो०- मातु हृदय प्रकृति बसै सोइ मातु आशीष सुखदाई।
मातु पितु जे परितोषहिं तिन्ह जग दुर्लभ किछु नाई॥ ४२॥

व्याख्या - माता के हृदय में प्रकृति का निवास होता है, इसलिए माता का आशीर्वाद सदा सुख देने वाला होता है। अतः जो लोग माता-पिता को प्रसन्न रखते हैं, उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है।

छ० - सरल उपाइ जाते सुख पाइ कहउँ तात तोहि समझाहिं।
मान अमाना उभय समाना जानि नर नारी जे जग बरताहिं॥
मन कर्म बानी छाड़ि नादानी प्रेम सरोवर से नित्य नहावहिं।
सोई गृहस्था आनंद अवस्था नहिं संशय दाम्पत्य सुख पावहिं॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम को सरल उपाय समझा कर बताता हूँ, जिससे दाम्पत्य सुख प्राप्त किया जा सकता है। जो लोग मान-अपमान की दृष्टि से नारी और पुरुष को समान मानकर जग में व्यवहार करते हैं और मन, कर्म व वचन से मूर्खता छोड़कर, आपस में प्रेम रूपी सरोवर में स्नान करते हैं, वे गृहस्थ आश्रम में रहते हुए दाम्पत्य सुख को प्राप्त कर लेते हैं।

छ० - दम्भ परिवारा मन विकारा ग्यानी जन नहिं भरमावहिं।
पति शरणा आनन्द झरना जानहिं जेहि नारी मुस्कावहिं॥
प्रिया सन्मानी निज अमानी सोइ पति देव परम कहावहिं।
पति अपमाना नरक समाना करहिं जे जग दुःख पावहिं॥

व्याख्या - परिवार का दम्भ करना तो मन का विकार होता है, इसलिए परिवार आदि की श्रेष्ठता के दम्भ में ज्ञानी लोग भ्रमित नहीं होते हैं। पति की शरण ही आनन्द का स्रोत होती है। अतः जो नारी इस बात को समझ लेती है, वो हमेशा खुश रहती है। जो पति अपनी पत्नी को सम्मान देता है और स्वयं पत्नी से सम्मान की इच्छा नहीं करता है, वह पति परमेश्वर ही कहलाता

है । परन्तु जो पत्नी पति का अपमान करती है, वह संसार में बहुत कष्ट भोगती है क्योंकि पति का अपमान ही नरक के समान होता है ।

छ० - नित उठि गुरु पद पूजा आस न दूजा उभय मम गुण गन गावहिं ।
आसक्ति त्यागी सो बड़भागी बिनु प्रयासु सोहि परम पद पावहिं ॥
भगति साधन मोर अराधन हियँ उमगहिं जे मोर चरण अनुरागहिं ।
सहज सुभाई जे नर नारी सुहाई दाम्पत्य जीवन आनंद बहहिं ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जो प्रातः उठते ही गुरु के चरणों में पूजा करते हैं तथा मन में कोई आशा नहीं रखते हैं तथा जो पति-पत्नी मेरा गुणगान करते हैं और आसक्ति छोड़ देते हैं । ऐसे लोग बहुत भाग्यशाली होते हैं और बिना प्रयास के ही परम पद को प्राप्त कर लेते हैं । मेरी आराधना ही मेरी भक्ति का साधन होती है, जो मेरे चरणों में अनुराग रखने से हृदय में प्रकट होती है । जो स्त्री-पुरूष सहज स्वभाव में बरतते हैं, उनके जीवन में आनन्द की हवा बहने लगती है ।

दो०- प्रेम डोर पति-पत्नी बंधहि भाव रूप ग्रन्थि लगाय ।
समरसता मरम न जानहिं तिन्ह जीवन बिरथा जाय ॥ ४३ ॥

व्याख्या - प्रेम रूपी रस्सी में पति-पत्नी बंधे हुए होते हैं तथा भाव रूपी गाँठ लगी होती है अतः जो पति-पत्नी की समरसता को नहीं जान पाते हैं, उनका जीवन व्यर्थ जाता है ।

भाव ग्रन्थि खुलइ भाव द्वारा । भाव तें प्रेम भाव तें कटुता सारा ॥
भाव भल रखि करहिं व्यवहारा । पाइ दाम्पत्य सुख जग सारा ॥

व्याख्या - भावों की ग्रन्थि भावों के द्वारा ही खुलती है क्योंकि भाव ही प्रेम पैदा करते हैं और भावों से ही कटुता पैदा होती है । अतः जो अच्छे भाव रखकर व्यवहार करते हैं, वे संसार में दाम्पत्य सुख प्राप्त करते हैं।

दम्भ अरु चुगली करइ बिकारा । ताते बाढ़हिं कटुता परिवारा ॥
जो चावहिं घर सुख आनन्दा । कहहिं न काहउ भल मन्दा ॥

व्याख्या - दम्भ और चुगली से विकार पैदा होते हैं, जो परिवार में कटुता पैदा करते हैं । इसलिए घर-परिवार में सुख और आनन्द चाहिये, तो किसी को भी भला-बुरा नहीं कहना चाहिये ।

कर्त्तव्य पालहिं चाह न अधिकारा । होहिं न राग द्वेष तिन परिवारा ॥
सेवा अतिथि करहिं मन लाई । तिन्ह गृह सदा समृद्धि छाई ॥

व्याख्या - जिस परिवार में कर्त्तव्य पालन पर जोर दिया जाता है और अधिकारों की इच्छा नहीं रखते हैं, उन परिवारों में राग-द्वेष पैदा नहीं हो पाते

हैं तथा जिन परिवारों में अतिथि सेवा मन लगा कर की जाती है, उनमें समृद्धि छाई रहती है ।

साधु सज्जन क्षुधा तृप्त कराई । सो धन्य धन्य परिवार सबाई ॥
पात्र देखहिं करहिं जेहि दाना । यश लाभ जग पावहहिं नाना ॥

व्याख्या - जो परिवार साधु-सज्जनों की भूख मिटाते हैं, वे सब परिवार धन्य होते हैं तथा जो पात्र को देखकर दान करते हैं, उनको संसार में बहुत यश की प्राप्ति होती है ।

दो०- दान करइ लोभ मिटै अलोभ मन शुद्ध होय ।
मन शुद्ध तन खुश भए जीव निर्भय होकर सोय ॥ ४४ ॥

व्याख्या - दान करने से लोभ की प्रवृति कम हो जाती है और बिना लोभ के मन शुद्ध हो जाता है और मन की शुद्धि से तन खुश हो जाता है और जीव निर्भय हो जाता है ।

धन्य धन्य जगत गुसाई । तोरि कृपा बहु मरम बुझाई ॥
अल्प जिज्ञासा रहहि मन माहि । विकल जग काह शान्ति राहि ॥

व्याख्या - हे जगत के ईश्वर ! आप धन्य हैं, धन्य हैं । आपकी कृपा से मैंने आपका बहुत मर्म जान लिया है परन्तु मन में थोड़ी सी जिज्ञासा बची हुई है कि सारा संसार व्याकुल हो रहा है अतः शान्ति का मार्ग कौन सा है ?

तामस तन बिकल नर नारी । नित झगरहिं अरु देहिं गारी ॥
बहु परिवार भयउ तलाका । विगत नीति कर दम्भ पताका ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! तामसिक शरीर हो जाने से नर-नारी व्याकुल हो रहे हैं और दिन-प्रतिदिन आपस में गाली दे देकर झगड़ा करते हैं और बहुत से परिवारों में तो तलाक तक हो गए हैं । नीति गायब होती जा रही है और दम्भ रूपी पताका हाथों में लहरा रही हैं ।

पति शरण सुत अभय दायनी । रहहिं निशंक जो पाइ गामनी ॥
पति स्तुति मारग बहु सरला । मिटहिं द्वेष जो करहिं अबला ॥

व्याख्या - हे वत्स ! पति की शरण ही पत्नी को अभय करने वाली होती है अतः जो नारी पति की शरण में रहती है, वो सदा निर्भय रहती है । पति की स्तुति करना ही पति की शरण में जाने का सरल रास्ता है। जो नारी पति की स्तुति करती है, उसके प्रति समस्त द्वेष मिट जाता है।

कहउँ स्तुति नारी हितकारी । गावहिं सो होहहिं पति दुलारी ॥
प्रातः उठि नित पाठ करहहिं । नहिं संशय पति प्रेम लहहिं ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुमको नारी कल्याण के लिए स्तुति बताता हूँ जिसको जो भी नारी करेगी, वही पति की प्यारी हो जायेगी । प्रातः काल उठकर नित्य स्तुति करने पर पति का प्रेम प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं है ।

पति स्तुति

अहम् त्वमेव प्रियम च त्वमेव ही मम् पतिम् ।
त्वमेव सर्वम ममेव सम्पदाः तत् कुतः द्वेषम् ॥ १ ॥

व्याख्या - हे प्रिय पति देव ! मैं आपकी प्रिया हूँ और तुम ही मेरे पति हो तथा आपका सब कुछ मेरी ही सम्पत्ति है, तब भेद कहाँ है ?

अस्माकम् मनम् एकम् च एकम् अस्माकम् प्राणम् ।
अहम् त्वम समर्पयामी सर्वम् कांक्षति त्वमेव प्रेमम् ॥ २ ॥

व्याख्या - हमारा मन एक ही है और हम दोनों के प्राण भी एक ही हैं । इसलिए मेरा सब कुछ मैं आपको समर्पित करती हूँ और तुम्हारे प्रेम की इच्छा करती हूँ।

ममेव सर्व कृत्यम् त्वमेव जन्यम् न कांक्षति फलम् ।
त्वमेव स्नेहं मम् लक्ष्यं च त्वमेव सुखम् ममेव सुखम् ॥ ३ ॥

व्याख्या - मेरे सभी कर्म आपके लिए हैं और मैं कुछ भी फल नहीं चाहती हूँ। आपका सच्चा प्रेम प्राप्त करना ही मेरा लक्ष्य है तथा आपका सुख ही मेरा सुख है ।

त्वमेव भावना ममेव मार्गम च त्वम् मम् भरतारम् ।
त्वमेव आज्ञा अहम् शिरोधारयति इदम् मम् कर्तव्यम् ॥ ४ ॥

व्याख्या - हे पति देव ! आपकी भावना ही मेरा मार्ग है और आप ही मेरे पालन कर्ता हैं । आपकी आज्ञा को मैं सिर पर धारण करती हूँ और आपकी आज्ञा मानना ही मेरा कर्तव्य है ।

न चिन्ताम् न चिन्तयति न चिन्तयसि पर पुरुषम् ।
त्वम् मम सर्वम् पति देवं प्रसीद भवम् प्रसीद भवम् ॥ ५ ॥

व्याख्या - न मैंने कभी पराए पुरुष का चिन्तन किया है, न चिन्तन करती हूँ और न ही कभी पराए पुरुष का चिन्तन करूँगी । हे पतिदेव! आप ही मेरे सब कुछ हैं । आप प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए।

इदम पति स्तोत्रम् जे पठन्ति च अनुवर्तन्ति पतिव्रताम ।
से पति वशं करोति च प्राप्नोति गृहस्वामिनि अधिकारम् ॥

व्याख्या - जो स्त्रियाँ श्रद्धापूर्वक पति स्तोत्र को पढ़ती और सुनती हैं तथा अनुसरण करती हैं, उनका पति उनके अधीन हो जाता है तथा वो गृह स्वामिनि के अधिकार को प्राप्त कर लेती हैं ।

करि स्तुति करै सोम उपवासा। पावहिं नारी पति भल बासा ॥
नित उठि जे करहिं इहँ पाठा। मिटहिं कामादि अवगुण आठा ॥
व्याख्या - जो स्त्रियाँ पति स्तोत्र का पाठ करके सोमवार का उपवास करती हैं, उनको पति का निश्छल प्रेम प्राप्त हो जाता है। जो सुबह नित्य पाठ करती हैं, उनके पति के काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार, कपट और दुष्टता के आठ अवगुण मिट जाते हैं।

चन्द्र निसा पति सन्मुख गाई। सास ननद नव वसन दिलाई ॥
पति स्तोत्र हरहिं कल्मष सारी। धन्य जो करहिं सुहागिन नारी ॥
व्याख्या - जो सुहागिन नारियाँ पति स्तोत्र को पूर्णिमा की रात में पति के सामने गाती हैं और सास-ननद को नये वस्त्रों का दान करती हैं, वे धन्य हो जाती हैं और परिवार के समस्त दोष दूर हो जाते हैं।

पति स्तोत्र कलियुग हारी। दाम्पत्य हेतु सदा सुखकारी ॥
सहज पालना सकल हितकारी। मंगल दायक अमंगलहारी ॥
व्याख्या - पति स्तोत्र तामसिक अवस्था को दूर करता है और पति-पत्नी दोनों को सुख देने वाला होता है। इसका अनुसरण करना सहज होता है तथा सब परिवार का हित करने वाला होता है। पति स्तोत्र से परिवार में सबका मंगल होता है और समस्त अमंगल दूर हो जाते हैं।

पति वश हेतु कहा प्रभु विचारी। अब कहहउ हेतु वश नारी ॥
भिन्न व्यवहार भिन्न दिनचर्या। कहिइब पति हेतु सरल क्रिया ॥
व्याख्या - हे प्रभु ! आपने पति को वश में करने का उपाय तो विचार करके बता दिया परन्तु अब पत्नी को वश में करने का उपाय बता दीजिए। पति का व्यवहार और दिनचर्या भिन्न होती है, इसलिए पति के लिए कोई सरल उपाय बताइये।

दो०- नारी हृदय निर्मल अति तहँ प्रकृति करइ निवास।
सहजहिं नारी प्रसन्न भए जो पति करहिं भल बास ॥ ४५ ॥

व्याख्या - नारी का हृदय बहुत निर्मल होता है, जिसमें समस्त प्रकृति निवास करती है। अगर पति अपनी पत्नी से निश्छल प्रेम करता है, तो नारी सहज में ही प्रसन्न हो जाती है।

पति हेतु कहुँ किछु उपदेसा। अनुसरत मिटहिं गृह क्लेसा ॥
गारी न देइ भूलि ससुरारि। कबहुँ न प्रसंसहि पर नारी ॥
व्याख्या - हे वत्स ! अब पति के कल्याण के लिए कुछ उपदेश कहता हूँ, जिनका पालन करने से गृह कलह मिट जाता है। ससुराल पक्ष को भूल कर के भी

गाली नहीं देनी चाहिए तथा पत्नी के सामने कभी भी पराई स्त्री के सौन्दर्य की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए ।

गृह आवत सदा मुस्काई । भोजन वसन बहुरि सराई ॥
हास परिहास समय अनुकूला । बोलहिं नहिं बचन प्रतिकूला ॥

व्याख्या - घर में सदा मुस्कराते हुए आना चाहिए तथा पत्नी के पहने हुए कपड़ों और पत्नी द्वारा तैयार किए गए भोजन की हमेशा सराहना करनी चाहिए । समय की अनुकूलता के अनुसार पत्नी के साथ हँसी-मजाक करना चाहिए, परन्तु कभी भी पत्नी के प्रतिकूल वचन नहीं बोलने चाहिए ।

घर बाहिर पत्नी शील बखानी । देहिं उपहार आय अनुमानी ॥
आहार-विहार सम्भव संगा । नित्य करहिं मम कथा प्रसंगा ॥

व्याख्या - घर के बाहर हमेशा पत्नी की सज्जनता का ही बखान करना चाहिये तथा आय की क्षमता अनुसार कभी कभी पत्नी को भेंट देनी चाहिए । जहाँ तक सम्भव हो घूमना-फिरना और भोजन एक साथ करना चाहिए तथा नित्य समय निकाल कर मुझ परमात्मा की चर्चा करनी चाहिये ।

सहगामनि करहिं मंगल काजा । सब विधि रखहिं निज प्रिया लाजा ॥
नहिं सपनेउ पर नारी गमना । तिन्ह परिवार रहहि अमना ॥

व्याख्या - समस्त मंगल कार्यो में पत्नी को साथ रखना चाहिये तथा सब प्रकार से अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए । जो लोग सपने में भी पराई स्त्री का चिन्तन नहीं करते हैं, उनके परिवारों में सदा ही शान्ति बनी रहती है।

दो० -नित उठि गुरु सुमरहिं पति-पत्नी करहिं मंगल काज ।
तिन दम्पति हियँ में बसहुँ सब विधि रखहउँ लाज ॥ ४६ ॥

व्याख्या - जो पति-पत्नी सुबह उठकर गुरु का स्मरण करके मंगल कार्यो में लगते हैं, ऐसे पति-पत्नियों के हृदय में मैं स्वयं निवास करता हूँ और सब प्रकार से उनकी रक्षा करता हूँ ।

धन्य प्रभु कीन्ह मोहिं पर दाया । अब कहउ गुरु मिलन उपाया ॥
कोह गुरु काह गुरु शक्ति मरमा । काह विधि पालन गुरु धरमा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपने मुझ पर दया की है, इसलिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ । अब कृपा करके गुरु मिलने का उपाय बता दीजिए । कौन गुरु होता है और गुरु का रहस्य क्या होता है तथा गुरु धर्म के पालन करने की विधि क्या है?

सुत साधक गुरु अति हितकारी । दिखावहिं राह समय अनुसारी ॥
साधक गुरु अन्तः गुरु जगाई । ताते सहज गुरु मूल मिलाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! साधक गुरु बहुत हितकारी होते हैं, जो समय की आवश्यकता के अनुसार शिष्य को रास्ता दिखाते हैं । साधक गुरु अन्तः करण में स्थित गुरु को जागृत कर देते हैं, जिससे सरलता से ही मूल गुरु अर्थात मुझ परमात्मा से मिलन हो जाता है ।

जेहिं जनु करहिं गुरु सम्माना । तिन्हँ हियँ सदा उपजहिं ग्याना ॥
गुरु आसीस सहज फलदाई । धन्य जे जनु गुरु शरण आई ॥

व्याख्या - जो लोग गुरु का सम्मान करते हैं, उनके हृदय में सहज में ही ज्ञान पैदा हो जाता है । गुरु का आशीर्वाद सहज में फल देने वाला होता है अतः वे लोग धन्य हैं, जो गुरु की शरण में आते हैं ।

सावधान सुत सुनु मम बाता । बहुरि मिलहिं गुरु जग त्राता ॥
देवहहिं आसीस जोरहिं हुण्डी । कलियुग गुरु बहु पाखण्डी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम सावधान होकर मेरी बात सुनो । संसार में जगत को पार कराने वाले तथाकथित गुरु बहुत मिलते हैं, जो धन इकट्ठा करने के लिए आशीर्वाद देते फिरते हैं । कलियुग में ऐसे पाखण्डी गुरु बहुत होते हैं ।

दो०- भेष जति घरि जग गुरु बनहिं बुद्धि मन चंचल वाचाल ।
त्यागी कहावहिं आसक्ति घनी कपटी कुटिल ग्यान कंगाल ॥ ४७॥

व्याख्या - पाखण्डी लोग साधु का भेष धारण करके गुरु बन बैठते हैं, हालांकि उनकी बुद्धि चंचल और मन वाचाल होता है और मन में बहुत आसक्ति होती है, फिर भी अपने को त्यागी कहलवाते हैं । ऐसे पाखण्डी गुरु कपटी, कुटिल और ज्ञान से कंगाल होते हैं ।

जग चरचा करहिं दिनु राती । बोलहिं मधुर ठकुर सुहाति ॥
लम्बा तिलक मधुरम बाणी । दगाबाज गुरु इहँ निसाणी ॥

व्याख्या - जो रात-दिन संसार की चर्चा करते हैं और मीठा व मन को लुभाने वाला बोलते हैं तथा लम्बा तिलक लगा कर मीठी मीठी बातें करते हैं । ये सब लक्षण पाखण्डी गुरु की पहचान होते हैं ।

कर्मकाण्ड सुझावहिं बहु भाँती । निज पूजा करावहिं बनि आराती ॥
निज अंध शिष्य महाअन्ध बनाई । उभय नरक महँ जाइ पराई ॥

व्याख्या - पाखण्डी गुरु बहुत प्रकार के कर्मकाण्ड सुझाते हैं तथा स्वयं दुःख हर्ता बन कर स्वयं की पूजा करवाते हैं । स्वयं तो अन्धे होते ही हैं, शिष्य को और भी अन्धा बना देते हैं । जिससे गुरु-शिष्य दोनों चिन्ता रूपी नरक में पड़ जाते हैं ।

निज पंथ उलझहिं मूढ़ मति । करम कुटिल कहावहिं जति ॥
जुगति खोजहिं हेतु धन हरणा । धिक जीवन ताते भल मरणा ॥

व्याख्या - पाखण्डी गुरु पंथवादिता में उलझ जाते हैं तथा इनके कर्म कुटिल होते हैं, परन्तु समाज में साधु के रूप में ही जाने जाते हैं । ऐसे लोग दूसरों के धन को हरण करने का उपाय खोजते रहते हैं । ऐसे लोगों के जीवन पर धिक्कार है, बल्कि इससे तो मरना ही अच्छा है।

करहिं करम सकल सदोषा । मम ऊपर रखहिं न भरोसा ॥
निज करम भोगहिं बहु कष्टा । देवहहिं दोष मोहि नकटा ॥

व्याख्या - जो मुझ परमात्मा पर भरोसा नहीं करते हैं, उनके समस्त कर्म दोषयुक्त होते हैं और स्वयं के कर्मो के अनुसार संसार में कष्ट भोगते रहते हैं तथा ऐसे बेशर्म लोग मुझे व्यर्थ में दोष देते रहते हैं ।

दो०- सहज दयाल निर्मल मन निसि दिवस करहिं ध्यान ।
मम रत जग बिरत सदा तिन्ह सच्चा गुरु जान ॥ ४८ ॥

व्याख्या - जो सहज में दयालु और निर्मल मन वाले होते हैं तथा रात-दिन मेरा ही ध्यान करते रहते हैं और सदा मुझ परमा त्मा से अनुराग रखते हैं तथा संसार से विरक्त रहते हैं । वे लोग सच्चे साधक गुरु होते हैं ।

गृहस्थ चाहि धरहिं भेष जति । सतगुरु पहिचान निर्मल मति ॥
जाति-पांति मानहिं नहिं पंथा । करहिं सेवक संशय अंता ॥

व्याख्या - सच्चे गुरु की पहचान बुद्धि की निर्मलता ही होती है, चाहे वह गृहस्थ हो या फिर भेष धारी साधु हो । सच्चा गुरु जाति-पाति और पंथों के बन्धन को नहीं मानता है । वह हमेशा अपने सेवक केसंशयों को मिटाने का प्रयास करता रहता है।

श्रद्धा अनुरूप भेंट स्वीकारा । सेवक दुःख करहिं अंगीकारा ॥
डाटहिं सेवक अवसर आई । नीति धरम सदा पाठ पढ़ाई ॥

व्याख्या - सच्चा गुरु सेवक की श्रद्धा अनुरूप भेंट स्वीकार करता है और सेवक के दुःखों को स्वयं भोगने का प्रयास करता है । अवसर आने पर सेवक को ताड़ना देता है तथा नीति और धर्म की शिक्षा देता है ।

सेवक हियँ ग्यान ज्योति जलाई । अन्तर गुरु जाइ प्रगटाई ॥
करहिं सेवक निजहिं समाना । सोइ गुरु सुत सच्चा करू जाना ॥

व्याख्या - शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाने पर ही हृदय स्थित अन्तः गुरु प्रगट होते हैं । जो साधक गुरु शिष्य को अपने समान बना लेता है, उसी साधक गुरु को सच्चा गुरु मानना चाहिये ।

अन्तर गुरु मोहि देइ मिलाई । ईश्वर अल्लाह नाम बहुताई ॥
सोई मम दर्शन मम अनुभुति । गुरु शिष्य तहँ अद्‌भुत प्रीति ॥

व्याख्या - अन्तः करण स्थित गुरु के प्रकट हो जाने पर मुझ परमात्मा से मिलन हो जाता है । मुझे ही ईश्वर, अल्लाह आदि बहुत से नामों से जाना जाता है । वह अवस्था ही मेरे दर्शन की होती है तथा उसी से मेरी अनुभूति होती है तथा उस अवस्था में गुरु और शिष्य में एक अद्‌भुत विश्वास पैदा हो जाता है ।

दो०- गुरु शिष्य भेद मिटहिं तहँ नहिं ग्यान अज्ञान मान अपमान ।
विगत वासना आनन्द उमंग सहज सपनेउ नहिं अभिमान ॥ ४९ ॥

व्याख्या - मेरी अनुभूति होने पर गुरु-शिष्य का भेद मिट जाता है और वहाँ ज्ञान-अज्ञान, मान-अपमान के भाव नहीं रह पाते हैं । उस अवस्था में सारी वासनाएँ मिट जाती हैं तथा आनन्द की लहर छा जाती है, जिससे मन सहज हो जाता है तथा सपने में भी अभिमान का भाव नहीं आ पाता है ।

कपटी गुरु तजइ नहिं दोषा । देइ न गाली करहिं नहिं रोषा ।
बिनु गुरु सुख संभव संसारा । पर मिलहिं न मम भगति अपारा ॥

व्याख्या - कपटी गुरु को छोड़ने का कोई दोष नहीं लगता है परन्तु कपटी गुरु को गाली नहीं देनी चाहिये और उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए । बिना गुरु के सांसारिक सुख प्राप्त होना संभव हो जाता है, परन्तु मेरी अपार भक्ति बिना गुरु के प्राप्त नहीं हो पाती है ।

जे जनु चाहहिं मम भगति अनूपा । उचित सेवहिं गुरु श्रद्धा अनुरूपा ॥
निर्मल मन करहिं सेवकाई । सत वचन मोहि लेहिं रिझाई ॥

व्याख्या - जो लोग मेरी अनुपम भक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, उनको चाहिए कि श्रद्धा के अनुरूप गुरु की सेवा करें । जो लोग मन को निर्मल करके गुरु की सेवा करते हैं, वे मुझ परमात्मा को प्रसन्न कर लेते हैं । यह सत्य वचन है ।

धन्य गृहस्थ गुरु शरण आई । पुरुषार्थ चारि सहज मिलाई ॥
सत गुरु वचन वैद्य समाना । पालहिं पथ्य मिटइ अज्ञाना ॥

व्याख्या - वे गृहस्थ धन्य हो जाते हैं, जो सच्चे गुरु की शरण में आ जाते हैं तथा उनको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सहज में ही प्राप्ति हो जाती है । सतगुरु के वचन वैद्य का काम करते हैं अतः जो गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, उनका अज्ञान मिट जाता है ।

जद्यपि गुरु स्तुति जग नाना । नहिं कोउ गुरु स्तोत्र समाना ॥
सोई कहउँ सुत तोहि सुनाई । गावत हियँ ग्यान उमगाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! संसार में गुरु को प्रसन्न करने की बहुत सी स्तुतियाँ हैं परन्तु गुरु स्तोत्र के समान कोई नहीं है । अतः मैं तुम्हें गुरु स्तोत्र सुनाता हूँ, जिसके सुनने से हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है ।

गुरु स्तोत्रं

ॐ कृपानिधानम् अज्ञान निवारणम् सृष्टि संचालकम् ।
ब्रह्मरूपं शिवरूपं विष्णुरूपं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १ ॥

व्याख्या - हे कृपा के धाम ! अज्ञान का नाश करने वाले, समस्त सृष्टि का संचालन करने वाले ब्रह्मा, शिव और विष्णु रूप गुरुदेव, आपको नमस्कार! नमस्कार!

ॐ सर्वदाताम् आपदाहर्तारम् ज्ञानरूपम् सर्व व्यापकम् ।
मुक्तिमूलं ध्यानमूलं भक्तिमूलं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ २ ॥

व्याख्या -सब कुछ देने वाले, समस्त विपदाओं का हरण करने वाले ज्ञान स्वरूप, सर्वत्र व्यापक, मुक्ति, ध्यान और भक्ति के मूल गुरुदेव, आपको नमस्कार! नमस्कार!

ॐ दयामूलं योगीराजं त्यागमूर्तिं संकट निवारणम् ।
त्राहिमाम गुरुदेव त्राहिमाम् गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ३ ॥

व्याख्या - हे दया के मूल, योगी राज, त्याग स्वरुप, संकटों को दूर करने वाले, गुरुदेव, मेरा उद्धार कीजिए, मेरा उद्धार कीजिए । मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ।

ॐ तत्ववेत्तां भक्तिदातां शिष्य तारणं पाप हारणं ।
मनुष्यरूपं परब्रह्म गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ४ ॥

व्याख्या - हे तत्व ज्ञाता, भक्ति देने वाले, शिष्य को तारने वाले, पापों को दूर करने वाले व मनुष्य रूप में ब्रह्म स्वरूप गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ मातृ रूपं पितृ रूपं सर्व पाप विनाशकम् ।
देव रूपं सत गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ५ ॥

व्याख्या - माता व पिता के रूप में, समस्त पापों का नाश करने वाले, देव स्वरूप गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ भक्तवत्सलं पथ दृष्टां निर्वाणदायकं ।
शिष्य कर्मफल नाशकं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ६ ॥

व्याख्या - हे भक्त वत्सल, राह दिखाने वाले, निर्वाण देने वाले तथा शिष्य को कर्म फल के बन्धन से मुक्ति कराने वाले गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ क्रियामूलं प्रकाशरूपं शक्तिदायकं ।
सूर्यरूपं तेजपुँजं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ७ ॥

व्याख्या - हे क्रिया के मूल, प्रकाश स्वरूप, शक्ति देने वाले, सूर्य के समान तेजपुञ्ज से युक्त गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ **भय हर्तारं सर्व सिद्धि दायकं शिष्य हृदय वसन्तं ।**
मनुष्य रुपं गुरूदेव नमस्तुभ्यं गुरूदेव नमस्तुभ्यं ॥ ८ ॥

व्याख्या - हे भय का हरण करने वाले, समस्त सिद्धियों को देने वाले और शिष्य के हृदय में ही निवास करने वाले, मनुष्य रूप में गुरुदेव, आपको नमस्कार ! गुरुदेव आपको नमस्कार !

ॐ **दिव्यरूपं विशुद्धज्ञानं माया निवारकम् ।**
गुरु कृपालं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ९ ॥

व्याख्या - दिव्य रुप में दिखाई देने वाले, विशुद्ध ज्ञान स्वरूप माया का निवारण करने वाले, हे कृपालु गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार!

ॐ **सर्वस्वं सर्वरूपं सर्वत्रं शिष्य ज्ञान दायकं ।**
निर्गुण रूपं सगुण रूपं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १० ॥

व्याख्या - सर्वस्व, सर्वरूप व सब जगह शिष्य को ज्ञान देने वाले, गुणों से निर्लिप्त व सहज गुण स्वरूप गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार!

ॐ **शिष्य रक्षकं तारणं हितकारकं शिष्यपूजितं ।**
सतगुरु रूपं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ ११ ॥

व्याख्या - शिष्य की रक्षा करने वाले व भव सागर पार कराने वाले, हितकारी तथा सदा शिष्य द्वारा पूजित, सत्गुरुदेव, आपको नमस्कार! आपको नमस्कार !

ॐ **प्रकटं अप्रकटं सूक्ष्मं विराटं सत्यम् ।**
कल्याणकारकं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १२ ॥

व्याख्या - प्रकट व अप्रकट, सूक्ष्म व विराट रूप, सत्य स्वरूप, कल्याण करने वाले गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ **कर्मलेख विनाशकं सर्वभूतं सनातनं ।**
प्रकाशरूपं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १३ ॥

व्याख्या - कर्म के बन्धन को काटने वाले, सर्व भूतों में व्यापक, सनातन, प्रकाश स्वरूप गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ **चंदनरूपं शीतलं पाप नाशकं अग्नि रुपं ।**
ज्ञान दायकं वृहस्पतिं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १४ ॥

व्याख्या - चन्दन की तरह शीतल, पाप को जलाने के लिए अग्नि रूप, ज्ञान देने में वृहस्पति के समान, गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार!

ॐ लोभं मदमत्सरं मायामोहं विनाशकं ।
मम पाप हरो गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १५ ॥

व्याख्या - लोभ, मद, मत्सर, माया व मोहादि का विनाश करने वाले, हे गुरुदेव ! मेरे पापों का हरण कर लो । गुरुदेव, आपको नमस्कार ! नमस्कार!

ॐ गुरु चरणामृतं अमृततुल्यं मुक्तिदायकं ।
सर्वतीर्थं दर्शनलाभं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १६ ॥

व्याख्या - गुरु चरणामृत अमृत के समान होता है व मुक्ति देने वाला होता है। आपके दर्शनों का लाभ सब तीर्थो के समान होता है, अतः हे गुरुदेव आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ गुरुमन्त्रं अतुल्यम् जपतपं योगाधारं ।
शिव रूपं गुरुदेव नमस्तुभ्यं गुरुदेव नमस्तुभ्यं ॥ १७ ॥

व्याख्या - गुरुमन्त्र के समान दूसरा कोई मन्त्र नहीं होता है तथा गुरु मन्त्र जप, तप व योग साधना का आधार होता है । शिव स्वरूप गुरुदेव, आपको नमस्कार! नमस्कार !

ॐ प्रसीद गुरुदेवं प्रसीद गुरुदेवं प्रसीद गुरुदेवं ।
नमस्तुभ्यं गुरुदेव नमस्तुभ्यं गुरुदेव नमस्तुभ्यं ॥ १८ ॥

व्याख्या - हे गुरुदेव ! आप प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये आपको नमस्कार ! हे गुरुदेव ! आपको नमस्कार ! नमस्कार !

ॐ गुरु कृपा मोक्षाधारं इदम सत्यम् इदम सत्यम् ।
गुरुशरणं गुरुशरणं गुरुदेव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं ॥ १९ ॥

व्याख्या -गुरु कृपा ही मोक्ष का आधार होती है, यह सत्य है, यह सत्य है। हे गुरुदेव! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आपको नमस्कार! हे गुरुदेव! आपको नमस्कार!

गुरु स्त्रोतं पठन्ति जे नरा तरन्ति से भव सागराः ।
ग्यान अभिजायति नाश्यति कल्मषां च प्राप्नोति आनन्दाः ॥ २० ॥

व्याख्या - जो लोग गुरु स्त्रोत का पाठ करते हैं, वे भवसागर को पार कर जाते हैं तथा उनके हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है तथा विकार मिट जाते हैं और आनन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

गुरु मन्त्र जो नित करहिं जापा । मन होहिं बस अपनेउ आपा ॥
मन संतोष करम निष्कामा । प्रगट प्रभाव इहँ गुरु नामा ॥

व्याख्या - गुरु मन्त्र का जो नित्य जाप करते हैं, उनका मन स्वतः ही अपने आप वश में हो जाता है । गुरु मन्त्र के जप का प्रकट प्रभाव यह होता है कि मन में संतोष आ

जाता है और कर्म में निष्कामता आ जाती है ।

दम्पति मिलि नित करहिं पूजा । पूरण भरोस आस नहिं दूजा ॥
तिन्ह हियँ मैं निज प्रगटाउँ । सहजहिं भव सागर तराउँ ॥

व्याख्या - जो पति-पत्नी पूर्ण विश्वास के साथ नित्य पूजा करते हैं और मन में और किसी की अपेक्षा नहीं रखते हैं, उनके हृदय में मैं स्वयं प्रकट हो जाता हूँ और सहज में ही उनको भव सागर से पार लगा देता हूँ ।

राग द्वेष लोभ मदादि नसाई । सद्‌गुण सकल हियँ उमगाई ॥
बनहिं सहज सब परिवारा । मिटहिं समाज सकल विकारा ॥

व्याख्या - उस अवस्था में राग, द्वेष, लोभ, मद आदि नकारात्मक भाव मिट जाते हैं और जीव के हृदय में समस्त सद्‌गुण आने लग जाते हैं । जिससे परिवार सहज हो जाता है और परिवार की सहजता से समाज के विकार मिट जाते हैं।

धन्य नाथ मिटहिं मोर भरमा । देहउ आसीस होउँ निष्करमा॥
तोर चरण शरण अब चाउँ । धन्य नाथ पुनि पुनि सीस नवाउँ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं आपका बहुत आभारी हूँ कि आपकी कृपा से मेरे संशय मिट गए हैं । अब मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मैं निष्काम हो सकूँ । हे परमपिता ! मैं आपके चरणों में ही शरण चाहता हूँ । मैं आपका बहुत आभारी हूँ । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ।

दो० - तुम समान दाता तुम्हीं तुम सम नहिं कोउ दयाल ।
शरण अब तिहारी परो मोहि पर कृपा करहु कृपाल ॥ ५० ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके समान दाता तो आप ही हैं और आपके समान दया करने वाला भी कोई दूसरा नहीं है । अतः हे कृपालु ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझ पर कृपा करो ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण अष्टम पड़ाव ॥

दो०- सहज बनि सदा जग रहउँ मन मोर होवइ निष्काम ।
द्रष्टा बनि जग देख सकूँ इहँ वर देवउ कृपा धाम ॥ ५१ ॥

व्याख्या - मैं सदा सहज होकर संसार में रह सकूँ और मेरा मन निष्काम हो जाए तथा समस्त संसार को द्रष्टा बन कर देख सकूँ । हे कृपा के धाम! मुझे ऐसा वरदान दीजिए।

तुम रहवउ मोर शरणाई । मन वांछित सकल मिलाई ॥

व्याख्या - तुम मेरी शरण में रहो । तुम्हें समस्त मनोवांछित फल प्राप्त होंगे।

भलि भांति समाज दीन्ह समुझाई । धन्य-धन्य प्रभु धन्य गुसाई ।
अर्थ काह होव उचित समाधाना । सोइ कहउ समुझाइ कृपा निधाना ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपने समाज व्यवस्था को अच्छी तरह समझा दिया है । इसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ । हे प्रभु ! अर्थ व्यवस्था कैसी होनी चाहिए । यह मुझे कृपा करके समझा कर कहिए ।

अरथ बिनु बिरथ सब संसारा । अरथ ही जीवन जीव सहारा ॥
सुख वैभव सब वित्त अधीना । नहिं कोउ सुख वित्त विहिना ॥

व्याख्या - बिना धन के संसार व्यर्थ लगता है तथा जीव का जीवन भी बिना धन के चल नहीं पाता है । सुख, वैभव सब धन के अधीन होता है तथा धन ही जीव का सहारा होता है ।

गरीबी-अमीरी उभय दुःखदाई । ऋषि मुनि जन सब इहँ गाई ॥
सो काह उचित मारग स्वामी । कहहउ समुझाइ अन्तरयामी ॥

व्याख्या - ऋषि-मुनि सभी कहते हैं कि गरीबी और अमीरी दोनों दुःख देने वाली होती हैं । ऐसी स्थिति में कौन सा उचित मार्ग हो सकता है ? हे अन्तर्यामी ! मुझे समझा कर कहिये ।

धनहीन दरिद्र रहे नहिं कोई । कहउ समुझाई जुगति सोई ॥
तुम दयाल जगत हितकारी । नीति अरथ कहउ विचारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! कोई भी गरीब नहीं रहे, ऐसा उपाय समझा कर कहिये। हे नाथ ! आप दयालु और जगत का हित करने वाले हैं, इसलिए अर्थ नीति विचार करके कहिये ।

दो० - सर्व जन हित सध सकै समता आवै सकल समाज ।
चहुँदिसि मंगलमय होउ कोउ नहिं रहे जग मुहताज ॥ ५२ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! सब लोगों के लिए कल्याणकारी हो सके तथा समाज में समानता की भावना आ जाए । चारों तरफ मंगल ही मंगल हो तथा समाज का कोई भी वर्ग वंचित न रहे ।

सुत कहउँ अर्थ नीति बखानी । सब विधि होइब जन कल्यानी ॥
संग्रह त्याग उभय विकारा । सब काल हय अरथ दरकारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुमको अर्थ नीति समझा कर कहता हूँ, जो सब प्रकार से लोक कल्याण करने वाली होगी । संग्रह और त्याग दोनों ही विकार युक्त हैं क्योंकि सभी समय जीवन जीने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है ।

प्रकृति करइ न संग्रह त्यागा । सकल हेतु तहँ सकल सुभागा ॥
अद्‌भुत विधि प्रकृति समाई । जलादि पावहिं चराचर सबाई ॥

व्याख्या - प्रकृति कभी न तो संग्रह करती है और न ही त्याग करती है । प्रकृति तो

सबके लिए होती है और प्रकृति में सबका भाग होता है। प्रकृति ने अद्भुत विधान बनाया है, जिसके कारण जल, वायु आदि समस्त जीवों को प्राप्त होता रहता है।

प्रकृति कबहुँ न करहिं भेदा। मनुज करतूत हेतु जग खेदा ॥
करहिं संग्रह नहिं दरकारा। सो सब जानहउ मन विकारा ॥

व्याख्या - प्रकृति कभी भी भेद-भाव नहीं करती है। संसार में जो कष्ट होते हैं, वे सब तो मनुष्य की करतूतों के कारण होते हैं। जो आवश्यकता नहीं होने पर भी संग्रह करते हैं, वह सब मन के विकारों के कारण होता है।

क्षमतानुसार करहिं कमाई। नहिं दोष जद्यपि भोग उड़ाई ॥
करि मेहनत संग्रह करहिं। तेहि जनु पाप घोर लहहिं ॥

व्याख्या - जो अपनी क्षमता के अनुसार कमाई करते हैं, उसका दोष नहीं होता है, चाहे कमाया हुआ सब भोग करने में उड़ावें। परन्तु मेहनत करके जो अनावश्यक संग्रह करते हैं, वे घोर पाप करते हैं।

दो० - प्रकृति धर्म अर्थ मूल सब तहँ सहजता सुहाय।
सहज बनि जे जनु रहइ चहुँदिसि अनुकूलता छाय ॥ ५३ ॥

व्याख्या - प्रकृति ही धर्म और अर्थ का मूल होती है, जिसमें सहजता समाई हुई होती है। इसलिए जो सहज बनकर रहते हैं, उनके चारों तरफ अनुकूलता छायी रहती है।

सहयोग प्रेम अरु प्रीत अपारा। इहँ सब प्रकृति धर्म आधारा ॥
संग्रह सदाई धरम विरोधी। उपजावइ मोहादि भाव क्रोधी ॥

व्याख्या - सहयोग, प्रेम और अपार प्रीत ही प्रकृति के धर्म का आधार होते हैं। संग्रह करने का भाव तो हमेशा प्रकृति के विरुद्ध होता है, जिससे काम, क्रोध, मोह आदि के भाव पैदा हो जाते हैं।

अरथ भल जो पर उपकारी। नीति वही जेहि धरम आधारी ॥
स्तुति भल जोइ मोहि रिझाए। गुरु भल सोइ परमारथ सिखाए ॥

व्याख्या - धन तो वही अच्छा होता है, जो दूसरों के उपकार में लगाया जाता है तथा नीति वही अच्छी होती है, जिसका आधार धर्म होता है। वही स्तुति अच्छी होती है, जिससे मैं (परमात्मा) प्रसन्न होता हूँ तथा गुरु सच्चा वही होता है, जो परमार्थ सिखाता है।

जुगति भल जो कारज सुधारे। विद्या भल वोहि जो मोह निवारे ॥
नृप भल वोही जो प्रजा हितकारी। सेवक भल सेवा भाव अपारी ॥

व्याख्या - युक्ति वही अच्छी होती है, जिससे कार्य सुधर जाए तथा विद्या वही

अच्छी होती है, जो मोह को दूर कर देती है। राजा प्रजा का हित करने वाला अच्छा होता है तथा सेवक वही अच्छा होता है, जो अपार सेवा भावी हो।

मित्र भल जो दुःख साथ निभाई। प्रीति भल तहँ स्वारथ नांई॥
मातु सोइ जेहि ममता दिखाई। शास्त्र भल जो भरम मिटाई॥

व्याख्या - मित्र वही अच्छा होता है, जो दुःख के समय साथ निभाता है तथा प्रीत वही अच्छी होती है, जो बिना स्वार्थ के होती है। माता वही होती है, जो ममता दिखाती है तथा शास्त्र वही अच्छा होता है, जो भ्रम को मिटा देता है।

दो०- वाणी सदा मधुर भली भोजन भला शाकाहार।
आश्रम गृहस्थ का भला देवहिं फल पदारथ चार॥ ५४॥

व्याख्या - वाणी हमेशा मधुर अच्छी होती है तथा भोजन शाकाहारी अच्छा होता है। गृहस्थ आश्रम ही सबसे अच्छा होता है, जो धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों को देने वाला होता है।

ग्यान भल जो आत्म प्रकाशी। सन्त वही जो जगत उदासी॥
पत्नी भल पति आग्याकारी। पति भल एक नारी व्रत धारी॥

व्याख्या - ज्ञान वो ही अच्छा होता है, जो आत्मा को प्रकाशित कर देता है तथा सन्त वही होता है, जो जगत से उदास रहता है। पति की आज्ञा मानने वाली पत्नी अच्छी होती है तथा एक नारी व्रत धारी पति अच्छा होता है।

यश भल जेहि प्रेरणा दायक। औषध भल जो रोग निवारक॥
इच्छा यश रखहिं नहिं मन में। रहवहिं सहज सदा तन में॥

व्याख्या - यश वो ही अच्छा होता है, जो दूसरों को प्रेरणा देने वाला हो। औषधि वही अच्छी होती है, जो रोग का नाश कर देती है। यश की इच्छा कभी भी मन में नहीं रखनी चाहिए तथा सदा सहज रहना चाहिए।

आय अधिक जो निज दरकारा। देवहउ दान पर उपकारा॥
प्रति वेशी रखहहिं सदा ख्याला। अरथ हेतु नहीं होव बेहाला॥

व्याख्या - अगर जरूरत से ज्यादा आय हो, तो परोपकार के लिए दान देना चाहिये तथा अपने पड़ोसी का सदा ख्याल रखना चाहिये कि बिना पैसे के कहीं पड़ोसी दुःखी नहीं हो।

प्रतिवेशी जो रहवहिं भूखा। नहिं इहँ सम जग कोउ दूखा॥
जो रहहि पड़ोसी बिनु आहारी। सो धनी घोर नरक अधिकारी॥

व्याख्या - अगर पड़ोसी भूखा रहता है, तो इसके समान संसार में दूसरा कोई

दु:ख नहीं होता है । अगर पड़ोसी को भोजन नहीं मिल पाता है, तो वह धनी व्यक्ति घोर नरक को प्राप्त करता है ।

दो०- अरथ सहाज्य दीन भली जो धनी करे मन हरषाय ।
प्रति वेशी प्रसन्न रहे निज घर प्रसन्नता छाय ॥ ५५ ॥

व्याख्या - अगर धनवान हर्षित मन से आर्थिक सहायता करते हैं, तो गरीबों को आर्थिक सहायता देना सदा अच्छा होता है । आर्थिक सहायता से पड़ोसी भी प्रसन्न हो जाता है और परिणाम स्वरूप धनी व्यक्ति के घर में भी प्रसन्नता आ जाती है।

बिनु नीति अरथ बिरथा भाई । बिनु धरम न नीति सुहाई ॥
मन पावन सोई धर्म अधारा । मरम इहँ सब जन पुकारा ॥

व्याख्या - बिना नीति के अर्थ व्यर्थ होता है और बिना धर्म के नीति का पालन नहीं हो सकता है । मन की पवित्रता ही धर्म का आधार होती है, इस रहस्य को सब लोग कहते हैं ।

मन पावन समता उपजाई । समता सो साम्यवाद कहाई ॥
साम्यवाद सोई प्रकृति सुभाउ । मरम इहँ देवहउँ बताउ ॥

व्याख्या - मन की पवित्रता से समता पैदा हो जाती है और समता ही साम्यवाद कहलाती है । साम्यवाद ही प्रकृति का सहज स्वभाव होता है । मैं यह रहस्य तुमको बता देता हूँ ।

समता पालहहिं बिरला कोई । बिनु ग्यान संभव नहिं सोई ॥
प्रकृति सकल जग अर्थ मूला । होहिं अनुकूल मिटै सब शूला ॥

व्याख्या - समता का पालन कोई बिरला ही कर पाता है क्योंकि बिना ज्ञान के समता की प्राप्ति नहीं हो पाती है । प्रकृति ही संसार में अर्थ का मूल होती है, इसलिए प्रकृति अनुकूल होने पर समस्त कष्ट मिट जाते हैं ।

प्रकृति अनुकूल विधि बताउँ । सुगम सरल सब राह दिखाउँ ॥
करहिं स्तुति जेहि मन लाई । तिन्ह प्रकृति अनुकूल सदाई ॥

व्याख्या - मैं प्रकृति को अनुकूल करने की विधि बताता हूँ तथा सबके लिए सुगम व सरल रास्ता बताता हूँ । जो इस स्तुति को मन लगाकर करते हैं, उनके प्रकृति हमेशा अनुकूल हो जाती है ।

सुनु प्रकृति स्तुति ध्यान लगाई । करहिं नित्य मन वाँछित पाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब प्रकृति की स्तुति को ध्यान लगा कर सुनिए। जो इसे नित्य करते हैं, उनको मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं ।

प्रकृति स्तुति

दो०- सकल पितु मातु तुम प्रभु प्रेरणा आप अपार ।
शरण तिहारी आ गए कृपा करहु मातु हमार ॥ ५६ ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! आप समस्त जगत की माता-पिता हैं तथा आप ही परम पिता की प्रेरणा हैं। हे माता ! हम आपकी शरण में आ गए हैं, इसलिए हम पर कृपा कीजिए ।

सकल चराचर तुम धारी। जय हो मातु प्रकृति तुम्हारी ॥
तुम विधि वधु जग महतारी। मातु सब जग तुम पालन हारी ॥

व्याख्या - हे माता ! आप समस्त चराचर जगत को धारण किये हुए हैं। हे प्रकृति माता ! आप की जय हो । हे माता ! आप परमपिता की अर्द्धांगिनी हैं, इसलिए जगत की माता हैं । हे माता ! आप ही समस्त जगत का पालन करने वाली हैं ।

भाव मूल भाव बन्धनताई। मातु इहँ लीला अद्भुत बनाई ॥
सब विधि अगम्य प्रभुता तोरी। केहि विधि गाउँ मति अति भोरी ॥

व्याख्या - हे माता ! आप ही भावों की मूल हैं और भाव ही आपका बन्धन हैं। यह अद्भुत लीला आपने ही बनायी है । हे माता ! आपकी महिमा सब प्रकार से अगम्य है । मेरी बुद्धि तो भोली है, मैं आपकी महिमा को कैसे गा सकता हूँ?

सो सब तजि आउँ शरण तोरी। तुम अगम अगोचर मातु मोरी ॥
शरण तुम्हार सदा सुख दाई। धन्य जीव जो आवहि शरणाई ॥

व्याख्या - इसलिए माता मैं आपकी शरण में आता हूँ । हे माता ! आप तो अगम्य अगोचर हैं । आपकी शरण हमेशा सुख देने वाली होती है, इसलिए वे जीव धन्य हैं, जो आपकी शरण में आते हैं ।

मन्द मन्द सुगन्ध ब्यारी। हय प्रसन्नता मातु तुम्हारी ॥
जल वर्षा अनुकम्पा हय सोई। ऋतु सकल कफ पित्त वात होई ॥

व्याख्या - मन्द मन्द सुगन्धित हवा ही आपकी प्रसन्नता है । जल की वर्षा ही आपकी कृपा होती है । ऋतुएँ (सर्दी, गर्मी, वर्षा) ही आपके कफ, पित व वात हैं।

जय माता जय ब्रह्माण्ड धारणी। जय भव कारण जय भव तारणी ॥
जय जग जननी जय जगदम्बा। जय जगत सरूपा जग अवलम्बा ॥

व्याख्या - हे माता ! आपकी जय हो, हे ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली! आपकी जय हो । हे भाव रूपी भव सागर की कारण व भाव रूपी भवसागर को पार कराने वाली माता ! आपकी जय हो । हे जगत की माता! आपकी जय हो । हे जगत

स्वरूप! हे जगत की आधार माता ! आपकी जय हो ।

मातु करहउ क्षमा अपराधा । हरहउ मोरी सकल ब्याधा ॥
सकल सृष्टि रहहि अनुकूला । वर देहु मातु आनन्द मूला ॥

व्याख्या - हे माता ! आप मेरे अपराध क्षमा कर दीजिए और मेरी समस्त बाधाओं को दूर कर दीजिए । हे आनन्द की मूल माता ! आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे समस्त सृष्टि मेरे अनुकूल रहे ।

सकल भाव तुम उपजावन हारी । सो करहु मातु सद् बुद्धि हमारी ॥
मातु पितु हम करहिं सेवकाई । ऐसी शक्ति देवउ मातु सदाई ॥

व्याख्या - हे माता ! आप समस्त भावों को पैदा करने वाली हैं, इसलिए हमारी बुद्धि को सात्विक कर दीजिए । हे माता ! हम सदा माता-पिता की सेवा कर सकें, ऐसी शक्ति दीजिए ।

गुरु प्रति रखहिं हम सन्माना । इहँ देहु मातु हमहिं वरदाना ॥
मन नहिं आव कुटिल विचारा । मिल जुल रहवहिं सब संसारा ॥

व्याख्या- हे माता ! हम गुरु के प्रति सम्मान भाव रखें, ऐसा हमें वरदान दीजिए। हमारे मन में कुटिल विचार नहीं आएँ तथा संसार में सब से मिल-जुल कर रहें ।

बन्धु कुटुम्ब प्रतिवेशी परिवारा । करहिं सकल सद् व्यवहारा ॥
दया क्षमादि आवहिं हियँ हमरे । निज पर भूलहिं भाव सबरे ॥

व्याख्या - हे माता ! समस्त मित्र गण, कुटुम्ब के लोग व पड़ोसियों के परिवार आपस में सदा अच्छा व्यवहार करें । हे माता ! हमारे हृदय में दया व क्षमा आदि सद्‌गुणों के भाव आ जाएँ तथा हम अपने-पराये के भावों को भूल जाएँ ।

ग्रह नक्षत्र सब देवउ आदेशा । रहवहिं अनुकूल सो हमेशा ॥
धन दौलत करहिं नहिं लोभा । काम क्रोधादि करै न मन छोभा ॥

व्याख्या - हे माता ! ग्रह-नक्षत्रों को आप आदेश दे दीजिए, जिससे ये हमारे अनुकूल रहें । हम धन-दौलत का लोभ नहीं करें तथा काम, क्रोध आदि भाव हमारे मन को क्षुब्ध न कर सकें ।

कर्तापन आवइ नहिं मन भावा । सकहिं रह सदा सहज सुभावा ॥
देवहउ धनादि सद्‌गुण सारे । हरहउ मातु संकट हमारे ॥

व्याख्या - हे माता ! हमारे मन में कर्तापन का भाव नहीं आए और हम सदा सहज बने रहें । हमें आप धन आदि सद्‌गुण प्रदान कीजिए और हमारे समस्त

संकटों को दूर कर दीजिए ।

सकल ब्रह्माण्ड करि अनुकूला । तोर बल मन मोर रहत फूला ॥
सकहउँ करि जन कल्याणा । सो देवहु मातु धन कोटि नाना ॥

व्याख्या - हे माता ! समस्त ब्रह्माण्ड को मेरे अनुकूल कर दीजिए, क्योंकि आपके बल पर ही मेरा मन फूला रहता है । हे माता ! मैं जन कल्याण कर सकूँ, इसलिए मुझे करोड़ों धन दीजिए ।

तू ही कर्म तू ही कर्म फल दायनी । देवहउ वैभव वर हे भामनी ॥
मातु तोर बाहिर किछु जग नाहिं । इहँ बूझहउँ अब मन माहिं ॥

व्याख्या - हे माता ! आप ही कर्म हैं और आप ही कर्म का फल देने वाली हैं, इसलिए मुझे अपार वैभव दीजिए । हे माता ! आप से बाहर जगत में कुछ भी नहीं है । अब यह मेरे मन ने अच्छी तरह समझ लिया है ।

अनन्त भाव अनन्त विधाना । अनन्त कारण अनन्त निधाना ॥
सतइच्छा पूरण हो मातु हमारी । सब विधि हम शरण तिहारी॥

व्याख्या - हे माता ! अनन्त भाव होते हैं और अनन्त विधान हैं तथा अनन्त कारण और अनन्त समाधान हैं । इसलिए हम सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में हैं, जिससे हमारी समस्त सात्विक इच्छाएँ पूर्ण हों ।

मातु तुम होवउ अब अनुकूला । मिटावउ त्रिविध जग सब शूला ॥
हमरी रखहउ निरोगी काया । ब्यापहिं नहिं त्रिगुणमय माया ॥

व्याख्या - हे प्रकृति माता ! अब आप अनुकूल होइये तथा दैहिक, दैविक व भौतिक तापों को मिटा दीजिए । हे माता ! हमारा शरीर निरोग रहे तथा सत, रज व तमों गुण वाली माया हमें प्रभावित नहीं करे ।

रूप जय यश देवउ अपारा । तू ही सब विधि मोर सहारा ॥
सदा रहवहिं आनन्द उमंगा । तोर चरण रह प्रीति अभंगा ॥

व्याख्या - हे माता ! आप रूप, जय और अपार यश प्रदान कीजिए। हे माता! आप ही सब प्रकार से मेरा सहारा हैं । हे माता ! मेरे मन में आपके चरणों में अटूट प्रीत बनी रहे तथा मेरा मन हमेशा आनन्द मगन रहे ।

जो करहिं इहँ स्तुति पावन । पूरण करउ मातु मन भावन ॥
सब विधि करउ तिन्ह कल्याणा । रखउ मातु भगत सन्माना ॥

व्याख्या - जो इस पवित्र स्तुति को पढ़ते हैं, हे प्रकृति माता ! उनकी सब मनोकामना पूर्ण कर दीजिए और उनका सब प्रकार से कल्याण कर दो । हे माता ! अपने भक्तगणों का सम्मान रख दीजिए ।

दो०- सद्बुद्धि बनि हियँ बसहु, सौभाग्य देवहु मातु अपार ।
तन मन सब निरोग करो, तुम जननी जग करतार ॥ ५७ ॥

व्याख्या - हे माता ! आप सद्बुद्धि के रूप में हमारे हृदय में निवास करो और हमें अपार सौभाग्य प्रदान करो । हे माता ! हमारे तन व मन को निरोग कर दो क्योंकि आप ही जगत की माता हैं और आप ही जगत में सब कुछ करने वाली हैं ।

जेहि करहि स्तुति मन लाई । तिनु हियँ सहजता उमगाई ॥
काम क्रोध मद लोभादि अपारे । मिटहिं प्रकृति शरण सबारे ॥

व्याख्या - जो लोग मन लगाकर प्रकृति की स्तुति करते हैं, उनके हृदय में सहजता पैदा हो जाती है । प्रकृति की शरण में जाने पर काम, क्रोध, मद, लोभ आदि प्रबल भाव मिट जाते हैं ।

ग्रह नक्षत्र होवहिं अनुकूला । हियँ अंकुरहि समता मूला ॥
ज्यों ज्यों उगहि समता गाछा । त्यों त्यों होहिं आनन्द बाछा ॥

व्याख्या - प्रकृति की शरण में जाने पर ग्रह-नक्षत्र अनुकूल हो जाते हैं तथा हृदय में समता रुपी वृक्ष अंकुरित होने लग जाता है और ज्यों-ज्यों समता रूपी वृक्ष बढ़ने लगता है, त्यों-त्यों आनन्द रूपी बहार चलने लगती है ।

संग्रह त्याग हियँ समझाई । सहजहिं सहज सहजता आई ॥
बाढ़हिं दृढ़ता समरप भावा । एहि विधि जीव कृपा मोरी पावा ॥

व्याख्या - संग्रह और त्याग हृदय के अन्दर समझ में आने लग जाते हैं, जिससे बड़ी सरलता से जीव के अन्दर सहजता आ जाती है और समर्पण की भावना में दृढ़ता आ जाती है । इस प्रकार जीव को मेरी कृपा प्राप्त हो जाती है ।

धन्य देव केहि विधि करूँ आभारा । मन्द मति मैं अति मूढ़ ग्वाँरा ॥
शरण तुम्हार अति सुखदाई । समझा अब इहँ हृदय माई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप धन्य हैं, मैं तो मन्द बुद्धि और मूर्ख हूँ । आपका आभार कैसे व्यक्त कर सकता हूँ । परन्तु आपकी शरण बहुत सुख देने वाली होती है, यह मेरे हृदय में समझ में आ गया है ।

दो०- सब तजि तुम्हहिं भजूँ दूर होइ मम अग्यान ।
काम क्रोध मदादि नसहिं ऐसा देवउ नाथ वरदान ॥ ५८ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मैं सब छोड़कर आपका ही भजन करूँ तथा मेरा अज्ञान दूर हो जाए और मेरे काम, क्रोध, मद, लोभ आदि भावों का नाश हो जाए । आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए ।

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

एवमस्तु सुनहु सुत मोरे । भगति मोर बसहिं हियँ तोरे ॥
सब भाँति होइब मंगल तोरा । पाइब सदाइ अनुग्रह मोरा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! ऐसा ही होगा । तुम्हारे हृदय में मेरी भक्ति निवास करती है। इसलिए सब प्रकार से तुम्हारा मंगल होगा और तुम सदा मेरी कृपा प्राप्त करोगे।

धन्य दयाल जग पालकम् । जय भवेश जय भव तारकम् ॥
जय दीन बन्धु दीन दयालम् । जय दिनेश जय कृपालम् ॥

व्याख्या - हे दयालु ! हे जगत के पालन कर्ता ! आप धन्य हैं । हे भावों के ईश्वर! आपकी जय हो, हे भव से पार कराने वाले प्रभु! आपकी जय हो । हे दीन बन्धु दीनों पर दया करने वाले ! आपकी जय हो । हे दिनेश ! आप की जय हो । हे कृपाल ! आपकी जय हो ।

नाम रूप गुण गो मन पारम् । जय परमात्म सर्व व्यापकम् ॥
जय मायापति माया निवारकम् । जय प्रकृति मूलम च पारम् ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! हे सर्वव्यापक प्रभु ! आपकी जय हो । आप नाम, रूप, गुण, इन्द्रियों और मन से परे हैं । हे मायापति व माया को दूर करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे प्रकृति के मूल व प्रकृति से परे प्रभु ! आपकी जय हो।

प्रणतपाल जय हित कारकम् । जय जगतेश जग धारकम् ॥
जय विभु जय वैभव दायकम् । जय महेश चराचर नायकम् ॥

व्याख्या - हे प्रणतपाल ! आपकी जय हो, हे हित करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे जगत के ईश्वर व जगत को धारण करने वाले प्रभु! आपकी जय हो । हे विभु ! आपकी जय हो। हे वैभव प्रदान करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे महेश, हे समस्त चराचर के स्वामी ! आपकी जय हो ।

जय निराकार जय सर्वाकारम् । जय मंगल मूल मंगल दायकम् ॥
सब विधि त्वम मम् रक्षकम् । अहम् त्वमेव शरणम् नाथम् ॥

व्याख्या - हे निराकार प्रभु ! आपकी जय हो । हे सर्व आकारों में व्यापक प्रभु ! आपकी जय हो । हे मंगल मूल व मंगल प्रदान करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे प्रभु ! सब प्रकार से आप मेरे रक्षक हैं । हे स्वामी ! मैं आपकी शरण में हूँ ।

दो० - प्रभु तुम्हीं तें जगत प्रकट तुम्हहिं जगत आइ समाय ।
तुम्हीं छाड़ि आन भजै सोइ जीव मूढ़ मति कहाय ॥ ५९ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! यह समस्त जगत आप से ही प्रकट होता है और आप में ही आकर समा जाता है । इसलिए आपको छोड़कर जो लोग अन्य किसी को भजते हैं, वे जीव मूर्ख कहलाते हैं ।

सब भाँति नाथ कृपा तुम कीन्हीं । मोहि सम मूढ़उ शरण दीन्हीं ॥
मैं कृतग्य सदा प्रभु तोरा । जन हित हेतु करउँ निहोरा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपने मुझ पर सब प्रकार से कृपा की है, इसलिए तो मेरे जैसे मूर्ख को भी आपने शरण दी है । हे प्रभु ! मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ । अब मैं जन कल्याण के लिए आप से प्रार्थना करता हूँ ।

दुःख मुक्त हो सकल संसारा । सोइ कहउ नाथ मोहि उपचारा ।
भूत प्रेत अरु जिन्द कुजाति । करहिं न हानि सकल प्रजाति ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! समस्त संसार दुःखों से मुक्त हो जाए, ऐसा कोई उपाय मुझे बता दीजिए । भूत, प्रेत और जिन्द आदि कोई भी नुकसान नहीं कर सकें ।

तन मन सब हो निर विकारी । सोइ उपाइ कहउ असुरारी ॥
सकल हेतु सकल हितकारी । सुगम सुलभ समय अनुसारी ॥

व्याख्या - तन और मन निर्विकारी हो जाएँ, ऐसा कोई उपाय कहिए । वह उपाय सबके लिए व सबका हित करने वाला हो तथा सुगम व सुलभ और समय के अनुकूल हो।

सुख वैभव रहइ शान्ति सदाई । जुगति सरल कहउ गुसाई ॥
सुनु स्तुति आनन्द हितकारी । करहिं जेहिं पावहिं फल चारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! सुख, वैभव व शान्ति सदा मिलती रहे, ऐसा उपाय बता दीजिए । हे वत्स ! तुम सबका हित करने वाली आनन्द स्तुति सुनो। जो करेगें, वे ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों को प्राप्त कर लेगें ।

आनन्द स्तुति

ॐ अनन्तविभूतिधारकम् नामसरूपं करुणाधामं ।
आनन्दघनम् भक्तवत्सलम् परमं परमेश्वरम् नमो नमः ॥

व्याख्या - हे अनन्त विभूतियों को धारण करने वाले ! नाम के अनुरूप स्वरूपधारी, करुणा के घर, आनन्द के मूल, भक्त वत्सल परम पिता परमेश्वर ! आपको नमस्कार ।

दो० - सकल सुख दायक प्रभु तुम्हहीं आनन्द स्रोत ।
शरण तिहारी मैं आउँ भव पार करो मम पोत ॥ ६० ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप समस्त सुखों को देने वाले हैं और आप ही आनन्द के मूल हैं, अतः मैं आपकी शरण में आया हूँ, प्रभु ! मेरी नाव को भव सागर से पार कर दो ।

प्रभु तुम्ह सब जग नायक । तुम्हहीं त्रिविध सुख दायक ॥
तुम्हार शरण आनन्द मूला । जाते मिटहिं त्रिविध जगशूला ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही समस्त जगत के स्वामी हैं तथा आप ही दैविक, दैहिक और भौतिक सुखों के देने वाले हैं । आपकी शरण ही समस्त आनन्द का मूल होती है, जिससे संसार के शारीरिक, मानसिक और भौतिक कष्टों का निवारण हो जाता है ।

नाम पंथ जीव जग भरमाहीं । हेतु अग्यान परहिं भुलाहीं ॥
तुम दयाल मरम अब जानी । क्षमा करहु नाथ जानि अज्ञानी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जीव तो संसार में आपके नाम और पंथ के जाल में पड़कर भ्रमित हो रहा है और अज्ञान के कारण आप विस्मृत हो गये हैं । हे प्रभु ! आप तो दयालु हैं । यह रहस्य अब मैंने जान लिया है, इसलिए प्रभु मुझे अज्ञानी समझ कर क्षमा कर दीजिए ।

तन निरोग चाहुँ मन उल्लासा । अजहुँ अबहुँ करहु सुपासा ॥
कोटि अघ बहु कीन्ह अपराधा । करहु दया हरउ नाथ सब बाधा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे शरीर को रोगों से मुक्त कर दो और मन को आनन्दित कर दो । हे परम पिता ! आज, अभी मुझे आरोग्य और आनन्द प्रदान कर दो । हे प्रभु ! मैंने करोड़ों पाप किये हैं और बहुत से अपराध किये हैं परन्तु अब दया करके मेरी समस्त समस्याओं को दूर कर दो ।

क्षणमाहि सकहि कष्ट निवारे । द्रवहउ प्रभु आरत पुकारे ॥
अनाम निरंजन अलख भगवाना । कृपा तुमार खल बनइ सुजाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप तो क्षण भर में समस्त कष्टों को दूर कर सकते हो। अतः हे नाथ मुझ दुःखी की पुकार सुनकर कृपा करो । हे प्रभु ! आप तो बिना नाम के निरंजन जानने में नहीं आने वाले भगवान हैं । आपकी कृपा से तो दुर्जन भी सज्जन बन जाता है ।

दो० :- नहिं मो सम जग पातकी नहिं तुम समान दयाल ।
क्षमा चाहुँ सब अपराधकी कृपा करहउ अब कृपाल ॥ ६१ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरे समान संसार में कोई पाप करने वाला नहीं है तथा आपके समान कोई कृपा करने वाला नहीं है । इसलिए हे नाथ ! मेरे सब अपराधों को क्षमा करके, मुझ पर कृपा कीजिए ।

जब जब होइ कृपा तुम्हारी । जगत सुलभ पदारथ चारी ॥
सकल कर्ता तउ अकर्ता कहाई । पालहिं अद्‌भुत लीला सदाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जब-जब आपकी कृपा होती है, तब संसार में चारों पदार्थ आसानी से प्राप्त हो जाते हैं । हे परमपिता ! आप ही सब कुछ करने वाले हैं, तब भी आप

अकर्ता ही कहलाते हैं। आप सदैव अद्‌भुत लीला का ही पालन करते हैं।

नाथ दयाल जगत हितकारी। हरउ नाथ मम संकट भारी ॥
तुम्हीं अदेय किछु नाहिं जगमाई। करउ कृपा जानि दीन असहाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप दयालु हैं और जगत का हित करने वाले हैं, अतः हे स्वामी ! मेरे संकटों को दूर कीजिए। हे प्रभु ! संसार में आपके लिए अदेय कुछ भी नहीं है, अतः आप मुझे दीन और असहाय जान कर कृपा कीजिए।

काह नाम काह तुम्हार सरूपा। जानुन किछु सुनी कथा अनूपा ॥
मम हिय विश्वास जग नायक। दीन सहाय तुम जग प्रतिपायक ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपका क्या नाम व क्या स्वरूप है ? मैं कुछ नहीं जानता हूँ परन्तु मैंने आपकी अनुपम कथा सुनी है। हे जगत के स्वामी ! मेरे हृदय में पूरा विश्वास है कि आप दीनों के सहायक और जगत का पालन करने वाले हो।

सो मोहि दीन जानि लेहु अपनाई। तुम्हहीं छाड़ि जग कोउ नाई ॥
दैहिक ताप हरउ प्रभु पल में। स्वारथ हेतु सुमरुँ तोहि मन में ॥

व्याख्या - अतः हे प्रभु ! मुझे दीन समझ कर ही अपना लो। आपके अलावा मेरा जगत में कोई नहीं है। हे प्रभु ! क्षण भर में मेरे शारीरिक कष्टों को दूर कर दो। हे प्रभु ! मैं तो स्वार्थ के कारण ही आपको मन में याद कर रहा हूँ।

दो० :- कफ पित्त वात सम करउ अदोष हो सब नस जार ।
आरत बनि मैं पुकारउँ कृपा करहउ नाथ अबार ॥ ६२ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप मेरे शरीर में कफ, पित्त व वात के विकारों को मिटा दो क्योंकि मैं दुःखी होकर आप को पुकार रहा हूँ, इसलिए बिना देर किये मुझ पर कृपा कीजिए।

जीव निकेत इहँ देह सुहाई। पावन रहइ सोइ कृपा चाई ॥
पंच भूत प्रभु तोरहि अन्ना। पावन करउ होइ मन प्रसन्ना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! यह शरीर तो जीव का घर होता है और यह पवित्र बना रहे, इसलिए आप मुझ पर कृपा कीजिए। हे प्रभु ! पाँच भूत तो आपका ही अन्न होता है। अतः पंच भूतो को शुद्ध कर दीजिए, जिससे मेरा मन प्रसन्न हो जाए।

व्यापहिं नहिं मोहि किछु व्याधि। देहउ बर प्रभु तुम अनादि ॥
ग्यात अग्यात तन मन रोगा। नासहिं सकल तुमार कृपा जोगा ॥

व्याख्या - हे अनादि परम पिता ! मुझे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे मुझे किसी प्रकार की व्याधि नहीं सताए। हे परम पिता ! आपकी कृपा के योग से तन व मन के समस्त ज्ञात व अज्ञात रोगों का नाश हो जाता है।

सो अनुग्रह करहउ दयाला । ताते होवउ मैं अबहु निहाला ॥
बार-बार प्रभु विनती सुनाउँ । सकल तजइ शरण तोरी आउँ ॥

व्याख्या - अतः हे दयालु ! मुझ पर कृपा कीजिए, जिससे मैं अभी निहाल हो जाउँ । हे प्रभु ! मैं आपसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ और सब को छोड़ कर तेरी शरण में आया हूँ ।

जो खल करइ किछु करतूता । तुरत कटइ जानि तोर पूता ॥
जन्त्र तन्त्र तोर विभूति कहाई । अपहित करइ न तोर दुहाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! अगर कोई मूर्ख मेरे ऊपर किसी तान्त्रिक करतूत को कर रहा हो, तो वो मुझे तेरा पुत्र समझ कर तुरन्त कट जाए । हे प्रभु ! जन्त्र-मन्त्र तेरी विभूति कहलाते हैं, अतः तेरी शपथ दिलाता हूँ, जिससे ये (जन्त्र-तन्त्र) मेरा नुकसान नहीं कर सकें ।

दो०- भूत, प्रेत, पिशाच, असुर अरु जिन्द आदि कुजात ।
कृपा करहउ नाथ मोहि पर कोउ न करहिं कुघात ॥ ६३ ॥

व्याख्या - हे परमपिता मुझ पर कृपा कीजिए, जिससे भूत, प्रेत, पिशाच, असुर और जिन्द आदि योनि के जीव मुझ पर आघात नहीं कर सकें ।

जब-जब कृपा होहि तुम्हारी । जल औषध बनि होइ उपकारी ॥
इड़ा पिंगला अरु सुष्मना नारी । पावहिं कृपा होवहिं अविकारी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! जब-जब आपकी कृपा होती है, तब-तब जल ही औषधि बन कर उपकारी बन जाता है तथा आपकी कृपा से ईड़ा-पिंगला और सुष्मना नाड़ियाँ भी दोष मुक्त हो जाती हैं ।

कोटि बंध कटहिं अनुग्रह तोरे । तुम्हहिं छाड़ि कोउ नहिं मोरे ॥
तुम सब भाँति मम अवलम्बा । सो तुरत करउ नाथ मोहि चंगा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके अनुग्रह से करोड़ों बन्धन कट जाते हैं और आपके अलावा मेरा कोई नहीं है । हे प्रभु ! सब प्रकार से आप ही मेरे आधार हैं, अतः नाथ मुझे तुरन्त सब प्रकार से चंगा कर दीजिए ।

लय लाहहिं जपहिं जेहि नामा । तिन्ह करहिं तुम पूरन कामा ॥
अनन्त नाम अनन्त गुनानी । महिमा पूरन कोउ नहिं जानी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जो लय लगा कर के आपका नाम जपते हैं, उनके आप सब मनोरथ पूर्ण कर देते हैं । हे स्वामी ! आपके अनन्त नाम व अनन्त गुण हैं । अतः पूर्ण रूप से आपकी महिमा को कोई नहीं जान पाता है ।

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

करि स्नान करहिं नित्य पाठा। होवहिं अनुकूल प्रकृति आठा ॥
होइब कृत कृत्य मोर दासा। पूर्ण होवहिं सकल अभिलाषा ॥

व्याख्या - जो स्नान करके रोज इस स्तुति का पाठ करेगें, तो अष्ट प्रकार की प्रकृति (पंचभूत, मन, बुद्धि व अहंकार) उनके अनुकूल हो जायेगी। वे मेरे दास कृत कृत्य (कर्म-बन्धन से मुक्त) हो जायेगें तथा उनकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जायेंगी।

दो०- निर्मल चित्त जो पाठ करहिं तिन्ह पर प्रसन्न होउँ सुजान।
भगति, ग्यान आरोग्य बढ़ाउँ इहँ मोर विधि विधान ॥ ६४ ॥

व्याख्या - निर्मल मन से जो इस स्तुति का नित्य पाठ करते हैं, उन पर मैं प्रसन्न होता हूँ और उनको हृदय में भक्ति और ज्ञान प्रदान करता हूँ तथा आरोग्य बढ़ाता हूँ। यह मेरी विधि का विधान है।

धन्य नाथ पितु मातु हमारे। सब विधि हम शरण तिहारे ॥
क्षमा करहउ सब अपराधा। हरउ नाथ सकल जग बाधा ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं। आप ही हमारे माता-पिता हैं। हे नाथ! हम सब प्रकार से आपकी शरण में हैं। हे प्रभु ! आप हमारे सब अपराध माफ कर दीजिए और हमारे समस्त कष्टों को दूर कर दीजिए।

अकथ अगाध अनन्त गुनानी। महिमा कोह सकहहि बखानी ॥
समर्पण सुगम राह तुम्हारी। जय दयाल भगत हितकारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप अकथनीय, अगाध और अनन्त गुणों से युक्त हैं। आपकी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है। हे भगवन्त ! समर्पण ही आपको प्राप्त करने का एक मात्र सरल रास्ता है, इसलिए हे दयाल, हे भक्तों का हित करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो।

ग्यान-अग्यान मान अपमाना। सब जीव भाव कुभाव भगवाना ॥
विरथा देवइ तुम्हहिं दोषा। तबहु तुम करहि नहिं रोषा ॥

व्याख्या - ज्ञान-अज्ञान, मान-अपमान ये तो भगवन सब जीव के भाव-कुभाव होते हैं। लोग आपको व्यर्थ में ही दोष देते रहते हैं, परन्तु फिर भी आप कभी जीव पर क्रोध नहीं करते हैं।

दो० - सरल बिरल उभय तुम सो विप्र जन परहिं उलझाय।
तुम्हीं खोजन जेहिं चलै खोजत निजहिं जाइ हराय ॥ ६५ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप सरल और कठिन दोनों हैं, इसलिए विद्वान लोग आपकी खोज में उलझ जाते हैं। जो भी आपको खोजने निकले हैं, वे खोजते-

खोजते स्वयं ही खो गये हैं ।

तुम समान तुम्हीं प्रभु मोरे । कहउँ इहँ लिखि कागद कोरे ॥
सहज दयाल भव भंजन हारी । लेवहउ शरण नाथ तुम्हारी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपके समान तो आप ही हैं । यह मैं कोरे कागज पर लिख कर कहता हूँ । हे सहज में दया करने वाले, हे भावों से उत्पन्न कष्ट को दूर करने वाले ! मुझे आपकी शरण में ले लीजिए।

प्रेरक प्रेरित तुम्हीं गुसांई । समझउँ अब मैं हियँ मांई ॥
दयाल प्रनतपाल भगवाना । कृपा तुम्हारी कष्ट निधाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही प्रेरणा करने वाले हैं और आप ही प्रेरित होने वाले हैं । अब मैंने मेरे हृदय में यह समझ लिया है । हे दयाल, हे प्रनतपाल भगवान! आपकी कृपा ही समस्त कष्टों को दूर कर देती है ।

बहुरि अनुगृह तुम्ह कीन्ही । मोहि प्रेररहिं बहु शिक्षा दीन्ही ॥
अरथ मरम बहु विधि बताई । धन्य धन्य भयउँ मैं गुसाई ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपने मुझ पर बहुत कृपा की है तथा मुझे प्रेरणा देकर बहुत शिक्षा प्रदान की है । आपने प्रभु बहुत प्रकार से अर्थ व्यवस्था के रहस्य को समझाया है, इसलिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ ।

काह विधि भल हेतु प्रशासन । सोइ कहउ नाथ अनुशासन ॥
सुनु सुत कहउँ नीति समुझाई । चलइब शासन भल सदाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! अब सुचारू रूप से प्रशासन चलाने के लिए कोई अच्छी विधि बताइये । हे वत्स ! तुम सुनो मैं तुम्हें प्रशासन की नीति समझा कर बताता हूँ, जिसका अनुसरण करने से हमेशा प्रशाासन अच्छा चलेगा ।

प्रति विभाग होव जन समिति । देवइ सलाह सदाई सुनीति ॥
भल भल मानुष लेइ समाजा । जनहित हेतु लगावहिं काजा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! प्रत्येक विभाग में एक नागरिकों की समिति होनी चाहिए, जो सदा अच्छी नीति की सलाह दे । समाज से अच्छे अच्छे लोगों को लेकर जनहित के कार्यो में लगाना चाहिए ।

सुवृन्द नागरिक होहिं सारे । देवहिं सलाह प्रति पखवारे ॥
समिति हेतु कहुँ लच्छन बखानी । भल होवइ सदस्य गुणखानी ॥

व्याख्या - समिति में सभी अच्छे नागरिक गण होने चाहियें, जो प्रति पखवाड़े सलाह देने का कार्य करें । अब मैं समिति के लक्षण बताता हूँ । सभी सदस्य

गण गुणवान होने चाहियें ।

दो०- लोलुप लम्पट लालची कपटी कुटिल अरु कंगाल ।
ढोंगी भोगी अरु मसखरा ये सकल जगत जंजाल ॥ ६६ ॥

व्याख्या - लोलुप, लम्पट, लालची, कपटी, कुटिल, दिवालिया, ढोंगी, भोगी और मजाक करने वाले, ये सब जगत के जंजाल होते हैं ।

इन सबते होइ समिति मुक्ता । हानि अधिक जो होवहिं जुक्ता ॥
सुसंग लाभ कुसंग नुकसाना । निगम पुराण सकल बखाना ॥

व्याख्या - बुरे विचार वाले लोगों से समिति को मुक्त रखना चाहिए, वरना इनके समिति में जुड़ने से हानि ही अधिक होगी । अच्छी संगत से लाभ और बुरी संगत से नुकसान होता है, इसको वेद-पुराणों सभी में बताया गया है ।

परहित होइ तिन्ह सुनामा । हेतु स्वारथ नहिं बदनामा ॥
कवि कोविद लेखक चित्रकारा । शिक्षक वैद्य चिंतक अदाकारा ॥

व्याख्या - परोपकार के लिए जिनका नाम हो तथा स्वार्थ के लिए जो बदनाम नहीं हों । कवि, कोविद, लेखक, चित्रकार, शिक्षक, वैद्य, समाज चिंतक, कलाकार ।

मर्मी संगीत शास्त्र साधु सन्ता । धनहीन गुणी धर्मवीर धनवन्ता ॥
मन वच कर्म होइ सेवाकारी । चाह नहिं कबहउँ अधिकारी ॥

व्याख्या - संगीत और शास्त्रों के मर्म को जाननेवाला, साधु सन्त, गुणवान गरीब और धर्म का आचरण करने वाला धनी हो । मन, वचन व कर्म से सेवा करने वाला हो तथा कभी भी अधिकार प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता हो ।

निर्भय रहहिं देवहिं सुझावा । रहवहिं सम सदा भाव अभावा ॥
यशोगान करहिं नहिं जे काउ । भल मन्द निर्भय होइ बताउ ॥

व्याख्या - निर्भय रहकर सुझाव दें तथा भाव-अभाव सब में समान रहें । किसी का भी यशोगान न करें तथा निर्भिकता पूर्वक अच्छा-बुरा बतायें ।

दो०- सहज सरल मन निश्छल परमारथ सदा चिंतन चलाय ।
निज पर हियँ भाव नहिं सोइ सदस्य समिति बनाय ॥ ६७॥

व्याख्या - जो सहज, सरल व निश्छल मन वाला हो तथा सदा परमार्थ का चिंतन करने वाला हो और उसके मन में कभी अपने-पराये का भाव नहीं आना चाहिए । ऐसे व्यक्ति को ही समिति का सदस्य बनाना चाहिए ।

मंगल सोच होइ मंगल करनी । मन नहिं चाह निज यश बरनी ॥
होय सलाह समिति हितकारी । भल अनुसरहिं सब अधिकारी ॥

व्याख्या - मंगल भावना हो तथा मंगल कार्य ही करने चाहियें तथा स्वयं के

यश का वर्णन सुनने की चाहत नहीं होनी चाहिए। ऐसी समिति की सलाह हितकारी होगी, अतः उचित है कि अधिकारी गण नागरिक समिति की सलाह का अनुसरण करें।

एहि उचित नीति सुशासन। चलइब भल सब प्रशासन ॥
भ्रष्ट आचरण वासना आधारा। कलुषित जग सकल व्यवहारा ॥

व्याख्या - यही सुशासन के लिए उचित नीति है। इसी से प्रशासन अच्छी तरह संचालित होगा। भ्रष्ट आचरण का वासना ही कारण होती है, जिससे संसार का समस्त व्यवहार दूषित हो जाता है।

वासना मूल मन हय भाई। सो उचित मन निर्मल कराई ॥
बिनु मन नहिं इहँ संसारा। कहत सुनत हय जग सारा ॥

व्याख्या - वासनाओं का मूल मन ही होता है, इसलिए उचित यही है कि मन को निर्मल किया जाए। बिना मन के संसार होता ही नहीं है, इस बात को समस्त लोग कहते और सुनते आए हैं।

मन ही मूल सकल आचारा। मन निरभर तन धन सारा ॥
मन औषध सब रोग मिटाई। सत्य कहुँ सुत तोहि समझाई ॥

व्याख्या - मन ही समस्त आचरण का मूल होता है तथा तन और धन दोनों मन पर ही निर्भर रहते हैं। मन की दवाई ही समस्त रोगों को दूर कर देती है। हे वत्स ! मैं यह तुम्हें सत्य कह रहा हूँ।

दो० - मन हेतु विपद सब मन ही सब विवाद मिटाय।
मन निर्मल जो रहहिं जग सब झंझट मिट जाय ॥ ६८ ॥

व्याख्या - मन के कारण समस्त समस्याएँ पैदा होती हैं और मन ही समस्त समस्याओं का समाधान करता है। अतः मन निर्मल होने पर संसार में सब समस्याएँ मिट जाती हैं।

धन्य देव सब मरम बताई। केहि विधि प्रगट करूँ कृतग्यताई ॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रत धारी। केहि विधि करूँ मैं स्तुति तुम्हारी॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मैं आपका आभारी हूँ, जो आपने समस्त रहस्य बता दिया है। अब मैं कैसे आभार व्यक्त करूँ। हे प्रभु ! आप तो निर्गुण ब्रह्म हैं तथा सगुण रूप में व्रत धारण किए हुए हैं। हे प्रभु! मैं आपकी कैसे स्तुति करूँ ?

भाव मूल भाव बस्य भगवाना। कृपा करहउ हे कृपा निधाना ॥
काम क्रोध मद लोभादि अपारी। हरहउ नाथ सब तुम कामारि ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप भावों के मूल हैं तथा भावों के वश में रहने वाले

हैं । हे कृपा निधान ! आप कृपा कीजिए । हे काम के शत्रु ! आप काम, क्रोध, मद, लोभ आदि भावों को दूर कर दीजिए ।

तन मन अरु धन सन्तापा । कृपा तुम्हार काहु नहिं ब्यापा ॥
भव रंजन सन्तन हितकारी । लीला तुम्हार अपरम्पारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपकी कृपा से तन, मन और धन के कष्ट नहीं सताते हैं। आप भावों में रमण करने वाले तथा सन्त जनों के हितकारी हैं । प्रभु आपकी लीला तो अपरम्पार है ।

पितु मातु तुम्हीं सब संसारा । तुम्हीं पालक सृजक संहारा ॥
तुम्हीं गुरु तुम्हीं देव हमारे । सकल जगत तुम्हार सहारे ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही समस्त संसार के माता-पिता हैं और आप ही पालन कर्त्ता, सृजन कर्त्ता और संहार करने वाले हैं । आप ही हमारे गुरु और देवता हैं । हे प्रभु ! समस्त संसार आपके ही सहारे है ।

दो०- **मोहि सम नहि जग पातकी तुम समान न परमारथी कोय ।**
सब तजि शरण तुम्हारी परा सदबुद्धि दीजै अब प्रभु मोय ॥ ६९॥

व्याख्या - हे परमपिता ! मेरे समान पाप करने वाला कोई नहीं है तथा आपके समान परमार्थ करने वाला भी जगत में कोई नहीं है । हे प्रभु ! मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में हूँ, मुझे सद्बुद्धि दीजिए ।

जप तप मख पूजा विधि विधाना । जानहउँ नहिं किछु कृपा निधाना॥
देवहउ प्रेम मोर हियँ अपारा । सकहुँ करि प्रीति सकल संसारा ॥

व्याख्या - हे कृपा निधान ! मैं पूजा, जप, तप, यज्ञ आदि करना नहीं जानता हूँ । हे प्रभु ! मेरे हृदय में अपार प्रेम पैदा कर दीजिए, जिससे मैं समस्त संसार से प्रेम कर सकूँ ।

सेवा भाव शक्ति सद् ग्याना । देवहउ नाथ मोही भगति नाना ॥
सकल जगत तुमार सन्ताना । करहुँ सेवा देवउ वरदाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मुझे सेवा करने की शक्ति और सद्ज्ञान दीजिए तथा सब प्रकार से आपकी भक्ति प्रदान कीजिए । हे प्रभु ! समस्त संसार आपकी ही सन्तान है, इसलिए ऐसा वरदान दीजिए, जिससे मैं सबकी सेवा कर सकूँ ।

करहउँ करम तोर प्रसन्नता । हे दीन दयाल सर्व भगवन्ता ॥
जहँ जाउँ तहँ खुशी फैलाउँ । करउ कृपा मैं इहँ वर पाउँ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! हे दीन दयाल, हे सबके भगवान ! मैं सब कर्म आपकी प्रसन्नता के लिए करूँ तथा जहाँ जाउँ वहाँ पर खुशी फैलाने का कार्य करूँ । हे

प्रभु ! आप मुझ पर कृपा कीजिए, जिससे मुझ ये वरदान प्राप्त हो ।

देउ शान्ति प्रेम सोहार्द अपारा । सुखी सम्पन्न रह इहँ संसारा ॥
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई । सन्तान तुमार सब भगनि भाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! शन्ति, प्रेम और अपार सौहार्द दीजिए, जिससे यह समस्त संसार सुखी और सम्पन्न रहे । हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख-ईसाई, ये सब तो आपकी ही सन्तान हैं, इसलिए सब भाई-बहन हैं।

दो०- पर सेवा तत्पर मैं रहउँ मन हो सदा क्षमा भाव ।
भेदभाव सब बिस्मरउँ पूरण करहउ नाथ इहँ चाव ॥ ७० ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं सदा पर (आत्मा) सेवा में तत्पर रहूँ तथा मेरे मन में दूसरों को क्षमा करने का भाव हो तथा मैं सब भेद भावों को भूला दूँ । आप मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर दीजिए ।

तिन्ह हियँ रहइ पर उपकारा । तिन्ह नहिं दुर्लभ किछु संसारा ॥
देवहउँ आशीष सुत मैं तोहि । परहित रत तोर मन होहि ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जिनके हृदय में परोपकार की भावना रहती है, उनको संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । अतः मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे मन में सदा परोपकार की भावना रहे ।

छ० - जय अनन्त भगवन्त दयाल कृपाल हम तुम्हहिं ध्यावहिं ।
असुरारि आस तुम्हारी भगति निष्काम हम चावहहिं ॥
सबहिं संगा रह प्रीत अभंगा सोइ वर नाथ माँगहहिं ।
दीन दुःखी सारे होहिं सुखारे उँच नीच भेद भुलावहिं ॥

व्याख्या - हे अनन्त भगवान, हे दयाल, हे कृपाल ! हम आपको याद करते हैं, आपकी जय हो । हे असुरारि ! हम को आपका ही भरोसा है । हम आपकी निष्काम भक्ति चाहते हैं । सब के साथ हमारी अटूट प्रीत रहे, ऐसा हम वरदान चाहते हैं। सब दीन-दुःखी सुखी हो जाएँ और ऊँच-नीच का भेद भूल जाएँ ।

छ० - हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई सब भाई भाई बनि रहवहिं ।
हम स्वारथी होहिं परमारथी सोइ ग्यान नाथ देवहहिं ॥
सकल जन रहे प्रसन्न मन आनन्द गंग सब नहावहिं ।
जहँ जावहिं खुशी लावहिं भगनि भ्राता प्रेम जतावहिं ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई भाई-भाई बन कर रहें और हम स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थी हो जाएँ, ऐसा ज्ञान हमें दीजिए । सभी लोग प्रसन्न चित्त रहें तथा आनन्द रूपी गंगा में नहाते रहें । हम जहाँ जाएँ वहीं

खुशी छा जाए तथा हम भाई-बहनों जैसा प्रेम करें ।

छ० - हियँ संतोषा तुमार भरोसा सदा मन इहँ हमरे आवहहिं ।
सब घटवासी जय अविनाशी निसि दिवस गुन गन गावहहिं ॥
सृजक पालक पितु मातु हमारे तुम्हीं छाड़ि कहाँ जावहहिं ।
छल छदम् कपट तजि नाथ अब शरण तुम्हारी आवहहिं ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! हमारे हृदय में संतोष हो तथा आपका सदा भरोसा हो, यह हमारे मन में सदा आता रहे । हे सब के हृदय में निवास करने वाले अविनाशी प्रभु ! हम सदा आपके गुण-गान गाते रहें । हे प्रभु ! आप ही हमारे सृजक व पालन कर्ता माता-पिता हैं। आपको छोड़कर हम जा भी कहाँ सकते हैं ? इसलिए हम सब छल-छद्म व कपट को छोड़कर आपकी शरण में आते हैं ।

दो०- मंगल सोचहिं मंगल करें मंगलमय हों सब काज ।
सब काल शरण तुम्हारी प्रभु तुम्हहिं रखो लाज ॥ ७१ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! हम मंगल ही सोचें तथा मंगल ही करें तथा हमारे सब कार्य मंगलमय हों। हम सब समय आपकी शरण में रहें और आप ही हमारी लाज रखें।

छ० - जनहित हेतु सुखद् सरल सुगम इहँ कथा अति पावनी ।
मंगलमयी मंगल करनी सकल सन्तन इहँ मन भावनी ॥
आनन्द मूल वैभव शान्ति प्रद अगाध भव सिन्धु तारनी ।
धर्म ग्यान गुण खानि इहँ कथा सकल मन कल्मष हारनी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जन कल्याण के लिए यह सुखद्, सरल, सुगम व पवित्र कथा है। यह मंगलमयी और मंगल करने वाली तथा सन्तों के मन को अच्छी लगने वाली है । यह कथा आनन्द का मूल, वैभव व शान्ति देने वाली तथा अगाध भाव रूपी समुद्र को पार कराने वाली है। यह कथा धर्म, ज्ञान व गुणों की खान है तथा मन के समस्त विकारों को दूर करने वाली है ।

॥ इति श्री मानवधर्मशास्त्रस्य लोकतन्त्रमर्माथम् च जनकल्याणार्थे

पंचम स्कन्धः सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण नवम पड़ाव ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण तृतीय पड़ाव ॥

ॐ गुरुदेवाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

षष्ठम स्कन्ध

जीवम् च जीवेश्वरम् मंगलम् च मंगलेश्वरम् रामं च रामेश्वरम् ।
करुणा धामम् च करुणेश्वरम् परमं च परमेश्वरम् जगतं च जगतेश्वरम् ॥
नर च नारायणम् ज्ञानम् च ज्ञानेश्वरम् भूतम् च भूतेश्वरम् ॥
महाकालम् च महाकालेश्वरम् वागम् च वागेश्वरम् नमो नमः ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही जीव हैं और आप ही जीव के ईश्वर हैं, आप ही मंगल हैं और आप ही मंगल के भी ईश्वर हैं । आप ही राम हैं और आप ही राम के ईश्वर हैं । हे प्रभु ! आप ही नर हैं और आप ही नारायण हैं, आप ही ज्ञान हैं और आप ही ज्ञान के ईश्वर हैं, आप ही पंचभूत हैं और आप ही भूतों के ईश्वर हैं । हे प्रभु ! आप ही करुणा हैं और आप ही करुणा के ईश्वर हैं । आप परम भी हैं और आप ही परमेश्वर हैं, आप ही जगत हैं और आप ही जगत के ईश्वर हैं । आप ही महाकाल हैं और आप ही महाकाल के ईश्वर हैं । हे प्रभु! आप ही वाणी हैं और आप ही वाणी के ईश्वर हैं, अतः आपको नमस्कार ।

त्वम् सर्वम च सर्वेश्वरम् ज्योतिम् च ज्योतेश्वरम् तपम् च तपेश्वरम् ।
राजम् च राजेश्वरम् ओंकारम् च ओंकारेश्वरम् मनं च मनेश्वरम् ॥
ब्रह्मं च ब्रह्मेश्वरम् शिवम् च शिवेश्वरम् इन्द्रम् च इन्द्रेश्वरम् ।
चित्तम् च चित्तेश्वरम् अहम् त्वमेव शरणम् शरणम् शरणागतेश्वरम् ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही सब कुछ हैं और आप ही सबके ईश्वर भी हैं । आप ही ज्योति स्वरूप हैं और आप ही ज्योति के ईश्वर हैं, आप ही प्रभु तप हैं और आप ही तपेश्वर हैं । आप ही राज सत्ता हैं और आप ही राजाओं के ईश्वर हैं, आप ही ऊँ हैं और आप ही ओंकारेश्वर हैं, आप ही मन हैं और आप ही मन के ईश्वर हैं । आप ही प्रभु ! ब्रह्म हैं और आप ही ब्रह्म के भी ईश्वर हैं । आप ही शिव हैं और आप ही शिव के भी ईश्वर हैं, आप ही इन्द्र हैं और आप ही इन्द्र के स्वामी हैं । हे परमपिता ! आप ही चित्त हैं और आप ही चित्त के ईश्वर हैं । अतः हे परमपिता ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, हे शरणागत के ईश्वर ! मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

दो०- अखण्ड अद्वितीय असीम प्रभु तुम्हीं तुम्हार समान ।
कर जोरि विनय करहउँ कृपा करउ कृपा निधान ॥ १ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप अखण्ड, अद्वितीय और सीमारहित हैं । हे प्रभु! आप ही आपके समान हैं । मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, हे कृपा निधान! मुझ पर अनुकंपा कीजिए ।

जीव प्रेरक जीव नियन्ता । जय अनन्त जय भगवन्ता ॥
अकथ अगाध घट घट बासी । अलख अज जय अविनासी ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप ही जीव को प्रेरणा देने वाले और आप ही जीव के नियन्ता हैं । हे अनन्त भगवान ! आप की जय हो। आप अकथनीय, अगाध और सबके हृदय में निवास करनेवाले हैं । हे अलख, अजन्मा अविनाशी प्रभु! आपकी जय हो ।

तीरथ मूल सब पूग नसावन । जय जगदीस एक रस पावन ॥
नाथ तुम्हार महिमा अवगाहा । बिनु कृपा कोउ पावइ न थाहा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप समस्त तीर्थों के मूल हैं और सब पापों का नाश करने वाले हैं । हे जगत के ईश्वर ! आप सदा एकरस और पवित्र हैं, आपकी जय हो । प्रभु आपकी महिमा अपरम्पार है, जिसकी थाह आपकी कृपा के बिना कोई पा नहीं सकता है ।

अगम अगोचर अनादि अनूपम । जयति जय सचिदानन्द सरूपम्॥
अनुभव गम्य भूप चराचरम् । जय सर्व व्यापक परमम् ॥

व्याख्या - हे अगम्, इन्द्रियों से परे, अनादि व अनुपम प्रभु ! आपकी जय हो । हे सत्‌चित्त आनन्द स्वरूप ! आपकी जय हो । अनुभव से जानने में आने वाले समस्त चराचर के स्वामी, सर्व व्यापक परमेश्वर ! आपकी जय हो ।

जय आनन्द कन्द मुकुन्दम् । जय ईष्ट देव ऋषि मुनि वृन्दम् ॥
परम पुरुषम् भक्त वत्सलम् । जय आशुतोष जय कृपालम् ॥

व्याख्या - हे आनन्द के मूल, मुकुन्द, हे ऋषि-मुनियों के ईष्ट देव! आपकी जय हो । हे परमपुरुष, भक्त वत्सल, शीघ्र सन्तुष्ट होने वाले, कृपालु प्रभु! आपकी जय हो ।

दो०- देखत सुनत कहत बनै नहिं, कैसे प्रभु करूँ मैं बखान ।
तिन्ह हियँ तुम प्रगटहिं जेहि तजहिं कपट अभिमान ॥ २ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं आपका कैसे वर्णन करूँ, आप तो देखने, सुनने और कहने में आते नहीं हो । आप तो उनके हृदय में प्रकट होते हो, जो कपट व अभिमान

को त्याग देते हैं ।

जन हित हेतु सुनहु विनय मोरी । हियँ माझ चाहउँ प्रेरणा तोरी ॥
जथारथ रूप मोहि समझाउ । कर गहहि मोर सोइ लिखाउ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं जनकल्याण के लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ, इसलिए मेरे हृदय के अन्दर ही आपकी प्रेरणा चाहता हूँ । हे परमपिता ! आप मुझे आपका यथार्थ रूप समझाइये तथा मेरा हाथ पकड़ कर, उसी यथार्थ रूप को लिखवा दीजिए ।

अवतार भ्रम सकल संसारा । काह असल मरम तुम्हारा ॥
तुलसी व्यासादि कवि पुंगव नान । बहु भाँति तिन्ह अवतार बखाना ॥

व्याख्या - अवतार के भ्रम में समस्त संसार भ्रमित हो रहा है । हे प्रभु! आपका वास्तविक रहस्य क्या है ? तुलसी, व्यास आदि महान कवियों ने नाना प्रकार से अवतारों का वर्णन किया है ।

काह झूँठ साँच परइ न बुझाई । करि दया मरम देहहु बताई ॥
पंथ निज निज महिमा बखानी । बाढ़हि भ्रम होइ जीव अग्यानी ॥

व्याख्या - क्या झूठ है और क्या सत्य है ? समझ में नहीं आ रहा है। अतः हे प्रभु ! आप दया करके अपने रहस्य को बता दीजिए । पंथ तो अपनी-अपनी महिमा का बखान करते रहते हैं, जिससे भ्रम बढ़ता रहता है और जीव अज्ञानी बनता चला जाता है ।

सुनु सुत कहउँ मरम अपारा । सकल जगत मोर अवतारा ॥
पंथ मत सब जग भरमाई । आज तोहि देहुँ सत्य बताई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब तुमको सबसे बड़ा रहस्य बताता हूँ कि यह समस्त जगत ही मेरा अवतार है । पंथों की बातें तो जगत में भ्रम पैदा करनेवाली होती हैं । आज मैं तुम्हें सत्य बता देता हूँ ।

दादू दयाल रवि दास कबीरा । नानक बुद्ध गोरक्ष महावीरा ॥
बाल्मिकि तुलसी सूर अरु व्यासा । निज अनुभव निज मति भाषा ॥

व्याख्या - दादू, दयाल, रैदास, कबीर, नानक, बुद्ध, गोरखनाथ, महावीर, बाल्मिकि, तुलसीदास, वेदव्यास और सूरदास इन सभी ने अपने-अपने अनुभवों का स्वयं की बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है ।

दो०- ऋषि मुनि सब सिद्ध गण निज हियँ निज अनुभव कीन्ह ।
मति हेतु भिन्नता भयी कोउ सगुण कोउ निर्गुण कह दीन्ह ॥ ३ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! सभी ऋषि-मुनियों और सिद्ध गणों ने स्वयं के हृदय में ही अनुभूति की है । परन्तु बुद्धि की भिन्नता के कारण किसी ने सगुण कह दिया

और किसी ने निर्गुण कह दिया ।

ऋषि मुनि जन मरम बताउँ। तोर हियँ सकल समझाउँ ॥
प्रथम कहुँ तुलसी अनुभूति। पुनि कहइव व्यास करतूति ॥

व्याख्या - मैं तुम्हें ऋषि-मुनियों के रहस्य को तुम्हारे हृदय में समझाऊँगा। पहले तुलसी ने जो अनुभव किया है, उसको बताऊँगा । फिर व्यास ने जो अनुभव किया है, उसे समझाऊँगा ।

गुरु महिमा निज हियँ पहिचानी। तुलसी सोइ बहुरि बखानी ॥
नमन प्रथम गुरु चरण न कीन्हा। गुरु चरण रज सिद्ध अंजन चीन्हा ॥

व्याख्या - तुलसी दास ने गुरु महिमा को अपने हृदय में पहचान कर बहुत प्रकार से वर्णन किया है । इसलिए वे प्रथम नमस्कार गुरु चरणों में करते हैं तथा गुरु चरण रज को ही सिद्ध अंजन के रूप में मानते हैं।

राम नाम ते मोहि उनि जाना। जद्यपि अकथ अगाध बखाना ॥
सत्संग कहा विवेक आधारा। मोर कृपा सो पावन उपचारा ॥

व्याख्या - तुलसी ने यद्यपि मुझे अकथनीय और अगाध बताया है, परन्तु मुझे राम नाम से ही जाना है । सत्संग को ही विवेक प्राप्ति का आधार बताया है तथा मेरी कृपा ही सत्संग प्राप्त करने का एकमात्र उपाय बताया है ।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा ॥
व्यापक विश्वरूप मोहि जाना। तुलसी राम नाम कहि बखाना ॥

व्याख्या - तुलसीदास ने मुझे एक, अखण्ड, अरूप, अनाम, अजन्मा, सत्चित आनन्द के रूप में समस्त जगत में व्यापक जानकर राम का नाम देकर मेरा वर्णन किया है ।

दो०- जड़ चेतन गुन दोषमय तुलसी कीन्ह स्वीकार ।
संत हँस गुन गहहिं पय परिहरि बारि विकार ॥ ४ ॥

व्याख्या - तुलसीदास ने समस्त जड़-चेतन जगत को गुणों व दोषों से युक्त समझा है । जिसमें संत रूपी हंस गुणरूपी दूध को ग्रहण कर लेते हैं और दोष रूपी जल को छोड़ देते हैं ।

इहँ मोर जथारथ विधाना। तुलसी इहँ निज हियँ जाना ॥
संत संगत मुद मंगल मूला। आनंददाई हरइ सब शूला ॥

व्याख्या - यही मेरा वास्तविक विधान है, जिसको तुलसी ने स्वयं के हृदय में जाना । संतजनों की संगत मंगल का मूल तथा आनंददायक और सब भव संकटों को दूर करने वाली होती है ।

संत संगति महिमा अवगाहा । सन्त न जानहिं सन्तन थाहा ॥
अकथ अलौकिक संत प्रभावा । निगम पुराण सब इहँ गावा ॥

व्याख्या - संत की संगति की महिमा अपरम्पार होती है, क्योंकि संतजन भी सन्त की महिमा को नहीं जान पाते हैं । संत का प्रभाव अकथनीय व अलौकिक होता है । निगम-पुराण सब यह बताते हैं ।

भल मन्द जगत इकसारा । पावहिं फल संगति अनुसारा ॥
मन्द ते मन्द भल ते भलाई । इहँ सकल संगति फल भाई ॥

व्याख्या - संसार में अच्छा और बुरा समान रूप से होता है । जीव संगति के अनुसार फल प्राप्त करते हैं । बुरे से बुराई और अच्छे से अच्छाई पैदा होती है । ये सब संगत का ही फल होता है ।

दो०- संगति ते भाव बनै भाव ते सब कर्म घटाय ।
कर्म अनुरूप फल मिलै फल ते सुख दुःख पाय ॥ ५ ॥

व्याख्या - जैसी संगति होती है, वैसी भावना बन जाती है और भावना से कर्म का स्वरूप बन जाता है तथा जैसा कर्म वैसा फल मिलता है और फल के अनुसार सुख-दुःख की अनुभूति होती है ।

संगति महिमा प्रथम बताई । पुनि नाम गुन तुलसी समुझाई ॥
सोई इहाँ देउँ मरम जनाई । जानत संसय सकल मिटाई ॥

व्याख्या - तुलसी ने संगति की महत्वता का पहले वर्णन किया है और उसके बाद नाम के गुणों को समझाया है । इसलिए मैं यहाँ तुम्हें नाम के रहस्य को समझाऊँगा, जिससे समस्त संशयों का समाधान हो जायेगा ।

समुझत सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परसपर मय अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ मोर उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥

व्याख्या - तुलसीदास कहते हैं कि नाम और नामी के रहस्य को समझना बहुत रसयुक्त (आनन्दयुक्त) होता है क्योंकि नाम और नामी की प्रीत का मैं सदैव अनुगमन करता हूँ । नाम और रूप तो मुझ परमात्मा की उपाधि मात्र हैं । क्योंकि मैं तो अकथनीय और अनादि हूँ तथा मुझे समझ कर ही साधना की जाती है ।

को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ॥

व्याख्या - नाम और नामी में कौन बड़ा और छोटा है, यह कहना ही अपराध है। सुनकर और मनन करके साधु लोग भेद को समझ पाते हैं । रूप का आभास नाम के अधीन होता है और रूप का ज्ञान बिना नाम के हो नहीं पाता है ।

रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहिं पहिचाने ॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेषे ॥

व्याख्या - बिना नाम के रूप विशेष पहचानने में नहीं आ पाता है। परन्तु बिना रूप के नाम का स्मरण करने पर हृदय में विशेष प्रेम पैदा हो जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परित बखानी ॥
अगुन-सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोध चतुर दुभाषी ॥

व्याख्या - नाम और रूप की गति अकथनीय होती है, जिसको समझना सुखद होता है परन्तु कहने में नहीं आ पाती है। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम ही साक्षी का काम करता है तथा दोनों के बीच में नाम ही दुभाषिए का काम करता है।

दो०- मोर राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ निज कीन्ह उजियार ॥ ६ ॥

व्याख्या - तुलसीदास ने मुझ परमात्मा की राम नाम रूपी मणि को जीभ पर रख कर, स्वयं अपने अन्दर व बाहर ज्ञान रूपी उजियाला किया है।

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहि अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

व्याख्या - योगी लोग नाम को जीह्वा पर रख कर निरन्तर जपते रहते हैं तथा समस्त सांसारिक पाखण्डों से विरक्त रहते हैं अर्थात कर्मकाण्डों से दूर रहते हैं। नाम का जप करने वाले अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है और उसका कोई नाम व रूप भी नहीं होता है।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥

व्याख्या - जो गूढ़ रहस्य को जानना चाहते हैं, तो वे साधक नाम को जीह्वा पर रख कर जान सकते हैं। जो साधक लय लगाकर नाम जपते हैं, वे सिद्ध हो जाते हैं तथा अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं।

जपहिं नामू जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
अगुन सगुन दुइ मोर सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

व्याख्या - जो दुःखी लोग नाम जपते हैं, उनके सब कष्ट मिट जाते हैं तथा वे सुखी हो जाते हैं। निर्गुण और सगुण दोनों तो मेरे ही रूप हैं, जो अकथनीय, अगाध, अनादि और अनुपम हैं।

तुलसी मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस बूतें ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

व्याख्या - तुलसी रूप और नाम में नाम को बड़ा मानते हैं क्योंकि नाम अपने आप समय को वश में कर लेता है । मुझ परमात्मा को तुलसी काठ की उपमा देकर समझाते हैं कि जैसे काठ में अग्नि होती है, वैसे ही नाम में मैं निवास करता हूँ ।

उभय अगम सुगम नाम तें । कहेउ नामु बड़ ब्रह्म माम् तें ॥
व्यापक एकु मय अविनासी । सत चेतन घन आनन्द रासी ॥

व्याख्या - तुलसी कहते हैं कि नाम से सगुण और निर्गुण दोनों आसानी से समझ में आ जाते हैं, इसलिए मुझ परमात्मा से मेरा नाम बड़ा होता है । तुलसी कहते हैं कि मैं परमात्मा तो सब जगह व्यापक एक ही हूँ तथा अविनाशी, सत्यस्वरूप चेतन और आनन्दरूप हूँ ।

नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुद मंगल बासा ॥

व्याख्या - नाम से स्वरूप वैसे ही प्रकट हो जाता है, जैसे कीमत बताने पर रत्न का महत्व पता चल जाता है । अतः जो लोग प्रेमपूर्वक अनायास नाम जपते हैं, तो वे लोग भक्त हो जाते हैं और हृदय में मंगल का वास हो जाता है ।

दो०- निरगुन एहि भाँति बड़ मोर नाम प्रभाउ अपार ।
कहहिं नामु बड़ मोहि ते तुलसी निज हियँ विचार ॥ ७ ॥

व्याख्या - तुलसीदास ने इस प्रकार अपने स्वयं के हृदय में विचार करके निर्गुण से बड़ा मेरे नाम को माना है तथा नाम के प्रभाव को मुझ परमात्मा से बड़ा माना है ।

दो०- मोहि तें मोर नामु बडु बर दायक बर दानि ।
रामचरित में तुलसी लिखा निज हियँ जानि ॥ ८ ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा से मेरा नाम बड़ा होता है, जो वर देनेवाला होता है । इसी नाम की महिमा को तुलसी ने हृदय में अनुभूत करके रामायण में लिखा है ।

नाम महिमा तुलसी हियँ जाना । सोइ अनुभूति बहु विधि बखाना ॥
नाना भांति ब्रह्म तत्व बखाना । इहाँ कहउँ किछु-किछु प्रधाना ॥

व्याख्या - नाम की महिमा को तुलसी ने स्वयं के हृदय में जान कर अपनी अनुभूति को जन-जन को बताया है । उन्होंने नाना प्रकार से ब्रह्मतत्व का वर्णन किया है । उसी के कुछ प्रमुख अंशों को मैं तुम्हें बताता हूँ ।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

व्याख्या - निर्गुण और सगुण में कुछ भी अन्तर नहीं होता है । ऐसा सभी मुनि, पुराण, विद्वान और वेद बताते हैं । जो निर्गुण-अरूप, अलख और अजन्मा है,

वही भक्त के प्रेम के कारण सगुण भासित होने लग जाता है ।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥

व्याख्या - जो गुणों से परे है, वो सगुण वैसे ही होता है, जैसे जल और बर्फ अलग-अलग होकर भी एक ही होते हैं । जिसके नाम से भ्रम रूपी अंधकार मिट जाता है, उसके पास मोह आदि का प्रसंग कैसे हो सकता है ?

मोहि कहा सच्चिदानन्द दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा ॥
सहज प्रकाश रूप मोहि जाना । नहिं तहँ पुनि विग्यान बिहाना ॥

व्याख्या - तुलसी ने मुझे सत् चित्त आनन्द रूपी प्रकाश कहा है, जहाँ पर मोह रूपी रात्रि नहीं हो सकती है । मुझे सहज प्रकाश करनेवाला जाना है, जहाँ पर विज्ञान की पहुँच भी नहीं हो पाती है ।

दो०- सकल प्रकाशक मैं ही सोइ कहा तुलसी हिय विचार ।
हर्ष-विषाद ग्यानादि मद सकल जीव व्यवहार ॥ ९ ॥

व्याख्या - समस्त जगत को प्रकाशित करनेवाली शक्ति मैं ही हूँ । तुलसी ने अनुभव से ऐसा जान कर कहा है । हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान, अहंकार आदि भाव तो जीव के व्यवहार हैं ।

मैं ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥
निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी । मोहि पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥

व्याख्या - तुलसीदास कहते हैं कि मैं ब्रह्म के रूप में समस्त जगत में व्यापक हूँ तथा मैं परमानन्द स्वरूप पुराण पुरुष हूँ । मूर्ख लोग स्वयं के अज्ञान को नहीं समझते हैं और मुझ परमात्मा पर मोह का आरोपण करते हैं ।

विषय करन सुर जीव समेता । सकल एकते एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । मय अनादि अवधपति सोई ॥

व्याख्या - इन्द्रियाँ, सुर (चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर) और जीव एक दूसरे से सचेत होते हैं अर्थात बल प्राप्त करते हैं । इन सबको संचालित करनेवाला शरीर का मालिक (अवधपति) मैं अनादि शक्ति हूँ ।

जगत प्रकास्य मैं प्रकाशक रामू । मायाधीश ग्यान गुन धामू ॥
मोर सत्यता तेहि जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥

व्याख्या - तुलसीदास कहते हैं कि यह जगत प्रकाशित है और मैं अनादि राम इसको प्रकाशित करनेवाला हूँ । मैं राम तो मायापति और समस्त गुणों का धाम हूँ । मेरी सत्ता से ही जड़ माया मोह की सहायता से सत्य-सी लगने लगती है।

सोई तुलसी राम जगत स्वामी । घट घट वासी अन्तर यामी ॥
मय अतर्क्य बुद्धि मन बानी । तुलसी कहा अस जिय जानी ॥

व्याख्या-तुलसी का राम जगत का स्वामी व सबके हृदय में निवास करनेवाला है। तुलसी ने हृदय में अनुभव करके ही मुझको तर्क, मन, बुद्धि और वाणी से परे कहा है।

दो०- रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ।
तैसउ मोहि ते माया बसे तुलसी कहा इहँ विचारि ॥ १० ॥

व्याख्या - जैसे सीप में चाँदी का आभास होता है और सूर्य की किरणों में जल दिखाई देता है, वैसे ही मुझ परमात्मा में माया निवास करती है । तुलसीदास ने इसे अपने हृदय में विचार कर बताया है ।

एहि विधि जग भ्रमित रहई । जद्यपि असत्य देत दुख अहई ॥
जो सपने सिर काटइ कोई । बिनु जागहिं न दूरि दुख होई ॥

व्याख्या - इस प्रकार यह संसार भ्रमित होता रहता है और असत्य होते हुए भी दुःख देता रहता है । यह भ्रम का दुःख वैसे ही दूर नहीं हो पाता है, जैसे सपने में सिर काटने का दुःख जागे बिना दूर नहीं होता है ।

जासु कृपा माया भ्रम मिट जाई । तुलसी कहा सोइ जग गुसाई ॥
आदि अंत कोउ मोर न पावा । मति अनुमान निगम अस गावा ॥

व्याख्या - तुलसीदास कहते हैं कि जिस परमशक्ति की अनुकंपा से माया का भ्रम मिट जाता है, वही परम कृपालु जगत के स्वामी हैं । मेरे आदि-अंत का भेद किसी ने भी नहीं जाना है । वेदों आदि ने भी अपनी बुद्धि के अनुसार बताया है ।

बिनु पद चलउँ सुनउँ बिनु काना । कर बिनु करम करउँ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगूँ । बिनु बानी बकता बड़ जोगू ॥

व्याख्या - तुलसी कहते हैं कि मैं (परमात्मा) तो बिना पद चलता और सुनता हूँ तथा बिना हाथों के नाना प्रकार के कर्म करता हूँ । बिना मुख के नाना भोगों को भोगता हूँ तथा बिना वाणी के ही सब कुछ बोलता हूँ ।

तन बिनु परस नयन बिनु देखूँ । ग्रहउँ घ्रान बिनु बास असेषूँ ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा मोर जाइ नहि बरनी ॥

व्याख्या - मैं बिना शरीर के ही स्पर्श करता हूँ तथा बिना आँखों के ही देखता हूँ । बिना नाक के ही सुगन्ध ग्रहण करता हूँ । इस प्रकार मेरी सब प्रकार से अलौकिक करनी होती है । तुलसी कहते हैं कि मेरी महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता है।

दो०- तुलसी भगत प्रिय अति तिन्ह हियँ में उपजाया ग्यान ।
महिमा मोरी बहु बखानी तजि माया मोह अभिमान ॥ ११ ॥

व्याख्या - तुलसीदास मेरा प्रिय भक्त था, इसलिए मैंने उसके हृदय में ज्ञान पैदा कर दिया था। तुलसी ने माया-मोह व अभिमान को त्याग कर मेरी महिमा का नाना प्रकार से वर्णन किया है।

सकल संत मुनि वेद पुराना। सब कहहि स्वमति अनुमाना ॥
निज हियँ जेहि जाना मोही। निर्भय निर्द्वन्द भया सोही ॥

व्याख्या - सभी संतों, मुनियों, वेदों और पुराणों ने जो कुछ कहा है, वह सब अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कहा है। जिसने मुझे स्वयं के हृदय में जान लिया है, वह निर्भय और निर्द्वन्द हो गया है।

मोर मरम तब परइ बुझाई। अवतरउँ भगत हियँ आई ॥
तनु धरि कबहुँ न प्रगटाउँ। रथि बनि मैं भगत समझाउँ ॥

व्याख्या - मेरा रहस्य जब भक्तजनों को समझ में आ जाता है, तब मैं उनके हृदय में ही अवतरित हो जाता हूँ। मैं शरीर धारण करके कभी प्रकट नहीं होता हूँ। बल्कि मैं भक्तजनों का रथी बन कर, उन्हें चलाने लगता हूँ।

अवतरण मरम तुलसी बुझाई। सोइ लिखा भाषा सरल बनाई ॥
जब जब होइ धरम के हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ॥

व्याख्या - मेरे अवतार के रहस्य को तुलसी ने अपने हृदय में समझा और उसी को सरल भाषा में लिखा है। तुलसी कहते हैं कि जब धर्म की हानि होती है और आसुरी भाव बढ़ने लगते हैं अर्थात जीव जब विषय वासनाओं में फँस जाता है, तब सहज स्वभाव (धर्म) की हानि होने लगती है।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब हियँ होइ ग्लानी। पावइ कष्ट जीव अभिमानी ॥

व्याख्या - विषय वासनाओं में पड़ जाने पर अनीति होने लगती है तथा अनीति से विशुद्ध प्रकाश, सात्विक इच्छाएँ, सुर (चन्द्र और सूर्य स्वर) और शरीर कष्ट पाने लगते हैं। उस अवस्था में हृदय में ग्लानि होने लगती है और अभिमानी जीव कष्टों में पड़ जाता है।

तब तब जीव मोहि पुकारे। करइ आस कि आन उबारे ॥
द्रवहउँ तब जानि निज दासा। भगत हियँ देवहउँ दिलासा ॥

व्याख्या - कष्टों में पड़ कर जीव मुझे पुकारने लगता है तथा मुझसे उम्मीद करने लगता है कि मैं उसे आकर बचाऊँगा। उस अवस्था में मैं अपना दास समझ कर द्रवित हो जाता हूँ तथा भक्त के हृदय में ही सांत्वना देने लगता हूँ।

दो०- हृदय प्रविसहउँ जाइ के हरहउँ सकल सज्जन पीर ।
एहि विधि जुग जुग अवतरउँ सुनउ सुत मति धीर ॥ १२ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मतिधीर ! हृदय में प्रवेश करके मैं सज्जन लोगों के कष्टों को दूर करता हूँ । इस प्रकार क्षण-क्षण में मेरा अवतार होता रहता है ।

अगुन अखंड अनंत अनादि । मोहि चिंतहि परमारथबादी ॥
नेति नेति मोहिं बेद निरूपा । निज आनन्द निरूपाधि अनूपा ॥

व्याख्या - मैं अगुन, अखण्ड, अनंत और अनादि हूँ तथा परमार्थ में लगे हुए लोग मेरा चिन्तन करते हैं । वेदों ने भी मुझे ऐसा भी नहीं, ऐसा भी नहीं, कह कर बताया है । मैं तो निज आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हूँ ।

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना । उपजहिं मोर अंश ते नाना ॥
तबहु मैं सेवक बस रहउँ । भगत हितु हियँ प्रविसहउँ ॥

व्याख्या - शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि तो मेरे अंश से उत्पन्न होते हैं । तब भी मैं सेवक के वश में रहता हूँ और भक्त के हित के लिए उसके हृदय में प्रवेश करता हूँ ।

सेवत सुलभ सकल सुख दायक । प्रनत पाल सचराचर नायक ॥
एहि भाँति तुलसी मोहि माना । मोर कीन्ह उनि स्तुति नाना ॥

व्याख्या - मुझे प्राप्त करना आसान है और मैं समस्त चराचर जगत को सुख देनेवाला हूँ तथा समस्त चराचर का स्वामी हूँ और उसका पालन करनेवाला हूँ। इस प्रकार तुलसी ने मुझे मान कर मेरी नाना प्रकार से स्तुतियाँ की हैं ।

भाव विभोर स्तुति तुलसी कीन्हा । मरम मोर निज हियँ चीन्हा ॥
पावन परम प्रिय स्तुति सोई । पावहिं मन वांछित गावहिं जोई ॥

व्याख्या - तुलसी ने भाव विभोर होकर स्तुति की है और अपने हृदय में मेरे रहस्य को जान लिया । वह स्तुति बहुत पवित्र है तथा मुझे बहुत प्रिय हैं । अतः जो भी उसे गाते हैं, उनको मन वांछित फल मिल जाता है ।

दो०- पावन परम सरल सुखद सरस सुलभ अति गम्भीर ।
जन हित कारणि सोइ स्तुति ध्यान घरि सुनहु मति धीर ॥ १३ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जनकल्याण करनेवाली पावन, सरल, सुखद, सरस, सुलभ व गम्भीर स्तुति को तुम ध्यान लगा कर सुनो ।

छ० - जय जय सुर नायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवन्ता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारि सिन्धु सुता प्रिय कन्ता ॥
पालन सुर धरनि अद्‌भुत करनि मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करहउ अनुग्रह सोई ॥

व्याख्या - हे सुर के नायक ! (अर्थात जहाँ से प्राण पैदा होते हैं - सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर) समस्त प्राणियों को सुख देनेवाले व समस्त प्राणियों को पालने वाले! आपकी जय हो । इन्द्रियों व ज्ञानियों का हित करनेवाले, सिन्धु सुता अर्थात उदर-स्थित कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न सात्विक बुद्धि के प्रिय हे असुरारि ! आपकी जय हो ।

छ० - जय जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा ।
अविगत गोतीतं चरित पुनितं माया रहित मुकुन्दा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनि वृन्दा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥

व्याख्या - हे अविनाशी ! सब के घट में निवास करनेवाले व सर्वत्र आनन्द के रूप में व्यापक आपकी जय हो । आप इन्द्रियों से परे, पावन चरित्र करनेवाले, माया से रहित तथा आनन्दस्वरूप हैं । आप वैराग्यवान लगते हैं, परन्तु आप तो बहुत अनुराग करनेवाले हैं । आपकी कृपा से तो मन के मोह का समूह ही नष्ट हो जाता है । हे सत्चित्त आनन्दस्वरूप परमात्मा ! हम रात-दिन आपके गुणगान करते हैं । आपकी जय हो ।

छ० - जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ नहिं भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरुथा ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपने समस्त सृष्टि को त्रिगुणमय बनाया है और आपका कोई सहायक भी नहीं था । इसलिए हे पापनाशक प्रभु ! हमारी चिन्ता कीजिए । हम तो भक्ति और पूजा भी नहीं जानते हैं । आप तो भावों से पैदा होनेवाले भय को दूर करनेवाले हैं और मुनियों के मन को सन्तुष्ट करनेवाले तथा समस्त विपदाओं को दूर करनेवाले हैं । हे प्रभु ! हम तो मन, वचन व कर्म की चतुराई छोड़ कर, समस्त भावों सहित आपकी शरण में आये हैं ।

छ० - सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुख पुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

व्याख्या - श्रुतियों ने भी आपको शेष कहा है अर्थात नेति-नेति कहा है और ऋषियों ने आपको अनन्त कहा है । आपको फिर भी कोई जान नहीं पाया

है । आपको दीन अर्थात देनेवाले प्यारे हैं, वेद भी ऐसा ही कहते हैं । अतः हे भगवन ! आप हम पर दया कीजिए । दीन का मतलब लोग गरीब से लगा लेते हैं । परन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि अगर गरीब अहंकारी और दम्भी है, तो वह कैसे प्रिय होगा । दीन का मतलब देनेवाले से है, जो समर्पण कर सकता हो, परमार्थ के लिए अपने-आपको जो दे सके, वही दीन है । भावों से पैदा होनेवाला यह भवसागर सब प्रकार से सुन्दर है, परन्तु आप तो गुणों के मन्दिर और सुख के मूल हैं । हे प्रभु ! सभी मुनि, सिद्ध व सुर आपके चरण कमलों में नमस्कार करते हैं ।

दो०- मैं व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो भाव प्रेम भगति बस मैं उनके मन मोद ॥ १४ ॥

व्याख्या - मैं ब्रह्म जो सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण और विनोद रहित हूँ । मैं ही अजन्मा व प्रेम भाव की भक्ति के वश में होकर भक्तों के मन को आनन्द देनेवाला होता हूँ ।

जो स्तुति इहँ नित्य करहहिं । नहिं संशय से भव तरहहिं ॥
नित्य हियँ आवइ प्रेम अपारा । सोहि जन जानइ मरम सारा ॥

व्याख्या - जो इस स्तुति को नित्य करते हैं, वे निःसंदेह भवसागर पार कर जाते हैं । उनके हृदय में नित्य प्रेम पैदा होने लग जाता है और वे मेरा सारा रहस्य जान लेते हैं ।

प्रेम लग्न जिन हियँ जागी । प्रगटउँ तहँ जिमि काठ ते आगी ॥
जाके हृदय रहहि जसि प्रीति । तसि प्रगटउँ इहँ मोर रीति ॥

व्याख्या - प्रेम की लग्न जिनके हृदय में जागृत हो जाती है, उनके हृदय में मैं वैसे ही प्रकट हो जाता हूँ, जैसे काठ से अग्नि प्रकट हो जाती है । जिसके हृदय में जैसी भावना होती है, मैं उसके हृदय में वैसे ही प्रकट हो जाता हूँ । यही मेरी नीति है ।

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई । भजत करउँ मैं कृपा सदाई ॥
जिन्ह के रही भावना जैसी । मोर मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

व्याख्या - जो मन, वचन व कर्म की चतुराई छोड़ कर मुझे भजते हैं, मैं उन पर सदा कृपा करता हूँ । जिनकी जैसी भावना रहती है, वे मेरी मूर्ति वैसी ही देखते हैं ।

जोगिन्ह परम तत्व मय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकाशा ॥
एहि विधि रहा जाहि जस भाउ । तेहि तस देखहिं निज सुभाउ ॥

व्याख्या - योगियों ने मुझे परम तत्वमय, शान्त, शुद्ध, सम व सहज प्रकाशवान बताया है। इस प्रकार जिसको जैसा लगता है, वो मुझे वैसा ही मान लेता है और निज स्वभाव के अनुसार मुझे देखने लगता है।

दो०- व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करहउँ चरित अनूप ॥ १५ ॥

व्याख्या - मैं सर्वव्यापक, अकल, अनीह, अजन्मा, निर्गुण तथा नाम व रूप से रहित हूँ और भक्तों के लिए नाना अनुपम चरित्र करता रहता हूँ।

एहि बिधि मैं सकल पितु माता। भगत जन सदा सुख दाता ॥
जीव चराचर जो बस करि राखै। सो माया मोते सदा भय भाखै ॥

व्याख्या - इस प्रकार मैं समस्त जगत का माता-पिता हूँ और भक्तों को सदा सुख देनेवाला हूँ। जो माया समस्त चराचर जगत को वश में करके रखती है, वह माया भी मुझसे डरती है।

करहिं जोग जोगी मोहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी ॥

व्याख्या - योगी लोग मुझे प्राप्त करने के लिए क्रोध, मोह, ममता व मद का त्याग करके योग साधना करते हैं। मैं तो सर्वव्यापक ब्रह्म, अलख, अविनाशी, सत्‌चितआनन्द, निर्गुण व गुणों की राशि हूँ।

मन समेत मोहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। मय तिहुँ काल एकरस रहई ॥

व्याख्या - मनसहित मुझे वाणी भी नहीं जान पाती है तथा तर्क से भी मेरा अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। वेदों ने भी मुझे नेति-नेति कहा है। मैं तो तीनों कालों में एकरस रहता हूँ।

मोहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
मय सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु-सुर साखी ॥

व्याख्या - मुझे केवल प्रेम ही प्रिय होता है। इस रहस्य को जाननेवाले जान लेते हैं। मैं सदा सेवकों की रुचि का खयाल रखता हूँ। वेद, पुराण, साधु व देवता सभी इस बात के साक्षी हैं।

दो०- सुन सुत कहुँ साधन भल तुम्हार जागहि भागु।
सकल सुमंगल मूल सब मोर चरन अनुरागु ॥ १६ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हें अच्छा साधन बताता हूँ, जिससे तुम्हारा भाग्य जाग जायेगा। मेरे चरणों में सच्चा अनुराग ही समस्त मंगलों का मूल होता है।

मम माया सम्भव संसारा । जीव चराचर विविध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥
व्याख्या - मेरी माया से ही समस्त संसार का आभास होता है और उसी से जीव-चराचर का आभास होता है । सभी मुझे प्रिय हैं और मेरे द्वारा ही पैदा किये हुए हैं । फिर भी मनुष्य मुझे ज्यादा प्रिय हैं ।

तिन्ह महँ प्रिय बिरत पुनि ग्यानी । ग्यानिहु ते अति प्रिय विग्यानी ॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥
व्याख्या - उनमें भी मुझे विरक्त और विरक्तों में भी ज्ञानी प्रिय हैं तथा ज्ञानियों से भी विज्ञानी प्रिय हैं । विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे मेरे दास प्रिय होते हैं, जिनको मेरे अलावा किसी दूसरे की आशा नहीं होती है ।

भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥
व्याख्या - भक्तिहीन ब्रह्मा भी मुझे अन्य जीवों के समान ही प्रिय होता है। मैं पुनः सत्य कहता हूँ कि मुझे सेवक के समान और कोई प्रिय नहीं होता है।

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी ॥
अखिल विस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबर दाया ॥
व्याख्या - भक्तिवंत नीच प्राणी भी मुझे प्राणों के समान प्रिय होता है । यह मेरा सत्य वचन है । यह समस्त विश्व मेरा पैदा किया हुआ है, इसलिए मेरी सब पर बराबर कृपा रहती है ।

दो०- पुरुष नपुंसक नारी वा जीव चराचर जेहि कोई ।
सर्व भाव भज कपट तजि भजहिं मोहि परम प्रिय सोई ॥ १७ ॥
व्याख्या - पुरुष, नपुंसक, नारी या कोई भी जीव, जो मुझे सब भावों के साथ कपट छोड़ कर भजता है, वही मुझे परम प्रिय होता है ।

कब मैं कहाँ करहउँ निवासा । से सब कहहि तुलसी दासा ॥
सोइ सुत सब तोहि समझाउँ । सरल सुगम जुबानि बताउँ ॥
व्याख्या - मैं कब और कहाँ निवास करता हूँ, यह सब तुलसीदास ने बताया है । उसी सरल, सुगम वाणी को तुम्हें समझा कर बताता हूँ ।

सुनहु सुत अब कहउँ निकेता । जो तुलसी कहाँ निज मन चेता ॥
जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना । कथा अमारि सुभग सरि नाना ॥
व्याख्या - हे वत्स ! अब तुमको मेरे रहने का घर बताता हूँ, जो तुलसीदास ने अपने मन में विचार करकेबताये हैं । जिन लोगों के कान मेरी कथा सुनने के लिए

समुद्र के समान गम्भीर हों तथा मेरी कथाएँ पवित्र नदियों के समान हों ।

भरहिं निरंतर होहि न पूरे । तिन्ह के हियँ मोर कहुँ गृह रुरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥

व्याख्या - जो समुद्र रूपी कान कभी भी मेरी कथा सुनने से नहीं भरते हों, वे मेरे सुन्दर घर होते हैं और जो लोग चातक पक्षी की तरह अपने नेत्रों को मेरी तरफ लगा कर, मेरे दर्शन रूपी बादलों की इच्छा रखते हों ।

निदरहि सरित सिंधु सर भारी । रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी ॥
मोर प्रसाद सुचि सुभग सुबासा । सादर जासु लहहिं नित नासा ॥

व्याख्या - जो नदियों, समुद्र और तालाब के पानी को छोड़ देते हैं और मेरे रूप रूपी बूंद की जल पाकर सुखी होते हों तथा मेरी कृपा रूपी पवित्र सुगन्ध अपनी नाक से सादर ग्रहण करते हों ।

दो०- जसु अमार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
गुन गन मोती चुनइ तुलसी कह हियँ बसहुँ तासु ॥ १८ ॥

व्याख्या - मेरे यश रूपी मानस सरोवर में जिनकी हँस रूपी जीभ गुण-गान रूपी मोती चुगती रहती है । तुलसीदास कहते हैं कि मैं उनके हृदय में निवास करता हूँ।

मोहि निवेदित भोजन करहिं । मोर प्रसाद पट भूषन धरहिं ॥
सीस नवहिं गुरु सज्जन देखी । प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥

व्याख्या - जो लोग मुझे निवेदन करके भोजन करते हैं और मेरी अनुकंपा रूपी वस्त्र धारण करते हैं तथा गुरु और सज्जन लोगों को देखकर प्रीतिपूर्वक विशेष विनय करते हैं ।

कर नित करहिं मोर पद पूजा । मोर भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरन मोर तीरथ चलि जाहीं । मैं बसहुँ तिन्ह के मन माहीं ॥

व्याख्या - जो नित्य मेरी पूजा करते हैं तथा मेरे अलावा किसी का हृदय में भरोसा नहीं रखते हैं तथा जिनके चरण मेरे तीर्थस्थलों पर जाते हैं । मैं उनके हृदय में सदा निवास करता हूँ ।

मंत्र राजु नित जपहिं अमारा । पूजहिं मोहि सहित परिवारा ॥
ध्यान करहिं मोर विधि नाना । श्रद्धा अनुसार देहिं बहु दाना ॥

व्याख्या - जो मेरे नाम का मंत्र नित्य जपते हैं तथा मेरी पूजा परिवार सहित करते हैं और मेरा बहुत प्रकार से ध्यान करते हैं तथा श्रद्धा के अनुसार दान देते हैं ।

मोहि ते अधिक गुरहि जियँ जानी । सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥
काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥

व्याख्या - जो मुझसे अधिक गुरु को मानते हैं और सब प्रकार से आदरपूर्वक सेवा करते हैं तथा जिनके काम, क्रोध, मद, मान, लोभ, क्षोभ, राग और द्वेष नहीं है।

दो०- सबु करि मानहिं एक फलु मोर चरन रति अपार ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु तुलसी कहि इहँ विचार ॥ १९ ॥

व्याख्या - सब कर्मो का जो एक ही फल चाहते हैं कि मेरे चरणों में अनुराग हो । उन लोगों के मन रूपी मंदिर में मैं निवास करता हूँ । तुलसीदास यही अपने मन में विचार करके कहते हैं ।

जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह के हृदय रहउँ समाया ॥
सब के प्रिय सब के हित कारी । दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी ॥

व्याख्या - जिन लोगों के कपट, दम्भ और माया नहीं होती है, मैं उनके हृदय में रहता हूँ । जो सबको प्रिय और सबके हितकारी होते हैं तथा सुख, दुःख, प्रशंसा और निन्दा में जो समान रहते हैं ।

मोहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं । मय बसहुँ तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धनु पराव विष ते विष भारी ॥

व्याख्या - जिनकी मेरे अलावा दूसरी कोई गति नहीं होती है, मैं उनके हृदय के अन्दर निवास करता हूँ । जो परायी स्त्री को माता के समान और पराये धन को विष के समान मानते हैं ।

जे हरषहि पर संपत्ति देखी । दुखित होहि पर बिपति विसेषी ॥
जिन्हही मैं सदा प्रान पिआरा । तिन्ह के मन सुभ सदन अमारा ॥

व्याख्या - जो दूसरों की सम्पत्ति को देख कर खुश होते हैं और दूसरों की विपत्ति में बहुत दुःखी होते हैं । जिनको मैं सदा प्राणों से प्यारा होता हूँ, उनके हृदय मेरे सुंदर घर होते हैं ।

जिन्हहिं प्रिय मोर सतसंगा । मोर चरण रखहिं प्रीति अभंगा ॥
तिन्ह के हियँ सदन प्रिय मोही । सत्य कहुँ सुत समझाई तोही ॥

व्याख्या - जिनको मेरा सत्संग करना अच्छा लगता है और मेरे चरणों में जो निरन्तर प्रीत रखते हैं, उनके हृदय मेरे प्रिय घर होते हैं। हे वत्स ! मैं तुम्हें सत्य बता रहा हूँ ।

दो०- स्वामी सखा पितु मातु गुर जिन्ह के मय सब तात ।
तुलसी कहि मन मन्दिर तिन्ह के बसहुँ दिनु रात ॥ २० ॥

व्याख्या - तुलसीदास कहते हैं कि मुझे जो लोग स्वामी, मित्र, पिता-माता, गुरु व सब कुछ मानते हैं । मैं उन लोगों के मन रूपी मन्दिर में सदा रात-दिन

निवास करता हूँ ।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । परहित हेतु संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कह जग लीका । घर अमार तिन्ह कर मनु नीका ॥

व्याख्या - जो अवगुणों को छोड़ कर दूसरों के गुणों को ग्रहण करते हैं तथा परहित के लिए संकट सहते हैं तथा नीतिपरायणता ही जिनके लिए संसार का रास्ता होती है, उन लोगों का पवित्र मन ही मेरा घर होता है ।

गुन अमार समझइ निज दोषा । जेहि सब भांति अमार भरोसा ।
मोर भगत प्रिय लागहिं जेहि । अकारण जेहि सहज सनेही ॥

व्याख्या - जो गुण मेरे समझते हैं और दोष स्वयं के मानते हैं और सब प्रकार से मेरा भरोसा करते हैं तथा जिन्हें मेरे भगत प्रिय लगते हैं तथा बिना कारण सदा ही सहज में स्नेह करते रहते हैं ।

जाति पाँति धनु धरम बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि मोहि रहइ उर लाई । तिन्ह हृदय मैं रहउँ सदाई ॥

व्याख्या - जाति-पाति, धन और धर्म की बड़ाई, प्रिय परिवार, सुखदायी घर आदि सब को छोड़ कर, जो मुझे हृदय में रखते हैं, मैं उनके हृदय में सदा ही निवास करता हूँ ।

सरगु नरकु अप बरगु समाना । जहँ तहँ देखहिं मोहि भगवाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा । सदा करहुँ मैं तेहि उर डेरा ॥

व्याख्या - स्वर्ग-नरक व अपवर्ग को समान मान कर, सब जगह मुझ परमा त्मा को देखे और मन-वचन-कर्म से कोई मेरा दास हो, तो मैं उसके हृदय में सदा निवास करता हूँ ।

दो०- जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु मोहि सन सहज सनेहु ।
बसहुँ निरंतर तासु मन जानि मोर निज गेहू ॥ २१ ॥

व्याख्या - जिसको कभी कुछ भी चाहत नहीं होती है तथा सदा मुझसे सहज में ही स्नेह करनेवाला होता है, तो मैं उसके मन को मेरा घर मान कर सदा रहता हूँ ।

एहि भाँति तुलसी गृह बखानी । कहि जुगति सब निज हियँ जानी ॥
जेहि कोउ चाहिअ मोहि राखा । अनुसरहु जो मय सब भाषा ॥

व्याख्या - इस प्रकार तुलसीदास ने मेरे घर का वर्णन किया है । उन्होंने यह सब अपने हृदय में जान कर बताया है । इसलिए अगर कोई मुझे अपने हृदय में रखना चाहते हैं, तो मैंने जो कहा है, उसका अनुसरण करना चाहिए ।

मोर भगति सदा सुख दायनि । तुलसी कहा सोई हितकारनि ॥
सरल सुगम उनि उपाइ बताई । सोई सब सुन सुत मन चित्त लाई ॥

व्याख्या - मेरी भक्ति सदा सुख देनेवाली होती है अतः तुलसीदास ने उसी जग का हित करनेवाली भक्ति को बताया है । तुलसी ने मेरी भक्ति का सरल व सुगम उपाय बताया है । हे वत्स ! तुम उसी को मन को चित्त में समाहित कर सुनो ।

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छ प्रद बेद बखाना॥
जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

व्याख्या - धर्म अर्थात सहज स्वभाव से वैराग्य बढ़ता है और योग से ज्ञान पैदा होता है तथा ज्ञान मोक्ष देने वाला होता है । ऐसा वेद बताते आये हैं । परन्तु मैं जिससे तुरन्त द्रवित हो जाता हूँ, वो तो मेरी भक्ति होती है, जो भक्तों को सुख देनेवाली होती है।

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होइ अनुकूला ॥

व्याख्या - वो मेरी भक्ति स्वतन्त्र होती है । उसे किसी के भी सहारे की जरूरत नहीं पड़ती है तथा ज्ञान-विज्ञान सब भक्ति के अधीन होते हैं । हे वत्स ! भक्ति ही अनुपम सुख का मूल होती है, जो संतों के अनुकूल होने पर मिलती है ।

भगति साधन तुलसी बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥

व्याख्या - भक्ति के साधन, जो तुलसीदास ने बताये हैं, वे सरल रास्ते हैं । जिससे जीव मुझे प्राप्त कर सकते हैं । तुलसीदास ने प्रथम भक्ति का रास्ता संतों का संग करना बताया है तथा दूसरा रास्ता मेरी कथा-प्रसंगों को मन लगा कर सुनना बताया है ।

दो०- गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥ २२ ॥

व्याख्या - गुरु-चरणों की सेवा भक्ति प्राप्त करने का तीसरा उपाय है तथा कपट छोड़ कर मेरे गुणगान करना चौथा भक्ति प्राप्त करने का रास्ता है।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥

व्याख्या - दृढ़ विश्वास के साथ मंत्र का जाप करने पर हृदय में वेदों का प्रकाश हो जाता है । यह पाँचवा भक्ति का रास्ता है । छठा रास्ता वह है, जिसमें शील, दम व नियमों का पालन करते हुए, वैराग्य भाव से कर्म करें तथा निरंतर सज्जनता का आचरण करें ।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोते संत अधिक करि लेखा ॥
आठव जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहि देखइ पर दोषा ॥

व्याख्या - मेरे समान ही समस्त जगत को मुझसे युक्त देखें तथा मुझसे अधिक संतों को मानें । यह सातवाँ रास्ता है । आठवाँ उपाय यथालाभ में संतोष रखना तथा सपने में भी पराये दोष नहीं देखना है ।

नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

व्याख्या - नौवाँ भक्ति का सरल रास्ता यह है कि सबके साथ छलहीन रहें तथा मेरा पूरा भरोसा करें तथा न हर्ष और न दुःख ही होना चाहिए । इन नौ में से अगर कोई एक भी किसी स्त्री-पुरुष के हृदय में होती है तो ।

एहि कर फल पुनि विषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ॥

व्याख्या - इन सबका फल यह होता है कि विषयों से वैराग्य पैदा हो जाता है तथा वैराग्य पैदा होने से मेरे धर्म में अनुराग पैदा हो जाता है अर्थात जीव सहज होना शुरू हो जाता है । श्रवण आदि नौ भक्ति दृढ़ होने पर जीव के मन में मेरी लीलाओं के प्रति अनुराग पैदा हो जाता है ।

दो०- सुखी जीव तब मानहु जब विषय रस होइ बिराग ।
मम भरोस हियँ बाढ़हिं आवइ हियँ सहज अनुराग ॥ २३ ॥

व्याख्या - जीव को सुखी तभी जानना चाहिये, जब उसे विषयों से वैराग्य हो जाये तथा मेरा भरोसा हृदय में बढ़ने लग जाये और सहज में ही अनुराग पैदा होने लग जाये।

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जाने दृढ़ नेवा ॥

व्याख्या - संतजनों के चरणकमलों में प्रेम हो तथा मन, वचन व कर्म से भजन के दृढ़ नियम का पालन करें । गुरु, माता, पिता, पति, बंधु आदि मुझे दृढ़ता के साथ मानें ।

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें । तुलसी कहँ निरंतर बस मैं ताकें ॥

व्याख्या - मेरे गुणगान जो पुलकित हो कर गाये तथा वाणी गदगद हो और नयनों से आँसू निकलते हों तथा जिसके काम, मद, दम्भ आदि भाव नहीं हों। तुलसीदास कहते हैं, ऐसे भक्त के मैं सदा वश में रहता हूँ ।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला ॥
तिन्ह हियँ मोर भगति प्रगटाई । तुलसी सह कवि कोविद गाई ॥

व्याख्या - जो सदा मेरी लीला-प्रसंगों को सुनते और कहते हैं तथा जो सदा

परोपकार में लगे रहते हैं, उनके हृदय में मेरी भक्ति प्रकट हो जाती है। तुलसी सहित सभी कवियों और कोविदों ने भी यही बताया है।

दो०- बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥ २४ ॥

व्याख्या - जो मन, वचन व कर्म से मुझे चाहते हुए, मेरा निष्काम भाव से भजन करते हैं, उनके हृदय रूपी कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

जिन्ह हियँ भगति प्रकटई आई। तिन्ह सब विधि मंगल सुहाई ॥
ध्यान ग्यान सकल मरमा। हियँ आवहिं सज्जन धरमा ॥

व्याख्या - जिनके हृदय में भक्ति प्रकट हो जाती है, उनका सब प्रकार से मंगल हो जाता है। उनके हृदय में सज्जनता के आचरण आ जाते हैं तथा ध्यान और ज्ञान का रहस्य हृदय में समझ आ जाता है।

भगति प्रगटी तुलसी हियँ माही। ग्यानहिं भगतहिं भेद मिटाही ॥
तुलसी कहा उभय अभेदा। जो हरहिं भव संभव खेदा ॥

व्याख्या - वही भक्ति तुलसी के हृदय में प्रकट हुई थी, जिससे ज्ञान और भक्ति के सब भेद मिट गये। तुलसी ने ज्ञान और भक्ति को अभेद बताया है तथा दोनों ही भाव रूपी भव सागर के कष्टों को दूर करने वाले बताये हैं।

तबहुँ तुलसी किछु अंतर माना। सोइ कहउँ सुनहउ सुजाना ॥
ग्यान बिराग जोग बिग्याना। सकल मूल भगति करि जाना ॥

व्याख्या - तुलसी ने फिर भी कहने के लिए कुछ अन्तर माना है। हे वत्स! वह अन्तर बताता हूँ, तुम सुनो - ज्ञान-वैराग्य, योग-विज्ञान सबका मूल भक्ति को ही माना है।

जहाँ भगति तहँ न माया टिकाई। ग्यान बिराग सकइ बिचलाई ॥
सकल जीव भगति अधिकारी। ग्यान दुरलभ हेतु संसारी ॥

व्याख्या - जहाँ भक्ति होती है, वहाँ पर माया नहीं रह पाती है। परन्तु ज्ञान व वैराग्य को माया विचलित कर सकती है। समस्त जीव ही भक्ति प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, परन्तु संसारिकता के कारण ज्ञान प्राप्त करना कठिन होता है।

बिनु ग्यान भगति हियँ आई। भगति बिनु पर ग्यान न पाई ॥
भगति सरल ग्यान कठीना। अन्तहु ग्यान भगति बिलीना ॥

व्याख्या - बिना ज्ञान के भक्ति हृदय में आ सकती है, परन्तु ज्ञान बिना भक्ति के पैदा नहीं हो पाता है। इसलिए भक्ति प्राप्त करना सरल होता है तथा ज्ञान प्राप्त करना कठिन होता है और अन्तकाल में ज्ञान भी भक्ति में ही विलीन हो जाता है।

मोर भगति निरूपम निरूपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥

व्याख्या - मेरी भक्ति तो निरूपम और उपाधि रहित है, जो जिसके हृदय में अबाध रूप से रहती है, उसके हृदय में उसको देख कर माया संकोच करती है तथा वहाँ माया कुछ नहीं कर पाती है ।

दो०- ग्यान अरु भगति अंतर नहिं जब हियँ परइ पहिचानि ।
उभय मारग भिन्न पर जानइ सकल संत सुजान ॥ २५ ॥

व्याख्या - जब हृदय में समझ आ जाता है, तब ज्ञान और भक्ति में अन्तर नहीं रहता है । परन्तु दोनों के रास्तों में अन्तर होता है, इसको सभी संतजन जानते हैं ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण दशम पड़ाव ॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
तात मोर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! यह अकथनीय है । जिसको समझा जा सकता है, परन्तु उसका वर्णन करना कठिन होता है । ये जीव तो मुझ परमात्मा का अविनाशी अंश होता है, जो चेतन, अमल और सहज सुख की राशि होता है ।

गो माया बस परयो उरझाई । बध्यों कीर मरकट की नाई ॥
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई । जद्यपि मृषा छूटत कठिनई ॥

व्याख्या - परन्तु माया के वश में हो जाने के कारण जीव इन्द्रियों में उलझ जाता है और इन्द्रियों से बंदर जैसे रस्सी से बँधता है, वैसे बँध जाता है । इस प्रकार जड़ (इन्द्रियाँ) और चेतन (जीव) की गाँठ पड़ जाती है, जो झूठी होते हुए भी खुलने में कठिन हो जाती है ।

तब ते जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

व्याख्या - जड़-चेतन की ग्रन्थि पड़ने से जीव संसारी हो जाता है और ग्रन्थि छूट नहीं पाती है और बिना ग्रन्थि छूटे जीव सुखी नहीं हो पाता है । वेद-पुराणों ने ग्रन्थि छोड़ने के बहुत से उपाय बताये हैं, परन्तु उनसे ग्रन्थि और उलझती चली जाती है ।

जीव हृदय तम मोह विसेषी । ग्रन्थि छूट किमि परइ न देखी ॥
मोर कृपा जब होवइ विशेषा । तबहिं संभव ग्रन्थि देखा ॥

व्याख्या - जीव के हृदय में मोह रूपी विशेष अन्धकार होने के कारण जड़-चेतन की ग्रन्थि दिखायी नहीं पड़ती है । जब जीव पर मेरी विशेष अनुकंपा होती

है, तब जाकर ही ग्रन्थि का दिखना सम्भव हो पाता है ।

दो०- दिखत परइ जब ग्रन्थि तबहिं संभव निरुआर ।
मोर कृपा प्रकाश करहिं समरप जुगति दरकार ॥ २६ ॥

व्याख्या - जब ग्रन्थि दिखाई पड़ जाती है, तब ही उसका खुलना सम्भव हो पाता है। मेरी कृपा के प्रकाश व ग्रन्थि को खोलने के लिए समर्पण रूपी युक्ति की जरूरत होती है ।

अस संजोग मैं जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जो मोर कृपा हृदय बस आई ॥

व्याख्या - ऐसा योग जब मैं कर देता हूँ, तब ही ग्रन्थि सुलझ पाती है। सात्विक श्रद्धा रूपी गाय मेरी अनुकंपा से जीव के हृदय में आती है।

जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म आचारा ॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिषु पाइ पेन्हाई ॥

व्याख्या - जप, तप, व्रत, यम, नियम और वेदों में वर्णित शुभ धर्म का आचरण रूपी घास जब श्रद्धा रूपी गाय चरती है, तब भाव रूपी बछड़ा पाकर दूध निकालें ।

नोइ निबृत्ति पात्र विश्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई ॥

व्याख्या - निवृत्ति अर्थात विषय-वासनाओं से मुक्ति रूपी नोइ लगा कर विश्वास रूपी पात्र लेकर, अपने मन को वश में करने वाला अहीर परम धर्ममय (सहजता) रूपी दूध निकालें तथा निष्काम रूपी अग्नि पर दूध को गर्म करें ।

तोष मरुत तव छमा जुडावे। धृति सम जावनु देइ जमावे ॥
मुदिता मथै विचार मथानी। दम आधार रजु सत्य सुबानी ॥

व्याख्या - तब दूध को संतोष और क्षमा रूपी हवा से ठण्डा करें तथा धैर्य और सम (मन का निग्रह) रूपी जावन देकर दही जमावें तथा प्रसन्नता पूर्वक तत्व विचार रूपी मथनी लगा कर मंथन करें तथा मथनी को दम रूपी (इन्द्रिय दमन) आधार प्रदान करके, सत्य वाणी रूपी रस्सी लगायें ।

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥
वासना छछि देइ सब फैलाई। प्रसन्न चित करइ इहँ सबाई ॥

व्याख्या - तब मंथन करके निर्मल, वैराग्ययुक्त सुन्दर व परम पवित्र मक्खन बाहर कर लेना चाहिए तथा वासना रूपी छाछ को फैला दें। ये सब कार्य प्रसन्न मन से करने चाहियें ।

दो०- जोग अनल करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावैं ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥ २७ ॥

व्याख्या - तब योग रूपी अग्नि प्रकट करके, उसमें समस्त शुभाशुभ कर्म रूपी ईंधन लगा दें (सब कर्मो को योग रूपी अग्नि में भष्म कर दें) तथा जब वैराग्य रूपी मक्खन का ममता रूपी मल जल जाए, तब ज्ञान रूपी घी को बुद्धि से ठण्डा करें।

दो०- तब बिग्यान रूपिनि बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥ २८ ॥

व्याख्या - तब विज्ञान रूपी बुद्धि से उस निर्मल घी को पाकर, चित्त रूपी दीपक को भर कर, समता रूपी दीवट बनायें और अच्छी तरह जमा कर रखें।

दो०- तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करे सुगाढ़ि ॥ २९ ॥

व्याख्या - जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति रूपी तीनों अवस्थाएँ और सत, रज, तम रूपी तीनों गुणों रूपी कपास से तुरीया अवस्था रूपी रूई को निकाल कर और फिर उसे सँवार कर, उसकी सुन्दर कड़ी बाती बनायें।

सो०- एहि बिधि लेसे दीप तेज रासि बिग्यानमय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥ १ ॥

व्याख्या - इस प्रकार तेज राशि विज्ञानमय दीपक को जलावें, जिससे उसके पास जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायें।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥

व्याख्या - वह ब्रह्म मैं हूँ, यह वृत्ति ही अखण्ड होना दीपक की प्रचण्ड लौ है तथा आत्मा की अनुभूति का सुख ही उसका प्रकाश है। तब उससे भावों के मूल से उत्पन्न समस्त भ्रम का नाश हो जाता है।

प्रबल अविधा कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥

व्याख्या - तब उस दीपक के प्रकाश से प्रबल अविधा का परिवार तथा मोह आदि का अंधकार मिट जाता है। तब बुद्धि ज्ञान रूपी प्रकाश प्राप्त करके हृदय में पड़ी हुई ग्रन्थि को सुलझाने लगती है।

छोरन ग्रन्थि पाव जौ सोई। तब यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रन्थि जब जानि परई। विघ्न अनेक तब माया करई ॥

व्याख्या - जब कोई जीव इस जड़-चेतन की ग्रन्थि को खोल पाता है, तब ही वह कृतार्थ हो पाता है परन्तु जब लगने लगता है कि यह ग्रन्थि छूटनेवाली है, तो माया नाना प्रकार से विघ्न पैदा करने लगती है।

रिद्धि-सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा । अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥

व्याख्या - तब ऋद्धि-सिद्धियाँ नाना प्रकार से प्रेरित करने लगती हैं तथा जीव की बुद्धि को लोभ में फँसाने लग जाती हैं । ऋद्धि-सिद्धियाँ साधक के पास जाकर छल, कपट करने लगती हैं तथा ज्ञान रूपी दीपक की बाती को बुझाने लगती हैं।

होइ बुद्धि जो परम सयानी । तिन्ह तन चित्तव न अनहित जानी ॥
जो तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तो बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥

व्याख्या - जिनकी बुद्धि सयानी होती है, उनके चित्त पर ऋद्धि-सिद्धियाँ बुरा प्रभाव नहीं कर पाती हैं । परन्तु माया के विघ्नों से अगर बुद्धि विचलित नहीं होती है, तो फिर देवता (भाव) नाना विघ्न पैदा करते हैं ।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं विषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥

व्याख्या - इन्द्रियों के द्वार पर हृदय रूपी घर के अनेक झरोखे होते हैं । वहाँ प्रत्येक झरोखे पर सुर (चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर) रूपी झरोखें होते हैं, जो विषय रूपी हवा को आते देखकर हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं ।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई । तबहिं दीप बिग्यान बुझाई ॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ॥

व्याख्या - जब विषय रूपी हवा हृदय रूपी घर में प्रवेश करती है, तो विशुद्ध ज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है तथा ग्रन्थि खुल नहीं पाती है और प्रकाश मिट जाता है । जिससे बुद्धि विषय-वासनाओं से फिर व्याकुल हो उठती है।

इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सुहाई । बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

व्याख्या - इन्द्रियों और सुरों (चन्द्र व सूर्य स्वर) को ज्ञान अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि उनकी विषय भोगों में सदा ही प्रीति रहती है और बुद्धि भी विषय-वासना रूपी हवा से बावली हो जाती है । फिर दोबारा उस ज्ञान रूपी दीपक को कौन जलावे ?

दो०- तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस ।
मोर माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिनु प्रयास विशेष ॥ ३० ॥

व्याख्या - ज्ञान-दीप के बुझ जाने पर फिर जीव संसार में नाना कष्ट भोगता है । इस प्रकार मेरी माया अत्यन्त दुस्तर होती है, जिसे बिना विशेष प्रयास के कोई पार नहीं कर पाता है ।

दो०- कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ ३१ ॥

व्याख्या - ज्ञान कहने में कठिन, समझने में कठिन और साधने में भी कठिन होता है। अगर संयोगवश यह हो भी जाये, तो फिर उसे बचाये रखने में अनेक विघ्न होते हैं ।

ग्यान पंथ कृपान की धारा । परत तुलसी होइ नहिं बारा ॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई । सो केवल्य परम पद लहई ॥

व्याख्या - ज्ञान का मार्ग तलवार की धार के समान होता है। तुलसीदास कहते हैं कि इस मार्ग से गिरने में देर नहीं लगती है। परन्तु जो इस मार्ग को निर्विघ्न पार कर लेता है, वह मोक्ष रूपी परमपद प्राप्त कर लेता है ।

अति दुर्लभ केवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद ॥
मोहि भजत सोइ मुकुति गोसाई । अनइच्छित आवइ बरिआई ॥

व्याख्या - संत, पुराण, वेद-शास्त्र सभी कहते हैं कि केवल्य पद (अर्थात विषय वासनाओं से मुक्ति की अवस्था) बहुत कठिन होता है। परन्तु मेरे भजन करने से सहज में जीव इन्द्रियों से मुक्त हो जाता है अर्थात विषय-वासनाओं से जबरदस्ती मुक्ति मिल जाती है ।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सोउ सदाई । रहि न सकइ मोर भगति बिहाई ॥

व्याख्या - जैसे थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकार से उपाय क्यों नहीं करें। वैसे ही मोक्ष का सुख सदा मेरी भक्ति को छोड़ कर नहीं रह सकता है ।

अस बिचारि मोर भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ॥

व्याख्या - ऐसा विचार कर मेरे बुद्धिमान भक्त मोक्ष की इच्छा को छोड़ कर मेरी भक्ति करते हैं। भक्ति करने से बिना ही प्रयास के अविद्या की मूल जड़ वैसे ही समाप्त हो जाती है ।

भोजन करिअ तृप्ति हित लागी । जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥
असि मोर भगति सुगम सुखदाई । कोह अस मूढ़ न जाहि सुहाई ॥

व्याख्या - जैसे भोजन तो तृप्ति के लिए किया जाता है, परन्तु जठराग्नि उसे बिना प्रयास के ही पचा डालती है । ऐसी सरल और सुख देनेवाली मेरी भक्ति, ऐसा कौन मूर्ख होगा जिसे अच्छी नहीं लगेगी ?

दो०- सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ नर नारि ।
भजहिं मोहि संत जन सदा अस सिद्धांत बिचारि ॥ ३२ ॥

व्याख्या - सेवक और स्वामी के भाव के बिना (अर्थात जीव स्वयं को सेवक माने और मुझ परमात्मा को जगत का स्वामी माने) कोई भी स्त्री-पुरुष भाव रूपी भवसागर को पार नहीं कर पाता है । इसलिए इस सिद्धांत को हृदय में विचार कर संतजन मुझे सदा भजते हैं ।

दो०- जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ ईश्वरहि भजहिं जीव ते धान्य ॥ ३३ ॥

व्याख्या - जो परमशक्ति चेतन जीव को जड़ कर देती है और जड़ जीव को चेतन कर देती है । इसलिए जो लोग ऐसे समर्थवान परमात्मा का भजन करते हैं, वे धन्य हो जाते हैं ।

कहा तुलसी ज्ञान सिद्धान्त बुझाई । भगति मनि बहु प्रभुता गाई ॥
मोर भगति चिंतामनि सुंदर । बसइ तुलसी जाके उर अंतर ॥

व्याख्या - तुलसीदास ने ज्ञान के सिद्धान्त को बहुत प्रकार से समझाया है तथा भक्ति रूपी मणि की महिमा को भी बहुत प्रकार से बताया है । तुलसीदास कहते हैं कि मेरी भक्ति रूपी मणि जो जिसके हृदय में बसती है, बहुत सुंदर होती है।

परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥

व्याख्या - भक्ति सदा प्रकाश रूप रहती है, जिसके लिए किसी भी प्रकार के दीपक व बत्ती की जरूरत नहीं होती है । उस प्रकाश रूपी मणि के पास मोह रूपी दरिद्रता नहीं रहती है तथा लोभ रूपी हवा भी उस प्रकाश को बुझा नहीं पाती है ।

प्रबल अबिधा तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥

व्याख्या - भक्ति रूपी मणि के प्रकाश से घोर अविद्या रूपी अन्धकार मिट जाता है तथा समस्त लोभ आदि भावों के समुदाय भी हार जाते हैं । जिसके हृदय में भक्ति बसती है, उसके पास काम, क्रोध रूपी भाव जा ही नहीं पाते हैं ।

गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥

व्याख्या - उसके लिए विष अमृत के समान हो जाता है तथा शत्रु हित करनेवाला हो जाता है । उस भक्ति रूपी मणि के बिना कोई सुख प्राप्त नहीं कर सकता है । बड़े-बड़े मानसिक रोग, जिनके वश में होकर सब जीव दुःखी

हो रहे हैं, उसको नहीं सताते हैं ।

मोर भगति मनि उर बस जाके । दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥

व्याख्या - मेरी भक्ति जिसके हृदय में बसती है, उसको सपने में भी लेश मात्र दुःख नहीं हो पाता है। वे लोग ही चतुर हैं, जो भक्ति रूपी मणि के लिए प्रयत्न करते हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । मोर कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥
सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहिं भटभेरे ॥

व्याख्या - यद्यपि वह भक्ति रूपी मणि जगत में प्रकट रहती है, परन्तु मेरी अनुकंपा के बिना उसे कोई प्राप्त नहीं कर पाता है । उसको प्राप्त करने के उपाय भी सरल हैं । परन्तु अभागे मनुष्य उसे ठुकरा देते हैं।

पावन पर्वत सहज ध्याना । मोर अनुभूति रुचिराकर नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥

व्याख्या - सहज ध्यान रूपी पवित्र पर्वत हैं, जिनमें मेरी कथा रूपी खान होती है । जिसको सज्जन लोग ज्ञान-वैराग्य रूपी आँखें खोलकर देखते हैं तथा सुमति रूपी कुदाल लेकर खोदते हैं ।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी ॥
तुलसी मन अस बिस्वासा । मोर तें अधिक मोर दासा ॥

व्याख्या - भावपूर्वक जो लोग खोजते हैं, उनको भक्ति रूपी मणि मिल जाती है, जो सब सुखों को देनेवाली होती है । तुलसी के मन में तो ऐसा विश्वास है कि मेरे भक्त मुझ परमात्मा से भी बढ़ कर होते हैं ।

मैं सिन्धु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु मय संत समीरा ॥
सब कर फल मोर भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहुँ न पाई ॥

व्याख्या - मैं परमात्मा समुद्र हूँ तथा धीर पुरूष मेघ के समान हैं तथा मैं चंदन के पेड़ के समान हूँ, तो संत लोग सुगन्धित हवा के समान होते हैं । इन सब साधनों का फल ही मेरी भक्ति होती है, जो बिना संत की कृपा के किसी को नहीं मिलती है ।

संशय अन्त मिटइ संसारा । सोई धीर पुरुष सन्त पुकारा ॥
अस बिचारि करहिं संतसंगा । मोर भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

व्याख्या - जिसके संशयों का अन्त हो जाता है, उसके मन से सांसारिकता मिट जाती है और ऐसे धीर पुरुष को ही सन्त कहा जाता है। अतः ऐसा विचार कर, जो सदा संतों की संगत करते हैं, उन्हें मेरी भक्ति सुलभ हो जाती है ।

दो०- ध्यान पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहि ।
अनुभव सुधा मथि काढहिं भगति मधुरता जाहि ॥ ३४ ॥

व्याख्या - ध्यान समुद्र है और ज्ञान रूपी पर्वत है तथा संत रूपी देवता हैं, जो उस समुद्र से अनुभूति रूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्ति की मधुरता बसी होती है ।

दो०- बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइअ सो मोर भगति कहा तुलसी विचारि ॥ ३५ ॥

व्याख्या - वैराग्य रूपी ढाल से अपने-आपको बचाते हुए तथा ज्ञान रूपी तलवार से लोभ, मोह व मद रूपी शत्रुओं को मार कर, जो विजय प्राप्त करती है, वही मेरी भक्ति होती है । तुलसीदास ने ऐसा ही अनुभव करके कहा है ।

सोइ मोर भगति सब सुख मूला । मिलइब सन्त होहिं अनुकूला ॥
समरप देखि रिझहिं सन्ता । सो इहँ मूल मोर भगति मंता ॥

व्याख्या - इसलिए मेरी भक्ति ही समस्त सुखों का मूल होती है, जो सन्तजन अनुकूल होने पर ही मिल पाती है । समर्पण के भाव को देख कर सन्त लोग द्रवित होते हैं । इसलिए समर्पण का भाव ही मेरी भक्ति का मूल मंत्र होता है ।

सोई सर्वग्य तग्य सोई पंडित । सोई गुण गृह विग्यान अखंडित ॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाके मम चरण रति होई ॥

व्याख्या - वही सर्वज्ञ, दक्ष, पण्डित, गुणों का धाम, विज्ञानी तथा समस्त लक्षणों से युक्त होता है, जिसका मेरे चरणों में अनुराग होता है ।

सुख संपत्ति परिवार बड़ाई । काम क्रोध मद लोभ सबाई ॥
ए सब मोर भगति के बाधक । कहहिं संत मम पद अवराधक ॥

व्याख्या - सुख-सम्पदा, परिवार की बड़ाई, काम-क्रोध, मद, लोभ ये सब मेरी भक्ति में बाधक होते हैं । मेरी आराधना में लगे हुए संतजन ऐसा ही कहते हैं।

सत्रु मित्र सुख दुःख जग माहीं । माया कृत परमारथ नाहीं ॥
नट मरकट इव सबहिं नचावत । वेद पुराण संत जन गावत ॥

व्याख्या - शत्रु-मित्र, सुख-दुख जो संसार में आभासित होते हैं, ये सब माया के कारण ही होते हैं । परमार्थ की अवस्था में इनका आभास नहीं होता है । ये माया के भाव सब जीवों को मदारी के बंदर की तरह नचाते हैं । वेद, पुराण व सभी संत ऐसा ही कहते हैं ।

दो०- ग्यानी तापस सूर कवि कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न ऐहिं संसार ॥ ३६ ॥

व्याख्या - तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा संसार में कौन ज्ञानी, तपस्वी, योद्धा, कवि, शास्त्रज्ञ व गुणों का ज्ञाता है, जिसको लोभ ने विचलित नहीं किया हो ।

दो०- श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृग लोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥ ३७ ॥

व्याख्या - ऐसा कौन है, जिसे धन के मद ने टेढ़ा नहीं किया हो तथा प्रभुता ने बहरा न किया हो और ऐसा कौन है, जो सुन्दर युवती के नयन रूपी वाणों से घायल नहीं हुआ हो ।

गुण कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान तजेउ निबेही ॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जस न नसावा ॥

व्याख्या - सत, रज व तमों गुण रूपी सन्निपात रोग किसको नहीं हुआ है ? कौन है, जिसने मान को त्याग दिया है ? यौवन रूपी बुखार ने किसे नहीं बावला किया तथा ममता ने किसके यश को नहीं मिटाया है ?

मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया ॥

व्याख्या - मत्सर के भाव ने किसे कलंक नहीं लगाया तथा शोक रूपी हवा ने किसे विचलित नहीं किया ? ऐसा संसार में कौन है, जिसको माया ने नहीं सताया हो तथा चिंता रूपी सर्पिन ने नहीं खाया हो ?

कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहिं न लाग घुन को अस धीरा ॥
यह सब माया कर प्रभावा । प्रबल अमित को सकै गावा ॥

व्याख्या - शरीर रूपी लकड़ी में इच्छाओं रूपी कीड़ा किसको नहीं लगता है? ये सब माया का ही प्रभाव होता है । माया इतनी प्रबल होती है कि इसका कौन वर्णन कर सकता है ?

ब्यापक जग माया कटक प्रचंडा । भट कामादि दंभ कपट पाषंडा ॥
संत मुनिजन जाहि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥

व्याख्या - समस्त संसार में माया की भावों रूपी सेना व्याप्त है । जिसमें काम, क्रोध, मद, लोभ, दंभ, कपट व पाखण्ड रूपी योद्धा शामिल होते हैं । ये माया रूपी योद्धा संत व मुनियों को भी डराते रहते हैं । फिर साधारण जीवों का तो कहना ही क्या है ?

दो०- दासी माया मोर सुत तोहि कहउँ समुझाई ।
छूट न मोर कृपा बिनु चाहि कोटि करि उपाई ॥ ३८ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें समझा कर कहता हूँ कि यह माया मेरी ही दासी

होती है । इसलिए यह मेरी अनुकंपा के बिना छूट भी नहीं पाती है । चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों ना कर ले ।

तुलसी कहा बहु मानस रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

व्याख्या - तुलसीदास ने बहुत से मानसिक रोगों का वर्णन किया है । जिनसे सभी लोग कष्ट पाते रहते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि मोह ही समस्त बीमारियों का जड़ होता है । जिससे पुनः अन्य रोग पैदा होते हैं।

काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जों तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥

व्याख्या - काम वायु-विकार है, लोभ कफ का विकार है तथा क्रोध पित्त विकार होता है । तुलसी कहते हैं कि अगर वात, कफ व पित्त तीनों विकार एक साथ हो जाते हैं, तो मृत्यु निकट आ जाती है ।

बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई । हरष बिषाद गरह बहुताई ॥

व्याख्या - विषय सुख की कठिन इच्छाएँ सब कष्ट देनेवाली होती हैं। उनका नाम कौन जानता है ? ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है ।

पर सुख देखि जरनि सोई छाई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ ॥

व्याख्या - पराये सुख को देख कर जो जलन होती है, वही क्षय रोग है । दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है । अहंकार दुःख देनेवाला गाँठ का रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नसों का रोग है ।

तृष्णा उदरबृद्धि अति भारी । त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

व्याख्या - तृष्णा बड़ा भारी जलोदर रोग है । तीन प्रकार की (सत, रज, तम) प्रबल इच्छाएँ तिजारी का रोग हैं । मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं । इस प्रकार अनेक रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ ?

दो०- एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि ॥ ३९ ॥

व्याख्या - एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं । ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं । फिर जीव कैसे शान्ति

प्राप्त कर सकता है ?

दो०- नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान ।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं सुजान ॥ ४० ॥

व्याख्या - नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं । परन्तु वत्स ! उनसे ये रोग नहीं जाते हैं ।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति बियोगी ॥
मानस रोग कछुक तुलसी गाए । हहिं सब के लखि बिरलेन्ह पाए ॥

व्याख्या - इस प्रकार संसार में समस्त जीव रोगी हैं । जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति व वियोग के दुःख से दुःखी हो रहे हैं । इस प्रकार कुछ मानसिक रोगों का तुलसीदास ने वर्णन किया है । ये रोग हैं तो सबको, परन्तु कुछ विरले ही इन्हें जान पाते हैं ।

जाने ते छीजहिं कछु पापी । नास न पावहिं जन परितापी ॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ॥

व्याख्या - जीव को जलानेवाले इन रोगों को जानने से ये कम हो जाते हैं। परन्तु इनका नाश नहीं हो पाता है । विषय-वासना रूपी कुपथ पाकर ये रोग पैदा होने लगते हैं । ये मुनियों के हृदय में भी हो जाते हैं । मनुष्य तो क्या चीज है ?

माया कृत जग रोग अनेका । औषध एकहि भगति बिबेका ॥
मोर कृपा नासहिं सब रोगा । जौं जीव हियँ बनहिं संजोगा ॥

व्याख्या - माया से पैदा होनेवाले संसार में अनेक रोग हैं । जिनकी भक्ति रूपी विवेक ही एकमात्र औषधि है । मेरी अनुकंपा से इन सब रोगों का नाश होता है, जो संयोग से जीव के हृदय में आ जाये तो।

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा । संजम यह न बिषय कै आसा ॥
मोर भगति संजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥

व्याख्या - सत्गुरु रूपी वैद्य के वचनों में विश्वास हो और विषयों की आशा न करे, यही संयम है । मेरी भक्ति ही संजीवनी जड़ी है, जिसका श्रद्धा रूपी बुद्धि के साथ अनुपान होता है ।

एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं । नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई । जब उर बल बिराग अधिकाई ॥

व्याख्या - इस प्रकार भले ही रोगों का नाश हो जाता है, वरना करोड़ों उपाय करने पर भी रोग जाते नहीं हैं । मन को निरोग तब जानना चाहिए, जब वह इन्द्रियों का स्वामी (गो + साँई) हो जाये अर्थात जब इन्द्रियाँ मन के वश में आ जाती हैं, तभी मन निरोगी होना शुरू होता है तथा तब हृदय में वैराग्य प्रबल होने लग जाता है।

सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई ॥
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह मोर भगति उरछाई ॥

व्याख्या - उससे सुमति रूपी भूख नित्य बढ़ने लगती है, जिससे विषय-वासना रूपी कमजोरी दूर हो जाती है। जब जीव निर्मल ज्ञान रूपी जल में स्नान करता है, तब मेरी भक्ति हृदय में आ जाती है।

भगति औषध नासहिं सब रोगा। निसि दिवस बढ़हिं विकार बियोगा ॥
एहि भाँति होवहिं मन चंगा। जीव नहावहिं आनन्द गंगा ॥

व्याख्या - भक्ति रूपी औषधि से सब रोगों का नाश हो जाता है तथा रात-दिन विकारों से जीव मुक्त होता चला जाता है। इस प्रकार मन निरोग हो जाता है और जीव आनन्द रूपी गंगा में नहाने लगता है।

दो०- बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु मोर भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥ ४१ ॥

व्याख्या - जल को मथने से भले ही घी हो जाए तथा बालू से भले ही तेल निकल आये। परन्तु मेरे भजन के बिना भाव रूपी भवसागर पार नहीं किया जा सकता है। तुलसीदास कहते हैं कि यह सिद्धांत अटल है।

काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। मोर भजन प्रीति अति जाही ॥
श्रुति सिद्धांत तुलसी बताई। सो भजइ मोहि काज बिसराई ॥

व्याख्या - जिसके हृदय में मेरे भजन के प्रति अति प्रीति होती है, उसे काल धर्म अर्थात समय की अनुकूलता और प्रतिकूलता नहीं व्यापती है। तुलसीदास ने श्रुतियों के सिद्धांत को ही बताया है कि सब कार्य छोड़ कर मेरा भजन करना चाहिए।

मैं बिग्यान रूप नहिं मोहा। भगत न पर करउँ अति छोहा ॥
जीवाधम सब भाँति अपावन। आवइ शरण करउँ जग पावन ॥

व्याख्या - मैं विज्ञान रूप हूँ तथा मुझे किसी प्रकार का मोह नहीं होता है तथा मैं मेरे भक्तों पर सदा बहुत कृपा करता रहता हूँ। अगर कोई जीव बहुत अधम है और सब प्रकार से अपवित्र है, तो भी मेरी शरण में आने पर उसे संसार में पवित्र कर देता हूँ।

सोइ सर्बग्य गुनी ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। मोर भजन जाकर मन राता ॥

व्याख्या - जिसका मन मेरे भजन में लगा रहता है, वही सर्वज्ञ है, गुणी है और वही ज्ञानी है। वही यश प्राप्त करनेवाला है, वही विद्वान है और वही दानी है। वही धर्म का पालन करनेवाला और कुल का त्राता होता है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना । मोर मरम नीक तेहि जाना ॥
धन्य घरी सोइ जब सत संगा । धन्य जीव हियँ भगति अभंगा ॥

व्याख्या - वही नीतिवान और परम चतुर होता है, जो मेरे रहस्य को ठीक तरीके से जान लेता है । वही घड़ी धन्य होती है, जिसमें सत्संग होता है तथा वही जीव धन्य होता है, जिसके हृदय में अटूट भक्ति होती है ।

दो०- धन्य धन्य प्रभु तुम कृपा तिहार नसावइ त्रयशूल ।
अग्य जानइ मोहि प्रभु सदा रहउ मोर अनुकूल ॥ ४२ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं । आपकी अनुकंपा तीनों तापों (दैहिक, दैविक व भौतिक) के कष्टों को मिटा देती है । अतः प्रभु ! मुझे अज्ञानी समझ कर आप सदा मेरे अनुकूल रहिए ।

जय संसार मूलं माया धारकं । जय ज्ञानानन्दस्वरूपं निराकारम् ॥
संत मुनि जन हियँ रंजनम् । अन्तः करणं दोष विभंजनम् ॥

व्याख्या - हे संसार के मूल व माया को धारण करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे ज्ञान के आनन्द के स्वरूप निराकार ! आपकी जय हो । आप संत व मुनियों के हृदय में संतुष्टि प्रदान करनेवाले हैं तथा जीव के अन्तःकरण के दोषों का नाश करनेवाले हैं ।

भगत हिय भगति प्रदायकम् । महा औषधं भव रोग निवारकम् ॥
जय अविषयम् स्वयं प्रकाशकम । जय निरञ्जनं सर्व व्यापकम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप भक्तों के हृदय में भक्ति प्रदान करनेवाले हैं तथा भाव रूपी रोगों के विनाश के लिए आप महान औषधि हैं । हे अविषयी और स्वयं प्रकाशित होनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे निरंजन व सर्वत्र व्यापक प्रभु ! आपकी जय हो।

जय अद्वितीयं सच्चिदानन्दघनम् । जय परमानन्दम् एकरसम् ॥
जय विज्ञानघनम् अज्ञान नाशकम् । जय मन गो पारम् सत्ता मात्रम् ॥

व्याख्या - हे अद्वितीय, सच्चिदानन्द घन ! आपकी जय हो । हे परमानन्द, सदा एकरस प्रभु ! आपकी जय हो । हे विज्ञान के घर व अज्ञाननाशक प्रभु! आपकी जय हो । हे मन व इन्द्रियों से परे सत्तामात्र प्रभु ! आपकी जय हो।

जय परम पावन पाप नाशकम् । जय मंगल मूलः मंगल दायकम् ॥
जय भवभय हारकं अमृतमयम् । जय ऐश्वर्ययुक्तः वैभव दायकम् ॥

व्याख्या - हे परम पवित्र व समस्त पापों का नाश करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे मंगल के मूल व मंगल को देनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे भाव रूपी भय को दूर करनेवाले अमृतमय प्रभु ! आपकी जय हो । हे ऐश्वर्य से युक्त व वैभव को देने

वाले प्रभु ! आपकी जय हो ।

जय अखिलम् सर्वज्ञ भगवानम् । जय जन्म जरा मरण पारम् ॥
जय पुराण पुरुषम तेजोमयम् । जय शोभा धामम् विश्व मयम् ॥

व्याख्या - हे अखिलेश्वर, सर्वज्ञ भगवन् ! आपकी जय हो । हे जन्म, बुढ़ापा व मृत्यु से परे प्रभु ! आपकी जय हो । हे पुराण पुरूष, तेजोमय ! आपकी जय हो । हे शोभा के धाम व विश्व के रूप में व्याप्क प्रभु ! आपकी जय हो ।

जय सृजक पालक प्रलय कारकं । जय नित्यं शुद्धं बुद्धं भव तारकं ॥
जय अचलं असंगम् अगोचरम् । जय सत्यं शिवम् सुन्दरम् ॥

व्याख्या - हे सृजक, पालनकर्ता व प्रलय के कारण प्रभु ! आपकी जय हो। हे नित्य, शुद्ध व बोधमय तथा भाव रूपी भवसागर को पार करानेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे अचल, असंग व अगोचर प्रभु ! आपकी जय हो। हे सत्यं शिवं सुन्दरम् ! आपकी जय हो ।

जय गुणातीतम् गुणसम्पन्नम् । आनन्दघनं सहज प्रसन्नम् ॥
जय काम मदादि गर्व नाशकम् । जय सर्वम भगत रक्षकम् ॥

व्याख्या - हे गुणातीत व गुणों से सम्पन्न प्रभु ! आपकी जय हो । हे आनन्दघन व सहज में ही प्रसन्न रहनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे काम, क्रोध, मद आदि के गर्व का नाश करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे सब कुछ व भक्तों के रक्षक प्रभु ! आपकी जय हो ।

दो०- **जगत कारण जगताधारी जय जगतपिता परमेश ।**
मन वाणी गुण गो पार तुम कोटि कोटि नमन जगतेश ॥ ४३ ॥

व्याख्या - हे जगत के कारण व जगत को धारण करनेवाले,हे जगत के पिता, हे परमेश्वर ! आपकी जय हो । हे प्रभु ! आप तो मन, वाणी, गुण व इन्द्रियों से परे हैं, मैं आपको करोड़ों-करोड़ों नमस्कार करता हूँ ।

नमामी भक्तवत्सलं नारायणं । नमामी शरणागतं रक्षकम् ॥
नमामी विभो सूर्य कोटि समानम् । नमामी मायापतिम् परमेश्वरम् ॥

व्याख्या - हे भक्तवत्सल, नारायण (हृदय स्थित नर को घर बना कर रहने वाले) आपको नमस्कार । हे शरण में आनेवाले की रक्षा करने वाले प्रभु ! आपको नमस्कार । हे करोड़ों सूर्यो के समान प्रभु ! आपको नमस्कार, हे मायापति परमेश्वर ! आपको नमस्कार ।

नमामी चिदानन्दम् दायकम् । नमामी देवं सर्वरूपं भासितम् ॥
नमामी अनेकानेकम् मालिकम् । नमामी भावरूपं सर्व व्यापकम् ॥

व्याख्या - हे जीव के चित को आनन्द देनेवाले स्वामी ! आपको नमस्कार। हे सब के रूप में आभासित होनेवाले प्रभु ! आपको नमस्कार। हे मालिक ! आप एक ही हैं। परन्तु अनेक दिखाई पड़ने वाले ! आपको नमस्कार। हे भाव के रूप में सर्वत्र व्यापक प्रभु ! आपको नमस्कार।

नमामी गुण धामं कृपा मूलम्। नमामी नाथं त्रिशूल नाशकम्॥
नमामी चिदाकाशं सत्य सरूपम्। नमामी परमब्रह्म अखिलम्॥

व्याख्या - हे गुणों के धाम व कृपा के मूल प्रभु ! आपको नमस्कार। हे नाथ तीनों प्रकार के कष्टों का (दैहिक, दैविक व भौतिक) नाश करनेवाले ! आपको नमस्कार। हे चिदाकाश,हे सत्यस्वरूप प्रभु ! आपको नमस्कार। हे पारब्रह्म अखिल प्रभु ! आपको नमस्कार।

नमामी सहज करुणाकरम्। नमामी प्रभो सर्व अघ नाशकम्॥
नमामी नमामी मम नाथम्। अहम त्वमेव शरणागतम्॥

व्याख्या - हे सहज में ही करुणा करनेवाले प्रभु ! आपको नमस्कार। हे सब पापों का नाश करनेवाले प्रभु ! आपको नमस्कार। हे मेरे नाथ आपको नमस्कार, नमस्कार। हे नाथ ! मैं आपकी शरण में आया हूँ।

दो०- कामी क्रोधी मद लोभी अरु मैं कीन्ह बहु दुराचार।
स्वार्थ वश शरण तिहारी तउ करउ नाथ मोर उद्धार॥ ४४॥

व्याख्या - मैं कामी, क्रोधी, अहंकारी और लोभी हूँ तथा मैंने बहुत से बुरे आचरण किये हैं। अब मैं स्वार्थ के कारण आपकी शरण में आया हूँ, तो भी हे प्रभु ! मेरा उद्धार कर दीजिए।

मोर हियँ नाथ बहुरि ग्लानी। करउ क्षमा मोइ जानि अज्ञानी॥
अविरल भगति होव हियँ मोरे। रहउँ सहज अनुग्रह तोरे॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे हृदय में बहुत ग्लानि हो रही है। हे नाथ ! मुझे अज्ञानी समझ कर क्षमा कर दीजिए। मेरे हृदय में अविरल भक्ति हो तथा आपकी अनुकंपा से मैं सदा सहज रहूँ।

सोइ देवउ नाथ मोहि वरदाना। सहज दयाल तुम कृपा निधाना॥
एवमस्तु सुन सुत मोरे। रहइब अबिरल भगति हियँ तोरे॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मुझे ऐसा वरदान दीजिए। हे प्रभु ! आप सहज में दया करनेवाले और कृपा के धाम हैं। हे वत्स ! ऐसा ही होगा। तुम मेरी बात सुनो। तुम्हारे हृदय में सदा अविरल भक्ति निवास करेगी।

तोहि देवउँ सुत वर दूसर । होइव तुम जग हितकर ॥
माया मोर अब ब्यापहिं नहिं तोही । सुत प्रिय सदा तुम होइब मोही ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हें दूसरा वरदान यह देता हूँ कि तू जगत का हित करनेवाला होगा । मेरी माया तुम्हें कभी नहीं व्यापेगी और तुम सदा मुझे प्रिय होओगे ।

धन्य देव मैं बहु आभारी । कृपा नाथ तुम कीन्ह अपारी ॥
तुलसी मरम बहुरि समझाई । मरम व्यास अब देउ बताई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ कि आपने मेरे ऊपर अपार अनुकंपा की है । आपने तुलसी की लेखनी के रहस्य को बहुत प्रकार से समझा दिया है । हे प्रभु ! अब व्यास की लेखनी के रहस्य को बता दीजिए ।

दो०- काह कहत लिखत व्यास मुनि काह जग रहृयो समझाय ।
मरम असल नाथ काह कृपा करि देहु मोहि बताय ॥ ४५॥

व्याख्या - व्यास मुनि जी ने क्या कहा है और क्या लिखा है तथा संसार क्या समझ रहा है ? हे प्रभु ! मुझे समझा कर कहिए कि वास्तविक रहस्य क्या है ?

सुन सुत कहउँ मरम अपारी । व्यास मुनि कहा हियँ विचारी ॥
अनुभव निज बखानहि व्यासा । बहुरि प्रतीक ग्यान प्रकासा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुम्हें गम्भीर रहस्य बताता हूँ, जो व्यास मुनि ने हृदय में विचार कर कहा है । व्यास ने अपने अनुभव को ही बताया है और ज्ञान को प्रकट करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है ।

कृष्ण द्वेपायन भा निज नामा । श्याम वर्ण जन्म दीप स्थाना ॥
निज आत्म कृष्ण करि माना । सोइ तत्व नाना भाँति बखाना ॥

व्याख्या - व्यास का स्वयं का नाम कृष्ण द्वैपायन था, क्योंकि वे स्वयं काले रंग के थे तथा द्वीप पर जन्म हुआ था । इसलिए व्यास ने अपनी आत्मा को कृष्ण का नाम दिया और उसी आत्मतत्व को नाना प्रकार से बताया है ।

लिख लिख वेद कीन्ह विस्तारा । सोइ जग व्यास कहि पुकारा ॥
कहहउँ अब मरम प्रतीका । अरथ गम्भीर ईक ते ईका ॥

व्याख्या - व्यास ने लिख-लिख कर वेदों का विस्तार किया है । इसलिए संसार में उसे व्यास नाम से पुकारा गया है । अब मैं यहाँ प्रतीकों के रहस्य को बताता हूँ, जिनका एक से एक गम्भीर अर्थ होता है ।

भीष्म सोइ संकल्प सुजाना । उपजहिं भाव भल मन्द नाना ॥
सकल भाव उपजावन हारा । पितामह सोइ नाम पुकारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! भीष्म नाम संकल्प का ही प्रतीक है, जिससे अच्छे-बुरे सब भाव पैदा होते हैं। संकल्प ही सभी भावों को पैदा करनेवाला होता है। इसलिए ही उसे पितामह का नाम देकर पुकारा जाता है।

दो०- पिण्ड अरु मोह उभय संकल्प तेहि सुत उपजाय।
पिण्ड बंध मोह अन्ध भये जीव हियँ युद्ध कराय ॥ ४६ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! शरीर और मोह दोनों ही संकल्प से ही पैदा होते हैं। जब शरीर के बन्धन में पड़ कर मोह अन्धा हो जाता है, तो जीव के हृदय में ही युद्ध शुरू हो जाता है।

अन्तर मन सोइ कृष्ण भाई। पंचभूत देह सो पाण्डु सुहाई ॥
सत भाव सोइ जीव सौभावा। कौरव कहहि व्यास समझावा ॥

व्याख्या - जीव की अन्तर-आत्मा ही कृष्ण होता है तथा पाँच भूतों से निर्मित शरीर ही पाण्डु का प्रतीक है और सौ वृत्तियाँ जीव का सौभाव (स्वभाव) होती हैं। उन्हीं को कौरवों के प्रतीक के रूप में व्यास ने समझाया है।

मन विशाल सो नृप विराटा। प्रतीक बहु सोइ नाम सम्राटा ॥
अंग राज सोइ कर्ण सुहाई। सुनहिं सब देह नाच नचाई ॥

व्याख्या - मन की विशालता ही विराट राजा का प्रतीक है। इस प्रकार नाना सम्राटों के नाम के प्रतीकों के माध्यम से व्यास ने लिखा है। अंगराज अर्थात कर्ण ही अंगों का राजा होता है। क्योंकि कान जो सुनते हैं, उससे समस्त शरीर प्रभावित हो जाता है।

द्वैत आचरण सदा मन माहिं। सोइ सुत गुरु द्रोण कहाहिं ॥
निज देह धर्म कर्म भाव स्थाना। सोइ धर्म अरु कुरु क्षेत्र बखाना ॥

व्याख्या - जीव के मन में सदा द्वैत आचरण का भाव रहता है, यही द्वैत आचरण का भाव गुरु द्रोणाचार्य का प्रतीक कहा गया है। स्वयं का शरीर ही धर्म व कर्म के भावों का स्थान होता है, इसलिए शरीर ही धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र का प्रतीक है।

उभय पच्छ भाव सेन सुहाई। नाना भाँति इहँ व्यास समझाई ॥
मोह जब जब होवहिं अंधा। भाव तामसिक पावहिं आनंदा ॥

व्याख्या - तामसिक व सात्विक भावों की दोनों तरफ की सेना है। इन्हीं भावों की लड़ाई को व्यास जी ने नाना प्रकार से समझाया है। जब-जब मोह का भाव अंधा हो जाता है, तब-तब तामसिक भाव प्रबल हो उठते हैं।

दो०- मोह अरु बुद्धि अन्ध भयी सोइ धृतराष्ट्र गान्धारी मातु ।
सकल भाव देह बसहिं समझाइ कहउँ तोहि तातु ॥ ४७ ॥

व्याख्या - जब मोह और बुद्धि अन्धे हो जाते हैं, वही धृतराष्ट्र और गान्धारी के प्रतीक हैं। इस प्रकार सभी भाव शरीर में निवास करते हैं। तुमको मैं समझा कर बताता हूँ।

हियँ माझ जब होवइ ग्लानी। बहु भाँति तब माया अकुलानी ॥
तब तब मोहि सुमरहि जीवा। अवतरहुँ बनि आत्मा सीवा ॥

व्याख्या - जब जीव के हृदय में ग्लानि होती हैं, तब माया बहुत प्रकार से व्याकुल करने लगती हैं। उस अवस्था में जीव मुझ परमात्मा को याद करने लगता है और तब मैं जीव की आत्मा में कल्याण करने के लिए अवतरित होता हूँ।

विनाशउँ सकल दुष्करमा। करहुँ स्थापन हियँ धरमा ॥
निमिष निमिष इहँ संभव भाई। कहउँ सत्य तोहि समुझाई ॥

व्याख्या - आत्मा में अवतरित होकर मैं समस्त बुरे कर्मों का विनाश करता हूँ तथा जीव के हृदय में ही धर्म की स्थापना करता हूँ। क्षण-क्षण में यह सम्भव होता रहता है। इसी सत्य को तुम्हें समझा कर बताता हूँ।

एहि भाँति होय मोर अवतारा। कवि कोविद कहा मति अनुसारा ॥
अक्षौहणि अष्टादश सेन बताई। कुरुक्षेत्र काह संभव इहँ भाई ॥

व्याख्या - इस प्रकार मेरा अवतार आत्मा में ही होता है, इसी को विद्वानों और कवियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार लिखा है। व्यास ने अठारह अक्षोहणि सेना बताई है, ये सब क्या कुरुक्षेत्र में समा सकती हैं ?

सो मन माहिं करउ नहिं शंका। भाव युद्ध कहउँ बजाइक डंका॥
जीव देह सोइ युद्ध क्षेत्र भाई। निमिष निमिष होत भाव लड़ाई ॥

व्याख्या - इसलिए मन में किसी प्रकार का संदेह मत करो। मैं डंके की चोट पर सत्य कह रहा हूँ कि व्यास भावों के युद्ध की बात कहते हैं। जीव का शरीर ही युद्ध-क्षेत्र होता है, जहाँ क्षण-क्षण में भावों का युद्ध होता रहता है।

दो०- जो जीते सोइ राज करै अरु राजा सदा प्रबल होय ।
भाव युद्ध व्यास लिखा समझइ बिरला कोय ॥ ४८ ॥

व्याख्या - जो जीत जाता है, वही राज करता है और राजा ही सदा प्रबल होता है। इसलिए व्यास जीव के भावों के युद्ध की बातें लिखते हैं, जिसको कोई बिरला ही समझ पाता है।

निज अनुभूति व्यास बखानी। भगति कहहि सकल निसानी ॥
समरप सोइ नीव सुहाई। श्रद्धा विश्वास दीवार चुनाई ॥

व्याख्या - व्यास ने स्वयं की अनुभूति का वर्णन किया है और भक्ति को अनुभूति की सीढ़ी बताया है। समर्पण का भाव ही नीव होती है तथा श्रद्धा व विश्वास रूपी दीवार होती है।

ध्यान-ग्यान भवन सुंदरताई। मंगल वात चहुँदिसि चलाई ॥
भगति-निसानी सकइ चढ़ाई। दया दान तहँ सुगंध बहाई ॥

व्याख्या - अनुभूति रूपी भवन की ध्यान और ज्ञान सुंदरता है, जिसमें चारों तरफ मंगल रूपी हवा चलती है। भक्ति रूपी सीढ़ी से ही भवन पर चढ़ा जा सकता है तथा वहाँ दया-दान रूपी सुगंध बहती रहती है।

सहजता तहँ सुंदर पलंगा। तहँ रहउँ मैं आनन्द उमंगा ॥
सकल व्यापक एक समाना। सोइ रूप विराट व्यास बखाना ॥

व्याख्या - वहाँ सहजता रूपी पलंग है, जहाँ पर मैं (परमात्मा) आनन्द की उमंग के रूप में रहता हूँ। मैं सभी जगह एक समान व्यापक रहता हूँ। इसलिए व्यास ने मेरे उसी रूप को विराट रूप में बताया है।

ध्यान विधि व्यास बताई। सरल सुगम सो देउँ बताई ॥
अचल स्थिर राखि शरीरा। अनुकूल आसन होइ न पीरा ॥

व्याख्या - मैं यहाँ व्यास द्वारा बताई गयी ध्यान की सरल व सुगम विधि को बताता हूँ। शरीर को स्थिर करके अनुकूल आसन लगाना चाहिए, जिससे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

दो०- सिर अरु ग्रीवा सीधी कर नासिका तें दृष्टि लगाव।
आवत-जावत श्वास संभारहि अन्य दिसि न मन लगाव ॥ ४९ ॥

व्याख्या - सिर और गर्दन सीधी करके नासिका पर दृष्टि लगानी चाहिए और आने-जाने वाली श्वास को निहारते रहें तथा दूसरी दिशाओं में मन नहीं जाना चाहिए।

जहँ दृष्टि तहँ मन सदा जाई। इहँ विग्यान सम्मत भाई ॥
दृष्टि पावहहि बल श्वासा। निहारहिं श्वास संयम अनयासा ॥

व्याख्या - जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ पर मन चला जाता है। यह वैज्ञानिक मत है। दृष्टि हमेशा श्वास से ही बल प्राप्त करती है, इसलिए श्वास को निहारने से अनायास ही मन का संयम हो जाता है।

एहि भाँति मन वश आवइ। करहिं अभ्यास फल पावइ ॥
मन वश होइ माया कमजोरा। सहजहिं सहज बंध निवोरा ॥
व्याख्या - इस प्रकार श्वास के संयम से मन वश में आ जाता है। जो अभ्यास करते हैं, उन्हीं को फल मिल जाता है। मन जब वश में आ जाता है, तब माया कमजोर हो जाती है, जिससे सहजता से ही बन्धन छूटने लग जाते हैं।

नित्य ध्यान ग्यान उपजाई। ग्यान सोइ मन निर्मल कराई ॥
एकहिं ब्रह्म सकल भूत निवासी। सोइ होव आधार ध्यान अभ्यासी ॥
व्याख्या - नित्य ध्यान के अभ्यास से ज्ञान पैदा होने लगता है और ज्ञान से मन निर्मल हो जाता है। एक ही परमात्मा समस्त भूतों में निवास करता है, की धारणा ही ध्यान के अभ्यास करनेवालों का आधार होना चाहिए।

निर्मल मन सोइ भक्ति स्रोता। पावहिं जीव धन्य वो होता ॥
कर्तापन जो करहिं आभासा। सुख दुःख भोक्ता बने अनयासा ॥
व्याख्या - निर्मल मन ही भक्ति का स्रोत होता है और जो भक्ति प्राप्त कर लेता है, वो जीव धन्य हो जाता है। परन्तु जो कर्तापन का अभिमान करते हैं, वे अनायास ही सुख-दुःख के भोक्ता बन जाते हैं।

दो०- बिनु ध्यान न मान मिटै बिनु अमान न ग्यान उपजाय।
बिनु ग्यान न माया नशै कह व्यास बहु समझाय ॥ ५० ॥
व्याख्या - बिना ध्यान के अभिमान नहीं मिटता है और बिना निर्मलता के ज्ञान नहीं होता है तथा बिना ज्ञान के माया का नाश नहीं होता है। इसको व्यास ने बहुत प्रकार से समझा कर कहा है।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण एकादशम पड़ाव ॥

ग्यान ते बिराग होइ बलवाना। बिराग ते भगति पाव स्थाना ॥
ग्यान ही भाव मर्म समझाई। मरम भाव कर्म बन्ध कटाई ॥
व्याख्या - ज्ञान से वैराग्य प्रबल होता है और वैराग्य से भक्ति पैदा होती है। ज्ञान होने पर ही भावों का रहस्य समझ में आता है और भावों के मर्म को समझने पर कर्म का बन्धन कट जाता है।

कटहिं बंध जीव मोर समाना। होवइ तब अनुभूति नाना ॥
आवइ भाव तब मन समता। विप्र चण्डाल सम सब लगता ॥
व्याख्या - जब माया का बंधन कट जाता है, तब जीव मेरे (ईश) समान ही हो जाता है और उसे नाना प्रकार की अनुभूति होने लगती है। जब जीव के

मन में समता का भाव आ जाता है, तब उसे ब्राह्मण व चाण्डाल एक समान लगने लगते हैं ।

दृश्य अरु द्रष्टा ब्रह्म सुहाई । सांख्य योग परइ समझाई ॥
तेहि क्षण जीव मुक्त सुहाई । सुख दुःख सब जाइ भगाई ॥

व्याख्या - उस समय जीव के हृदय में सांख्य योग समझ में आ जाता है तथा दृश्य और द्रष्टा के रूप में ब्रह्म ही दिखाई देने लगता है । उसी क्षण जीव मुक्त हो जाता है तथा सुख-दुःखों का नाश हो जाता है ।

प्रकृति पुरुष जगत सब खेला । ब्रह्म एक रस सत रूप अकेला ॥
आदि अन्त मध्य नहिं कोई । एकहि ब्रह्म कल्पित जग सोई ॥

व्याख्या - तब जीव को समझ में आ जाता है कि यह जगत प्रकृति और पुरुष का खेल है । ब्रह्म तो एकरस व सत्य स्वरूप अकेला एक ही है । ब्रह्म का आरम्भ, अन्त व मध्य कुछ भी नहीं है । यह समस्त जगत एक ही ब्रह्म में कल्पित हो रहा है ।

दो०- जीव ब्रह्म जब एक लगै तब जानउ हियँ आइ विवेक ।
कुण्डल कंगनादि कनक सब जसि ब्रह्म कल्पित जीव अनेक ॥ ५१॥

व्याख्या - जीव और ब्रह्म जब एक लगने लग जाते हैं, तब मानना चाहिए कि हृदय में विवेक पैदा हो गया है । जैसे कुण्डल, कंगन आदि आभूषणों में एक ही सोना होता है, वैसे ही एक ही ब्रह्म में समस्त जगत की कल्पना हो रही है ।

साँख्य दर्शन कहउ समझाई । चहुँदिस यश अजहु रहा छाई ॥
कृष्ण निज मुख यश बखानी । नहिं योगी कोउ कपिल समानी ॥

व्याख्या - हे नाथ ! अब मुझे साँख्य दर्शन को समझाकर कहिए, जिसका यश आज भी चारों तरफ फैला हुआ है । कृष्ण ने भी स्वयं के मुख से उनका यश गाया है कि कपिल मुनि के समान संसार में कोई योगी नहीं है ।

हिय समझा कपिल मुनि मोही । सोइ कहउँ सुत समझाइ तोही ॥
जाना मोही सकल जगत मेला । पुरुष-प्रकृति उभय जग खेला ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें समझाकर बताता हूँ कि कपिल मुनि ने मुझे अपने हृदय में ही जाना था । मुझे समस्त जगत के रूप में ही जानकर जगत को पुरुष और प्रकृति का खेल मात्र बताया ।

एकहि ब्रह्म व्यापक सर्वत्र समाना । नाहिं दूसर कोउ निज हियँ जाना ॥
ब्रह्म गाछ एक साँख्य अनेका । सोइ दर्शन साँख्य करि विवेका ॥

व्याख्या - कपिल मुनि ने स्वयं के हृदय में जाना कि एक ही ब्रह्म सब जगह

समान रूप से व्यापक है। ब्रह्म एक पेड़ की तरह है, जिसमें अनेक शाखाएँ हैं। उसी को कपिल मुनि ने समझकर साँख्य दर्शन का नाम दिया।

मन बुद्धि चित्त अरु अहंकारा। साँख्य बहुरि जगत पसारा ॥
मन भाव सोइ बहु पर्ण सुहाई। इन्द्रायादि नाना डाल बताई ॥

व्याख्या - कपिल मुनि ने मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूपी शाखाओं का विस्तार जगत को बताया और मन के भावों को संसार रूपी वृक्ष के पत्ते बताये तथा इन्द्रियों को पेड़ की टहनियाँ बताई।

दो०- सरल बनि मोहि समझा कपिल मुनि निज हियँ विचार।
शाखा सोइ साँख्य कहयउ जानि सकल मूल मोहि करतार ॥ ५२ ॥

व्याख्या - कपिल मुनि ने निर्मल होकर अपने हृदय में ही मुझे समझा तथा संसार वट की शाखाओं को साँख्य कहकर बताया तथा मुझ परमात्मा को संसार वट का मूल समझा।

साँख्य मरम कहउँ विस्तारी। जानि मति निर्मल तुम्हारी ॥
जाना कपिल ब्रह्म एक समाना। अखिल ब्रह्माण्ड एक तनु माना ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हारी निर्मल बुद्धि है, इसलिए मैं तुम्हें साँख्य दर्शन के रहस्य को विस्तार पूर्वक बताता हूँ। कपिल मुनि ने एक ही ब्रह्म को माना तथा समस्त ब्रह्माण्ड को एक शरीर माना।

सकल ब्रह्माण्ड एक तनु धारी। तहँ बसहहिं चित्त नर नारी ॥
सिन्धु जल सम ब्रह्म गम्भीरा। भाव लहर उठहिं तहँ मति धीरा ॥

व्याख्या - समस्त ब्रह्माण्ड एक शरीर होता है, जिसमें चित्त के रूप में नर और नाड़ी होते हैं। ब्रह्म समुद्र के समान गम्भीर होता है, जिसमें भाव रूपी लहरें उठती रहती हैं।

ब्रह्म नर सोइ पुरुष कहाई। नारी ब्रह्म सोइ प्रकृति सुहाई ॥
नर नारी धरक प्राण उपजाई। प्राण सोइ भाव लहर उठाई ॥

व्याख्या - ब्रह्म का नर (धड़कन) ही पुरुष कहलाता है तथा ब्रह्म की नाड़ी ही प्रकृति कहलाती है। नर-नाड़ी की धड़कन से प्राण पैदा होते हैं तथा प्राण ही भाव रूपी लहर उठाते हैं।

लहर ते लहर पुनि लहरा। पुनि उठहिं भाव अति गहरा ॥
प्राण वात जाना मुनि कपिला। जल वात मिलि बनै बुलबिला ॥

व्याख्या - भाव रूपी लहर से भाव रूपी लहरें उठती रहती हैं और फिर गहरे भाव

उठते रहते हैं। कपिल मुनि ने प्राण को वायु के समान जाना तथा ब्रह्म रूपी जल से प्राण रूपी वायु मिलने पर जीव रूपी बुलबुला पैदा हो जाता है।

दो०- जल बुलबुल सम जीव हय कहा कपिल जग समझाय ।
प्राण वात जब निकसहि तो जल जल ही मिलि जाय ॥ ५३॥

व्याख्या - जीव पानी के बुलबुले के समान होता है तथा प्राण रूपी वायु जब निकल जाती है, तो जल जल में ही मिल जाता है। कपिल मुनि ने यह समस्त संसार को समझाकर बताया है।

प्राण तें भाव पुनि भव विस्तारा। इन्द्रियादि सब जगत पसारा ॥
मन बुद्धि अरु भाव अहंकारा। सब मिलि जानि प्रकृति प्रसारा ॥

व्याख्या - प्राणों से भाव पैदा होते हैं तथा भावों से संसार का विस्तार होता है तथा इन्द्रियाँ आदि सब जगत का विस्तार मात्र हैं। मन, बुद्धि और अहंकार सब मिलकर प्रकृति का विस्तार करते हैं।

पंच भूत छठ मन हय भाई। मन ही पुरुष-प्रकृति मेल सुहाई ॥
भाव अनुरूप मन विस्तारी। मन अनुरूप सृष्टि सारी ॥

व्याख्या - पाँच भूत तत्व होते हैं तथा छठा मन होता है और मन ही पुरुष और प्रकृति का मेल होता है। भावों के अनुसार मन का विस्तार होता है तथा मन के अनुसार सृष्टि दिखाई पड़ती है।

गुण त्रय मय बहहिं भाव धारा। गुण अनुरूप जगत व्यवहारा ॥
एक ही ब्रह्म जग दूसर नाहीं। कहा कपिल बार-बार समझाहीं ॥

व्याख्या - भावों की धारा त्रिगुणी होकर बहती है तथा गुणों के अनुसार ही जगत का व्यवहार होता है। संसार में एक ही ब्रह्म होता है, दूसरा नहीं। इसी को कपिल मुनि ने बार-बार समझाकर बताया है।

सब जग कल्पित ब्रह्म माहीं। ब्रह्म ही दृश्य दृष्टा सुहाहीं ॥
ग्यान अज्ञान विवेक अविवेका। कल्पित जग जद्यपि ब्रह्म एका ॥

व्याख्या - समस्त संसार की कल्पना एक ब्रह्म के अन्दर ही हो रही है क्योंकि ब्रह्म ही दृश्य व दृष्टा होता है। ज्ञान-अज्ञान व विवेक-अविवेक से ही जगत की कल्पना हो रही है, हालांकि ब्रह्म तो एक ही होता है।

दो०- कल्पना सोइ शाखा भयी जद्यपि संसार वट एक ।
निज घट समझ परइ जानउ तब जागा ब्रह्म विवेक ॥ ५४ ॥

व्याख्या - यद्यपि संसार रूपी वृक्ष एक ही होता है, परन्तु कल्पनाओं के कारण

नाना शाखाएँ दिखाई पड़ती हैं। जब यह स्वयं के हृदय में समझ में आ जाता है, तब ब्रह्म ज्ञान हुआ मानिये।

निज घट समझ जग समझाई। सोई कपिल मोर अवतार कहाई॥
सँख्या साँख्य दौ मरम एका। एक ते बनहिं उभय अनेका॥

व्याख्या - कपिल मुनि ने स्वयं के हृदय में समझकर जगत को समझाया, इसलिए वह मुझ परमात्मा का अवतार कहलाता है। संख्या और शाखा दोनों का एक ही रहस्य है क्योंकि एक से ही दोनों अनेक बनते हैं।

निज घट समझ करहिं एका। सोइ दर्शन साँख्य करि विवेका॥
सकल मिलाइ कपिल एक माना। विगत भेद भयउ ब्रह्म समाना॥

व्याख्या - जो स्वयं के हृदय में समझकर सबको एक कर लेता है, वही साँख्य दर्शन होता है। कपिल मुनि ने सबको एक ब्रह्म ही माना, जिससे समस्त भेद-भाव मिट गए और वह मुझ ब्रह्म के समान हो गया।

मिटहिं भेद मोही आई मिलाई। सोइ जीव जग अवतार कहाई॥
एहि भयउ मुनि कपिल संगा। कहावइ भगवान होई अभंगा॥

व्याख्या - भेद मिट जाने पर जीव मुझ परमात्मा से मिल जाता है और ऐसा जीव ही संसार में अवतार कहलाता है। ऐसा ही कपिल मुनि के साथ हुआ क्योंकि वह मुझसे अभिन्न होकर भगवान ही माना जाने लगा।

नाना भांति निज अनुभूति बखानी। निज घट मुनि कपिल निज जानी॥
धन्य कृपालु जगत हितकारी। दीन्ह ग्यान परम उपकारी॥

व्याख्या - कपिल मुनि ने अपने हृदय में मुझे जानकर अपनी अनुभूतियों का नाना प्रकार से वर्णन किया। हे परमपिता, हे कृपालु, हे जगत हितकारी! आपने मुझे परम उपकार करने वाला ज्ञान बताया है।

दो०- धन्य धन्य कपिल मुनि धन्य धन्य परमपिता परमेश।
एहि मिस ग्यान दीन्ह तुम मिटहहिं सकल संसृति क्लेश॥ ५५॥

व्याख्या - हे कपिल मुनि! आप धन्य हैं। हे परमपिता परमेश्वर! आप धन्य हैं कि आपने मुझे इस बहाने परम ज्ञान दिया है, जिससे समस्त क्लेश मिट जाते हैं।

अविद्या हेतु भासित संसारा। ब्रह्म एक कल्पित जग सारा॥
ब्रह्म ग्यान सब भ्रम मिटाई। आनन्द मगन जीव स्तुति गाई॥

व्याख्या - ब्रह्म तो सर्वत्र एक ही होता है, जिसमें समस्त जगत कल्पित हो रहा है। अविद्या के कारण ही यह संसार आभासित हो रहा है। हे वत्स!

ब्रह्मज्ञान हो जाने पर यह सब भ्रम मिट जाता है और जीव आनन्द मगन होकर मेरी स्तुति करने लगता है ।

व्यास भयउ जब आत्म ग्यानी । नाना भाँति मोर स्तुति बखानी ॥
जीव ब्रह्म समझा सब भेदा । जाना सकल आत्म तत्व ऐका ॥

व्याख्या - व्यास को जब आत्मज्ञान हुआ, तो उन्होंने मेरी नाना प्रकार से स्तुतियाँ की तथा जीव और ब्रह्म के सब रहस्य को समझकर सभी जगह एक ही आत्मतत्व को देखा ।

देह मरम परइ बुझाई । भाव माझ माया रहइ लुकाई ॥
ईश्वर एक नहिं कोउ दूजा । निज हियँ तब परइ बूझा ॥

व्याख्या - उनको शरीर का समस्त रहस्य समझ में आ गया तथा यह भी समझ में आ गया कि माया भावों में छिप कर रहती है । ईश्वर एक ही है और कोई दूसरा नहीं होता है । यह सब व्यास ने अपने हृदय में समझा ।

उमगइ भाव बहु हियँ माहीं । व्यास भाव विभोर सो गाहीं ॥
सो कहुँ स्तुति जग हितकारी । श्रद्धा सह गावहिं पाव फलचारी ॥

व्याख्या - व्यास के हृदय में बहुत से भाव उमगने लगे, उन्हीं भावों को भावविभोर होकर उन्होंने गाया है । यहाँ मैं उसी जग कल्याणकारी स्तुति को बता रहा हूँ । जिसको श्रद्धा पूर्वक गाने पर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों की प्राप्ति होती है ।

दो०- अकथ अगाध अजन्मा, एक रस परमपिता परमेश ।
मम हियँ अब अवतरहु हे जगतपिता जगतेश ॥ ५६ ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! परमेश्वर, एकरस, अकथनीय, अगाध व अजन्मा प्रभु, हे जगतपिता, हे जगत के ईश्वर ! आप मेरे हृदय में अवतरित होइए ।

जय जय श्रेष्ठम अजितम् । जय प्रभो सर्व ऐश्वर्यसरूपम् ॥
जय भव बन्धन निवारकम् । माया मूलम् त्रिगुण धारकम् ॥

व्याख्या - हे श्रेष्ठतम् अजेय प्रभु ! आपकी जय हो । हे सब ऐश्वर्यो के स्वरूप प्रभु ! आपकी जय हो । हे भवबन्धन को काटने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे माया के मूल व त्रिगुणों को धारण करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो ।

साधनम् क्रियाः च ग्यानमूलम् । त्वमेव जन्यम् सर्व जागृतम् ॥
बिनु कृपाम् न नाश्यति मायां । न च स्वरूपम् न च कायां ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही समस्त क्रियाओं के साधन व ज्ञान के मूल हैं तथा आपके

कारण ही समस्त क्रियाएँ जागृत होती हैं। हे प्रभु ! आपकी कृपा के बिना माया का नाश नहीं होता है। आपका न कोई स्वरूप है और न ही कोई शरीर है।

जगत रूपम सगुण भासितम् । जय एक रसम् निरविकारम् ॥
जय सृष्टि मूलम् च संचालकम् । जय स्थिति प्रलय पालन कारकम् ॥

व्याख्या - जगत के रूप में सगुण आभासित होनेवाले, एकरस, निर्विकार प्रभु ! आपकी जय हो। हे सृष्टि के मूल व सृष्टि का संचालन करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे उत्पति, प्रलय और पालन करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो।

इन्द्रादि देवाम् बदन्ति बहु विप्राम् । ऋषि मुनि जानन्ति ब्रह्म सरूपाम् ॥
भ्रमन्ति त्रिगुणम् सर्व जगतम् । जद्यपि त्वम सर्व गुणधामम् ॥

व्याख्या - बहुत से विद्वान आपको इन्द्र आदि देवता बताते हैं तथा ऋषि मुनि आपको ब्रह्म के रूप में जानते हैं। यद्यपि आप तो सब गुणों के घर हैं, फिर भी यह जगत तीन गुणों में भ्रमित हो रहा है।

श्लोक - विगत अन्तःकरणेन रागः द्वेषम् शेषति सत्चित आनन्दम् ।
अखण्ड सरूपम् मन रमन्ति नाश्यतिः सर्वः पाप तापम् ॥ ५७॥

व्याख्या - जब अन्तः करण के राग-द्वेष मिट जाते हैं, तब सत्चित आनन्द ही बचा रहता है और मन अखण्ड स्वरूप में रमण करने लग जाता है। जिससे समस्त पापों के कष्टों का निवारण हो जाता है।

त्वमेव भजनम् सर्वहित कारकम् । करन्ति जे नरा भव तारकम् ॥
महतत्वम् अभिजायति ब्रह्माण्डम् । त्वम सदैवः आनन्दमयम् ॥

व्याख्या - आपके भजन सब का कल्याण करने वाले होते हैं, इसलिए जो आपका भजन करता है, वो भी भव से पार कराने वाला हो जाता है। आपके महतत्व से समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। आप तो सदा आनन्दमय रहते हैं।

अहम् भासति त्वमेव जन्यम् । त्वम मन रूपम् च विज्ञानघनम् ॥
त्वम अस्ति च नास्ति पारम् । त्वम् नेति नेति शेष धारकम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरा आभास भी आपके ही कारण हो रहा है। आप मन के रूप हैं और विज्ञान के मूल हैं। 'आप हैं' और 'नहीं हैं' की सीमा से परे हैं। हे प्रभु ! ऐसा भी नहीं है, ऐसा भी नहीं, कहने के बाद जो शेष बचते हैं, वे आप ही हैं।

त्वम साक्ष्यम् च यथार्थम् । त्वम् नाथम् एकमात्रं सत्यम् ॥
विप्रा खोजन्ति नाना मार्गम् । जद्यपि त्वम सदाः उर वासितम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही आपके साक्षी हैं तथा आप ही यथार्थ हैं। आप ही

प्रभु एकमात्र सत्य हैं। विद्वान लोग बहुत से मार्गों से आपको खोजते रहते हैं, यद्यपि आप तो सबके हृदय में ही सदा रहते हैं।

सुष्मनाः नाड़ीः श्रेष्ठ मार्गम् । ज्योतिर्मयम् जीव उद्धारकम् ॥
जे जानन्ति निज हियः गुहाम् । से नाथं प्राप्यति नराः त्वाम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! सुष्मना नाड़ी ही आपको जानने का श्रेष्ठ मार्ग होती है, जो ज्ञान का प्रकाश करने वाली और जीव का उद्धार करने वाली है। जो लोग अपने हृदय रूपी गुफा को जानते हैं, वे लोग प्रभु आपको प्राप्त कर लेते हैं।

श्लोक - परमग्यानम् अति दुर्लभम् प्राप्यति नराः गुरु कृपाम् ।
बहुरिः नराः तजन्ति गृहम् बिरथा भ्रमन्ति जगताम् ॥ ५८ ॥

व्याख्या - परम ज्ञान को प्राप्त करना बहुत कठिन होता है, जिसे गुरु कृपा से ही लोग प्राप्त करते हैं। बहुत से लोग परम ज्ञान की खोज में घर त्याग कर देते हैं और व्यर्थ में ही संसार में भटकते रहते हैं।

त्वम् नाथम अनादि अनन्तम् । आकाशं महतत्वादि पारम् ॥
न पुरुषमयं च प्रकृतिमयम् । न त्रिगुणमयम् ज्ञान स्वरूपम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप अनन्त व अनादि हैं तथा आकाश व महतत्व आदि से परे हैं। आप न तो पुरुष और न ही प्रकृति स्वरूप हैं और न ही आप त्रिगुणमय हैं। आप तो प्रभु ज्ञान स्वरूप हैं।

आत्मरूपम् व्याप्तिः जगतम् । इहँ बदन्ति ग्यानीपुरुषम् ॥
मनः बुद्धिः च इन्द्रियाणि पारम् । चिन्तनादि कर्मम रहितम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप आत्मा के रूप में समस्त जगत में व्याप्त रहते हैं, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। आप मन, बुद्धि व इन्द्रियों से परे हैं तथा चिन्तन आदि के कर्मों से रहित हैं।

नित्यम् मुक्तम् मायातीतम् । संकल्पम् त्वमेव क्रीड़ाः साधनम् ॥
परम दयालम् निज पर पारम् । मन च वाणीः विगत स्वरूपम्॥

व्याख्या - आप नित्य, मुक्त व माया से परे हैं। हे प्रभु ! संकल्प ही आपकी लीला का साधन है। आप परम दयालु और मेरे-तेरे से परे हैं। आपका स्वरूप मन व वाणी से परे है।

कार्य कारणं प्रपंचः अभावम् । भासति त्वम् शून्याकारम् ॥
त्वम् नाथम् दृष्टि अधिष्ठानम् । सत्यस्वरूपम् त्वमेव सत्यम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपमें कार्य-कारण के प्रपंच का अभाव है तथा आप

शून्याकार आभासित होते हैं । हे प्रभु ! आप तो दृष्टि के आधार हैं । आपका सत्य स्वरूप ही आपका सत्य होता है ।

दो०- सब जीव समरूप बसै मरम न जानइ कोय ।
जो कहे मैं जानउँ बिरथा गाल बजावत सोय ॥ ५९ ॥

व्याख्या - आप प्रभु ! सब जीवों में समान रूप से रहते हैं, इस मर्म को कोई नहीं जानता है । जो कोई यह कहता है कि मैंने परमात्मा को जान लिया, वह व्यर्थ में गाल बजाता है ।

प्रकृति पुरुष जथारथ रूपा । उभय सरूप एकइ अनूपा ॥
अग्यता हेतु जब होवइ भेदा । जन्महिं जीव जिमि जल बुद बुदा ॥

व्याख्या - प्रकृति और पुरुष आपका यथार्थ रूप होता है । ये दोनों ही आपके एक ही अनुपम रूप हैं । जब अज्ञान के कारण दोनों में भेद लगने लग जाता है, तब जीव पैदा हो जाता है, जैसे जल में ही जल का बुलबुला बन जाता है ।

भेद हेतु होइ कल्पना नाना । एक जसि मधु रस पुष्प नाना ॥
सरिता जिमि मिलै सिन्धु जाई । तैसउ जीव अन्त आइ मिलाई ॥

व्याख्या - प्रकृति व पुरुष में भेद हो जाने पर नाना प्रकार की कल्पना हो जाती है। यद्यपि प्रभु आप एक ही होते हैं, जैसे मधु में नाना पुष्पों का रस एक ही रहता है ।

माया हेतु भ्रमित जगत सारा । जन्म मरण चक्र परइ अपारा ॥
ग्यानी जन जानहिं इहँ मरमा । सो सकल भाव आवहिं शरणा ॥

व्याख्या - माया के कारण समस्त संसार भ्रमित हो रहा है और जन्म-मरण के अपार चक्कर में पड़ा हुआ है । ज्ञानी लोग इस रहस्य को जानते हैं, इसलिए वे सम्पूर्ण भावों से आपकी शरण में आ जाते हैं।

काल चक्र सकल जीव डराई । होहिं बिकल जे शरण न आई ॥
भगत तुम्हार रहइ निर्द्वन्दा । परहिं नहिं जन्म मरण फंदा ॥

व्याख्या - काल का चक्र समस्त जीवों को डराता रहता है, इसलिए जो आपकी शरण में नहीं आते हैं, वे व्याकुल रहते हैं । हे प्रभु ! आपके भक्त सदा निर्द्वन्द रहते हैं, इसलिए वे जन्म-मरण के फंदे में नहीं फँसते हैं ।

बिनु गुरु शरण मन तुरंगा । होइ न शान्त जिमि कामी भृंगा ॥
जप तप संयम जद्यपि नाना । बिनु गुरु बिरथा सकल सुजाना ॥

व्याख्या - बिना गुरु की शरण के मन रूपी घोड़ा शान्त नहीं होता है, जैसे कामी भृंग एक फूल से दूसरे फूल पर मँडराता रहता है । जप, तप और संयम बहुत

करने पर भी बिना गुरु के व्यर्थ हो जाते हैं ।

दो०- बिनु गुरु साधना बिपद घनी बिरथा श्रम सब जाय ।
बिनु कर्णधार सिन्धु नाव पथिक पल पल घबराय ॥ ६० ॥

व्याख्या - बिना गुरु के साधना में विपद बहुत होती है और मेहनत भी व्यर्थ चली जाती है, जैसे बिना कर्णधार के समुद्र में नाव में बैठा पथिक पल-पल घबराता रहता है ।

तुम सत्य नश्वर देह धन धामा । ज्ञानी कहहिं स्वजनादि बेकामा ॥
तुम्हहिं छाड़ि कोह सुख पावा । वस्तु नश्वर सकल सुभावा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही सत्य हैं और धन, घर, शरीर आदि ये सब नश्वर हैं । ज्ञानी लोग भी कहते हैं कि स्वजन आदि भी बेकाम होते हैं । हे प्रभु ! आपको छोड़ कर कौन सुख प्राप्त कर सकता है ? क्योंकि वस्तुएँ तो स्वभाव से ही नश्वर होती हैं ।

अन्तः काल सब एक दिन आई । तिन्ह ते नहिं तब किछु भलाई ॥
विद्या धन धाम तप निराभिमाना । सोई सन्त जानि तीर्थ स्थाना ॥

व्याख्या - सबका अन्त समय एक दिन आता ही है, फिर इन नश्वर वस्तुओं से कोई भला नहीं हो सकता है । जो विद्या, धन, घर और तप में निर-अभिमानी होते हैं, वे सन्त ही सच्चे तीर्थ स्थान होते हैं।

जेहि रहहि विगत अभिमाना । तिन्ह हियँ तुम बसहिं भगवाना ॥
सोइ तिन्ह सन्त आशीर्वादा । हरहिं सब जग पापादि व्याधा ॥

व्याख्या - जो अभिमान छोड़कर रहते हैं, प्रभु ! आप उनके हृदय में निवास करते हैं । इसलिए ऐसे सन्तों के आशीर्वाद से संसार में पाप आदि बाधाएँ दूर हो जाती हैं ।

जो लगावहिं मन तुमार चरणा । तिन्ह हियँ बहहिं आनंदा झरणा ॥
ते न फंसहि देह गेह मदादि । रहहिं हियँ बिराग विवेकादि ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जो आपके चरणों में अपना मन लगा देते हैं, उनके हृदय में आनन्द का झरना बहने लगता है । वे लोग देह-गेह के मद में नहीं फँसते हैं और उनके हृदय में वैराग्य और विवेक बना रहता है ।

दो०- अविद्या अरु सत संजोग ते सकल जगत प्रगटाय ।
जिमि रजु भासत भुजंग जानै भ्रम मिट जाय ॥ ६१ ॥

व्याख्या - यह समस्त जगत अविद्या और सत्य के संयोग से प्रकट होता है । जैसे भ्रम होने पर रस्सी में सर्प दिखता है, वैसे ही जगत अविद्या के कारण दिखाई पड़ता है।

ज्ञान हो जाने पर मिथ्या भ्रम मिट जाता है ।

मिटइ भ्रम जग सत् सरूपा । ग्यान शेष तहँ माया विलूपा ॥
उत्पति पूर्व नहिं जग सारा । प्रलय होइ रहहि शेष करतारा ॥

व्याख्या - भ्रम मिट जाने पर जगत सत्यस्वरुप हो जाता है और ज्ञान शेष रह जाता है तथा माया का नाश हो जाता है । यह जगत उत्पत्ति से पहले नहीं होता है और प्रलय के बाद भी केवल भगवन् आप ही बचे रह जाते हैं ।

नाना उपमा देइ श्रुति बखानी । जिमि कुण्डल कंगन कनक समानी ॥
माया हेतु जीव अविद्या अपनाई । आनन्दादि गुण परइ छुपाई॥

व्याख्या - वेदों ने नाना उपमा देकर आपका वर्णन किया है । जैसे कुण्डल, कंगन आदि में एक ही सोना रहता है । माया के कारण जीव अविद्या में पड़ जाता है, जिससे आनन्द आदि गुण छिप जाते हैं ।

माया ते गुण गुण ते अभिमाना । ताते पुनि देहादि बंधन नाना ॥
पर सत्य नाथ तुम माया पारा । लिए ऐश्वर्य संग सदा सारा ॥

व्याख्या - माया से गुण पैदा होते हैं और गुणों से अभिमान पैदा होता है तथा अभिमान से देह आदि का बन्धन पड़ जाता है । परन्तु प्रभु! आप तो माया से परे हैं तथा समस्त ऐश्वर्य को साथ लिये हुए हैं ।

ऐश्वर्य धर्म यश ज्ञान बिरागा । अपरिमित अनन्त अगाधा ॥
देश काल तहँ नहिं किछु सीमा । विभूति युक्त नहिं वासना चीना ॥

व्याख्या- हे प्रभु! आप में ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान और वैराग्य अपरिमित, अनन्त और अगाध होता है तथा आप के लिए देश व काल की कोई सीमा नहीं होती है। आप समस्त विभूतियों से युक्त हैं, परन्तु आप में वासना लेश मात्र भी नहीं होती है।

दो०- जोगी यति बनि काह भए जो नहिं निज हिय खुजाय ।
तुम दुर्लभ तिन्ह अति जिमि गल मणि बिरथा ढूंढाय ॥ ६२॥

व्याख्या - योगी-साधु बनने से क्या होता है ? अगर अपने हृदय में नहीं खोज लगाते हैं, तो उनके लिए तो भगवान आप की प्राप्ति बहुत कठिन होती है । जैसे गले में मणियों की माला पहन रखी हो, तो फिर और दूसरी जगह ढूँढ़ने से क्या लाभ ?

बहु बार नाथ मोर मन आवा । तुम न जानहिं तुमार प्रभावा ॥
धूरि कण जिमि उड़त बातासा । तुम ते अनन्त ब्रह्माण्ड निवासा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! बहुत बार मेरे मन में विचार आता है कि आप भी आपके प्रभाव को नहीं जानते हैं । जैसे धूल के कण आकाश में उड़ते रहते हैं, वैसे ही

आप में अनन्त ब्रह्माण्ड निवास करते हैं ।

सीमा तुम्हार कोह सकै बखानी । ऋषि मुनि जन निज हियँ जानी ॥
वेद न सकइ सरूप बताई । नेति नेति कहि निज समझाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपकी सीमा का वर्णन कौन कर सकता है ? ऋषि-मुनियों ने तो आपको हृदय में ही समझा है । वेद भी आपके स्वरूप का वर्णन नहीं कर पाये हैं और स्वयं को समझाने के लिए ''ऐसा भी नहीं'' ''ऐसा भी नहीं'' कहा है।

सपन सम मिथ्या जग सारा । तुम परमानन्द गुण गो पारा ॥
सकल आत्मा तुम्हीं गुसाई । पुराण पुरुष स्व प्रकाशाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! स्वप्न की तरह यह समस्त जगत मिथ्या है । आप तो प्रभु परमानन्द स्वरूप इन्द्रियों व गुणों से परे हैं । हे प्रभु ! आप ही सबके आत्मा हैं तथा आप ही पुराण पुरुष व स्वयं को प्रकाशित करने वाले हैं ।

जिन्ह हियँ गुरु करइ ग्याना । ते जनु पावइ तोहि भगवाना ॥
जेहि नहिं जानहिं तुम्हीं गुसाँई । नाम रूप भ्रम परइ उरझाँई ॥

व्याख्या - जिनके हृदय में गुरु ज्ञान करते हैं, वे लोग ही आपको प्राप्त करते हैं । जो लोग आपको नहीं जानते हैं, वे ही नाम व रूप के भ्रम में पड़ते हैं।

दो०- अखण्ड चित्तसरूप आत्मा तहँ नहिं बंधन मोक्ष ।
एक रस सोइ सत्य हय बाकी जानउ सब दोष ॥ ६३ ॥

व्याख्या - आत्मतत्व तो अखण्ड व चित्तस्वरूप होता है, जिसमें बंधन-मोक्ष कुछ नहीं होता है । एकरस आत्मा ही सत्य है, बाकी सब भ्रम है ।

अचरज बात बहु जग माहीं । निज हियँ छाड़ि बाहिर ढुढ़ाहीं ॥
अन्तः करण तुम करइ निवासा । निज हियँ संभव तुमार आभासा ॥

व्याख्या - संसार में बहुत आश्चर्य की बात है कि लोग अपनी आत्मा को छोड़ कर बाहर ढूँढ़ते रहते हैं । हे प्रभु ! आप तो अन्तःकरण में निवास करते हैं, इसलिए आपकी अनुभूति जीव के स्वयं के हृदय में ही सम्भव होती है ।

सो संत जन ढूँढहि हियँ माहिं । महिमा तुमार को सकहिं गाहिं ॥
तुम सब जानइ जगत स्वामी । घट-घट वासी अन्तर यामी ॥

व्याख्या - इसलिए संत लोग आपको अपने हृदय में ही ढूँढ़ते हैं । आपकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? हे प्रभु ! आप तो सब कुछ जानते हैं । आप प्रत्येक जीव के हृदय में निवास करने वाले व अन्तर मन में रहने वाले हैं ।

नाम रूप नहिं सीमा तुम्हारी । सकल जगत तुम्हीं विस्तारी ॥
सकल जगत साक्षी भगवाना । भल मन्द हेतु देह अभिमाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! नाम व रूप आपकी सीमा नहीं है क्योंकि समस्त जगत तो आपका ही विस्तार है। हे भगवन् ! आप तो समस्त जगत के साक्षी हैं। अच्छा-बुरा तो देह अभिमान के कारण आभासित होता है।

तुम एक रस विगत प्रपंचा। आदि अनादि नहिं मध्य न अन्ता।
तुम्हीं तुम्हार समान भगवाना। कृपा करहु अब कृपा निधाना॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप तो एकरस व प्रपंचों से मुक्त हैं। आपका न आरम्भ, न मध्य और न अन्त ही है। हे प्रभु ! आप ही आपके समान हैं। इसलिए हे कृपानिधान ! आप अब अनुकंपा कीजिए।

दो०- जेहि जानहिं नाथ तोहि तिन्ह हियँ सृष्टि मरम आय।
आत्म ग्यान तब होवहिं जन्म धन्य होइ जाय॥ ६४॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपको जो लोग जान लेते हैं, उनके हृदय में सृष्टि का रहस्य समझ में आ जाता है और तब आत्मा का ज्ञान हो जाता है, जिससे जन्म सफल हो जाता है।

एहि भाँति व्यास अनुभव बखाना। तत्व एकइ लिखा वेदपुराना॥
लिखउ व्यास अनुभूति अपनी। जग भरमित कथनी करनी॥

व्याख्या - इस प्रकार व्यास ने अपने अनुभवों को जन-जन को बताया है। एक ही परमतत्व को सभी वेदों व पुराणों में लिखा है। व्यास ने तो अपनी अनुभूति को लिखा है, परन्तु संसार में लोग बिना अनुभव के व्यास की बात को समझ नहीं पाये, इसलिए भ्रम पैदा हो गया है।

बिनु अनुभव लोक बखानी। उपजइ सोइ पाखण्ड कहानी॥
कहत सुनत आत्मा भूलाई। कथा कूप जीव गयउ उरुझाई॥

व्याख्या - बिना अनुभूति के लोगों ने व्यास की बातों को कहना शुरू कर दिया, जिससे नाना प्रकार के पाखण्ड पैदा हो गये। पाखण्डपूर्ण कथाएँ कहने व सुनने से जीव अपनी आत्मा को भूल जाता है और कथा रूपी कुएँ में फँस जाता है।

व्यास बहु भाँति निज समुझाई। नहिं उचित बिरथा दोष लगाई॥
भल करहु अनुभव अपना। जानहउ जगत सब सपना॥

व्याख्या - व्यास ने बहुत प्रकार से स्वयं को समझाने की बात कही है, इसलिए व्यास पर दोष लगाना उचित नहीं है। इसलिए अच्छा यही है कि जीव को स्वयं अनुभव करना चाहिए और संसार को स्वप्न की तरह मानना चाहिए।

ध्यान ग्यान बहु जुगति बताई। करहिं जेहिं अनुभव पाई॥
होइ अनुभव टूटहिं सपना। पावइ जीव परम पद अपना॥

व्याख्या - व्यास ने ध्यान और ज्ञान प्राप्त करने के अनेक रास्ते बताए हैं, जिनको जो करता है, उसी को अनुभव हो पाता है और जब जीव को अनुभव हो जाता है, तब जगत का स्वप्न टूट जाता है और जीव अपने परम पद को प्राप्त कर लेता है ।

दो०- ध्यान ग्यान भगति सब सरल सुगम जुगति बताई ।
कथा कथानक जे न परइ नहिं संशय मोहि मिलाई ॥ ६५ ॥

व्याख्या - व्यास ने ध्यान, ज्ञान और भक्ति प्राप्त करने के बहुत सरल व सुगम उपाय बताये हैं, इसलिए जो कथा व कथानकों के भ्रम में नहीं पड़ते हैं, वे निःसंदेह मुझे प्राप्त कर लेते हैं ।

कथा कथानक कहउँ समुझाई । सुनु सुत मन बुद्धि चित्त लाई ॥
चित्त इन्द्र इन्द्रियाँ परी सारी । गो धारहिं सोइ जीव गिरधारी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें कथा और कथानकों के रहस्य को समझाता हूँ, तुम मन और बुद्धि को चित में समाहित करके सुनो । जीव का चित्त ही इन्द्र और इन्द्रियाँ ही इन्द्र की परियाँ होती हैं, जो जीव इन्द्रियों को वश में कर लेता है, वही गिरधारी कहलाता है ।

गोकुल गोपीयन रास रचाई । सो इन्द्रि अरु वासना खेला भाई ॥
गोवर्धन गो चरहिं निरन्ता । बरसइ वासना इन्द्र कोप भनन्ता ॥

व्याख्या - इन्द्रियों के कुल में इन्द्रियाँ ही रमण करती हैं । ये सब इन्द्रियों और वासनाओं का खेल होता है । जब इन्द्रियों की वासनाओं के कारण वृद्धि होने लग जाती हैं, तब इन्द्रियाँ निरन्तर वासनाओं में रमण करने लग जाती हैं । उस अवस्था में वासनाओं की वर्षा शुरू हो जाती है, उसे ही चित्त रूपी इन्द्र का क्रोध कहा जाता है ।

वासना बर्षा डूबई गोकुल सारा । सोइ जीव संकट जानि अपारा ॥
होवइ ग्लानि ग्यान जब होई । गो बस गिरधर धारहिं सोई ॥

व्याख्या - विषय-वासना रूपी बरसात में जब इन्द्रियाँ डूबने लग जाती हैं, तब वह अवस्था ही जीव के घोर संकट की होती है । उस समय हृदय में ग्लानि होने लगती है, जिससे ज्ञान पैदा होने लगता है और इन्द्रियाँ वश में करने की प्रेरणा मिलने लगती है । जो इन्द्रियों को विषय-वासना से बचा लेता है, वही गोवर्धनधारी गिरधारी होता है।

मन मंथन सो मथुरा कहाई । होवइ ग्यान कंस देइ मराई ॥
इन्द्रिय वृन्द चित्त जाइ समाई । आनन्दमूल वृन्दावन कहाई ॥

व्याख्या - मन में जब ज्ञान मंथन चलने लग जाता है, उसी को मथुरा कहा

जाता है और तब ज्ञान के द्वारा ही दुष्टता रूपी कंस मारा जाता है, जिससे इन्द्रियों का समूह चित में समा जाता है। वह अवस्था ही आनन्द की मूल होती है और उसी को वृन्दावन कहा जाता है ।

दो०- नर कृष्ण नारी राधा भयी उभय जीव देह समाई ।
गुरु कृपा बिरला समझहिं समझै सब भ्रम मिटाई ॥ ६६ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! नर ही कृष्ण है और नारी ही राधा होती है, ये दोनों जीव के शरीर में ही रहते हैं। गुरु की कृपा से कोई बिरले ही इस रहस्य को समझ पाते हैं। परन्तु जो इस रहस्य को जान लेते हैं, उनके सब भ्रम मिट जाते हैं ।

धन्य देव मोहि मरम बताई। कान्हा कवन सोइ देइ बताई ।
सुन सुत कृष्ण पुरुष इतिहासा। भगत मोर हियँ स्वप्रकासा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप धन्य हैं कि आपने मुझे कथा-कथानकों के रहस्य को बता दिया है। हे नाथ ! ये कृष्ण कौन है ? इस रहस्य को बता दीजिए। हे वत्स ! कृष्ण इतिहास में महापुरुष हुआ है, जो मेरा भक्त था तथा स्वयं के हृदय में ज्ञान के प्रकाश को अनुभव किया था ।

सन्दीपन ऋषि बहु शिक्षा दीन्ही। पूर्व जन्म फल सिद्धि सब लीन्ही ॥
सिद्धि बल कृष्ण पाई सन्माना। पूजहहिं लोक जानि भगवाना ॥

व्याख्या - संदीपन ऋषि ने कृष्ण को बहुत प्रकार की शिक्षा प्रदान की और पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण जल्दी ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर ली । सिद्धियों के बल पर कृष्ण ने बहुत सम्मान प्राप्त किया और लोग भगवान जान कर पूजने लगे।

काह कहानी नाथ पूर्व जन्मा। कहउ समुझाइ सब मरमा ॥
कहुँ सुत तोहि मरम अपारी। जानि मति निर्मल तुम्हारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! पूर्व जन्म की क्या कथा है ? मुझे समझा कर समस्त रहस्य को बताइए। हे वत्स ! मैं तुम्हें समस्त रहस्य को बताता हूँ, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि अब निर्मल हो गयी है ।

पूर्व जन्म कृष्ण राम सुहाई। दसरथ गृह अवध जन्माई ॥
तेहि काल भए वशिष्ठ मुनि ग्यानी। आत्म रत रहहिं ब्रह्म समानी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! कृष्ण पूर्व जन्म में राम थे । जो अयोध्या के राजा दशरथ के घर जन्में थे । उसी समय परमज्ञानी वशिष्ठ ऋषि भी हुए थे, जो आत्मा में रमण करते हुए सदा ब्रह्म में लीन रहते थे ।

बहु विधि विद्या राम पढ़ाई। धर्म अर्थ काम मोच्छ बताई ॥
भयउ राम शिष्य आग्याकारी। निभायउ गुरु मरजादा सारी ॥

व्याख्या - उन्होंने राम को बहुत प्रकार से शिक्षा प्रदान की और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को समझाया । राम भी बहुत आज्ञाकारी शिष्य हुए । इसलिए सभी गुरु मर्यादाओं का पालन किया ।

विद्या पाइ गृह लौटेउ रघुबीरा । मतिवान धर्म रत अतिधीरा ॥
देखि राम दसरथ सुख पाई । मन ही मन अभिमान कराई ॥

व्याख्या - विद्या प्राप्त करके राम घर लौट कर आ गये । राम बहुत बुद्धिमान, धर्मरत और धैर्यवान था । राम को देखकर दशरथ को बहुत सुख की प्राप्ति हुई तथा मन ही मन गर्व होने लगा ।

दो०- ब्रह्म ग्यान हियँ दृढ़ भया, पूर्ण नहिं पर शस्त्र ग्यान ।
बिनु शस्त्र राज रक्षा नहिं ताहि बिनु नहिं भूप सन्मान ॥ ६७ ॥

व्याख्या - राम के हृदय में ब्रह्मज्ञान तो दृढ़ता से आ गया । परन्तु अभी शस्त्रविद्या का ज्ञान पूर्ण नहीं हुआ । बिना शस्त्र के राज्य की रक्षा सम्भव नहीं हो सकती और बिना रक्षा किये राजा को सम्मान की प्राप्ति नहीं हो पाती है ।

तेहि काल कौशिक ऋषि सुहाए । तजि सब राजपाट मुनि बनाए ॥
ऋषि बुलाइ नृप आदर कीन्हा । शस्त्र सीखन मुनि संग दीन्हा ॥

व्याख्या - उसी काल में विश्वामित्र ऋषि हुए थे, जो राजा का पद छोड़कर ऋषि बने थे । राजा ने ऋषि विश्वामित्र को बुला कर बहुत आदर सत्कार किया तथा शस्त्र विद्या सीखने के लिए राम को उनके साथ भेज दिया ।

नाना शस्त्र विद्या राम तब पाई । संग लक्ष्मण भ्रातउ सिखाई ॥
शस्त्र अरु आत्म ग्याना । भयउ प्रवीण राम सुजाना ॥

व्याख्या - उस समय राम ने नाना प्रकार की शस्त्र विद्या प्राप्त की और साथ में लक्ष्मण को भी सिखाया । राम शस्त्र और आत्म ज्ञान दोनों में विशेषज्ञता प्राप्त कर लिये ।

करि विवाह अवध पुनि आई । राज काज नृप बहु हाथ बँटाई ॥
देखहिं सुनहहिं राम बढ़ाई । हियँ कैकयी उपजी ईर्ष्याई ॥

व्याख्या - विवाह करने के बाद राम फिर अवधपुरी लौटकर आ गए। राम की प्रशंसा देख व सुनकर कैकयी के हृदय में ईर्ष्या पैदा हो गई ।

ताइ हेतु दीन्ह राम बन वासा । विदित सकल इहँ इतिहासा ॥
आत्म रत सदा सहज उदासी । पितु आज्ञा राम भये वनवासी ॥

व्याख्या - इसलिए कैकयी ने राम को वनवास दे दिया, यह इतिहास सभी को मालूम है । राम तो आत्मा में रमण करने वाले और सहज में संसार से उदासीन रहते

थे। इसलिए पिता की आज्ञा मान कर वनवास के लिए चले गये।

दो०- अवध तजि राम चले हर्ष शोक मन किछु नाहीं ।
ब्रह्मचर्य पालन करइब कहा मुनि वशिष्ठ समुझाहीं ॥ ६८ ॥

व्याख्या - अयोध्या को छोड़कर जब राम वन को गये, तब उनके हृदय में हर्ष-शोक कुछ भी नहीं था। जाते समय वशिष्ठ मुनि ने समझा कर कहा कि राम तुम वन में ब्रह्मचर्य का पालन करना।

हर्ष सह गुरु आज्ञा सिर धारी। बरस चौदह राम भा ब्रह्मचारी ॥
संग नारी तउ नहिं कीन्ह संभोगा। व्रत कठिन साधहिं सब जोगा ॥

व्याख्या - राम ने प्रसन्नतापूर्वक गुरु की आज्ञा का पालन किया और चौदह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। साथ में धर्मपत्नी के होते हुए भी संभोग नहीं किया और कठिन व्रत पालन करके योग-साधना की।

सहज बिरागी रहइ बन माहीं। ऋषि मुनि कृपा बहु विद्या पाहीं ॥
शस्त्र शास्त्र भयउ मर्मग्य। बिनीत बहु भा मोर कृतग्य ॥

व्याख्या - राम सहज में वैराग्यवान बन कर वन में रहने लगे तथा ऋषि-मुनियों की कृपा से बहुत-सी विद्याएँ प्राप्त कर ली। अब राम शस्त्र और शास्त्र दोनों का ज्ञाता बन गया। वह बहुत विनय भाव वाला होकर मुझ परमात्मा के प्रति पूरी तरह से कृतज्ञ बन गया।

ताहि मैं कीन्हउँ बहु सहाई। पल पल रखउँ मातु की नाई ॥
प्रकृति मैं सब कीन्ह अनुकूला। व्यापहिं नहिं ताई कोउ शूला ॥

व्याख्या - मैंने राम की बहुत सहायता की और मैंने माता बनकर पल-पल रखवाली की। समस्त प्रकृति को मैंने उनके अनुकूल कर दिया, जिससे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो।

बहु विधि प्रेरणा मैं कीन्ही। हियँ अवतरहि ग्यान दीन्हीं ॥
काम क्रोध मदादि लोभ अपारा। जीता राम सब सहज व्यवहारा ॥

व्याख्या - मैंने उसे बहुत प्रकार से प्रेरित किया तथा उसके हृदय में उतर कर ही मैंने ज्ञान प्रदान किया। राम ने अपने सहज व्यवहार द्वारा काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि भावों को जीत लिया।

दो०- ब्रह्मरत मन मगन सुख-दुःख सब समझा खेल ।
पुरुष प्रकृति सब जाना इहँ जगत उभय मेल ॥ ६९ ॥

व्याख्या - राम ब्रह्म में लीन और प्रसन्न मन रहते हुए सुख-दुःख के रहस्य को जान लिये तथा यह भी जान लिया कि यह सम्पूर्ण जगत पुरुष और प्रकृति के

मेल से उत्पन्न है ।

नीति निपुण कुशल व्यवहारी। भयउ राम सद्‌गुण आचारी ॥
लंका जीति पुनि अवध सिधारे। भयउ सुखी नर नारी सारे ॥

व्याख्या - राम सब नीतियों में निपुण होकर व्यवहार कुशल हो गये तथा समस्त सद्‌गुणों का आचरण करने लगे । राम लंका को जीत कर वापस अयोध्या लौटकर आ गये। तब समस्त स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न हुए ।

गृहस्थ भोग अब भोगन लागे। गुरु चरण रहहिं अनुरागे ॥
जद्यपि आत्म ग्यानी राम सुहाई। यश इच्छा तबहु रहइ लुकाई ॥

व्याख्या - अब राम गृहस्थ सुखों को भोगने लगे तथा गुरु के चरणों में अनुराग रखने लगे। हालांकि राम आत्मज्ञानी थे, परन्तु उनके हृदय में यश की इच्छा रह रही थी।

जग मरजाद जानि विचारी। तजहिं सुलच्छना सिय नारी ॥
नारी भोग इच्छा रहइ मन माहीं। कारण मरजादा भोग न पाहीं ॥

व्याख्या - समाज की मर्यादाओं का विचार करके सीता जैसी पवित्र नारी का त्याग कर दिया। अब राम के हृदय में नारी भोग की इच्छा बच गयी। क्योंकि मर्यादाओं के कारण नारी-इच्छा को पूर्ण नहीं कर सके ।

समय पाइ देह तब त्यागी। नारी अरु यश इच्छा भयी आगी ॥
उभय इच्छा हेतु लीन्ह जन्मा। इहँ सुत कृष्ण राम मरमा ॥

व्याख्या - समय होने पर जब राम ने शरीर छोड़ा, तब यश और नारी भोग की इच्छा सामने खड़ी हो गयी। इन दोनों इच्छाओं के कारण राम ने पुनः जन्म लिया । यही राम और कृष्ण के जन्म का रहस्य है ।

दो०- इच्छा ते भाव उपजै भाव अनुरूप वृत्ति बनाय ।
वृत्ति अनुरूप गति मिलै ताइ अनुरूप जीव देह पाय ॥ ७० ॥

व्याख्या - इच्छा से भाव पैदा होते हैं तथा भावों से जीव की वृत्ति बनती है और वृत्ति के अनुसार जीव की गति होती है तथा गति के अनुसार ही जीव शरीर प्राप्त करता है ।

काह लाभ सुत कथा बढ़ाई। संक्षेपइ जन्म मरम बताई ॥
पुनि पुनि जन्म जीव सब पाई। जब जब आवइ भाव मन माई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! कथा को बढ़ाने से क्या लाभ है ? संक्षेप में जन्म का रहस्य बता दिया है कि जीव के मन में जब-जब भाव पैदा होते हैं, तब-तब सभी जीवों का जन्म होता रहता है ।

स्वर्ग नरक नहिं किछु लोका । इहँ सब अवस्था शोक-अशोका ॥
बन्धन मोच्छ नहिं सोई भाई । इहँ भयउ मन खेल सबाई ॥
व्याख्या - स्वर्ग-नरक कोई लोक नहीं होते हैं । ये सब मन की सुख-दुःख की अवस्थाओं के नाम हैं । इसलिए बन्धन-मोक्ष भी कुछ नहीं होता है । ये सब मन का खेल है ।
जेहि विधि कृष्ण ग्यान पाई । सो सब कहउँ सुत तोहि बताई ॥
भयउ जन्म जुग द्वापर माहीं । कान्हउँ लीन्ही सिद्धि सबाहीं ॥
व्याख्या - जिस प्रकार कृष्ण ने ज्ञान प्राप्त किया, वह सब वत्स तुमको बताता हूँ। कृष्ण का जन्म द्वापर युग में हुआ और उन्होंने समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं ।
सिद्धि बल यश चहुँदिसि पाई । पर हियँ रहत ग्लानि सदाई ॥
करहिं छलाव सिद्धि बल नाना । सताव चिन्ता बिनु ब्रह्म ग्याना ॥
व्याख्या - सिद्धियों के बल पर चारों तरफ खूब यश प्राप्त कर लिया। परन्तु हृदय में सदा ग्लानि रहती थी । सिद्धियों के बल पर बहुत छल-कपट करता था । परन्तु बिना ब्रह्मज्ञान के चिन्ता सताने लगी ।
दो०- सिद्धि मिलै वासना बढ़ै जीव उरझ उरझ उरझाय ।
निसि दिवस चिन्ता सतावै यश अपयश भय डराय ॥ ७१ ॥
व्याख्या - सिद्धियों की प्राप्ति होने से वासनाएँ बढ़ जाती हैं और जीव उलझ जाता है । रात-दिन चिन्ता सताने लगती है तथा मान-अपमान का डर भी लगने लगता है ।
सोइ भयउ सुत कृष्ण संगा । नित्य सतावइ भय भुजंगा ॥
एक दिन कृष्ण देखा धरि ध्याना । नहिं एकलव्य सम ब्रह्म ग्याना ॥
व्याख्या - ऐसा ही कृष्ण के साथ हुआ कि उन्हें भय रूपी सर्प नित्य सताने लगा। एक दिन कृष्ण ने ध्यान लगा कर देखा कि एकलव्य के समान कोई दूसरा ब्रह्मज्ञानी नहीं है ।
बदल भेष चलेउ निषादपुरम । हिण्डल सरिता बहत सुरम्य ॥
ग्राम्य बाहिर बट एक सुन्दर । बैठहिं तहँ एक लव्य बिहँगबर ॥
व्याख्या - इसलिए एक दिन कृष्ण भेष बदल कर निषादपुरम गाँव के लिए चल दिये, जहाँ पर हिण्डल नदी बहती हुई शोभा दे रही थी । उसी गाँव के बाहर एक बरगद के पेड़ के नीचे ब्रह्मज्ञानी एकलव्य बैठे हुए थे ।
मन शान्त भयउ ब्रह्म लीना । कृष्ण आइ निज परिचय दीना ॥
सिद्धि बल हियँ बहु अहंकारा । विनय दिखाय छुपाई विकारा ॥

व्याख्या - एकलव्य का मन पूरी तरह से शान्त और ब्रह्म में लीन था। कृष्ण ने आकर अपना परिचय दिया, परन्तु कृष्ण को अपनी सिद्धियों का बहुत अहंकार था, इसलिए ऊपर से विनय भाव दिखाकर कुटिलता को छिपाने का प्रयास किया।

एकलव्य भा अन्तर यामी । जाना सब काह मन राघा स्वामी ॥
विगत राग द्वेष कहि मृदुबानी । कहउ सखा काह मन अनुमानी ॥

व्याख्या - एकलव्य तो अन्तर्यामी थे, इसलिए कृष्ण के मन में क्या चल रहा था, सब जान लिया । तब एकलव्य ने राग-द्वेष से रहित वाणी में कहा कि हे मित्र! तुम अपने मन में क्या सोच रहे हो ?

दो०- निर्भय होइ कहउ सखा काह भय रहृयो सताय ।
कारण कवन आगमन सच कहो रखउ न छुपाय ॥ ७२ ॥

व्याख्या - हे मित्र ! आप निर्भय होकर कहिए कि आपको क्या भय सता रहा है? आपके यहाँ आने का कारण क्या है ? आप सत्य कहिए, कुछ भी छुपाइए नहीं ।

अतुल सिद्धि बल तुमरे काछा । यश पावत तिहउ लोक आछा ॥
मन बिकल काहे उदासी छाई । कहु काह सकउँ करि सहाई ॥

व्याख्या - आपके पास तो अतुल्य सिद्धियों का बल है और संसार में अच्छा यश भी प्राप्त कर रहे हो, फिर भी तुम्हारे मन में उदासी क्यों है, तथा व्याकुल क्यों हो रहे हो ? बताइए, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ?

सुनत एकलव्य निर्मल बचना । दोउ कर जोरि कीन्ह अर्चना ॥
सुनहउ देव मैं बहु बड़भागी । भयउँ अब तुम्हार अनुरागी ॥

व्याख्या - एकलव्य के निर्मल वचनों को सुनकर कृष्ण दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोला कि हे देव ! मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि आपके प्रति मेरे मन में अनुराग पैदा हो गया है ।

तुम ब्रह्मलीन प्रभु गुणातीता । देवहउ उपदेश परम पुनिता ॥
सिद्धि बल मैं पायउँ यश हमेशा । अन्तर मन मिटत नहिं क्लेशा ॥

व्याख्या - हे देव ! आप ब्रह्मलीन व गुणों से परे हैं, इसलिए परम हितकारी उपदेश दीजिए । मैंने सिद्धियों के बल से हमेशा यश प्राप्त किया है । परन्तु अन्तः मन की चिन्ता नहीं मिट पा रही है ।

सिद्धि हेतु मोहि मानहिं भगवाना । मन बिकल बिनु ब्रह्म ग्याना ॥
निसि दिवस भागम भाग मचाई । छल बल बहु करत सदाई ॥

व्याख्या - सिद्धियों के बल के कारण लोग मुझे भगवान मानने लग गये हैं । परन्तु मेरा मन बिना ब्रह्मज्ञान के व्याकुल रहता है । मैं रात-दिन दौड़-भाग और

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

छल-बल करता रहता हूँ ।

दो०- वासना अनल हियँ जलै सिद्धि घृत अरु बढ़ाय ।
कर्मफल बन्धन परा जुगति नहिं किछु चल पाय ॥ ७३ ॥

व्याख्या - वासना रूपी अग्नि मेरे हृदय में जल रही है, जिसको सिद्धियों रूपी घी और प्रज्वलित कर रहा है । वासनाओं के कारण कर्म-फल का बन्धन पड़ गया है। जिससे निकलने का कोई उपाय नहीं मिल पा रहा है ।

करि कृपा देहु ब्रह्म उपदेशा । मिटावउ मोर सकल क्लेशा ॥
सुनत विनय कहा एकलव्या । सुनहउ सखा कहउँ ज्ञान दिव्या ॥

व्याख्या - हे देव ! मुझे कृपा करके ब्रह्मज्ञान का उपदेश दीजिए और मेरे समस्त क्लेशों को दूर कीजिए । एकलव्य ने कृष्ण की विनयपूर्वक बातें सुनकर कहा कि हे मित्र ! तुम सुनो, मैं तुम्हें दिव्यज्ञान देता हूँ।

एक ही ब्रह्म नहिं दूसर कोई । रिद्धि सिद्धि सकल विभूति सोई ।
भाव अनुरूप देव उपजाई । भाव ही मूल सब देव सुहाई ॥

व्याख्या - हे मित्र ! एक ही ब्रह्म होता है, दूसरा कोई नहीं होता है । ऋद्धि-सिद्धियां भी एक ही ब्रह्म की विभिन्न विभूतियाँ होती हैं । भाव के अनुसार देवताओं की उत्पत्ति होती है । इसलिए भावना ही समस्त देवों की उत्पत्ति का मूल होती है।

ईश्वर अरु जीव नहिं भेदा । माया हेतु भा सकल जग खेदा ॥
मायाधीश सोई ईश कहाई । माया बस्य सो जीव हय भाई ॥

व्याख्या - ईश्वर और जीव में कुछ भी भेद नहीं होता है । संसार के दुःखों का कारण तो माया होती है । माया जब जीव के वश में होती है, तो जीव ईश्वर समान ही होता है और माया के अधीन होता है, तो वही जीव कहलाता है।

देह माटी पवन बोलन हारा । सब घट प्राण ईश इकसारा ॥
हिम अरु जल नहिं अलगाई । तैसउ जीव ईश समझ भाई ॥

व्याख्या - शरीर मिट्टी का बना हुआ होता है और प्राण शरीर के अन्दर बोलता है । इसलिए सभी शरीरों में ईश्वरीय प्राण एक समान रहता है । जैसे बर्फ और पानी अलग नहीं होता है, वैसे ही जीव और ईश्वर अलग नहीं होते हैं ।

हिम पिघलहिं सलील सुहाई । घट बिलग पौन पौन समाई ॥
पवन धरहिं नाना आकारा । बनहिं सोइ जीव देह प्रकारा ॥

व्याख्या - जैसे बर्फ पिघल कर जल ही हो जाता है, वैसे ही शरीर से अलग होने पर प्राण-वायु प्राण में ही समा जाती है । प्राण-वायु ही नाना आकार धारण करती है, इसलिए प्राण के अनुसार ही नाना प्रकार के शरीर बन जाते हैं ।

दो०- अकथ अगाध एक रस सोइ परमपिता परमेश ।
शरण गए तबहि उबरे अन्य विधि न मिटै क्लेश ॥ ७४ ॥

व्याख्या-परमपिता परमेश्वर तो अकथनीय, अगाध व एकरस हैं। इसलिए परमात्मा की शरण जाने पर ही उद्धार सम्भव है। वरना अन्य विधि से क्लेश नहीं मिट सकते हैं।

सब तें बिलग ब्रह्म अविनासी। पालक सृजक रहत उदासी ॥
तन ग्यान पुनि करि मन ग्याना। पुनि करि ईश भजन सुजाना ॥

व्याख्या - अविनाशी ब्रह्म तो सबसे अलग होता है, जो सबका पालनहार व सृजनहार होते हुए भी उदास बना रहता है। इसलिए हे मित्र ! पहले शरीर का और फिर मन का ज्ञान करके ईश्वर का भजन करना चाहिए।

मोह सकल माया मूल सुहाई। मोह सब जग बाधा उपजाई ॥
मैं मोर तोर सब मोह मूला। सोइ माया सोइ सब भव शूला ॥

व्याख्या-समस्त माया का मूल मोह ही होता है तथा मोह से ही संसार में समस्त बाधाएँ पैदा होती हैं। मैं, मेरा और तेरा का भाव ही मोह को जन्म देता है तथा मोह ही माया होता है और मोह ही भाव रूपी भवसागर के कष्ट का कारण होता है।

माया हेतु सब जग उपजाई। विगत माया तबहिं ईश मिलाई ॥
माया जीतन सो कहउँ उपाई। सुत वित यश रहत छुपाई ॥

व्याख्या - माया के कारण ही समस्त संसार का आभास होता है और जब माया मिट जाती है, उसी समय परमपिता से मिलन हो जाता है। इसलिए मैं तुम्हें माया को जीतने का उपाय बताता हूँ। माया हमेशा सुत अर्थात मोह, धन की इच्छा और लोक प्रतिष्ठा की इच्छा में छिपी रहती है।

मैं कौन कहाँ ते कवन हेतु आया। जानहिं तबहिं जीतै सब माया ॥
माया मिटइ अंश अंशी समाना। सुनहउ सखा इहैं ब्रह्म ग्याना ॥

व्याख्या - मैं कौन हूँ तथा कहाँ से आया हूँ और किसलिए आया हूँ? इन प्रश्नों का उत्तर जान लेने पर माया को जीता जा सकता है। जब माया मिट जाती है, तब अंश और अंशी का मिलन हो जाता है। हे सखा ! यही ब्रह्मज्ञान है।

दो०- माया मिटै चिन्ता नसइ विगत चिन्ता सुख बच जाय ।
गुरु कृपा माया मिटावै ऋषि मुनि जन सकल बताय ॥ ७५ ॥

व्याख्या - माया मिट जाने पर चिन्ता का नाश हो जाता है और चिन्ता मिट जाने पर सुख ही सुख बच जाता है। गुरु की कृपा से ही माया मिट पाती है। सभी ऋषि मुनि यही बताते हैं।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण द्वादशम पड़ाव ॥

ध्यान ग्यान भगति मारग । विप्र कहहिं ये सब भव तारक ॥
मोरउ मत नहिं इन तें भिन्ना । बिनु जानइ रहत मन खिन्ना ॥

व्याख्या - ध्यान, ज्ञान और भक्ति के रास्ते को विद्वान लोग भवसागर पार करने का साधन बताते हैं । हे सखा ! मेरा भी मत इनसे भिन्न नहीं है । ध्यान, ज्ञान और भक्ति के रहस्य को जाने बिना मन के विकार नहीं मिट पाते हैं ।

ध्यान ग्यान भगति सब ऐका । समरप मूल करि देखि विवेका ॥
ईश सन्मुख जे समरप करहिं । ध्यान, ग्यान भगति सब मिलहिं ॥

व्याख्या - ध्यान, ज्ञान और भक्ति सब एक ही हैं । इन सबका मूल समर्पण का भाव ही होता है । इसलिए जो परमात्मा के समक्ष समर्पण करते हैं, उनको ध्यान, ज्ञान और भक्ति की प्राप्ति हो जाती है ।

ईश्वर जगत सकल कर्ता । जब विश्वास हियँ उमगता ॥
तब तब आवइ समरप भावा । ध्यान ग्यान भगति दिलावा ॥

व्याख्या - ईश्वर ही संसार में सब कुछ करने वाला है । यह विश्वास जब जीव के हृदय में आ जाता है, तब समर्पण का भाव आ जाता है तथा वह समर्पण का भाव ही ध्यान, ज्ञान व भक्ति देने वाला होता है ।

सखा करि मम बचन विश्वासा । रखि ईश भरोस तजि सब आशा ॥
रिद्धि सिद्धि सब प्रभु विभूताई । जान सबहिं बन्धन जगताई ॥

व्याख्या - हे सखा ! तुम मेरे वचनों का विश्वास करो और सब आशा छोड़ कर परमपिता पर भरोसा करो । ये ऋद्धि-सिद्धियाँ सब परमपिता की विभूतियाँ हैं, जो संसार में बन्धन देने वाली हैं ।

दो०- जब लगि सिद्धि चाह मन तब लगि देह अभिमान ।
जब लगि देहाभिमान हय तब लगि बन्धन जान ॥ ७६ ॥

व्याख्या - जब तक मन में सिद्धियों की इच्छा होती है, तब तक देह का अभिमान रहता है और देहाभिमान जब तक बना रहता है, तब तक बन्धन मानना चाहिए।

जब लगि वासना रह मन माहिं । तब लगि जीवन चाह सदाहिं ॥
जीवन चाह सोइ बन्धन भाई । रिद्धि सिद्धि देवहिं बहु उलझाई ॥

व्याख्या - जब तक मन में कोई वासना रहती है, तब तक ही जीवन जीने की इच्छा रहती है । जीवन जीने की इच्छा ही बन्धन का कारण होती है तथा ऋद्धि-सिद्धियाँ उसमें बहुत उलझा देती हैं ।

सो उचित जानउ ब्रह्म ग्याना । सकल जगत अंश भगवाना ॥
ब्रह्म एकहि दूसर जग नाहिं । सत्य वचन समझ हियँ माहिं ॥

व्याख्या - इसलिए ब्रह्मज्ञान को जान लेना ही उचित है । यह समस्त संसार परमात्मा का ही अंश है । संसार में एक ही ब्रह्म व्याप्त है और कोई दूसरा नहीं है । यह मेरा सत्य वचन है । तुम अपने हृदय में समझो।

ब्रह्म जानि सखा वसन समाना । सूत एक बनहिं नाना परिधाना ॥
तेसउ आत्मा एक जगत सारी । निज मन देखहउ सखा विचारी ॥

व्याख्या - हे मित्र ! ब्रह्म को वस्त्र के समान जानना चाहिए, जैसे वस्त्र एक ही धागे से बनता है, फिर भी नाना परिधान तैयार हो जाते हैं। वैसे ही समस्त संसार एक ही आत्मतत्व से बना हुआ है । तुम स्वयं के मन में विचार करके देखो ।

तू ही आत्मा तू ही परमात्मा भाई । जीव ईश माया दीवार सुहाई ॥
जब जब होवहिं माया निवारा । तबहिं सम्भव ब्रह्म दीदारा ॥

व्याख्या - हे मित्र ! तुम ही आत्मा और तुम ही परमात्मा हो । जीव और ईश्वर के बीच में तो माया दीवार बनकर रहती है । इसलिए जब माया रूपी दीवार हटती है, तो उसी समय ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है ।

दो०- ब्रह्म मिलै वासना मिटै विगत वासना सहज सुहाय ।
सहज सोइ धरम हय धरम ही बन्धन कटाय ॥ ७७ ॥

व्याख्या - ब्रह्म के साक्षात्कार करने पर वासनाएँ मिट जाती हैं तथा वासनाओं के मिट जाने पर जीव सहज हो जाता है । सहजता ही धर्म होती है तथा धर्म से ही बन्धन कट पाते हैं ।

आत्मा अमर मरै नहिं मारे । बदलहिं रूप भाव अनुसारे ॥
पंचभूत सब अन्न सरूपा । आत्मा चेतन अनादि अनूपा ॥

व्याख्या - आत्मा अमर होती है, जो मारने पर भी नहीं मरती है । वह तो केवल भाव के अनुसार रूप बदल लेती है । पंचभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) अन्न होते हैं तथा चेतन-तत्व आत्मा होता है ।

पंचभूत बनावहिं शरीरा । चेतना सो जीव सुनु मतिधीरा ॥
चेतना कबहुँ मिटै न मिटाई । सो जीव अजर-अमर कहाई ॥

व्याख्या - पाँचों भूतों के अन्न से शरीर बनता है और चेतन तत्व ही जीव बनकर रहता है । चेतना कभी मिटती नहीं है, इसलिए जीव अजर-अमर कहलाता है।

चेतन अमल सहज सुखराशी । सब घट एक प्राण अविनाशी ॥
निज पर सकल भाव का खेला । सुन सखा चेतन हंस अकेला ॥

व्याख्या - चेतन तत्व तो निर्मल, सहज और सुख की राशि होता है तथा जो समस्त शरीरों में अविनाशी प्राण के रूप में निवास करता है । अपना-पराया ये

सब तो भावों के कारण है । चेतन जीव तो एकरस अकेला होता है ।

सोइ ब्रह्म सोइ ब्रह्म का अंशा । सरूप नाना कारण मन मंशा ॥
चेतन तत्व जानि जल समाना । इच्छा सोइ बुद बुदा नाना ॥

व्याख्या - चेतन जीव ही ब्रह्म होता है और वही ब्रह्म का अंश होता है । मन की इच्छाओं के कारण ही चेतन-तत्व के नाना रूप बनते हैं। चेतन तत्व को जल की तरह समझना चाहिए और इच्छाओं को पानी के बुलबुलों के समान समझना चाहिए ।

बुदबुद सम सकल शरीरा । जल जल भयउ निकस समीरा ॥
ऐसउ जानि सखा देह हमारी । क्षण भंगूर लीला हय जग सारी ॥

व्याख्या - हे सखा ! पानी के बुलबुलों के समान हमारा यह शरीर है तथा जब बुलबुलों से हवा निकल जाती है, तो जल ही जल में मिल जाता है। इसी प्रकार हमारा शरीर है, इसलिए समस्त जग के क्रिया-कलाप भी क्षण भंगुर हैं ।

दो०- देह अरु वासना नश्वर बिरथा जीव जग भरमाई ।
सन्त जन जानइ मरम सब तजि सहज सुख पाई ॥ ७८ ॥

व्याख्या - यह शरीर भी नश्वर है और वासनाएँ भी नश्वर होती हैं। जीव तो व्यर्थ में ही संसार में भ्रमित होता है । सन्त लोग इस रहस्य को जानते हैं, इसलिए सब छोड़कर सहज में ही सुख प्राप्त करते हैं।

मैं मोर तोर सकल जंजाला । ब्रह्म एक सब जग प्रतिपाला ॥
जीव ब्रह्म इहँ सत्य ग्याना । निज हिय जानउ धरि ध्याना ॥

व्याख्या - मैं, मेरा, तेरा ये सब बन्धन हैं । ब्रह्म तो एक ही है, जो समस्त जगत का पालन करने वाला है । सखा जीव ही ब्रह्म होता है, यह सत्य ज्ञान है । तुम स्वयं के हृदय में ध्यान करके देखो ।

ध्यान करन सरल राह बताउँ । नयन मूँद हियँ ब्रह्म समझाउँ ॥
सुन कृष्ण नयन बन्द कीन्हा । ब्रह्म उपदेश एकलव्य दीन्हा ॥

व्याख्या - एकलव्य ने कृष्ण से कहा कि हे सखा ! तुमको ध्यान करने का सरल उपाय बता देता हूँ । अतः अब तुम आँख बन्द करो । मैं तुम्हारे हृदय में ही ब्रह्म को समझा देता हूँ । ऐसा सुनकर कृष्ण ने आँखें बन्द कर ली । तब एकलव्य ने ब्रह्मज्ञान को कृष्ण को समझाया।

जग हित सोइ कहुँ समझाई । सुनत सब संशय जाइ मिटाई ॥
एक लव्य कहा करउ देह विश्रामा । विचारउ मन विगत सब कामा॥

व्याख्या - उसी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की विधि को मैं यहाँ जगत के कल्याण के लिए बताता हूँ । एकलव्य ने कृष्ण से कहा कि तुम समस्त शरीर को विश्राम कर दो और

मन में विचार ले आओ कि मैं समस्त कामनाओं से मुक्त हो गया हूँ ।

आवत जावत श्वास संभारउ । निज दृष्टि निज ऊपर डारउ ॥
पुनि लेहउ गम्भीर श्वासा । छाडउ सहज सहज आभासा ॥

व्याख्या - आने-जाने वाली श्वास को देखते रहो और स्वयं की दृष्टि को स्वयं के ऊपर ले आओ । दोबारा एक गहरा लम्बा श्वास लो और धीरे-धीरे सहजता के साथ छोड़ दो ।

दो०- आनन्द मूल सृष्टि सब आनन्द मय जग करतार ।
आनन्द मय आत्मा मोरी करहु मन माहिं विचार ॥ ७९ ॥

व्याख्या - मन में ऐसा विचार करो कि समस्त सृष्टि का मूल आनन्द ही है तथा परमपिता भी आनन्दमय हैं । मेरी आत्मा भी आनन्दमय है ।

नयन देखउ नयन लगाई । सहजहि मन निज बस आई ॥
अब करउ निज मन विचारा । सकल जगत मम विस्तारा ॥

व्याख्या - स्वयं की आँखों में देखो । इस क्रिया से सहज में ही मन वश में हो जाता है । अब स्वयं के मन में विचार करो कि यह समस्त जगत मेरा ही विस्तार है।

जहँ जहँ जावइ मोर दृष्टि । तहँ तहँ पावउँ सकल सृष्टि ॥
मैं ही ब्रह्म ब्रह्माण्ड विस्तारा । मैं ही जीव मैं ही अंश अवतारा ॥

व्याख्या - जहाँ-जहाँ मेरी दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ समस्त सृष्टि का विस्तार हो रहा है । मैं ही ब्रह्म का अंश हूँ तथा मेरा ही विस्तार ब्रह्माण्ड है । मैं ही जीव हूँ और मैं ही अंश रूप में परमपिता का अवतार हूँ ।

मोते पावहि सब जग विस्तारा । आइ समावहि मोते जग सारा ॥
मोहि बाहिर जग किछु नाई । इहँ अनुभव ब्रह्म ग्यान भाई ॥

व्याख्या - मुझसे ही समस्त संसार विस्तार को प्राप्त कर रहा है तथा पुनः मुझमें ही आकर समा रहा है । मुझसे बाहर संसार में कुछ भी नहीं है । यह अनुभव होना ही ब्रह्मज्ञान है ।

सखा मन माझ करउ विचारा । कोह पितु कोह मातु तुम्हारा ॥
तुम्हीं सृजक तुम्हीं पालनहारी । तुम्हीं जग तुम्हीं जगताधारी ॥

व्याख्या - हे मित्र ! तुम मन में विचार करो कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं ? हे सखा तुम ही सृजन करने वाले व पालने वाले हो । तुम ही जगत हो और तुम ही जगत का कारण हो ।

दो०- तुम्हार चित्त जगत बसै चित्त ही जगत विस्तार ।
तुम्हीं कर्ता भर्ता सकल तुम्हहिं प्रभु अंश अवतार ॥ ८० ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण चतुर्थ पड़ाव ॥

व्याख्या - हे सखा ! तुम्हारे चित्त में समस्त जगत निवास करता है, इसलिए चित्त का विस्तार ही जगत है । तुम ही कर्ता और भर्ता हो तथा तुम ही परमात्मा के अंश के रूप में अवतार हो ।

सकल जीव अंश अवतारी । सखा देखउ निज मन विचारी ॥
निज मन भ्रम लेयउ मिटाई । सब जग मात पितु एक गुसाँई ॥

व्याख्या - हे सखा ! मन में विचार करके देख लो,समस्त जीव ही परमात्मा के अंश के रूप में अवतार होते हैं । अब तुम अपने मन के भ्रम को मिटा लो । समस्त जगत के माता-पिता एक परमात्मा ही होते हैं ।

उभय घड़ी कृष्ण कीन्ह ध्याना । हियँ माझ प्रगटउ ब्रह्म ग्याना ॥
क्षण माझ समझहिं विभूताई । जन्म मरण भ्रम गयउ मिटाई ॥

व्याख्या - दो घड़ी भर कृष्ण ने ध्यान किया, उससे उनके हृदय में ब्रह्मज्ञान प्रकट हो गया । क्षण भर में उनको परमात्मा की विभूतियाँ समझ में आ गयीं और जन्म-मरण का भ्रम मिट गया ।

पिण्ड माझ देखा सकल ब्रह्माण्डा । जीव अनेक पर ब्रह्म अखण्डा ॥
एक हि ब्रह्म दीखत नाना रूपा । हियँ माझ समझा ग्यान अनूपा ॥

व्याख्या - अपने शरीर के अन्दर ही कृष्ण ने समस्त ब्रह्माण्ड को देखा । जिससे जीव तो अनेक दिखाई दिये, परन्तु ब्रह्म सब में अखण्ड ही दिखाई दिया । एक ही ब्रह्म नाना रूपों में दिखाई दिया । यह ज्ञान कृष्ण ने अपने हृदय में समझ लिया ।

कृष्ण तब मन कीन्ह दृढाई । मैं ही ब्रह्म मैं ही जीव सुहाई ॥
रिद्धि सिद्धि जानि सकल विभूति । भाव मूल सब कर्म करतूती ॥

व्याख्या - तब कृष्ण ने अपने मन में दृढ़ता कर ली कि मैं स्वयं ही ब्रह्म हूँ तथा समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ ब्रह्म की विभूतियाँ हैं तथा भाव ही सब कर्मो का मूल होता है ।

भाव ही बन्धन मुक्ति भाई । कृष्ण निज हियँ इहँ समझाई ॥
क्षण माझ भयउ बन्धन मुक्ता । भा ब्रह्मलीन होइ ब्रह्म जुगता ॥

व्याख्या - कृष्ण को स्वयं के हृदय में समझ आ गया कि भाव ही बन्धन और मुक्ति का कारण होता है । इसलिए भाव को समझकर, वह क्षण भर में मुक्त हो गया तथा ब्रह्म से एक रूप होकर ब्रह्ममय हो गया ।

दो०- अंशी अंश ते मिला जसि बूँद समुद्र समाय ।
मेरा तेरा भ्रम मिटा जीव ही ईश बन जाय ॥ ८१ ॥

व्याख्या - जैसे बूँद समुद्र में मिल जाती है, उसी प्रकार जब अंशी और अंश का मिलन हो जाता है, तब मेरे-तेरे का भेद मिट जाता है और जीवात्मा ही

परमात्मा बन जाती है ।

जन्म मरण सकल जाना भेदा । मोह ही मूल जगत सब खेदा ॥
प्रकृति मातु पितु ब्रह्म सुहाई । सकल जगत प्राण माल्य पिराई ॥

व्याख्या - कृष्ण को जन्म-मरण का सारा रहस्य समझ में आ गया तथा यह भी समझ में आ गया कि मोह ही संसार में सब कष्टों का कारण होता है । प्रकृति ही समस्त जगत की माता है तथा अखण्ड ब्रह्म ही सब के पिता हैं । यह समस्त संसार प्राण रूपी माला में गूँथा हुआ है ।

घड़ि भर ध्यान सकल समझाई । रूप विराट निज हियँ दिखाई ॥
जेहि करहि नित्य अभ्यासा । प्रगटहिं हियँ ग्यान अनयासा ॥

व्याख्या - घड़ी भर के ध्यान में ये समस्त रहस्य समझ में आ जाते हैं तथा स्वयं के हृदय में ही भगवान का विराट रूप समझ में आ जाता है । जो नित्य ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनके हृदय में अनायास ही ज्ञान पैदा हो जाता है ।

एहि भाँति कृष्ण ध्यान लगाई । हियँ मरम समझ सब आई ।
नयन खोलि तब बाहिर देखा । एकलव्य चरणन सिर टेका ॥

व्याख्या - इस प्रकार कृष्ण ने ध्यान लगाया और समस्त रहस्यों को अपने हृदय में समझ लिया । तब धीरे-धीरे आँखें खोल कर बाहर देखा और एकलव्य के चरणों में सिर झुकाया ।

निर्मल मन छाड़ि छल कपटाई । कृतग्यता कृष्ण तब दिखलाई ॥
धन्य देव कीन्ह कृपा अपारी । छूटहहिं बन्धन जग सारी ॥

व्याख्या - छल-कपट छोड़कर निर्मल मन से कृष्ण ने एकलव्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि हे देव ! मैं आपका आभारी हूँ कि आपने कृपा करके मेरे सब बन्धन छुड़ा दिये हैं ।

एकलव्य दीन्ह बहु आशीषा । जाउ सखा ब्रह्म बनि रहउ हमेशा ॥
दृष्टा बनि भोगउ सकल भोगा । मानहिं ईश पूजा करइब लोगा ॥

व्याख्या - एकलव्य ने कृष्ण को बहुत आशीर्वाद दिया और कहा कि हे कृष्ण! तुम स्वयं भगवान बन कर रहो तथा दृष्टा बन कर समस्त भोगों को भोगिए। लोग तुम्हें भगवान मान कर ही पूजा करेंगे ।

कर्मबन्धन व्यापहि नहिं तोहि । भल मन्द उचित सब होहि ।
मन रखहउ सदा जगदीसा । होइब सखा मंगल चहुँदीसा ॥

व्याख्या - हे कृष्ण ! तुमको कर्म का बन्धन नहीं व्यापेगा । इसलिए तुम्हारा

अच्छा-बुरा सब उचित होगा । तुम सदा मन में जगत पिता को याद रखना । तुम्हारा चारों दिशाओं में मंगल ही मंगल होगा ।

दो०- मन हेतु सुख दुःख मन ही विषयन भटकाय ।
मन वश सुख मूल हय मन बन्धन मोच्छ दिलाय ॥ ८२ ॥

व्याख्या - मन के कारण ही सुख-दुःख का आभास होता है और मन ही जीव को विषय-वासनाओं में फँसाता है । मन को वश में करना ही सुख का मूल होता है तथा मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण होता है ।

एहि भाँति भयउ कृष्ण ब्रह्म ग्यानी । सहजहि एकलव्य सब प्रदानी ॥
पढ़हि गुनहि जो इहँ संवादा । पावहिं ग्यान ब्रह्म अगाधा ॥

व्याख्या - इस प्रकार कृष्ण को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई थी । जो एकलव्य ने सहज में ही प्रदान कर दिया था । जो इस संवाद को पढ़ेंगे व अनुसरण करेंगे, उनको ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी ।

रिद्धि सिद्धि सब सहजहिं आवहिं । कर्म बन्ध कबहुँ न सुहावहिं ॥
सतावइ नहि भूत प्रेत पिशाचा । करहि ब्रह्म इहँ वचन साँचा ॥

व्याख्या - ब्रह्मज्ञानी के पास ऋद्धि-सिद्धियाँ सहज में ही आ जाती हैं और उन्हें कर्म का बन्धन नहीं व्याप्ता है तथा भूत, प्रेत और पिशाच आदि भी नहीं सताते हैं । इस वचन को ब्रह्म सत्य करते हैं ।

श्रद्धा सह जो सुनहिं इहँ संवादा । मिलहिं सुख मिटहिं सब बाधा ॥
जो सुनहिं इहँ गर्भवती माई । नहिं संशय ब्रह्म ग्यानी जन्माई ॥

व्याख्या - श्रद्धापूर्वक इस संवाद को सुनने से परम सुख की प्राप्ति होती है तथा समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है । जो गर्भवती माता सुनती हैं, उनको ब्रह्मज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं है।

जो इहँ सुनहिं बनिक व्यवसाई । होवइ लाभ तिन्ह अधिक सदाई ॥
जे सुनहिं ज्ञानी अरु जिज्ञासु । मिलहिं समाधान मिटहिं पिपासु ॥

व्याख्या - जो व्यवसायी लोग इस संवाद को सुनेगें, उनको व्यवसाय में सदा ज्यादा लाभ होगा तथा ज्ञानी और जिज्ञासु भक्त अगर इसे सुनेगें, तो उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त हो जायेगी और समस्त प्रश्नों का समाधान मिल जायेगा ।

दो०- इहँ कथा सुख दायनी सरल सुगम अरु सुस्वाद ।
सब काल सब जन सुलभ जाति पंथ नहिं विवाद ॥ ८३ ॥

व्याख्या - यह कथा बहुत ही सुख देने वाली, सरल, सुगम और रूचिकर है। यह सब

समय और सबके लिए सुलभ है तथा जाति-पाति व पंथ का कोई विवाद नहीं है।

दो०- ब्रह्म ही कहत सुनत ब्रह्म ही ब्रह्म समझाय ।
जो पढ़ि गुन अनुसरहि वो निज ब्रह्म बन जाय ॥ ८४ ॥

व्याख्या - ब्रह्म ही ब्रह्म का वर्णन करता है और ब्रह्म ही ब्रह्म को समझाता है । जो इस संवाद को पढ़ व सुन कर अनुसरण करेंगे, वे ब्रह्ममय हो जायेंगे ।

धन्य देव मैं बहु बड़भागी । सुनइ कथा चित्त अनुरागी ॥
अबहुँ जिज्ञासा मोर मन माहीं । एकलव्य ज्ञान केहि विधि पाहीं ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि मैंने अनुरागपूर्वक कथा सुनी है। हे प्रभु! मेरे मन में परन्तु अभी भी एक जिज्ञासा है कि एकलव्य को ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ?

कोह गुरु विधि काह अनुसराई । काह अनुभवहिं काह बताई ॥
एकलव्य भयउ आदिवासी । कैसे पायउ ग्यान अविनासी ॥

व्याख्या - एकलव्य के गुरु कौन थे तथा कौन-सी विधि का उसने अनुसरण किया तथा क्या अनुभूति हुई और लोगों को क्या बताया ? एकलव्य आदिवासी बालक था, फिर भी अविनाशी परमज्ञान को कैसे प्राप्त किया है ?

मैं सुनहिं इतिहास पुराना । कीन्ह नहिं जप तप भगवाना ॥
शास्त्र आदि नहिं हाथ लगाई । तबहउ परम ग्यान वो पाई ॥

व्याख्या - भगवन् ! मैंने इतिहास-पुराणों में सुना है कि उसने कोई जप-तप नहीं किया था । शास्त्र आदि को भी छुआ तक नहीं था, फिर भी उसको परमज्ञान की प्राप्ति हो गयी ।

केहि विधि सम्भव इहँ नाथा । समझाइ कहउ अब जग त्राता ॥
गुरु कृपा एकलव्य सब पाई । सुत तोहि कहउँ सत्य बताई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! यह कैसे संभव हुआ कि बिना जप-तप के भी परमज्ञान प्राप्त कर लिया । हे जग को पार कराने वाले प्रभु ! आप मुझे समझा कर कहिए । हे वत्स ! तुम को सत्य बताता हूँ कि एकलव्य ने केवल गुरु कृपा से ही सब कुछ प्राप्त कर लिया था ।

दो०- गुरु भगत सम भगत नहिं तीनहउ लोक अरु काल ।
रिद्धि सिद्धि सेवा करें जग होवत यश कमाल ॥ ८५ ॥

व्याख्या - गुरु भक्त के समान संसार में तीनों काल और तीनों लोकों में दूसरा कोई भक्त नहीं होता है । गुरु-भक्त की ऋद्धि-सिद्धियाँ सेवा करती हैं और संसार में यश की प्राप्ति होती है ।

गुरु भगत एक लव्य समाना। हुआ न सुना नहिं कोउ काना ॥
सोइ कहुँ अब कथा विस्तारी। सुनत पावइ गुरु भक्ति अपारी ॥

व्याख्या - एकलव्य के समान गुरु-भक्त न कोई हुआ और न ही कोई सुना है। अब मैं तुमको एकलव्य की कथा को विस्तारपूर्वक बताता हूँ, जो सुनने पर अपार गुरु-भक्ति प्रदान करने वाली है ।

निषादूपुरम भा सुन्दर ग्रामा। रहइ हिरण्य धेनु सलेला बामा ॥
आदि कबिला भयी जाति निषादा। रहवहिं तहँ सदा निर बाधा ॥

व्याख्या - एक निषादपुर गाँव था। उसमें हिरण्यधेनु अपनी सलेला नाम की पत्नी के साथ रहता था। यह आदिवासी कबीला था तथा निषाध जाति थी। यह कबीला शान्तिपूर्वक रहता था।

हिरण्य धेनु भयउ सरदारा। पालइ पोषहिं सकल इकसारा ॥
एक ग्लानि रहइ मन माहीं। सुख सकल पर सुत नाहीं ॥

व्याख्या - हिरण्यधेनु कबीले के सरदार थे, जो समस्त लोगों को एक समान रखते थे। उनको समस्त सुख प्राप्त थे, परन्तु पुत्र नहीं होने की ग्लानि सदा मन में रहती थी।

इक दिन आयउ एक साधु ग्रामा। हिरण्यधेनु लेइ गयउ धामा ॥
सलेला बहु विधि व्यंजन बनाई। निज कर कीन्ह सब सेवकाई ॥

व्याख्या - एक दिन एक साधु गाँव में आया, तो हिरण्यधेनु अपने घर ले गया। सलेला ने बहुत प्रकार के व्यंजन बनाए तथा स्वयं के हाथों से साधु की सेवा की।

साधु लीन्ह भोजन अति अल्पा। सत संग कीन्ह बहुरि गल्पा ॥
हम साधु करहिं नहिं स्वादा। भोजन अल्प भल भजन ज्यादा ॥

व्याख्या - साधु ने बहुत थोड़ा सा भोजन लिया और सत्संग की बहुत सी बातें करते हुए कहा कि हम साधु लोग ज्यादा भोजन नहीं करते हैं। क्योंकि साधु के लिए कम भोजन व भजन ज्यादा अच्छा होता है।

दो०- भोजन करि पुनि सत्संग भया साधु भया सेवा अधीन ।
मन प्रसन्न हियँ विचारी काह देवउ उभय सेवा प्रवीन ॥ ८६॥

व्याख्या - भोजन करने के बाद पुनः सत्संग हुआ। सेवा भाव देखकर साधु प्रसन्न होकर मन में विचार करने लगे कि ये तो सेवा भावी दम्पति हैं, इनको क्या दिया जाये।

मन विचार साधु दीन्ह आशीषा। होइब सुत तुम्हार कृपा ईशा ॥
मृषा वचन हम नहिं कहहिं। सन्त लाज प्रभु सदा रखहिं ॥

व्याख्या - मन में विचार करके फिर साधु ने आशीर्वाद दिया कि परमात्मा की अनुकंपा से तुम लोगों को पुत्र की प्राप्ति होगी। हम साधु लोग कभी झूठ नहीं बोलते हैं तथा भगवान हमलोगों की इज्जत रखते हैं।

अब जाइ करु जप शिव नामा। खेलइब सुत तुम्हार धामा ॥
प्रातः उठि साधु लीन्ह विदाई। इत दम्पति हियँ दृढ़ता आई ॥

व्याख्या - अब आप लोग जाकर शिव नाम का जप करो, तुम्हारे घर में पुत्र खेलने लगेगा। प्रातः उठकर साधु बाबा विदा लेकर चल दिए तथा इधर को दोनों पति-पत्नी के हृदय में साधु के आशीर्वाद पर विश्वास हो गया।

उभय जाइ करन जप लागे। मन प्रसन्न हियँ अनुरागे ॥
तिन्ह शिव जप कीन्ह अपारा। द्रवहिं शिव नभ माझ पुकारा ॥

व्याख्या - दोनों दम्पति जाकर शिव का जप करने लगे। उनका मन बहुत प्रसन्न था तथा हृदय में बहुत अनुराग था। उन्होंने शिव तत्व का बहुत जप किया। जिससे द्रवित होकर शिव तत्व ने आकाशवाणी की।

प्रसन्न भया ब्रह्माण्ड सारा। मागहउ वर देवहउँ अपारा ॥
कर जोरि उभय भए ठाढ़े। गद गद गिरा पुलकावली बाढ़े ॥

व्याख्या - समस्त ब्रह्माण्ड में प्रसन्नता छा गयी। तब शिव तत्व ने पुनः कहा कि आप वर माँगिए, मैं सब कुछ दूँगा। तब दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा वाणी गदगद हो गयी और शरीर में पुलकावली बढ़ने लग गयी।

निर्गुण ब्रह्म गुण गो पारा। केहि विधि करहिं नाथ आभारा ॥
हम दीन तुम दीन रखवारे। सब विधि नाथ तुम्हार सहारे ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप तो गुणों से निर्लिप्त ब्रह्म हैं, फिर आप तो गुणों व इन्द्रियों से परे हैं, फिर हम आपका कैसे आभार व्यक्त करें ? हे प्रभु ! हम तो दीन हैं और आप दीनों के रक्षक हैं, इसलिए प्रभु आप ही सब प्रकार से हमारा सहारा हैं।

दो०- हम मूढ़ मति नाथ अति सब विधि शरण तुम्हार।
गदगद गिरा वचन नहिं भये लीन उभय इकसार ॥ ८७ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! हम तो सब प्रकार से मूढ़ हैं। अब हम आपकी शरण में हैं। दोनों की वाणी गदगद हो गयी और बोला नहीं जाने लगा। दोनों ही शिव तत्व में लीन हो गये।

माँगउ बर पुनि कह नभ बानी। देवहउँ सकल सत्य जुबानी ॥
सुनि गिरा नयन तब खोली। सुत चाह इच्छा मन अब डोली ॥

व्याख्या - आकाशवाणी ने पुनः वर माँगने के लिए कहा और कहा कि आज

मैं सब कुछ दूँगा, यह मेरा सत्य वचन है। आकाशवाणी सुनकर दोनों ने आँखें खोली तथा मन में अब पुत्र की इच्छा जागृत हो गयी।

कर जोरि बोली सलेला माई। अद्वितीय धीर वीर सुत चाई ॥
हिरण्य धेनुउ सिर हिलाई। हमरेउ इहँ मत मोर गुसांई ॥

व्याख्या - तब सलेला माता ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा कि मैं अद्वितीय, धीर व वीर पुत्र चाहती हूँ। हिरण्यधेनु ने भी सिर हिला कर कहा कि मेरी भी यही चाह है।

शिव तत्व कहा तव एवमस्तु। होइव सुत अतुल्य गुरु भक्तु ॥
सुत तुमार पाइब यश तीहु लोका। जाहु रहवउ सदा गृह अशोका ॥

व्याख्या - शिव तत्व ने तब कहा कि ऐसा ही होगा। तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा, जो अतुलनीय गुरुभक्त होगा। जिसका तीनों लोकों में यश रहेगा। अब तुम निश्चिन्त होकर घर जाकर रहो।

उभय फिरहिं गृह जब आई। जन्मा सुत नौ मास दिवस जाई ॥
भयउ उत्साह सकल समाजा। देवहिं बधाई तजि सब काजा ॥

व्याख्या - दोनों पति-पत्नी घर लौटकर आ गये तथा नौ महीने बाद उनको पुत्र पैदा हुआ। समस्त आदिवासी समाज में उत्साह छा गया तथा सब कार्य छोड़कर बधाई देने लगे।

दीन्ह न्यौछावर बहु धन धाना। डाका पुरोहित शुभ समय जाना ॥
नाम करण भयउ संस्कारा। समय देखि विप्र कीन्ह विचारा ॥

व्याख्या - सलेला और हिरण्यधेनु ने बहुत दान दिया तथा शुभ समय जानकर पुरोहित को बुलाया। तब नामकरण संस्कार करवाया। पुरोहित ने समय देखकर नाम का विचार किया।

विप्र निज मत कहहि सुनाई। सुनहु सुत बहु शुभ सुहाई।
एकल सुत चाह मन सुहाहि। सोइ नाम एकलव्य कहाहि ॥

व्याख्या - पुरोहित ने अपना मत बताते हुए कहा कि यह पुत्र बहुत ही शुभ है। आप लोगों को एक ही पुत्र की इच्छा थी। इसलिए इसका नाम एकलव्य कहलायेगा।

दो०- एक ईश्वर मानइब सदा एकल यह शिव अवतार।
एक गुरु निष्ठ होइब इहँ सो नाम एकलव्य विचार ॥ ८८ ॥

व्याख्या - यह सदा एक ईश्वर में ही विश्वास करेगा तथा शिव तत्व का अकेला अवतार है और एक गुरु के प्रति निष्ठावान बनेगा। इसलिए इसका नाम एकलव्य ही है।

समय पाइ वह भयउ किशोरा । सुंदर सुगठित निर्मल शरीरा ॥
नित जाइ करहिं बन आखेटा । अर्जुन संग भयी एक दिन भेंटा ॥

व्याख्या - समय के साथ एकलव्य किशोर हो गया । उसका शरीर सुंदर, सुगठित और निर्मल था । वह रोजाना जंगल में शिकार करने जाता था । एक दिन उसकी मुलाकात अर्जुन से हो गयी ।

देखि वराह एकलव्य धाई । छाड़ा तीर पर निसान चुकाई ॥
अर्जुन बहु कीन्ह गुमाना । कोह धनुर्धर हमहिं समाना ॥

व्याख्या - उसी समय एक सुअर को देख कर एकलव्य दौड़ा और तीर चलाया। परन्तु निशाना चूक गया । यह देख कर अर्जुन ने मन में बहुत गुमान किया कि हमारे समान और कौन धनुर्धर हो सकता है।

द्रोण सम नहिं गुरु जग माहिं । तुम अछूत सकैउ नहिं पाहिं ॥
तुम्ह देखउ मोर तीरन्दाजी । क्षण महु मारउँ वराह आजी ॥

व्याख्या - संसार में द्रोणाचार्य के समान कोई गुरु नहीं है तथा तुम दलित हो, इसलिए द्रोणाचार्य तुम्हें प्राप्त हो नहीं सकते हैं । अब तुम मेरी तीरंदाजी देखो, मैं इस वराह को क्षणभर में मार दूँगा ।

प्रथम बाण वराह मार गिराई । एकलव्य ताकि बाँह चढ़ाई ॥
कीन्ह अर्जुन बहु उपहासा । भयउ एकलव्य अति उदासा ॥

व्याख्या - प्रथम वाण में ही अर्जुन ने वराह को मार दिया और एकलव्य की तरफ देख कर बाँह चढ़ाते हुए अर्जुन ने एकलव्य की बहुत हँसी उड़ायी । यह देख कर एकलव्य बहुत उदास हो गया ।

दो०- मन ग्लानि क्षोभ अति हृदय भया दुःख अपार ।
केहि विधि मिलउँ द्रोणगुरु लौटा ग्राम करत विचार ॥ ८९ ॥

व्याख्या - एकलव्य के मन में बहुत क्षोभ और ग्लानि हो गयी तथा दिल में बहुत दुःख हुआ । अब किस प्रकार गुरु द्रोणाचार्य से मिलूँ, यह विचार करते-करते एकलव्य अपने गाँव को लौट गया ।

सकल व्यथा जाइ मातु बताई । सुनत सलेला अति दुःख पाई ॥
भयी प्रेरणा मातु हिय माहिं । सुन सुत तुम सम वीर कोउ नाहिं ॥

व्याख्या - एकलव्य ने अपना समस्त दुःख माता सलेला को जाकर सुना दिया । सलेला पुत्र के दुःख को सुन कर बहुत दुःखी हुई । तब उसी समय माता के हृदय में प्रेरणा हुई और तब एकलव्य से कहा कि हे वत्स ! तुम्हारे बराबर संसार में दूसरा कोई नहीं है ।

इहँ वर मैं पायउँ शिव पासा। जाइ करहु तप छाड़ि उदासा ॥
मातु वचन सुन एकलव्या। हियँ प्रगटहिं शक्ति दिव्या ॥

व्याख्या - हे वत्स ! यह वरदान मैंने शिव से प्राप्त किया है । इसलिए उदासी छोड़ कर प्रयास कीजिए । माता के वचन सुन कर एकलव्य के हृदय में दिव्य शक्ति पैदा हो गयी ।

तेहि काल हिरण्य धेनु आई। संवाद सकल सलेला सुनाई ॥
सुन हिरण्य सलेला वचनाई। तुरत सभासद सब बुलाई ॥

व्याख्या - उसी समय हिरण्यधेनु वहाँ आ गये, तो सलेला ने सारी बात बता दी। हिरण्यधेनु ने सुन कर तुरन्त सभी सभासदों की सभा बुला ली।

सकल सभासद कहा बताई। एकलव्य विद्या हेतु काह उपाई ॥
कहइब विधि उचित विचारी। करउ जेहि पावइ विद्या सारी ॥

व्याख्या - समस्त सभासदों को हिरण्यधेनु ने कहा कि एकलव्य की विद्या हेतु क्या उपाय किया जाये ? आपलोग विचार करके बताइए। जिससे समस्त विद्याएँ प्राप्त की जा सकें ।

दो०- हिरण्य धेनु कथा सुनि निज मत सकल सुनाई ।
कोउ कहहिं संदीपन कोउ कहे द्रोण शिक्षा भल भाई ॥ ९० ॥

व्याख्या - हिरण्यधेनु की बातें सुन कर सभी ने अपना-अपना मत सुनाया। कोई कहने लगे कि संदीपन ऋषि अच्छी शिक्षा देते हैं तथा कुछ कहने लगे कि द्रोणाचार्य अच्छी शिक्षा देते हैं ।

सभा माझ तब वृद्ध इक बोला। बुद्धिमान जद्यपि मन अति भोला॥
संदीपन ऋषि शस्त्र शास्त्र पढ़ाई। काह लाभ एकलव्य तहँ पठाई ॥

व्याख्या - तब सभा में एक वृद्ध व्यक्ति बोला, जो बहुत बुद्धिमान था, परन्तु स्वभाव से भोला था कि संदीपन ऋषि के यहाँ पर शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दी जाती है। अतः वहाँ एकलव्य को भेजने से क्या लाभ है ?

आदिवासी नहिं शास्त्र दरकारा। शस्त्र निपुण हो एकलव्य हमारा ॥
धर्म कर्म जानइ नहिं हम कोई। शास्त्र पढ़ै लाभ काह तब होई ॥

व्याख्या - आदिवासियों को शास्त्र पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? हमारा एकलव्य शस्त्र विद्या में पारंगत होना चाहिए । हम आदिवासी लोग धर्म-कर्म जानते भी नहीं हैं । तब शास्त्र पढ़ने से हमें क्या लाभ होगा ?

सरल सुभाव मन नहिं कुटिलाई। आदिवासी पालइ इहँ धर्म सबाई ॥
सहजता छाड़ि धर्म नहिं दूजा। सो शस्त्र कर्म शस्त्र हमारी पूजा ॥

व्याख्या - हम आदिवासी स्वभाव से सरल होते हैं तथा मन में कुटिलता नहीं रखते हैं। इस धर्म का सदा पालन करते हैं। सहजता को छोड़कर दूसरा कोई धर्म नहीं होता है। इसलिए शस्त्र ही हमारा सहज कर्म है और शस्त्र ही हमारी पूजा है।

सोइ सभासद मोर मन भावा। भल होइब द्रोण काछे पठावा॥
इहँ मत सबहहिं भल लागा। सुनत एकलव भा अनुरागा॥

व्याख्या - इसलिए हे सभासदों ! मेरा मन कहता है कि एकलव्य को द्रोणाचार्य के पास भेजना उचित होगा। वृद्ध व्यक्ति की सलाह सभी को अच्छी लगी। जिसे सुनकर एकलव्य भी अनुराग से भर गया।

दो०- पुरोहित बुलाई तबहिं पूजा प्रकृति देवी कीन्ह।
चीवरा गुर बांधि संग एकलव्य आशीष लीन्ह॥ ९१॥

व्याख्या - उसी समय पुरोहित को बुला कर प्रकृति देवी की पूजा का आयोजन किया गया तथा एकलव्य ने रास्ते के लिए चीवड़ा और गुड़ बाँध कर सभी लोगों का आशीर्वाद लिया।

पुरोहित एकलव संग लीन्हा। गवन तब हस्तिनापुर कीन्हा॥
हियँ उमंग मन बहु विचारा। कल्पहिं आश्रम नाना प्रकारा॥

व्याख्या - एकलव्य ने पुरोहित को साथ में लिया और हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये। एकलव्य के हृदय में बहुत उमंग थी तथा मन में बहुत विचार आ रहे थे। वह मन में आश्रम की नाना कल्पना करता जा रहा था।

हर्ष विषाद उभय मन माहिं। करत विचार द्रुत मग जाहिं॥
हर्ष इहँ द्रोण दर्शन पाइब। विषाद इहँ काह उनि कहिइब॥

व्याख्या - एकलव्य के मन में हर्ष-विषाद दोनों भाव आ रहे थे और विचार करते-करते तेजी से चला जा रहा था। हर्ष तो इस बात का था कि गुरु द्रोणाचार्य के दर्शन होंगे। परन्तु विषाद इस बात का था कि वे कहेंगे क्या ?

हम अग्य अछूत आदिवासी। काह कहिइब द्रोण ब्रह्म उपासी॥
संध्या काल पहुँचे आश्रम द्वारा। भये अचम्भित देखि शोभा अपारा॥

व्याख्या - हमलोग तो अज्ञानी व अछूत आदिवासी हैं। ब्रह्म उपासक द्रोणाचार्य क्या कहेंगे ? शाम के वक्त वे आश्रम के द्वार पर पहुँचे, तो आश्रम की अपार शोभा देख कर आश्चर्यचकित हो गये।

पुरोहित निज परिचय बताई। द्रोण संग मिलन इच्छा जताई॥
कहा सेवक शिष्टता दिखाई। निहारउ बाट पूछन हम जाई॥

व्याख्या - पुरोहित ने अपना परिचय बताया और आचार्य द्रोण से मिलने की

इच्छा जतायी। सेवक ने शिष्टता दिखाते हुए कहा कि आप लोग इंतजार कीजिए। मैं अभी गुरु द्रोण को सूचित करके आता हूँ।

दो०- सीस नवाहिं जय जीव कह आगमन एकलव्य कहा सुनाय।
काह आयुस नाथ मोहि द्वार ठाढ़े लिए मिलन की चाह ॥ ९२ ॥

व्याख्या - सेवक ने सिर झुकाकर जय जीव कहकर एकलव्य के आगमन की सूचना दी तथा पूछा कि स्वामी मुझे अब क्या आज्ञा है? वे द्वार पर आपसे मिलने के लिए खड़े हैं।

सब समाचार द्रोण बताए। संग एक पुरोहित सुहाए।
सुनु द्रोण कहा सेवक समुझाई। देवउ विश्राम गृह ठहराई ॥

व्याख्या - सेवक ने सब बातें बतायी कि एकलव्य के साथ एक पुरोहित भी आया हुआ है। आचार्य द्रोण ने सुन कर सेवक को समझाकर बताया कि उन्हें विश्राम गृह में ठहरने की व्यवस्था कर दीजिए।

प्रातः काल हम जाइब मिलाई। करउ पहुनाइ उचित सबाई ॥
सेवक आयुस पाइ द्वारे आई। उभय गृह विश्राम ठहराई ॥

व्याख्या - हम सुबह जाकर मिलेंगे। उनकी उचित मेहमाननवाजी की व्यवस्था कर दो। आज्ञा पाकर सेवक द्वार पर आया और दोनों की अतिथिशाला में ठहरने की व्यवस्था कर दी।

नाना विचार अब द्रोण मन आई। कारण कवन एकलव सिधाई॥
चिन्ता मग्न ऋषि बहु सताई। पत्नी कृपी तब पूछहिं आई ॥

व्याख्या - आचार्य द्रोण के मन में अब नाना विचार आने लगे कि किस कारण से एकलव्य यहाँ आया है ? आचार्य को बहुत चिन्ता होने लगी, तब धर्मपत्नी कृपी ने आकर पूछा।

कारण कवन चिन्ता सताई। अबहु नाथ जाइ नहिं घुमाई ॥
तुम ब्रह्मरत सहज सुभाई। कारण कवन आज बिचलाई ॥

व्याख्या - किस कारण से आपको चिन्ता हो रही है कि अभी तक आप सोये नहीं हो ? आप तो ब्रह्मरत और सहज स्वभाव वाले हैं, फिर किस चिन्ता ने आपको विचलित कर दिया है ?

दो०- मन बिकल चिन्ता मुख काह कारण इहँ सब नाथ।
सहधर्मनि मैं अनुगामनि कहहउ मोहि सच बात ॥ ९३ ॥

व्याख्या - हे स्वामी ! आपका मन व्याकुल हो रहा है तथा चेहरे पर चिन्ता झलक रही है, इसका क्या कारण है ? मैं आपकी धर्मभार्या और अनुसरण

करने वाली हूँ, इसलिए मुझे सत्य बताइए ।

सुनहउ भामिनि कहुँ सत्य बाता । मन अशान्त हियँ अकुलाता ॥
आदिवासी बालक आज इक आई । कारण कवन समझ नहिं पाई ॥

व्याख्या - हे प्रिय ! सुनो, मैं तुम्हें सत्य बताता हूँ कि मेरा मन अशान्त हो रहा है और हृदय अकुला रहा है । एक आदिवासी बालक आज आश्रम में आया है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि किस कारण से वह यहाँ आया है ?

मोर मन शंका होवत भारी । आयउ इहाँ सीखन विद्या सारी ॥
नाथ मैं इहँ समझ न पावइ । काह हानि जो विद्या सीखे आवइ ॥

व्याख्या - मेरे मन में शंका हो रही है कि वह यहाँ समस्त विद्या सीखने के लिए आया है । कृपी ने तब कहा कि नाथ, अगर वह विद्या सीखना चाहता है, तो क्या हानि है ? मुझे समझ में नहीं आ रहा है।

इहँ समझहिं नहिं तुम भामा । होइब परिणाम बहु दूर गामा ॥
गुरु मरजाद अति कठिनाई । अब ईश्वरहिं मोर सहाई ॥

व्याख्या - हे प्रिय ! तुम इस बात को समझ नहीं पाओगी । इस घटना के बहुत दूरगामी परिणाम होंगे । गुरु की मर्यादा का पालन करना बहुत कठिन है । अब भगवान ही मेरी सहायता कर सकते हैं ।

गुरु होइ कैसे करउँ मनाई । राजकुल संग शिक्षा देइ न जाई ॥
भामिनि इहँ सब वैभव अपारा । पावउँ सकल निधि राज द्वारा ॥

व्याख्या - मैं गुरु के रूप में कैसे मना कर सकता हूँ तथा राजपुत्रों के साथ अन्य लोगों को शिक्षा दे भी नहीं सकता हूँ । हे प्रिय ! क्योंकि ये सब अपार वैभव है, वह मुझे राज कोष से ही प्राप्त हो रहा है ।

नृप कीन्ह अनुबंध मोरे संगा । करहउँ शिष्य होइ सब भंगा ॥
अब परहुँ मैं संकट धरमा । कोउ न जानइ इहँ मरमा ॥

व्याख्या - राजा ने मेरे साथ समझौता किया हुआ है, इसलिए अगर मैं किसी और को शिष्य बनाता हूँ, तो अनुबंध टूट जायेगा । अब मैं धर्मसंकट में पड़ गया हूँ । इस रहस्य को कोई नहीं जानता है ।

दो०- गुरु होइ भेद न कर सकूँ नृप आज्ञाहु टारी न जाई ।
उभय भाँति संकट बड़ राह न परइ किछु दिखाई ॥ ९४ ॥

व्याख्या - गुरु होकर मैं भेद भी नहीं कर सकता हूँ और राजा की आज्ञा भी टाली नहीं जा सकती है । दोनों तरफ से ही बड़ा संकट आ पड़ा है । अब कुछ रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है ।

गुरु पत्नी पुनि कहा समझाई। जावहउ नाथ ईश शरणाई ॥
करइब ईश प्रेरणा तुम्हारे। नहिं संशय संकट आन उबारे ॥

व्याख्या - गुरु-पत्नी ने दोबारा समझा कर कहा कि हे नाथ ! अब ईश्वर की शरण में जाइए। ईश्वर ही आपको प्रेरणा देंगे और वे ही संकट से बाहर करेंगे। इसमें संदेह नहीं है।

सोइ अब करउ नाथ विश्रामा। भल करइब ईश सब कामा ॥
द्रोण सयन हेतु तब जाई। नाना भांति विचार मन आई ॥

व्याख्या - इसलिए स्वामी अब विश्राम कीजिए। प्रभु सब अच्छा करेंगे। द्रोणाचार्य तब सोने के लिए चले गये। परन्तु मन में नाना विचार आते रहे।

उत एकलव्य करै विचारा। कब होइब प्रातः बहु इंतजारा ॥
प्रातः उठि द्रोण कीन्ह स्नाना। भाव विभोर करि स्तुति भगवाना ॥

व्याख्या - उधर एकलव्य के मन में भी बहुत विचार आ रहे थे तथा सुबह होने का बहुत इंतजार कर रहा था। सुबह उठ कर आचार्य द्रोण ने स्नान किया और भावविभोर होकर भगवान की प्रार्थना की।

अगम अगोचर तुम सब नाथा। करहउँ विनय जोरि दोउ हाथा ॥
मोर हृदय प्रेरइब सोई। सब भांति सकल भल होई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप तो अगम, अगोचर व सबके स्वामी हैं। इसलिए मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हृदय में ऐसी प्रेरणा करो, जिससे सब प्रकार से सबका भला हो।

चलै द्रोण तहँ गृह बिश्रामा। मन जपत जाहि भगवत् नामा ॥
पहुँचे द्रोण तहँ एकलव्या। देखा बैठि वीर अति दिव्या ॥

व्याख्या - अब आचार्य द्रोण विश्राम गृह के लिए चल दिये तथा मन ही मन भगवान का नाम जप रहे थे। आचार्य द्रोण जहाँ एकलव्य था, वहाँ पहुँचे और दिव्य वीर को बैठे हुए देखा।

दो० -द्रोण आगमन देखहि तब धाया एकलव्य सहित अनुराग।
जुगल चरण दण्डवत परा धन्य मानहिं निज भाग ॥ ९५॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य जी को आया हुआ देखकर एकलव्य अनुराग सहित दौड़ा और चरणों में दण्डवत पड़ गया तथा अपने आपको धन्य मानने लगा।

पुरोहितउ कीन्ह दण्ड प्रणामा। परिचय दीन्ह सह कुल नामा ॥
आदर सह द्रोण आसन दीन्हा। करइ वार्तालाप आपन कीन्हा ॥

व्याख्या - पुरोहित ने भी दण्डवत प्रणाम किया और कुल व नाम सहित अपना

परिचय दिया । आदरपूर्वक द्रोणाचार्य ने उन्हें आसन दिया और बातचीत करके अपना बना लिया ।

एकलव देखि विनय सुभाउ । भयउ चकित हियँ हर्ष भाउ ॥
समय देखहि तब अनुकूला । पुरोहित कहा आगमन मूला ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य के विनीत स्वभाव को देखकर एकलव्य को बहुत आश्चर्य हुआ और उसके हृदय में खुशी के भाव पैदा हो गये । तब अनुकूल समय देखकर पुरोहित ने उनके आने का मूल उद्देश्य बताया ।

क्षमा करइब नाथ अपराधा । स्वारथ रत बुद्धि नहिं ज्यादा ॥
निज स्वारथ आगमन हमारा । हम कृतग्य देखि व्यवहारा ॥

व्याख्या - हे नाथ ! आप हमारे अपराध को क्षमा करना । क्योंकि हम एक तो स्वार्थी हैं और बुद्धि भी ज्यादा नहीं है । स्वार्थ के कारण ही हमलोग यहाँ आये हैं । आपके विनयपूर्वक व्यवहार को देख कर हम कृतज्ञ हो गये हैं ।

एकलव बालक कुल उजियारा । लेवहु शरण चाह कृपा तुमारा ॥
शिष्य बनिन चाह मन माहीं । सब विधि शरण नाथ अब आहीं ॥

व्याख्या - एकलव्य हमारे कुल का उजाला है । इसलिए इसे आपकी शरण में ले लीजिए, हम आपकी कृपा चाहते हैं । इसके मन में आपका शिष्य बनने की इच्छा है । इसलिए सब प्रकार से अब आपकी शरण में हैं ।

दो०- हम आदिवासी सरल अति कह न सकै बात बनाय ।
शस्त्र विद्या चाह सीखन सब विधि परे शरण आय ॥ ९६ ॥

व्याख्या - हम आदिवासी सरल स्वभाव के होते हैं । इसलिए ज्यादा बात बना कर नहीं कह सकते हैं । इसकी शस्त्र विद्या सीखने की इच्छा है । इसलिए सब प्रकार से आपकी शरण में आकर पड़े हैं ।

सुनत द्रोण भयी दुविधा भारी । पुनि कहे वचन हियँ विचारी ॥
विप्रवर सुनहउ हमरी बाता । बुरा न मनाइब जनि ताता ॥

व्याख्या - पुरोहित की बात सुन कर द्रोण के मन में दुविधा पैदा हो गयी। फिर थोड़ी देर सोच कर बोले कि हे पुरोहित ! मेरी बात सुनिए और इसका मन में बुरा नहीं मानिएगा ।

सब लच्छन हियँ एक लव्या । देखत लगत इहँ वीर दिव्या ॥
मैं हूँ आचार्य राज पद धारी । सुनहउ विप्र विनय हमारी ॥

व्याख्या - एकलव्य के हृदय में सब लक्षण हैं और देखने पर भी दिव्य वीर लगता है । परन्तु विप्रवर मेरी विनती सुनिए, मैं एक राजपद पर बैठा हुआ आचार्य हूँ ।

राज खर्च सब आश्रम चलई । अनुबंध बंध मैं इहाँ रहई ॥
एकलव्य जो मैं गुरु कहाउँ । नहिं संशय बहु गौरव पाउँ ॥

व्याख्या - मेरे आश्रम का सब खर्च राजा के कोष से होता है और मैं यहाँ राजा के साथ अनुबंध में बँधा हुआ हूँ । अगर मैं एकलव्य का गुरु बनता हूँ, तो निश्चय ही मेरे लिए गौरव की बात होगी ।

राजकुल संग सकउँ नहिं सिखाई । सो नहिं संभव शिष्य बनाई ॥
सुनत एकलव इहँ वचनाई । भयउ दुःखी मुख उदासी छाई ॥

व्याख्या - परन्तु मैं राजपुत्रों के साथ अन्य किसी को विद्या सिखा नहीं सकता हूँ । इसलिए शिष्य बनाना संभव नहीं है । एकलव्य यह वचन सुनते ही दुःखी हो गया और चेहरे पर उदासी छा गयी ।

दो०- एकलव्य भा दुखित अति मुख ते वचन निकसत नाय ।
एकटक द्रोण पद नख देखहिं अनन्य विनय भाव दिखाय ॥ ९७॥

व्याख्या - एकलव्य बहुत दुःखी हो गया और मुँह से वचन नहीं निकल पा रहे थे। वह एकटक द्रोणाचार्य के पैरों के नाखूनों को अनन्य विनय भाव से देखता रहा।

देह भाषा तब द्रोण समझाई । देखा एकलव बहु दुःख पाई ॥
वाणी गूढ़ लगै कहन मरमा । सुन सुत कहउँ शिष्य धरमा ॥

व्याख्या - तब आचार्य द्रोण एकलव्य की देह भाषा को समझ गये तथा उन्हें लगा कि एकलव्य को बहुत दुःख हुआ है । तब द्रोणाचार्य गूढ़ वाणी में रहस्य बताने लगे तथा एकलव्य को शिष्य धर्म कहने लगे ।

बनावहिं गुरु संभव नहिं भाई । मानहिं गुरु प्रगट गुरुताई ॥
गुरु शक्ति अनादि अखण्डा । व्याप रहि सकल ब्रह्मण्डा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! गुरु बनाना सम्भव नहीं है । जो अपने मन में गुरु मान लेते हैं, उनके हृदय में गुरु-शक्ति प्रकट हो जाती है । गुरु-शक्ति तो अनादि और अखण्ड है तथा समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है ।

मन माने सोइ गुरु हय भाई । लाभ काह बिरथा जग दिखाई ॥
सुनि वचन द्रोण एकलव्या । भयी प्रकट प्रेरणा हियँ दिव्या ॥

व्याख्या - जिसको मन गुरु मान लेता है, वही गुरु होता है । फिर संसार को दिखाने से क्या लाभ है ? द्रोणाचार्य के वचन सुनकर एकलव्य के हृदय में अपार दिव्य प्रेरणा पैदा हो गयी ।

गूढ़ गिरा अरथ लियउ जानी । परा चरण बहे अश्रु ग्लानी ॥
गदगद होइ द्रोण उर लाई । विप्र न समझा इहँ काह घटाई ॥

व्याख्या - एकलव्य गूढ़ वाणी को समझ गया तथा द्रोणाचार्य के चरणों में पड़ गया और ग्लानि आँसू बन कर बहने लग गयी । तब द्रोणाचार्य ने गदगद होकर एकलव्य को छाती से लगा लिया । पुरोहित इस घटना के रहस्य को समझ नहीं पाया ।

दो०-मन ही मन गुरु मानि कर कृतग्यता प्रकट कीन्ह ।
हियँ उमंग एकलव्य अति गमन आग्या अब लीन्ह ॥ ९८ ॥

व्याख्या - मन ही मन द्रोणाचार्य को अपना गुरु मान कर एकलव्य ने कृतज्ञता प्रकट की । एकलव्य के हृदय में अपार उमंग आ गयी तथा अब निषादपुरम जाने की आज्ञा ली ।

चलत द्रोण बहु दीन्ह आशीषा । जावहु सुत भल करै जगदीसा ॥
होइब पूरण कामना तुम्हारी । इहँ सुत सत्य आशीष हमारी ॥

व्याख्या - जाते समय द्रोणाचार्य ने एकलव्य को बहुत आशीर्वाद दिया तथा कहा कि वत्स जाइए, भगवान अच्छा करेगें । तुम्हारी सब मनोकामना पूर्ण हो, यह मेरा सत्य आशीर्वाद है ।

विनय सहित लीन्ह विदाई । चलै निषादपुरम् सीस नवाई ॥
एकलव्य हियँ अति उमंगा । जानिन पावइ विप्र इहँ प्रसंगा ॥

व्याख्या - विनय सहित गुरु द्रोणाचार्य से विदा लेकर और चरणों में शीश झुकाकर निषादपुरम के लिए चल दिये । एकलव्य के हृदय में बहुत उमंग थी, परन्तु पुरोहित इस रहस्य को नहीं जान पा रहा था।

दुखित मन विप्र करै न बाता । एकलव गुरु चरण मन राता ॥
उभय पहुँचइ ग्राम जब जाई । नारी पुरुष सकल आए धाई ॥

व्याख्या - दुःखी पुरोहित बात नहीं कर रहा था और उधर एकलव्य का मन गुरु-चरणों में लगा हुआ था । जब दोनों गाँव में जाकर पहुँचे, तो स्त्री-पुरूष सब दौड़ कर आ गये ।

सकल पूछन लागै समाचारा । कैसा कीन्ह द्रोण व्यवहारा ॥
एकलव मगन गुरु चरणाई । सो विप्र बोला जेहि समझाई ॥

व्याख्या - सब लोग समाचार पूछने लगे कि द्रोणाचार्य ने कैसा व्यवहार किया ? एकलव्य तो गुरु के चरणों में रत था, इसलिए पुरोहित ने अपनी समझ के अनुसार कहा ।

दो०- सुनहउ सभासद सकल द्रोण संग भयी भेंट हमार ।
अनुनय विनय बहु कीन्ह हम काह कहउँ उनार विचार ॥ ९९ ॥

व्याख्या - हे सभासदों ! सुनो हमारी आचार्य द्रोण से मुलाकात हुई और हमनें बहुत अनुनय-विनय भी किया, परन्तु उनके बारे में क्या कहूँ ?

दिखावहिं भल द्रोण मन कुटिला । होइ नहिं भल हमार कुबिला ॥
राज मरजाद बखान उनि कीन्हा । दीच्छा नहिं एकलव्य दीन्हा ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य ने ऊपर से तो अच्छा व्यवहार दिखाया था । परन्तु वे मन के कुटिल हैं, इसलिए उनसे हमारे कबीले का भला नहीं होगा । द्रोणाचार्य ने राज मर्यादाओं का बहुत बखान किया और एकलव्य को दीक्षा नहीं दी ।

सुनहिं ज्योहिं विप्र बचनाई । नर नारी सकल उदासी छाई ॥
किछु वीर भए तामसिक सुभाउ । कहहिं करइ हमला आश्रम जाउ ॥

व्याख्या - जैसे ही लोगों ने पुरोहित की बात सुनी, वैसे ही सब नर-नारी उदास हो गये । कुछ तामसिक वृत्ति के वीर तो द्रोणाचार्य के आश्रम में जाकर आक्रमण करने की बात भी कहने लगे ।

कोउ कह ऊँच वास नीच करतूति । हमरे संग द्रोण कीन्ह अनीति ॥
देखि एकलव सकल व्यवहारा । मानहि निज हियँ दुःख अपारा ॥

व्याख्या - कोई कहने लगे की द्रोणाचार्य अपने आप को उच्च कहते हैं । परन्तु करतूत ओछी है । हमारे साथ द्रोणाचार्य ने अन्याय किया है । सबके व्यवहार को देखकर एकलव्य को स्वयं के हृदय में बहुत दुःख हुआ ।

चहुँदिसि देखा बढ़त कटुताई । बोला एकलव्य मन गुरु मनाई ॥
सुनहु सभासद अनुभव मोरा । नहिं द्रोण सम गुरु चहुँओरा ॥

व्याख्या - चारों तरफ कटुता बढ़ती देखकर एकलव्य ने मन में गुरुदेव को मनाकर कहा कि सभासदों ! मेरा अनुभव सुनिए । द्रोणाचार्य के समान गुरु चारों दिशाओं में कोई नहीं है ।

दो०- ब्रह्म रत ग्यानी परम निश्छल निष्कपट निराभिमान ।
सुहृदय व्यवहार कुशल मन मोर लियेउ गुरु मान ॥ १०० ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य जी ब्रह्मरत, परम ज्ञानी, निश्छल, निष्कपट व निराभिमानी हैं तथा बहुत ही व्यवहार कुशल हैं । इसलिए मेरे मन ने उनको गुरु मान लिया है ।

विप्र कहा निज मति समझाई । जो मैं जाना सोइ देउँ बताई ॥
गुरु द्रोण हियँ बहुत विशाला । निर्मल मन सहज कृपाला ॥

व्याख्या - पुरोहित ने तो अपनी बुद्धि के अनुसार जो समझा वह बताया है । अब मैंने जो जाना है, वह मैं बताता हूँ । गुरु द्रोणाचार्य का हृदय बहुत बड़ा है, मन निर्मल है और वे सहज में ही कृपा करने वाले हैं।

गुरु मरम मोहि दियेउ बताई। मन ते लियेउ मोइ शिष्य बनाई ॥
जग दिखावन काह दरकारा। सर्वत्र रहहिं गुरु इकसारा ॥
व्याख्या - उन्होंने मुझे गुरु-शक्ति के रहस्य को समझा दिया है और मन से मुझे शिष्य स्वीकार कर लिया है । संसार को दिखाने से क्या फायदा है ? गुरुशक्ति तो सर्वत्र एक समान रहती है ।

मरजाद राज भल भाँति निभाई। गुरु पद लाजउ लिए बचाई ॥
सोइ गुरु द्रोण देवउ नहिं दोषा। जावहउ गृह तजि सब रोषा ॥
व्याख्या - उन्होंने राज मर्यादाओं को भी निभा लिया और गुरु-पद की लाज भी रख ली । इसलिए आप लोग गुरु द्रोणाचार्य को दोष मत दीजिए और गुस्सा छोड़कर अपने-अपने घरों को जाइए ।

विनय करि सब गृह पठाई। पुनि मरम मातु सब बताई ॥
भयी गदगद सुनि सलेला माई। एकलव्य उर लियउ लगाई ॥
व्याख्या - एकलव्य ने विनय करके सब लोगों को अपने-अपने घर भेज दिया। तब सारा रहस्य माता को बताया । सलेला सुनकर प्रसन्न हो गयी और एकलव्य को छाती से लगा लिया ।

दो०- मातु पितु अरु वृद्ध जन अब करन लगे विचार ।
केहि विधि शिक्षा शुरु हो भल करइब करतार ॥ १०१ ॥
व्याख्या - माता-पिता और वृद्ध लोग अब विचार करने लगे कि किस प्रकार शिक्षा शुरू की जाये, जिससे परमात्मा भला करें ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण त्रयोदशम पड़ाव ॥

एकलव्य पुनि कहा समझाई। भल होइब गुरु मूरत बनाई ॥
इहँ मत सकल मन भाया। तुरत साज समान सब आया ॥
व्याख्या - एकलव्य ने फिर समझा कर कहा कि अच्छा होगा गुरु-मूर्ति बनाई जाये। यह विचार सबको अच्छा लगा और तुरन्त ही मूर्ति बनाने का सामान आ गया।

निज कर एकलव्य मूरत बनाई। भाव प्रकट शोभा बरनिन जाई ॥
सलेला कहा सुत प्रेम दिखाई। जावहउ वन अभ्यास कराई ॥
व्याख्या - एकलव्य ने स्वयं अपने हाथों से मूर्ति बनायी । मूर्ति में जीवन्त भाव प्रकट हो रहे थे तथा उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। तब सलेला ने वात्सल्य भाव दिखाते हुए कहा कि बेटा वन में जाकर अभ्यास करो ।

प्रातः काल शुभ मुहूर्त अबूझा। चला एकलव्य करि गुरुपूजा ॥
हिण्डल पार घन जंगल माई। जाई तहँ एक कुटिया बनाई ॥

व्याख्या-प्रातःकाल अबूझ शुभ मुहूर्त में गुरु की पूजा करके, एकलव्य हिण्डल नदी के पार वाले घने जंगल में चला गया तथा वहाँ जाकर एक सुन्दर-सी कुटिया बनायी।

श्रद्धा सह गुरु मूर्त पधराही। पूजा कीन्ह अनुराग लगाही ॥
मन ही मन कीन्ह संकल्पा। तुम्ह गुरु मैं शिष्य मति अल्पा ॥

व्याख्या - श्रद्धापूर्वक वहाँ पर गुरु की मूर्ति स्थापित की और अनुराग सहित पूजा की। मन ही मन एकलव्य ने संकल्प किया कि आप मेरे गुरु हैं और मैं आपका अल्पज्ञ शिष्य हूँ।

दो०- मन वचन कर्म गुरु मान करि सब विधि समरप कीन्ह ।
निसि दिवस अब श्रद्धा बढ़त एकलव्य परम सुख लीन्ह ॥ १०२ ॥

व्याख्या - मन, वचन और कर्म से गुरु मानकर एकलव्य ने सब प्रकार से समर्पण कर दिया। अब रात-दिन श्रद्धा बढ़ने लगी और एकलव्य को आनन्द मिलने लगा।

करहिं अभ्यास गुरु आयुष पाई। मन ही मन नित होइ बतकाई ॥
नित नव हियँ प्रेरणा आई। मूरत माझ प्रगटई गुरुताई ॥

व्याख्या - अब प्रतिदिन गुरु की आज्ञा लेकर अभ्यास करने लगा और मन ही मन में गुरु से बात होने लगी। अब नित्य नयी प्रेरणा हृदय में आने लगी और मूर्ति के अन्दर गुरु-शक्ति प्रकट हो गयी।

दिवस अभ्यास निसि ध्यान लगाई। बहु कला धनु विद्या हियँ आई ॥
हिय उमंग मन अति उत्साहा। करहिं अभ्यास नित मन चाहा ॥

व्याख्या - एकलव्य दिन में धनुर्विद्या का अभ्यास और रात को ध्यान का अभ्यास करने लगा तथा उसके हृदय में धनुर्विद्या की बहुत-सी कलाएँ आ गयीं। उसके हृदय में उमंग और मन में उत्साह रहने लगा तथा प्रतिदिन मन के अनुरूप अभ्यास करने लगा।

गुरु कृपा करइ प्रेरणा अपारा। पल पल पावहिं ज्ञान दरकारा ॥
तेहि काल अरु तेहि बन माहिं। सुंदर युवती नाम बेलू सुहाहिं ॥

व्याख्या - गुरु-कृपा एकलव्य के हृदय में अपार प्रेरणा देने लगी तथा पल-पल आवश्यकता अनुसार ज्ञान की प्राप्ति होने लगी। उसी समय उसी वन में एक बेलू नाम की सुंदर युवती आयी।

धनुविद्या सीखन तहँ आई। भयी चाह श्रेष्ठ धनुर्धर बनाई ॥
देखहिं एकलव्य अचानक जाई। भयी स्तम्भित मूरत की नाई ॥

व्याख्या - वह भी धनुष विद्या सीखने के लिए वहाँ आयी थी और उसके मन में श्रेष्ठ धनुर्धर बनने की इच्छा थी। उसने अचानक एकलव्य को देखा, तो मूर्ति की तरह स्तम्भित हो गयी।

दो०- लम्बी भुजा सिंह कंध गौर वर्ण उरु स्थल विशाल ।
एकटक देखत रह गयी जाग उठा मन काम ब्याल ॥ १०३ ॥

व्याख्या -लम्बी-लम्बी भुजाएँ और सिंह जैसे कंधे, गौर वर्ण, चौड़े सीने वाले एकलव्य को बेलू एकटक देखती रह गयी तथा मन में काम रूपी नाग जाग उठा।

एकलव्य देखा नयन घुमाई । देखि बेलू प्राण गति बदलाई ॥
सुंदर कपोल कमनीय शरीरा । देखि एकलव्य भयउ अधीरा ॥

व्याख्या - एकलव्य ने आँखें घुमा कर देखा, तो बेलू को देख कर प्राणों की गति बदल गयी । सुंदर गाल और कमनीय शरीर को देख कर एकलव्य अधीर हो गया।

नयन ते नयन करहिं बाता । उभय मन भयउ बिकल ताता ॥
निज संभालि एकलव नाम बताई । तुम कौन कवन हेतु इहाँ आई ॥

व्याख्या - आँखों से आँखें बात करने लगीं और दोनों के मन व्याकुल हो गये । तब एकलव्य ने अपने आप को संभालते हुए अपना नाम बताया तथा बेलू से पूछा कि आप कौन हैं और क्यों आयी हैं ?

बीहड़ वन हिंसक पशु अनेका । घर जावउ सुंदरी करि विवेका ॥
बेलू बोली तब मन इठलाई । इहँ हम तुमतें पूछन चाई ॥

व्याख्या - घने जंगल में बहुत हिंसक पशु रहते हैं, इसलिए सुंदरी, मन में विचार कर घर चली जाओ । तब बेलू ने मन में इतराते हुए कहा कि यह तो हम आपसे पूछना चाहते हैं ।

इहँ बन मोर पितु अधिकारा । काहे इहाँ आगमन तुम्हारा ॥
धनु विद्या हेतु करउँ अभ्यासा । नाम मोर बेलू कुल आदिवासा ॥

व्याख्या - यह जंगल मेरे पिताजी के अधिकार क्षेत्र में है । आप किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं ? मेरा नाम बेलू है और मैं आदिवासी हूँ तथा धनुष विद्या के अभ्यास के लिए मैं यहाँ आयी हूँ ।

दो०- एकलव्य तब विनय सहित नाम धाम सब दियउ बताई ।
धनु विद्या अभ्यास करउँ ताहि हेतु इहाँ आइ कुटि बनाई ॥ १०४ ॥

व्याख्या - तब एकलव्य ने विनयपूर्वक अपना नाम और पता बता दिया तथा कहा कि मैं धनुर्विद्या सीखने के लिए यहाँ अभ्यास करता हूँ, इसीलिए मैंने यहाँ कुटिया बनायी है ।

देखत गयउ समय अनेका । प्राण मिलन भा रहा न विवेका ॥
एकलव तब लच्छ स्मराई । भयउ सावधान ध्यान हटाई ॥

व्याख्या - एक दूसरे को देखते हुए बहुत समय निकल गया । परन्तु प्राणों का मिलन

हो जाने से ध्यान नहीं रहा। तब एकलव्य को अचानक अपना लक्ष्य याद आ गया। तब वह ध्यान हटाकर सावधान हो गया।

कहा तब एकलव समुझाई। फिरउ गृह बहु देर सुहाई ॥
सुनि इहँ बेलू बहु सकुचाई। मन भ्रमर हटै नहिं हटाई ॥

व्याख्या - तब एकलव्य ने समझा कर कहा कि तुम घर लौट जाओ। बहुत देर हो गयी है। यह सुन कर बेलू को बहुत संकोच हुआ। परन्तु मन रूपी भँवरा हटाने पर भी नहीं हट पा रहा था।

नाना कीन्ह हियँ माहि विचारा। चलइ जावत मन निज मारा॥
जावत बेलू तब कहा सुनाई। वीर शुभ होव कल फिर आई ॥

व्याख्या - बेलू ने हृदय में बहुत विचार किया तथा अपने स्वयं के मन को मारकर लौटने लगी। जाते समय बेलू ने सुनाकर कहा कि हे वीर! आपका शुभ हो, हम कल वापस आयेंगे।

उभय फिरहिं निज निज डेरा। पर मन भयउ अब मन चेरा ॥
कंद मूल खाई कीन्ह विश्रामा। एकलव मन भा विकल कामा ॥

व्याख्या - दोनों अपने-अपने स्थानों को लौट गये, परन्तु उनके मन एक दूसरे के दास बन गये। एकलव्य ने कंद-मूल खाकर विश्राम किया। परन्तु उसका मन काम से व्याकुल हो गया।

दो०- दृढ़ मन गुरु प्रणाम करि अभ्यास हेतु पुनि आयउ वीर।
मन अब बेलू संग लगा धनु संभारहिं लगइ न तीर ॥ १०५॥

व्याख्या - दृढ़ मन से गुरु को प्रणाम करके एकलव्य पुनः अभ्यास करने के लिए आ गया। परन्तु अब उसका मन बेलू के साथ लग गया, इसलिए धनुष संभालने पर भी लक्ष्य पर तीर नहीं लगने लगा।

फिरहिं कुटिया मन अति भारी। देखा कुटिया भलि भाँति सँवारी ॥
कन्द मूल फल रखेउ सजाई। पूजा सामान तहँ सब पाई ॥

व्याख्या - एकलव्य तब भारी मन के साथ कुटिया में लौट गया। वहाँ जाकर देखा कि कुटिया अच्छी तरह सजाई हुई है तथा कन्द-मूल-फल भी रखे हैं और पूजा का समस्त सामान रखा हुआ है।

भयउ विस्मित इहँ सब देखा। कोह करहि मन ही मन लेखा ॥
मन अब कीन्ह दृढ़ विश्वासा। बेलू करइ इहँ सब सुपासा ॥

व्याख्या - एकलव्य यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो गया और मन ही मन विचार करने लगा कि यह किसने किया है ? मन ने अब दृढ़ विश्वास कर लिया

कि यह सब बेलू ने ही किया है ।

करि पूजा कन्द मूल फल खाई । कीन्ह विश्राम माधुर बिछाई ॥
अब करहि मन कल्पना नाना । दिखइ बेलू अब बहु परिधाना ॥

व्याख्या - पूजा करके कन्द-मूल-फल खाकर एकलव्य चटाई बिछाकर विश्राम करने लगा । अब उसके मन में नाना कल्पनाएँ आने लगीं और बेलू विभिन्न वस्त्रों में दिखने लगी ।

चंचल नयन मुख मुस्काना । उभरे नितम्ब चाल गज समाना ॥
नयन विशाल घन लम्बे केशा । मन प्रविसइ अब काम प्रदेशा ॥

व्याख्या - बेलू के चंचल नयन और चेहरे पर मुस्कान, उभरे हुए नितम्ब, आँखें बड़ी-बड़ी व घने लम्बे बाल आदि की कल्पना करके एकलव्य का मन काम रूपी प्रदेश में प्रवेश कर गया ।

दो०- इत एकलव्य उत बेलू बिकल विरह भुअंग उभय सताय ।
नाना कल्पना मन अब फँसा नींद कवन विधि आय ॥ १०६॥

व्याख्या - इधर एकलव्य और उधर बेलू व्याकुल हो गयी तथा दोनों को काम रूपी सर्प सताने लगा । दोनों का मन नाना कल्पनाओं में फँस गया। फिर नींद कैसे आ सकती थी?

देखि सूरज मरीच चहुंदिसि छाई । उठा एकलव्य बिकल की नाई ॥
करि नित्य कर्म कीन्ह गुरु पूजा । चहुँदिसि बेलू अरु नहिं सूजा ॥

व्याख्या - सूरज की किरणों का चारों तरफ उजाला देख कर एकलव्य व्याकुल होकर उठा तथा उजाला देखकर गुरु की पूजा की । परन्तु चारों तरफ बेलू के अलावा कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा था ।

नयन बन्द करि कीन्ह ध्याना । चहुँदिसि दिखइ बेलू रूप नाना ॥
भयउ विकल एकलव विचारी । गुरु देव करउ रक्षा हमारी ॥

व्याख्या - आँखें बन्द करके ध्यान लगाया । परन्तु चारों तरफ बेलू के नाना रूप दिखने लगे । यह विचार कर एकलव्य व्याकुल हो गया और गुरुदेव से प्रार्थना करने लगा कि मेरी रक्षा करो ।

श्रेष्ठ धनुर्धर लच्छ मोरी । त्राहिमाम् नाथ शरण मैं तोरी ॥
गुरु शक्ति प्रेरणा तब कीन्ही । होउ दृढ़ जो चाहि बेलू लीन्ही ॥

व्याख्या - श्रेष्ठ धनुर्धर बनना मेरा लक्ष्य है । इसलिए गुरुदेव मेरी रक्षा कीजिए, मैं आपकी शरण में आया हूँ । तब गुरु-शक्ति ने एकलव्य के हृदय में प्रेरणा दी कि अगर तुम बेलू को प्राप्त करना चाहते हो, तो मन में दृढ़ता ले आओ ।

बनहु श्रेष्ठ होइ बेलू तुमारी । करहिं सहाय आशीष हमारी ॥

व्याख्या - तुम श्रेष्ठ धनुर्धर बन जाओगे, तो बेलू तुम्हारी हो जायेगी। मेरी आशीष तुम्हारी सहायता करेगी ।

दो०- दृढ़ होइ अभ्यास करु मन नहिं लाउ अन्य विचार ।
श्रेष्ठ ताहि बरइब बेलू भल करइब सब करतार ॥ १०७ ॥

व्याख्या - तुम दृढ़ होकर अभ्यास करो और कुछ भी विचार मन में मत लाओ। जो श्रेष्ठ धनुर्धर होगा, बेलू उसी को वरण करेगी । परमपिता सब अच्छा ही करेंगें।

गुरु प्रेरणा पाइ मन माहिं । करहिं अभ्यास दृढ़ता लाहिं ॥
उत बेलू करहिं मन विचारा । एकलव्य जोग्य हेतु भरतारा ॥

व्याख्या - मन में गुरु-प्रेरणा प्राप्त करके एकलव्य दृढ़ता लाकर अभ्यास करने लगा। उधर बेलू के मन में विचार आने लगा कि पति के लिए एकलव्य ही योग्य है ।

पितु वचन तब मन याद आई । श्रेष्ठ धनुर्धर संग कन्या ब्याई ॥
बेलू मन एकलव्य संग हारा । सो करन लगी मन नाना विचारा ॥

व्याख्या - पिता के वचन तब बेलू को याद आ गये कि वे अपनी कन्या का विवाह श्रेष्ठ धनुर्धर के साथ ही करेंगे । बेलू का मन तो एकलव्य के साथ लग गया था, इसलिए वह अब मन में नाना विचार करने लगी।

होइब श्रेष्ठ मन कामना करई । जाउँ न मिलउँ व्यवधान परई ॥
करत विचार बेलू तहँ जाई । एकलव्य कहा तब समुझाई ॥

व्याख्या - बेलू अब एकलव्य को श्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की मन में कामना करने लगी तथा मन में विचार करने लगी कि अब मैं वहाँ न जाऊँगी और न ही मिलूँगी । क्योंकि इससे अभ्यास में व्यवधान पड़ता है । इस प्रकार विचार करती हुई बेलू वहाँ आयी और एकलव्य को समझा कर बोली ।

सुनहु वीर तुम करो अभ्यासा । हम अब आइब ना तुमरे पासा ॥
बस इक रखउ विनती मोरी । देउँ सेवक करइब सेवा तोरी ॥

व्याख्या - हे वीर ! तुम धनुष विद्या का अभ्यास करो । मैं दोबारा इधर नहीं आऊँगी । बस, आप मेरी एक विनती रख लीजिए । मैं एक सेवक देती हूँ, जो आपकी सेवा करता रहेगा ।

दो०- फल फूल लाइ तुम्हीं देइब समय नहिं होइब बर्बाद ।
गुरु शरण अभ्यास करउ होवइ पूर्ण लच्छ निर्बाद ॥ १०८॥

व्याख्या - यह आपको फल-फूल ला कर दे देगा । जिससे तुम्हारा समय बर्बाद नहीं होगा । आप गुरुदेव की शरण में रह कर अभ्यास करते रहना । आपका लक्ष्य बिना किसी बाधा के पूर्ण हो जायेगा।

आपनपन सुनि मिष्टि बाता । भए एकलव्य पुलकित गाता ॥
धन्य धन्य सुंदरी अनेका । ईश कृपा पुनि होइब देखा ॥

व्याख्या - अपनेपन से युक्त मीठी बातें सुनकर एकलव्य के अंग-अंग प्रफुल्लित हो गये । तब एकलव्य ने कहा कि हे सुंदरी ! आपको बहुत-बहुत धन्यवाद । भगवान की अनुकंपा से आपसे दोबारा मिलन होगा।

इहँ सुनि बेलू बिदा लीन्ही । मन कामना बहुरि कीन्ही ॥
दृढ़ होहि एकलव्य मन लगाई । नित दिवस अभ्यास कराई ॥

व्याख्या - यह सुन कर बेलू ने विदा ली और मन में बहुत सी कामना की । अब दृढ़ होकर एकलव्य ने अभ्यास में अपना मन लगाया और नित्य अभ्यास करने लगा ।

गुरु श्रद्धा मन उठहि हिलोरा । देखहहि गुरु कृपा चहुँओरा ॥
करत अभ्यास होइ आभासा । जिमि रहत गुरु सदा निज पासा ॥

व्याख्या - एकलव्य के मन में गुरु के प्रति श्रद्धा की हिलोरें उठने लगीं और अपने चारों तरफ गुरु-कृपा दिखाई देने लगी । अभ्यास करते-करते एकलव्य को आभास होने लगा कि गुरुदेव स्वयं सदा उसके पास खड़े हैं ।

उत बेलू छुप छुप देखहिं आई । करहिं न बात व्यवधान पराई ॥
शिव तत्व करहिं अनुरोधा । बनावउ नाथ एकलव पुरोधा ॥

व्याख्या - उधर बेलू छुप-छुप कर देखने के लिए आती थी । परन्तु अभ्यास में व्यवधान पड़ेगा, इसलिए बातें नहीं करती थी । वह शिव-तत्व से एकलव्य को श्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की प्रार्थना किया करती थी।

देवहउ आशीष सफलता पाई । श्रेष्ठ धनुर्धर सकइ बनाई ॥
एकलव्य गुरु चरण सीस नवाई । चावहिं बेलू जीवन संगी बनाई ॥

व्याख्या - एकलव्य नित्य गुरु-चरणों में शीश झुकाकर माँगता था कि मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मैं श्रेष्ठ धनुर्धर बन सकूँ और बेलू को मेरी जीवन साथी बना सकूँ।

दो० - बेलू एकलव्य लच्छ भयी ताइ हेतु अभ्यास कराई ।
नित नव स्फूर्ति मिलइ गुरु प्रेरणा राह दिखाई ॥ १०९ ॥

व्याख्या - एकलव्य का लक्ष्य अब बेलू हो गयी और वह अब बेलू को प्राप्त करने के लिए ही अभ्यास करने लगा । रोज नयी स्फूर्ति मिलने लगी और गुरु की प्रेरणा आवश्यकतानुसार मिलने लगी ।

करहिं अभ्यास गुरु आयुस पाई । मन ही मन नित होवहिं बतकाई ॥
अल्प काल विद्या सब पाई । मूरत माझ प्रगटई गुरुताई ॥

व्याख्या - अब एकलव्य की मन ही मन गुरु से बातें होने लगीं और वह गुरु की आज्ञा लेकर धनुष विद्या का अभ्यास करने लगा । थोड़े समय में ही उसने सब विद्या प्राप्त कर ली । क्योंकि मूर्ति में ही गुरु-शक्ति प्रकट हो गयी ।

भयउ पारंगत तीरनदाजी । सकइ न मार अब कोउ बाजी ॥
गुरु भगति अब हियँ दृढ़ाई । नित गुरु हियँ कृपा बरसाई ॥

व्यख्या - अब वह धनुष विद्या में पारंगत हो गया और अब उसके मुकाबले में कोई नहीं टिक सकता था । उसके हृदय में गुरु की भक्ति दृढ़ हो गयी, इसलिए गुरु-कृपा की हृदय में नित्य वर्षा होने लगी ।

आयउ अर्जुन पुनि आखेटा । एकलव्य संग भयी तब भेटा ॥
अभिनन्दन एकलव्य कीन्हा । द्रोण शिष्य निज परिचय दीन्हा ॥

व्याख्या - दोबारा अर्जुन शिकार खेलने के लिए वन में आया, तो एकलव्य से फिर मुलाकात हो गयी । एकलव्य ने अर्जुन का अभिनन्दन किया और अपने आपको द्रोण का शिष्य बता कर परिचय दिया ।

सुनु परिचय अर्जुन चमकाई । मरम नहिं समझ किछु आई ॥
एकलव्य बिनय सह बतराई । जानि गुरु भाई सम्मान दिखाई ॥

व्याख्या - एकलव्य का द्रोण के शिष्य के रूप में परिचय सुनकर अर्जुन चौंक गया। उसके मन में यह रहस्य समझ में नहीं आया। एकलव्य विनयपूर्वक बातें करने लगा तथा गुरु भाई समझ कर सम्मान दे रहा था।

दो०- आवत देखि श्वान तब एकलव कीन्ह मन विचार ।
हानि पहुँचाइब अर्जुन इहँ सो किछु करन हय दरकार ॥ ११० ॥

व्याख्या - तब एक कुत्ते को आते हुए देख कर एकलव्य ने मन में विचार किया कि यह कुत्ता अर्जुन को क्षति पहुँचा देगा । अतः कुछ उपचार करने की आवश्यकता है।

श्वान जेहि अकारण मारहुँ । हिंसा बिरथा नहिं शोभा पावहुँ ॥
सो मन कीन्ह गुरु स्मरणा । लियउ कर वाण बिनु फलना ॥

व्याख्या - अगर कुत्ते को बिना कारण के मारूँगा, तो व्यर्थ में हिंसा हो जायेगी, जो मुझे शोभा नहीं देगी । इसलिए एकलव्य ने मन में गुरु का स्मरण किया और बिना फलक का वाण हाथ में ले लिया ।

सहजहि एकलव वाण चलाई । कुकुर मुख करि दियेउ सिलाई ॥
देखि तीर श्वान मुख सिलाई । अर्जुन बहु बिस्मय सुहाई ॥

व्याख्या - सहज होकर एकलव्य ने बाण चलाया और कुत्ते का मुख सिल दिया । वाण द्वारा कुत्ते का सिला हुआ मुख देख कर अर्जुन को बहुत आश्चर्य हुआ ।

मन कुण्ठा झूठी हँसी दिखाई । कहा कोल नहिं इहँ किछु बढ़ाई ॥
गर्व करि धनुष तीर चढाई । मन बिकल कुण्ठा प्रगटाई ॥

व्याख्या - मन कुण्ठित था । परन्तु मुख पर झूठी हँसी दिखाते हुए कहा कि अरे कोल ! यह कोई बड़ी बात नहीं है । यह कह कर अर्जुन ने धनुष पर तीर चढ़ाया। उस समय उसका मन व्याकुल हो रहा था और कुण्ठा प्रकट हो रही थी ।

चलइ बाण चूकहहिं निसाना । देखि एकलव दिये मुस्काना ॥
आहत भयउ अर्जुन अहंकारा । दुखित मन अति होइ लाचारा ॥

व्याख्या - अर्जुन ने वाण चलाया, पर निशाना चूक गया । यह देख कर एकलव्य मुस्करा दिया। जिससे अर्जुन का अहंकार टूट गया और वह दुःखी व लाचार हो गया।

दो०- दुखित मन फिरहिं अर्जुन मग मिलै कृष्ण सह सब भ्रात ।
कान्ति हीन मुख देखि कर पूछन लगे काह भयउ तात ॥ १११ ॥

व्याख्या - अर्जुन दुःखी मन से वापस लौट रहा था, तब रास्ते में कृष्ण के साथ आते हुए, उसके सब भाई मिले । अर्जुन के चेहरे को दुःखी देख कर सब पूछने लगे कि क्या बात है ?

आहत मन अर्जुन सब बताई । सुनत सकल बहु दुःख पाई ॥
कृष्ण मन उठहिं नाना विचारा । केहि विधि संभव इहँ करतारा ॥

व्याख्या - दुःखी मन से अर्जुन ने सारी घटना बतायी । जिसको सुन कर सबको बहुत कष्ट हुआ । कृष्ण के मन में नाना विचार उठने लगे कि हे भगवान ! यह कैसे सम्भव हुआ है ?

गुरु द्रोण कहहिं अर्जुन प्यारा । होइब श्रेष्ठ इहँ शिष्य हमारा ॥
तब काहे एकलव्य विद्या सिखाई । कह कृष्ण राजद्रोह इहँ भाई ॥

व्याख्या - गुरु द्रोणाचार्य कहते हैं कि उन्हें अर्जुन बहुत प्यारा है और वही श्रेष्ठ शिष्य होगा । तब उन्होंने क्यों एकलव्य को शिक्षा प्रदान की है ? कृष्ण कहने लगे कि यह तो राजद्रोह है ।

गुरुद्रोण भल नहिं इहँ कीन्हा । विद्या गुप्त सब एकलव्य दीन्हा ॥
कोल किरात होवहिं विद्या प्रवीना । होइब संकट सत्ता नवीना ॥

व्याख्या - गुरु द्रोणाचार्य ने यह अच्छा नहीं किया है कि उन्होंने सब गुप्त विद्या एकलव्य को सिखा दी है । कोल-किरात अगर विद्या में निपुण हो जायेंगें, तो राजसत्ता के लिए नया संकट पैदा हो जायेगा।

इहँ अपराध राजद्रोह समाना । कृष्ण मन उठहिं शंका नाना ॥
धर्म राज तब कहा समझाई । गुरु पर शंका नहिं होइ भलाई ॥

व्याख्या - यह अपराध राजद्रोह के अपराध के समान है । कृष्ण के मन में नाना शंकाएँ उठने लगी । तब धर्मराज ने समझा कर कहा कि गुरु पर शंका करने से भलाई नहीं होगी ।

दो०- अर्जुन अति प्रिय शिष्य हय इहँ ते मोहि संशय नाय ।
मोह वश गुरु प्रेम प्रगटइ देखत मोर हियँहु जलन सुहाय ॥ ११२ ॥

व्याख्या - अर्जुन गुरु द्रोणाचार्य जी का अति प्रिय शिष्य है । इसमें मुझे बिल्कुल भी संशय नहीं है । मोह के कारण कई बार गुरुदेव का अर्जुन प्रेम प्रकट हुआ है, जिससे मेरे हृदय में भी जलन हुई है ।

दुःखित मन सब आश्रम आई । गुरुहि सब कथा रोइ सुनाई ॥
कृष्ण कहहि बहु बात बढ़ाई । गुरु देव आज इहँ काह घटाई ॥

व्याख्या - दुःखी मन से सब लोग आश्रम में आये और रो-रो कर सब घटना गुरुदेव को सुनाई । कृष्ण ने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बात बतायी तथा कहा कि गुरुदेव आज यह क्या घट गया है ?

क्षत्रिय होइ आज अर्जुन हारा । भयउ लज्जित पाण्डु कुल सारा ॥
गुरु द्रोण बहु धीरज बंधाई । पूछहिं अर्जुन घटना सबाई ॥

व्याख्या - आज अर्जुन क्षत्रिय होकर पराजित हो गया है । जिससे समस्त पाण्डव कुल को कलंक लग गया है । गुरु द्रोणाचार्य ने यह सुन कर बहुत धीरज बँधाया तथा सारी घटना अर्जुन से पूछी ।

बिलख बिलख अर्जुन बखाना । क्षमा करइब कृपा निधाना ॥
गुरुदेव तुम्ह कहत सदाई । मो सम धनुर्धर कोउ जग नाई ॥

व्याख्या - रो-रो कर अर्जुन ने बताया कि गुरुदेव मुझे माफ करना । आप तो सदा कहते हैं कि मेरे समान धनुर्धर संसार में कोई नहीं है।

देखा आज मैं इक बाल अछूता । धीर वीर अति धनु विद्या ग्याता ।
ताई देखि मोर मन अति ग्लानी । तजहउँ प्राण सत्य मम बानी ॥

व्याख्या - आज मैं एक अछूत बालक को देखा हूँ, जो धीर-वीर व धनुष विद्या का ज्ञाता है । उसको देख कर मेरे मन में बहुत ग्लानि हो रही है । सत्य कह रहा हूँ । मैं प्राण त्याग कर दूँगा ।

दो०- धिक धिक क्षत्रिय कुल धिक धिक जीव.न अब मोर ।
काह कमी मोर श्रद्धाभयी विद्या गुप्त दीन्ह तुम्ह ओर ॥ ११३ ॥

व्याख्या - मेरे क्षत्रिय कुल को धिक्कार है, अब मेरे जीवन को भी धिक्कार है। मेरी श्रद्धा में क्या कमी थी, जो गुरुदेव गुप्त विद्या आपने किसी और को दे दी ।

सब करइब मोर उपहासा। रहइ न मन अब जीवन आसा ॥
सुनु गुरु भए दुखित मन माहि। कहाँ कोह मैं निज देखहुँ जाहि ॥

व्याख्या - अब सब मेरी हँसी उड़ायेंगे, अतः अब मुझे जीवन जीने की आशा नहीं है। यह सुनकर गुरु बहुत दुःखी हो गये और कहने लगे कि वह कौन है और कहाँ पर है ? मैं स्वयं चल कर देखूँगा ।

कोह वीर केहि विधि विद्या पाई। जाइब तहँ सब पता लगाई ॥
अब तुम जाइ करउ विश्रामा। प्रातः जाइब हम एकलव ग्रामा ॥

व्याख्या - वह वीर कौन है तथा उसने किस प्रकार समस्त विद्या प्राप्त की है ? हम सब वहाँ जाकर पता लगायेंगें । अब तुम लोग विश्राम करो, प्रातःकाल हम एकलव्य के गाँव जायेंगें ।

सकल समुझाई निज गृह आई। भयउ दुःखित बरनिन जाई ॥
बिकल होइ परहहिं पलंगा। चिन्ता अनल दहइ सब अंगा ॥

व्याख्या - सबको समझा कर गुरु द्रोणाचार्य स्वयं के कक्ष में आ गये। वे बहुत दुःखी हुए, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। वे व्याकुल होकर पलंग पर पड़ गए तथा चिन्ता की अग्नि में सब अंग जलने लगे।

गुरु पत्नी देखि दशा घबराई। काह कारण नाथ इहँ दशाई ॥
प्रिय जो शंका भयी मोर मन माहि। आज समय सोइ गयउ आहि ॥

व्याख्या - गुरु-पत्नी यह दशा देखकर बहुत घबरा गयी तथा पूछने लगी कि स्वामी आपकी इस दिशा का कारण क्या है ? तब द्रोणाचार्य बोले कि प्रिय जो मुझे मन में शंका हो रही थी, वह समय आज आ गया है ।

दो०- एकलव श्रेष्ठ धनुर्धर भया निज हियँ गुरु कृपा पाई।
अर्जुन व्यथा कारण सोई उभय भाँति मोहि चिन्ता सताई ॥ ११४ ॥

व्याख्या - एकलव्य स्वयं के हृदय में गुरु-कृपा प्राप्त करके श्रेष्ठ धनुर्धर हो गया है और यही अर्जुन के दुःख का कारण है । अब मुझे दोनों तरफ से चिन्ता सता रही है ।

उभय शिष्य मोर निष्ठावाना। काह होइब अब बागवाना ॥
अर्जुन ते मैं कीन्ह बहु वादा। करइब श्रेष्ठ शिष्य अबाधा ॥

व्याख्या - दोनों ही मेरे निष्ठावान शिष्य हैं। अतः प्रिय अब क्या होगा ? मैंने तो अर्जुन को वचन दिया था कि मैं उसे बिना किसी बाधा के श्रेष्ठ शिष्य बनाऊँगा ।

अर्जुन रहा नहिं श्रेष्ठ धनुर्धारी । एकलव गयउ निकस आगारी ॥
कृपा मोर उभय पाई समाना । एकलव भा अति निष्ठावाना ॥

व्याख्या - अर्जुन अब श्रेष्ठ धनुर्धर नहीं रहा है । क्योंकि एकलव्य उससे आगे निकल गया है । दोनों को मेरी कृपा समान रूप से प्राप्त हुई है । परन्तु एकलव्य बहुत ही निष्ठावान है ।

सोई निष्ठा एकलव श्रेष्ठ बनाई । मैं दृष्टा भयउ ईश सहाई ॥
अब काह कहिइब राज समाजा । इहँ सोच सोच हियँ आवत लाजा ॥

व्याख्या - उसी निष्ठा ने एकलव्य को श्रेष्ठ बना दिया है । मैं तो केवल दृष्टा मात्र रहा हूँ, ईश्वर ने ही उसकी सहायता की है । अब राज-समाज क्या कहेगा? यह सोच-सोचकर मुझे लज्जा आ रही है ।

कहिइब लोग मय राजद्रोही । कपटी कुटिल छद्मी छलोही ॥
आज इहँ काह कीन्ह विधाता । मन बिकल हियँ मोर अकुलाता ॥

व्याख्या - लोग अब कहेंगे कि मैं राजद्रोही हूँ, कपटी, कुटिल, छद्मी और छल करने वाला हूँ । आज भगवान ने यह क्या कर दिया ? मेरा मन व्याकुल हो रहा है और हृदय में अकुलाहट हो रही है ।

दो०- सुख सुविधा सब मिली राजा कीन्ह पूर्ण विश्वास ।
सुनइब इहँ संवाद जब होइब तहँ मोर उपहास ॥ ११५ ॥

व्याख्या - मुझे समस्त सुविधाएँ मिलीं तथा राजा ने मुझपर पूर्ण विश्वास भी किया है । परन्तु जब यह संवाद लोग सुनेंगे, तो मेरा उपहास करेंगे ।

तेहि काल गुप्तचर इक आई । जय जीव जय कहि सीस नवाई ॥
कहन लगा सकल समाचारा । जो सुनि आयउ भूप दरबारा ॥

व्याख्या - उसी समय एक गुप्तचर आया और उसने जय जीव जय कह कर शीश झुकाया तथा समाचार सुनाने लगा, जो वह राज दरबार में सुन कर आया था ।

अमात्य बहु शंका प्रकटहिं । द्रोण इहँ काज भल न करहिं ॥
सकल ऐश्वर्य नृप जब दीन्हा । काहे इहँ कलंक तब लीन्हा ॥

व्याख्या - हे आचार्य ! अमात्य लोग आप पर बहुत संदेह कर रहे हैं तथा कह रहे थे कि द्रोणाचार्य ने यह अच्छा काम नहीं किया है । जब सारी सुख-सुविधाएँ राजा ने दी हैं, तो फिर द्रोण ने यह कलंक क्यों लिया है?

आदिवासी बालक जाति अछूता । द्रोण कृपा भयउ धनुविद्या ग्याता ॥
राज सुरक्षा होइ संकट घोरा । नीति विचार कीन्ह नहिं थोरा ॥

व्याख्या - एक आदिवासी अछूत बालक द्रोणाचार्य की कृपा से धनुष विद्या का

ज्ञाता हो गया है । इससे राज्य की सुरक्षा को घोर संकट पैदा हो गया है । द्रोणाचार्य ने थोड़ा भी नीति का विचार नहीं किया।

सुनि द्रोण गुप्त चर बाता । चिन्ता अनल जरहिं सब गाता ॥
गुप्त चर तब पूछा सकुचाई । पितामह काह कहत हय भाई ॥

व्याख्या - गुप्तचर की बातें सुन कर द्रोणाचार्य के अंग-अंग चिन्ता रूपी अग्नि में जलने लग गये । तब गुप्तचर से सकुचाते हुए पूछा कि पितामह भीष्म क्या कहते हैं ?

दो०- नृप मत काह मोर प्रति सच कहिइब मोहि बताय ।
अमात्य सब काह कहत, नहिं तिनकी चिन्ता सताय ॥ ११६ ॥

व्याख्या - राजा का मत क्या है ? मुझे सत्य कहना । अमात्य लोग क्या कहते हैं, मुझे उनकी चिन्ता नहीं है ।

गुप्तचर कहा दुइ कर जोरी । नृप अरु पितामह श्रद्धा नहिं थोरी ॥
उभय हियँ विश्वास अटूटा । द्रोण न करइब काज कलूटा ॥

व्याख्या - तब गुप्तचर ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा कि राजा और पितामह की श्रद्धा आपके प्रति कम नहीं है । दोनों के हृदय में अटूट विश्वास है कि आप ऐसा कलंकित कार्य नहीं कर सकते हैं ।

इहँ सुनि द्रोण शीतल भई छाती । लगहहिं न कलंक नृप घाती ॥
द्रोण विकल काटै कटे न राति । पुनि पुनि अर्जुन वचन याद आति ॥

व्याख्या - यह सुन कर द्रोण का मन थोड़ा शान्त हुआ कि उन पर राजद्रोह का कलंक नहीं लगेगा । द्रोणाचार्य बहुत व्याकुल थे, जिससे रात काटने पर भी कट नहीं पा रही थी तथा बार-बार अर्जुन को दिये वचनों की याद आ रही थी ।

गुरु पत्नी बहुरि समुझाई । होइ न शान्त द्रोण बिकलाई ॥
नाथ हियँ अब करउ संतोषा । निश्छल मन काह आपन दोषा ॥

व्याख्या - गुरु-पत्नी ने बहुत प्रकार से समझाया । परन्तु द्रोणाचार्य की व्याकुलता कम नहीं हो रही थी । गुरु-पत्नी कह रही थी कि हे स्वामी ! अब हृदय में संतोष करो । क्योंकि आपका मन तो निश्छल है, तब आपका क्या दोष है ?

गुरु मरजाद भलभाँति निभाई । करउ भरोस ईश भल कराई ॥
इहँ सुनि प्रभु प्रीति हियँ जागी । कृपी तब पाँव चापन लागी ॥

व्याख्या - हे स्वामी ! आपने तो गुरु की मर्यादा का भली-भाँति पालन किया है, इसलिए भगवान का भरोसा कीजिए । वे अच्छा ही करेगें । यह सुन कर परमात्मा के प्रति विश्वास पैदा हो गया और कृपी (गुरु-पत्नी) आचार्य के पैर दबाने लगी ।

दो०- नयन द्रोण बन्द कीन्ह तब लगहिं नींद अब आय ।
कृपीहु सयन हेतु गयी परम ईश मन लगाय ॥ ११७ ॥

व्याख्या - तब द्रोणाचार्य ने आँखें बन्द कर ली थी । जिससे ऐसा लग रहा था, जैसे नींद आ गयी हो । तब कृपी भी मन में परमात्मा को याद करते हुए सोने के लिए चली गयी ।

प्रातः उठहिं कृपी तबउ देखा । सोवत अबहु भयी भोर अनेका ॥
जय जीव जय जीव कहि पुकारा । द्रोण प्रभु कहि नयन उघारा॥

व्याख्या - सुबह उठकर गुरु-पत्नी कृपी ने देखा कि बहुत सुबह निकल गयी, तो भी आचार्य सो रहे हैं । तब गुरु-पत्नी ने जय जीव कह कर उठाया और तब प्रभु का स्मरण करते हुए द्रोण ने अपनी आँखें खोली।

सूरज उदित बहु देर सुहाई । उठहु नाथ स्नानादि कराई ॥
अंग अंग शिथिलता रहि छाई । उठे तबहु द्रोण मोहि स्मराई ॥

व्याख्या - सूर्य को उदय हुए बहुत देर हो गयी । अतः नाथ उठ कर स्नान आदि कीजिए । द्रोणाचार्य उठ कर भी मुझ परमात्मा को याद कर रहे थे तथा पूरे अंगों में शिथिलता छा रही थी ।

निवृत्त होइ पाण्डु पुत्र बुलाई । चलै निषादपुरम् संग सबाई ॥
कृष्ण कौरव सब भ्रात सुहाए । जात मग हियँ कौतुहल छाए ॥

व्याख्या - नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर पाण्डव पुत्रों को बुलाया और निषादपुरम् गाँव के लिए चल दिये । साथ कृष्ण, कौरव और सभी भाई थे । रास्ते में जाते हुए बहुत कौतुहल हो रहा था ।

मन द्रोण आवहिं नाना विचारा । भयउ हियँ भरोस करतारा ॥
चलै एकलव सूरत परै दिखाई । चलहिं जात मग सुध बिस्राई ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य के मन में नाना विचार आ रहे थे । परन्तु हृदय में मुझ परमात्मा का भरोसा था । रास्ते में चलते समय द्रोण को एकलव्य की सूरत दिख रही थी । वे सुध-बुध भूल कर रास्ते में चले जा रहे थे ।

पहुँचेउ द्रोण निषाद पुरम् । देखा एकलव ग्राम्य सुरम्य ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य निषादपुरम गाँव में पहुँच गये और एकलव्य के सुन्दर गाँव को जाकर देखा ।

दो०-हिण्डल सरीता बहत कलकल ताहि तट सुरम्य गाँव बसाई।
सरल सुभाव नर नारी सब देखि द्रोण सकल हरषाई ॥ ११८ ॥

व्याख्या - हिण्डल नदी कलकल करके बह रही थी तथा उसी के सुन्दर तट पर

गाँव बसा हुआ था। सभी स्त्री-पुरुष सरल सुभाव के थे। वे द्रोणाचार्य को देख कर बहुत प्रसन्न हुए।

ग्रामवासी सुनि गुरु द्रोण आई। आए सकल फल फूल लिवाई ॥
श्रद्धा अपार सरल सुभाउँ। देखि द्रोण हरषित सब गाउँ ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य के आने की खबर पाकर सब गाँव के लोग फल-फूल आदि लेकर आये। उनमें अपार श्रद्धा भाव था तथा वे स्वभाव से सरल थे। द्रोणाचार्य को देख कर सारा गाँव प्रसन्न हो रहा था।

बारी बारी सब करहिं जुहारी। धन्य मानहिं सब नर नारी ॥
सकल ग्राम श्रद्धा देखि अपारी। गदगद द्रोण सब सुधि बिसारी ॥

व्याख्या - बारी-बारी से सब लोग जोहार करने लगे तथा सभी स्त्री-पुरुष अपने आपको धन्य मान रहे थे। समस्त गाँववालों की अटूट श्रद्धा देख कर द्रोणाचार्य सब सुध-बुध भूल कर गदगद हो गये।

मन ही मन सबहिं देत आशीषा। मंगल करउ सकल जगदीसा ॥
तेहि काल सलेला तहँ आई। करि जुहार परिचय बताई ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य मन ही मन सबको आशीर्वाद देने लगे कि सबका भगवान मंगल करें। उसी समय सलेला वहाँ पर आयी और जोहार करके अपना परिचय बताया।

देखि श्रद्धा सलेला हियँ माहिं। दीन्ह आशीष कृपा बरषाहिं ॥
अद्वितीय वीर होइब सुत तोरा। सुनु सलेला इहँ आशीष मोरा ॥

व्याख्या - सलेला के हृदय में श्रद्धा देख कर द्रोणाचार्य ने कृपा की वर्षा करते हुए आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पुत्र अद्वितीय वीर हो ! हे सलेला, यह मेरा आशीर्वाद है।

दो०- गदगद गिरा नयन जल पुलकित भइ सलेला मातु।
प्रसन्न चित्त भाव विह्ल सूझहिं नहिं अब किछु तातु ॥ ११९॥

व्याख्या - तब सलेला पुलकित हो उठी, वाणी गदगद हो गयी और आँखों में पानी आ गया। अब वह प्रसन्न होकर भावविभोर हो उठी तथा उसे अब कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

पूछँहिं द्रोण कहाँ एकलव्या। मिलइब जाइ हम वीर दिव्या ॥
कहि सलेला तब विनय सुनाई। धन्य देव जो तुम इहाँ सिधाई ॥

व्याख्या - तब द्रोणाचार्य ने पूछा कि एकलव्य कहाँ है ? हम उस दिव्य वीर से जाकर मिलेंगे। तब सलेला ने विनयपूर्वक कहा कि हे नाथ! आज हम धन्य हो गए हैं, जो आप यहाँ पधारे हैं।

मोर सुत गयउ जंगल माही । सीखत विद्या मास दिवस जाही ॥
सुत होइव श्रेष्ठ धनुर्धारी । सोई नाथ बस इच्छा हमारी ॥

व्याख्या - मेरा बेटा जंगल में कई महीनों से धनुष विद्या सीखने के लिए गया हुआ है । हमारा बेटा श्रेष्ठ धनुर्धर हो नाथ! बस हमारी यही इच्छा है।

सुनि श्रेष्ठ शब्द द्रोण विचलाई । अर्जुन वचन याद पुनि आई ॥
भयउ बिकल पुनि मन ग्लानी । विगत हर्ष जिमि जवासा पानी ॥

व्याख्या - श्रेष्ठ शब्द सुन कर द्रोणाचार्य व्याकुल हो गये और उन्हें अर्जुन को दिया हुआ वचन याद आ गया । फिर वह व्याकुल हो गये तथा मन में ग्लानि आ गयी। उनकी खुशी वैसे ही नष्ट हो गयी, जैसे जल पड़ने पर ज्वासा हो जाता है ।

निज संभाल पुनि बात बनाई । जाइब वन एकलव्य मिलाई ॥
सुनि द्रोण वचन सलेला हरषाई । हमउ चलइब संग गुसाई ॥

व्याख्या - स्वयं को संभाल कर द्रोणाचार्य ने बात बनाते हुए कहा कि हम वन में जाकर एकलव्य से मिलेंगें । द्रोणाचार्य के वचन सुन कर सलेला को बहुत खुशी हुई तथा कहा कि हे नाथ ! हम भी आप के साथ चलेंगें ।

दो०- हाटत हाटत चलैसब संग भए पुर नर नारी ।
मन हर्ष तन पुलकित भावी कोउ न करै विचारी ॥ १२० ॥

व्याख्या - सब लोग पैदल ही जंगल के लिए चल दिये तथा साथ में गाँव के स्त्री-पुरुष भी हो लिये । सबका मन प्रसन्न था तथा शरीर पुलकित हो रहा था । भविष्य का कोई भी विचार नहीं कर रहे थे ।

सब संग द्रोण चलै बन हेतु । मन उमंग एकलव्य देखुँ ॥
दूसर पहर कीन्ह वन प्रवेशा । देखि भीड़ बेलू मन भा अंदेशा ॥

व्याख्या - सबके साथ द्रोणाचार्य वन के लिये चल दिए तथा उनके मन में एकलव्य को देखने की बहुत उमंग थी । दूसरे पहर में सब लोग वन में प्रवेश कर गये । बेलू के मन में इतनी भीड़ को आता देख कर शंका हुई ।

द्रोण आवत संग राजकुमारा । कारण कवन बेलू मन विचारा ॥
एकलव्य धनुर्धर श्रेष्ठ सुहाई । सोई कि राजकुल षड़यंत्र बनाई ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य राजकुमारों के साथ क्यों आ रहे हैं ? बेलू यह मन में विचार करने लगी । एकलव्य श्रेष्ठ धनुर्धर हो गया है, इसलिए कहीं यह राजकुल का षडयंत्र तो नहीं है ।

पल माझ बहु आयउ विचारी । लियउ धनुष कीन्ह तैयारी ॥
राजकुल जो करइ किछु हानि । छाड़हुँ नहिं जीवत एकउ प्रानि ॥

व्याख्या - उसके मन में पल भर में बहुत से विचार आ गये । तब उसने धनुष हाथ में लेकर तैयारी कर ली कि अगर राजकुल एकलव्य को कुछ भी नुकसान पहुँचायेगा, तो किसी भी लोग को जीवित नहीं छोड़ूँगी ।

लियउ धनुष बेलू तब ध्याई । पहुँची एकलव्य निकट जाई ॥
करहिं घात जो राजकुमारा । करहुँ जंग चाहे जाइ प्राण हमारा ॥

व्याख्या - तब बेलू धनुष वाण लेकर दौड़ती हुई एकलव्य के पास पहुँच गयी और सोचने लगी कि अगर राजकुमार घात करेंगे, तो मैं युद्ध करूँगी । चाहे प्राण ही क्यों ना चले जायें ।

दो०- अभ्यास रत एकलव्य घन घन वाण चलाय ।
कोलाहल सुनहिं जब देखइ पाछे सिर घुमाय ॥ १२१ ॥

व्याख्या - एकलव्य अभ्यास करने में लगा हुआ था और बार-बार वाण चला रहा था । जब उसने कोलाहल सुना, तो पिछे मुड़ कर देखा।

उड़त धूरि कोलाहल भारी । दूर तें दिखइ आवत नर नारी ॥
तबहिं गुरु द्रोण परे दिखाई । ध्यायउ एकलव्य धनु फैलाई ॥

व्याख्या - धूल उड़ रही थी तथा बहुत कोलाहल हो रहा था । दूर से ही स्त्री-पुरुष आते दिख रहे थे । उसी समय गुरु द्रोणाचार्य दिखाई पड़े, तो एकलव्य धनुष फेंक कर दौड़ा ।

परेउ चरण पुलकावली छाई । गद गद गिरा नयन नीर बहाई ॥
गुरु हियँ धार आशीष बहाई । अमर हो यश बार बार कहाई ॥

व्याख्या - एकलव्य पुलकित होकर गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा तथा उसकी वाणी गदगद थी तथा आँखों से जल बह रहा था । गुरु के हृदय से भी आशीर्वाद की धारा प्रवाहित हो रही थी तथा बार-बार कह रहे थे कि चारों तरफ यश हो ।

अति प्रसन्न गुरु देखि निष्ठा । देहहिं आशीष सुमिर निज इष्टा ॥
पुलकित गात शिष्य उर लाई । प्रकृति उमंग चहुँदिसि छाई ॥

व्याख्या - अपने शिष्य की निष्ठा देख कर गुरुदेव बहुत प्रसन्न हो रहे थे तथा अपने इष्ट देव को याद कर के बहुत आशीर्वाद दे रहे थे । द्रोणाचार्य ने पुलकित होकर एकलव्य को अपने सीने से लगा लिया। उस समय चारों तरफ प्रकृति में उमंग छा गयी ।

एकलव नयन बहि जल धारा । गुरुदेव जन्म सफल हमारा ॥
बार-बार गुरु चरण पराई । पुनि पुनि द्रोण उर लिपटाई ॥

व्याख्या - एकलव्य की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी तथा कह रहा था कि

गुरुदेव आज मेरा जन्म सफल हो गया है। वह बार-बार गुरु के चरणों में पड़ रहा था और द्रोणाचार्य जी उसे बार-बार सीने से लगा रहे थे।

दो०- श्रद्धा अरु प्रेम गुरु शिष्य का देखि गुरु तत्व हरषाई ।
मन मुग्ध भए नर नारी सब अर्जुन डाह कहि न जाई ॥ १२२॥

व्याख्या - गुरु का प्रेम और शिष्य की श्रद्धा को देख कर गुरु-तत्व हर्षित हो रहा था। सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो गये। परन्तु उस समय अर्जुन की ईर्ष्या का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

एकलव्य कहहिं भाव विभोरा। धन्य गुरुदेव जन्म अब मोरा ॥
सकल पायउँ मैं पद पावन पूजा। तुम समान दयाल नहिं दूजा ॥

व्याख्या - तब भावविभोर होकर एकलव्य कहने लगा कि गुरुदेव, आज मेरा जन्म सफल हो गया है। मैंने आपके पवित्र चरणों की पूजा करके सब कुछ प्राप्त कर लिया है। हे गुरुदेव ! आपके समान दयालु संसार में कोई नहीं है।

नाथ तुम परम हितकारी। मो अग्यहु कीन्ह कृपा अपारी ॥
पूजा जप तप जाना नहिं विधाना। सकल दीन्ह तउ कृपा निधाना ॥

व्याख्या - हे नाथ ! आप परम हित करने वाले हैं। तभी तो मुझ जैसे अज्ञानी पर भी आपने अपार कृपा की है। मैंने पूजा, जप, तप आदि की कोई विधि नहीं जानी। फिर भी कृपानिधान आपने मुझे सब कुछ दे दिया।

बिनु हेतु कीन्ह कृपा अपारी। अल्प काल पायउँ विद्या सारी ॥
पुलकित गात सुनि सब बाता। धन्य धन्य एकलव तुम ताता ॥

व्याख्या - आपने बिना कारण के ही मुझ पर अपार कृपा की है। जिससे थोड़े समय में ही मैंने समस्त विद्या प्राप्त कर ली है। एकलव्य की बातें सुन कर द्रोण गदगद हो गये तथा कहा कि हे तात ! तुम धन्य हो, धन्य हो।

नहिं कोउ शिष्य तुमार समाना। सब विधि करै सहाय भगवाना ॥
देखि निष्ठा एकलव्य तुमारा। द्रवहि आज गुर हियँ हमारा ॥

व्याख्या - तुम्हारे समान कोई दूसरा शिष्य नहीं है। भगवान तुम्हारी सब प्रकार से सहायता करें। हे एकलव्य ! तुम्हारी निष्ठा देख कर आज मेरा गुरु हृदय द्रवित हो रहा है।

दो०- तुम समान तुम्हीं एकलव्य अरु नहिं जग दूजा कोय ।
सुत आशीष हमारी सुनहु नाम अमर तुम्हार होय ॥ १२३ ॥

व्याख्या - हे एकलव्य ! तुम्हारे समान तो तुम्ही हो। संसार में और दूसरा कोई नहीं है। अतः हे वत्स ! मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारा नाम अमर होगा।

बहुभाँति द्रोण दीन्ह आशीषा। सब विधि करै भल जगदीसा ॥
हठात् अर्जुन परइ दिखाई। द्रोण प्राण गति गइ बदलाई ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया तथा कहा कि सब प्रकार से भगवान भला करेगा। तब अचानक अर्जुन दिखाई पड़ गया। जिससे द्रोणाचार्य के प्राणों की गति बदल गयी।

मुख मलिन हियँ अति संतापा। ईर्ष्या अनल दहहिं सब गाता ॥
देखि दुखित अर्जुन चेहरा। गुरु द्रोण भया दुःख अति गहरा ॥

व्याख्या - अर्जुन का मुख मलिन हो रहा था और वह बहुत संतप्त था। वह ईर्ष्या की अग्नि में जल रहा था। अर्जुन को दुःखी देख कर द्रोणाचार्य को बहुत गहरा दुःख हुआ।

तब पुनि वचन याद आई। केहि विधि अर्जुन श्रेष्ठ बनाई ॥
राज मरजाद भयी बलवाना। क्षण माहि उठहिं विचार नाना ॥

व्याख्या - तब द्रोणाचार्य को फिर अपना वचन याद आया कि अर्जुन को श्रेष्ठ धनुर्धर कैसे बनाऊँ ? उस समय राज्य की मर्यादाएँ बलवान हो उठीं और थोड़ी देर में ही द्रोणाचार्य के मन में नाना विचार उठने लग गये।

गुरु हृदय भयउ कमजोरा। वचन बद्धता लहहि हिलोरा ॥
देखि द्रोण भए अति दुखारी। वचन मरजाद वेदना सारी ॥

व्याख्या - अब गुरु का हृदय कमजोर हो गया और वचन की प्रतिबद्धता हिलोरें लेने लगीं। यह देख कर द्रोणाचार्य बहुत दुःखी हो गये। वचन की मर्यादा ही सब दुःखों का कारण बन गयी।

दो०- इत एकलव्य निर्मल शिष्य उत वचन प्रबल मरजाद।
उभय भाँति द्विविधा फँसहिं द्रोण मन बहु अकुलात ॥ १२४॥

व्याख्या - एक तरफ एकलव्य जैसा निर्मल शिष्य और दूसरी तरफ वचन की मर्यादा की प्रबलता थी। द्रोण दोनों प्रकार से फँस गये और उनका मन व्याकुल हो गया।

भयउ संकट धरम अपारा। मोह कीन्ह गुरु द्रोण लाचारा ॥
भयी अब बहु प्रबल संसारी। कहा वचन मरजाद विचारी ॥

व्याख्या - गुरु द्रोणाचार्य को मोह ने लाचार कर दिया और वे धर्मसंकट में पड़ गये। अब माया प्रबल हो उठी। इसलिए वचन की मर्यादा का विचार करते हुए कहा।

मन बिकल बोला मृदुबानी। एकलव नहिं कोउ तुम समानी ॥
आज सफल मोर गुरुताई। तुम्ह समान शिष्य आज मैं पाई ॥

व्याख्या - मन व्याकुल था, फिर भी द्रोणाचार्य मधुर वाणी में बोले कि वत्स एकलव्य, तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। आज मेरी गुरुता सफल हो गई,

जो मैंने तुम्हारे जैसा शिष्य प्राप्त कर लिया है ।

निर्मल मन कहा एकलव्या । पायउँ सकल गुरु कृपा दिव्या ॥
कहउ गुरुदेव काह आदेशा । करइब आज्ञा पालन हमेशा ॥

व्याख्या - निर्मल मन से एकलव्य ने कहा कि हे गुरुदेव ! आपकी दिव्य कृपा से ही मैंने सब प्राप्त किया है । हे गुरुदेव ! मुझे क्या आदेश है, कहिए । मैं हमेशा आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।

द्रोण मन भयी अति दुविधा । केहि विधि करु कुण्ठित विद्या ॥
हँसि दिखाई विकलता छुपाई । मांगी दक्षिणा बहु प्रेम दिखाई ॥

व्याख्या - द्रोणाचार्य के मन में बहुत दुविधा हो रही थी कि इसकी विद्या को कैसे कुण्ठित करूँ ? इसलिए हँसी प्रकट करके गुरु दक्षिणा माँगी।

दो०- सुन सुत तुम प्रिय अति चावहउँ गुरु दक्षिणा आज ।
मन वांछित मोहि देवउ करइब जग तुम पर नाज ॥१२५॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम मुझे बहुत प्रिय हो । इसलिए आज मैं गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ। मुझे मनोवांछित गुरु-दक्षिणा दीजिए । जिससे संसार तुम पर गर्व करेगा ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण चतुर्दशम पड़ाव ॥

सुन वचन एकलव्य कहहिं । काह देवउँ नाथ धन्य मैं होहहिं ॥
जेहि चाहइब नाथ प्राण मोरा । सोउ लगइब देत मोहि थोरा ॥

व्याख्या - गुरु के वचन सुन कर एकलव्य ने कहा कि मैं आपको क्या दूँ, जिससे मैं धन्य हो जाऊँ । अगर आप मेरे प्राण माँगेंगे, तो भी देते हुए मुझे थोड़ा ही लगेगा।

अनुग्रह तुम्हार सब पाई । सो देवत नहिं किछु मोर बढ़ाई ॥
करउ आदेश काह करूँ नाथा । चरण तुम्हार चढ़ावउँ माथा ॥

व्याख्या - आपकी कृपा से ही मैंने सब प्राप्त किया है, इसलिए आपको देने में मेरी कोई बड़ाई नहीं है । हे नाथ ! आप आदेश दीजिए, मैं क्या करूँ । मैं आपके चरणों में मेरा सिर भी चढ़ा दूँगा ।

गुरु द्रोण तब कहा सकुचाई । धन्य धन्य सुत तुमरी जाई ॥
रखइब निसानी प्रिय सुहाई । देवउ अंगुष्ठ जो शिष्य कहाई ॥

व्याख्या - गुरु द्रोणाचार्य ने तब संकोच करते हुए कहा कि वत्स ! तुमको जन्म देने वाली माता धन्य है, धन्य है ! तुम मुझे बहुत प्रिय हो, इसलिए मैं तुम्हारी निशानी मेरे पास रखना चाहता हूँ । इसलिए अगूँठा काट कर मुझे दे दो ।

सुनु एकलव फलक निकाला । हर्ष समेत अंगुष्ठ दे डाला ॥
नभ माझ भयउ आह आहाकारा । अनुचित द्रोण शिव तत्व पुकारा ॥

व्याख्या - यह सुन कर एकलव्य ने तुरन्त अपने तीर का फलक निकाला और खुशी-खुशी अपना अँगूठा काट कर दे दिया । उस समय आकाश में हाहाकार मच गया तथा शिव-तत्व बोल उठा कि द्रोण यह अनुचित है ।

दो०- अनुचित अनुचित द्रोण इहँ तुम मन नाहिं कीन्ह विचार ।
शिष्य विद्या कुण्ठित करी इहँ सम नहिं कोउ अति चार ॥ १२६॥

व्याख्या - हे द्रोण ! यह अनुचित है, अनुचित है, तुमने मन में विचार नहीं किया । शिष्य की विद्या को कुण्ठित करने के बराबर दूसरा कोई अत्याचार नहीं होता है ।

गुरु पद तुम दियउ लजाई । एकलव्य सम शिष्य न सुहाई ।
शिष्य विद्या तुम बध कीन्ही । गुरु मरजाद तुम नहिं चीन्ही ॥

व्याख्या - तुमने गुरु-पद को लज्जित कर दिया है । एकलव्य के समान कोई शिष्य नहीं है । तुमने शिष्य की विद्या का वध किया है और गुरु की मर्यादा को नहीं पहचाना है ।

होइब तुमार बध शिष्य हाथा । अभिशाप यह दीन्ह विधाता ॥
एकलव्य अमर सदा होई । तुम्हहिं देवइ नहिं यश कोई ॥

व्याख्या - तुम्हारा वध शिष्य के हाथों से ही होगा । परमात्मा ने यह अभिशाप दिया । एकलव्य सदा अमर रहेगा । परन्तु तुमको कोई यश नहीं देगा ।

एकलव्य पावइ अव विद्या सारी । इहँ शुभ आशीष भयी हमारी ॥
इन्ह हियँ प्रगटहिं गुरुताई । शिव संकल्प रहइब सदाई ॥

व्याख्या - एकलव्य को समस्त विद्याएँ प्राप्त होंगीं, यह मेरा आशीर्वाद है। इसके हृदय में सदा गुरु-शक्ति प्रकट रहेगी तथा सदा शिव-संकल्प मन में बना रहेगा।

सुनि गगनगिरा सब भए सुखारी । जय जय एकलव्य पुकारी ॥
गुरु द्रोण अब जागी गुरुताई । एकलव्य लियउ उर लगाई ॥

व्याख्या - आकाशवाणी सुन कर सब सुखी हो गये और एकलव्य की जय बोलने लगे। अब गुरु द्रोण की गुरु-शक्ति जाग उठी और एकलव्य को सीने से लगा लिया।

दो०- तन मन अब सुधि नहिं करन लगे आरत विलाप ।
काह अपराध इहँ भयउ हियँ उठहि ज्वाला संताप ॥ १२७ ॥

व्याख्या - द्रोण को अब तन और मन की सुध नहीं रही और आरत विलाप करने लगे कि यह क्या अपराध हो गया ? उनके हृदय में संताप की अग्नि जलने लगी।

हे प्रभु काह मैं करि इहँ डारी । लेवहु एकलव्य शरण तुम्हारी ॥
ऐहि सम कोउ शिष्य नहीं दूजा । सकल चराचर इहँ अब बूझा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैंने यह क्या कर डाला ? हे प्रभु ! अब आप एकलव्य को आपकी शरण में ले लो । इसके समान दूसरा कोई शिष्य नहीं है, यह समस्त चराचर जगत जान गया है ।

प्रभु सुनहउ विनती अब मोरी । एकलव्य हेतु चाउँ कृपा तोरी ॥
मोर पुण्य जग हय यदि कोई । सब फल देउ एकलव्य सोई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरी प्रार्थना सुनिए, मैं एकलव्य के लिए आपकी अनुकंपा चाहता हूँ । अगर संसार में मेरा कोई पुण्य है, तो उसका सब फल एकलव्य को प्राप्त हो ।

मोहि भलेउ देवउ दण्ड घोरा । पर रखहु शरण एकलव मोरा ॥
रिद्धि सिद्धि सब करै सेवकाई । देउ फल मोर पुण्य सबाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! भले ही मुझे और कठोर दण्ड दे दीजिए । परन्तु मेरे एकलव्य को आपकी शरण में रख लीजिए । सब ऋद्धि-सिद्धि उसकी सेवा करें और मेरे सभी पुण्यों का फल उसे दे दीजिए ।

रहइ एकलव्य सहज सदाई । कृपा तुम्हार हियँ बरषाई ॥
सो इहँ देवउ अब वरदाना । सब विधि हो एकलव कल्याना ॥

व्याख्या - एकलव्य सदा सहज रहे तथा आपकी अनुकंपा सदा उसके हृदय में बरसती रहे। इसलिए मुझे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे सब प्रकार से एकलव्य का कल्याण हो।

दो०- ब्रह्म ग्यान इनि हियँ बसै भूलइ सब देहाभिमान ।
एकलव मुक्ति अब मिलै देवउ वर इहँ कृपा निधान ॥ १२८ ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञान इसके हृदय में रहे तथा देहाभिमान को भूल जाये। अब एकलव्य को मुक्ति दे दीजिए । हे कृपानिधान ! अब आप यह वरदान दे दीजिए।

गुरु द्रोण सुनि आरत बानी । भयी गम्भीर पुनि नभ बानी ॥
एकलव अनुकूल होइब रचना । सुनु द्रोण कहउँ सत् वचना ॥

व्याख्या - गुरु द्रोण की आर्तवाणी सुन कर पुनः आकाशवाणी हुई कि समस्त प्रकृति एकलव्य के अनुकूल होगी । हे द्रोण ! ये मेरे सत्य वचन हैं।

सकल ग्यान इन्ह हियँ आवहिं । जन्म मरण मुक्त सुहावहिं ॥
चिन्ता शोक कबहुँ न सताई । मैं रहइब सदा इनि हियँ माई ॥

व्याख्या - समस्त ज्ञान इसके हृदय में आ जायेगा तथा यह जन्म-मरण से मुक्त हो जायेगा । चिन्ता व शोक कभी भी इसे नहीं सतायेंगे तथा मैं सदा इसके हृदय में निवास करूँगा ।

एकलव्य नाम अमर सदा होई । गुरु भगत कहि जानइ सब कोई ॥
ध्यान ग्यान भगति सबाई । मोर कृपा सहज इहँ सब पाई ॥

व्याख्या - एकलव्य का नाम अमर होगा तथा गुरु-भक्त के नाम से ही इसे सब लोग जानेंगे । ध्यान, ज्ञान व भक्ति सब सहज में ही मेरी अनुकंपा से इसे प्राप्त होगी ।

सुनि नभ बानी सब भए सुखारे । जय ईश जय ईश सब पुकारे ॥
गगन गिरा सुनि बेलू सुधि आई । देखा एकलव कर लहू बहाई ॥

व्याख्या - आकाशवाणी सुन कर सभी लोग सुखी हो गये और जय भगवान, जय भगवान बोलने लगे । आकाशवाणी सुन कर बेलू को होश आया, तो उसने देखा कि एकलव्य के हाथ से खून बह रहा है ।

दो०- इत उत दौड़ी अविलम्ब तब जड़ी बूटी लियेउ किछु पात ।
झट पट औषघ बनाई जाइ लगाई एकलव्य हाथ ॥ १२९ ॥

व्याख्या - बेलू तब बिना देर किये इधर-उधर दौड़ी और कुछ जड़ी-बूटियों के पत्ते लेकर अतिशीघ्र औषधि बनायी और एकलव्य के हाथ पर लगा दी ।

लगाई औषघ लहू रुकाई । देखि समाज बेलू सकुचाई ॥
निज संभाल बोली वाणी गंभीरा । सुनहु सभासद सब मतिधीरा ॥

व्याख्या - औषधि लगाने से खून का बहाव रुक गया । तब अचानक समाज के लोगों को देख कर बेलू संकोच करने लगी । परन्तु अपने आपको संभालते हुए गम्भीर वाणी में बोली कि हे सभासदों और बुद्धिमान लोगों !

कोह श्रेष्ठ धनुर्धर मोहि बताई । मत निरपेक्ष देबहु सुनाई ॥
सुनि सभासद इत उत तकाई । झुकहिं सीस वचन नहिं आई ॥

व्याख्या - कौन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है, मुझे अपना निरपेक्ष मत बताइए? यह सुन कर सभी सभासद एक दूसरे की तरफ देखने लगे और सबके सिर नीचे झुक गये तथा बोल नहीं पा रहे थे ।

तब सलेला बोली कर जोरि । सुनहु सभासद विनती मोरि ॥
गुरु द्रोण हम सब हितकारी । देइब निर्णय विवेक विचारी ॥

व्याख्या - तब सलेला हाथ जोड़ कर बोली कि हे सभासदों ! मेरी विनती सुनिए गुरु द्रोणाचार्य ही हम सबके हितकारी हैं । इसलिए वे ही विचार कर अपना निर्णय देंगे ।

कोह भल मन्द नहिं किछु लाभा । गुरु कृपा सोइ सदा शिष्य आभा ॥
मोर मन सभासदो इहँ आई । कोह श्रेष्ठ भल गुरु बताई ॥

व्याख्या - कौन अच्छा है, कौन बुरा है, इसका कोई लाभ नहीं है । गुरु की कृपा

ही शिष्य की आभा होती है। इसलिए सभासदों ! मेरे मन में यह विचार आया है कि गुरुदेव ही श्रेष्ठता का निर्णय करें, तो अच्छा होगा।

दो०- सलेला निश्छल वचन सुनि सकल समाज हरषाई।
करतल ध्वनि गूँज उठि उचित मत इहँ कहा सबाई ॥ १३० ॥

व्याख्या - सलेला की निष्कपट बातें सुन कर समस्त समाज हर्षित हो उठा और हाथों की तालियाँ गूँज उठी तथा सबने कहा कि यह विचार ही उचित है।

सुनि द्रोण भा पुलकित शरीरा। धन्य मातु तुम सम नहिं धीरा ॥
मोर हाथ भइ तोर सुत हानि। तबउ नहिं तुमार हियँ ग्लानि ॥

व्याख्या - यह सुन कर द्रोणाचार्य का शरीर पुलकित हो उठा तथा कहा कि तुम धन्य हो माता ! तुम्हारे समान धैर्यवान और कोई नहीं है। मेरे हाथ से तुम्हारे पुत्र की हानि हुई है। फिर भी तुम्हारे हृदय में बिल्कुल ग्लानि नहीं है।

मैं कीन्ह बहु बड़ अपराधा। भयउँ चकित देखि श्रद्धा अबाधा ॥
कहि सलेला सुन गुरु कृपाला। सह परिवार तुम कीन्ह निहाला ॥

व्याख्या - मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है। फिर भी तुम्हारी अटूट श्रद्धा देख कर मैं चकित हूँ। तब सलेला ने कहा कि हे कृपालु गुरुदेव! आपने तो हमें परिवार सहित निहाल कर दिया है।

सकल पावहिं अनुग्रह तोरे। धन्य भाग तुम गुरु सुत मोरे ॥
कुल सकल अमर अब होई। एहि सम भल करइ नहिं कोई ॥

व्याख्या - हमने सब कुछ आपके अनुग्रह से ही प्राप्त किया है। हम धन्य हैं कि आप मेरे पुत्र के गुरु हैं। हमारा परिवार कुल सहित अमर हो गया है। इस प्रकार का भला कोई नहीं कर सकता है।

सुनि गुरु हियँ पुनि दीन्ह आशीषा। पाइब सुत तुमार कृपा ईशा॥
बोले द्रोण पुनि सब समुझाई। सुनहु सभासद मत सबाई ॥

व्याख्या - यह सुन कर गुरु हृदय ने दोबारा आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पुत्र सदा ईश्वर की अनुकंपा प्राप्त करेगा। फिर द्रोणाचार्य सबको समझाते हुए बोले कि हे सभासदों ! अब तुम मेरा मत सुनो।

दो०- एकलव्य सम गुरुभक्त नहिं कोउ नहिं धनुर्धर वीर।
सब भाँति उनि श्रेष्ठ हय संशय करइ न मति धीर ॥ १३१ ॥

व्याख्या - एकलव्य के समान कोई गुरु-भक्त नहीं है तथा कोई धनुर्धर वीर भी नहीं है। इसलिए सब प्रकार से वही श्रेष्ठ है। हे बुद्धिमान व धीरवान लोगों! इसमें संदेह मत करो।

जो नहिं एकलव्य श्रेष्ठ सुहाई। तउ अगुँष्ठ होत न कटाई ॥
सोइ मोर मत कहउँ सुनाई। एकलव सम धनुर्धर कोउ नाई ॥

व्याख्या - अगर एकलव्य श्रेष्ठ नहीं होता, तो उसका अगूँठा काटा नहीं जाता। इसलिए मैं मेरा मत सुना देता हूँ कि एकलव्य के समान कोई भी धनुर्धर नहीं है।

धीर वीर गुरु भगति हियँ माहीं। दृढ़ मत एहि सम कोउ नाहीं ॥
सुनि द्रोण मत सब नर नारी। जय जय द्रोण ध्वनि उचारी ॥

व्याख्या - धीर, वीर और गुरु-भक्त इसके समान कोई नहीं है। यह मेरा दृढ़ मत है। द्रोणाचार्य के मत को सुन कर सब लोग द्रोणाचार्य की जय बोलने लगे।

नभ गूँज उठा जय जयकारा। धन्य एकलव सकल पुकारा ॥
बोली बेलू तब समय विचारी। सुनहु सकल विनय हमारी ॥

व्याख्या - सारा आकाश जय-जयकारों से गूँज उठा और सब कहने लगे कि एकलव्य धन्य है। तब समय देख कर सबको विनय सुनाती हुई बेलू बोली कि-

मोर पितु मोहि दीन्ह बचनाई। श्रेष्ठ वीर संग करइब ब्याई ॥
सो गुरु देव अब दीन्ह सुनाई। एकलव सम वीर कोउ नाई ॥

व्याख्या - मेरे पिताजी ने मुझे वचन दिया है कि मेरा विवाह श्रेष्ठ वीर के साथ करेंगे और आज गुरुदेव ने अपना निर्णय सुना दिया है।

इहँ विचार निवेदन कहहुँ। एकलव्य प्रणय प्रस्ताव करहुँ ॥
जो इहँ होइब सकल स्वीकारा। तो धन्य होइब जन्म हमारा ॥

व्याख्या - इसलिए मैं विचार कर निवेदन करती हूँ और एकलव्य को मेरे प्रणय का प्रस्ताव देती हूँ। अगर यह सभी को स्वीकार हो, तो मेरा जन्म धन्य हो जायेगा।

सुनहु प्रण मोर सभा माहिं। एकलव्य जेहि करहि नाहिं ॥
सत वचन सब कहुँ सुनाई। जीवन भर करु नहिं ब्याई ॥

व्याख्या - सभा में मेरा प्रण सुन लीजिए। अगर एकलव्य को यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं होगा, तो मैं सत्य कह रही हूँ , जीवन भर ब्याह नहीं करूँगी।

दो०- बेलू प्रस्ताव सुनि प्रणय का एकलव श्रवण न होइ विश्वास।
सकल सिद्धि मानो चरण परी भयउ अपार उल्लास ॥ १३२ ॥

व्याख्या - बेलू का प्रणय-प्रस्ताव सुन कर एकलव्य के कानों को विश्वास नहीं हो रहा था। उसे लग रहा था, मानो समस्त सिद्धियाँ उसके चरणों में आ गिरी हों। उसके मन में अपार उल्लास हो रहा था।

मन संकोच निकसै नहिं बानी। सुत हियँ बात मातु तब जानी ॥
प्रसन्न मन विनय सुनाई। हमरे कुल इहँ गौरव हय भाई ॥

व्याख्या - एकलव्य के मन में संकोच हो रहा था। तब माता ने अपने पुत्र के मन की बात जान ली और विनयपूर्वक बोली कि यह प्रस्ताव तो हमारे कुल के लिए गौरव की बात है।

धन्य होइब जो बेलू मिलाई। हमरी रजा जो गुरु आयुस पाई ॥
इहँ सुनि गुरु मन भा उल्लासा। निकसहिं आशीष हियँ अनयासा ॥

व्याख्या - हम धन्य होंगे, अगर बेलू हमें मिल जायेगी। हमारी तो सहमति है। अगर गुरुदेव आज्ञा दें। यह सुन कर गुरु का मन प्रफुल्लित हो गया और अपने आप हृदय से आशीर्वाद निकलने लगा।

प्रसन्न मन गुरु दीन्ह रजाई। सकल मन आनन्द छाई ॥
भयउ विवाह गुरु आशीष पाई। नर नारी सब दीन्ह बधाई ॥

व्याख्या - प्रसन्नतापूर्वक गुरुदेव ने अपनी सहमति दे दी। जिससे सबके मनों में आनन्द छा गया। गुरुदेव के आशीर्वाद से विवाह हो गया और सब नर-नारी बधाई देने लगे।

गुरुदेव दीन्ह बहु आशीषा। रहइब प्रसन्न सुत हमेशा ॥
गुरु अनादि बसइब हियँ तोरे। अतिशय प्रिय तुम शिष्य मोरे ॥

व्याख्या - गुरुदेव ने एकलव्य को बहुत आशीर्वाद दिया कि तुम सदा प्रसन्न रहना। अनादि गुरु-शक्ति सदा तुम्हारे हृदय में निवास करे। तुम मेरे बहुत प्रिय शिष्य हो।

तेहि काल प्रकाश पुँज इक आवा। एकलव्य हियँ आइ समावा ॥
एकलव्य मन भयउ उल्लासा। पायउ परम ग्यान अनयासा ॥

व्याख्या - उसी समय एक प्रकाश-पुँज आया और एकलव्य के हृदय में आकर समा गया। एकलव्य प्रसन्न हो उठा और उसे अनायास ही परमज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

एहि भाँति ज्ञान एकलव पाई। भयउ सहज सोइ कृष्ण बताई ॥

व्याख्या - इस प्रकार एकलव्य को परमज्ञान की प्राप्ति हुई। जिससे वह सहज हो गया था तथा उसी ज्ञान को फिर कृष्ण को समझाया था।

दो०- गुरु कृपा सकल मिलहिं एहि ते सुत किछु संशय नाय।
गुरु महिमा अपरम्पार हय ऋषि मुनि सब जन बताय ॥ १३३॥

व्याख्या - हे वत्स ! गुरु की कृपा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। गुरु की महिमा अपरम्पार होती है। इसको सब ऋषि मुनि बताते हैं।

सुन सुत कहउँ मरम कबीरा। भयउ भगत मोर अति धीरा ॥
कहि अनुभूति निपट निशंका। बखानहिं सत्य बजाइक डंका ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुम्हें कबीर का रहस्य समझाता हूँ। जो मेरा बहुत प्रिय और धैर्यवान भक्त हुआ है। उसने निशंक होकर अपनी अनुभूति को बताया है तथा डंके की चोट पर सत्य का उद्घाटन किया है।

नहिं कोउ भगत कबीर समाना। निश्छल निडर सत्य बखाना ॥
साधना मरम सकल बखानी। जेहि सब निज अनुभव जानी ॥

व्याख्या - कबीर के समान कोई भक्त नहीं हुआ है। जिन्होंने निश्छल व निडर होकर सत्य बताया है। स्वयं अनुभूति करके कबीर ने साधना के रहस्य को बताया है।

गुरु महिमा बहु कबीर बताई। मोहि सम गुरु मरजाद दिलाई ॥
गुरु धोबी गुरु कुम्हार कहाई। बहु प्रकार महिमा समझाई ॥

व्याख्या - गुरु की महिमा बताते हुए कबीर ने मेरे समान ही गुरु को महत्व दिया है। कबीर ने गुरु को धोबी, कुम्हार आदि की उपमा देकर नाना प्रकार से गुरु-महिमा का बखान किया है।

पाखण्ड कीन्ही बहुत प्रहारा। सोइ भयउ कबीर मोहि पियारा ॥
विषय वासना कहि अहि समाना। जीतन उपाइ बताहि ध्याना ॥

व्याख्या - कबीर ने पाखण्ड पर गहरा प्रहार किया था। इसलिए वह मुझे बहुत प्रिय था। उसने विषय-वासनाओं को सर्प के समान बताया तथा जीतने का उपाय ध्यान को बताया है।

दो०- अखण्ड जेहि खण्ड खण्ड करै सोई कबीर पाखण्ड बताय।
एक रस अनन्त अगाध मैं ध्यान धरै निज समझाय ॥ १३४॥

व्याख्या - जो अखण्ड है, उसी को खण्ड-खण्ड करते हैं, उसी को कबीर पाखण्ड कहते हैं। मैं (परमात्मा) तो एकरस, अनन्त व अगाध हूँ। जो ध्यान करते हैं, वे ही मुझे (परमात्मा) समझ सकते हैं।

गुरु बिनु साधन संभव नाहीं। समझा कबीर निज हियँ माहीं ॥
साधन साध्य जो गुरु बनाई। श्रद्धा सह पालहिं सो फल पाई ॥

व्याख्या - गुरु के बिना साधना सम्भव नहीं हो पाती है। कबीर ने स्वयं के हृदय में इसको अनुभूत किया। गुरु जो साधन व साध्य बताते हैं, उसका श्रद्धापूर्वक अनुसरण करने पर फल की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु कृपा सकल फलदाई। कहा कबीर सब जन बताई ॥
समरथ गुरु जो पावइ कोई। नहिं संशय किछु विपद न होई ॥

व्याख्या - कबीर ने सभी को बताया कि गुरु की कृपा ही फल देने वाली होती है। जो कोई समर्थ गुरु प्राप्त कर लेता है, उसको कोई विपदा नहीं आती

है । इसमें संदेह नहीं है ।

रिद्धि सिद्धि सब करहिं सेवकाई । इहँ कहि गुरु शक्ति प्रभुताई ॥
मोर बिमुख गुरु लेइ बचाई । गुरु बिमुख नहिं ठौर सुहाई ॥

व्याख्या - ऋद्धि-सिद्धियाँ सब सेवा करने लगती हैं । इसी को गुरु-शक्ति की प्रभुता कहते हैं । मुझ परमात्मा से विमुख को तो गुरु-शक्ति बचा लेती है, परन्तु गुरु-विमुख को कहीं जगह नहीं मिलती है।

सो मन वच कर्म छाड़ि चतुराई । उचित आवइ गुरु शरणाई ॥
गुरु सम नहिं कोउ हित कारी । कहहि कबीर पुकारी पुकारी ॥

व्याख्या - इसलिए मन, वचन व कर्म की चतुराई को छोड़ कर गुरु की शरण में आना चाहिए । गुरु के समान कोई हित करने वाला नहीं होता है । यह कबीर ने पुकार-पुकार कर कहा है ।

दो०- गोविन्द ते बड़ गुरु हय कहहि कबीर ढ़ोल बजाय ।
साध्य हूँ मैं जीव का गुरु बिनु कौन पहुँचाय ॥ १३५ ॥

व्याख्या - कबीर ने खूब ढोल बजा कर कहा कि मुझ (गोविन्द) से बड़ा गुरु है । क्योंकि मैं (गोविन्द) तो जीव की मंजिल हूँ । परन्तु गुरु के बिना वहाँ पहुँचायेगा कौन ?

देह पिण्ड ब्रह्माण्ड बिस्तारा । कबीर इहँ जानिन हारा ॥
काया मरम जेहि कबीर बताई । सो सब कहूँ तात तोहि समझाई ॥

व्याख्या - यह शरीर ही समस्त ब्रह्माण्ड का विस्तार है । कबीर इसको जानने वाले थे । कबीर ने जो काया का रहस्य बताया है,हे वत्स ! मैं तुम्हें उसी को समझा कर बताता हूँ, सुनो -

इहँ काया में सूरज चन्दा तारा । बसहिं इहाँ गृह नक्षत्र अपारा ॥
लगहिं इहाँ गुण हाट बाजारा । बहवहिं सागर नदियाँ नारा ॥

व्याख्या - इस शरीर में ही सूर्य, चन्द्रमा व तारे हैं तथा समस्त ग्रह-नक्षत्र भी इसी में हैं । इस काया में ही गुणों का बाजार लगता है तथा नदियाँ-नाले भी इसी में बहते हैं ।

गंगा जमुना बहवहिं सरीता । जानइ जेहिं होवहिं गुरु प्रीता ॥
माणिक मुक्ता इहाँ सुहाई । परखन हार जानि सोइ पाई ॥

व्याख्या - इस शरीर में ही गंगा और यमुना नदियाँ बहती हैं । जिस रहस्य को कोई गुरु का प्यारा ही जान पाता है । माणिक्य, मुक्ता सब यहाँ पर होते हैं। जिनको कोई परखने वाला ही जान पाता है ।

सुदृढ़ महल गढ़गिरनारा। रोम रोम जानि वनस्पति सारा ॥
गगन गूफा इहाँ अपार सुहाई। तहाँ बैठहिं गुरु आसन लगाई ॥
व्याख्या - यह शरीर ही सुदृढ़ महल और गिरनार का किला है तथा रोम-रोम को वनस्पति जानिए। इस शरीर में अपार गगन-गुफा होती है। जहाँ पर गुरु-शक्ति आसन लगा कर बैठी हुई है।

दो०- मन मथुरा दिल द्वारिका काया काशी जानि ।
दसवाँ द्वार देहरा हय तहाँ ज्योति पहिचानि ॥ १३६ ॥

व्याख्या - मन ही मथुरा, दिल ही द्वारका और शरीर काशी जानना चाहिए। दसवाँ द्वार (सहस्रसार चक्र) ही देहली है। जिसमें परम ज्योति को पहचाना जा सकता है।

इहँ देह अमृत बहि निरन्ता। करहिं पान ताइ साधु सन्ता ॥
नित्य करहिं जेहि आत्म ध्याना। तिन्ह हियँ उपजइ ग्याना ॥
व्याख्या - इस शरीर में निरन्तर अमृत बहता है, जिसका साधु-सन्त पान करते रहते हैं। जो नित्य आत्मा का ध्यान करते हैं, उनके हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है।

नाम महिमा कबीर बहु बखानी। राम राम कहि ब्रह्म पहिचानी ॥
सुरति नाम होवहिं एका। उपजहिं तब हियँ विवेका ॥
व्याख्या - नाम की महिमा का भी कबीर ने बहुत बखान किया है तथा राम-नाम का जप करके उन्होंने आत्मा को पहचाना था। सुरति और नाम जब एक हो जाते हैं, तब हृदय में विवेक पैदा होने लग जाता है।

सोइ विवेक आत्म ग्याना। होहहिं अनुभव हियँ ते नाना ।
अनुभूति कहि अटपट बानी। सरस गभीर निज हियँ जानी ॥
व्याख्या - वह विवेक ही आत्मा का ज्ञान होता है। जिससे हृदय में नाना अनुभूतियाँ होने लगती हैं। उसी अनुभूति को कबीर ने स्वयं के हृदय में समझ कर सरस व गम्भीर-अटपटी बानी में व्यक्त किया है।

कबीर कहि बहु उल्टबासी। जानि मोहि निराकार अविनासी ॥
निपट निशंक सत्य बखाना। निज हियँ सकल निज जाना ॥
व्याख्या - कबीर ने मुझ परमात्मा को निराकार व अविनाशी जान कर बहुत सी उलटबासी बातें कही हैं। उन्होंने स्वयं के हृदय में ही सब कुछ जान कर निपट व निशंक होकर सत्य को बताया है।

दो०- विषय वासना सोइ विष विषय ही बन्धन सुहाय ।
जब लगि विषय वासना तब लगि जीव न सुख पाय ॥ १३७॥

व्याख्या - विषयों की वासना ही जहर होती है तथा विषय ही बन्धन होते हैं। इसलिए जब तक विषय-वासना रहती है, तब तक जीव सुख प्राप्त नहीं करता है ।

बिनु तजइ विषय विकारा । नहिं दीदार मोर कबीर बिचारा ॥
वासना विषम विष समाना । ताइ हेतु जग जीव दुःख नाना ॥

व्याख्या - बिना विषयों के विकार को छोड़े मुझ परमात्मा का दर्शन नहीं होता है । कबीर ने स्वयं यह विचार करके देखा है । विषयों की वासना जहर के समान होती है, जिसकी वजह से संसार में जीव दुःख पाता रहता है ।

गुरु बिनु जोग न सधहिं भाई । बिनु जोगु नहिं विषय मिटाई ॥
विषय संग सुख नहिं कोउ पाई । कहा कबीर निज हियँ समझाई ॥

व्याख्या - गुरु के बिना योग साधना नहीं हो पाती है और योग साधना के बिना विषय विकार नहीं मिट पाते हैं तथा बिना विषय विकार मिटे कोई सुख नहीं पा सकता है । यह कबीर ने स्वयं अनुभूति करके कहा ह।

मन मूल सब विषय विकारा । मन ते पावइ इन्द्री बिस्तारा ॥
अन्तः काल मन मन ही समाई । सोई मन सकल मूल सुहाई ॥

व्याख्या - मन ही समस्त विषय विकारों का मूल होता है और मन से ही समस्त इन्द्रियाँ विस्तार प्राप्त करती हैं । अन्तकाल में मन-मन में ही समाहित हो जाता है । इसलिए मन ही सबका मूल होता है ।

मन मत चलइ न साधु सुजाना । मन ते उपजइ माया नाना ॥
गति मन अति गहन सुहाई । धरहिं ध्यान समझ तब आई ॥

व्याख्या - मन से बहुत प्रकार से माया पैदा होती है । इसलिए साधु-सज्जन मन के अनुसार नहीं चलते हैं । मन की गति बहुत गहन होती है । जिसको ध्यान द्वारा समझा जा सकता है ।

कबीर मन पच्छीउ बताई । उड़हिं विषय माया जाल पराई ॥
मन मैमन्त अति मतवाला । होइ वश अंकुश गुरु कृपाला ॥

व्याख्या - कबीर ने मन को पक्षी भी कहा है । जो विषयों में उड़ता हुआ माया के जाल में पड़ जाता है । मन रूपी हाथी बहुत मतवाला होता है, जो गुरु की कृपा रूपी अंकुश से ही वश में आता है ।

दो०- मन गौरख मन गोबिन्द मन ही औघड़ होइ ।
जे मन राखे जतन करि तो आपहि करता सोइ ॥ १३८ ॥

व्याख्या - मन ही इन्द्रियों का रक्षक (गौ+रक्ष) है और मन ही इन्द्रियों को वश (गो+बिन्द) में करने वाला है और मन ही मेरा (परमात्मा का) रूप है । इसलिए

जो मन को यत्न करके वश में रखते हैं, वे अपने आप ही कर्ता हो जाते हैं ।

कोटि कर्म करइ मन पल माहिं । विषय लालसा बन्द बधाँहिं ॥
मन ही सकै मन खोज लगाई । नाहिं त कोटि जतन नहिं पाई ॥

व्याख्या - पल भर में मन करोड़ों कर्म करने का संकल्प कर लेता है और विषयों की लालसा के जाल में पड़ जाता है । मन ही मन की खोज लगा सकता है । वरना करोड़ों प्रयासों से भी मन को पाया नहीं जा सकता है ।

मन अमृत मन विष क्यारी । मन ही अरि अरु मीत हमारी ॥
गुरु संग जे मन करहि प्रीता । काम क्रोध मदादि लगहिं पलीता ॥

व्याख्या - मन ही अमृत और मन ही विष की क्यारी होता है । मन के कारण ही मित्र और शत्रु होते हैं । इसलिए अगर मन गुरु के साथ प्रीत करने लग जाता है, तो काम, क्रोध, मद आदि भाव जलने लग जाते हैं ।

होवहिं मन जब निर विकारी । तेहि क्षण जीव मोच्छ अधिकारी ॥
बहु उपमा देइ मन समझाई । मन ही रोग मन औषध बताई ॥

व्याख्या - जब मन निर्विकार हो जाता है, उसी क्षण वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है । कबीर ने बहुत-सी उपमा देकर मन को समझाया है और मन को ही रोग और मन को ही औषधि बताया है।

मैमंता मन मारहि घट माहीं । सतगुरु शब्द बाण चलाहीं ॥
कबीर निज मन वश कीन्हा । सहजहिं परमपद चीन्हा ॥

व्याख्या - मतवाले मन को अपने घर में ही सत्गुरु के शब्द रूपी वाण से मारना चाहिए । कबीर ने भी स्वयं के मन को वश में करके सहज में ही परमपद को प्राप्त कर लिया ।

दो०- मन जीता माया मरी कबीरा भया बेपरवाह ।
आवागमन का भ्रम मिटा रहा अब आनन्द समाह ॥ १३९ ॥

व्याख्या - कबीर ने अपने मन को जीत लिया था । जिससे माया मिट गयी और कबीर निश्चिन्त हो गया । उसके आवागमन का भ्रम मिट गया और आनन्द में समा गया ।

कबीर साधना बहु विधि गाई । ध्यान ग्यान सुमिरण बताई ॥
अलख निरंजन शून्य आकारा । जपहि राम मिटै सब विकारा ॥

व्याख्या - कबीर ने साधना की बहुत-सी विधियाँ बतायी हैं । जिनमें ध्यान, ज्ञान व नाम जप बताया है । कबीर कहते हैं कि अलख, निरंजन व शून्य मान कर राम-

नाम जपने से सब विकार मिट जाते हैं ।

प्रहार बहु कीन्ह पाखण्डा । जानइ मोहि एक अखण्डा ॥
मूँड मुडाँवत मिलै नहिं रामा । जपहिं नाम तो सुधरहि कामा ॥

व्याख्या - कबीर ने मुझ परमात्मा को एक अखण्ड मान कर पाखण्ड पर बहुत प्रहार किया है । कबीर ने कहा है कि सिर मुंडवाने से राम नहीं मिलेंगे । बल्कि नाम का जप करने पर ही काम बनेगा ।

निश्छल प्रेम बिनु मिलै न रामा । होवइ न प्रेम बिनु गत कामा ॥
गुरु कृपा सकल काम नसाई । धन्य भाग जेहि नर इहँ पाई ॥

व्याख्या - बिना निश्छल प्रेम के राम की प्राप्ति नहीं होती है और बिना कामनाओं के नाश के निश्छल प्रेम पैदा नहीं होता है । गुरु-कृपा ही समस्त काम का नाश करती है। इसलिए वे लोग धन्य हैं, जो गुरु की कृपा प्राप्त कर लेते हैं ।

भरम न भागहिं लगाइ छापा । जब लगि रहहि वासना तापा ॥
करइ चतुराई अरु भरमाई । सरल हृदय सोइ मोहि पाई ॥

व्याख्या - जब तक वासनाओं का ताप बना रहता है, तब तक तिलक-त्रिपुंड लगाने से भ्रम नहीं मिट पाता है । चतुराई करने पर तो उलझन और ज्यादा बढ़ जाती है । मुझे तो सरल हृदय से ही प्राप्त किया जा सकता है ।

बिनु प्रेम माला नहिं किछु लाभा । बिरथा तीर्थ सब मक्का काबा ॥
निश्छल प्रेम हियँ उमगाई । नहिं संशय मैं जाउँ मिलाई ॥

व्याख्या - बिना प्रेम के माला जपने का कोई लाभ नहीं होता है और मक्का-काबा आदि तीर्थ करना भी व्यर्थ जाता है । जब हृदय में निश्छल प्रेम पैदा हो जाता है, तब मैं मिल जाता हूँ । इसमें संदेह नहीं है ।

दो०- तन जोगी सब करे मन का बिरला कोई ।
सब सिद्धि सहज मिलै जो मन जोगी होई ॥ १४० ॥

व्याख्या - तन का जोगी तो सब बनते हैं । परन्तु मन का जोगी कोई विरला ही हो पाता है । परन्तु जो मन का जोगी हो जाता है, उसे सब सिद्धियाँ सहज में ही मिल जाती हैं ।

ऊँच कुल बिरथा अभिमाना । होहहिं न लाभ बिनु निज जाना ॥
सुवर्ण कलश जे सुरा सुहाहिं । साधु जन कबहुँक करें बढ़ाहिं ॥

व्याख्या - ऊँचे कुल का अभिमान करना व्यर्थ होता है । स्वयं को जाने बिना कोई लाभ नहीं होता है । जैसे सोने के कलश में शराब भरने पर साधु लोग

कभी भी उसकी बड़ाई नहीं करते हैं ।

साधु संगति सदा फलदाई । कहि कबीर भल करउ ध्याई ॥
संत संग तीरथ फल समाना । सहज करावहिं हियँ ग्याना ॥

व्याख्या - साधु-संग सदा फल देने वाला होता है । इसलिए कबीर कहते हैं कि साधु-संगत दौड़ कर करनी चाहिए । संतों का संग तीर्थ के फल के समान होता है, जो सहज में ही हृदय में ज्ञान करा देता है।

कबीर कहहि दिवस भल सोई । जेहि दिन भेट संत संग होई ॥
विषय अनल सब जग जलाई । करि कृपा सन्त लेइ बचाई ॥

व्याख्या - कबीर कहते हैं कि वही दिन अच्छा होता है, जिस दिन सन्त से मुलाकात होती है । क्योंकि समस्त संसार विषय रूपी अग्नि में जलता रहता है और सन्त ही उस अग्नि से बचा पाते हैं ।

उनमन मन सन्त सदाई । राम रटन्त जगत फिराई ॥
सन्त न छाड़हि निज सुभावा । करइ न क्षोभ माया प्रभावा ॥

व्याख्या - सन्त जन सदा उनमन अवस्था में रहते हुए संसार में राम-राम जपते रहते हैं । सन्त कभी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते हैं तथा माया का प्रभाव उनके मन में क्षोभ पैदा नहीं कर पाता है ।

दो०- निरबेरी निष्कामता मोहि तें रखहि नेह ।
विषयन सूँ न्यारा रहे संत का लच्छन ऐह ॥ १४१ ॥

व्याख्या - जो बैर भाव से परे व निष्कामी होता है तथा सदा मुझ परमात्मा से प्रेम रखता है और विषय वासनाओं से दूर रहता है । ये सब संत के लक्षण होते हैं ।

अटपट बानी ध्यान समझाई । सुषमना नारी महिमा बताई ॥
गुरु कृपा कहि ध्यान आधारा । फल काम क्रोधादि जावहिं मारा ॥

व्याख्या - कबीर ने अटपटी वाणी द्वारा ध्यान विधि को समझाया और सुष्मना नाड़ी की बहुत महिमा बतायी है । गुरु-कृपा को ही ध्यान का आधार बताया तथा ध्यान का परिणाम यह होगा कि काम, क्रोध, मद आदि भाव मर जाते हैं ।

खोजहिं देह मिलहिं भगवाना । छूटहि बंध ज्योति ज्योति समाना ॥
आत्मा तब होइब मतवाली । रस राम पिवहि भर भर प्याली ॥

व्याख्या - शरीर में ही भगवान को खोजने पर मिल जाते हैं । जिससे समस्त बंधन कट जाते हैं और ज्योति ज्योति में ही समा जाती है । उस समय आत्मा मतवाली हो जाती है और भर-भर प्याला रामरस पीने लग जाती है ।

शिव सनकादि राम रस खाई । खावत खावत अजहुँ न अघाई ॥
बिनु सतगुरु मिलै न रस रामा । ताइ बिनु मिटै नहिं जग कामा ॥
व्याख्या - शिव, सनकादि ने रामरस पीया है और वे आज भी पीते-पीते नहीं थक रहे हैं । बिना सत्‌गुरु के रामरस नहीं मिल पाता है और बिना रामरस के काम नहीं मिट पाता है ।

सुष्मना नारी अनल समाना । भव जल जलत क्रोधादि नाना ॥
सुषमना नारी मग मोर बताई । सूच्छम होहि मन मोहि मिलाई ॥
व्याख्या - सुष्मना नाड़ी को अग्नि के समान बताया है । जिससे काम, क्रोध आदि भाव रूपी पानी जल जाता है । सुष्मना नाड़ी को मेरा रास्ता बताया है । जब मन सूक्ष्म हो जाता है, तब मुझसे मिल जाता है ।

दो०- मान अपमान माया बसै माया तहँ नहिं ब्रह्म ग्यान ।
माया हेतु प्राण तपै कह कबीर निज हियँ जान ॥ १४२॥
व्याख्या - मान-अपमान के भावों में माया निवास करती है और जहाँ माया है, वहाँ ब्रह्मज्ञान नहीं होता है । माया के कारण ही प्राण ताप महसूस करते हैं । कबीर ने यह अपने हृदय में स्वयं जान कर कहा है।

नश्वर देह कबीर बताई । कागद सम विषयन उड़ाई ॥
विगत वासना मिलै भगवाना । अंशी अंश भयउ एक समाना ॥
व्याख्या - कबीर ने इस शरीर को नश्वर बताया है तथा कागज की उपमा देकर बताया है कि यह विषय रूपी पवन में उड़ता रहता है । जब विषय-वासनाएँ मिट जाती हैं, तभी भगवान मिल जाते हैं और अंश व अंशी एक हो जाते हैं।

सुत इहँ कबीर दर्शन मूला । होइ आनन्द मिटै तृष्णा शूला ॥
जन्म मरण भ्रम सब मिटाई । जेहि जनु मोहि ते प्रीति लगाई ॥
व्याख्या - हे वत्स ! यही कबीर के दर्शन का मूल है कि तृष्णा मिटने पर आनन्द बच जाता है और जो लोग मुझसे प्रीत करते हैं, उनके जन्म-मरण का भ्रम मिट जाता है ।

ध्यान लगाय शून्य समाई । विषय वासना जाइ बिलगाई ॥
त्रिगुण सन्धि समझ पराई । सत रज तम जग खेल सबाई ॥
व्याख्या - जब ध्यान लगा कर जीव शून्य में समा जाता है, तब विषय-वासनाएँ अलग हो जाती हैं और त्रिगुण-सन्धि समझ में आ जाती है कि यह समस्त जगत सत, रज, तम का खेल है ।

होवहिं बुद्धि तब सम आचारी। मिटहिं विकार सकल संसारी ॥
ध्यान साधन प्राण इकतारा। गुरु लगन बजावन हारा ॥

व्याख्या - उस समय बुद्धि सम आचरण वाली हो जाती है। जिससे संसार के समस्त विकार मिट जाते हैं। ध्यान ही उसका साधन होता है और प्राण ही एक तार वाला वाद्य यन्त्र होता है, जिसको गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव ही बजाने वाला होता है।

दो०- ध्यान मगन मन भयउ त्रिभुवन होइ उजियार।
प्रगट ग्यान प्रकाशई छूटहिं ग्रन्थि संसार ॥ १४३ ॥

व्याख्या - जब मन ध्यान में मगन हो जाता है, तब तीनों लोकों में उजियाला हो जाता है और ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो जाता है। जिससे संसार की ग्रन्थि छूट जाती है।

उनमन मन चढ़हि ध्याना। प्रगटहि सहज हियँ ग्याना ॥
अमृत झरहिं सुष्मन नारी। पीवहि मन होइ निरविकारी ॥

व्याख्या - उनमन हो मन ध्यान में लग जाता है। जिससे सहज में ही हृदय में ज्ञान प्रकट हो जाता है। सुष्मना नाड़ी से अमृत झरने लग जाता है। जिसको निर्विकार होकर मन पान करने लग जाता है।

खिलइ कमल झरहि परागा। गुरु चरण बढ़हि अनुरागा ॥
उदय अस्त तहँ सुधि नाहि। विगत गुण मन शून्य मिलाहि ॥

व्याख्या - सहजता रूपी कमल खिल जाता है और ज्ञान रूपी पराग झरने लग जाता है, जिससे गुरु के चरणों में अनुराग बढ़ने लग जाता है। उस अवस्था में उदय व अस्त का आभास नहीं रहता है तथा गुण भी शेष हो जाते हैं और मन शून्य में मिल जाता है।

चंद सूरज उभय जोति सरूपा। पावहिं अंतरि ब्रह्म अनूपा ॥
पावहिं ब्रह्म होवहहिं ग्याना। परइ समझ काया विधि नाना ॥

व्याख्या - चन्द्र और सूर्य दोनो ज्योति स्वरूप हैं। अपने अन्दर ही ब्रह्म को पाया जाता है। जब ब्रह्म को जान लिया जाता है, तब ज्ञान हो जाता है और तब नाना प्रकार से देह समझ में आ जाती है।

चोवा चन्दन मरदन अंगा। सोइ तन जलइ काठ के संगा ॥
तब धन धाम काह बढ़ाई। धरनि परइ उर बारि न जाई ॥

व्याख्या - जिस शरीर को चन्दन, इत्र आदि से सजा कर रखा जाता है, वह एक दिन लकड़ी के साथ जलाया जाता है। तब धन और घर की कौन बड़ी बात है?

ये सब यहीं पृथ्वी पर ही रह जायेंगे । कुछ भी साथ नहीं जायेगा ।

दो०- जन्म मरण भ्रम मिटइ मोर चरण होवहि अनुराग ।
जीव जब शून्य समावहि जानो भाग्य गयउ जाग ॥ १४४ ॥

व्याख्या - जब जीव शून्य में समा जाता है, तब जन्म-मरण का भ्रम मिट जाता है और मेरे चरणों में अनुराग पैदा हो जाता है । तब जान लेना चाहिए कि भाग्य का उदय हो गया है ।

गुरु मति रहइ मोर गुण गावै । राम रमहिं रमत सुख पावै ॥
गुरु कृपा नाम होइ दृढ़ाई । सोइ मति भव पार कराई ॥

व्याख्या - गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए, जो मेरे गुणगान करता है, वह राम-नाम जप करता हुआ सुख प्राप्त करने लग जाता है । गुरु की कृपा से नाम में दृढ़ता आ जाती है और यही भावना भाव रूपी सागर को पार करा देती है ।

कहत कबीर अब चेतउ बन्दा । सत्य राम झूँठ सब धन्धा ॥
कबीर अनुभवहि आनन्दा । गयउ भरम रहा परमानन्दा ॥

व्याख्या - कबीर कहते हैं कि ऐ बन्दे ! अब तो जाग ! राम का नाम ही स त्य है और बाकी सब धन्धे झूठे हैं । कबीर ने इस प्रकार आनन्द का अनुभव किया । उनका सब भ्रम मिट गया था और वह परमानन्द में समा गया ।

हद पार जीव अनहद जाई । सकल पावइ जगत गँवाई ॥
भ्रम गयउ सकल भय भागा । राम नाम जब जीव चित्त लागा ॥

व्याख्या - माया रूपी हद (सीमा) को पार करके जीव अनहद में जब चला जाता है । तब संसार को खोकर सब कुछ प्राप्त कर लेता है । जब जीव का मन राम-नाम में लग जाता है, तब भ्रम मिट जाता है और भ्रम के मिट जाने से जीव का सब भय समाप्त हो जाता है ।

गुरु कृपाल अब कृपा कीन्ही । तन मन धन भाव हरि लीन्ही ॥
कहहिं कबीर मन रंगि राता । मिलइ जब जग जीवन दाता ॥

व्याख्या - जब परम गुरु-कृपा करते हैं, तब तन-मन व धन के भाव को दूर कर देते हैं । कबीर कहते हैं कि जब जगत को पैदा करने वाले से मिलन हो जाता है, तब मन भी उसी में लग जाता है ।

दो०- अन्तर लोचन निज देखहिं बाहिर नहिं परै दिखाई ।
नयन निज निरखहिं छबि, जीभ्या कह नहिं पाई ॥ १४५ ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा को तो अन्दर से ही देखा जा सकता है । मैं बाहर दिखाई नहीं पड़ता हूँ । नयन ही स्वयं छवि को देखते हैं । इसलिए वाणी द्वारा

उसको कहा नहीं जा सकता है ।

नहिं तन मन नहिं अहंकारा । नहिं सत रज तम गुण प्रकारा ॥
केहि विधि कहहिं पण्डित सोई । मोर रूप रेख बरण नहिं कोई ॥

व्याख्या - उस अवस्था में शरीर, मन व अहंकार कुछ भी नहीं होता है । वहाँ पर सत, रज, तम के तीनों गुणों का भेद भी नहीं रहता है। विद्वान लोग वर्णन कर भी कैसे सकते हैं ? क्योंकि मेरे तो रूप, रेखा व रंग कुछ भी नहीं होते हैं ।

इन्द्रि सकल करहिं विश्रामा । तब कोह बरनइ मोर धामा ॥
कहन सुनन की नहिं वो बाता । निज हियँ निजहिं समझ पाता ॥

व्याख्या - वहाँ पर तो समस्त इन्द्रियाँ विश्राम करने लग जाती हैं, तब मेरे धाम का कोई कैसे वर्णन कर सकता है ? इसलिए वे बातें कहने व सुनने की नहीं हैं, उनको तो स्वयं के हृदय में ही समझा जाता है।

जस हय तस जाने नहिं कोई । निज मति कहहिं सब सोई ॥
रतन पदारथ सब घट माहीं । बिरथा तीरथ खोज लगाहीं ॥

व्याख्या - जैसा मैं हूँ, उसको कोई जानता नहीं है और सब अपनी बुद्धि के अनुसार कहते रहते हैं । समस्त रत्न इस शरीर में ही होते हैं। व्यर्थ में ही लोग तीर्थो में जाकर खोजने का प्रयास करते हैं ।

करि ध्यान कबीर भा एकरस । जल में कुम्भ कुम्भ जल जस ॥
अविगत गति लखि मन माहीं । सोइ कबीर घट घट बताहीं ॥

व्याख्या - कबीरदास तो ध्यान लगा कर मुझसे एकरस हो गया, जैसे जल का घड़ा और घड़े का जल एक हो जाता है । कबीर ने जिसे घट-घट में बताया है, उसको उसने अपने मन में ही समझा था ।

दो०- खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रह्यो समाय ।
सोइ निज घट जानि करि दियो कबीर समझाय ॥ १४६ ॥

व्याख्या - परमात्मा ही जगत हैं और जगत ही परमात्मा हैं । जो सबके घट में समाया हुआ है । उसी को स्वयं के हृदय में जान कर कबीर ने सबको समझाया है।

मुल्ला पुजारी पुकारहिं दूरी । राम रहीम सब घट भरपूरी ॥
एक माटी जल सकल संसारा । जिमि बहु विधि भाँड कुम्हारा ॥

व्याख्या - मुल्ला-पुजारी व्यर्थ में दूर पुकारते हैं । राम-रहीम तो सब घटों में व्याप्त हैं । जैसे कुम्हार एक मिट्टी के नाना बर्तन बनाता है । उसी प्रकार यह समस्त संसार जल और मिट्टी से बना हुआ है ।

नहिं हिन्दू मुस्लिम कोई । अस्थि मांस प्राण एक तहँ लोई ॥
मन ही मक्का कबीला देही । बोलन हार जगत गुरु येही ॥

व्याख्या - हिन्दू-मुसलमान कोई नहीं है । क्योंकि सभी में एक ही हड्डी, माँस, प्राण व रक्त हैं । मन ही मक्का है तथा यह शरीर ही कबीला है और बोलने वाला ही जगद्‌गुरु है ।

मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हा । तब लगि मैं करता नहिं चीन्हा ॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हा । भए जन्म जन्म बहु दुःख दीन्हा ॥

व्याख्या - कबीर कहते हैं कि जब तक मैं-मैं करता रहा, तब तक वह मुझ कर्ता को पहचान नहीं पाया । जब तक मेरा-तेरा किया, तब जन्म हुआ और जन्म का दुःख हुआ ।

अगम निगम एक करि जाना । तब मनवा मन माहिं समाना ॥
कहि कबीर मैं मोरी खोई । दीखा एकइ परम तत्व सोई ॥

व्याख्या - कबीर कहते हैं कि जब अगम-निगम को एक कर जान लिया, तब मन मन में ही समा गया । तब कबीर ने मेरापन खो दिया और एक ही परम तत्व दिखाई पड़ा ।

दो०- पूरिब दिसा हरि बताए पश्चिम कहे अल्लाह मुकाम ।
मूढ़ निज हियँ देखहिं नहिं तहँ अल्लाह राम इक धाम ॥ १४७ ॥

व्याख्या - मूढ़ पूर्व में हरि बताते हैं और पश्चिम में अल्लाह का घर बताते हैं । मूढ़ स्वयं के हृदय में देखते नहीं हैं । जहाँ अल्लाह और राम दोनों ही एक बन कर रहते हैं ।

मानुष देह बहुरी समझाई । मोर भजन मुक्ति राह बताई ॥
कहा कबीर मानुष देह पाई । उचित भगति लेयउ कमाई ॥

व्याख्या - कबीर ने मनुष्य के शरीर को बहुत प्रकार से समझाया है तथा मेरा भजन ही मुक्ति का रास्ता बताया है । इसलिए कबीर कहते हैं कि अच्छा यही है कि मनुष्य देह पाकर भक्ति रूपी कमाई कर लें।

जब लगि जरा रोग नहिं आई । काल ग्रसी जीव नहिं खाई ॥
भल होव करै मोर भजनाई । अंत काल करत बहु कठिनाई ॥

व्याख्या - कबीर कहते हैं कि जब तक शरीर में रोग और बुढ़ापा नहीं आये और काल जीव को खा नहीं ले, उससे पहले ही मेरा भजन कर लेना ही अच्छा है । क्योंकि अंत समय में भजन करना कठिन हो जाता है ।

जो किछु करहिं सोइ लेउ सारु । अन्त पछतावहिं पावइ नहिं पारु ॥
निज देह जेहि करहि ईश सेवा । तिन्ह पावहिं निरंजन देवा ॥

व्याख्या - जो कुछ करना है, उसे कर लेना चाहिए। वरना अन्तकाल में पश्चाताप करना पड़ेगा और भजन कर भी नहीं पाओगे। जो स्वयं के शरीर में ही मुझ ईश्वर की सेवा करते हैं, उन्हें मैं अलख निरंजन मिल जाता हूँ।

गुरु मिलहिं खुलहिं कपाटा। बहुरि न आवहहिं योनि बाटा ॥
अवसर देखि लहहिं संभारा। घट माहि बिलोकहिं करतारा ॥

व्याख्या - गुरु के मिलने पर ज्ञान रूपी कपाट खुल जाते हैं, जिससे पुनः योनि मार्ग से जन्म नहीं लेना पड़ता। अतः जो अवसर देखकर सँभल जाते हैं, वे मुझ परमात्मा को अपने हृदय में ही देख लेते हैं।

दो०- गृह तजि बन खंड जाइ के चुनि चुनि खावहि कंद।
विषय विकार तजइ नहिं काह लाभ पापी मन मंद ॥ १४८ ॥

व्याख्या - अरे पापी-मन घर छोड़ कर वन में जाकर कंद-मूल-फल खाने से क्या लाभ है ? अगर विषय-विकारों को नहीं छोड़ा गया।

माया मोह अनल जरहिं संसारा। तजहिं वासना होहहिं उबारा ॥
भव सागर अति वार न पारा। मन उठहहिं लहरि बिकारा ॥

व्याख्या - यह संसार माया-मोह रूपी अग्नि में जल रहा है। इसलिए जो वासनाओं का त्याग करता है, उसी का उद्धार हो पाता है। भाव रूपी भवसागर की कोई सीमा नहीं होती है। मन में विकार रूपी लहरें उठती रहती हैं।

विषय भँवर जीव फँसाई। बचहिं जेहि जनु गुरु कृपा पाई ॥
राम नाम जेहि तरणी बनाई। सहजहिं भव सागर तराई ॥

व्याख्या - विषय रूपी भँवर में जीव फँस जाता है। वो ही जीव बच पाता है, जो गुरु-कृपा प्राप्त कर लेता है और राम-नाम की नाव बना लेता है। वो सहज में भाव रूपी भवसागर को पार कर जाता है।

माया माया सकल बखानहिं। मरम गभीर कोउ न जानहिं ॥
बाहिर बाहिर सब तजै माया। झीनी विकट बिरला तजि पाया ॥

व्याख्या - माया का बखान तो सब लोग करते हैं। परन्तु माया के गम्भीर मर्म को नहीं जान पाते हैं। मेरी बाहरी माया को तो सब छोड़ देते हैं। परन्तु झीनी माया को कोई नहीं छोड़ पाता है।

यश इच्छा सोइ झीनी माया। ऋषि मुनि जन सब भरमाया ॥
गुरु कृपा तजहिं इहँ कोई कोई। तजै तबहिं परमानन्द होई ॥

व्याख्या - यश की इच्छा ही झीनी माया होती है। जिसमें ऋषि-मुनि सभी भ्रमित हो गये। गुरु की कृपा से ही कोई विरला ही इसे छोड़ पाता है। परन्तु

छोड़ते ही परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

दो०- कथनी कथै लाभ नहिं तुम प्रभु अपरम्पार ।
बिनु परसै काह जानिए सब झूठे अहंकार ॥ १४९ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप तो अपरम्पार हैं, कहने से क्या लाभ है ? बिना आपको स्पर्श किये झूठे अहंकार से आपको जाना कैसे जाये ?

दो०- निज मन पहिचान करि जीता कबीर सब संसार ।
निज अनुभूति सब कहि निज हिय सकल विचार ॥ १५० ॥

व्याख्या - स्वयं के मन को पहचान कर कबीर ने समस्त संसार को जीत लिया और अपनी स्वयं की अनुभूति को हृदय में विचार कर सबको बता दिया ।

दो०- भाव भगति बिसवास बिनु कटहहि न संशय मूल ।
बिनु गुरु कृपा भगति नहिं ताइ बिनु मिलै न मुक्ति कूल ॥१५१ ॥

व्याख्या - बिना भक्ति और विश्वास के संशयों की जड़ें नहीं कट पाती हैं और बिना गुरु-कृपा के भक्ति नहीं मिल पाती है और बिना भक्ति के मुक्ति की राह नहीं मिलती है ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण पंचदशम पड़ाव ॥

नाना भाँति कबीर समुझाई । निज हियँ मोर जुगति सुझाई ॥
पाइ देह औसर न चूकउ भाई । कहा इहँ कबीर सकल बताई ॥

व्याख्या - कबीर ने नाना प्रकार से समझाया है तथा स्वयं के हृदय में ही मेरा उपाय बताया है । कबीर ने सभी को बताया है कि मनुष्य देह पाकर अब अवसर मत चूकिए ।

सोइ सुत करहु हियँ विचारा । सब घट घट मोरहि प्रसारा ॥
धन्य नाथ मोर संशय मिटाई । प्रेरणा तुम्हार हियँ मैं पाई ॥

व्याख्या - इसलिए वत्स ! हृदय में विचार कीजिए, मैं ही सब घट-घट में व्यापक हूँ। हे प्रभु ! मैं धन्य हो गया और आपकी प्रेरणा मुझे मेरे हृदय में प्राप्त हो गयी है।

तुम अगम अगोचर सर्वव्यापी । क्षमा करहु नाथ मैं अति पापी ॥
तुम्हहिं छाड़ि नहिं कोउ दूजा । हियँ विश्वास अब मैं बूझा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप अगम, अगोचर व सर्वव्यापक हैं । हे नाथ ! मुझ पापी को आप क्षमा कर दीजिए । आपको छोड़ कर मेरा और कोई नहीं है। अब मेरे हृदय में पूरा विश्वास हो गया है और मैंने समझ भी लिया है ।

विनय विवेक मोर हियँ नाहिं । करि भरोस शरण अब आहिं ॥
पुनि पुनि सुनउ विनय मोरी । क्षमा करहु अब शरण मैं तोरी ॥

व्याख्या - मेरे मन में विनय और विवेक नहीं है । बस मैं तो आपका भरोसा करके आपकी शरण में आया हूँ । हे प्रभु ! मेरी बार-बार विनती सुनिए और मुझे क्षमा कर दीजिए ! अब मैं आपकी शरण में हूँ ।

दो०- तुम समान अरु नहिं तुम ते बढ़कर कैसे होय ।
शरण तिहारी जे आवहि निर्भय होकर सोय ॥ १५२ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपके समान कोई नहीं है । फिर आपसे बढ़ कर कौन हो सकता है? इसलिए जो आपकी शरण में आ जाते हैं, वे निर्भय होकर रहते हैं ।

हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई । कहत सुनत सब भाई भाई ॥
मन कटुता ऊपर एक दिखाई । बहु बार हिंसा जाइ प्रगटाई ॥

व्याख्या - हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई सब भाई-भाई हैं । लोग कहते भी हैं और सुनते भी हैं । परन्तु यह एकता ऊपरी दिखावे के लिए ही है । मनों में कटुता भरी होती है । जिसके कारण बहुत बार हिंसा भी हो जाती है ।

कारण कवन इहँ सब गुसांई । करि कृपा मोहि देवउ बताई ॥
सुन सुत कहउँ मरम अपारा । मति हेतु उत्पत्ति पंथ प्रकारा ॥

व्याख्या-हे नाथ ! इसका क्या कारण है ? मुझे कृपा करके बता दीजिए। हे वत्स ! सुनो, तुमको इसका अपार रहस्य बताता हूँ । पंथों की उत्पत्ति बुद्धि के कारण होती है ।

मोहि हेतु सकल पंथ बनाई । मैं एकहि नहीं कहीं भिन्नताई ॥
मैं ही ईश्वर अल्लाह कहाउँ । मैं ही राम रहीम नाम धराउँ ॥

व्याख्या - मेरे लिए ही सब पंथ पैदा होते हैं । परन्तु मैं तो एक ही हूँ, इसलिए कहीं कोई भेद नहीं है । मैं ही ईश्वर, अल्लाह, राम व रहीम कहलाता हूँ ।

सकल पंथ मोर उपवासी । घट घट व्यापक मैं अविनासी ॥
स्वारथ हेतु करहिं लड़ाई । बिरथा सब मोर नाम कराई ॥

व्याख्या - सभी पंथ तो मेरे ही उपासक हैं । मैं तो अविनाशी बन कर सबके घटों में निवास करता हूँ । लोग मेरा नाम लेकर अपने स्वार्थो के लिए व्यर्थ में झगड़ा करते हैं ।

दो०- प्यार प्रेम सोहार्द मैं बसूँ कटुता नहिं मोहि सुहाय ।
जहाँ कटुता तहँ मैं नहिं बिरथा जग फसाद कराय ॥ १५३ ॥

व्याख्या - जहाँ प्रेम, प्यार व सौहार्द होता है, मैं वहीं निवास करता हूँ तथा जहाँ पर कटुता होती है, वहाँ पर मैं नहीं रहता हूँ । संसार तो व्यर्थ में झगड़ा करता रहता है।

पंथ संस्थापक मंशा किछु ओरा । अनुभव हीन समझइ थोरा ॥
बिनु अनुभूति मूल भटकाई । नीति पंथ पाखण्ड बन जाई ॥

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

व्याख्या - पंथ के संस्थापक की भावना कुछ और होती है और अनुसरणकर्ता बिना अनुभव के थोड़ा बहुत समझ पाते हैं । इसलिए बिना अनुभूति के मूल भावना से भटक जाते हैं और पंथ की नीति को पाखण्ड बना देते हैं ।

भगत करहिं सब अनुगमना । अंध विश्वास समझ किछु ना ॥
मूल भूल सब करहिं पाखण्डा । बाँटहि अग्य मोहि खण्ड अखण्डा ॥

व्याख्या - भक्त लोग अनुसरण करने लग जाते हैं और अंधविश्वास में पड़ जाते हैं । स्वयं कुछ समझ नहीं पाते हैं । मूल विषय को भूल कर सब पाखण्ड करने लग जाते हैं और मुझ एक अखण्ड परमात्मा को खण्ड-खण्ड कर देते हैं।

एहि भाँति बढ़हहिं कटुताई । जानहिं नहिं मूढ़ निज अग्यताई ॥
तोहि अब इस्लाम समझाउँ । सुनहिं जेहि कल्मष मिटाउँ ॥

व्याख्या - इस प्रकार कटुता बढ़ जाती है और मूढ़ लोग स्वयं के अज्ञान को जान ही नहीं पाते हैं । हे वत्स ! अब मैं तुमको इस्लाम पंथ समझाता हूँ । जिसको जो भी सुनेगा, उसकी कटुता मिट जायेगी।

मोहि पगहि सो पैगम्बर भाई । मोह मद मुइ मोहम्मद सुहाई ॥
एक मानि मोहि करहिं सलामा । सोई पंथ भयउ नाम इस्लामा ॥

व्याख्या - जो मुझे जान लेता है, वही मेरा पैगम्बर होता है तथा जो मोह व मद आदि भावों को मार लेता है, वही मुहम्मद कहलाता है । मुझ ईश्वर को एक मान कर जो मुझे सलाम करता है, वही पंथ इस्लाम कहलाता है।

दो०- जाति पांति सब भेद मिटै हियँ उपजहिं तब ग्यान ।
एक शक्ति सकल ब्रह्माण्ड में सोइ अल्लाह रहमान ॥ १५४॥

व्याख्या - जब हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है, तब जाति-पाति का सब भेद मिट जाता है तथा समस्त ब्रह्माण्ड में एक ही शक्ति दिखाई पड़ने लगती है, उसे ही अल्लाह-रहमान के नाम से जाना जाता है।

मोहि सम सब जानै मुस्लमाना । घट घट मानहि मोइ रहमाना ॥
जेहि रहवहिं सदा मोर ईमाना । सत् मुस्लिम सोइ इन्साना ॥

व्याख्या - जो सबको मेरे समान मानता है और प्रत्येक घट-घट में मुझ अल्लाह-रहमान को मानता है तथा सदा मुझ परमात्मा पर पूरा भरोसा रखता है, वही इन्सान सच्चा मुसलमान होता है ।

इस्लाम लच्छन कहुँ बखानी । सुनत मिटहिं सब हियँ ग्लानी ॥
प्रथम लच्छन मातु-पितु आज्ञाकारी । दुःखावहि दिल पाइ दोजख भारी॥

व्याख्या - अब मैं इस्लाम के लक्षण बताता हूँ । जिनको सुनने से हृदय की ग्लानि

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

मिट जायेगी । इस्लाम का प्रथम लक्षण है कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करें तथा जो माता-पिता का दिल दुखाता है, वो घोर नरक में पड़ता है ।

मातु पितु जेहि देहिं सन्माना । नहिं इबादत कोउ इहँ समाना ॥
मातु पितु सेवा सोइ सर्ग द्वारा । करहिं भल पावहिं स्वर्ग अपारा ॥

व्याख्या - माता-पिता को जो सम्मान देते हैं, उनकी इस प्रार्थना के समान दूसरी कोई प्रार्थना नहीं होती । माता-पिता की सेवा ही स्वर्ग का द्वार होती है । इसलिए जो अच्छी सेवा करते हैं, वे अपार स्वर्ग प्राप्त करते हैं ।

दया करुणा क्षमा न्याय मिसाला । पावहिं इतिहास एक ते एक विशाला ॥
पर दुश्मन दया जे करहिं । ते नर नहिं फरिश्ता होवहहिं ॥

व्याख्या - दया, करुणा, क्षमा व न्याय के उदाहरण तो इतिहास में एक से बढ़ कर एक मिलते हैं । परन्तु जो दुश्मनों पर दया करते हैं, वे इन्सान नहीं फरिश्ता होते हैं।

दो०- बहु जुल्म मोहम्मद सहे पर दुश्मन किए सब माफ ।
समरप मोहि किया बाहिर भीतर भए पाक साफ ॥ १५५ ॥

व्याख्या - पैगम्बर मुहम्मद ने बहु यातनाएँ सहन की, परन्तु उन्होंने अपने सब दुश्मनों को माफ कर दिया । वे पूरी तरह से मुझ अल्लाह को समर्पण करके बाहर-भीतर से पवित्र हो गये ।

दूसर मानहिं निज समाना । पैगम्बर कहा इहँ फरमाना ॥
भल चरित्र भ्रातत्व आधारा । करै प्रेम मोइ अल्लाह प्यारा ॥

व्याख्या - पैगम्बर मुहम्मद ने सबको अपना आदेश सुनाया कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा स्वयं के साथ करते हो । अच्छा चरित्र ही भाईचारे का आधार होता है और जो प्रेम करते हैं, वे ही मुझ अल्लाह को प्रिय होते हैं ।

मोहब्बत सोइ पावन हथियारा । मरहिं दुश्मन बिनहिं मारा ॥
जो मन चाह बनिन सरदारा । सो उचित करहिं भल आचारा ॥

व्याख्या - मोहब्बत ऐसा पवित्र हथियार है, जिससे दुश्मन बिना मारे ही मर जाता है । इसलिए अगर कोई सरदार बनना चाहता है, तो उचित यही है कि अच्छा आचरण करे ।

सीखन लज्जा पावहि नहिं जेहि । मुस्लिम बड़ लच्छन ऐहि ॥
राष्ट्र संग जे करहिं गद्दारी । तेहि जनु सब दोजख अधिकारी ॥

व्याख्या - जिसे नया सीखने में लज्जा नहीं होती है, यही मुसलमान का बड़ा लक्षण होता है । जो लोग राष्ट्र के साथ धोखा करते हैं, वे सब लोग नरक के अधिकारी होते हैं ।

उदर दुश्मन बड़ जग माहिं। कहा पैगम्बर इहँ समझाहिं ॥
निज प्रशंसा सम घातक नहिं कोई । मद लालसा ईर्ष्या अनल सोई ॥

व्याख्या - पैगम्बर ने समझा कर बताया है कि पेट के बराबर दूसरा कोई दुश्मन नहीं होता है । स्वयं की प्रशंसा के बराबर कुछ भी घातक नहीं होता है तथा मद, लालसा व ईर्ष्या ही अग्नि का कार्य करते हैं।

दो०- **परहित सोइ बहादुरी हय आड़े वक्त काज जो आय ।**
मद लोभी लालची कायर पैगम्बर दियउ सब बताय ॥ १५६॥

व्याख्या - जो बुरे समय में किसी के काम आता है, ऐसा परहित करना बहादुरी का काम है । मद, लोभ व लालच की भावना ही कायरता है । पैगम्बर ने यह सबको समझा कर बताया है ।

झूँठ सम नहिं कोउ नुकसाना । निज करहिं निज हानि नाना ।
खुदा जाहि दण्ड देवत चाई । दौलत वासना हिय उमगाई ॥

व्याख्या-झूठ के बराबर कोई हानि नहीं होती है। क्योंकि झूठ से स्वयं ही स्वयं की हानि करता है। खुदा जिसको दण्ड देना चाहता है, उसे धन की वासना में लगा देता है।

वासना पशु फिरै बिनु लगामा । होहिं न वश बिनु ज्ञान पैगामा ॥
जगत रहइ जग तें बचाई । सोइ करै निज अरु पर भलाई ॥

व्याख्या - वासना रूपी जानवर बिना लगाम के घूमता रहता है, जो ज्ञान रूपी लगाम के बिना वश में नहीं आता है । जो संसार में रह कर संसार से बचता रहता है, वह स्वयं और दूसरों की भलाई कर पाता है ।

अहंकार सो दुश्मन बड़ भाई । ताहि हेतु विपद जग सब आई ॥
सोच विचार बोलहिं बुद्धिमाना । मूरख बोलि पुनि करहिं ग्याना ॥

व्याख्या - अहंकार बहुत बड़ा दुश्मन होता है और उसी की वजह से संसार में सब विपदाएँ आती हैं । बुद्धिमान लोग सोच-विचार कर बोलते हैं और मूढ़ लोग बोलने के बाद सोचते हैं ।

करहि कुसंग भ्रम उपजाई । सुसंग सम नहिं किछु भलाई ॥
धन क्षुधा कोउ सुख न दिलाई । बिरथा जन्म जीव गवाँई ॥

व्याख्या - कुसंगत करने पर भ्रम पैदा हो जाता है और सुसंगत करने के बराबर अच्छी बात और भलाई नहीं होती है । धन की भूख कभी सुख नहीं देती है। इसलिए जीव व्यर्थ में जीवन गवाँ देता है ।

दो०- **दिल हय खेती जबान की भल डालो बीज बिचार ।**
सकल जो उग न सकहिं उगइब जरुर दो चार ॥ १५७ ॥

व्याख्या - दिल ही वाणी की खेती होता है। इसलिए अच्छी वाणी रूपी बीज विचार कर डालना चाहिए। क्योंकि अगर सब बीज भी नहीं उगेंगे, तो भी दो-चार जरूर उग जायेंगे।

बिनु काजु जेहि गाल बजाई। निसानी कुमार्ग जानउ इहँ भाई ॥
जान बूझ जेहि करहहिं पापा। सो नर सहवहिं नरक परितापा ॥

व्याख्या - बिना कारण के जो गाल बजाते हैं, उसको कुमार्ग की पहचान जानना चाहिए और जो जानबूझ कर पाप करते हैं, वे लोग नरक की यातना सहते हैं।

कंजूस सम नहिं कोउ दुखदाई। दौलत भल जो परहित आई ॥
पावन नहिं दौलत बिनु दाना। पैगम्बर इहँ खूब बखाना ॥

व्याख्या - कंजूस के समान दुःख देने वाला कोई नहीं होता है तथा धन वही अच्छा होता है, जो परहित में काम आता है। बिना दान के धन पवित्र नहीं होता है, यह पैगम्बर ने सबको अच्छी तरह बताया है।

अल्लाह हेतु जेहि देवहिं दाना। पावहिं जग तेहि पुण्य नाना ॥
कंजूस दौलत मालिक सुहाई। पल पल ताहि चिन्ता सताई ॥

व्याख्या - जो अल्लाह के नाम पर दान देते हैं, उन्हें संसार में नाना पुण्य-फल की प्राप्ति होती है। अगर कंजूस दौलत का मालिक होता है, तो पल-पल उसको चिन्ता सताती रहती है।

दान अरु ज्ञान करहिं अहंकारा। ते पुरुष जानि सकल नकारा ॥
अल्लाह उपर रखहिं ईमाना। धन दौलत करइ न गुमाना ॥

व्याख्या - जो लोग दान और ज्ञान का अहंकार करते हैं, वे लोग संसार में व्यर्थ होते हैं। परन्तु जो लोग अल्लाह पर पूरा विश्वास रखते हैं, वे धन दौलत का घमण्ड नहीं करते हैं।

ते जनु सब अल्लाह प्रिय सुहाई। पैगम्बर इहँ सब जन बताई ॥
जिभ्या तोहफा दीन्ह सबाई। इहँ रहमत खुदा की भाई ॥

व्याख्या - वे सब लोग अल्लाह को प्रिय होते हैं। यह पैगम्बर ने सब लोगों को बताया है। अल्लाह की रहमत है कि उन्होंने मनुष्य को वाणी की सौगात दी है।

तरबतर रहइ खुदा गुण गाना। इहँ भल प्रयोग जानि जुबाना ॥
मन अरु जबाँ खुदा बनाई। सोइ भल होइ उपयोग सदाई ॥

व्याख्या - इसलिए जीह्वा को सदा अल्लाह के गुणगान में लगाये रखना ही इसका अच्छा उपयोग है। मन और जीह्वा को अल्लाह ने बनाया है। इसलिए इन दोनों का अच्छा उपयोग ही करना चाहिये।

बोलहिं मधुर बहुत विचारी । तेहि जनु पावहिं सुख अपारी ॥

व्याख्या - जो विचार कर मीठा बोलते हैं, वे बहुत सुख पाते हैं ।

दो०- कडुवा बोल ते चुप भला झूँठा जहन्नम जाय ।
सच बोलहिं मधुर संग तिन्ह पर खुशी खुदाय ॥ १५८ ॥

व्याख्या - कटु बोलने से तो चुप रहना अच्छा होता है और झूठ बोलने पर नरक जाता है । सत्य व मीठा बोलने वाले पर खुदा हमेशा खुश रहता है ।

जिन्ह गृह रहइ लालच सदाई । तिन्ह दुआ कबूल नहिं जाई ॥
खान पान धन धाम हरामा । ते नहिं पावहिं अल्लाह मुकामा ॥

व्याख्या - जिनके घर में लालच की भावना रहती है, खुदा उनकी दुआ कबूल नहीं करते हैं । जिन लोगों का खान-पान व धन-धाम हराम का होता है, वे अल्लाह के धाम को प्राप्त नहीं होते हैं ।

पैगम्बर कहा सकल बुझाई । उचित तजउ लालच सदाई ॥
जुल्म सम नहिं किछु पापा । अल्लाह न सहहिं अपने आपा ॥

व्याख्या - पैगम्बर ने सबको समझा कर बताया है कि सदा लालच को त्याग देना ही उचित है । संसार में जुल्म के बराबर कोई पाप नहीं होता है । क्योंकि अल्लाह स्वयं जुल्म सहन नहीं करते हैं ।

करहिं जुल्म जेहि दोजख पाई । इहँ पैगाम पैगम्बर सुनाई ॥
मजलूम जे करइ नहिं सहाई । तेउ भागीदार पाप सबाई ॥

व्याख्या - जो जुल्म करते हैं, वे नरक प्राप्त करते हैं । यह संदेश पैगम्बर ने सुनाया है । जो मजलूमों की सहायता नहीं करते हैं, वे भी पाप के भागीदार बनते हैं ।

अति चार हेतु नहिं कोउ स्थाना । इस्लाम लच्छन इहँ प्रधाना ॥
जो करहिं आचरण नेक विचारी । अल्लाह रहमत वे अधिकारी ॥

व्याख्या - इस्लाम का मुख्य लक्षण यह है कि उसमें अत्याचार का कोई स्थान नहीं होता है । जो लोग अच्छा विचार कर आचरण करते हैं, वे सब अल्लाह की रहमत के अधिकारी होते हैं ।

दो०- भाग्यशाली वो नर नेकी करि करि डराय ।
बुरा भाग ताका भया करै बुराई प्रशंसा चाय ॥ १५९ ॥

व्याख्या-भाग्यशाली इन्सान तो वह होता है, जो नेक कार्य करके भी खुदा से डरता रहता है और दुर्भाग्यशाली वह होता है, जो बुरा करके भी प्रशंसा की इच्छा करता है ।

धीरज दया सुशीलता ग्याना । करहिं बुलंद इहँ इन्साना ॥
इच्छा मारग असत दिखाई । धन्य ते नर जेहि जान पाई ॥

व्याख्या - धीरज, दया, सुशीलता व ज्ञान इन्सान को बुलन्दी पर पहुँचाते हैं। इच्छाएँ ही इन्सान को असत् मार्ग पर चलाती हैं । इसलिए वे लोग धन्य हैं, जो इस रहस्य को जान पाते हैं ।

ग्यानी पुरुष होइ बलवाना । एकहि बल जानउ लच्छ समाना ॥
दीन गरीब असहाय लाचारा । देवहु दान बिनु चाह प्रचारा ॥

व्याख्या - ज्ञानी पुरुष ही बलवान होता है । क्योंकि एक ज्ञानी लाखों के बराबर होता है । दीन, गरीब, असहाय व लाचारों को बिना यश की इच्छा के दान देना चाहिए।

पैगम्बर इहँ दीन्ह आदेशा । बाटउँ जकात गरीब हमेशा ॥
जेहि नहिं करहिं गरीब सहाई । पैगम्बर कहा तिन्ही आतताई ॥

व्याख्या - पैगम्बर ने कहा है कि जकात को हमेशा गरीबों में बाँटना चाहिए और जो गरीबों की सहायता नहीं करते हैं, वे अत्याचारी होते हैं ।

अल्लाह तिन्ह करइब नहिं माफा । पैगम्बर कहा इहँ हुक्म साफा ॥
भल कृत्य करइ नहिं बखाना । कहि पैगम्बर इहँ फरमाना ॥

व्याख्या - अल्लाह उन लोगों को माफ नहीं करते हैं । यह पैगम्बर ने सबको स्पष्ट आदेश दिया । अच्छा कार्य करके बखान नहीं करने का फरमान भी पैगम्बर ने दिया है ।

दो०- नेकी करि भूलहिं सब मन नहिं करे मान गुमान ।
सहज रहइ परहित करै तिन्ह पर खुशी रहमान ॥ १६० ॥

व्याख्या - जो अच्छा करके भूल जाते हैं और मन में मान-अभिमान नहीं करते हैं तथा परहित में सहज होकर लगे रहते हैं, उन पर खुदा प्रसन्न होते हैं ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्नपरायण पँचम पड़ाव ॥

अल्लाह हेतु करै नेक काजा । तब काह लाभ दिखाई समाजा ॥
धन लालसा गफलत कराई । सो देइ जकात मुक्ति वो पाई ॥

व्याख्या - अल्लाह के नाम पर अच्छा कार्य करना है, तो फिर समाज को दिखाने की आवश्यकता क्या है ? धन की लालच भूल कराती है। इसलिए जकात देने वाले ही मुक्त हो पाते हैं ।

सूद बढ़ावई लालच सदाई । उचित देखउ नहिं आँख उठाई ॥
अल्लाह खुशी चावहिं जे कोई । धन अरु यश इच्छा हियँ न होई ॥

व्याख्या - ब्याज हमेशा लालच को बढ़ाता है । इसलिए इसकी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखना चाहिए । अल्लाह को जो प्रसन्न करना चाहते हैं, उन्हें मन में यश और धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए ।

जे नीति विरुद्ध भ्रष्ट आचारी। इबादत कबूल न एकउ बारी ॥
जो चाहहिं निज भल व्यवहारा। दूसर संग करै सोइ आचारा ॥

व्याख्या - जो भ्रष्ट आचरण वाले और नीति-विरोधी होते हैं, उनकी प्रार्थना अल्लाह स्वीकार नहीं करते हैं। जो लोग अपना अच्छा चाहते हैं, उन्हें दूसरों के साथ वैसा ही अच्छा व्यवहार करना चाहिए।

जोरन हेतु सकल समाजा। कहा पैगम्बर इहँ सब काजा ॥
हिंसा इस्लाम नहिं कोउ स्थाना। त्याग दया मोहब्बत भल माना ॥

व्याख्या - समाज को जोड़ने के लिए पैगम्बर ने यह सब नीति बनायी हैं। इस्लाम में हिंसा का कोई स्थान नहीं होता है। वहाँ तो त्याग, दया व प्रेम को अच्छा माना गया है।

दो०- अहिंसा मूल सब पंथ हय समझै सोइ ग्यानी होय ।
पंथ नाम बिरथा लरहिं नहिं प्रिय मोहि सोय ॥ १६१ ॥

व्याख्या - सभी पंथों का मूल अहिंसा ही होता है, इसे ज्ञानी लोग ही समझ पाते हैं। पंथों के नाम पर जो लोग व्यर्थ में लड़ते हैं, वे मुझे प्रिय नहीं होते हैं।

मैं ही अल्लाह ईश कहाउँ। मैं ही रामादि नाना नाम धराउँ ॥
भल काज प्रिय लागहि मोहि। हिन्दू मुस्लिम नहिं कोहि ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं ही अल्लाह व ईश्वर कहलाता हूँ और मेरे ही राम आदि बहुत से नाम हैं। अच्छा कार्य ही मुझे प्रिय होता है। इसलिए हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेद नहीं होता है।

एक बीज सब जीव उपजाई। काह हिन्दू मुस्लिम ईसाई ॥
करहि भेद तेहि जन अति मूढ़ा। जानहि नहिं मोर मरम गूढ़ा ॥

व्याख्या - एक ही बीज से सब पैदा होते हैं, तब क्या हिन्दू-मुसलमान व ईसाई का भेद हो सकता है ? जो लोग भेद करते हैं, वे मूर्ख एक बीज से पैदा होने वाले मेरे रहस्य को नहीं जानते हैं।

सुत छाडहु अब मन ग्लानी। मोर सन्तान जानि सब प्रानी ॥
बालक वृद्ध अरु नारी अबला। सकल पदी चराचर सबला ॥

व्याख्या - इसलिए वत्स, अब सब ग्लानि छोड़ दो और बालक, वृद्ध, नारी व सभी प्रजाति सहित चराचर जगत के सब प्राणियों को मेरी ही सन्तान मानो।

मोहि प्रिय सकल एक समाना। तब काह भेद हिन्दू मुस्लमाना ॥
प्रथा भेद सब मनुज बनाई। करहु विचार देखि मन माई ॥

व्याख्या - मुझे सब समान रूप से प्रिय होते हैं, तब हिन्दू-मुसलमान का क्या भेद है ? प्रथा व परम्पराओं का भेद तो मनुष्य ने स्वयं बनाया है। हे वत्स ! तुम मन में विचार करके देख लो ।

दो०- योनि मारग सब आवत हिन्दू होइ चाहे मुस्लमान ।
एक बीज से सब बनते हियँ समझ छाड़ि अग्यान ॥ १६२॥

व्याख्या - चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, सभी योनि मार्ग से ही बाहर आते हैं और सब एक ही बीज से पैदा होते हैं । इसलिए हे वत्स! अज्ञान छोड़ कर अपने हृदय में समझो ।

धन्य नाथ मोर भ्रम मिटाई । कहउ आत्म ज्ञान समझाई ॥
समझ सकहिं जगत निवासी । सरल विधि कहउ अविनाशी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं आपका आभारी हूँ कि आपने मेरा भ्रम मिटा दिया है। हे नाथ ! अब आत्मज्ञान समझा कर कहिए । समस्त जगत के लोग जिसे समझ सकें । इसलिए हे अविनाशी प्रभु ! सरल विधि द्वारा समझाइए ।

सुन सुत कहउँ विधि सरला । निज हियँ समझहिं कोउ बिरला ॥
अष्टावक्र भयउ मुनि ग्यानी । लियउ मोहि निज हियँ जानी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें आत्मज्ञान की सरल विधि बताता हूँ । जिसे हृदय में कोई कोई बिरला ही समझ पाता है । अष्टावक्र मुनि परमज्ञानी हुए, जिन्होंने स्वयं के हृदय में मुझ परमात्मा को जान लिया था ।

करि ग्यान निज हियँ विचारा । शान्त बोधमय मैं प्रकृति पारा ॥
निज मन कीन्ह आचरज भारी । बिनु हेतु ठगउ मोहि संसारी ॥

व्याख्या - ज्ञान करके उन्होंने स्वयं के हृदय में विचार किया कि मैं (परमात्मा) तो बोधमय व प्रकृति से परे हूँ । तब उसे स्वयं को ही बहुत आश्चर्य हुआ कि माया बिना कारण के ही उसे ठग रही है ।

देह सम प्रकाशउँ जग सारा । सो सकल जगत मोर प्रसारा ॥
मैं मोर तोर नहिं किछु भेदा । चिन्हहिं निज मिटै सब खेदा ॥

व्याख्या - शरीर के समान ही यह सारा संसार मुझसे प्रकाशित हो रहा है । इसलिए यह समस्त जगत मेरा ही प्रसार मात्र है । मैं, मेरा और तेरा कुछ भी अन्तर नहीं है । जो स्वयं को पहचान लेता है, उसके सब कष्ट मिट जाते हैं ।

जिमि फेन बुदबुद अरु तरंगा । जल ही जल सब एक अभंगा ॥
तेसउ इहँ सकल संसारा । सर्वत्र आत्मा एक प्रकारा ॥

व्याख्या - जैसे फेन, बुलबुला और लहर सब जल से ही पैदा होते हैं और अभिन्न रहते

हैं। वैसे ही इस समस्त संसार में एक ही आत्मा व्याप्त रहती है।

संसार सकल निजहिं समाहि। जिमि ईख शक्कर रह छुपाहि ॥
भ्रम वश सब देखहिं प्रतिबिम्बा। निज हियँ घटित इहँ अचम्बा ॥

व्याख्या - यह समस्त संसार स्वयं में वैसे ही समाया हुआ रहता है, जैसे गन्ने में शक्कर समाई हुई रहती है। भ्रम के कारण सब नाना प्रकार के दृश्य देखते हैं। जबकि आश्चर्य है कि यह सब स्वयं के हृदय में ही घटित होता है।

दो०- जब लगि आत्म ग्यान नहिं तब लगि ब्यापै संसार।
निज हियँ जब ग्यान प्रगटै लगहि जीव सब इकसार ॥ १६३॥

व्याख्या - जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं हो पाता है, तब तक ही यह संसार आभासित होता है और जब हृदय में आत्मज्ञान प्रकट हो जाता है, तब सब जीव एक समान लगने लग जाते हैं।

निज प्रकाश प्रकाशित संसारा। इहँ सत्य अष्टावक्र पुकारा ॥
अग्यता वश चाँदी सीप लगाई। जिमि रश्मि जल चिलकाई ॥

व्याख्या - यह संसार स्वयं के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। यह सत्य है, जो अष्टावक्र ने कहा है। अज्ञान के कारण सीप में चाँदी का आभास होने लगता है, जैसे सूर्य की किरणों में जल लगने लगता है।

जल लहर जल ही समावई। तैसउ जीव आइ मोहि मिलावई ॥
आचरज मोहि भा अति भारी। बाहिर भीतर मैं ही इकसारी ॥

व्याख्या - जैसे जल की लहर आकर जल में ही मिल जाती है, वैसे ही जीव मुझ परमात्मा में आकर मिल जाता है। मुझे आश्चर्य है कि मैं ही सभी जीवों में बाहर और भीतर एक समान हूँ।

सकल चराचर होइ विनाशा। तबहुँ रहउँ अनन्त आकाशा ॥
मैं नित्य अविनाशी सुभाउ। मोर नमन सोहि मैं ही पाउ ॥

व्याख्या - समस्त चराचर जगत का विनाश होने पर भी मैं अनन्त आकाश में रहता हूँ। मेरा नित्य अविनाशी स्वभाव है और मेरा नमस्कार मैं ही प्राप्त करता हूँ।

मैं व्यापक सकल संसारा। अक्षुण्ण ब्रह्म सब घट प्रसारा ॥
सकल जगत मैं रहउँ धारी। इहँ बिलोकि मोहि अचरज भारी ॥

व्याख्या - मैं समस्त संसार में व्याप्त हूँ तथा अक्षुण्ण ब्रह्म बन कर समस्त जीवों में व्याप्त हूँ। मैं ही समस्त संसार को धारण करने वाला हूँ। यह देख कर मुझे भी बहुत आश्चर्य है।

दो०- मैं ही मोहि नमन करूँ मैं ही करूँ सकल व्यवहार।
मैं ही अक्षुण्ण पारब्रह्म मैं हूँ सब जगत करतार ॥ १६४ ॥

व्याख्या - मैं ही मुझे नमस्कार करता हूँ तथा संसार के समस्त व्यवहार भी मैं ही करता हूँ और मैं ही अक्षुण्ण ब्रह्म हूँ तथा समस्त जगत का कर्ता भी मैं ही हूँ।

ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता भव बन्धन। विगत विकार आत्मा निरंजन ॥
द्वैत भाव सोइ दुःख मूलम्। परम पावन चेतन एकम ॥

व्याख्या - ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय का भाव भी बन्धनकारी है। क्योंकि विकार मिट जाने पर तो आत्मा ही निरंजन हो जाती है। द्वैतभाव ही दुःख का मूल कारण होता है। क्योंकि चेतन आत्मा तो एक व परम पवित्र होती है।

अग्यान हेतु नाना उपाधि मोरी। निर्विकल्प अवस्था सत कोरी ॥
न बंधन न मोच्छ सुहाई। सकल जगत मोते रह समाई ॥

व्याख्या - अज्ञान के कारण ही मेरी नाना उपाधियाँ होती हैं। वास्तव में तो मेरी सत अवस्था निर्विकल्प होती है। न कोई बन्धन होता है और न कोई मोक्ष ही होता है। क्योंकि समस्त जगत तो मुझ में ही समाहित रहता है।

आत्मा सदा कल्पनातीता। देहादि जगत सब मिथ्या प्रीता ॥
स्वर्ग नरक बन्ध शरीरा। निवृत्ति प्रवृत्ति कल्पना धीरा ॥

व्याख्या - आत्मा तो सदा कल्पनातीत है और संसार में शरीर आदि का मोह मिथ्या है। स्वर्ग और नरक तो शरीर के बन्धन हैं तथा निवृत्ति व प्रवृत्ति सब कल्पनाएँ हैं।

सकल जगत अद्वैत सुहाई। आत्म ग्यानी सब एक दिखाई ॥
राग द्वेष सम्भव नहिं भाई। निज निजहिं भया मन मगनाई ॥

व्याख्या - समस्त संसार अद्वैत है तथा आत्मज्ञानी को एक ही दिखाई देता है। इसलिए वहाँ राग-द्वेष सम्भव ही नहीं है। क्योंकि मन तो स्वयं में ही मग्न हो जाता है।

दो०- आत्मा देह अरु जीव नहिं कामादि तहँ नहिं किछु भाव ।
एक रस चैतन्य सदा अजर अमर नहिं भाव अभाव ॥ १६५ ॥

व्याख्या - आत्मा शरीर और जीव नहीं होती है तथा आत्मा में काम आदि भाव भी नहीं होते हैं। वह तो सदा चेतन व एकरस रहती है। आत्मा तो अजर-अमर होती है, जिसमें भाव-अभाव कुछ भी नहीं होता है।

आत्मा सोइ महा समुद्र सुहाई। चित्त बात तहँ लहर उठाई ॥
सीमा रहित भव सिंधु विशाला। जीव बणिक फँसहि जंजाला ॥

व्याख्या - आत्मा ही महासमुद्र होती है। जिसमें चित्त रूपी हवा से लहरें उठती रहती हैं। आ त्मा ही सीमा रहित विशाल भव सिंधु होती है। जिसमें जीव

रूपी व्यवसायी फँस जाता है ।

अपार सिन्धु उठहिं तरंगा । अचरज आ त्मा एक अभंगा ॥
तरंग तरंग करहिं लड़ाई । बिरथा जीव रहइ अकुलाई ॥

व्याख्या - इस अपार भवसागर में तरंगे उठती रहती हैं । परन्तु आश्चर्य की बात है कि आत्मा एक अभिन्न रहती है । भाव रूपी तरंगें आपस में टकराती रहती हैं और जीव व्यर्थ में ही व्याकुल होता रहता है ।

आत्मा एकहि सदा अविनासी । तब काहे मोहादि गल फाँसी ॥
बिनु अज्ञान भ्रम नहिं भाई । बिनु भ्रम नहिं विषय सुहाई ॥

व्याख्या - आत्मा तो सदा एक व अविनाशी रहती है, फिर मोह आदि बन्धन क्यों लगाये जायें ? बिना अज्ञान के भ्रम पैदा नहीं हो पाता है और बिना भ्रम के विषयों की वासना नहीं हो पाती है ।

आत्मा सूत बुनहिं सब संसारा । बिरथा फिरहि जीव मारा मारा ।
निर्मल चेतन आत्मा जानइ जेहि । विषय रस मोहहिं नहिं तेहि ॥

व्याख्या - समस्त संसार आत्मा रूपी धागे से बना हुआ है, फिर जीव व्यर्थ में ही मारा-मारी करता है । जो आत्मा को निर्मल व चेतन जानते हैं, वे ही विषयों के रस में नहीं पड़ते हैं ।

दो०- अचरज देखि जगत में सब मुनि जन रहे फंसाय ।
एकरस चेतन आत्मा मोह बन्धन निज रहे लगाय ॥ १६६ ॥

व्याख्या - आश्चर्य की बात है कि संसार में सभी मुनिजन फँस रहे हैं । आत्मा एकरस व चेतन है, फिर भी स्वयं ही मोह का बन्धन लगा रहे हैं ।

अद्वैत होहि भल मुक्ति पाई । अचरज काम बिकल सुहाई ॥
काम सम नहिं जग अरि दूजा । कृश काय मरणासन तौ नहिं बूझा ॥

व्याख्या - अद्वैत की धारणा करके भले ही मुक्ति प्राप्त कर लें । परन्तु आश्चर्य है कि वे भी काम से व्याकुल हो जाते हैं । काम के समान जगत में कोई दुश्मन नहीं होता है । क्योंकि कृशकाय और मरणासन्न होने पर भी यह समझ में नहीं आ पाता है।

नित्या नित्य विवेक हियँ माहिं । मोच्छ चाह सोइ भय सदाहिं ॥
सोउ अचरज करउ विचारी । काह लाभ विषय सुख बिसारी ॥

व्याख्या - नित्य-अनित्य का ज्ञान हृदय में होने पर भी अगर मोक्ष की इच्छा मन में रहती है, तो भी भय सताता रहता है । इसलिए इस आश्चर्य का विचार करके देखिए कि विषयों के सुख को छोड़ने का क्या लाभ है?

धीर वीर सदा सहज सुहाई । भोग कुभोग सब एक लगाई ॥
निन्दा स्तुति नहिं बिचलाई । धीर पुरुष इहँ लक्षण भाई ॥

व्याख्या - धैर्यवान पुरुष सदा सहज रहते हैं तथा उन्हें भोग-कुभोग सब एक समान लगते हैं । उनको निन्दा और स्तुति विचलित नहीं करती है । ये धैर्यवान लोगों के लक्षण होते हैं ।

जगत कला समझै मन माहि । ताइ नहिं भय मरण सताहि ॥
माया मात्र जानइ सब संसारा । आत्मा चेतन अमल निर्विकारा ॥

व्याख्या - जो अपने मन में जगत की कला को समझ लेते हैं, उन्हें मृत्यु का भय नहीं सताता है । संसार को माया-मात्र समझना चाहिए। क्योंकि आत्मा तो चेतन, अमल व निर्विकार होती है ।

दो०- मोच्छ इच्छाउ मन नहिं सोइ आत्म ग्यानी सुहाय ।
कथनी कथै लाभ काह जो मन इच्छा बहुत सताय ॥ १६७ ॥

व्याख्या - जिसके मन में मोक्ष की भी इच्छा नहीं होती है, वही सच्चा आत्मज्ञानी होता है । इसलिए व्यर्थ की बातें बनाने से क्या लाभ है ? अगर मन में इच्छाएँ सताती हैं ।

संग्रह त्याग न करहिं विचारा । हियँ जानि मिथ्या दृश्य संसारा ॥
अन्तः करण मिटहिं जब विकारा । सुख दुःख रहइ धीर इकसारा ॥

व्याख्या - इस दृश्य संसार को झूठा जान कर संग्रह-त्याग का विचार नहीं करना चाहिए । जब अन्तःकरण के विकार मिट जाते हैं, तब धैर्यवान पुरुष सुख-दुःख में एक समान रहता है ।

पाप पुण्य ब्यापहिं नहिं ताहि । आत्म ग्यान तिन हियँ बसाहि ॥
जानइ जगत आत्म समाना । तेहि नहिं बँधहि विधि विधाना ॥

व्याख्या - जिनके हृदय में आत्मज्ञान हो जाता है, उनको पाप-पुण्य नहीं व्यापते हैं। जो संसार को आत्मरूप जानते हैं, उनको विधि का विधान नहीं बाँध पाता है ।

कोउ कोउ जानइ आत्म सरूपा । करहिं कर्म सहज निरूपा ॥
इच्छा अनिच्छा सब घट माहि । नहिं कोउ जीता जेहि जग आहि ॥

व्याख्या - कोई-कोई ही आत्मा के स्वरूप को जान पाते हैं और वे ही सहज कर्म कर पाते हैं । इच्छा-अनिच्छा के भाव सब के मन में होते हैं तथा संसार में रह कर इनको कोई नहीं जीत पाता है ।

आत्मा निसंग विशुद्ध रूपा । जानहिं इहँ परइ न भव कूपा ॥
त्यागहिं जेहि देह अभिमाना । पावहिं ते जनु मोच्छ स्थाना ॥

व्याख्या - आत्मा तो निःसंग व विशुद्ध रूप में रहती है। इसलिए जो आत्मतत्व को जान लेते हैं, वे भाव रूपी भव-कूप में नहीं पड़ते हैं। जो देह अभिमान का त्याग कर देते हैं, वे ही मोक्ष की अवस्था को प्राप्त करते हैं।

दो०- आत्म तत्व समुद्र सम जीव हय बुल बुल समान ।
जेहि जानइ मरम इहँ ते पावहहिं पद निर्वाण ॥ १६८ ॥

व्याख्या - आत्म-तत्व समुद्र की भाँति होता है तथा जीव बुलबुले के समान होता है। इसलिए जो इस रहस्य को जानते हैं, वे ही मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

रजु अहि सम दिखत संसारा। आत्मा एक रस निर विकारा ॥
जीवन मरण आस निराशा। सुख दुःख सब जीव अभ्यासा ॥

व्याख्या - रस्सी में सर्प की तरह यह संसार दिखाई पड़ता है। आत्मा तो एकरस व निर्विकार होती है। जन्म-मरण, आशा-निराशा, सुख-दुःख ये सब जीव को अभ्यास के कारण अनुभूति होती है।

होवइ ग्यान भ्रम मिट जाई। सकल जगत आत्मा लगाई ॥
आत्मा सम आकाश अनन्ता। जीव कुम्भ जग नीर भरन्ता ॥

व्याख्या - जब ज्ञान हो जाता है, तब भ्रम मिट जाता है तथा समस्त संसार एक आत्मा की तरह लगने लगता है। आत्मा तो अनन्त आकाश की तरह है तथा जीव रूपी घड़े में जगत रूपी जल भरा हुआ है।

संग्रह त्याग उभय न सुहाई। मोच्छादि इच्छा मन कल्पाई ॥
आत्मा समुद्र संसार तरंगा। लय न विलग सदाई अभंगा ॥

व्याख्या - संग्रह-त्याग दोनों ही सत्य नहीं हैं तथा मोक्ष आदि की इच्छाएँ भी मन की कल्पना मात्र हैं। आत्मा समुद्र के समान है तथा संसार उसमें उठने वाली लहरों के समान है। आत्मा न तो लय ही है और न अलग ही है तथा वह तो सदा अभिन्न रहती है।

आत्मा सीप जग रजत समाना। संग्रह त्याग सो कल्पना नाना ।
आत्म सूत जगत पिरोई। अलग विलग नहिं सोउ कोई ॥

व्याख्या - आत्मा सीप के समान है तथा यह संसार आत्मा रूपी सीप में चाँदी के समान आभासित हो रहा है। संग्रह-त्याग ये सब मन की कल्पनाएँ हैं। आत्मा रूपी धागे में सारा संसार पिरोया हुआ है। इसलिए कोई भी अलग नहीं है।

दो०- आत्म समुद्र जग तरणी प्रकृति वात ताइ चलाय ।
जीव भाव चप्पू भए इच्छा भँवर डग मगाय ॥ १६९ ॥

व्याख्या - आत्मा समुद्र की तरह है तथा संसार नौका की तरह है। जिसे प्रकृति

रूपी हवा संचालित करती है और जीव के भाव रूपी चप्पू होते हैं, जो इच्छा रूपी भँवरों में पड़ कर डगमगाने लग जाती है ।

आत्म समुद्र कल्पना संसारा । उठहिं लहर तहँ अपारा ॥
शांत निराकार आत्मा हय भाई । हानि न लाभ कल्पना उठाई ॥

व्याख्या - आत्मा रूपी समुद्र और कल्पना रूपी संसार है । जिसमें अपार लहरें उठती रहती हैं । आत्म-तत्व तो शांत व निराकार है । इसलिए लहरें उठने से हानि व लाभ कुछ भी नहीं है ।

आत्मा चेतन जग इन्द्र जाला । अग्यता हेतु भा जीव बेहाला ॥
हेय गेय तब तब मन करहिं । सुख दुख तब बन्ध परहिं ॥

व्याख्या - आत्मा चेतन होती है और संसार इन्द्रियों का जाल होता है। जिसमें अज्ञानता के कारण जीव बेहाल होकर फँसा हुआ रहता है । जब तक संग्रह और त्याग की इच्छा रहती है, तब तक सुख-दुःख का बन्धन होता है ।

विगत कामना मोच्छ सुहाई । सुख दुःख शोकादि किछु नाई ॥
विषय रस सोइ बन्धन भाई । विषय बिरत मोच्छ सुहाई ॥

व्याख्या - कामनाओं का मिट जाना ही मोक्ष है । जहाँ पर सुख व दुःख का कोई शोक नहीं होता है । विषयों में रस आना ही बन्धन होता है तथा विषयों से वैराग्य ही मोक्ष कहलाता है ।

जब लगि रहइ अहम आभासा । तब लगि जानि बन्धन पासा ॥
मिटहि अहम् मोच्छ ततकाला । होवहिं सहज जीव निहाला ॥

व्याख्या - जब तक अहंकार का आभास रहता है, तब तक बन्धन जानना चाहिए और जिस क्षण अहम् भाव मिट जाता है, उसी क्षण जीव सहज होकर निहाल हो जाता है ।

दो०- कृत अकृत द्वन्द कर्म कबहुँ न शान्त सुहाय ।
इहँ जानि ग्यानी जन उदासीन जग रहाय ॥ १७० ॥

व्याख्या - कर्म करने और न करने का द्वन्द कभी भी शान्त नहीं होता है । इसलिए ज्ञानी लोग इस रहस्य को जान कर उदासीन होकर रहते हैं ।

पालन प्रलय जग व्यवहारा । देखि बिरला होइ निर विकारा ॥
जेहि जानहि तापत्रयमय संसारा । होवइ शान्त जानि निस्सारा ॥

व्याख्या - पालन और प्रलय जगत के व्यवहार हैं, इसे देख कर कोई विरला ही निर्विकारी हो पाता है । जो इस संसार को त्रिताप युक्त जानते हैं, वे इसे सारहीन जान कर शान्त हो जाते हैं ।

निमिष न रहइ जीव निर्द्वन्दा । बिगत द्वन्द परम आनन्दा ॥
कोउ बिरला पावइ इहँ ग्याना । यथा प्राप्य रहहिं मस्ताना ॥

व्याख्या - क्षणभर के लिए भी जीव निर्द्वन्द नहीं रह पाता है । निर्द्वन्द की अवस्था ही परम आनन्द की अवस्था होती है । कोई विरला ही इस ज्ञान को प्राप्त कर पाता है, जो यथा प्राप्य अवस्था में भी मस्त रहता है ।

नाना मत उदासीन सुहाई । तेहि जनु शान्ति परम पाई ॥
समता बिराग तरणी बनाई । तरहि भव सिंधु गुरु कहाई ॥

व्याख्या - जो नाना पंथ-मतों के प्रति उदासीन बने रहते हैं, वे ही परम शान्ति को प्राप्त करते हैं । जो समता व वैराग्य रूपी नौका बना लेते हैं, वे भाव रूपी भव सागर को पार कर लेते हैं और जग में गुरु कहलाते हैं ।

देह अरु इन्द्रीय मानि विकारा । होइ स्थित आत्मा निराकारा ॥
सोइ होइ जीव आत्म ग्यानी । सब जगत एक तत्व जानी ॥

व्याख्या - जो शरीर और इन्द्रियों को विकार युक्त मान कर निराकार आत्मा में स्थित हो जाते हैं, वे ही आत्म ज्ञान को प्राप्त करते हैं तथा समस्त संसार में एक ही आत्म-तत्व को जान लेते हैं ।

दो०- वासना सोइ संसार हय अरु नहिं कोउ जग मूल ।
जेहि जनु वासना तजै तिन्ह मिटै ताप त्रयशूल ॥ १७१ ॥

व्याख्या - वासना ही संसार का मूल होती है । इसके अलावा और दूसरा कोई मूल नहीं होता है । इसलिए जो वासना का त्याग कर देते हैं, उनके त्रितापों का नाश हो जाता है ।

धरम अरथ काम सबारी । करि त्याग रहइ निर विकारी ॥
धन धाम मित सब परिवारी । जानहिं जगत नश्वर सारी ॥

व्याख्या - धर्म, अर्थ व काम सबको छोड़ कर निर्विकार रहना चाहिये तथा धन, गृह, मित्र व परिवार को संसार में नश्वर जानना चाहिए।

जहँ तृष्णा तहँ तहँ संसारा । प्रबल बिराग सो सुख आधारा ॥
तृष्णा सोई जीव बन्धन भाई । विगत तृष्णा मोच्छ कहाई ॥

व्याख्या - जहाँ तक तृष्णा रहती है, वहीं तक संसार रहता है । इसलिए प्रबल वैराग्य ही सुख का आधार होता है । तृष्णा ही जीव का बन्धन होती है तथा तृष्णा का मिट जाना ही मोक्ष कहलाता है ।

आत्मा चेतन जड़ संसारा । जानि इहँ होउ निर विकारा ॥
सुत सुता धन धाम परिवारा । सुख चाह सो आसक्ति अपारा ॥

व्याख्या - आत्मा को चेतन और संसार को जड़ मान कर निर्विकार हो जाइए। पुत्र-पुत्रियाँ, धन, घर-परिवार में सुख की इच्छा के कारण आसक्ति होती है।

जद्यपि सकल नश्वर सुभावा। बिरथा जन्म जन्म दुख पावा॥
धर्म अर्थ काम कीन्ह बहु करमा। तबहु न मिलइ शान्ति परमा॥

व्याख्या - हालांकि इन सब (घर-परिवार आदि) का स्वभाव नश्वर है, फिर भी जन्म-जन्म से दुःख का कारण बनते रहते हैं। धर्म, अर्थ, काम आदि के लिए बहुत कर्म करने पर भी परम शान्ति नहीं मिल पाती है।

दो०- बहु जन्म बहु कर्म किए तबउ न होवहिं उपराम।
मन तृष्णा मिटै नहिं तब काहे पाव विश्राम॥ १७२॥

व्याख्या - बहुत जन्मों तक बहुत से कर्म करते रहने पर भी मुक्ति नहीं मिल पाती है। क्योंकि जब तक मन में तृष्णा रहती है, तब तक विश्राम मिल ही नहीं सकता है।

भाव अभाव सब सहज सुभाउ। जानि इहँ मन शान्ति पाउ॥
मैं ही करता सकल संसारा। करहिं भरोस होइ निस्तारा॥

व्याख्या - भाव-अभाव सब को सहज जानने से मन को शान्ति मिल जाती है। मैं परमात्मा ही संसार में सब कुछ करने वाला हूँ, इस बात का विश्वास करने पर मुक्ति मिल जाती है।

मोहि छाड़ि नहिं जग दूसर कोई। करै विश्वास मुक्त वो होई।
आपद विपद सब देव योगा। रहहिं निरासक्त भोग कुभोगा॥

व्याख्या - मुझे छोड़ कर संसार में दूसरा कोई नहीं है, इस बात का विश्वास करने पर मुक्ति मिल जाती है। आपत्ति-विपत्ति सब देव योग से होती हैं। यह सोच कर भोग-कुभोग में निरासक्त रहना चाहिए।

तेहि जनु मुक्त जानउ भाई। मोर कृपा करहिं भरोस सदाई॥
जन्म मरण मिलन बियोगा। सुख दुःख सब होइ देव योगा॥

व्याख्या - उन्हीं लोगों को मुक्त जानना चाहिए, जो मुझ पर पूरा भरोसा करते हैं। मेरी कृपा से ही कोई कोई विश्वास कर पाता है कि जन्म-मरण, मिलन-वियोग, सुख-दुःख सब देव योग से ही होते हैं।

करइ करम सब निरायासा। सोइ जीव पाइ मुक्ति सुपासा॥
चिन्ता जग दुःख कारण भाई। बिनु कामना चिन्ता न सताई॥

व्याख्या - जो सहज होकर सब कर्म करते हैं, उन्हीं को मुक्ति सुलभ हो पाती है। चिन्ता ही संसार में दुःख का कारण होती है और बिना कामना के चिन्ता नहीं हो पाती है।

दो०- चिन्ता मरम जानि करि ज्ञानी कामना सकल तजाय ।
सहज करम नित्य करै तिन्ह नहिं कर्म बन्ध पड़ाय ॥ १७३ ॥

व्याख्या - चिन्ता के रहस्य को जान कर ज्ञानी लोग कामनाओं का त्याग कर देते हैं और नित्य सहज कर्म करते रहते हैं। जिससे उन्हें कर्म का बन्धन नहीं होता है।

भूत भविष्य चिन्ता न सताई। देह गेह कबहुँ न मन लगाई ॥
अचरज युक्त सकल संसारा। मिथ्या भ्रम जानई मन विचारा ॥

व्याख्या - ऐसे लोग भविष्य की चिन्ता में नहीं पड़ते हैं और वे शरीर और घर आदि में मन नहीं लगाते हैं। यह समस्त संसार आश्चर्य चकित करने वाला है। इसलिए इसे मिथ्या भ्रम समझने का मन में विचार करना चाहिए।

सोइ जानि कैवल्य पद धारी । प्राप्य अप्राप्य सदा इकसारी ॥
कृत अकृत मनन न करहिं । तेइ नर जग मुक्त रहहिं ॥

व्याख्या - जो प्राप्त-अप्राप्त मैं सदा एक समान रहते हैं, उन्हीं को कैवल्य प्राप्त समझना चाहिए। जो लोग कर्म-अकर्म का विचार ही नहीं करते हैं, वे तो मुक्त ही रहते हैं।

त्यागहिं कर्म शुभाशुभ सारे। ते नर सकल मुक्त पुकारे ॥
प्रथम त्यागहिं करम देहा। पुनि छाड़हिं वाणी आदि नेहा ॥

व्याख्या - जो शुभ-अशुभ सब कर्मो का त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य मुक्त ही कहलाते हैं। इसलिए पहले देह से होने वाले कर्मो का त्याग कर दें और फिर वाणी आदि से होने वाले कर्मो के मोह का त्याग कर दें।

पुनि करहिं चिन्तन त्यागा। तेहि जनु जानहु जग जागा ॥
सकल त्याग आत्मा समाई। ते नर स्वरूप चिन्हहिं भाई ॥

व्याख्या - फिर कर्म के चिन्तन का भी त्याग कर दें। ऐसे मनुष्यों को संसार में जागा हुआ जानना चाहिये। जो सबका त्याग करके आत्मरत हो जाते हैं, वे स्वरूप को पहचान लेते हैं।

दो०- विषय तजि निरासक्त भया चित्त नहिं चंचल होय ।
शब्द रूप रस गन्धादि विरत मुक्त हय नर सोय ॥ १७४ ॥

व्याख्या - जो विषयों का त्याग करके निरासक्त हो गया है, उसका चित्त स्थिर हो जाता है और वह शब्द, रूप, रस, गन्ध व स्पर्श में निर्लिप्त हो जाता है, तो वह मनुष्य मुक्त ही होता है।

सोवत जागत एक समाना। सोइ पुरुष मुक्त जग जाना ॥
चित्त सहजहि शून्य समाई। निज गुण प्रकृति रहइ बरताई ॥

व्याख्या - जो सोते हुए व जागे हुए एक जैसा ही रहता है, उसे मुक्त जानना चाहिए। जिसका चित्त शून्य में समा गया है, उसके लिए प्रकृति गुणों में बरतती रहती है ।

विगत वासना सकल संसारी । तब कोह रिपु मित जग हमारी ॥
ग्यान विग्यान शास्त्र काह लाभा । निजहिं प्रकाशित निज आभा ॥

व्याख्या - जब संसार की सभी वासनाएँ मिट जाती हैं, तब कोई मित्र व दुश्मन नहीं रहता है । ज्ञान-विज्ञान का तब क्या लाभ है ? क्योंकि उस अवस्था में स्वयं ही स्वयं को प्रकाशित करने लगता है ।

मोच्छ इच्छाउ रह न मन माहिं । तब जानउ जीव मुक्ति पाहिं ॥
विकल्प रहित पुरुष सुहाहिं । बन्धन ताइ सकइ कि बधाँहिं ॥

व्याख्या - जब मन में मोक्ष की इच्छा भी नहीं रहती है, तब मुक्ति मानना चाहिए। विकल्प मुक्त पुरुष को कभी बन्धन नहीं बाँध सकते हैं ।

आत्म ग्यान सम नहिं ग्याना । निज अनुभव सकै निज जाना ॥
निर्मल मति सुनि आत्म ग्याना । नसहहिं तुरत मोहादि नाना ॥

व्याख्या - आत्म ज्ञान के समान कोई ज्ञान नहीं होता है । जिसे स्वयं ही अनुभव करके स्वयं ही जान सकते हैं । निर्मल बुद्धि से आत्म ज्ञान को सुनने से भी मोह आदि विकारों का तुरन्त नाश हो जाता है ।

दो०- विषय रस बंधन दायक निरस विषय मुक्ति दिलाय ।
निज घट निज समझहिं दूसर कहे भूल बताय ॥ १७५ ॥

व्याख्या - विषय रस से बन्धन होता है और विषयों में नीरस होना ही मुक्ति दिलाता है । इसको स्वयं ही स्वयं के हृदय में समझ सकते हैं । क्योंकि दूसरों द्वारा बताने पर भूल हो जाती है ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण षष्ठदशम पड़ाव ॥

दो०- जिन मन चाह भोग अति तिन हेतु नहिं आत्म बोध ।
बाचाल मूक कर्मठ आलसी बनहिं करि तत्व शोध ॥ १७६॥

व्याख्या - जिनके मन में भोगों की इच्छा होती है, उनके लिए आत्म बोध नहीं होता है । क्योंकि आत्म ज्ञान वाचाल को मूक और कर्मठ को आलसी बना देता है ।

राग द्वेष सकल मन धरमा । आत्मा निर विकार अति परमा ॥
आत्म माल्य सकल जीव पिरोई । तजहि अहम् मदादि सुखी सोई ॥

व्याख्या - राग-द्वेष सब तो मन के धर्म हैं । आत्मा तो निर्विकार व परम होती है । आत्मा रूपी माला में सब जीव गुंथे हुए हैं । इसलिए जो अहम, मद आदि

को त्याग देते हैं, वे सुखी हो जाते हैं ।

आत्मा सोई हय मोर सरूपा । प्रकृति भिन्न अद्वितीय अनूपा ॥
गुण जुक्त रहइ जीव शरीरा । आत्मा एकरस सुन मति धीरा ॥

व्याख्या - आत्मा ही मेरा स्वरूप है तथा प्रकृति मुझसे भिन्न होती है। जीव शरीर में गुणों से युक्त रहता है तथा आत्मा तो सदा एकरस रहती है ।

नश्वर हय शरीर सुभाउ । जानत इहँ जगत सब काउ ॥
आत्मा अजर अमर अविनाशी । जन्म कर्म वासना अभिलाषी ॥

व्याख्या - शरीर का स्वभाव तो नश्वर होता है । इसको संसार में सब कोई जानते हैं । आत्मा तो अजर, अमर व अविनाशी होती है । जन्म का कारण, तो कर्म की वासना की इच्छा होती है ।

दो०- अग्यान हेतु संसार सब परमार्थ भए सब एक ।
निज जानि स्थिर रहे तिन्ह हियँ सच्चा विवेक ॥ १७७ ॥

व्याख्या - अज्ञान के कारण संसार का आभास होता है और परमार्थ में सब एक ही लगता है । इसलिए स्वयं को जान कर जो स्थिर रहते हैं, उनके हृदय में सच्चा ज्ञान जानिए ।

समाधि आदि सब बन्धनकारी । भ्रम मिथ्या ज्ञान कल्पना सारी ॥
हर्ष बिषाद संग्रह त्यागा । बंधहहि जीव अग्य अभागा ॥

व्याख्या - समाधि आदि सब बन्धन के कारण हैं तथा ज्ञान की कल्पना भी भ्रम ही होती है । अज्ञानी जीव हर्ष, विषाद, संग्रह व त्याग के बन्धन में पड़ जाता है ।

सकल तजहि ग्यानी विचारी । स्थिर प्रज्ञ बनहिं आत्माचारी ॥
पूजा जप तप यज्ञादि भजना । सकल बन्धन आत्मा अपना ॥

व्याख्या - इसलिए ज्ञानी विचार कर सबका त्याग कर देते हैं और स्थिरप्रज्ञ होकर आत्मा में रमण करते हैं । पूजा, जप, तप, यज्ञ व भजन आदि सब आत्मा के बन्धन हैं ।

निज जानि निजहहिं समावहिं । तेहि जन आत्म प्रज्ञ कहावहिं ॥
कर्म आरम्भ हेतु अग्याना । तेसउ जानि त्याग अनुष्ठाना ॥

व्याख्या - जो स्वयं को जान कर स्वयं में ही लीन हो जाते हैं, वे ही आत्मप्रज्ञ कहलाते हैं । कर्म का आरम्भ जैसे अज्ञान के कारण होता है, वैसे ही त्याग आदि भी अज्ञान के कारण ही होता है ।

कर्म अकर्म जानहिं जेहि मरमा । तेहि स्व स्थित ग्यानी धरमा ॥
अचिंत्य ब्रह्म चिंतन जाई । चिंतहि जेहि सोइ चिंता कराई ॥

व्याख्या - कर्म-अकर्म के रहस्य को जो लोग जानते हैं, वे ही ज्ञानी लोग धर्म में स्थित होते हैं। जो ब्रह्म अचिंत्य है, उसका चिंतन नहीं किया जा सकता है। इसलिए जो ब्रह्म का चिंतन करते हैं, वे भी चिन्ता ही करते हैं।

दो०- अचिंत्य ब्रह्म अनुभूति विषय रंग रूप नहिं किछु आकार।
जगत बनि जगत समाया ज्ञानी निज हियँ करहिं विचार॥ १७८॥

व्याख्या - अचिंत्य ब्रह्म तो अनुभूति का विषय है। क्योंकि उसके कोई रंग, रूप व आकार नहीं होता है। वह तो जगत बन कर जगत में ही समाया हुआ है। जिसका ज्ञानी लोग स्वयं के हृदय में ही विचार करते हैं।

नाना भाँति सुनउ वेद पुराणा। बिनु अनुभव मिटहिं न अग्याना॥
वासना सोइ बीज वट संसारा। अंकुरहिं बनि भोग नाना प्रकारा॥

व्याख्या - वेद-पुराण आदि को सुनने से भी बिना अनुभूति के अज्ञान नहीं मिट पाता है। वासना ही संसार रूपी वृक्ष का बीज होती है, जो नाना प्रकार के भोगों के रूपों में अंकुरित होती है।

प्रवृत्ति राग निवृत्ति द्वेषा। उभय मुक्त धीर जन हमेशा॥
मोच्छ करहिं जेहि अभिमाना। ते जड़ पुरुष जानि अग्याना॥

व्याख्या - प्रवृत्ति से राग और निवृत्ति से द्वेष होता है, इसलिए धीर पुरुष इन दोनों से ही मुक्त होते हैं। जो मोक्ष का अभिमान करते हैं, वे पुरुष मूर्ख और अज्ञानी होते हैं।

मुक्ति नहिं रहहिं आकाशा। निज घट इहँ होइ सुपासा॥
आत्मा सोइ गुरु अरु चेला। परम सत्य हंस अकेला॥

व्याख्या - मुक्ति कोई आकाश में नहीं रहती है, इसे तो स्वयं के हृदय में ही प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा ही गुरु और आत्मा ही चेला होती है। सत्य तो यह है कि हंस (आत्मा) अकेला ही है।

निज मन निज मन लगाई। तेहि जनु ग्यान आत्मा पाई॥
तृप्त मन सोइ मुक्ति आधारा। जप तपादि नहिं किछु सहारा॥

व्याख्या - जो स्वयं के मन को स्वयं के मन में ही लगाते हैं, उनको ही आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। मन की सन्तुष्टि ही मुक्ति का आधार होती है, वहाँ जप, तप आदि का कोई सहारा नहीं होता है।

दो०- आत्म ज्ञानी सुखी सदा सकल ब्रह्माण्ड आत्मा जानि।
सहज कर्म सब करै नहिं किछु लाभ न हानि॥ १७९॥

व्याख्या - सकल ब्रह्माण्ड को एक आत्मा जानकर आत्मज्ञानी पुरुष सदा सुखी

रहते हैं तथा सहज कर्म करते रहते हैं । जिससे हानि व लाभ कुछ नहीं होता।

पूजा जप तप योगादि ध्याना । कृतार्थ स्वरूप ऐ साधन नाना ॥
स्वभाव तेहि जो कृतार्थ सुहाई । तिन्ह महिमा कहहि न जाई ॥

व्याख्या - पूजा, जप, तप, योग व ध्यान आदि कृतार्थ स्वरूप को प्राप्त करने के नाना साधन हैं । परन्तु जो सहज में ही कृतार्थ हैं, उनकी महिमा को कौन बता सकता है?

नहिं किछु जग इहँ विचारी । दुर्लभ इहँ जोगी कोपिन धारी ॥
सब तजि आत्मानन्द समाई । इहँ पुरुषार्थ ग्यानी सुहाई ॥

व्याख्या - संसार में कुछ भी नहीं है, यह विचार कोपिनधारी योगियों को भी दुर्लभ होता है । सब कुछ छोड़ कर आत्मा के आनन्द में समा जाना ही ज्ञानियों का पुरुषार्थ होता है ।

आत्मा द्रष्टा नहिं कर्ता भाई । इहँ जानहि काहे बंध सुहाई ॥
बहु दुःख मन वचन अरु देहा । करहि न ग्यानी इनते नेहा ॥

व्याख्या - आत्मा द्रष्टा है, वह कर्ता नहीं है । अतः जो लोग यह जान लेते हैं, तब उनको कैसे बन्धन हो सकता है ? मन, वाणी और शरीर के बहुत दुःख होते हैं । इसलिए ज्ञानी लोग इनसे मोह नहीं करते हैं।

संयोग वियोग लच्छन देहा । सोही जोगी भूल न करहिं नेहा ॥
चलत फिरत सोवत जागा । जोगी नहीं अर्थ अनर्थ हानि लाभा ॥

व्याख्या - संयोग-वियोग तो शरीर के लक्षण हैं । इसलिए योगी लोग भूल कर भी शरीर से स्नेह नहीं करते हैं । चलते-फिरते, सोते-जागते, योगियों के लिए अर्थ, अनर्थ, हानि व लाभ कुछ भी नहीं होता है ।

दो०- हानि लाभ सकल तजि ज्ञानी निजात्मा रमाय ।
कर्मादि बन्धन व्यापै नहिं सहज होइ जीवन बिताय ॥ १८० ॥

व्याख्या - ज्ञानी पुरुष हानि-लाभ सबको छोड़ कर स्वयं की आत्मा में ही रमण करते हैं । इसलिए उन्हें कर्म का बन्धन व्यापता नहीं है और वे सहज होकर जीवन व्यतीत करते हैं ।

जिन्ह मन भोग आकांक्षा नाहिं । ते नर अति दुर्लभ जग माहिं ।
मुमुक्ष बुभुक्षु बहु जग माहिं । बिरला कोउ जे उभय न चाहिं ॥

व्याख्या - जिनके मन में भोगों की इच्छा नहीं होती है, वे लोग संसार में बहुत दुर्लभ होते हैं । भोग की इच्छा करने वाले और मोक्ष की इच्छा करने वाले संसार में बहुत लोग होते हैं । परन्तु जो दोनों की ही इच्छा नहीं करते हैं, वे लोग बहुत कम होते हैं ।

जग नश्वर करहि न विचारा। ते पुरुष धन्य चित्त उदारा ॥
पुरुष मुक्त नीरस रहइ सदाई। निन्दा स्तुति कबहुँन उरझाई ॥

व्याख्या - वे उदार चित्त पुरुष धन्य हैं, जो जगत की नश्वरता का भी विचार नहीं करते हैं। मुक्त पुरुष तो सदा विषयों में निरस रहता है तथा कभी भी निन्दा-स्तुति में नहीं पड़ता है।

प्रेमा सक्त नारी जो रहइ काछे। बिलोकि ताइ मन नहिं जाइ पाछे ॥
मृत्यु बिलोकि होहि न भयभीता। प्रेमासक्त करहि नहिं जे प्रीता ॥

व्याख्या - अगर प्रेमासक्त स्त्री भी पास में हो, तब भी मन उसके पीछे नहीं जाए और मृत्यु को देख कर भयभीत नहीं हो तथा प्रेम में आसक्ति के साथ प्रीत नहीं करे।

सोइ जानउ जीव मुक्ति पाई। एक रस होइ आत्मा रमाई ॥
समदर्शी जेहि रहहिं अभेदा। आपद विपद नहिं किछु खेदा ॥

व्याख्या - उसी जीव को मुक्त जानना चाहिए, जो एकरस होकर आत्मा में रमण करता रहता है तथा जो समदर्शी होकर भेदभाव से रहित होता है तथा आपद-विपद में दुःखी नहीं होता है।

जीवन मुक्त विषय न उरझाई। प्राप्य-अप्राप्य समान लगाई ॥
करहिं कर्म निर अहंकारा। होहहिं नहिं बन्धन संसारा ॥

व्याख्या - जीवन मुक्त विषयों में नहीं उलझता है तथा प्राप्य-अप्राप्य में समान रहता है। वह समस्त कर्म निर-अहंकार भाव से करता है। इसलिए संसार का बन्धन उसे नहीं होता है।

दो०- कर्म मोहादि बन्धन कटै मन स्वतः शान्त सुहाय।
मन जब अमनी होवहिं चेतन सोइ चेतन समाय ॥ १८१ ॥

व्याख्या - कर्म व मोह आदि के बन्धन कट जाने पर मन स्वतः शान्त हो जाता है और तब मन अमनी होकर चेतन में ही समा जाता है।

अचरज धन अर्जन सुख हेतु। बिनु त्याग सुख नहीं कोउ लेतु ॥
सकल जगत कल्पना कोरी। आत्मा सनातन इहँ मत मोरी ॥

व्याख्या - आश्चर्य की बात है कि लोग सुख के लिए धन कमाते हैं, परन्तु बिना धन के त्याग के सुख मिलता ही नहीं है। यह समस्त संसार कोरी कल्पना है। बस एक आत्मा ही सनातन है। यह मेरा मत है।

विगत संकल्प शान्ति चहुँओरा। चित थिर हिलहिं नहिं थोरा ॥
धीर पुरुष सहज व्यवहारी। जग जुक्त तउ जग ते न्यारी ॥

व्याख्या - संकल्प मिट जाने पर चारों तरफ शान्ति हो जाती है और चित एकदम स्थिर हो जाता है। धीर पुरुष सहज होकर व्यवहार करते हैं। जिससे वे संसार में रहकर भी संसार से अलग होते हैं।

देह नयन देखहिं जे संसारा। कैसे तिन संभव जग नकारा ॥
आत्म बुद्ध जेहि परम ग्यानी। सहज बिलोकि जग नहिं जानी ॥

व्याख्या - जो शरीर की आँखों से संसार को देखते हैं, वे कैसे संसार को नकार सकते हैं ? आत्म ज्ञानी ही परम ज्ञानी होता है, जो संसार को सहज देखता हुआ भी संसार को नहीं देखता है।

वासना रहित करहि करमा। तिन नहिं कोउ बन्धन धरमा ॥
संग्रह त्याग बिरत सुहाई। धीर पुरुष निज आत्मा रमाई ॥

व्याख्या - जो वासना रहित होकर कर्म करते हैं, उनको कोई बन्धन नहीं होता है। धीर पुरुष तो संग्रह-त्याग से विरत हो कर अपनी आत्मा में ही रमण करता है।

दो०- शून्य चित्त सहज रहइ करहिं न मान अमान विचार ।
कर्ता देह मानि कर निज जानहि निर्मल निराकार ॥ १८२॥

व्याख्या - शून्य चित्त सहज होता है। जो मान-अपमान का विचार नहीं करता है तथा शरीर को कर्म-कर्ता मान कर, स्वयं को निर्मल निराकार मानता है।

ग्यानी-अग्यानी करहिं करमा। मूढ़ न जानहिं इहँ मरमा ॥
गूढ़ सुनि मूढ़ बनहहिं मूढ़ा। ग्यानि सुनि आनंद लहहिं गूढ़ा ॥

व्याख्या - ज्ञानी-अज्ञानी दोनो ही कर्म करते हैं। परन्तु मूर्ख लोग कर्म के रहस्य को नहीं जान पाते हैं। कर्म के गूढ़ रहस्य को सुन कर मूर्ख तो और मूर्ख बन जाते हैं तथा ज्ञानी गूढ़ रहस्य का आनन्द लेते हैं।

चित्त निरोध करहिं मूढ़ प्रयासा। ग्यानी रहहिं सहज अभ्यासा ॥
मूढ़ न कबहुँन निवृत्ति पाई। ग्यानी रहवइ निवृत्त सदाई ॥

व्याख्या - अज्ञानी लोग चित्त निरोध का प्रयास करते हैं, परन्तु ज्ञानी तो सहज में ही चित्त को निरोध किये रहते हैं। अज्ञानी लोग कभी भी निवृत्त नहीं हो पाते हैं। जबकि ज्ञानी लोग सदा ही निवृत्त रहते हैं।

स्व जानहि सोइ निवृत्ति भाई। पर उरझहिं प्रवृत्ति सुहाई ॥
प्रपंची पावइ नहिं आत्मग्याना। ताहि बिनु सुलभ न मोक्ष सुजाना॥

व्याख्या - स्वयं को जान लेना ही निवृत्ति है और दूसरों में उलझ जाना ही प्रवृत्ति होती है। पाखण्डी कभी भी आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते हैं और बिना आत्म ज्ञान के मोक्ष सम्भव नहीं है।

अहंकारी सोइ कर्ता सदाई। विगत अहंकार कर्म न सुहाई ॥
आत्म ग्यान सोइ मोक्ष आधारा। तहँ करहिं जीव सहज व्यवहारा ॥

व्याख्या - जो अहंकारी होता है, वही कर्ता होता है और जब अहंकार नहीं होता है, तो कर्म होता ही नहीं है अर्थात तब केवल क्रिया मात्र होती है। आत्म ज्ञान ही मोक्ष का आधार होता है, जिसको प्राप्त कर जीव सहज व्यवहार करने लग जाता है।

दो०- जब लगि दृश्य अवलम्बन तब लगि नहिं आत्म ग्यान।
हठि करि चित्त निरोध करै आनन्द कैसे पाइब इन्सान ॥ १८३॥

व्याख्या - जब तक दृश्यों का अवलम्बन रहता है, तब तक आत्म ज्ञान नहीं होता है। बलपूर्वक चित्त का निरोध करने पर मनुष्य को कैसे आनन्द मिलेगा?

भाव अभाव उभय न मानहिं। तेहि जनु स्वस्थ चित्त जानहिं।
मूढ़ हेतु हय कर्त्तव्य संसारा। ग्यानी हेतु भल मन्द इकसारा ॥

व्याख्या - जो भाव-अभाव दोनों को ही नहीं मानते हैं, उन्हें ही स्वस्थ चित्त जानना चाहिए। अज्ञानी के लिए ही संसार में कर्तव्य होता है, ज्ञानी के लिए तो सब अच्छा-बुरा एक जैसा ही होता है।

कर्ता तउ ज्ञानी अकर्ता कहाई। मूढ़ अकर्ता तौ कर्ता सुहाई ॥
काह लाभ बहु कथा बखानी। भोग मोच्छ तत्वज्ञ एक समानी ॥

व्याख्या - ज्ञानी सब कुछ करता हुआ भी अकर्ता ही कहलाता है और अज्ञानी कुछ भी नहीं करने पर भी कर्ता बना रहता है। ज्यादा बातें कहने से क्या लाभ है ? ज्ञानी के लिए तो भोग व मोक्ष एक जैसे ही होते हैं।

सकल जगत भ्रम भव जाला। फँसहिं जीव होहिं तहँ बेहाला ॥
जहँ लगि बुद्धि पाइ विस्तारा। तहँ लगि जानि मायामय संसारा ॥

व्याख्या - समस्त संसार भ्रम के विचारों का जाल है। जिसमें जीव फँस कर बेहाल होता रहता है। जहाँ तक बुद्धि का विस्तार होता है, वहाँ तक मायामय संसार का विस्तार होता है।

एक रस हियँ जो रहहिं ग्याना। मिट्टी पाहन कनक समाना ॥
आत्मा रमहिं मुक्त लोगा। तजहिं सकल जप तप योगा ॥

व्याख्या - हृदय में एकरस ज्ञान रहने पर मिट्टी, पत्थर और सोना एक जैसे लगते हैं। मुक्त लोग तो समस्त जप-तप व योग साधनों को छोड़ कर अपनी आत्मा में ही रमण करते हैं।

दो०- न बन्धन न मोक्ष तहँ न पूजा जप तप विधि विधान ।
निर्द्वन्द होहि एकरस सोइ जीव जानि ईश समान ॥ १८४ ॥

व्याख्या - जिसके लिए न बन्धन है और न मोक्ष है और न ही कोई पूजा, जप, तप आदि के नियम हैं तथा जो निर्द्वन्द होकर एकरस है, उस जीव को मुझ परमात्मा के समान जानना चाहिए ।

अष्टावक्र अनुभूति मैं बताई । निज सकहउ तुम अजमाई ॥
निर्मल मन सुनहि जे अनुभूति । कटहिं बन्ध सकल करतूति ॥

व्याख्या - अष्टावक्र की अनुभूति को मैने तुम्हें बता दिया है, जिसको तुम स्वयं भी अनुभव में ला सकते हो । जो इस अनुभूति को निर्मल मन से सुनेंगे, उनके समस्त कर्मो के बन्धन कट जायेंगे ।

पाप पुण्य भ्रम सब मिट जाई । होवहिं सहज आनन्द पाई ॥
मंगल मूल इहँ गुरु समाना । अनुसरहि जेहि बनहि सुजाना ॥

व्याख्या - इसके सुनने से पाप-पुण्य का भ्रम मिट जाता है और जीव सहज होकर आनन्द प्राप्त कर लेता है । यह अनुभूति मंगल का मूल है और गुरु के समान है । अतः जो इसका अनुसरण करेंगे, वे सुजान बन जायेंगे ।

आत्म ग्यान सुत कहा बखानी । निज हियँ सब सकहिं इहँ जानी ॥
परम ग्यान इहँ मुक्ति मूला । सहज मिटावहिं त्रिगुण शूला ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैंने तुम्हें आत्म ज्ञान बता दिया है, जिसको सभी लोग अपने हृदय में जान सकते हैं । यह परम ज्ञान मुक्ति का मूल है, जिससे सत, रज व तमों गुणों से पैदा होने वाले कष्टों का निवारण हो जाता है ।

धन्य गुरुदेव परम हितकारी । होइब इहँ ज्ञान जग हितकारी ॥
मोर मन अब पूर्ण विश्वासा । सुनहिं होहिं हियँ ज्ञान प्रकाशा ॥

व्याख्या - हे जगत गुरु ! आप परम हित करने वाले हैं । इसलिए आपके द्वारा बताया गया यह ज्ञान जगत का कल्याण करने वाला है। अब मेरे मन में पूर्ण विश्वास हो गया है कि जो भी इसे सुनेंगे, उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा ।

दो०- कहत सुनत कल्मष मिटै जगत नित्य आनन्द मिलाय ।
अनुसरण जे जनु करहिं जीवत हि मोच्छ मिल जाय ॥ १८५॥

व्याख्या - इस ज्ञान को कहने और सुनने से मन का कल्मष मिट जाता है तथा नित्य संसार में आनन्द मिलने लगता है और जो लोग इसका अनुसरण करते हैं, उनको जीते-जी इसी जीवन में ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी ।

जुग जुग भये बहुरि सन्ता । निज हियँ जाना मोहि अनन्ता ॥
नानक भए सन्त बिरागी । कहि अनुभूति जन हित लागी ॥

व्याख्या - युगों-युगों में बहुत सन्त हुए हैं । जिन्होंने मुझ अनन्त परमात्मा को स्वयं के हृदय में जाना है । परम वैराग्यवान सन्त नानक हुए हैं । जिन्होंने जनकल्याण के लिए अपनी अनुभूति को बताया है।

सोइ कहउँ अति संक्षेप बखानी । ग्यान मूल सब भ्रम नसानी ॥
घट-घट नानक मोहि बताया । गुरु कृपा कहा जानिन उपाया ॥

व्याख्या - उसी नानक की अनुभूति को मैं बहुत संक्षेप में बताता हूँ । जो ज्ञान का मूल और संशयों का नाश करने वाली है । नानक ने सब घटों में मुझे बताया है तथा गुरु की कृपा को ही मुझे जानने का उपाय बताया है ।

सतगुरु करहि मेल मिलापा । सकहिं खोज हियँ आपहि आपा ॥
अन्तर राह गुरु दिखावहिं । तहँ जीव मोहि आइ मिलावहिं ॥

व्याख्या - सत्गुरु की शरण में जाकर, जो जीव अपने हृदय में ही अपने आप को खोजते हैं, उन्हीं को सत्गुरु राह दिखाते हैं,जिससे जीव मुझसे आकर मिल जाते हैं ।

सतगुरु महिमा नानक बखानी । बिनु गुरु मिटहिं न मैल निसानी ॥
गुरु कृपा प्रगटइ हियँ ज्योती । भाव अनुरूप जगमग होती ॥

व्याख्या - नानक ने सतगुरु की महिमा बताते हुए कहा है कि बिना गुरु के विषय-वासना रूपी मल का निशान नहीं मिटता है । गुरु की कृपा से ज्योति प्रकट हो जाती है, जो भावों के अनुसार प्रकाश करती है ।

निज हियँ नानक मोहि समझाई । जन जन सोइ निज भाषा बताई ॥
मरम न नानक किछु लुकाई । निज मति निज भाषा सब गाई ॥

व्याख्या - नानक ने स्वयं के हृदय में मुझे समझ लिया और उसी अनुभूति को अपनी भाषा में जन साधारण को बताया । नानक ने कुछ भी रहस्य छिपा कर नहीं रखा और अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी भाषा में बताया है ।

दो०- नाम जपत निर्भय भया आवागमन लियउ मिटाय ।
बूँद समाइ समुद्र में तहँ नानक गयउ हराय ॥ १८६ ॥

व्याख्या - नाम का जप करने से नानक निर्भय हो गया और अपना जन्म-मरण मिटा लिया । बूँद जैसे समुद्र में मिल जाती है, वैसे ही नानक मुझमें मिल गया ।

सब घट इक ज्योति समाई । गुरु कृपा पाइ सोइ प्रगटाई ॥
चहुँ दिसि सोइ करइ प्रकासा । नानक इहँ निज कीन्ह आभासा ॥

व्याख्या - सबके हृदय में एक ही ज्योति होती है, जो गुरु की कृपा मिलने पर

प्रकट होती है और चारों तरफ को उसी का प्रकाश हो रहा है। इस बात को नानक ने स्वयं अनुभव किया।

निज देह सोइ महल पिआरा। आत्मा गुरु मुखी होइ उद्धारा ॥
जपहिं ओंकार तजि सब आसा। होइब त्रिकुटि सहज प्रकासा ॥

व्याख्या - स्वयं का शरीर ही प्यारा महल होता है और जब आत्मा गुरुमुखी होती है, तभी उद्धार हो पाता है। जो समस्त आशाओं को छोड़कर, ओंकार का जप करते हैं, उनको त्रिकुट (आज्ञा चक्र) पर सहज प्रकाश होने लग जाता है।

धरणी देह बीज सतनामा। कृसानु जीव जुगति कृपा रामा।
संतोष निधि धान उपजाई। कामादि मृग जो लहहिं बचाई ॥

व्याख्या - सतनाम रूपी बीज होता है और यह शरीर ही धरती होता है तथा जीव किसान होता है और कृषि की विधि मेरी कृपा होती है। जो लोग काम, क्रोध, मद, लोभ आदि रूपी मृगों से खेती को बचा लेते हैं, तो संतोष निधि रूपी धान पैदा होता है।

संतोष धन भरहिं भँडारु। धन्य जीव करहिं व्यवहारु ॥
खोजहिं जेहि मोहि निज शरीरा। तिन्ह मिलइ कहि नानक धीरा ॥

व्याख्या - संतोष रूपी धन से भण्डार भर जाते हैं। अतः वे जीव धन्य हैं, जो ऐसा व्यवहार करते हैं। जो लोग मुझे स्वयं के शरीर में खोजते हैं, मैं उनको मिल जाता हूँ। ऐसा नानक ने कहा है।

दो०- संतोष मुंदा पहनि कर ध्यान विभूति रमाय।
समरप झोली हाथ गहि सहजहि जोग सधजाय ॥ १८७ ॥

व्याख्या - संतोष रूपी मुद्रा लगा कर जो ध्यान रूपी भभूति लगाते हैं और समर्पण रूपी झोली हाथ में लेते हैं, उनका सहज में ही योग सध जाता है।

दो०- गुरु ईश्वर गुरु गोरख गुरु ही जगत की मातु।
गुरु इक देह समाइ रहा गुरु ही पालन हार सब तातु ॥ १८८ ॥

व्याख्या - गुरु ही ईश्वर है और गुरु ही इन्द्रियों के रक्षक हैं और गुरु ही जगत की माता हैं। एक गुरु ही समस्त शरीरों में समाया हुआ है और सबके पालनहार भी गुरु ही हैं।

गुरु शब्द सोइ मन्त्र भाई। नानक कहा सकल समुझाई ॥
गुरु सेवा अड़सठ तीर्थ समाना। निज हियँ ही सम्भव ग्याना ॥

व्याख्या - नानक ने सबको समझा कर बताया है कि गुरु शब्द ही मन्त्र होता है तथा गुरु की सेवा ही अड़सठ तीर्थों के समान होती है तथा स्वयं के हृदय

में ही ज्ञान सम्भव हो पाता है ।

भाव अनुरूप सकल संसारा । निज हियँ नानक कहा विचारा ॥
अलख निरंजन मोहि पुकारा । अगमा अगम मैं ही सृजन हारा ॥

व्याख्या - नानक ने स्वयं के हृदय में विचार कर कहा कि यह समस्त संसार भाव के अनुसार होता है । मुझ परमात्मा को नानक ने अलख निरंजन, अगमा-अगम व सृजनहार बताया है ।

मोर भजन निर्भय करहहि । सहजहिं जम फांस कटहहि ॥
जीव जंतु सब मोरहहि खेला । जोग वियोग सबु संजोगु मेला ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा का भजन ही निर्भय करता है । जिससे मृत्यु का भय मिट जाता है । सब जीव-जन्तु मेरे ही खेल हैं तथा योग-वियोग सब संयोग का मिलन होता है ।

जेहि जानहि जिन्हहिं जनाउँ । सृष्टि सकल मैं ही बनाउँ ॥
मोहि छाड़ि दूजा नहिं जग कोई । गुरु मुखी हियँ प्रगट मैं होई ॥

व्याख्या - मुझे वे ही जान पाते हैं, जिनको मैं बताता हूँ । समस्त सृष्टि मैं ही बनाता हूँ । मुझे छोड़ कर संसार में दूसरा कोई नहीं है । मैं गुरुमुखी के हृदय में प्रकट होता हूँ ।

साधु संगति अरु नाम आधारा । करहिं जीव सहज भव पारा ॥
भई परापति मानुष देहिआ । मोहि मिलन इहँ आइ बरीआ ॥

व्याख्या - साधु जनों की संगत और नाम जप को आधार बनाकर जीव सहज में भाव रूपी भव सागर को पार कर जाता है । मनुष्य शरीर प्राप्त करने से मुझ परमात्मा से मिलने की बारी (समय) आ जाती है ।

दो०- जप तप संयम धरम साधत बनहि नहिं कोय ।
नानक कहहि नीचउ शरण गए उभारहि सोय ॥ १८९ ॥

व्याख्या - जप-तप व संयम की धारणा साधने में कठिन होती है । नानक कहते हैं कि नीच कर्म करने वाला होता है, उसको भी शरणागत भाव आने पर, प्रभु भव सागर पार करा देते हैं ।

इहँ संसार विकार अनेका । तरहिं ग्यानी करि ब्रह्म विवेका ॥
निज मन नानक बहु समुझाई । निसि दिवस मोर लग्न लगाई॥

व्याख्या - इस संसार में नाना प्रकार के विकार होते हैं । इसलिए ज्ञानी लोग ब्रह्म का विचार कर संसार से पार हो जाते हैं । नानक ने स्वयं के मन को बहुत समझाया और रात-दिन मुझ परमात्मा से लगन लगायी ।

अविनाशी पुरुष मोहि बताई । घट घट वासी अन्तर्यामी जनाई ॥
नाना मूरत जद्यपि पुरुष एका । नानक समझा हियँ करि विवेका ॥

व्याख्या - नानक ने मुझ परमात्मा को अविनाशी, सबके हृदय में निवास करने वाला अन्तर्यामी बताया है । मैं परमात्मा जगत में एक ही हूँ । यद्यपि मेरी ही अनेक मूर्तियाँ दिखाई पड़ती हैं । नानक ने यह रहस्य अपने हृदय में विचार करके समझ लिया ।

त्रिविध कर्म फल आस अंदेशा । गुरु बिनु कोह देवहिं संदेशा ॥
गुरु मुखी होउ मन समुझाई । बिनु गुरु नहिं मुक्ति उपाई ॥

व्याख्या - तीन प्रकार के कर्म (सत, रज, तम) आशा रूपी फल के अंधकार में फँसा देते हैं । इसलिए बिना गुरु के कौन ज्ञान का संदेश दे सकता है ? इसलिए नानक ने अपने मन को समझाया कि हे मन! तू गुरुमुखी हो क्योंकि बिना गुरु के मुक्ति सम्भव नहीं है ।

नाम अरु गुरु महिमा अपारी । गुरु बिनु नहिं कोउ जग सारी ॥
गुरु ही नाम मरम समुझाई । सहजहि मुक्ति मिलहिं आई ॥

व्याख्या - नाम और सतगुरु की महिमा अपरम्पार होती है तथा गुरु के बिना संसार में कोई सहारा भी नहीं होता है । गुरु ही नाम रहस्य को समझाते हैं, जिससे सहज में ही मुक्ति मिल जाती है ।

दो०- सतगुरु शरण जेहि आवहिं निसि दिवस मन मोहि लगाय ।
मद लोभादि पाखण्ड मिटै तिन्ह सहजहि मैं मिलूँ आय ॥ १९० ॥

व्याख्या - जो लोग रात-दिन मुझ परमात्मा से लौ लगाकर सतगुरु की शरण में आ जाते हैं, उनके मद, लोभादि के पाखण्ड मिट जाते हैं और उन्हें सहज में ही मैं मिल जाता हूँ ।

साजन मीत कुटुम्ब परिवारा । जहँ लगि जगत व्यवहारा ॥
नहिं हितु कोउ सतसंग समाना । निज अनुभव नानक इहँ जाना ॥

व्याख्या - पति, मित्र, कुटुम्ब, परिवार और जहाँ तक जगत का व्यवहार है, कोई भी सत्संग के बराबर हित करने वाला नहीं होता है । नानक ने स्वयं यह अपने अनुभव से जाना है ।

साध संग करावहिं ब्रह्म ग्याना । ताते मिलहि भव शूल निधाना ॥
ब्रह्म ग्यान सम नहिं सुख दूजा । निज हियँ नानक कहा इहँ बूझा ॥

व्याख्या - साधु जनों की संगत करने पर ब्रह्म ज्ञान हो जाता है और ब्रह्म ज्ञान होने पर सांसारिक कष्टों का निवारण हो जाता है । ब्रह्म ज्ञान के समान दूसरा कोई

सुख नहीं होता है । नानक ने स्वयं के हृदय में जान कर यह बताया है ।

ब्रह्म ग्यानी अरि मित्र समाना । भूल न करहिं हियँ अभिमाना ॥
आत्म रत ब्रह्म ग्यानी सदाई । स्तुति निन्दा कबहुँ न कराई ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी के लिए मित्र और शत्रु समान होते हैं और वह भूल कर भी अभिमान नहीं करता है । ब्रह्म ज्ञानी सदा आत्मा में रमण करने वाला होता है तथा कभी भी किसी की स्तुति व निन्दा नहीं करता है ।

ब्रह्म ग्यानी रहइ निर लेपा । जिमि जल माझ कमल अलेपा ॥
ब्रह्म ग्यानी भोजन ग्याना । एक रस रहहि ब्रह्म ध्याना ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी सदा निर्लेप रहता है, जैसे जल में कमल निर्लिप्त रहता है । ब्रह्म ज्ञानी का भोजन ज्ञान ही होता है और वह सदा एकरस होकर ब्रह्म के ध्यान में लगा रहता है ।

ब्रह्म ग्यानी बहु परतापी । हियँ प्रगटहि प्रभु आपहि आपी ॥
ब्रह्म ग्यानी पूरण विधाता । सहज दयाल अनाथ न नाथा ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी का बहुत प्रताप होता है । क्योंकि उसके हृदय में परमात्मा स्वयं प्रकट हो जाते हैं । ब्रह्म ज्ञानी परमात्मा के समान हो जाता है । वह सहज में दया करने वाला और अनाथों को शरण देने वाला हो जाता है ।

ब्रह्म ग्यानी का अन्त न पारा । नानक करहिं सोइ नमस्कारा ॥
ब्रह्म ग्यानी सकल आकारु । ब्रह्म ग्यानी आपी निरंकारु ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी का न अन्त और न ही कोई सीमा होती है, इसलिए नानक ब्रह्म ज्ञानी को नमस्कार करते हैं । ब्रह्म ज्ञानी तो समस्त आकारों में होता है और वह अपने आप निरंकारी ही होता है ।

ब्रह्म ग्यानी सुख सहज निवासा । नानक नहिं ब्रह्म ज्ञानी विनासा ॥
ब्रह्म ग्यानी जानइ ब्रह्म ग्यानी । ब्रह्म ग्यानी बोलहि अटपट बानी ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी सहज सुख में रहता है तथा नानक कहते हैं कि उसका विनाश नहीं होता है । ब्रह्म ज्ञानी ही ब्रह्म ज्ञानी को जान पाता है क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी तो सदा अटपटी वाणी ही बोलता है ।

ब्रह्म ग्यानी रहहिं इक रंगा । तिन्ह हियँ बसहउँ मैं अभंगा ॥
ब्रह्म ग्यानी रहहिं आनन्दा । मन रत सदा परमानन्दा ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी सदा एक ही रंग में लगा रहता है । इसलिए उनके हृदय में मैं परमात्मा निरन्तर रहता हूँ । ब्रह्म ज्ञानी आनन्द में ही रहता है तथा मन सदा परमानन्द में लगा रहता है ।

ब्रह्म ग्यानी कबहुँ न मरहिं । मान अपमान भय न करहिं ॥
कर्म करत तउ निष्करमा । इहँ सदा ब्रह्म ग्यानी धरमा ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी कभी नहीं मरता है तथा मान-अपमान से भी नहीं डरता है। वह कर्म करता हुआ भी निष्काम बना रहता है । यही ब्रह्म ज्ञानी का धर्म होता है।

दो०- मन रत मोर चरण सदा नहिं किछु जगत की आस ।
इन्द्रि जीत कामादि तजि रहहिं मगन शून्य आकाश ॥ १९१ ॥

व्याख्या - ब्रह्म ज्ञानी का मन सदा मुझ परमात्मा में लगा रहता है और उसकी संसार से कोई अपेक्षा नहीं रहती है । वह इन्द्रियों को जीत कर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि त्याग कर शून्य आकाश में रहता है ।

दो०- राम नाम सुमिरण करै तिन्ह हियँ उपजै ब्रह्म ग्यान ।
वेद पुराणादि समझ परै जो नित्य धरहिं प्रभु ध्यान ॥ १९२॥

व्याख्या - राम नाम का जप करने से हृदय में ब्रह्म ज्ञान पैदा हो जाता है और जो नित्य मुझ परमात्मा का ध्यान करते हैं, उनको वेद-पुराणों आदि का ज्ञान हृदय में समझ आ जाता है ।

कारण करण नानक मोहि जाना । जल थल नभ सब एकहि माना ॥
जिन्ह हियँ मोर दरसन पियासा । तिन्ह हियँ करहुँ आत्म प्रकासा ॥

व्याख्या - नानक ने कार्य और कारण मुझ परमात्मा को ही माना है और जल, थल और नभ सब जगह मुझे एक ही जाना है । नानक कहते हैं कि जिनके हृदय में मेरे दर्शन की इच्छा होती है, उनके हृदय में मैं आत्मा का प्रकाश करता हूँ ।

जो जेहि भावहहिं सोइ होइ । नानक कहि अरु न दूजा कोई ॥
अंतर हियँ हो ग्यान प्रकासा । सोइ होवहिं कबहुँ न विनासा ॥

व्याख्या - जो जैसा भाव लाता है, मैं (परमात्मा) वैसा ही हो जाता हूँ । नानक कहते हैं कि मुझ परमात्मा के अलावा दूसरा कोई नहीं है । जिसके हृदय में ज्ञान हो जाता है, उस जीव का कभी विनाश नहीं होता है ।

जब लगि रहहि करता भावा । तब लगि जीव योनि भरमावा ॥
मोह भाव जब लगि मन माहिं । अरि मित सब परहि दिखाहिं ॥

व्याख्या - जब तक कर्तापन का भाव बना रहता है, तब तक जीव नाना योनियों में भटकता रहता है । मोह जब तक रहता है, तब तक मित्र और शत्रु का अस्तित्व बना रहता है ।

नानक कहहि निर्मल जन सोई । जोहि जानहिं सब मुझ ते होई ॥
मोरहि कृपा बन्धन सब टूटे । गुर प्रसादि नानक हउ छूटे ।

व्याख्या - नानक कहते हैं कि वे लोग ही निर्मल होते हैं, जो यह जानते हैं कि सब कुछ मुझ परमात्मा से ही होता है। मेरी कृपा से ही सब बन्धन टूटते हैं। गुरु की कृपा से नानक भी इसी प्रकार बन्धन मुक्त हुआ है।

दो०- नाम जप अरु साधु संगति मानहिं सतगुरु सीख ।
कह नानक अनुभव अपना मैं परउँ निज हियँ दीख ॥ १९३ ॥

व्याख्या - नाम का जप और सन्त जनों की संगत तथा सतगुरु की सीख मानने वालों को मैं परमात्मा अपने हृदय में ही दिखाई पड़ जाता हूँ। नानक ने अपनी स्वयं की अनुभूति को ही कहा है।

एहि भांति नानक अनुभव गाई । अब कहउँ जो नाम देव बताई ॥
एक अनेक व्यापक समाना । बिरला बूझहहिं इहँ ग्याना ॥

व्याख्या - इस प्रकार नानक ने अपना अनुभव बताया है। अब मैं नाम देव की अनुभूति का वर्णन करता हूँ। नामदेव कहते हैं कि एक ही तत्व सर्वत्र समान रूप से व्याप्त रहता है परन्तु कोई विरला ही इस रहस्य को जान पाता है।

गोविंदमय हय सकल संसारा । मैं सूत जीव मणि नाना प्रकारा ॥
जल फेन बुद बुद अरु तरंगा । तेसउ ब्रह्म एक जगत प्रसंगा ॥

व्याख्या - यह समस्त संसार गोविन्दमय है। मैं परमात्मा धागे के समान हूँ और नाना जीव मणियों के समान गूँथे हुए हैं। जैसे जल के फेन, बुलबुला और लहर एक ही होते हैं, वैसे ही यह समस्त संसार एक ब्रह्म से ही बना है।

कहत नामदेव हियँ विचारी । सब घट बसहिं इक मुरारी ॥
जाति पांति मूढ़ बिरथा बखानी । जपहिं राम नाम सदा ग्यानी ॥

व्याख्या - नाम देव कहते हैं कि सब घटों में एक ईश्वर बसते हैं। जाति-पाति का बखान तो मूर्ख लोग करते हैं और ज्ञानी लोग सदा राम का नाम जपते हैं।

मन जब लगि नहिं बस माहिं । जप ध्यानादि बिरथा सुहाहिं ।
झूँठी माया जो मन भरमाई । नहिं संभव भव सिन्धु तराई ॥

व्याख्या - जब तक मन वश में नहीं होता है, तब तक जप व ध्यान आदि व्यर्थ होते हैं। अगर मन झूठी माया में फँसा रहेगा, तो संसार-सागर को पार करना सम्भव नहीं है।

दो०- पार ब्रह्म जे चिन्हहिं तिन्हहिं नहिं आस सुहाय ।
मोर भगति हियँ चेतहिं तन मन सब उमंग छाय ॥ १९४ ॥

व्याख्या - जो पार-ब्रह्म मुझ परमात्मा को पहचान लेते हैं, उनके मन में आशा नहीं रहती है। उनके हृदय में तो मेरी भक्ति जागृत हो जाती है। जिससे तन

व मन में उमंग छा जाती है ।

गुरु महिमा नाम देव बखानी । निज हियँ अनुभव करि जानी ॥
कृपा सतगुरु पाइ नाम देवा । निज आत्मा निजहि लेइ सेवा ॥

व्याख्या - नाम देव ने गुरु की महिमा का भी बहुत बखान किया है, जिसको उन्होंने स्वयं अनुभव करके जाना है । नामदेव ने सत्गुरु की कृपा प्राप्त करके स्वयं की आत्मा को ही सिद्ध किया है ।

आत्म अनुभव नामदेव जाना । सोइ कहउँ इहाँ तोहि सुजाना ॥
झिलि मिलि करहिं सब दिसंता । तहँ अनहद शब्द वजंता ॥

व्याख्या - आत्म अनुभूति करके नाम देव ने जो जाना है, उसको वत्स मैं तुम्हें बताता हूँ । समस्त दिशाएँ उस अनुभूति की अवस्था में जगमगा उठती हैं और अनहद शब्द बज उठता है ।

बिनु सावण घनहरु गाजै । ढ़ोल मृदंग सिंगरी तहँ बाजै ॥
जल भीतर कुंभ रहा समाई । मैं एक चहुँदिस परउँ दिखाई ॥

व्याख्या - बिना श्रावण के बादल गरजते हैं और ढोल, मृदंग, सिंघी आदि बाजे बजते हैं । घड़ा जल में समाने लगता है तथा उस समय मैं परमात्मा सर्वत्र एक ही दिखाई पड़ने लगता हूँ ।

बिनु बादल बरसा तहँ होई । नामदेव तब भ्रम सब खोई ॥
निज हियँ गुरु लियउ पहिचानी । मन ही चेला मन ही गुरु ग्यानी ॥

व्याख्या - वहाँ बिना बादलों के वर्षा होने लगती है । उस अवस्था में नाम देव का सब भ्रम मिट गया और स्वयं के हृदय में ही गुरु को पहचान लिया कि मन ही गुरु और मन ही चेला होता है ।

दो०- गूंगा अमृत खाइ के कैसे करहिं ताइ बखान ।
तेसउ मोर अनुभूति हय कह नामदेव निज जान ॥ १९५ ॥

व्याख्या - गूँगा आदमी अमृत पान करके, जैसे अमृत के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता है, वैसे ही नाम देव कहते हैं कि मुझ परमात्मा की अनुभूति का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दीन दयाल गरब परिहारी । चरन सरन नामा बलिहारी ॥
भ्रम तजि आयहउ शरणाई । निज मन नामा लियउ समुझाई ॥

व्याख्या - नामदेव ने मुझ परमात्मा को दीन दयाल और गर्व को दूर करने वाला समझ कर मेरी शरण ले ली । समस्त संशयों का त्याग करके नामदेव ने स्वयं के मन में ही मुझे समझ लिया ।

माया तजहिं छूटहिं संसारा। भगत वोहि जिन्हहि मैं प्यारा ॥
कोई बोले निरवा कोउ बोले दूरि। जल मछुरी चढ़ावहिं खजूरि ॥

व्याख्या - माया को त्याग देने पर संसार मिट जाता है। भक्त वो ही होता है, जिसे मैं (परमात्मा) प्रिय होता हूँ। कोई मुझे नजदीक बताते हैं, तो कोई मुझे दूर बताते हैं। लोग जल की मछली को खजूर में चढ़ाने का प्रयास करते रहते हैं।

पण्डित होइ वेद बखानहिं। नाम देव सब निज हियँ जानहिं ॥
मिटहिं कलंक लेउ मोर नामा। पूर्ण अभिलाष होइ निष्कामा ॥

व्याख्या - जो ज्ञानी हो जाते हैं, वे वेदों का बखान करने लगते हैं। परन्तु नामदेव ने तो मुझे अपने हृदय में ही पहचान लिया। मेरा नाम लेने से सब विपदाएँ मिट जाती हैं और समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा जीव निष्काम हो जाता है।

नाम जपत सुमति सुगति पाई। निज अनुभव नामदेव बताई ॥
ग्यान अंजन नामा गुरु दीना। दुख बिसारि सुख अंतरि लीना ॥

व्याख्या - नामदेव ने अपना अनुभव बताया है कि नाम के जपने से ही सद्बुद्धि और अच्छी गति प्राप्त होती है। गुरु ने ज्ञान रूपी अंजन दिया था, जिससे दुःखों का नाश हो गया और अन्दर सुख की प्राप्ति हो गयी।

दो०- नाम जपत भ्रम मिटै नाम ही उत्तम धर्म सुहाय।
नाम महिमा निज हिय जानि नामदेव कहा समझाय ॥ १९६ ॥

व्याख्या - नाम के जपने से सब संशय मिट जाते हैं और नाम ही उत्तम धर्म है। नाम की महिमा को स्वयं के हृदय में जान कर नाम देव ने सबको समझाया है।

प्रणव नामा परम तत सुहाई। करि कृपा गुरु दियउ लखाई ॥
कह नामदेव पाखण्ड नहिं कीजै। सहज भाव नित नाम जपी जै ॥

व्याख्या - नाम देव कहते हैं कि प्रणवाक्षर ही परम तत्व है, जिसे सत्गुरु ने कृपा करके बता दिया है। इसलिए नाम देव कहते हैं कि पाखण्ड मत करिए, बल्कि सहज होकर प्रणवाक्षर नाम का जप करिए।

अड़सठ तीर्थ गुरु उपदेशा। कहा नाम देव इहँ सन्देशा ॥
गंगा जमुना भल करे स्नाना। नहिं तबउ मोर नाम समाना ॥

व्याख्या - नाम देव कहते हैं कि गुरु का उपदेश अड़सठ तीर्थों के समान होता है। नाम देव तो यहाँ तक कहते हैं कि गंगा-यमुना में स्नान करने का महत्व भी मेरे नाम के जप के बराबर नहीं होता है।

नाम देव पाखण्ड कीन्ह प्रहारा। काशी मथुरा सब कहा असारा ॥
जाति पांति भ्रम दियउ मिटाई। नाम जपन इक राह दिखाई ॥

व्याख्या - नाम देव ने पाखण्ड पर बहुत प्रहार किया और काशी, मथुरा आदि को सारहीन बताया तथा जाति-पाति के भ्रम को भी मिटा दिया और केवल नाम जपने पर ही जोर दिया ।

वाद विवाद कबहुँ न कीजै । कह नामा राम रसायन पीजै ॥
हरि महिमा कहहि नहिं जाई । जेहि विधि राखै रहउ नामा भाई ॥

व्याख्या - नामदेव कहते हैं कि कभी भी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए और निरन्तर नाम जप का रसायन पीते रहना चाहिए । मुझ परमात्मा की महिमा का बखान नहीं किया जा सकता है । इसलिए नाम देव कहते हैं कि जैसे रखें वैसे ही रहना चाहिए ।

दो०- समरपन मोहि सन्मुख करि नाम देव भयउ निशंक ।
सब विधि मोर भरोस भया निसि दिवस नाम रटंत ॥ १९७ ॥

व्याख्या - नाम देव मुझ परमात्मा को पूरी तरह समर्पण करके निडर हो गया तथा पूरी तरह मेरे भरोसे होकर रात-दिन नाम जपने लगा।

जपत नाम सब सिद्धि पाई । भयउ पूज्य नीच जाति जन्माई ॥
सहज सुभाउ भयउ बिरागी । निसि दिवस नाम प्रीति अनुरागी ॥

व्याख्या - नाम देव ने नाम का जप करके ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं और नीच जाति में पैदा होकर भी पूजनीय हो गया । वह सहज में ही विरागी हो गया और रात-दिन नाम जपने में अनुराग पैदा हो गया ।

एहि भाँति भयउ नामा ग्यानी । जपत नाम निज अनुभव जानी ॥
अब कहउँ मरम रविदासा । जो मोहि कीन्ह सहज सुपासा ॥

व्याख्या - इस प्रकार नाम देव को ज्ञान हुआ । जो उन्होंने नाम जप कर अपने हृदय में ही अनुभव किया था । अब मैं सन्त रविदास के मर्म को समझाता हूँ । जिन्होंने मुझे सहज में ही प्राप्त कर लिया था ।

प्रेम भगति बहु बल दीन्हा । रविदास निज हियँ मोहि चीन्हा ॥
राम नाम जग कीन्ह व्यापारा । जपत नाम मोहि भयउ प्यारा ॥

व्याख्या - रविदास ने प्रेम-भक्ति पर बहुत बल दिया और उसी से रविदास ने अपने हृदय में मुझे पहचान लिया । उसने राम नाम का ही संसार में व्यवहार किया । इसलिए नाम जपने से ही वह मुझे प्रिय हो गया ।

दुर्लभ जग मानस अवतारा । जीव जंतु सब कर्म अनुसारा ॥
काल फाँस सब जीव फँसाई । बचहिं जेहि राम नाम जपाई ॥

व्याख्या - संसार में मनुष्य का शरीर दुर्लभ होता है । क्योंकि सभी जीव-

जन्तुओं का जन्म कर्म के अनुसार ही होता है । काल के बन्धन में सभी जीव पड़ते हैं । केवल वे बच जाते हैं, जो राम नाम का जप करते हैं ।

दो०- प्रभु शरण सुखद सदा कह रविदास हियँ विचारी ।
शरण आए तउ उभरे डूबत जात सब ग्वाँरी ॥ १९८ ॥

व्याख्या - रविदास ने यह हृदय में विचार कर कहा है कि मुझ परमात्मा की शरण सदा सुख देने वाली होती है । इसलिए जो शरण में आ जाते हैं, वे बच जाते हैं और मूर्ख लोग इस संसार में डूब जाते हैं ।

कहि रविदास राम रंग राता । गुरु प्रसाद नरक नहिं जाता ॥
हरि हरि हरि हरि हरि हरे । जेहि सुमरहहिं हरि सकल तरे ॥

व्याख्या - रविदास कहते हैं कि जो राम-रंग में रंग जाता है, वह गुरु की कृपा से नरक में नहीं जाता है । जिन्होंने भी हरि-हरि जपा है, वे सब भव सागर पार कर गये हैं ।

बिनु सत्संग उपजै नहि भावा । बिनु भाव नहि भगति आवा ॥
राम नाम सकल भाव समाई । जपहि नाम जीव सद्गति पाई ॥

व्याख्या - बिना सत्संग के भगवान के प्रति भक्ति के भाव पैदा नहीं होते हैं और बिना भाव के भक्ति नहीं होती है । राम के नाम में ही समस्त भाव समाए रहते हैं । इसलिए जो राम का नाम जपते हैं, उनकी सद्गति हो जाती है ।

नाम आरती नाम पूजा मुरारे । नाम बिनु झूँठे सगल पसारे ॥
नाम आसन नाम जप तप काला । नाम सूत नाम ही फूल माला ॥

व्याख्या - नाम ही मुझ प्रभु की आरती है और नाम ही असली पूजा है । नाम के बिना संसार के सब कार्य झूठे हैं । नाम ही आसन, जप, तप व समय है। नाम ही धागा है और नाम ही माला के फूल हैं।

नाम ही दीपक नाम ही बाती । नाम ही प्रकाशित दिन राती ॥
नाम ग्यान मूल सकल संसारा । कह रविदास नाम एक सहारा ॥

व्याख्या - नाम ही दीपक है और नाम ही बाती होता है तथा नाम ही रात-दिन प्रकाश करने वाला होता है । रविदास कहते हैं कि नाम ही संसार के ज्ञान का मूल व एकमात्र सहारा होता है ।

दो०- जल भीति पवन खम्ब हय रक्त बूंद का गारा ।
हाड़ मास नाड़ी पिंजर तहँ पक्षी बसै बिचारा ॥ १९९ ॥

व्याख्या - यह शरीर जल की दीवार और वायु का खम्भा है तथा रक्त की बूदों का गारा है । हाड़-माँस और नाड़ियाँ पिंजरा है । जिसमें जीव बिचारा रहता है ।

भल मन्दिर सुन्दर नारी । बिनु राम नाम बाजी सब हारी ॥
इहँ तनु हय जिमि घास की टाटी । जलहि घास बनहि सब माटी ॥

व्याख्या - अच्छे मकान और सुंदर नारी होने पर भी बिना राम नाम के जीव बाजी हार जाता है । यह शरीर तो घास की टाटी के समान है और जब घास जल जाता है, तो केवल माटी बच जाती है ।

भाई बन्धु कुटुम्ब सबीरा । लागहिं कठिन मृत शरीरा ॥
घर की नारी उरहि तन लागी । उह तउ भूतु भूतु करि भागी ॥

व्याख्या - भाई-बन्धु व समस्त कुटुम्ब मरे हुए शरीर को निकालने लगते हैं। घर की नारी जो हृदय से लगी रहती थी, वह भी भूत-भूत कह कर भागने लगती है ।

एहि भाँति सकल जग लुटाई । कह रविदास राम नाम बचाई ॥
राम नाम बिनु नहिं जग सहारा । कह रविदास निज हियँ विचारा ॥

व्याख्या - इस प्रकार समस्त संसार लुट रहा है । रविदास कहते हैं कि इस लूट से केवल राम का नाम ही बचाता है । रविदास ने अपने हृदय में विचार करके कहा है कि नाम के बिना दूसरा कोई सहारा नहीं है।

सब जीव उभरहिं शरण पाई । मोर जन्य भेद नहिं जग माई ॥
करइ पुनीत राम भजनाई । निज तरहिं दूसर देइ तराई ॥

व्याख्या - जो जीव भगवान की शरण में आ जाते हैं, वे सब बच जाते हैं । क्योंकि मुझ परमात्मा के लिए कोई ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं होता है । राम का भजन जीव को पवित्र कर देता है, जिससे जीव स्वयं तो भव सागर तर ही जाता है, बल्कि दूसरों को भी भव पार करा देता है ।

दो०- पण्डित सूर छत्रपति नृप भगत सम नहिं कोय ।
भगत रक्षा मैं निज करूँ सोई निर्भय होकर सोय ॥ २०० ॥

व्याख्या - पण्डित, शूर और राजा ये सब भक्त के बराबर नहीं होते हैं । क्योंकि भक्त की रक्षा तो मैं स्वयं करता हूँ । इसलिए भक्त निर्भय होकर सोता है ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण सप्तदशम पड़ाव ॥

जाति चमार धन कुल हीना । नाम प्रभाव रैदास सब लीना ॥
नाम प्रभाव रविदास बखानी । करहिं दण्डवत पण्डित ग्यानी ॥

व्याख्या - रविदास जाति से चमार, धन हीन और कुल हीन थे । परन्तु नाम के जप के प्रभाव से उन्होंने सब कुछ प्राप्त कर लिया । रविदास कहते हैं कि पण्डित लोग भी नाम के प्रभाव से दण्डवत प्रणाम करने लग गये ।

नाम प्रभाव कोह सकै बखानी । ऋषि मुनि जन निज हियँ जानी ॥
नाम प्रभाव हनुमन्त जाना । नाम ते भयउ वह राम समाना ॥

व्याख्या - नाम के प्रभाव का कौन वर्णन कर सकता है ? ऋषि-मुनियों ने भी नाम के प्रभाव को अपने हृदय में जाना है । हनुमान ने नाम के प्रभाव को जाना। इसलिए वह स्वयं मुझ राम के समान हो गया ।

धन्ना जाट रविदास चमारा । नाम जप सब कीन्ह उद्यारा ॥
नाम ते अजामिल शबरी गति पाई । नाम जप कबीर मुक्ति दिलाई ॥

व्याख्या - धन्ना जाति से जाट और रविदास चमार थे । परन्तु नाम जप के प्रभाव से उनका उद्धार हो गया । नाम के जपने से अजामिल और शबरी की गति हो गयी तथा नाम जप से ही कबीर मुक्त हो गये।

सकल सन्त गुरु नाम लखाई । जपत जपत सब गए तराई ॥
नाम मणि करै ज्योति प्रकाशा । कहा कबीर तुलसी रवि व्यासा ॥

व्याख्या - सब सन्तों ने गुरु से नाम का रहस्य जान कर, जप करके भव सागर पार कर लिया । नाम की मणि ही ज्योति का प्रकाश करती है, इसी बात को कबीर, तुलसी, रविदास और व्यास मुनि ने कहा है ।

दो०- अजर अमर अखण्ड अविनाशी एकरस गुण गोतीत जगतेश ।
नाम जपत सन्त अनुभवहि एक ही राम रहीम अल्लाह परमेश ॥ २०१॥

व्याख्या - परमपिता परमेश्वर अजर-अमर, अखण्ड, अविनाशी, एकरस, गुण व इन्द्रियों से परे हैं । नाम का जप करके ही सन्त लोगों ने अनुभव किया है कि राम, रहीम, अल्लाह व परमेश्वर सब एक ही हैं ।

ओशो अनुभूति कहउँ बखानी । निज अनुभव निज हियँ जानी ॥
निज हारहहिं मिलहिं जगदीशा । कहा समझाई सन्त रजनीशा ॥

व्याख्या - अब मैं ओशो की अनुभूति को बताता हूँ, जो उन्होंने स्वयं अपने हृदय में जाना था । सन्त रजनीश समझा कर कहते हैं कि स्वयं को खोने पर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है ।

खोजहहिं तेहि पावहहिं रामा । पावत राम मिटई सब कामा ॥
ग्यानी बनहिं परम समाना । भगत हियँ प्रगटहिं भगवाना ॥

व्याख्या - जो लोग भगवान को खोजते हैं, उन्हें भगवान मिल जाते हैं और भगवान के मिल जाने पर काम मिट जाता है । ज्ञानी स्वयं ब्रह्म के समान हो जाता है और भक्त के हृदय में ही भगवान प्रकट हो जाते हैं।

बूँद मिलहिं बारिघ जाई। भेद कि तहँ सकइ रहाई ॥
अहम् ब्रह्म जब आवइ भावा। जगत कि परइ भिन्न दिखावा ॥
व्याख्या - जब बूँद समुद्र में मिल जाती, तब क्या कोई भेद रह पाता है? उसी प्रकार जब मैं ही ब्रह्म हूँ का भाव आ जाता है, तब क्या संसार अलग दिख सकता है ?

निज चर्चा सोइ ईश प्रसंगा। मिटहि भेद जीव होइ अभंगा ॥
ग्यानी ज्ञेय मिटहिं विभेदा। आनन्द सहज नसै सब खेदा ॥
व्याख्या - स्वयं की चर्चा ही ईश्वर की चर्चा हो जाती है और जीव परमात्मा से अभेद हो जाता है। उस अवस्था में ज्ञानी और ज्ञेय का भेद मिट जाता है तथा समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है। जिससे सहज आनन्द बच जाता है।

सीमा रहित जीव अपरम्पारा। ओशो कहा समझाई इहँ सारा ॥
मन खेल जगत सब बताई। मन ही बन्धन मोच्छ उपाई ॥
व्याख्या - ओशो ने समझा कर कहा है कि जीव सीमा रहित और अपरम्पार होता है। यह समस्त जगत मन का खेल मात्र है और मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण होता है।

दो०- निशब्द सोइ निराकार हय जहँ शब्द तहँ आकार ।
मन ही मूल संसार का नहिं किछु अन्य आधार ॥ २०२ ॥
व्याख्या - निशब्द की अवस्था ही निराकार की होती है। क्योंकि शब्द आते ही आकार का आभास हो जाता है। मन ही जगत का मूल कारण होता है। मन के अलावा संसार का कोई दूसरा कारण नहीं होता है।

सन्त शैतान मन सन्ताना। मन ही मूल बन्धन नाना ॥
मिलई ईश मन जाइ नसाई। एक रस तहँ जीव सुहाई ॥
व्याख्या - सन्त और शैतान दोनों मन की उपज होते हैं और मन ही नाना प्रकार के बन्धनों का कारण होता है। जब ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है, तब मन का नाश हो जाता है और मन के मिट जाने पर जीव एकरस हो जाता है।

मन अनन्त अनन्त संसारा। बाहिर भीतर उभय इकसारा ॥
मन नर मादा मन काम आधारी। मन हेतु धन धाम सम्पदा सारी ॥
व्याख्या - मन अनन्त होते हैं, इसलिए संसार भी अनन्त है। मन के अनुरूप ही संसार बाहर और भीतर एक समान होता है। मन ही स्त्री-पुरुष का भेद करता है और काम का आधार भी मन ही होता है। मन के कारण ही धन,

घर, सम्पदा आदि का आभास होता है ।

मन वट वासना शाखा सुहाई । मन ही जग नाना देह धराई ॥
मातु-पितु अरु निज वासना । धरहिं देह करि जग आसना ॥

व्याख्या - मन वृक्ष होता है और वासनाएँ उसकी शाखाएँ होती हैं । मन के कारण ही जीव नाना शरीर धारण करता है । माता-पिता और स्वयं की वासना के कारण ही संसार में जीव शरीर धारण करता है ।

देह सोइ जीव सुन्दर धामा । मन वासना सोई मूल कामा ॥
नारी पुरुष की सुन्दर ताई । मन रुचि परहहिं इहँ दिखाई ॥

व्याख्या - शरीर ही जीव का सुन्दर घर होता है और मन की वासना ही काम की जड़ होती है । स्त्री-पुरुष की सुन्दरता मन की रुचि के अनुसार दिखाई पड़ती है ।

दो०- बाहिर सब जगत चलै अन्तर मन बिरला कोय ।
अन्तर मुखी जो बन चलै नहिं संशय मुक्ति होय ॥ २०३ ॥

व्याख्या - बाहर की तरफ तो सब संसार चलता ही है परन्तु मन के अन्दर की यात्रा को कोई विरला ही करता है और जो मन के अन्दर की यात्रा करता है, वह मुक्त हो जाता है । इसमें संशय नहीं है ।

काम ते कामिनि काम ते दामा । निज मन भयउ उभय धामा ॥
निज जाल जीव निजहिं फँसाई । वासना जाल बनाइ लिपटाई ॥

व्याख्या - काम से स्त्री की इच्छा और धन की इच्छा होती है । इसलिए मन ही स्त्री और धन की भावना का घर होता है । जीव स्वयं के बनाए जाल में स्वयं ही फँसता है और वासनाओं का जाल बना कर स्वयं ही उलझ जाता है।

नहिं कोउ बन्धन मुक्ति दाता । उभय कारण निज मन भ्राता ॥
परत परत अज्ञान छिपाई । मन भटक भटक भटकाई ॥

व्याख्या - कोई दूसरा बन्धन और मुक्ति देनेवाला नहीं होता है । इन दोनों का कारण तो स्वयं का मन ही होता है । मन में परत-दर-परत अज्ञान छिपा रहता है, जिससे मन भटकता रहता है ।

मन ही मन बन्धन हय भाई । उठि जागि मन लेयउ समुझाई ॥
निज स्वाद निज लहहिं मना । भल मन्द मन नहिं लच्छन तना ॥

व्याख्या - मन ही मन का बन्धन होता है, इसलिए हे जीव ! जाग कर मन को समझ लीजिए । मन ही मन का स्वाद लेता है । अच्छे-बुरे मन के लक्षण होते हैं, शरीर के नहीं ।

निज धारणा दुःख सुख पाई । अचरज जब परै समझाई ॥
निज भूलि निज परै उरझाई । निज खोजहिं सकइ निज पाई ॥

व्याख्या - स्वयं की धारणा से ही जीव को सुख-दुःख होता है । इसलिए जब समझ में आता है, तब बड़ा आश्चर्य होता है । जीव स्वयं को भूल कर स्वयं ही उलझ जाता है । इसलिए जो स्वयं को खोजते हैं, वे ही स्वयं को प्राप्त कर सकते हैं ।

दो०- आदत जाल कठिन अति कोई बिरला सकइ काट ।
अन्तर मन सफर जे करै सोइ पावइ मुक्ति जग तात् ॥ २०४ ॥

व्याख्या - आदतों का जाल बहुत कठिन होता है । इसलिए कोई विरला ही आदत के जाल को काट पाता है । जो अपने मन की अन्तर्यात्रा करता है, वही मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

नर नारी नहि कोउ काम मूला । मन माझ बसहिं काम त्रिशूला ॥
बाहिर चलत चराचर सारा । भीतर चलहिं तबहिं उद्यारा ॥

व्याख्या - स्त्री-पुरुष के शरीर काम के मूल नहीं होते हैं । काम तो त्रिगुणात्मक होकर मन में निवास करता है । संसार सब बाहर चलता है, परन्तु उद्धार तो मन के भीतर चलने पर ही होता है ।

वासना हेतु जीव जन्म पाई । निज ही निज जगत बनाई ॥
सब पर करहि मन सन्देहा । मन करै न कोउ अचरज ऐहा ॥

व्याख्या - वासना के कारण जीव का जन्म होता है । स्वयं जीव ही अपना संसार बना लेता है । मन सब पर सन्देह करता है । परन्तु आश्चर्य यह है कि मन पर कोई सन्देह नहीं करता है ।

मन चाल सदा वक्र सुहाई । मन रंग कोउ सकै न बुझाई ॥
मन विचार भव जाल बनाई । बिरथा तहँ जीव जाइ उरुझाई ॥

व्याख्या - मन की चाल सदा टेढ़ी होती है । इसलिए मन के रंग को कोई नहीं समझ पाता है । मन अपने भावों का जाल बना कर जीव को व्यर्थ में ही फँसा देता है।

मन हेतु सदा द्वेत उपजाई । मन अनुरूप जगत बनाई ॥
मन रखहहिं तर्क आधारा । पाव सकइ नहिं कोउ पारा ॥

व्याख्या - मन सदा द्वैत भाव पैदा करता है और मन अपने अनुरूप संसार बना लेता है । मन सदा तर्क को आधार बनाता है । इसलिए कोई मन को समझ नहीं पाता है ।

दो०- मन मतंग चालाक अति बिरला जानइ इहँ कोय ।
ध्यान करै तब भ्रम मिटै विगत भ्रम पहिचानइ सोय ॥ २०५ ॥

व्याख्या - मन बहुत मस्तान और चालाक होता है । इसलिए कोई विरला ही उसे जान पाता है । ध्यान करने पर ही मन का भ्रम मिट पाता है और तब ही मन की पहचान हो पाती है ।

मैं पिता अति सरल सुभाउ । सो मन नहिं चाहइ तहँ जाउ ॥
मय निकट खोजहहिं दूरी । सोइ रहहि सदा खोज अधूरी ॥

व्याख्या - मैं (परमपिता) तो बहुत सरल स्वभाव का हूँ । इसलिए मन मुझ परमात्मा के निकट नहीं जाना चाहता है । मैं होता तो निकट हूँ, परन्तु लोग खोजते दूर हैं, इसलिए खोज सदा अधूरी रह जाती है ।

सरल राह मन कबहुँ न चलाई । मय सरल सोइ नहिं तहँ जाई ॥
मैं आवहउँ सरल बनाई । पर मन नहिं विश्वास कराई ॥

व्याख्या - सीधे रास्ते पर मन कभी नहीं चलता है और मैं सरल होता हूँ, इसलिए मन मुझ परमात्मा के निकट नहीं जाना चाहता है । मैं परमात्मा तो सरल बन कर ही आता हूँ । परन्तु मन विश्वास ही नहीं कर पाता है।

योग्यता नहिं मोर मिलन आधारा । मन मुक्त देवहउँ सहारा ॥
मन दूरी मोहि देइ मिलाई । सरल राह इहँ हय भाई ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा से मिलने के लिए कोई योग्यता की जरूरत नहीं होती है । मन से मुक्त होने पर मैं स्वयं सहारा देने लग जाता हूँ । मन से दूर होने पर मुझसे जीव मिल जाते हैं । बस यही मेरे से मिलने का सरल रास्ता है ।

बिनु कारण मन अहंकारी । इन्द्रियादि बनाइ बहु द्वारी ॥
मन संग जेहि करहिं तुम बाता । देवहहिं नहिं जवाब वह ताता ॥

व्याख्या - बिना कारण के ही मन अहंकार करता रहता है और इन्द्रियों को अपना द्वार बना कर रखता है । मन से बातें करने पर, वह बातों का जवाब ही नहीं देता है ।

दो०- मन वक्र मन तर्क हय सत्य ते सदा रहइ दूर ।
जो चाहो कल्याण अपना तउ तजहु मन हजूर ॥ २०६ ॥

व्याख्या - मन टेढ़ा है और मन तर्क है तथा सदा सत्य से दूर रहता है । इसलिए अगर अपना कल्याण चाहते हो, तो मन रूपी मालिक को तुरन्त छोड़ दो ।

मन मैंगल अंकुश ध्याना । करहहिं वश होइ कल्याणा ॥
ग्यान भगति हस्ति आसन । समरपन मोहि करहिं शासन ॥

व्याख्या - मन रूपी हाथी के लिए ध्यान ही अंकुश होता है, इसलिए जो मन को वश में कर लेता है, उसका कल्याण हो जाता है । ज्ञान और भक्ति ही मन

रूपी हाथी के लिए आसन होते हैं तथा मुझ परमात्मा के आगे समर्पण करने पर ही मन रूपी हाथी पर शासन किया जा सकता है ।

एहि भाँति मन मैंगल वश आई । नहिं अन्य जतन ओशो बताई ॥
फूल अरु कलि नहिं किछु भेदा । तेसउ मय अरु जीव अभेदा ॥

व्याख्या - इस प्रकार मन रूपी हाथी वश में आ पाता है । ओशो कहते हैं कि मन को वश में करने का अन्य कोई उपाय नहीं है । फूल और कली में जैसे कोई अन्तर नहीं होता है, वैसे ही जीव और मुझ परमात्मा में भेद नहीं होता है ।

जीव कलि मय निरमल फूला । मानहिं मन मिटहिं त्रिशूला ॥
निन्दित जीव भगवत् पूजा । इहँ पाखण्ड नहि मरम दूजा ॥

व्याख्या - जीव कली और मैं परमात्मा निर्मल फूल की तरह होता हूँ। इस बात को मन जब मान लेता है, तब ही त्रिगुणात्मक कष्टों का निवारण हो जाता है । जो जीव की निन्दा और मुझ परमात्मा की पूजा करते हैं, वे लोग पाखण्ड ही करते हैं । इसका और कोई दूसरा रहस्य नहीं है ।

लगावहिं पण्डित बन्धन नाना । बढ़ावहि निस दिवस अज्ञाना ॥
रहहिं सहज होइ नहि पापा । पालहि भ्रम जीव आपहि आपा ॥

व्याख्या - पण्डित लोग नाना बन्धन लगा कर रात-दिन अज्ञान बढ़ाते रहते हैं । सहज रहने पर कोई पाप नहीं होता है । जीव तो अपने आप कल्पना करके भ्रम में पड़ता है ।

दो०- सकल कर्म प्रभु प्रेरित करें तब कैसे पाप घटाय ।
निज मन ग्लानि भयी सोइ पाप बनि प्रगटाय ॥ २०७ ॥

व्याख्या - जब सब कर्म परमात्मा की प्रेरणा से ही होते हैं, तो फिर पाप कैसे हो सकता है ? जीव के स्वयं के मन में ही ग्लानि होती है और वही पाप बन कर प्रकट होती है ।

सकल जगत खेला नर मादा । उभय मिलन प्रकृति अबाधा ॥
मिलहउँ मय अन्तर विश्रामा । बाढ़हहिं श्रम जानहउ कामा ॥

व्याख्या - समस्त संसार नर-नारी का खेल है और जब नर-नारी का मिलन हो जाता है, तब प्रकृति की सीमा छूट जाती है । मुझ परमात्मा से जब मिलन होता है, तो अन्तः स्थल में विश्राम आ जाता है तथा जब अन्तः स्थल में श्रम बढ़ने लगता है, तब उसे काम जानना चाहिए।

व्यष्टि समष्टि माझ धरमा । जानउ इहँ अनुभूति परमा ॥
व्यष्टि तहँ समष्टि समाई । सोइ धरम सत ओशो बताई ॥

व्याख्या - व्यष्टि और समष्टि के बीच में धर्म की घटना घटित होती है। इस परम अनुभूति को ओशो ने जाना। व्यष्टि जब समष्टि में समा जाती है, उसी अवस्था को ओशो ने सत् धर्म बताया है।

धरम एकहि सदा जग माहि। अवतरहिं इहँ मन बिसराहि ॥
निज अनुभव ओशो इहँ जाना। सोइ कहा जगत हेतु बखाना ॥

व्याख्या - धर्म सदा एक ही होता है। जो मन को भुलाने पर हृदय में अवतरित होता है। स्वयं के अनुभव से ओशो ने यह जान कर जगत के कल्याण के लिए बताया है।

स्वर्ग नरक सब मन माहिं। मन ही उभय कारण सुहाहिं ॥
ध्यान लगाई निज जानउ भाई। ओशो निज अनुभव बताई ॥

व्याख्या - स्वर्ग-नरक सब मन के अन्दर होते हैं और मन ही दोनों का कारण होता है। ओशो स्वयं का अनुभव बताते हैं कि ध्यान लगा कर स्वयं को जान लो।

दो०- ध्यान लगाई ग्यान मिलै ग्यान सब भ्रम मिटाय।
भ्रम मिटइ मन बस मन बस ब्रह्म प्रगटाय ॥ २०८ ॥

व्याख्या - ध्यान लगाने पर ज्ञान पैदा होने लग जाता है और ज्ञान पैदा होने पर सब भ्रम मिट जाता है तथा भ्रम मिट जाने पर मन वश में हो जाता है और मन वश में हो जाने पर हृदय में परमात्मा प्रकट हो जाते हैं।

सुनु सुत कहउँ पंथ ईसाई। करि अनुभूति जो यीशू बताई ॥
लगाइ ध्यान अनुभव कीन्हा। निज हियँ मोहि उनि चीन्हा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुम्हें ईसाई सम्प्रदाय के बारे में बताता हूँ, जो ईसा ने अनुभव करके बताया था। ईसा ने ध्यान लगा कर मुझे अनुभूत किया तथा स्वयं के हृदय में ही मुझे पहचाना था।

निज पुत्र मोहि पिता वह माना। सोइ कीन्ह समरपन सुजाना ॥
प्रथम उपदेश शिष्य पढ़ाही। देइब नहि जग झूँठी गवाही ॥

व्याख्या - उसने स्वयं को मेरा पुत्र और मुझे अपना पिता मान लिया। इसलिए ही मेरे सामने पूर्ण रूप से समर्पण कर दिया। शिष्यों को पहला उपदेश भी यही दिया कि संसार में झूठी गवाही मत देना।

बिनु अनुभव बोलहिं सुजाना। झूँठी गवाह सब ईसा माना ॥
सकल सृष्टि मोरइ रचना। कहा ईसा इहँ सत्य बचना ॥

व्याख्या - बिना अनुभव के जो बोलते हैं, ईसा ने उस सबको झूठी गवाही देना माना है। समस्त सृष्टि मुझ परमात्मा से पैदा हुई है, ईसा ने यह सत्य बताया है।

चिन्ता नरक सुख सर्ग बताई। भल मन्द कर्म राह जनाई ॥
स्वर्ग न पावइ नर धनवन्ता। उपदेशा इहँ ईसा भनन्ता ॥
व्याख्या - चिन्ता ही नरक होती है तथा सुख ही स्वर्ग होता है तथा अच्छे-बुरे कार्य ही स्वर्ग-नरक के रास्ते होते हैं। ईसा ने यह उपदेश दिया है कि धनवान आदमी कभी भी स्वर्ग नहीं भोग सकता है।

धन अरु चिन्ता संग सुहाई। तब कैसे स्वर्ग सकइ पाई ॥
धनवंत जेहि होवइ त्यागी। करहहिं दान परहित लागी ॥
व्याख्या - धन और चिन्ता का तो अटूट मेल होता है, तब धनवान को स्वर्ग कैसे मिल सकता है ? अगर कोई धनवान त्यागी होता है और परोपकार के लिए दान करता है।

तो सम्भव किछु सुख पाई। नहिं कोटि जतन अरु उपाई ॥
यश हेतु करइब नहीं काजा। परहित करउ तजि सब लाजा ॥
व्याख्या - तब कुछ सुख प्राप्त करना सम्भव हो सकता है, वरना करोड़ों प्रयास करने पर भी सुख का कोई उपाय नहीं है। इसलिए यश प्राप्त करने के लिए कार्य नहीं करना चाहिए और सब लज्जा छोड़कर परहित करना चाहिए।

दो०- यश हेतु पुण्य जेहि करहि यश ही फल बनि मिल जाय।
फल मिलहिं पुण्य चुकहिं नहिं किछु तहँ बच पाय ॥ २०९॥
व्याख्या - जो यश की इच्छा से पुण्य कार्य करते हैं, उनको यश के रूप में ही फल की प्राप्ति हो जाती है, जिससे कर्म का फल मिल जाता है और शेष कुछ नहीं बच पाता है।

प्रेम सोहार्द सद व्यवहारा। सहज सुभाव हो इहँ आचारा ॥
यश छाड़ि करहिं जेहि दया दाना। तिन्ह प्रसन्न होउँ मैं भगवाना ॥
व्याख्या - प्रेम, सौहार्द व अच्छा व्यवहार तथा सहज स्वभाव का आचरण हो और यश की इच्छा छोड़ कर दया-दान करते हों, उन पर मैं प्रसन्न होता हूँ।

जन्म मरण किछु नहिं भाई। मोह उभय मूल यीशू बताई ॥
क्षमा मैत्री सम नहिं कोउ आचारा। निज आचरहिं ईसा पुकारा ॥
व्याख्या - जन्म व मृत्यु कुछ भी नहीं है। इन दोनों का मूल कारण ईसा ने मोह को बताया है। क्षमा और मैत्री भाव के आचरण के समान कुछ नहीं है। ईसा ने स्वयं आचरण करके यह बताया है।

दीन दरिद्र जे करहिं सेवकाई। तिन्ह सम नहिं भल कोउ भाई ॥
समरप भाव रखहहिं हियँ माहीं। मोहि पितु जानि भरोस सदाहीं ॥

व्याख्या - जो दीन-दरिद्रों की सेवा करते हैं, उनके समान कोई अच्छा नहीं होता है तथा मेरे प्रति सदा समर्पण का भाव रखना चाहिए तथा मुझे पिता जान कर सदा भरोसा रखना चाहिए ।

क्रोध मद मत्सर लालच लोभा । सकल हृदय ऐहि करहिं क्षोभा॥
सकल त्याज्य ईसा समझाई । मोर शरण सोइ करहि भलाई ॥

व्याख्या - क्रोध, मद, मत्सर, लोभ सबके हृदय में क्षोभ पैदा करते हैं। इसलिए ईसा समझा कर कहते हैं कि ये सब त्याग करने योग्य हैं तथा मेरी शरण ही भलाई करने वाली है ।

सहज करुणा परहित भावा । धन्य जेहि एहि अनुसरावा ॥
यश नहिं लेहि करइ उपकारा । तेही जनु देवदूत ईसा पुकारा ॥

व्याख्या - जो सहज करुणा और परोपकार के भावों का अनुसरण करते हैं, वे लोग धन्य हैं । जो यश की अनिच्छा से परोपकार करते हैं, उन लोगों को ईसा ने देवदूत कहा है।

दो०- यश अनिच्छा मन रखहिं करहहिं गुप्त दया दान ।
दुश्मन तउ बुरा न सोचहिं ईसा कहा मोर प्रिय सन्तान ॥ २१० ॥

व्याख्या - जो यश की अनिच्छा रखते हैं और गुप्त रूप से दया व दान के कर्म करते हैं और दुश्मन का भी बुरा नहीं सोचते हैं, उन्हीं को ईसा ने मेरी प्रिय सन्तान बताया है ।

जगत सकल ईश सन्ताना । ऊँच नीच भाव जानि अग्याना ॥
पंथ भ्रम नहिं ईसा उरझाई । जाना मोहि हियँ ध्यान लगाई ॥

व्याख्या - समस्त संसार मुझ परमात्मा की सन्तान है तथा ऊँच-नीच के भाव तो अज्ञान हैं । इसलिए ईसा पंथ आदि के भ्रम में नहीं पड़ा और अपने हृदय में ही ध्यान लगा कर मुझे जान लिया ।

धर्म नाम लेइ करहि पाखण्डा । ईसा कहा तिन्ह असुर चण्डा ॥
समर्पण सोइ धरम मूला । शरण मोर हरहि भव शूला ॥

व्याख्या - जो धर्म का नाम लेकर पाखण्ड करते हैं, उनको ईसा ने असुर व चण्डाल कहा है । समर्पण को ही धर्म का मूल बताया है तथा मेरी शरण ही समस्त भव दुःखों को दूर करती है ।

समर्पण सोइ भगति कहाई । ईसा इहँ जन जन समुझाई ॥
बिनु दया दान जीव धनवंता । नहिं संशय नरक भोगन्ता ॥

व्याख्या - समर्पण ही भक्ति कहलाता है, यह ईसा ने जन-जन को समझाया है । बिना दया व दान के धनवान आदमी चिन्ता रूपी नरक भोगता है ।

बिनु शिक्षा जीव पशु समाना। व्यभिचारी सोइ अरि इन्साना ॥
जिन्ह हियँ विनय भाव सुहाई। तिन्ह हेतु द्वार स्वर्ग खुलाई ॥

व्याख्या - बिना शिक्षा के जीव पशु के समान होता है और जो व्यभिचारी होता है, वही इन्सानियत का दुश्मन होता है। जिनके हृदय में विनय के भाव रहते हैं, उनके लिए स्वर्ग का द्वार खुला रहता है।

दो०- इन्सान से बड़ी इन्सानियत इन्सानियत सोइ सुख धाम।
सुख सोई स्वर्ग सम्पदा ईसा दीन्ह इहँ जन पैगाम ॥ २११ ॥

व्याख्या - इन्सान से बड़ी इन्सानियत होती है तथा इन्सानियत ही सुख देने वाली है तथा सुख ही स्वर्ग की सम्पदा होता है। ईसा ने यह जन-जन को समझाया।

लोलुप लम्पट चोर जुआरी। कहा ईसा ऐ नरक अधिकारी ॥
हरहिं जेहिं परधन परनारी। तेउ सपनेउ नहिं होहिं सुखारी ॥

व्याख्या - ईसा ने कहा है कि लोलुप, लम्पट, चोर और जुआरी, ये सब नरक के अधिकारी होते हैं। जो लोग पराए धन व परायी स्त्री का हरण करते हैं, वे सपने में भी सुखी नहीं हो पाते हैं।

बिनु हेतु जेहि दूसर सताई। दुष्ट जन सो असुर आतताई ॥
मन मलिन परनिन्दा कराई। तिनते रहउ दूर ईसा बताई ॥

व्याख्या - जो बिना कारण के दूसरों को सताते हैं, वे दुष्ट, असुर और अत्याचारी होते हैं तथा जिनके मन मलिन रहते हैं, वे परायी निन्दा करते हैं। अतः ईसा इन सबसे दूर रहने को कहते हैं।

चाह मन मान करहिं अपमाना। ते जनु मूढ़ विरोधी इन्साना ॥
विनय विवेक नहिं हियँ माही। तेहि जनु जाल कटुता फँसाही ॥

व्याख्या - जिनके मन में सम्मान प्राप्त करने की इच्छा होती है, परन्तु जो दूसरों का अपमान करते हैं, वे मूर्ख लोग इन्सानियत के विरोधी होते हैं। जिनके हृदय में विनय व विवेक नहीं होता है, वे ही कटुता के जाल में फँसते हैं।

निःस्वार्थ जेहि करहि सेवकाई। अपरिमित पुण्य तेहि जनु पाई ॥
रखहिं सहज जेहि सेवा भावा। सोइ सत इन्सान देव कहावा ॥

व्याख्या - जो निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं, उनको बहुत पुण्य की प्राप्ति होती है तथा जो सहज होकर सेवा का भाव रखते हैं, वे ही सच्चे इन्सान व देवता कहलाते हैं।

दो०- निर्भय निर्द्वन्द सेवा करहि जाति पंथ सब भेद भुलाय।
सोइ इन्सान फरिश्ता हय सोइ ईसा अनुयायी कहाय ॥ २१२॥

व्याख्या - जो निर्भय व निर्द्वन्द होकर जाति व पंथ का भेदा भुला कर सेवा

करते हैं, वे इन्सान ही फरिश्ता होते हैं तथा वे ही ईसा के सच्चे अनुयायी हैं ।

बोद्ध धर्म सुत कहउ कहानी । जेहि विधि भा गौतम ब्रह्म ग्यानी ॥
प्रारब्ध हेतु गौतम जन्माई । राजपुत्र होइ सब सुख पाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं तुम्हें बौद्ध धर्म को समझा कर कहता हूँ कि गौतम बुद्ध को किस प्रकार ब्रह्म ज्ञान हुआ । प्रारब्ध के कारण गौतम बुद्ध का जन्म हुआ और राजा का पुत्र होकर सब सुखों का भोग किया ।

भयउ किशोर देखि सुख सारा । वैभव विलास भोगहिं अपारा ॥
सपनेउ आवइ नहिं दुःख विचारा । प्रबल सदा जन्म संस्कारा ॥

व्याख्या - समस्त सुखों में गौतम बड़े हुए और अपार सुख-वैभव का भोग किया । स्वप्न में भी दुःख का विचार नहीं आता था । परन्तु जन्म के संस्कार प्रबल होते हैं।

समय पाइ मन भयउ बिरागी । सुख चुभन अब होवन लागी ॥
नगर भ्रमण निकसा राजकुमारा । मृत रोगी वृद्ध साधु देखहिं तारा ॥

व्याख्या - समय आने पर मन में वैराग्य होने लग गया । जिससे सुखों की चुभन होने लग गयी । एक दिन राजकुमार नगर भ्रमण के लिए निकला, तो रास्ते में मृत, रोगी, बूढ़ा और एक साधु देखा ।

देखि दृश्य मन भयी ग्लानी । जागा वैराग्य समय अनुमानी ॥
बिराग अंकुर अब फूटन लागा । सोवत मोह निसा अब जागा ॥

व्याख्या - इन दृश्यों को देख कर मन में ग्लानि हो गयी तथा समय आ जाने के कारण वैराग्य भाव जाग उठा । वैराग्य का अंकुर अब उगने लग गया तथा मोह रूपी रात्रि से गौतम अब जाग उठा ।

दो०- मन ग्लानि प्रबल भयी उठन लगै अब नाना विचार ।
फूल कंटक सम लगहि उठा हिय विराग अपार ॥ २१३ ॥

व्याख्या - अब मन में प्रबल ग्लानि पैदा हो गयी, जिससे नाना विचार आने लग गये तथा फूल रूपी सुख भी काँटों की तरह लगने लग गये तथा हृदय में वैराग्य पैदा होने लग गया ।

गृह त्यागा अब समय पाई । पहुँच बन खण्ड मोहि खुजाई ॥
जप तप करहि नाना विधाना । तउ न पावइ मोर सन्धाना ॥

व्याख्या - अवसर देख करके गौतम ने गृह त्याग कर दिया और वन में जाकर मेरी खोज करने लगा । जप, तप आदि नाना प्रयास करने लगा । परन्तु फिर भी मेरी खोज नहीं मिली ।

भयउ दुखित ग्लानि गम्भीरा। नियम संयम पाला धरि धीरा ॥
तजि अहार कीन्ह तप अपारा। तबहउ न मिलहिं करतारा ॥

व्याख्या - गौतम के हृदय में बहुत ग्लानि हो रही थी परन्तु धैर्य रखकर नियम-संयम का पालन किया। अन्न-जल का त्याग करके कठोर तप किया। फिर भी मुझ परमेश्वर की खोज नहीं मिली।

तन खिन्न भयउ सूखी लकरी। विषय वासना अबहु जकरी ॥
बहु काल नित समाधी लगाई। तबहउ न मिला जगत गुसांई ॥

व्याख्या - शरीर सूखी लकड़ी की तरह हो गया। परन्तु विषय-वासनाओं का बन्धन नहीं हटा। बहुत समय तक नित्य समाधी लगाने का अभ्यास किया। फिर भी मुझ जगतेश्वर की खोज नहीं मिली।

हारि थकि उनि भयउ उदासी। तजै नियम जानि गल फाँसी ॥
आहार विहार करन अब लागा। रखि मोर चरण अनुरागा ॥

व्याख्या - हार-थक करके वह उदासी हो गया और नियम आदि को गले की फाँसी समझ कर छोड़ दिया। अब उसने मेरे चरणों में प्रीतिपूर्वक अनुराग रख कर आहार लेना शुरू कर दिया।

दो०- आशा लता मुरझाने लगी मोर चरण उठा प्रबल अनुराग।
सहज ही सहज सहजता बढ़ी गौतम बुद्ध गयउ अब जाग ॥ २१४ ॥

व्याख्या - अब आशा-अपेक्षाएँ रूपी बेल मुरझाने लग गयी तथा मेरे चरणों में प्रबल अनुराग पैदा होने लग गया। अब सहज ही सहजता बढ़ने लगी तथा गौतम बुद्ध अब जाग उठा।

मन शान्त स्वच्छन्द आकाशा। पीपर गाछ बह मधुर बातासा ॥
शीत न घाम तिथि पूरण मासी। पीपर तरु बैठहि सहज उदासी ॥

व्याख्या - पीपल का वृक्ष था तथा मधुर-मधुर हवा चल रही थी। पूर्णिमा की रात्रि थी, न गर्म न ठण्ड थी तथा गौतम बुद्ध सहज में ही जगत से उदासीन होकर पीपल के नीचे बैठे हुए थे।

पीपर पूजन सुजाता तहँ आई। बैठउ गौतम आसन लगाई ॥
श्रद्धा सह सुजाता पायस दीन्ही। सहज स्वभाव गौतम लीन्ही ॥

व्याख्या - गौतम बुद्ध आसन लगा कर बैठे हुए थे। तभी सुजाता नाम की नारी पीपल वृक्ष की पूजा करने के लिए आयी। सुजाता ने श्रद्धापूर्वक खीर दी, तो गौतम ने सहजता पूर्वक ले ली।

खाइ पायस अब ध्यान लगाई । सहजहि चिंतन अनन्त समाई ॥
लगा ध्यान उमगा अनुरागा । सदा हेतु अब गौतम जागा ॥

व्याख्या - खीर खाकर गौतम बुद्ध ने ध्यान लगाया और सहजता से ही अनन्त के चिन्तन में समा गया । अब गौतम बुद्ध का ध्यान लग गया और उसके हृदय में अनुराग पैदा हो गया तथा अब वह सदा के लिए जाग गया।

हियँ प्रगट भयउ मैं सुजाना । कीन्ह अनुभव परम ग्याना ॥
गौतम हियँ अब भयउ बोधा । विगत काम क्रोध मोह मद लोभा ॥

व्याख्या - अब मैं गौतम बुद्ध के हृदय में प्रकट हो गया । जिससे उसने अपने हृदय में परम ज्ञान की अनुभूति कर ली । गौतम बुद्ध के हृदय में अब बोध हो गया । जिससे सब काम, क्रोध, मद,मोह व लोभ आदि के भाव मिट गये।

दो०- पल में ब्रह्माण्ड समझा आत्मा परमात्मा भ्रम मिटाय ।
बूँद समाई समुद्र में अब काहे कैसे भिन्न बताय ॥ २१५ ॥

व्याख्या - पल भर की अनुभूति में समस्त ब्रह्माण्ड समझ में आ गया और आत्मा-परमात्मा का भ्रम भी मिट गया । अब बूँद समुद्र में समा गयी, तो कौन किसे अलग बता सकता है ?

जगत मूल समझा मन माहिं । निज छाड़ि अरु कोउ दूसर नाहिं ॥
सुख दुःख मूल सब मन भाई । करि बोध बुद्ध जगत बताई ॥

व्याख्या - जगत के मूल को स्वयं के मन में समझ लिया कि स्वयं के अलावा संसार में दूसरा कोई नहीं है । सुख-दुःख की जड़ भी मन ही होता है । इसी की अनुभूति करके बुद्ध ने समस्त संसार को बताया ।

भयउ अद्वैत निजहिं भुलाई । सरिता जिमि सागर जाइ मिलाई ॥
सरल सुगम जग राह दिखाई । भयउ शान्त वासना मिटाई ॥

व्याख्या - स्वयं को भुला करके गौतम बुद्ध मुझसे अद्वैत हो गया । जैसे नदी सागर में मिल कर अद्वैत हो जाती है । गौतम बुद्ध की वासना मिट जाने से वह परम शान्त हो गया और संसार को सुगम व सरल रास्ता दिखाया ।

मारग मध्यम उत्तम बताई । निज अनुभव इहँ जानि सबाई ॥
वासना त्याग सोई सुख मूला । भल सदाचार रखहिं शीला ॥

व्याख्या - स्वयं बुद्ध ने सब अनुभव करके बताया कि मध्यम मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग होता है तथा वासनाओं के त्याग से ही सुख की प्राप्ति होती है तथा सदाचार व शीलता रखना ही अच्छा होता है ।

बुद्ध साधना हय श्वास मूला । अनुभवहिं जेहि मिटै त्रिशूला ॥
ऊँच नीच नहिं किछु जाति भेदा । जानहिं निज मिटहिं सब खेदा ॥

व्याख्या - बुद्ध की साधना का मूल है श्वास । जो भी अपनी श्वास की अनुभूति करते हैं, उनके त्रिगुणात्मक कष्टों का निवारण हो जाता है। बुद्ध की साधना में ऊँच-नीच व जाति आदि का कोई भेदभाव नहीं होता है । जो भी स्वयं को जान लेते हैं, उनके ही कष्टों का निवारण हो जाता है ।

दो०- सदाचार व्यवहार करइ नहिं विषय जाल लिपटाय ।
सहज रहइ श्वास जपै कहहि बुद्ध भव तर जाय ॥ २१६ ॥

व्याख्या - बुद्ध कहते हैं कि जो सदाचार का व्यवहार करते हैं और विषय-वासनाओं के जाल में नहीं फँसते हैं तथा सहज रह कर श्वास की अनुभूति करते हैं, वे सहज में ही भवसागर पार कर जाते हैं ।

बिरथा करहि न वाद विवादा । निज छाड़ि जग नहिं किछु ज्यादा ॥
जीव निज सुख दुख कारण भाई । निजहिं बन्धन मुक्ति पाई ॥

व्याख्या - स्वयं को छोड़ कर संसार में कुछ नहीं है । इसलिए व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए । जीव स्वयं ही स्वयं के सुख का कारण होता है और स्वयं ही बन्धन या मुक्ति प्राप्त करता है ।

जन्म मरण चिंतन काह लाभा । सहज सुख सोइ जीवन आभा ॥
सकल जीव मोच्छ अधिकारी । करहिं साधना होइ जीव सुखारी ॥

व्याख्या - जन्म-मरण के चिन्तन का क्या लाभ है ? क्योंकि सहज सुख प्राप्त करना ही जीवन की सार्थकता है । सभी जीव मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं । इसलिए जो जीव साधना करते हैं, वे ही सुखी हो जाते हैं ।

जीवत जी मोच्छ संभव भाई । छूटहहिं प्राण प्राणहिं समाई ॥
सोइ बुद्ध कहा सरल संदेशा । परलोक न परहहिं अंदेशा ॥

व्याख्या - जीवित रहने पर ही मोक्ष सम्भव होता है । क्योंकि प्राण निकल कर तो प्राण में ही समा जाते हैं । इसलिए बुद्ध ने संसार को सरल संदेश दिया कि परलोक के अँधेरे में नहीं पड़ना चाहिए ।

सम्यक पथ सोइ राह दिखाई । सत्य शील इहँ आधार बताई ॥
बोलहिं मधुर सत्य विचारी । करहिं न संग्रह सदा ब्रह्मचारी ॥

व्याख्या - बुद्ध ने सम्यक पथ बताया तथा सत्य व शील इसके आधार बताये । विचार करके मधुर सत्य बोलना चाहिए और कभी संग्रह नहीं करना चाहिए तथा सदा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

दो०- सम्यक आहार विहार सब सम्यक दृष्टि रखाय ।
सम्यक साधना उत्तम अति सहज हि ग्यान उमगाय ॥ २१७ ॥

व्याख्या - सम्यक आहार व विहार होना चाहिए तथा सम्यक दृष्टि रखनी चाहिए । सम्यक

मार्ग की साधना उत्तम होती है। जिससे सहज में ही ज्ञान पैदा हो जाता है।

बोध करि गौतम बुद्ध सुहाई। जन्म मरण बन्ध दियउ कटाई ॥
एहि भाँति बुद्ध साधना कीन्ही। सहज ही परम पद लीन्ही ॥

व्याख्या - अनुभूति का बोधकर गौतम बुद्ध हो गये तथा जन्म-मरण के बन्धन को काट लिया। इस प्रकार बुद्ध ने साधना की तथा सहज में ही परम पद प्राप्त कर लिया।

अब कहउँ सुत महावीर प्रसंगा। बन्धन मुक्त भयउ अनंगा ॥
जन्म लीन्ह राज परिवारा। नाम बर्धमान विप्र संवारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब मैं महावीर के प्रसंग का वर्णन करता हूँ कि वह किस प्रकार बन्धन मुक्त होकर देहाभिमान से मुक्त हो गये। उसने राज परिवार में जन्म लिया और ब्राह्मणों ने बचपन का नाम वर्धमान रखा।

प्रारब्ध वश भोग सब कीन्हा। बयस तीस बिराग जन्म लीन्हा ॥
मातु पितु परलोक सिधाई। सुजोग तेई घर दियउ तजाई ॥

व्याख्या - प्रारब्ध के अनुसार समस्त भोग भोग लिये। फिर तीस वर्ष की उम्र में वैराग्य पैदा होने लग गया। उसी समय माता-पिता की मृत्यु हो गयी और इसी सुयोग में वर्धमान ने गृह-त्याग कर दिया।

मन्त्र दीक्षा लीन्ह णमोकारा। जप तप ध्यान कीन्ह अपारा ॥
मन्त्र जाप नित्य करहिं ध्याना। कर्म मरम समझइ तब नाना ॥

व्याख्या - उन्होंने णमोकार मन्त्र की दीक्षा ली और कठोर जप, तप व ध्यान साधना की। वह नित्य मन्त्र-जाप और ध्यान का अभ्यास करने लगा, जिससे कर्म का रहस्य समझ में आने लग गया।

करत करत ध्यान अभ्यासा। नर मादा भेद मिटा अनयासा ॥
बसन त्याग बर्द्धन कीन्हा। सहज भ्रमण मारग लीन्हा ॥

व्याख्या - ध्यान का अभ्यास करने से अचानक स्त्री-पुरुष का भेद मिट गया। जिससे वर्धमान ने वस्त्रों का त्याग कर दिया और वह सहज होकर भ्रमण करने लगा।

अबहु रहहहि प्रारब्ध शेषा। ताइ हेतु भोगइ नाना क्लेषा ॥
तप जन्य मिटै मन विकारा। प्रारब्ध वश तन कष्ट आपारा ॥

व्याख्या - परन्तु अभी भी प्रारब्ध शेष था, इसलिए नाना कष्ट उठाये। तप के कारण मन के विकार तो मिट गये, परन्तु प्रारब्ध के कारण शरीर ने बहुत कष्ट भोगे।

दो०- जब लगि प्रारब्ध मुक्ति नहिं महावीर जाना हियँ विचार।
बिनु मुक्ति सुख न मिलइ इहँ सिद्धान्त कीन्ह प्रचार ॥ २१८॥

व्याख्या - जब तक प्रारब्ध शेष नहीं होता है, तब तक मुक्ति नहीं मिलती है। महावीर ने यह अपने हृदय में जान लिया कि बिना मुक्ति के सुख नहीं मिलता है, इसलिए इस सिद्धान्त का महावीर ने प्रचार किया ।

पाछिल जन्म वह नृप सुहाई । भ्रम वश सजा निर्दोष दिलाई ॥
सोइ प्रगट भयउ संस्कारा । भोग अवधि अब भयी दीदारा ॥

व्याख्या - पिछले जन्म में भी महावीर राजा ही था और उस समय भ्रम वश एक निर्दोष को सजा दे दी थी । वही संस्कार अब प्रकट हो गया और भोग का समय आने पर सामने आ गया ।

ध्यान मगन बैठउ महावीरा । दुर्जन आयउ एक देवन पीरा ॥
कील लेइ कर्ण दीन्ह घुसाई । महावीर भा पर ध्यान मगनाई ॥

व्याख्या - महावीर एक दिन ध्यान में बैठे हुए था, तो उस समय कष्ट देने के लिए एक दुष्ट व्यक्ति आया और उसने कील लेकर महावीर के कानों में घुसा दी । परन्तु महावीर तो ध्यान में मग्न था ।

पाछिल प्रारब्ध फल अब पाई । विधि विधिना टरै न टराई ॥
सहसा हियँ ग्यान प्रगटाई । मिटा प्रारब्ध मुक्ति अब पाई ॥

व्याख्या - पिछले जन्म के प्रारब्ध का महावीर को फल मिल गया । विधि का विधान टालने से भी नहीं टलता है । अब महावीर का प्रारब्ध पूरा हो गया । जिससे अचानक उसके हृदय में ज्ञान प्रकट हो गया।

विगत पीरा भयउ उल्लासा । मिटा तम हुआ ग्यान प्रकासा ॥
मिटेउ भरम परम पद पाई । निमिषइ समझा मोर रचनाई ॥

व्याख्या - अब सब कष्ट मिट गया और आनन्द छा गया तथा अन्धकार नष्ट हो गया और ज्ञान का प्रकाश हो गया । भ्रम के मिट जाने से परम पद प्राप्त कर लिया और क्षण भर में उसको मेरी सृष्टि समझ में आ गयी ।

दो०- विगत कल्मष पावन भया चित्त परम शान्त सुहाय ।
आवागमन सब चक्कर कटा महावीर अनन्त समाय ॥ २१९ ॥

व्याख्या - कल्मष मिट जाने से महावीर पवित्र हो गया तथा चित्त परम शान्त हो गया और जन्म-मरण का चक्कर कट गया तथा वह अनन्त में ही समा गया।

आत्म मय जाना सकल संसारा । दया प्रेम अहिंसा कहा आचारा ॥
कर्म सकल बंध कारण बताई । सोइ पावन कर्म कहा सुखदाई ॥

व्याख्या - समस्त संसार को उसने आत्मामय जाना तथा प्रेम, दया व अहिंसा के आचरण की बात कही । कर्म को ही बन्धन का कारण बताया और पवित्र

कर्म को सुख देने वाला बताया ।

जड़ चेतन सकल आत्मा जानी । ब्रह्ममय जानि भयउ ब्रह्म ज्ञानी ॥
मंगल भावना उत्तम बताई । जाति पाँति ऊँच नीच किछु नाई ॥

व्याख्या - उसने जड़-चेतन सब को ही आत्मा माना । इसलिए सबको ब्रह्ममय जान कर, वह ब्रह्म ज्ञानी हो गया । मंगल भावना रखना उत्तम बताया तथा जाति-पाति व ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं किया ।

अहिंसा अपरिग्रह सत्यमधुरा । अचौर्य आदि बिनु धर्म अधुरा ॥
ईश्वर एक नहिं दूसर कोई । जीव बंधन मुक्ति कारण होइ ॥

व्याख्या - अहिंसा, अपरिग्रह, मधुर सत्य, अस्तेय आदि के बिना धर्म पूर्ण नहीं होता है । ईश्वर एक ही होता है तथा जीव ही बन्धन व मुक्ति का कारण होता है ।

नाम जप अरु ध्यान अभ्यासा । कहहि साधन मोच्छ सुपासा ॥
राग द्वेष तजइ जीव जोई । नहिं संशय मुक्ति पावइ सोई ॥

व्याख्या - नाम-जप और ध्यान का अभ्यास ही मोक्ष प्राप्त करने का साधन बताया तथा जो राग-द्वेष का त्याग कर देते हैं, वे जीव मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं । इसमें संदेह नहीं है ।

दो०- णमोकार मन्त्र मूल कहा श्वास कहा ध्यान आधार ।
सद्आचरण सहायक भक्ति महावीर कहा निज विचार ॥ २२० ॥

व्याख्या - महावीर ने अपने हृदय में विचार करके णमोकार मन्त्र को मूल मन्त्र बताया तथा श्वास की अनुभूति को ध्यान का आधार बताया तथा सद् आचरण को भक्ति करने में सहायक बताया ।

ईश्वर एक आत्मा अनेका । निज हियँ उपजा इहँ विवेका ॥
नारी पुरुष भेद जब लगि भाई । मन जानहउ रहा काम छुपाई ॥

व्याख्या - महावीर के स्वयं के हृदय में यह विवेक पैदा हो गया कि ईश्वर एक है तथा आत्मा अनेक हैं । नारी-पुरुष का भेद जब तक मन में रहता है, तब तक जानना चाहिए कि मन में काम छिपा हुआ है।

विगत काम मिटहिं सब भेदा । विगत भेद रहइ न खेदा ॥
बन्धन कारण हय मोह मूला । मिटहहिं मोह जीव निर मूला ॥

व्याख्या - जब काम मिट जाता है, तब भेद मिट जाते हैं और सब भेद मिट जाने पर समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है । बन्धन का कारण मोह की जड़ होती है । अतः मोह मिट जाने पर जीव मुक्त हो जाता है।

प्रारब्ध जीव संग रह सदाई। जब लगि प्रारब्ध जीव जन्माई ॥
सदाचरण करहिं जेहि जीवा। बन्धन गत पावहिं पद सीवा ॥

व्याख्या - प्रारब्ध हमेशा जीव का साथ देती रहती है। इसलिए जब तक प्रारब्ध होता है, तब तक जीव जन्म लेता रहता है। जो जीव सद्आचरण करते हैं, वे बन्धन मुक्त होकर कल्याणकारी पद को प्राप्त कर लेते हैं।

मंगल भावना रखहि मन माहीं। तिन्ह जग दुर्लभ किछु नाहीं ॥
सकल जीव मोच्छ अधिकारी। नहिं भेद किछु पुरुष अरु नारी ॥

व्याख्या - जो मन में मंगल भावना रखते हैं, उनको संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। सभी जीव मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, वहाँ स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं होता है।

दो०- बन्धन अरु मोच्छ सब कहा महावीर मन विचार ।
राग-द्वेष दुःख मूल हय सुख मूल विगत विकार ॥ २२१ ॥

व्याख्या - महावीर ने बन्धन और मोक्ष सब मन के विचार बताये हैं तथा राग-द्वेष को दुःख का मूल और विकारों से मुक्त होना ही सुख का मूल बताया है।

दो०- बंग भूमि पावन अति तहँ जन्म बहु सन्त लीन्ह ।
मोहि समझ निज हियँ ते जन जन संदेशा दीन्ह ॥ २२२ ॥

व्याख्या - बंग प्रदेश की भूमि बहुत पवित्र है। जहाँ पर बहुत से सन्तों ने जन्म लिया है और मुझ परमेश्वर को स्वयं के हृदय में समझ कर जन-जन को बताया है।

निश्छल सन्त भये लोक नाथा। बंग भूमि तिन्ह अपरिमित गाथा ॥
जीवत जी मोच्छ उनि पाई। विगत भ्रम समता हियँ आई ॥

व्याख्या - एक बहुत निर्मल सन्त हुए लोकनाथ, जिनकी बंग भूमि पर बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। उन्होंने जीवित ही मोक्ष प्राप्त कर लिया। जिससे समस्त भ्रम मिट गया और हृदय में समता का भाव आ गया।

ऊँच नीच उनि कीन्ह न भेदा। सहज दयाल हरइ जन खेदा ॥
एकहि ब्रह्म जग दूसर नाहीं। निज घट समझ सकल बताहीं ॥

व्याख्या - उन्होंने ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं किया और जन-जन के दुःखों का सहज में ही निवारण किया। जगत में एक ही ब्रह्म है, इसको स्वयं के हृदय में जान कर सब लोगों को बताया।

जाति पाँति सब खण्डन कीन्हा। निज घट खोज सन्देशा दीन्हा ॥
गुरु सुमरि मन्त्र रां जपाई। निज हियँ लोकनाथ सब पाई ॥

व्याख्या - उन्होंने जाति-पाति का खण्डन किया तथा मुझ परमेश्वर को स्वयं के हृदय में खोजने का सन्देश दिया। लोकनाथ ने गुरु का स्मरण करके राम मन्त्र का जाप किया। जिससे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर ली।

अष्ट सिद्धि करतल लीन्ही। भयउ सहज सब तजि दीन्ही ॥
राग द्वेष उभय बन्धनकारी। कहा लोकनाथ पुकारी पुकारी ॥

व्याख्या - उन्होंने अष्ट सिद्धियों को प्राप्त कर लिया। परन्तु सहज होकर सब सिद्धियों का भी परित्याग कर दिया। लोकनाथ ने सबको बताया कि राग-द्वेष दोनों बन्धन के कारण हैं।

दो०- निर्मल मन विगत विषय गुरु चरण अटल विश्वास।
गुरु मन्त्र जाप नित करहिं मिलहिं ब्रह्म सहज प्रयास ॥ २२३ ॥

व्याख्या - विषयों को छोड़ कर मन निर्मल करके गुरु के चरणों में अटल विश्वास रखते हुए, नित्य गुरु मन्त्र का जप करने पर सरलता से ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

तप आधार प्रकृति बस कीन्ही। निज आत्मा निज घट चीन्ही ॥
तजि विषय मदादि अहंकारा। भयउ लोकनाथ निरन्कारा ॥

व्याख्या - लोकनाथ ने तप से प्रकृति को अपने वश में कर लिया और स्वयं के हृदय में ही स्वयं की आत्मा को पहचाना। वे विषय विकार, मद व अहंकार आदि को त्याग कर स्वयं निराकार में समा गये।

सहज तजइ काम क्रोधादि भावा। ब्रह्म जानि ब्रह्म गयउ समावा ॥
जन्म मरण सब बन्ध कटाई। अजर अमर परमपद पाई ॥

व्याख्या - उन्होंने सहज में ही काम व क्रोध आदि भावों को छोड़ दिया तथा ब्रह्म को जान कर, वे ब्रह्ममय ही हो गये। उन्होंने जन्म-मरण के सब बन्धन काट दिये और परम पद को प्राप्त कर लिया।

मान अपमान तजा अभिमाना। भयउ लोकनाथ मोर समाना ॥
वसन सम जानि निज शरीरा। बिसरइ सुख दुःख सब पीरा ॥

व्याख्या - मान-अपमान के अभिमान को छोड़ कर लोकनाथ मुझ परमात्मा के समान ही हो गया तथा शरीर को वस्त्र के समान जान कर समस्त सुख-दुःखों की पीड़ा को भी छोड़ दिया।

पंथादि सकल भरम मिटाई। सकल चराचर ब्रह्म बताई ॥
सोहम्‌ वृत्ति कीन्ह अखण्डा। भयउ लोकनाथ परम प्रचण्डा ॥

व्याख्या - पंथ आदि का सब अज्ञान मिट गया। इसलिए समस्त चराचर में एक ही ब्रह्म को व्याप्त बताया। लोकनाथ ने मैं ही ब्रह्म हूँ की वृत्ति को अखण्ड कर

लिया । जिससे वह परम प्रचण्ड हो गया।

दो०- तप करि तप पुँज भया घट प्रगटइ मय जगतेश ।
सकल प्रकृति आज्ञा मानहि लोकनाथ भए परमेश ॥ २२४ ॥

व्याख्या - लोकनाथ तप करके तप-पुॅंज ही बन गये । जिससे उनके हृदय में मैं परमात्मा प्रकट हो गया तथा समस्त प्रकृति उनकी आज्ञा मानने लग गयी । इस प्रकार लोकनाथ स्वयं ही परमेश्वर बन गये ।

निज अनुभव जानइ सन्ता । अब कहुँ जो राम कृष्ण भनन्ता ॥
नाम गदाधर सरल सुभाउ । मोहि मिलन भयी हियँ बहु चाउ ॥

व्याख्या - स्वयं के अनुभव से ही सन्त जनों ने मुझे जाना है । अब मैं वह कहता हूँ, जिसे रामकृष्ण परमहंस ने कहा है । उनका नाम गदाधर था तथा बहुत सरल स्वभाव था तथा मुझ परमात्मा से मिलने की मन में बहुत इच्छा थी ।

गुरु आयुस मानि साधना कीन्ही । भाव बस्य मोहि कर लीन्ही ॥
भाव अनुरूप मैं प्रगटाउँ । भाव विधि पालउँ अरु पलाउँ ॥

व्याख्या - उसने गुरु की आज्ञा मान कर साधना की तथा मुझे भाव के वश में कर लिया तथा मैं भाव के अनुरूप प्रकट होने लगा । क्योंकि मैं भाव की विधि को स्वयं मानता हूँ और दूसरों से भी मनवाता हूँ ।

काली मानि गदाधर मोहि पूजा । पूर्ण समरप आस नहिं दूजा ॥
देखहिं भाव मैं तब प्रगटाई । बनि माँ ताही धीरज बँधाई ॥

व्याख्या - काली के रूप में गदाधर ने मेरी पूजा की तथा पूरी तरह अपना समर्पण कर दिया और मन में कोई अपेक्षा भी नहीं थी । मैं उसका भाव देख कर प्रकट हो गया और माँ के रूप में ही उसे धैर्य बँधाया ।

जेहि विधि ध्यावइ तेहि विधि आई । श्रद्धा प्रबल परसादउ खाई ॥
श्रद्धा वश मैं भयउ अधीना । भाव अनुरुप करूँ काज नवीना ॥

व्याख्या - उसने जिस प्रकार मुझे पुकारा, मैं उसी प्रकार आ गया तथा उसकी प्रबल श्रद्धा देख कर मैंने प्रसाद भी ग्रहण किया । श्रद्धा के कारण मैं अधीन हो गया और भाव के अनुरूप कार्य करने लगा।

दो०- जसि राखइ तसि रहयउँ चावइ सोइ कीन्ह काज ।
भाव वस्य काली बना मोहि न लागई किछु लाज ॥ २२५ ॥

व्याख्या-जैसे मुझे रखा, वैसे ही मैं रहने लगा तथा जो चाहने लगा, वही कार्य भी करने लगा। भाव के वश में मैंने काली का रूप भी धरा, परन्तु मुझे कुछ भी लाज नहीं आयी।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण अष्टदशम पड़ाव ॥

माँ कहि गदाधर मोहि पुकारे । मातु ममता देखहिं जग सारे ॥
मन द्वैत रूप अबहुँ न मिटाई । देखि गदाधर मोहि करुणा आई ॥

व्याख्या - गदाधर ने मुझे माँ कह कर पुकारा तथा वह समस्त जगत में माँ की ममता देखने लगा । परन्तु मन में द्वैत भाव अभी भी नहीं मिटा । इसलिए मुझे गदाधर को देख कर करुणा आ गयी ।

नाना भाँति प्रेरणा मैं कीन्ही । काली कृष्ण बनि दर्शन दीन्ही ॥
देखि दर्श द्वैत भाव प्रबलाई । दुविधा विकट बरनिन जाई ॥

व्याख्या - तब मैंने नाना प्रकार से प्रेरणा की और कभी कृष्ण व कभी काली बन कर दर्शन दिया । परन्तु दर्शन देख कर के तो द्वैत भाव प्रबल हो उठा । उस कठिन दुविधा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

रहइ द्वैत तब लगि मुक्ति नाहीं । बहुरि प्रेरणा करि मैं समझाहीं ॥
भाव प्रबल गदाधर नहिं बूझा । द्वैत छाड़ि किछु नहिं हियँ दूजा ॥

व्याख्या - मैंने बहुत प्रकार से प्रेरणा देकर समझाया कि जब तक द्वैत भाव रहता है, तब तक मुक्ति नहीं मिल पाती है । परन्तु भाव की प्रबलता के आगे गदाधर नहीं समझा और उसके हृदय में द्वैत भाव को छोड़ कर दूसरा कुछ नहीं था ।

कभी सुत कभी राधा बनि रिझाई । भाव अधीन मैं ही नाना रूप दिखाई ॥
श्रद्धा अटल मुक्ति अधिकारी । निर्मल मन विगत वासना सारी ॥

व्याख्या - कभी पुत्र बन कर तथा कभी राधा बन कर मुझे रिझाया और भाव के वशीभूत मैंने ही नाना रूप दिखाये । मन में अटल श्रद्धा के कारण वह मुक्ति का अधिकारी हो गया तथा मन निर्मल हो गया, जिससे समस्त वासनाएँ मिट गयीं ।

दो०- देखि दशा गदाधर की, मोर मन भयउ अति अनुराग ।
कैसे द्वैत भाव मिटाउँ जाते मोहि सम होइ भगत राज ॥ २२६॥

व्याख्या - गदाधर की यह दशा देख कर मेरे मन में अनुराग पैदा हो गया तथा मेरे मन में विचार आया कि कैसे मैं द्वैत भाव मिटाऊँ, जिससे मेरा भक्त मेरे ही समान हो जाये ।

तोतापुरी भयउ सन्त तेही काला । निर्मल चित्त अद्वैत मतवाला ॥
तार हृदय मैं प्रेरणा कीन्ही । जाइ उनि सीख गदाधर दीन्ही ॥

व्याख्या - उसी समय में तोतापुरी सन्त हुए । जो बहुत निर्मल चित्त तथा अद्वैत मतवाले थे । उन्हीं के हृदय में मैंने प्रेरणा करी और उन्होंने ही जाकर गदाधर को समझाया ।

तोतापुरी जाई गदाधर बुझाई । सुनहु सुत मरम देउँ बताई ॥
ईश्वर एकई धरहिं नाना शरीरा । भाव ही दृश्य दृष्टा मति धीरा ॥

व्याख्या - तोतापुरी सन्त ने जाकर समझाया कि वत्स ! तुमको रहस्य बताता हूँ कि ईश्वर एक ही होता है और वही नाना शरीर धारण करता है । हे मति धीर ! भाव ही दृश्य व दृष्टा होते हैं ।

नाना भाँति तोतापुरी समझाई । कहा गदाधर नाथ मैं असहाई ॥
जब जब मैं धरहउँ ध्याना । प्रकटहिं मातु कृपा निधाना ॥

व्याख्या - नाना प्रकार से तोतापुरी सन्त ने समझाया, परन्तु गदाधर ने कहा कि नाथ मैं असहाय हूँ । क्योंकि मैं जब भी ध्यान धरता हूँ, तभी कृपामूर्ति माता प्रकट हो जाती हैं ।

केहि विधि मैं अद्वैत समाउँ । पुनि पुनि मातु सीस नवाउँ ॥
तोता पुरी पुनि कीन्ह विचारा । भाव प्रबल कैसे करूँ उद्धारा ॥

व्याख्या - हे नाथ ! तब मैं कैसे अद्वैत हो जाऊँ ? मैं तो पुनः पुनः माता के चरणों में शीश झुकाता हूँ । तब तोतापुरी ने विचार किया कि भाव प्रबल हैं, अब इसका कैसे उद्धार करूँ ।

मोहि सुमरि पुनि जुगति बताई । भाव सकइ भाव मुक्त कराई ॥

व्याख्या - मेरा स्मरण करके तोतापुरी ने युक्ति बतायी कि भाव ही भाव से मुक्त करा सकते हैं ।

दो०- भाव से ही काली प्रगट भाव ही नाना रूप धराय ।
भाव खड़ग सुत गहहु भाव असि काली मर जाय ॥ २२७ ॥

व्याख्या - भाव से ही काली प्रकट होती है और भाव ही नाना रूप धारण करते हैं । इसलिए हे वत्स ! भाव की तलवार हाथ में ले लो। क्योंकि भाव रूपी तलवार से काली मर जायेगी ।

सुनि जुगति गदाधर सोइ कीन्ही । करि भाव प्रकट काली लीन्ही ॥
भलि भाँति कर धरि तलवारा । काली ऊपर कीन्ह प्रहारा ॥

व्याख्या - उपाय सुनकर गदाधर ने वही किया और भाव से काली को प्रकट करके, भाव से ही हाथ में तलवार अच्छी तरह पकड़ कर, काली के ऊपर प्रहार किया।

दौउ खण्ड तब काली सुहाई । विगत द्वैत अद्वैत समाई ॥
सकल ब्रह्माण्ड भा शून्याकारा । समझा जगत निज विस्तारा ॥

व्याख्या - उसी क्षण काली की मूर्ति के दो टुकड़े हो गये और द्वैत भाव अद्वैत

में विलीन हो गया। समस्त ब्रह्माण्ड शून्याकार हो गया तथा समस्त जगत स्वयं का विस्तार मात्र लगने लगा।

सकल चराचर जाना मोर अंशा। भयउ गदाधर परम हंसा ॥
निज राम निज कृष्ण बुझाई। निज हियँ इहँ समझ पराई ॥

व्याख्या - उसने समस्त चराचर को मेरा ही अंश समझ लिया और गदाधर परमहंस के पद को प्राप्त कर लिया। उसे स्वयं के हृदय में ही समझ आ गया कि मैं ही राम और मैं ही कृष्ण हूँ।

राम कृष्ण तब धराई नामा। विगत वासना भयउ निष्कामा ॥
पल माझ नाना अनुभव कीन्हा। संशय मिटाइ परम पद लीन्हा ॥

व्याख्या - तब उन्होंने रामकृष्ण नाम रख लिया। समस्त वासनाएँ मिट गयीं और वह निष्काम हो गया। पल भर में नाना अनुभूतियाँ कर लीं और समस्त भ्रम मिटा कर परमपद प्राप्त कर लिया।

दो०- गदाधर परमहंस भया द्वैत भाव लियेउ मिटाय।
ब्रह्म जानि ब्रह्म बनइ ब्रह्म ही ब्रह्म गयउ समाय ॥ २२८ ॥

व्याख्या - गदाधर परमहंस बन गये और उनका द्वैत भाव मिट गया। ब्रह्म को जानने से वह ब्रह्ममय हो गया और ब्रह्म बन कर ब्रह्म में लीन हो गया।

परम हंस ग्यान जब पाई। सकल सृष्टि हियँ परी दिखाई ॥
सोइ मरम नरेन समुझाई। विवेकानन्द बनि जग फैलाई ॥

व्याख्या - परमहंस को जब ज्ञान प्राप्त हुआ, तो गदाधर को समस्त सृष्टि अपने हृदय में दिखाई पड़ी तथा उसी रहस्य को नरेन्द्र को समझाया। जिसने विवेकानन्द बन कर समस्त जगत में फैलाया।

सोइ कहउँ सुत तोही संवादा। सुनत हियँ होवइ ग्यान अबाधा ॥
नरेन पूछा परम हंस आई। ईश्वर मरम मोहि देहु बताई ॥

व्याख्या - उसी संवाद को मैं तुम्हें यहाँ बताता हूँ। जिसके सुनने से हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है। नरेन्द्र ने परमहंस से आकर पूछा कि मुझे ईश्वर के रहस्य को समझा दीजिए।

काह रूप काह गुण सुहाई। कृपा करि सब देइब समुझाई ॥
सुनि परम हंस दियउ मुस्काई। करहिं विचार केहि विधि बताई ॥

व्याख्या - ईश्वर का क्या रूप व क्या गुण है, कृपा करके सब समझा दीजिए। परमहंस यह सुन कर मुस्करा दिये और विचार करने लगे कि किस प्रकार वर्णन करूँ ?

निज मन मोहि सुमिरण कीन्हा। पुनि परम ग्यान उनि दीन्हा ॥
आकार निराकार नहिं किछु भाई। भाव ही मूल सत्य कहुँ बताई ॥

व्याख्या - स्वयं के मनमें मुझे स्मरण करके ,फिर परमज्ञान का उपदेश दिया कि आकार-निराकार कुछ नहीं होता है,भावही सबका मूल होते हैं । मैं यह सत्य बता रहा हूँ ।

दो०- रूप कुरूप सरूप नहिं तहँ नहिं भल मन्द विचार ।
त्रिगुणमय सृष्टि बनाई निज भयउ त्रिगुण पार ॥ २२९ ॥

व्याख्या - परमात्मा का रूप, कुरूप कुछ नहीं है तथा वहाँ अच्छे-बुरे का विचार भी नहीं है। उसने तो त्रिगुणमय सृष्टि बनायी है और स्वयं तीनों गुणों से परे रहता है।

शरणागति भाव जब आई। हियँ माझ तब परै समुझाई ॥
नरेन पुनि पुनि प्रश्न कीन्हा। करि स्पर्श ग्यान तब दीन्हा ॥

व्याख्या - शरणागत भाव आने पर परमात्मा हृदय में समझ आ जाते हैं। नरेन्द्र ने फिर बार-बार प्रश्न किये। तब परमहंस ने स्पर्श करके ज्ञान दिया।

नयन मूँदि परा चरणाई। बक्ष स्थल तब पैर धराई ॥
धरि पाँव मोहि सुमिरण कीन्हा। नरेन हियँ भाव तब दीन्हा ॥

व्याख्या - आँखें बन्द करके नरेन्द्र चरणों में पड़ गया। तब परमहंस ने सीने पर पैर रख कर मुझे स्मरण किया और नरेन्द्र के हृदय में भाव प्रवाहित किया।

मोहि छाड़ि दूसर कोउ नाई। भलि भाँति इहँ समझ आई ॥
पल माझ बूझा सब मरमा। हियँ प्रगटइ तब धरमा ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा के अलावा दूसरा कोई नहीं है, यह नरेन्द्र को भली प्रकार से समझ में आ गया। पल भर में ही यह रहस्य समझ आ गया और हृदय में धर्म प्रकट हो गया।

जाति पाँति मिटा सकल भेदा। भयउ एक विगत सब खेदा ॥
हियँ जब अनुभूति घटाई। मिटा अग्यान विवेक हियँ आई ॥

व्याख्या - जाति-पाति का सब भेद मिट गया, जिससे वह एकाकार हो गया और सब दुख मिट गये। जब हृदय में अनुभूति हो गयी, तो अज्ञान मिट गया और ज्ञान पैदा हो गया।

दो०- अज्ञान मिटा भ्रम नसा आनन्द हियँ उमगाई ।
नरेन विवेक आनन्द लिया सोई विवेकानन्द कहाई ॥ २३० ॥

व्याख्या - नरेन्द्र का अज्ञान मिट गया , जिससे समस्त संशयों का नाश हो गया

और हृदय में आनन्द पैदा हो गया। नरेन्द्र ने विवेक का आनन्द प्राप्त कर लिया। इसलिए ही वह विवेकानन्द के नाम से जाना गया।

अब कहुँ कथा बालक ब्रह्मचारी। कहा समझाई मति अनुसारी॥
नाम जप महिमा बहुरी गाई। राम नारायण राम मन्त्र बताई॥

व्याख्या - अब मैं बालक ब्रह्मचारी की कथा बताता हूँ। जिसने मुझे अपनी मति के अनुसार समझ कर बताया। उन्होंने नाम-जप की बहुत महिमा बतायी तथा राम नायायण राम मन्त्र बताया।

निज प्रकृति सोइ जग प्रसारा। सो उचित करउ सद्व्यवहारा॥
प्रति घट बसहहिं करतारा। जानइ कोउ कोउ जानिन हारा॥

व्याख्या - स्वयं की प्रकृति ही संसार के रूप में प्रसारित होती है। इसलिए सदा अच्छा व्यवहार करना चाहिए। प्रत्येक घट में मैं (परमात्मा) निवास करता हूँ परन्तु इसको कोई-कोई ही जानते हैं।

जीवन सकल संगीत सुहाई। जागहिं जीव परै हियँ बुझाई॥
सकल चराचर एक समाना। ऊँच नीच भाव सोई अग्याना॥

व्याख्या - जीवन ही संगीत होता है। इसलिए जब जीव जाग उठता है, तब इसको वह अपने हृदय में समझ लेता है। समस्त चराचर एक समान होता है। इसलिए ऊँच-नीच का भेद करना ही अज्ञान है।

सत्य सोइ धरम करि जाना। प्रकृति ऋत सोइ सत्य बखाना॥
सकल हियँ सत्य रहाई। जानइ जेहि नित्य नाम जपाई॥

व्याख्या - उन्होंने सत्य को ही धर्म जाना तथा प्रकृति की ऋत को ही सत्य बताया। सबके हृदय में सत्य का निवास होता है। इसलिए जो नि त्य नाम जप करते हैं, वे सत्य को जान पाते हैं।

दो०- नाम जपहिं जीव जगे जागत सब भ्रम मिट जाय।
निज देह सदा संगीत बजे गुरु कृपा समझ पराय॥ २३१॥

व्याख्या - नाम के जपने से जीव जाग उठता है और जागने से सब भ्रम मिट जाते हैं। स्वयं के शरीर में सदा संगीत बजता रहता है। जो गुरु की कृपा से समझ में आता है।

भाव अनुरूप बनहिं शरीरा। भाव मूल सब सुख-दुःख पीरा॥
सकल शरीर अंक समाना। भाव ते भाव भाव विधि नाना॥

व्याख्या - भावों के अनुसार ही शरीर का स्वरूप बनता है और भाव ही सुख-दुःख का मूल होता है। समस्त शरीर ही गणित के समान होता है। क्योंकि

भाव से भाव और भाव के अनुसार विधि बनती है।

सात चक्रमय देह हमारी । चक्र अनुरूप बनइ वृत्ति सारी ॥
वृति अनुरूप बनहिं सुभाउ । नाम जप करइ चक्र प्रभाउ ॥

व्याख्या - यह हमारा शरीर सात चक्रों से बना हुआ है और चक्रों के अनुसार वृत्ति बनती है तथा वृत्ति के अनुसार स्वभाव बनता है । परन्तु नाम के जप करने से चक्र प्रभावित हो जाते हैं ।

व्यष्टि मिलइ समष्टि संगा । मोर संग जुरहि प्रीति अभंगा ॥
सकल वेद हियँ परइ बुझाई । इहँ प्रकट प्रभाव नाम बताई ॥

व्याख्या - व्यष्टि जब समष्टि के साथ मिल जाती है, तो जीव की मुझ परमात्मा से अटूट प्रीत हो जाती है । जिससे हृदय में ही समस्त वेद समझ में आ जाते हैं । यह नाम जप करने का प्रकट प्रभाव बताया गया है ।

गुरु मन्त्र जानइ बीज समाना । श्रद्धा लग्न सब चाष विधाना ॥
फल पाकइ हियँ ब्रह्म ग्याना । ब्रह्मचारी कहा इहँ बखाना ॥

व्याख्या - गुरु मन्त्र को बीज के समान जानना चाहिए और श्रद्धा व लग्न बीज के कृषि रूपी विधान होते हैं, जिससे हृदय में ब्रह्म ज्ञान रूपी फल पकता है।

शब्द मूल हय सकल संसारा । एकहि ब्रह्म नहिं अन्य प्रकारा ॥
नाम जप जेहिं करहिं सुजाना । तिन्ह हियँ प्रगटइ ब्रह्म ज्ञाना ॥

व्याख्या - इस समस्त संसार का शब्द ही मूल है तथा ब्रह्म एक ही होता है । इसलिए वत्स, जो नाम जप करते हैं, उनके हृदय में ब्रह्म ज्ञान पैदा हो जाता है।

दो०- राम नारायण राम जपै सहजहिं चक्र जग जाय ।
चक्र जगे चक्कर मिटे जीव जन्म मरण मुक्ति पाय ॥ २३२ ॥

व्याख्या - राम नारायण राम का जप करने से सहज में ही चक्र जाग्रत हो जाते हैं और चक्र जाग्रत हो जाने से जीव को जन्म-मरण से मुक्ति मिल जाती है ।

हिन्दू मुस्लिम नहिं किछु भेदा । ब्रह्म एक सकल जग अभेदा ॥
जाति पांति मूढ़ जन फँसाई । समता रहइ प्रकृति सदाई ॥

व्याख्या - हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं होता है । क्योंकि ब्रह्म तो एक ही होता है । इसलिए समस्त संसार भी भेद रहित है । जाति-पाति के भेद में तो मूर्ख लोग फँसते हैं । क्योंकि प्रकृति तो सदा ही साम्यता की नीति का पालन करती हैं ।

छोट बड़ सब चराचर प्राणी । एक समान करि हियँ जानी ॥
राम नारायण राम पुनि पुनि गाई । ब्रह्म एक ही ब्रह्मचारी बताई ॥

व्याख्या - छोटे-बड़े समस्त प्राणियों को उन्होंने एक समान अपने हृदय में जान

लिया तथा राम नारायण राम को बार-बार गाया तथा ब्रह्मचारी ने कहा कि ब्रह्म एक ही है ।

समता मूल सकल हितकारी । सर्व व्यापक ब्रह्म इक सारी ॥
सदाचार सब सुख मूल बताई । साम्यवाद जीवन लच्छ बुझाई ॥

व्याख्या - ब्रह्म तो सर्वव्यापक व एक ही है । जो समतामूलक और सबका हित करने वाला है । सदाचरण को ही सुख का मूल बताया तथा जीवन का लक्ष्य साम्यवाद प्राप्त करना समझाया ।

राम नारायण राम साधन भाई । जपहिं जेहि परम पद पाई ॥
संकट कटे मिटे सकल पीरा । राम नाम गावहिं जेहि धीरा ॥

व्याख्या - साम्यवाद को प्राप्त करने का साधन राम नारायण राम का नाम जप बताया तथा जो जप करते हैं, वे परम-पद प्राप्त करते हैं । जो राम नारायण राम का जप करते हैं, उनके समस्त संकट व कष्ट मिट जाते हैं।

दो०- मोहि जाना निज घट में निज अनुभूति वेद करि जान ।
नाम जप साधन कीन्हा ब्रह्मचारी भयउ ब्रह्म समान ॥ २३३॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा को उसने अपने स्वयं के हृदय में जाना तथा अनुभूति को ही वेद मान लिया तथा नाम जप को ही साधन करके ब्रह्मचारी ब्रह्म के समान हो गये ।

अब कहउँ कथा साँई नाथ की । नाशक सब कलिमल पातकी ॥
भयउ सन्त नाम देवी दासा । सरल सुभाव सहज उदासा ॥

व्याख्या - अब मैं साई नाथ की कथा बताता हूँ, जो कलियुग के सब पापों को नष्ट करने वाले हैं । देवीदास नाम के एक सन्त हुए थे, जो स्वभाव से बहुत सरल व जगत से सहज ही उदास रहते थे ।

उन्हीं कीन्ह तप अति कठोरा । पायउ सकल अनुग्रह मोरा ॥
तप प्रभाव विगत मान अमाना । प्रगटइ हियँ ब्रह्म ग्याना ॥

व्याख्या - उन्होंने बहुत कठोर तप किया । जिससे मेरी विशेष कृपा प्राप्त हो गयी । तप के प्रभाव के कारण वे मान-अपमान से ऊपर उठ गए तथा हृदय में ब्रह्म ज्ञान पैदा हो गया ।

चराचर सकल जानि समाना । मालिक कहा सब एक भगवाना ॥
हिन्दू मुस्लिम सब भेद मिटाई । मन्दिर-मस्जिद सम बताई ॥

व्याख्या - समस्त चराचर जगत को एक समान जान कर, सबका मालिक एक भगवान को ही बताया । उन्होंने हिन्दू-मुसलमान के समस्त भेदों को मिटाया

तथा मन्दिर-मस्जिद को समान बताया ।

गुरु कृपा कहहि साधन मूला । हरहहि सब जग भव शूला ॥
ब्रह्मलीन विगत देह अभिमाना । देवीदास सोई साँई जग जाना ॥

व्याख्या - गुरु कृपा को ही साधना का मूल बताया तथा कहा कि गुरु कृपा ही संसार में भाव रूपी कष्टों का निवारण करती है । उन्होंने ब्रह्म में लीन होकर देह अभिमान को त्याग दिया तथा सन्त देवीदास ही संसार में साईं के नाम से जाने जाते हैं ।

दो०- नाम जप सुरता लगाइ करि जेहि मोहि ते लीन सुहाय ।
सोहि मोहि भेद न रहइ वोहि जग भगवान कहाय ॥ २३४ ॥

व्याख्या - नाम का जप करते हुए, जो मुझसे सुरता लगा कर, मुझ में ही लीन रहता है, उसमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं रहता है तथा वह जीव संसार में भगवान कहलाता है ।

भयउ साँई मोहि लीन सदाई । जानइ सोइ सब जगत गुंसाई ॥
मोर भगति फल प्रगट भाई । मोहि सम सन्त प्रभुता पाई ॥

व्याख्या - साँई सदा मुझमें लीन रहते थे । इसलिए संसार में उन्हें भगवान के रूप में जाना जाता है । मेरी भक्ति का यह प्रकट प्रभाव होता है कि सन्त मेरे समान ही प्रभुता को प्राप्त कर लेता है ।

सोइ भयउ सन्त साँई संगा । निश्छल प्रीत भयउ अभंगा ॥
सांई वचन अनुसरहिं जेहि । नहिं संशय सुख परम लेहि ॥

व्याख्या - सन्त साँई के साथ भी ऐसा ही हुआ कि उनके निश्छल प्रेम के कारण वे मुझसे अभिन्न हो गये । इसलिए जो साँई के उपदेशों का अनुसरण करते हैं, वे निःसंदेह परम सुख प्राप्त कर लेते हैं ।

साँई दीन्ह सरल उपदेशा । प्रेम भ्रातत्व सदाचार संदेशा ॥
दया दान महिमा उनि गाई । संग्रह बिरथा सकल बताई ॥

व्याख्या - साँई ने बहुत ही सरल उपदेश दिये तथा प्रेम भ्रातृत्व व सदाचार का संदेश दिया । उन्होंने दया व दान का महत्व बताया तथा संग्रह करना व्यर्थ बताया।

पर पीरा कहा घोर अपराधा । अहिंसा धरम परम अबाधा ॥
जाति पंथ सकल भ्रम मिटाई । मानव हेतु मानवता सिखाई ॥

व्याख्या - उन्होंने दूसरों को कष्ट देने को घोर अपराध बताया तथा अहिंसा को ही परम धर्म बताया । साँई ने समस्त जाति व पंथों के भ्रम को मिटा कर मानवता की शिक्षा दी ।

दो०- सबसे समता भाव रखो सबका मालिक एक भगवान ।
घट घट सबके मैं रहहिं कहा साँई निज हियँ जान ॥ २३५॥

व्याख्या - सबके साथ समानता का भाव रखना चाहिए क्योंकि सबका मालिक एक ही भगवान होता है । मैं परमात्मा सबके हृदय में रहता हूँ । यह साँई ने अपने हृदय में जान कर सबको बताया ।

सब घट उनि मो साँई बताई । भयउ लीन निज साँई कहाई ।
जन जन हरहहिं सब खेदा । साँई सन्त भयउ मोतें अभेदा ॥

व्याख्या - सबके हृदय में एक ही परमात्मा को बताया तथा संत साँई ने मुझ साँई में ही लीन होकर स्वयं साँई पद को प्राप्त कर लिया । सन्त साँई मुझसे अभिन्न हो गये तथा जन साधारण के कष्टों का निवारण किया ।

निर्मल मन विगत अभिमाना । कीन्ह उद्धार दीन दुःखी नाना ॥
तप बल प्रगट शक्ति प्रचण्डा । साँई हियँ मैं भयउ अखण्डा ॥

व्याख्या - साँई ने निर्मल मन होकर अभिमान को त्याग दिया तथा बहुत से दीन-दुखियों का उद्धार किया । तप के प्रभाव के कारण साँई के हृदय में प्रचण्ड शक्ति पैदा हो गयी और मैं साँई के हृदय में अखण्ड हो गया।

तप बल जन जन कष्ट मिटाई । तप बल शिरड़ी तीरथ बनाई ॥
तप बल प्रकृति बस कीन्ही । तप बल सिद्धि सकल लीन्ही ॥

व्याख्या - तपो बल से साँई ने जनसाधारण के कष्ट मिटाये तथा तप-बल से ही शिरडी को तीर्थ बना दिया । तपो बल से प्रकृति को जीत लिए तथा तप बल से ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर ली ।

तप प्रभाव समता प्रबलाई । गरीब अमीर सब भेद मिटाई ॥
मन वश जीता सकल संसारा । तप बल कीन्ह भगत उद्धारा ॥

व्याख्या - तप के प्रभाव से हृदय में प्रबल समता आ गयी तथा गरीब-अमीर का भेद मिट गया । मन को वश में करके साँई ने संसार को जीत लिया तथा तपोबल से भक्त जनों का उद्धार किया ।

दो०- ब्रह्मलीन साँई तप पुंज भया सहज सुचि निर्मल आकाश ।
सोहि मोहि किछु भेद न रहा साँई हियँ भया मोर निवास ॥ २३६ ॥

व्याख्या - सन्त साँई ब्रह्म में लीन होकर, तप पुँज बनकर सहज, पवित्र, निर्मल आकाश हो गये, जिससे उनमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं रहा और साँई का हृदय ही मेरा निवास स्थान बन गया ।

अजहुँ तप प्रभाव शिरड़ी सुहाई। पावहिं सकल श्रद्धा सह जाई ॥
सकल मनोरथ होवहहिं पूरे। साँई शरण जेहिं डालहिं डेरे ॥

व्याख्या - आज भी शिरडी में साँई के तप का प्रभाव है, इसलिए जो श्रद्धापूर्वक वहाँ जाते हैं, वे सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। जो साँई की शरण में रहते हैं, उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

देखहहिं अजहु प्रगट प्रभावा। निर्मल मन जेहि साँई ध्यावा ॥
यश वैभव मिलहहिं अपारा। साँई शरण इहँ मरम सारा ॥

व्याख्या - जो निर्मल मन से साँई को याद करते हैं, वे आज भी प्रकट प्रभाव देख सकते हैं। साँई की शरण में जाने पर यश व अपार वैभव की प्राप्ति होती है। यही सारांश है।

हियँ आवहहिं समता भावा। निश्छल मन साँई गुन गावा ॥
मंगल होवइ सकल परिवारा। आवहहिं जेहि शरण इक बारा ॥

व्याख्या - निर्मल मन से साँई के गुणों का गान करने से हृदय में समता का भाव आ जाता है। जो एक बार साँई की शरण में आ जाते हैं, उनके समस्त परिवार का मंगल हो जाता है।

गुरु बनि प्रेरणा करहिं साँई। सत पथ राह सहज दिखाँई ॥
महिमा साँई अपरिमित सुहाई। कवि कोविद सकइ नहिं गाई ॥

व्याख्या - साँई गुरु बन कर प्रेरणा देने लगते हैं तथा सात्विक पथ के लिये सहज उपाय बता देते हैं। साँई की महिमा अपरम्पार है, जिसको कवि व विद्वान लोग गा नहीं सकते हैं।

दो०- भगतिपुँज भगतिवन्त तपधारी साँई हय सन्त अनन्त ।
देह गेह अभिमान तजि जुरहहिं मोहि अखण्ड निरन्त ॥२३७॥

व्याख्या - साँई एक महान सन्त हैं, जो भक्ति के पुँज व भक्तिवंत तथा तपधारी हैं तथा शरीर व गृह का अभिमान छोड़ कर, मुझ अखण्ड शक्ति से निरन्तर जुड़ गये हैं।

सहज सरल अति दयावाना। मानहिं भगत साँई भगवाना ॥
अजर अमर पद उनि पाई। भगति प्रताप कहा न जाई ॥

व्याख्या - साँई बहुत ही सहज व दयावान थे तथा भक्त उन्हें भगवान ही मानते थे। उन्होंने अजर-अमर पद को प्राप्त कर लिया। यह भक्ति का ही प्रताप है। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

पाखण्ड उनि कीन्ह प्रहारा। भगति कहा जीवन सहारा ॥
शास्त्र सकल मरम बताई। गीता कुरान नहिं भेद कराई ॥

व्याख्या - साँई ने पाखण्ड पर प्रहार किया और भक्ति को ही जीवन का आधार बताया तथा समस्त शास्त्रों के मर्म को बताया। इसलिए गीता व कुरान में कुछ भी भेद नहीं किया।

बहु भगत साँई कीन्ह निहाला। भगति प्रताप प्रकट कमाला ॥
तपबल सब संकट निवारे। भयउ साँई जग तारण हारे ॥

व्याख्या - सन्त साँई ने बहुत से भक्तों को निहाल कर दिया। यह उनकी भक्ति के प्रताप का प्रकट कमाल ही है कि तपो बल से लोगों के कष्टों का निवारण किया। जिससे साँई जगत की नैया पार कराने वाले हो गये।

पावइ धन सुतादि सुशीला नारी। तप बल साँई महिमा अपारी ॥
जेहि जनु रहहिं साँई शरणाई। तिन्हहिं नहिं विपद सताई ॥

व्याख्या - साँई के तपो बल की महिमा अपरम्पार है। इसलिए साँई की कृपा से धन, पुत्रादि व सुशीला पत्नी सब प्राप्त हो जाते हैं। जो लोग साँई की शरण में रहते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं सताते हैं।

दो०- तप प्रबल वैराग्य अटल करुणा साँई हियँ अपार।
सकल पदारथ मिलहहिं आवहिं शरण सह परिवार ॥ २३८ ॥

व्याख्या - साँई के हृदय में अपार करुणा, प्रबल तप व अटल वैराग्य है। इसलिए जो परिवार सहित साँई की शरण में आते हैं, उन्हें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के समस्त पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

छ०- नानक कबीर दादू दयाल ईसा नामदेव साँई रविदासा।
बुद्ध महावीर गोरखादि जति सती मीरा ओशो रजनीशा ॥
सकल जन बखानी निज हियँ जानी जगत एक ही जगदीशा।
ध्यान ग्यान जप तपादि प्रेम कहहिं सन्त मारग मिलन ईशा ॥

व्याख्या-नानक, कबीर, दादू दयाल, ईसा मसीह, नामदेव, साँई, रविदास, बुद्ध, महावीर, गोरख, मीरा, ओशो रजनीश सबने अपने हृदय में जान कर यही कहा है कि जगत में एक ही ईश्वर है तथा ध्यान, ज्ञान, जप, तप व प्रेम ईश्वर प्राप्ति के मार्ग हैं।

छ०- निर्मल मन समरप करि जेहि जनु ध्यान लगावहिं।
नहिं संशय हियँ सहजहिं प्रभु परम ग्यान उमगावहिं ॥
निसि दिवस नाम जप करि जेहि हरि चरण अनुरागहिं।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि करतल होवइ सबु बिनु माँगहहिं ॥

व्याख्या - जो निर्मल मन से समर्पण करके ध्यान करते हैं, उनके हृदय में सहज में ही परम ज्ञान पैदा हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है और जो रात दिन नाम का जप करके परमात्मा के चरणों में अनुराग करते हैं, उनको बिना माँगे अष्ट सिद्धियाँ और नौ निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

छ०- सन्त मानि अनन्त समान जेहि जनु सन्त वचन अनुसरहिं ।
अल्प प्रयास सहज अभ्यास धर्म अर्थ काम मोच्छ मिलहिं ॥
निर्मल मन इहँ संवाद जेहि सुनहिं गुनहिं मुक्ति नीर भरहिं ।
गुरु चरण विश्वास तजि आस नाम जपहिं निज ब्रह्म बनहिं ॥

व्याख्या - सन्तों को अनन्त के समान ही मान कर, जो सन्त वचनों का पालन करते हैं, उनको थोड़े से ही प्रयास और सहज अभ्यास से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। जो लोग इस पवित्र सन्त संवाद को सुन कर गुनन करते हैं, उनके आगे मुक्ति पानी भरती है और जो लोग समस्त इच्छाओं को छोड़कर, गुरु के चरणों में विश्वास रख कर नाम जपते हैं, वे तो स्वयं ही ब्रह्म बन जाते हैं।

दो०- साधु संगति गुरु शरण मन मंगल भाव बनाई ।
ते जनु भव तरहहिं नहिं संशय सन्त बताई ॥ २३९ ॥

व्याख्या - साधु संगति और गुरु की शरण हो तथा मन में मंगल भावना हो, तो वे लोग निःसंदेह भव सागर पार कर जाते हैं। ऐसा सभी संत बताते हैं।

जुग जुग सन्त अनुभव कीन्हें। मिटाइ भ्रम परम पद लीन्हें ॥
सत्य अहिंसा भाव ब्रह्मचारी। अस्तेय अपरिगृह धर्म आधारी ॥

व्याख्या - युगों-युगों में सन्त लोगों ने अनुभव करके अपने संशयों को मिटा कर परम पद प्राप्त किया है तथा सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय व अपरिग्रह को धर्म का आधार बताया है।

यम नियम जप सत अहारा। सहायक सदा सद् व्यवहारा ॥
काम क्रोध मद लोभादि अहंकारी। त्याज्य सकल सन्त पुकारी ॥

व्याख्या - यम, नियम, जप तथा सात्विक भोजन और सदाचरण का व्यवहार धर्म के सहायक होते हैं और काम, क्रोध, मद, लोभ व अहंकार आदि को सभी सन्तों ने त्याज्य बताया है।

राग द्वेष तजहहिं नर जेहि। नहिं संशय परम सुख लेहि ॥
त्याज्य ममतादि घर परिवारा। समता भाव होइ सहज आचारा ॥

व्याख्या - जो लोग राग-द्वेष को छोड़ देते हैं, वे परम सुख को प्राप्त कर लेते हैं। इसमें संदेह नहीं है। घर-परिवार आदि की ममता त्यागने योग्य है और

समता व सदाचरण के भाव का आचरण करना चाहिए ।

गुरु चरण रखहिं विश्वासा । होइ कल्याण सन्त जन भाषा ॥
नाम जप श्रद्धा गुरु वचनाई । साधना मूल सब सन्त बताई ॥

व्याख्या - सन्त जन कहते हैं कि जो गुरु चरणों में विश्वास रखते हैं, उनका कल्याण हो जाता है । श्रद्धापूर्वक गुरु के वचनों में विश्वास रख कर, नाम जप करना ही सन्तों ने साधना का मूल बताया है ।

दो०- **सन्त संवाद पवित अति उपजावहिं हियँ ब्रह्म ग्यान ।**
मंगलमय मंगल दायक सहज करइ सकल कल्याण ॥ २४०॥

व्याख्या - यह सन्त संवाद बहुत ही पवित्र है तथा हृदय में ब्रह्म ज्ञान को पैदा करने वाला है । यह मंगलमय व मंगलदायक है तथा सहज में ही सबका कल्याण करने वाला है ।

छ०- **इहँ सन्त संवाद सुखद अति कल्मष मन सकल मिटावई ।**
सुनि गुनि जेहि अनुसरहिं नहिं संशय भव सिन्धु तरावई ॥
ग्यान भगति दायक सरल सुगम इहँ गुरु पथ दिखावई ।
कह दास लक्ष्मी करहहिं विश्वास प्रभु कृपा बरषावई ॥

व्याख्या - यह सन्त संवाद बहु ही सुख देने वाला तथा मन के समस्त विकारों को मिटाने वाला है । जो इसको सुनकर व समझ कर अनुसरण करते हैं, उनको निस्संदेह यह भवसागर पार करा देता है । यह ज्ञान व भक्ति को देने वाला तथा सरल व सुगम गुरु पथ दिखाने वाला है । लक्ष्मी नारायण कहते हैं कि जो विश्वास करते हैं, उन पर प्रभु अनुकंपा बरसाते हैं ।

॥ इति श्री मानवधर्मशास्त्रस्य जन कल्याणार्थम् भगति च ज्ञानदायकम्
षष्ठम स्कन्धः सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण नवदशम पड़ाव ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण षष्ठम पड़ाव ॥

॥ ॐ परमात्मने नमः ॥

॥ ॐ गुरुदेवायः नमः ॥

॥ ॐ माँ प्रकृतिदेव्याय नमः ॥

सप्तम स्कन्ध

ॐ जगतपतिम् जगताधारम् जगतेश्वरम् जगतस्वरूपं सर्व व्यापकम् ।
अकथ अनादि अनीह अखण्डम् भगतवत्सलम् दयालम् नमोः नमः ॥१॥

व्याख्या – हे जगत के स्वामी ! आप जगत के आधार, जगत के ईश्वर व जगत के स्वरूप में सर्वत्र व्यापक हैं । हे अकथनीय, अनादि, अनीह, अखण्ड, भक्त वत्सल व दयाल ! आपको नमस्कार ।

ॐ निजस्वरूपमगनम् करुणामयम् सहज कृपालम नामरूपम् च पारम् ।
गूढ़स्य गूढ़म लीला रहस्यम् जगतकरतारम् लीलाधरम् नमोः नमः ॥२॥

व्याख्या – हे परमपिता ! आप तो स्वयं के स्वरूप में ही मगन रहते हैं । आप तो करुणामय व सहज में कृपा करनेवाले हैं तथा नाम व रूप दोनों से परे होते हैं । आपकी लीलाओं का तो गूढ़ से भी गूढ़ रहस्य होता है । हे लीलाधारी जगत के कर्ता ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ परमपुरुषस्य मनम त्रिगुणात्मिकम् जगत संचालिकाः बिधि वधुम ।
सर्वेश्वरीम सकल जगत मोहितम् आदिशक्तिः माँ प्रकृति देव्याय नमोः नमः ॥३॥

व्याख्या – हे माता प्रकृति ! आप परमपिता का मन हैं तथा त्रिगुणों से युक्त हैं और जगत को संचालित करने वाली हैं । आप ही परमपिता की वधु हैं । हे सर्वेश्वरी व समस्त जगत को मोहित करनेवाली आदिशक्ति माता प्रकृति देवी ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

दो०-परम दयालं सर्वहितकर दीनबन्धु परमपिता परमेश ।
कृपा करहउ नाथ मोहिपर भूलहउँ नहिं तुम्हहिं निमेष ॥१॥

व्याख्या – हे परम दयालु, सबका हित करनेवाले, दीन बन्धु, परमपिता, परमेश्वर ! आप मुझ पर कृपा कीजिए, जिससे मैं आपको क्षणभर के लिए भी नहीं भूला सकूँ ।

नाथ बहुरि कृपा आपु कीन्ही। गूढ़ ते गूढ़ ग्यान मोहि दीन्ही ॥
धरम मरम सब दीन्ह बताई। तुम अलख सोउ दियेउ लखाई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आपने मुझ पर बहुत कृपा की है और गूढ़ से गूढ़ ज्ञान को मुझे बता दिया है । धर्म के सब रहस्य को भी आपने बता दिया और आपके

अलख स्वरूप को भी समझा दिया है ।

कृपा पाइ मैं धन्य सुहाई । सो आभार नहिं जाइ प्रकटाई ॥
नाथ एक लालसा अरु मन माहीं । देवी शक्ति मरम देउ बताहीं ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! मैं आपकी कृपा पाकर धन्य हो गया हूँ, जिसके लिए आभार प्रकट नहीं किया जा सकता है । हे प्रभु ! मेरे मन में अब एक और लालसा है कि मुझे आप देवी शक्ति के रहस्य को बता दीजिए ।

आदि शक्ति जाइ वेद बखानी । सोइ कि उमा लक्ष्मी ब्रह्मानी ॥
या इन तीनउ ते अपरम्पारा । कहउ समुझाइ मरम अब सारा ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! जिस शक्ति को वेदों में आदि शक्ति बताया गया है, क्या वो ही आदि शक्ति पार्वती, लक्ष्मी व सरस्वती हैं या फिर वो आदि शक्ति इन तीनों शक्तियों से परे हैं ?

सकल समझाइ कहउ नाथा । करहुँ बिनय जोरि दोउ हाथा ॥
मैं सब बिधि नाथ शरण तिहारी । कहिइब मरम मति अनुसारी ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप सब रहस्य को समझाकर बता दीजिए । मैं सब प्रकार से आपकी शरण में आया हूँ, इसलिए मुझे मेरी बुद्धि के अनुसार समझाकर कहिए ।

दो०- दुर्गा क्षमा शिवधात्री मंगला काली भद्रकाली नाम अनन्त ।
मरम काह नाथ सब नाम का काहे बिरथा जग भ्रमन्त ॥२॥

व्याख्या – हे परमपिता ! आदिशक्ति के दुर्गा, क्षमा, शिवधात्री, मंगला, भद्रकाली व काली आदि अनन्त नाम हैं । अतः हे प्रभु ! इन नामों का रहस्य क्या है तथा व्यर्थ में संसार क्यों भ्रमित हो रहा है ?

कोउ आदि शक्ति एक बताई । कोउ दुर्गा नवरूप कहाई ॥
कोउ शैलपुत्री कह ब्रह्म चारिणी । शक्ति अखण्ड ब्रह्माण्ड धारिणी ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! कोई आदि शक्ति को एक ही बताते हैं, तो कोई कोई दुर्गा के नौ रूप बताते हैं । कोई-कोई अखण्ड ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाली शक्ति को शैलपुत्री, तो कोई ब्रह्मचारिणी कहते हैं ।

कोउ चन्द्रघण्टा कह स्कन्धमाता । कोउ कूष्माण्डा कात्यायनी बताता ॥
कोउ कहि महागौरी काल रात्रि । कोउ कह शक्ति नाम सिद्धि दात्री ॥

व्याख्या – कोई आदि शक्ति का नाम चन्द्रघण्टा, तो कोई स्कन्धमाता, तो कोई कूष्माण्डा, तो कोई कात्यायनी, तो कोई महागौरी, तो कोई सिद्धिदात्री बताते हैं ।

नाना मत नाना पंथ सुहाई । मरम काह प्रभु देउ बताई ॥
शक्ति अनन्त जाहि वेद बखानी । ऋषि मार्कण्डेय केहि विधि जानी ॥

व्याख्या – नाना मतों के कारण नाना प्रकार के पंथ बन गये हैं । शक्ति का वास्तविक रहस्य क्या है ? हे प्रभु ! मुझे बता दीजिए । वेदों ने भी शक्ति को अनन्त बताया है, तब उस परमशक्ति को ऋषि मार्कण्डेय ने किस प्रकार जान लिया ?

काह विधि शिव पालन कीन्हा । शक्ति पति पद उनि लीन्हा ॥
होवइ नाथ मत बिग्यानी । सरल सुगम समय अनुमानी ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! शिवजी ने किस विधि का पालन किया था, जिससे उन्हें शक्ति के स्वामी का पद प्राप्त हो गया । हे प्रभु ! मुझे सरल, सुगम, समय के अनुकूल व विज्ञान पर आधारित सिद्धान्त को बताना ।

दो०- जुग जुग बहु साधक भए तें बहु जप तप साधन कीन्ह ।
तिन्हमहँ शिव मार्कण्डेय सुत शक्ति जानि परमपद लीन्ह ॥ ३ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! युगों-युगों में बहुत से साधक हुए हैं, जिन्होंने जप व तप के बहुत से उपाय किये हैं । उनमें ही शिव और मार्कण्डेय ऋषि हुए हैं जिन्होंने शक्ति के रहस्य को जानकर परमपद प्राप्त कर लिया ।

बहुजन जद्यपि मरम जनाई । तिन्हमहँ शिव प्रधान सुहाई ॥
सोइ कहउँ मत विज्ञान आधारी । जाना जाहि प्रथम शिव असुरारी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! हालांकि बहुत से लोगों ने शक्ति के रहस्य को जाना है, परन्तु शिव उन सबमें प्रधान हैं । अतः अब मैं उसी सिद्धान्त को विज्ञान के आधार पर तुम्हें बताता हूँ, जिसे सबसे पहले शिव ने जाना था ।

सुन सुत अब पाछिल इतिहासा । करउ ध्यान होवइ आभासा ॥
सृष्टि जब आदिकाल सुहाई । भयउ शिव जानत जग सबाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! अब मैं तुम्हें पिछला इतिहास बताता हूँ । तुम ध्यान करो, तुम्हें पिछले इतिहास का आभास हो जायेगा । हे वत्स ! जब सृष्टि का आरम्भकाल था, तब शिव हुए, जिसे समस्त संसार जानता ही है ।

प्रथम बार शिव शक्ति पहिचानी । सोइ कहा सब समुझाइ भवानी ॥
सोइ संवाद सुत तोही बताउँ । करहउ ध्यान हियँ समझाउँ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! शक्ति के रहस्य को शिव ने पहली बार जाना था तथा उसी रहस्य को पार्वती को समझाकर बताया था । अतः अब तुम ध्यान करो, मैं तुम्हें तुम्हारे हृदय में ही शक्ति के रहस्य को समझा दूँगा ।

कृतजुग संवत पाँच पच्चासा। उमा संग बैठे शिव गिरि कैलासा ॥
निर्मल मन सहज उल्लासा। भल काल उमा कीन्ह आभासा ॥

व्याख्या – सतयुग के संवत ५५० में शिव जी पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर बैठे हुए थे। उनका मन निर्मल था तथा सहज उल्लास था, अतः पार्वती ने समय को अनुकूल जाना।

दोउ कर जोरि बोलि भवानी। शक्ति मरम कहु नाथ बखानी ॥
काह नाम मरम शक्ति धामा। विधि कवन मिलहहिं विश्रामा ॥

व्याख्या – दोनों हाथ जोड़कर पार्वती बोली कि हे नाथ ! शक्ति का रहस्य क्या है तथा शक्ति के नाम का रहस्य क्या है तथा शक्ति का घर क्या है और किस प्रकार से परम विश्राम की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है ?

दो०–शक्ति ही मूल जगत की कहत इहँ सकल वेद पुरान ।
माया जननी सोउ शक्ति बिनु शक्ति नहिं ज्ञान विज्ञान ॥ ४ ॥

व्याख्या – समस्त वेद व पुराण कहते हैं कि शक्ति ही समस्त जगत का मूल होती है तथा शक्ति ही माया को पैदा करनेवाली होती है और शक्ति के बिना ज्ञान व विज्ञान भी नहीं होते हैं।

केहि विधि सृष्टि बीज उपजाई। कारण कवन इहँ बिस्तराई ॥
नर मादा काहे विभाग सुहाई। कवन बल इहँ अजहुँ चलाई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! किस प्रकार से सृष्टि के बीज की उत्पत्ति हुई तथा किस कारण से सृष्टि के बीज का विस्तार हुआ और किस प्रकार सृष्टि में नर व मादा बन गए और आज किस के बल पर ये सृष्टि चल रही है।

काह आधार माया अरु ग्याना। कारण कवन सुख दुःख नाना ॥
शब्द स्पर्श श्रवण अरु दृष्टि। स्वादादि काह आधार सृष्टि ॥

व्याख्या – माया और ज्ञान का क्या आधार होता है ? तथा किस कारण से नाना प्रकार के सुख व दुःखों का आभास होता है ? शब्द, स्पर्श, श्रवण, दृष्टि व स्वाद आदि का क्या आधार होता है ?

पाप पुण्य काह मरम सुहाई। विद्या अविद्या देवउ समुझाई ॥
देव असुर नाथ काह मरमा। कहउ रहस्य परम ते परमा ॥

व्याख्या – हे नाथ ! पाप व पुण्य का क्या रहस्य है तथा विद्या व अविद्या को भी समझाकर बता दीजिए। देवता व असुरों का क्या रहस्य है। हे नाथ ! सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्य को मुझे समझाकर बताइये।

कवन सिद्धान्त विधि विधाना । क्रिया कवन करावइ ग्याना ॥
करहउ नाथ मम शंका निधाना । कहवउ सब हेतु जगकल्याना ॥

व्याख्या – हे नाथ ! विधि के विधान का सिद्धान्त क्या है तथा किस क्रिया के द्वारा विधि के विधान का ज्ञान होता है ? हे नाथ ! मेरी शंका का निवारण करते हुए जगत के कल्याण के लिए समस्त रहस्य को बता दीजिए ।

दो०–विधि विधान प्रबल अति पावइ मुक्ति बिरला कोय ।
सरल भाषा मोहि समझावहु ताते मम परम हित होय ॥ ५ ॥

व्याख्या – हे नाथ ! विधि का विधान बहुत प्रबल होता है, जिससे कोई बिरला ही मुक्ति प्राप्त कर पाता है । अतः मुझे सरल भाषा में समझा दीजिए, जिससे मेरा परम कल्याण हो जाए ।

सुनहु उमा मरम गम्भीरा । जानहिं ताइ मुनि मतिधीरा ॥
जन्म जन्म मुनि जतन कराई । प्रभु कृपा बिरला कोउ पाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम गम्भीर रहस्य को सुनो, जिससे मतिधीर मुनि लोग ही जान पाते हैं । जन्म-जन्म मुनि लोग जिस रहस्य को जानने का प्रयास करते हैं, परन्तु परमात्मा की कृपा से कोई कोई बिरला ही उस रहस्य को जान पाता है ।

सृष्टि उद्‌भव कहउँ बखानी । प्रभु कृपा मैं निज घट जानी ॥
जद्यपि कठिन मरम बखानी । निज मति सो कहिइब भवानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं तुम्हें सृष्टि की उत्पत्ति के रहस्य को बताऊँगा, जिसे मैंने हृदय में जाना है । हे पार्वती ! सृष्टि के रहस्य का वर्णन करना कठिन है, परन्तु मैं मेरी बुद्धि के अनुसार तुम्हें बताऊँगा ।

सकल जगत उमा मालिक एका । निज घट देखहउ करि विवेका ॥
अकथ अगाघ असीम अनन्ता । नाम रूप पार वेद भनन्ता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम हृदय में विवेक करके देख लो, समस्त जगत का मालिक एक ही है । उसे वेदों ने नाम व रूप से परे, अकथनीय, अगाध, असीम व अनन्त बताया है ।

उमा जद्यपि प्रभु सकल आकारी । भाव अनुसार देहउ धारी ॥
प्रभु कर्ता तउ अकर्ता कहाई । शक्ति ईश सब खेल खिलाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! हालांकि परमात्मा तो समस्त आकारों में ही विद्यमान रहते हैं, परन्तु भावों के अनुसार वे शरीर भी धारण कर लेते हैं । परमात्मा ही जगत के कर्ता हैं, फिर भी वे अकर्ता ही कहलाते हैं क्योंकि परमात्मा की शक्ति

ही ये सब खेल खिलाती है ।

दो०—सकल ब्रह्माण्ड प्रभु देह उमा भाव अनुसार पाइ विस्तार ।
नर नारी चित बनि रहहिं चित धड़कन भाव आधार ॥ ५ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! समस्त ब्रह्माण्ड ही परमात्मा का शरीर है, जो भावों के अनुसार विस्तार को प्राप्त होता रहता है । नर व नाड़ी ही परमात्मा का चित बन कर रहते हैं और चित की धड़कन ही भावों का आधार होती है ।

प्रभु चित उमा जे नारी सुहाई । सोई आदि शक्ति जगत बताई ॥
हरि चित जब चित्ति उठाई । नर नारी उभय भयी चंचलाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता के चित की नारी (नाड़ी) को ही संसार में आदि शक्ति कहा गया है । जब परमात्मा के चित में लहर उठी तो चित के नर-नाड़ी चंचल हो उठे ।

चित चंचलता प्राण उपजाई । प्राण ते पुनि रसायन आई ॥
रसायन सोई सृष्टि बीज सुहाई । अन्न रूप प्रथम प्रकटाई ॥

व्याख्या – चित की चंचलता से प्राण पैदा हो गए तथा प्राणों से रसायन (हार्मोन) पैदा हो गया और रसायन ही सृष्टि का बीज बन गया, जो सबसे पहले अन्न के रूप में प्रकट हुआ ।

अन्न ते भूत तत्व प्रकटाई । क्षिति जल अनल वायु नभताई ॥
पंच तत्व पुनि भा विस्तारा । प्रकटइ वनस्पिति नाना प्रकारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अन्न से भूत तत्व प्रकट हो गए, जिन्हें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश कहा जाता है । इन पाँच तत्वों का पुनः विस्तार हुआ, जिससे नाना प्रकार की वनस्पति पैदा हो गयी ।

जिमि झरत ओस सहज आकाशा । धारण करहि ताइ दुर्वादि घासा ॥
तेसउ झरहिं बीज चिताकाशा । नारी करहिं धारण सहज प्रयासा ॥

व्याख्या – जैसे आकाश से ओस की बूँदे सहज में झरती रहती हैं और दूर्वा आदि घास उसको धारण करते रहते हैं, वैसे ही चित के आकाश से बीज झरता रहता है, जिसे नारी (नाड़ी) धारण करती रहती है ।

दो०—चित चेतना अन्न मूल हय उमा ताइ पुरुषमय जान ।
नारी गर्भधारणि मातु समझ इहँ परम ते परम ग्यान ॥ ६ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! चित की चेतना ही अन्न रूपी बीज का मूल होती है, जिसे पुरुषमय जानना चाहिये और नाड़ी ही गर्भ को धारण करनेवाली माता होती है । यही परम से परम ज्ञान है ।

समझहु मरम गिरिजा कुमारी । आदि शक्ति परम पुरुष की नारी ॥
प्रभु चित चित्ति बनि रहि समाई । भाषा सरल सोइ प्रकृति कहाई ॥
व्याख्या – हे पार्वती ! परमपुरुष की नारी (नाड़ी) ही आदि शक्ति होती है, तुम इस रहस्य को समझो । यह आदि शक्ति परमात्मा के चित में चित्ति अर्थात लहर के समान रहती है । इस आदि शक्ति को ही सरल भाषा में प्रकृति कहते हैं ।
परम पुरुष कृत्य कृति सुहाई । भाव अनुसार आकृतिहु बनाई ॥
सो आदि शक्ति भा प्रकृति नामा । चिन्तन अनुसार करइ सब कामा ॥
व्याख्या – परमात्मा के समस्त कार्यो को करने वाली होने के कारण तथा भावों के अनुसार आकार धारण कर लेने के कारण ही आदिशक्ति का नाम प्रकृति कहलाता है, जो चिन्तन के अनुसार समस्त कार्यो को करती है ।
ज्यों ज्यों चिन्तहिं मन माहीं । सोइ सब भाव बनि प्रगटाहीं ॥
भाव तें भाव भव सागर होई । भाव समूह मन कहावई सोई ॥
व्याख्या – जैसा-जैसा मन में चिन्तन चलता है, वैसे ही भाव प्रकट हो जाते हैं और भावों से भाव तथा भावों से फिर भव सागर बन जाता है और भावों का समूह ही मन कहलाता है ।
सकल जगत मन बिस्तारी । सब मूल परम पुरुष की नारी ॥
सोई आदि शक्ति जग मूला । सत रज तम धार मन कूला ॥
व्याख्या – हे पार्वती ! समस्त संसार मन का विस्तार मात्र होता है, अतः परमपुरुष की नारी (नाड़ी) ही समस्त जगत का मूल होती है । उसी को जगत की मूल आदि शक्ति कहा जाता है, जिसकी सत, रज, व तमों गुणी धाराएँ होती हैं और मन रूपी किनारे होते हैं ।
दो०–नारी नारी सब कहत हैं नारी सकल जगत की खान ।
गृह नारी चित नारी भिन्न हैं जानहिं जेहि परम विद्वान ॥ ७ ॥
व्याख्या – नारी-नारी का बखान तो सभी करते हैं परन्तु वास्तव में तो नारी ही समस्त जगत की उत्पत्ति का कारण होती है । परन्तु जगत को पैदा करने वाली नारी घर की नारी (स्त्री) से भिन्न होती है । जो इस रहस्य को जानते हैं, वे परम विद्वान होते हैं ।
उमा सुनहु अब शक्ति विग्याना । निज अनुभव जो मैं हियँ जाना ॥
नाम मरम तोही प्रथम बताउँ । पुनि रिझावन जुगति समझाउँ ॥
व्याख्या– हे पार्वती ! अब मैं तुम्हें आदि शक्ति के विज्ञान को बताऊँगा, जो मैंने मेरे हृदय में समझा है । पहले तुम्हें शक्ति के नामों का रहस्य बताऊँगा

तथा पुनः शक्ति को अनुकूल करने का उपाय बताऊँगा ।

उमा नाम होहिं वृत अनुसारा । जद्यपि शक्ति नाम रूप पारा ॥
चित चिति सोई वृति बनाई । सत रज तम सो धार बहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! नाम तो वृतियों के अनुसार होता है, क्योंकि आदि शक्ति तो नाम व रूप दोनों से परे होती हैं । चित की लहर से ही वृति बनती है, जो सत, रज व तमों गुण रूपी धारा में बहती रहती है ।

पंचभूत सत रज तम धारा । सकल मिलि प्रकृति पुकारा ॥
सोइ शक्ति रूप अष्ट भुजा धारी । भयउ अहंकार सिंह सवारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! पाँच भूत और त्रिगुणों (सत, रज व तम) की धारा, ये सब मिल कर प्रकृति कहलाते हैं । पाँच भूत और तीन गुणों को ही शक्ति की आठ भुजा तथा अहंकार को सिंह की सवारी का संकेत जानना चाहिये ।

भावन्ह वृति जद्यपि अनन्ता । अष्टोत्तरशत पर मैं भनन्ता ॥
प्रति वृति अब मैं कहउँ बखानी । मन थिर करि सुनहउ भवानी ॥

व्याख्या – हालांकि भावों की वृति अनन्त होती है, फिर भी मैं तुम्हें प्रधान एक सौ आठ वृतियों को बताऊँगा । हे पार्वती ! तुम मन को स्थिर करके सुनो ।

प्रभु चित थिर हिले न हिलाई । सत्यमय सोइ वृति सती कहाई ॥
परमपुरुष शक्ति साध्य सुहाए । सोई वृति उमा साध्वी कहाए ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब परमात्मा का चित स्थिर होता है, तब सत्यमय अवस्था की वृति ही सती कहलाती है तथा परमात्मा ही शक्ति के ध्येय अर्थात साध्य होते हैं, इसलिए उस वृति का नाम साध्वी कहलाता है ।

भाव अनुसार प्रीत कराई । सोई वृति नाम भवप्रीता सुहाई ॥
आनहहिं भाव सो नाम भवानी । नाशहि भाव भव मोचनी बखानी ॥

व्याख्या – भावों के अनुसार ही शक्ति प्रीत करती है, इसलिए ही शक्ति की इस वृति का नाम भवप्रीता है तथा शक्ति से ही भाव पैदा होते हैं इसलिए भवानी अर्थात भावों को लाने वाली नाम है । शक्ति के बल पर ही भावों से मुक्ति मिलती है, इसलिए भवमोचनी नाम है ।

दो०- दुर्ग समान अभेद दुर्गा विजय शालिनी सो जया कहाय ।
आदि शक्ति सोइ आद्या भयी त्रिगुणधारी त्रिनेत्रा सुहाय ॥ ८ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! दुर्ग के समान अभेद होने के कारण आदि शक्ति का नाम दुर्गा है तथा सदा विजयशालिनी होने के कारण जया कहलाती हैं । आदि शक्ति होने के कारण आद्या हैं और सत, रज व तमों गुणों को धारण करने

के कारण त्रिनेत्रा कहलाती हैं ।

अरिहन्ता वृति आर्या सुहाई । कारण शूल सो शूल धारिणी कहाई ॥
धनु रज्जु सम देह रहाई । सोइ वृति पिनाक धारिणी कहाई ॥

व्याख्या – काम, क्रोध, मद व लोभ आदि असुरों का हनन करने वाली वृति के कारण आर्या कहलाती हैं और दुःखों का कारण होने के कारण शूल धारिणी कहलाती हैं तथा शरीर को धनुष की रस्सी की तरह धारण किए हुए है, इसलिए पिनाक धारिणी कहलाती हैं ।

दृश्य मूल सोइ चित्रा कहाई । शब्द धारिणी चण्डघण्टा सुहाई ॥
मन इन्द्रिन्ह मूल सुहाई । सोइ महातपा नाम कहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदि शक्ति ही दृश्यों को पैदा करनेवाली होती है इसलिए चित्रा है तथा शब्द भी आदिशक्ति से ही प्रकट हैं, इसलिए ध्वनि को धारण करने के कारण चण्डघण्टा हैं । मन व इन्द्रियों का मूल होने के कारण महातपा कहलाती हैं ।

मन्थन शक्ति सोई मन नामा । करावई बोध सो बुद्धि धामा ॥
अहंकार भासति नाम अहंकारा । चितमय सोइ चितरूपा पुकारा ॥

व्याख्या – मनन शक्ति होने के कारण आदिशक्ति का नाम मन भी है तथा सब कुछ का बोध करवाने वाली होने के कारण बुद्धि नाम है । अहंकार का आभास कराने के कारण अहंकारा और चितमय होने के कारण चितरूपा कहलाती है ।

चित नारी सोइ नाम चिता कहाई । चेतना बनि रहइ सो चिति सुहाई ॥
सर्वमन्त्रमूल सर्वमन्त्रमयी होई । अधिकार धारिणी नाम सत्ता सोई ॥

व्याख्या – चित की नारी (नाड़ी) होने के कारण चिता कहलाती हैं तथा चेतना बन कर रहने के कारण चिति हैं । सभी मन्त्रों का मूल होने के कारण सर्वमन्त्रमयी हैं तथा समस्त अधिकारों को धारण करने के कारण सत्ता हैं ।

दो०–सत्यानन्द स्वरूपिणी आदिशक्ति अनन्त स्वरूप सो अनन्ता नाम ।
भाव्या भव्या अभव्या भाविनी सोई शक्ति सकल भावन्ह धाम ॥ ९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदि शक्ति की एक वृति सत्यानन्द स्वरूपिणी है तथा अनन्त होने के कारण अनन्ता नाम है । वही शक्ति भावना करने योग्य होने के भाव्या कहलाती है तथा वही भव्या अर्थात भाव रूप और अभव्या अर्थात भावों से रहित होती है । वही आदि शक्ति समस्त भावों का घर होती है ।

गतिमय सोइ सदागति कहाई । प्रभु प्रिया शाम्भवी नाम धराई ॥
देवमाता चिन्ता चिन्तनधारी । रत्नप्रिया सर्वविद्या ऐन्द्री कौमारी ॥

व्याख्या – आदिशक्ति सदा गतिमान रहती है, इसलिए सदागति है तथा

परमात्मा की प्रिय होने के कारण शाम्भवी नाम है । सद्भावों की मूल होने के कारण देवमाता है तथा चिन्तन कराने वाली होने के कारण चिन्ता नाम है। रत्नप्रिया, सर्वविद्या, इन्द्रियों की मूल ऐन्द्री तथा कौमारी अर्थात क्रोध को मारने वाली भी आदि शक्ति के ही नाम हैं ।

चातुर्यमूल दक्ष कन्या होई । चले न चतुराई यज्ञ विनाशिनी सोई ॥
रंग अनेका अनेक वर्णा सोई । नहिं कोउ अपर अपर्णा होई ॥

व्याख्या – समस्त चतुराईयों का मूल होने के कारण दक्ष कन्या है तथा जिसके आगे कोई चातुर्य नहीं चल पाता है इसलिए उसका नाम दक्षयज्ञ विनाशिनी भी है । अनेक रंगों को धारण करने के कारण अनेक वर्णा है तथा कोई दूसरा उससे पार नहीं पा सकता, इसलिए वह अपर्णा है ।

पल पल टलहिं पाटला होई । धड़कन सरूप पाटलावती सोई ॥
रेशम सूतसम सो पट्टाम्बर परीधाना । कलमंजीर रंजिनी ध्वनि समाना ॥

व्याख्या – आदि शक्ति (चित्त की नारी) पल पल हिलती रहती है इसलिए पाटला है तथा धड़कन के स्वरूप में हिलते रहने के कारण पाटलावती है । रेशम के धागे के समान आभासित होने के कारण पट्टाम्बर परीधाना नाम है । मधुर ध्वनि में रमण करने वाली आदि शक्ति कलमंजीर रंजिनी है ।

असीम पराक्रम अमेय विक्रमा । नाम क्रूरा नाशक कठोर कुकरमा ॥
मन मति मूल सो नाम मातंगी । मतंग पूजिता हेतु मन संगी ॥

व्याख्या – असीम पराक्रम वाली होने के कारण अमेय विक्रमा नाम है तथा कठोर कुकर्मो का नाश करने के लिए क्रूरा नाम है । मन व बुद्धि का मूल होने के कारण मातंगी नाम है तथा मन के साथ रहने से मतंग मुनि पूजिता नाम है ।

सुन्दरी सुर सुन्दरी नामा । परमपुरुष की शक्ति नारी ललामा ॥
ब्रह्म धारक सो ब्राह्मी कहाई । अणु अणु वासी वैष्णवी सुहाई ॥

व्याख्या – आदि शक्ति के सुन्दरी व सुर सुन्दरी नाम है क्योंकि यह परमपुरुष की नारी है । ब्रह्मरूपी बीज को धारण करने वाली होने के कारण ब्राह्मी कहलाती हैं तथा अणु-अणु में निवास करने के कारण वैष्णवी नाम है ।

दो०- महाऐश्वर्य जननी माहेश्वरी लच्छन मूल सोइ लक्ष्मी नाम ।
वन सम दुस्तर वन दुर्गा चामुण्डा सोई सकल चाह धाम ॥ १० ॥

व्याख्या – समस्त ऐश्वर्यो की माता होने के कारण माहेश्वरी हैं और समस्त लक्षणों से युक्त होने के कारण लक्ष्मी हैं । वन के समान दुस्तर होने के कारण वन दुर्गा हैं

तथा समस्त इच्छाओं को पैदा करने वाली होने के कारण चामुण्डा हैं ।

परम पुरुष राह दिखावन हारी । सोई शक्ति नाम वाराही पुकारी ॥
परमपुरुष सब कृत्य कराई । पुरुषाकृति सोइ नाम धराई ॥

व्याख्या – परमपुरुष के मार्ग को दिखाने वाली होने के कारण वाराही (वा+राही+अर्थात उसका रास्ता) नाम कहा जाता है तथा परमपुरुष के समस्त कार्यों को करने वाली होने के कारण पुरुषाकृति नाम है ।

विशुद्ध स्वरूप विमला कहाई । उत्कर्षिणी हेतु उत्थान कराई ॥
क्रिया करावई सोइ क्रिया नामा । ज्ञाना कहावई ग्यान की धामा ॥

व्याख्या – विशुद्ध स्वरूप होने के कारण विमला नाम है तथा उत्थान करने वाली होने के कारण उत्कर्षिणी कही जाती है । क्रिया को कराने वाली होने के कारण क्रिया नाम है तथा ज्ञान का घर होने के कारण ज्ञाना कही जाती हैं ।

नित्य सनातन नित्या कहाई । बुद्धिदायक सो बुद्धिदा सुहाई ॥
बहुरि भाव उपजावन हारी । सोई नाम बहुला शक्ति धारी ॥

व्याख्या – नित्य परमात्मा के तन में रहने के कारण नित्या नाम है तथा बुद्धि को देने वाली होने के कारण बुद्धिदा नाम है । आदि शक्ति बहुत से भावों को पैदा करती हैं, इसलिए उनका नाम बहुला है ।

सकल भाव प्रीत कराई । सोइ शक्ति बहुलप्रेमा कहाई ॥
सर्व साधना मूल शक्ति सुहाई । सो नाम सर्ववाहन वाहना धराई ॥

व्याख्या – समस्त भावों से ही आदिशक्ति प्रीत करती हैं, इसलिए वे बहुल प्रेमा कही जाती हैं । समस्त साधनाओं की भी साधन होने के कारण सर्ववाहनवाहना नाम कहा जाता है ।

दो०–शुभ अशुभ उभय मूल शक्ति उभय हनन क्षमताउ सुहाय ।
सोइ नाम शुम्भ निशुम्भ हननी उमा इहँ मोहि समझ पराय ॥ ११ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति ही शुभ व अशुभ दोनों का मूल होती है तथा इन दोनों का हनन करने की क्षमता भी आदि शक्ति में ही होती है, इसलिए इनका नाम शुम्भ निशुम्भहननी होता है । मेरे हृदय में यही समझ में आया है ।

अज्ञान सोइ महिषासुर होई । अज्ञनाशक महिषासुर मर्दिनी सोई ॥
मधु अरु कटु रूप अहंकारा । मधु कैटभहन्त्री सोइ नाम पुकारा ॥

व्याख्या – अज्ञान ही महिषासुर होता है और अज्ञान नाशक होने के कारण शक्ति का नाम महिषासुरमर्दिनी है । मधुर व कटु अहंकार के रूप होते हैं और शक्ति

अहंकार का नाश करने वाली होने के कारण मधुकैटभहन्त्री कहलाती हैं ।

इच्छामूल शक्ति देइ नसाई । सोइ चण्डमुण्ड विनाशिनी कहाई ॥
सर्व आसुरी भाव शक्ति नसाए । सर्वासुर विनाशा सो नाम कहाए ॥

व्याख्या – इच्छाओं के मूल को आदिशक्ति मिटा देती हैं, इसलिए चण्डमुण्ड विनाशिनी कही जाती हैं । समस्त आसुरी भावों का विनाश करने वाली होने के कारण सर्वासुर विनाशा नाम है ।

दानव भाव सब नाशनहारी । सोइ सर्वदानव घातिनी नाम धारी ॥
प्रभु सत्य सो सत्या नारी नामा । सर्वशास्त्रमयी हेतु शास्त्र धामा ॥

व्याख्या – सभी दानव भावों का नाश करने वाली होने के कारण सर्व दानव घातिनी नाम धारण करती हैं और परमात्मा सत्य स्वरूप हैं तथा आदि शक्ति परमात्मा की नारी हैं, इसलिए सत्या कहलाती हैं ।

सब शस्त्रमूल सो सर्वशस्त्र धारिणी । बाणीमूल सोइ नाम ब्रह्मवादिनी ॥
जरा जन्म रहित एकरस होई । कुमारी युवती एककन्या यति सोई ॥

व्याख्या - सब शस्त्रों का मूल होने के कारण सर्वशस्त्र धारिणी कहलाती है तथा वाणी का मूल होने के कारण ब्रह्मवादिनी हैं । जन्म व बुढ़ापे से रहित आदिशक्ति एकरस रहती हैं, इसलिए वे कुमारी, युवती, एककन्या व यति कहलाती हैं ।

दो०– क्रिया मूल सो शस्त्रहस्ता नाम भा भाव रूप अस्त्र धारहिं अनेका ।
अनेकास्त्रधारिणी कहावई उमा देखहु हियँ करि विवेका ॥१२॥

व्याख्या – आदिशक्ति समस्त क्रियाओं का मूल होने के कारण अनेक शस्त्रहस्ता कहलाती हैं तथा भाव रूपी अनेक अस्त्रों को धारण करने के कारण अनेकस्त्र धारिणी कहलाती है । हे पार्वती ! तुम हृदय में विचार करके देख लो ।

समस्त जग उदर बसाई । सोई नाम शक्ति महोदरी कहाई ॥
आदि शक्ति सदा महाबलवाना । सोई नाम सब महाबला बखाना ॥

व्याख्या – समस्त जगत आदिशक्ति के उदर में निवास करता है, इसलिए महोदरी नाम है तथा आदिशक्ति महाबलवाली होने के कारण महाबला कहलाती हैं ।

बलदायिनी बलप्रदा कहाई । नर ही अयन नारायणी सुहाई ॥
सज्जन जन करहि कल्याणा । सोई नाम भद्रकाली बखाना ॥

व्याख्या – बल प्रदान करनेवाली होने के कारण बलप्रदा हैं तथा चित स्थित नर (धड़कन) को घर बनाकर रहने के कारण नारायणी (अर्थात नर ही जिसका घर हो) कहलाती हैं । आदिशक्ति सज्जन लोगों का कल्याण करती हैं, इसलिए भद्रकाली हैं ।

आदिशक्ति परम ऐश्वर्यधारी । सोइ परमेश्वरी नाम पुकारी ॥
प्रौढ़ा अप्रौढ़ा बृद्धमाता किशोरी । सर्वत्र शक्ति रहहिं रूपाघोरी ॥

व्याख्या – आदिशक्ति परम ऐश्वर्य को धारण करनेवाली होने के कारण परमेश्वरी कहलाती हैं तथा प्रौढ़ा, अप्रौढ़ा, वृद्धमाता व किशोरी सभी अवस्थाओं में आदि शक्ति ही माया के रूप में निवास करती हैं ।

अग्निसम तेज अनल ज्वाला । नाम कराली हेतु रूप कराला ॥
अणु अणु मय माया रूप निवासी । विष्णुमाया नाम सोई जग भासी ॥

व्याख्या – आदिशक्ति का तेज अग्नि के समान होने के कारण अनल ज्वाला कहलाती हैं तथा कराला रूप होने के कारण कराली नाम है । सृष्टि के अणु-अणु में माया के रूप में निवास करने के कारण विष्णुमाया नाम है ।

तपमूल सोई तपस्विनी कहाई । नाम अनन्ता विनाश न पाई ॥
विधि मूल प्रत्यक्ष सुहाई । सोई नाम प्रत्यक्षा कहाई ॥

व्याख्या – तप की मूल होने के कारण तपस्विनी नाम है तथा कभी विनाश नहीं होता है, इसलिए अनन्ता कहलाती हैं । क्रिया (विधि) की प्रत्यक्ष मूल होने के कारण प्रत्यक्षा नाम है ।

चौ०– चूल सम वृति मुक्त सुहाई । सोई शक्ति मुक्त केशी कहाई ॥

व्याख्या – बालों के समान आदिशक्ति की वृतियाँ मुक्त होती हैं, इसलिए आदिशक्त को मुक्त केशी कहा जाता है ।

दो०–जीव अरु प्रभु संदेशवाहक आदिशक्ति सोई नाम शिवदूती धराय ।
त्रय गुण पार सोई सावित्री क्रिया अयन सोई कात्यायनी कहाय ॥१३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति परमा त्मा और जीव के बीच संदेशों का आदान-प्रदान करती हैं, इसलिए शिवदूती नाम है तथा आदिशक्ति तीनों गुणों से परे होती हैं, इसलिए सावित्री कहलाती हैं तथा क्रिया (विधि) का घर होने के कारण कात्यायनी कहलाती हैं ।

सकल रस मूल शक्ति सुहाई । सोई वृति उमा जलोदरी कहाई ॥
भाव अनुसार द्रवहहिं सदाई । सोई शक्ति रोद्रमुखी सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! समस्त रसों का मूल शक्ति ही होती है, इसलिए शक्ति की इसी वृति को जलोदरी कहा जाता है तथा भावों को देखकर सदैव द्रवित होती हैं, इसलिए रोद्रमुखी कहलाती हैं ।

कालहउ काल कालरात्रि होई । परम पुरुष नारी शक्ति सोई ॥
उमा शक्ति मूल शक्ति सुहाई । महिमा अमित बरनिन जाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति तो काल की भी काल होने के कारण कालरात्रि हैं । आदिशक्ति परमपिता की नारी (नाड़ी) हैं । हे पार्वती ! शक्ति का मूल तो स्वयं शक्ति ही हैं । उनकी महिमा तो अपरम्पार है, इसलिए वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

उमा मरम जानि गावहि नामा । पावहहि सहज ते परम धामा ॥
रहइ न असाध्य तीनउ लोका । पावइ मनोवांछित मिटहिं शोका ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो लोग शक्ति के नामों के मर्म को जानकर गाते हैं, वे सहज में ही परमधाम प्राप्त कर लेते हैं । उन लोगों के लिए तीनों लोकों में कुछ भी आसाध्य नहीं रहता है तथा उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और सब कष्ट मिट जाते हैं ।

आदिशक्ति नित्य करहिं ध्याना । मिलहिं यश वैभव सम्पदा नाना ॥
अष्टोत्तरशत नाम मरम बुझाई । तिन्ह जग दुर्लभ किछु नाई ॥

व्याख्या – जो लोग आदिशक्ति का नित्य ध्यान करते हैं, उन्हें यश, वैभव व नाना प्रकार की सम्पदा प्राप्त हो जाती है । जो लोग आदिशक्ति के एक सौ आठ नामों के रहस्य को जान लेते हैं, उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह पाता है ।

दो०– आदि शक्ति शतवृति अष्टधार हैं सोई अष्टोत्तरशत नाम प्रधान ।
भाव रूप मरम सकल तहँ छुपा जानइ जेहिं पावहहिं पद निर्वान ॥ १४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति की सौ वृतियाँ व आठ धाराएँ होती हैं इसलिए एक सौ आठ नाम मुख्य रूप से बताएँ गए हैं । इन एक सौ आठ नामों में भाव व रूप का समस्त रहस्य छुपा हुआ रहता है, इसलिए जो कोई इस रहस्य को जान लेता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।

अष्टधार मरम देउँ बताई । सुनु उमा जो मोहि परा समुझाई ॥
ज्ञानइन्द्रिन्ह अरुत्रिगुण धारा । सकल मिल भयी अष्ट प्रकारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब मैं तुम्हें आठ धाराओं के रहस्य को बता देता हूँ, जिसे मैंने समझा है । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और तीन गुणों की धारा मिलकर आठ धाराएँ कहलाती हैं ।

धारा अरु वृति मिलि रूप बनाई । सोई रूप मरम देउँ बताई ॥
उमा नाम अरु रूप सदा अभंगा । भाव प्रीति उभय जुरहिं संगा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! धारा और वृतियों के मिलने से रूप का आभास होने लग जाता है, इसलिए मैं तुम्हें रूप के रहस्य को बता देता हूँ । सुनों– नाम और रूप दोनों अभेद होते हैं, जो भाव की प्रीत से एक दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं।

नाम ते रूप आपहि आप बनाई । रूप पेखि नामहु जाई प्रकटाई ॥
बिनु नाम नहिं रूप ठिकाना । बिनु रूप नहिं नाम स्थाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! नाम से रूप तो अपने-आप प्रकट हो जाता है और रूप को देखकर नाम भी प्रकट हो जाता है । बिना नाम के रूप नहीं होता है तथा बिना रूप के नाम का कोई स्थान नहीं होता है ।

सो शक्ति रूप नाम समझाउँ । प्रथम वाराही मरम बताउँ ॥
आदि शक्ति एक नाम बाराही । दस गो सह राह मन बुद्धि सबाही ॥

व्याख्या - हे पार्वती ! अब मैं तुम्हें शक्ति के नाम व रूप के रहस्य को समझाता हूँ । सुनों- पहले वाराही रूप के रहस्य को बताता हूँ । आदिशक्ति का एक नाम वाराही है क्योंकि दस इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि सहित आदिशक्ति के संसार में जाने के बारह रास्ते हैं ।

दो०–जग बारह राह वाराही रूप सो महिषा सवारी प्रतीक अनूप ।
अग्यता हेतु जीव जग भरमावहिं महिषा सोई अग्यता कूप ॥१५ ॥

व्याख्या – संसार में जाने के बारह रास्ते (मन, इन्द्रियाँ व बुद्धि) होते हैं अतः यही आदिशक्ति का प्रतीकात्मक रूप है तथा भैंसा सवारी का प्रतीक है, क्योंकि अज्ञान के कारण जीव संसार में भ्रमित होता है और भैंसे को ही अज्ञान का प्रतीक माना जाता है ।

अणु अणु व्यापक रज अहंकारा । रूप वैष्णवी गरुड़ सवारा ॥
कौमारी रूप बाहन मयूर सुहाई । अहि सम वासना सकहिं खाई ॥

व्याख्या – रज अहंकार के बल पर शक्ति अणु-अणु में व्यापक रहती है इसलिए वैष्णवी रूप को अहंकार रूपी गरुड़ पर सवार बताया गया है । कौमारी रूप का वाहन मयूर बताया गया है, क्योंकि यह वासना रूपी सर्पो को खाने का प्रतीक है।

परम ऐश्वर्य रूप वृषवाहना । माहेश्वरी दायक सम्पदा नाना ॥
चाह पूर्ण सदा प्रीत अनुसारी । सोइ रूप चामुण्डा प्रेत सवारी ॥

व्याख्या – परम ऐश्वर्य के रूप में बल सवारी का प्रतीक माहेश्वरी देवी का होता है, जो नाना प्रकार की सम्पदा को देने वाली होती है । मन की इच्छा सदा मन की प्रीत की भावना के अनुसार पूर्ण होती है, इसलिए चाहपूर्ण करने वाली देवी चामुण्डा को प्रेत की सवारी के साथ बताया गया है ।

हकार सकार चलहिं श्वासा । हंसा आरुढ़ ब्रह्म प्रकासा ॥
ब्रह्म रमाहिं सोई ब्राह्मी कहाई । हंस सवारी रूप प्रतीक सुहाई ॥

व्याख्या – जब हकार व सकार के साथ श्वास चलता है, तब वह अवस्था हंस पर

आरुढ़ होने की होती है, जिससे ब्रह्म का आभास होता है और वह अवस्था ब्रह्म में रमण कराती है, इसलिए उसको हंस पर सवार ब्राह्मीदेवी का रूप बताया गया है।

लच्छन युक्त विगत विकारा। कमलासन लक्ष्मी देवी पुकारा ॥
सत अहंकार सोई सिंह सवारी। महिषा अग्यता डारहहिं मारी ॥

व्याख्या — समस्त लक्षणों से युक्त होकर विकारों से परे होने को ही कमल पर आसीन लक्ष्मी देवी के रूप में बताया गया है। सात्विक अहंकार ही सिंह सवारी का प्रतीक है, जो अज्ञान रूपी महिषासुर को मारने का प्रतीक है।

दो०— सकल सिद्धिदायक सिद्धिदात्री तपमय सोई महागौरी रूप सुहाय।
तन सनातन सोइस्कन्द हय सो आदिशक्ति मातास्कन्द कहाय ॥१६॥

व्याख्या — आदिशक्ति समस्त सिद्धियों को देने वाली होने के कारण सिद्धिदात्री हैं तथा तपमय होने के कारण महागौरवर्ण वाली कहलाती हैं तथा सदैव तन को धारण करने वाली होने के कारण स्कन्दमाता कहलाती हैं।

त्रिविध जग मन माझ समाई। सोई रूप कुष्माण्डा समुझाई ॥
बसहिं आह्लाद सदा घट माहीं। सोई शक्ति चन्द्रघण्टा रूप सुहाहीं ॥

व्याख्या — त्रिविध जगत शक्ति के मन में सूक्ष्म रूप से निवास करता है इसलिए कुष्माण्डा रूप है। सदैव शक्ति में आह्लाद होता है, इसलिए चन्द्रघण्टा रूप है।

शुभकृत आयन कात्यायनी रूपा। कालहु काल सो कालरात्रि अनूपा ॥
ब्रह्म राह सोइ रूप ब्रह्मचारिनी। शोक दुःख भय सकल नासिनी ॥

व्याख्या — अच्छे कार्यो को कराने वाली होने के कारण कात्यायनी रूप है तथा काल का भी काल होने के कारण कालरात्रि का रूप होती है। ब्रह्म को प्राप्त करने का मार्ग होने के कारण ब्रह्मचारिणी रूप होता है, जो शोक, दुःख व भय का नाश करने वाली होती है।

ऐन्द्री रूप ऐरावत सवारी। चितमय प्रतीक रूप इहँ धारी ॥
उमा शक्ति बहु रूप सुहाए। मति अनुसार मैं तोही बताए ॥

व्याख्या — ऐन्द्री देवी को ऐरावत हाथी पर सवार दिखाना शक्ति की चितमय अवस्था का प्रतीक है। हे पार्वती ! इस प्रकार आदि शक्ति के अनेक रूप हैं, जिनका मैंने मेरी बुद्धि के अनुसार वर्णन कर दिया है।

आदि शक्ति पराक्रम अपारा। दायक सुख वैभव नाना प्रकारा ॥
सोई शक्ति उमा मातु जगदम्बा। सत्य वचन करउ न अचम्भा ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! आदि शक्ति का पराक्रम अपार होता है तथा वह नाना

प्रकार के सुख व वैभवों को देनेवाली होती है। हे पार्वती ! वही आदिशक्ति जगत की माता जगदम्बा है। ये सत्य वचन हैं, तुम आश्चर्य मत करो।

दो०–करुणामयी मातु जगदम्बा विनय भाव देखि द्रवहहिं तुरन्त ।
सो विनय स्तुति कहउँ उमा करहि जेहि कृपा मातु बरसन्त ॥ १७ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जगदम्बा माता करुणामयी हैं, जो विनय के भाव को देखकर तुरन्त द्रवित हो जाती हैं। अतः मैं यहाँ उसी विनय स्तुति को बताता हूँ, जिसे करने वालों पर माता तुरन्त कृपा की वर्षा कर देती हैं।

जगदम्बा स्तुति

छ० - जय जय मातु जगदम्बा जय कात्यायनी सर्व कार्यसिद्धि कारिनी ।
जय जय चन्द्रघण्टा आह्लाद वासिनी जय सकल वैभव दायिनी ॥
जय जय जयन्ति माता सम्पदा दाता जय हंसिनि ब्रह्मचारिणी ।
जय जय मंगला मंगलमयी जय आदिशक्ति सत्यानन्द विहारिणी ॥

व्याख्या – हे माता ! जगदम्बा आपकी जय हो ! हे समस्त कार्यो को सिद्ध करने वाली कात्यायनी आपकी जय हो। आह्लाद में निवास करने वाली हे माता चन्द्रघण्टा ! आपकी जय हो। हे सकल वैभवों को देने वाली माता ! आपकी जय हो। हे जयन्ती माता ! आपकी जय हो। आप समस्त सम्पदाओं को देने वाली हैं। हंस पर सवार रहने वाली हे ब्रह्मचारिणी माता ! आपकी जय हो। हे मंगलमयी माता मंगला ! आपकी जय हो। हे सत्यानन्द में विहार करने वाली आदि शक्ति ! आपकी जय हो।

छ० – जय जय महागौरी तपस्विनी जय स्कन्द माता घट-घट वासिनी ।
जय जय कालरात्रि महाकाली जय सिद्धिदात्रि ब्रह्माण्डधारिनी ॥
जय जय वैष्णवी अणुमयी जय कमला माता कमला सिनी ।
जय जय महाबला बलशाली जय अरिहन्त्री कामादि नासिनी ॥

व्याख्या – हे तपस्विनी महागौरी ! आपकी जय हो। घट-घट में निवास करने वाली हे स्कन्द माता ! आपकी जय हो। काल का भी अन्त करनेवाली हे महाकाली ! आपकी जय हो। अणु अणु में व्यापक हे वैष्णवी ! आपकी जय हो। कमल आसन पर विराजमान हे कमला माता ! आपकी जय हो। हे बलशाली महाबलवान ! आपकी जय हो। काम-क्रोध आदि का नाश करने वाली हे अरिहन्त्री ! आपकी जय हो।

छ० – जय जय चामुण्डा चाहपूर्णा जय माता महिषासुर अज्ञान नासिनी ।
जय जय विमला विमल सरूपा जय वाणी मूला ब्रह्मवादिनी ॥

जय जय परमेश्वरी ऐश्वर्यधारी जय बल प्रदा बल दायिनी ।
जय जय नारायणी नर अयनी जय शस्त्रमूला सर्वशस्त्र धारिनी ॥

व्याख्या – समस्त इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली हे चामुण्डा ! आपकी जय हो। अज्ञानरूपी महिषासुर का नाश करने वाली हे माँ ! आपकी जय हो । विमल स्वरूप वाली हे विमला ! आपकी जय हो । वाणी की मूल हे ब्रह्मवादिनी ! आपकी जय हो । समस्त ऐश्वर्यो को धारण करने वाली हे परमेश्वरी ! आपकी जय हो । हे बलप्रदान करने वाली बलप्रदा ! आपकी जय हो । चित की धड़कन (नर) को घर बनाकर रहने वाली नारायणी । आपकी जय हो । समस्त भाव रूपी शस्त्रों का मूल सर्वशस्त्रधारिणी ! आपकी जय हो ।

छ० – जय जय मन्त्र मूला सर्वमन्त्रमयी जय सत्ता अधिकार धारिणी ।
जय जय सदागति गतिमय माँ जय ध्वनिमूला कलमंजीररंजिनी ॥
जय जय सुर सुन्दरी माता क्षेमकरी परमपुरुष चित नारी ललामा ।
जय जय नित्या नित्य सनातन जय माता मन बल बुद्धि धामा ॥

व्याख्या – हे मन्त्रों की मूल सर्वमन्त्रमयी ! आपकी जय हो । अधिकारों को धारण करनेवाली हे सत्ता ! आपकी जय हो । सदागतिमय रहने वाली हे सदागति माँ ! आपकी जय हो । ध्वनि की मूल हे कलमंजीररंजिनी ! आपकी जय हो । हे कृपा करनेवाली परमपुरुष के चित की नाड़ी ! आपकी जय हो । नित्य सनातन रहनेवाली हे नित्या ! आपकी जय हो । मन, बल व बुद्धि की धाम हे माता ! आपकी जय हो ।

छ० – द्रवहहिं तुरन्ता ऋषि मुनि भनन्ता सोई आवहउँ मातु शरणाई ।
हरउ सब बाधा क्षमहउ अपराधा सुत जानि मोहि लेउ अपनाई ॥
ऋषि मुनि सुर नर सकल चराचर आयुस तुम्हार मातु अनुसराई ।
सो कृपा करहउ माता हरहउ संतापा जय रूप यश वैभव देउ प्रदाई ॥

व्याख्या – हे माता ! आप तुरन्त द्रवित हो जाती हैं, सभी ऋषि मुनि ऐसा ही कहते हैं, अतः मैं आपकी शरण में आया हूँ । हे माता ! आप मुझे अपना पुत्र जान कर अपना लिजिए और मेरे समस्त संकटों को दूर कर दो और मेरे अपराधों को क्षमा कर दो । हे माता ! समस्त ऋषि-मुनि, देवता, नर व समस्त चराचर आपकी आज्ञा का पालन करते हैं, इसलिए आप कृपा करके संकटों का निवारण कर दीजिए और जय, रूप, यश व वैभव प्रदान कर दीजिए ।

श्लोक– उमा पवितं इदम् स्तुति श्रद्धा सह जे नित्य पठन्ति नराः ।
द्रवन्ति मातु जगदम्बा च करोति अनुकूल सर्व चराचराः ॥ १८ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! यह स्तुति बहुत ही पवित्र है, अतः जो लोग नित्य इसका पाठ करेंगे, उन पर माता जगदम्बा द्रवित हो जायेंगी तथा समस्त चराचर को अनुकूल कर देंगी ।

करुणामयी आदिशक्ति सुभाउ । मातु सम अरु न जग काउ ॥
आदिशक्ति जगत पितु माता । करहहिं कृपा मिटहिं संतापा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति करुणामयी सुभाव की हैं, इसलिए माता आदि शक्ति के समान संसार में दूसरा कोई नहीं है । आदिशक्ति ही जगत की माता व पिता हैं, जिनके कृपा करने से समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है ।

विधि हरि मैं पाइ जो सन्माना । ये सब फल मातु कृपा निसाना ॥
अकथ अगाध मातु अविनासी । गुणमूल गुणातीत वेदप्रकासी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं, ब्रह्माजी व विष्णुजी जो सम्मान पाते हैं, वह सब माता की कृपा का ही फल है । माता आदिशक्ति तो अकथनीय, अगाध व अविनाशी हैं तथा गुणमूल व गुणों से परे हैं तथा वेद का प्रकाश करनेवाली हैं ।

अगम अगोचर महिमा अपारी । भावन्ह मूल जगत महतारी ॥
जगत मूला घटघट वासिनी । सहज दयालु भव भ्रम नासिनी ॥

व्याख्या – माता आदिशक्ति अगम्य, अगोचर व अपरम्पार महिमा वाली हैं तथा समस्त भावों को पैदा करने वाली व जगत की माता हैं । आदिशक्ति ही जगत की मूल हैं तथा सबके हृदय में निवास करती हैं और सहज में ही दया करने वाली व भावों के भ्रम का नाश करने वाली हैं ।

महामाया मयी जद्यपि निरंजनी । शुभकारी मुनि मन रंजनी ॥
त्रिगुणमय सकल सृष्टि बनाई । मंगलमूल मंगल फलदाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति महामायामयी हैं, फिर भी माया से निर्लेप (निर+अंजन) रहती है तथा शुभ करने वाली व मुनियों के मन में रमण करने वाली हैं । उन्होंने यह समस्त सृष्टि तीन गुणों (सत, रज व तम) से युक्त बनायी है । वे मंगल की मूल व मंगल करने वाली माता हैं ।

दो०–बलादाकृष्य मातु वृति है ज्ञानिन हृदयउ देइ बिचलाय ।
शरणागत रक्षक सुभाव सदा आवहिं शरण निर्भय सुहाय ॥ १९ ॥

व्याख्या – बलपूर्वक आकर्षण माता की वृति है, इसलिए वह ज्ञानियों के हृदय को भी विचलित कर देती है । आदिशक्ति का सुभाव शरणागतों की रक्षा करने वाला है, इसलिए जो शरण में आ जाते हैं, वे निर्भय रहते हैं ।

सुख सुमिरहि जे मातु जगदम्बा। शुभमति पावहि कृपा अवलम्बा ॥
शुभ गति तिन्हहिं सहज मिलाई। जेहि सुमिरहिं मातु लय लाई ॥

व्याख्या – जो लोग सुख के समय में माता जगदम्बा का स्मरण करते हैं, उन्हें माता की कृपा से सद्बुद्धि की प्राप्ति हो जाती है और जो लोग लय लगाकर माता का सुमिरण करते हैं, उन्हें सहज में ही शुभ गति मिल जाती है ।

दयामय मातु सहज द्रवहहिं। सदा होइ भल शरण लहहिं ॥
सर्व स्वार्थ मातु सिद्ध कराई। मंगल मूल सोइ मंगलदाई ॥

व्याख्या – दयामयी माता आदिशक्ति सहज में ही द्रवित हो जाती हैं, इसलिए शरण लेने पर सदा अच्छा ही होता है । आदि शक्ति समस्त कार्यो को सिद्ध करने वाली, मंगल की मूल व मंगल ही करनेवाली हैं ।

नर अयनी सो नारायणी माता। आरत हरणी शरण सुखदाता ॥
त्रिगुण जननी त्रयम्बका होई। जग अवलम्बा जगदम्बा सोई ॥

व्याख्या – नर रूपी धड़कन को ही घर बनाकर रहने के कारण नारायणी माता हैं, जो कष्टों को दूर करने वाली हैं तथा उनकी शरण सुख देने वाली है। तीनों गुणों को पैदा करने वाली होने के कारण उनका नाम त्रयम्बका है तथा जगत का आधार होने के कारण जगदम्बा नाम है ।

होई प्रसन्न भव रोग नसाई। करहिं कोप कोउ नहिं बचाई ॥
शरणागत बनहिं शरणदाता। महिमा अपम्पार जग माता ॥

व्याख्या – प्रसन्न होने पर आदिशक्ति भावों के रोगों का नाश कर देती हैं परन्तु कोप करने पर कोई नहीं बचा पाता है। माता की शरण में आने वाला भी शरण देने वाला बन जाता है । इसलिए जगत की माता आदिशक्ति की महिमा अपरम्पार है ।

दो०–सर्वबाधा नाशक मातु उमा एक अखण्ड अखिलेश्वरी नाम ।
काम क्रोधादि असुर नाशहिं देवहहिं सहज परम धाम ॥२०॥

व्याख्या – हे पार्वती ! माता आदिशक्ति तो समस्त बाधाओं का नाश करने वाली, एक अखण्ड व अखिलेश्वरी हैं, जो काम व क्रोध आदि असुरों का नाश कर देती हैं तथा सहज में ही परमधाम दे देती हैं ।

दो०–भाव देखि शक्तिद्रवहहिं उमा जो चिन्तहहिं सोई बाहिर घटाय ।
सो निर्मलमन मातु ध्यावहिं तिन्हहिं नहिं किछु दुर्लभ रहाय ॥ २१ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भावों को देखकर आदिशक्ति द्रवित हो जाती हैं, इसलिए जो चिन्तन मन में होता है, वही बाहिर भी हो जाता है। इसलिए निर्मल मन से

माता को याद करने वालों को संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है ।

श्लोक–जगदम्बा स्तोत्रम अतिपावनम् भावस्य मूलम च धारयति नाम रूपः मरमं ।
जगत कल्याणार्थहेतवे वक्ष्यन्ति से ददायति धर्मअर्थ काम च मोक्ष पदारथम् ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति जगदम्बा का स्तोत्र बहुत ही पवित्र, भावों का मूल व नाम व रूप के मर्म को धारण करने वाला है । अतः जगत के कल्याण के लिए मैं उसी स्तोत्र को बताता हूँ, जो धर्म, अर्थ काम व मोक्ष के चारों पदार्थों को देने वाला है ।

जगदम्बा स्तोत्रम्

ॐ मंगलेश्वरी आत्मेश्वरी त्रिपुरेश्वरी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ जगकारिणी जगतारिणी कणकण वासिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१॥

व्याख्या – हे मंगल की ईश्वर, आत्मा की ईश्वर व तीनों लोंको की स्वामिनी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे जगत की मूल कारण व जग को पार कराने वाली कण-कण में व्यापक माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ महिषासुर घातिनी अहंकार नाशिनी उरवासिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ ध्यानभासिनी पापनाशिनी ज्ञानदायनी माँ जगदम्बा नमोः नमः ॥२॥

व्याख्या – हे माता जगदम्बा ! आप अज्ञान रूपी महिषासुर का नाश करनेवाली व अहंकार को मिटाने वाली हैं तथा हृदय में निवास करने वाली हैं । आपको नमस्कार, नमस्कार । हे ध्यान में आभासित होने वाली व पापों का नाश करने वाली ज्ञानदायनी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ दुर्गतिनाशिनी भक्त रक्षिणी गुरुरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ भवतारिनी सर्वशस्त्रधारिणी मधुररूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥३॥

व्याख्या – दुर्गति का नाश करने वाली, भक्तों की रक्षक व गुरु रूपिणी हे माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । भाव रूपी भवसागर से पार करानेवाली व सर्वशस्त्रों को धारण करने वाली माधुर्य से युक्त हे माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ कालरूपिनी कालनाशिनी आत्मरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ सर्वव्यापनी प्रकृति भासिनी असुरनाशिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥ ४ ॥

व्याख्या – हे कालरूपिणी व काल का नाश करने वाली आत्मरूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे सर्वव्यापक व प्रकृति के रूप में आभासित होने वाली व आसुरी भावों का नाश करने वाली माता जगदम्बा! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ रोगनाशिनी आरोग्यदायिनी सर्वशक्तिधारिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः।
ॐ सर्वस्वरूपिणी कल्याणकारिणी सहस्रनयनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥ ५ ॥
व्याख्या – रोगों का नाश करने वाली व आरोग्य देने वाली, समस्त शक्तियों को धारण करने वाली हे माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे सर्वस्वरूपिणी, कल्याणकरने वाली व हजारों नेत्रों वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ जगतेश्वरी विश्वेश्वरी परमेश्वरी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ गौरी महागौरी युवती कौमारी किशोरी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥ ६ ॥
व्याख्या – हे जगत की ईश्वर, हे विश्व की स्वामिनी व परम ऐश्वर्य से युक्त माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे गौरी, महागौरी, युवती, कौमारी व किशोरी स्वरूप माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ ब्रह्मचारिणी पिनाक धारिणी बलदायिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ कात्यायिनी मंगलकारिणी विपद हारिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥ ७ ॥
व्याख्या – हे ब्रह्मचारिणी, पिनाक धारण करने वाली व बल देने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे कात्यायिनी, मंगल करने वाली व संकटों को दूर करने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ अभयदायिनी सत्यानन्द विहारिणी नारायणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः।
ॐ सर्वोपकारकारिणी आपदनिवारिणी मंगलायनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥८॥
व्याख्या – हे अभय देने वाली व सत्यानन्द में विहार करने वाली व नर को घर बनाकर रहने वाली हे नारायणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे सबका उपकार करने वाली व आपदाओं को दूर करने वाली मंगल का घर माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ सत्यसनातनी घटघट वासिनी कमलासिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ शुम्भ निशुम्भ घातिनी चण्डमुण्ड नासिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥९॥
व्याख्या – हे सत्य सनातनी, घटघट में निवास करने वाली, कमल रूपी आसन वाली माँ जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे शुभ-अशुभ का नाश करने वाली व वासनाओं का नाश करने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ जगधात्री कालरात्रि सर्व सिद्धिदात्री माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ शैलपुत्री त्रिनेत्री भाव प्रेरित्री माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१०॥
व्याख्या – हे जगत को धारण करने वाली व काल का भी नाश करने वाली

तथा समस्त सिद्धियों को देने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार। हे शैलपुत्री व सत, रज, तम गुण रूपी तीन नेत्रों वाली तथा भावों की प्रेरणा करने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ गुणपारा जगताधारा भगतसहारा माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥
ॐ सर्वाकारा निराकारा मंगल विहारा माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥११॥

व्याख्या – हे गुणों से परे, जगत की आधार व भक्तों को सहारा देने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे सर्वआकारमयी, निराकार व मंगल में विहार करने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ कुष्माण्डा चामुण्डा ब्रह्माण्डा माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ चन्द्रघण्टा घोरनादा एक अखण्डा माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१२॥

व्याख्या – हे कुष्माण्डा, चामुण्डा (चाहपूरी करने वाली) ब्रह्माण्डा (ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट) माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार। हे चन्द्रघण्टा (आहलादकारी), भयंकर आवाज करने वाली एक अखण्ड माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ कान्तिरूपिणी बुद्धिरूपिणी क्षुधारूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ मातृ रूपिणी पितृरूपिणी जग रूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥ १३॥

व्याख्या – हे कान्तिरूपिणी, बुद्धिरूपिणी, क्षुधारूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे मातृरूपिणी, पितृरूपिणी व जगतरूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ शक्तिरूपिणी भक्तिरूपिणी धर्मरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ अर्थरूपिणी कामरूपिणी मोक्षरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१४॥

व्याख्या – हे शक्तिरूपिणी, भक्तिरूपिणी व धर्मरूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे अर्थरूपिणी, कामरूपिणी व मोक्षरूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ विनयरूपिणी अहंकाररूपिणी शान्तिरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ दया रूपिणी क्षमा रूपिणी प्रेमरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१५॥

व्याख्या – हे विनयरूपिणी, अहंकाररूपिणी व शान्तिरूपेण माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार। हे दयारूपिणी, क्षमारूपिणी व प्रेमरूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ लज्जा रूपिणी शीलरूपिणी अभयारूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः।
ॐ तुष्टिरूपिणी वृतिरूपिणी यशरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१६॥

व्याख्या – हे लज्जारूपिणी, शीलरूपिणी व अभयारूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे तुष्टिरूपिणी, वृतिरूपिणी व यश रूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ बोधरूपिणी, क्रियारूपिणी साधनारूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ भवरूपिणी भवकारिणी भवतारिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१७॥

व्याख्या – हे बोधरूपिणी, क्रियारूपिणी व साधनारूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे भावों की स्वरूप व भावों को पैदा करने वाली तथा भावों से मुक्त कराने वाली माता जगदम्बा । आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ हंसरूपिणी विपदानिवारिणी वराहरूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ दुर्गदारिणी दुर्गमार्थस्वरूपिणी दुर्गनाशिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥१८॥

व्याख्या – ॐ हंसरूपिणी (अर्थात हकार व सकार युक्त) जीवों के कष्टों को दूर करने वाली व वराहरूपिणी (दस इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि रूपी मार्गो वाली) माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे दुर्गदारिणी, दुर्गमार्थस्वरूपपिणी व दुर्गनाशिनी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ परमधाम निवासिनि दुर्गार्तिशमनी दुर्गसाधिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ दुर्गमआयुधधारिणी दुर्गमात्मस्वरूपिणी प्रकृति रूपिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥ १९॥

व्याख्या – हे परमधाम में निवास करने वाली, दुर्गार्तिशमनी व दुर्गसाधिनी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे दुर्गम आयुधों को धारण करने वाली, दुर्गमात्मस्वरूपिणी व प्रकृतिरूपिणी माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ महाविलासिनी कमलनयनी रूपदायिनी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ।
ॐ दुर्गमच्छेदिनी दुर्गतोद्वारिणी पापहारिणी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥२०॥

व्याख्या – हे महाविलासिनी, कमलनयनी व रूप देने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे दुर्गमच्छेदिनी, दुर्गतोद्वारिणी व पापों को दूर करने वाली माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता माँ जगदम्बायः नमोः नमः।
ॐ दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमा दुर्गमेश्वरी माँ जगदम्बायः नमोः नमः ॥२१॥

व्याख्या – हे दुर्गमार्गप्रदा, दुर्गमविद्या व दुर्गमाश्रिता माता जगदम्बा ! आपको नमस्कार, नमस्कार । हे दुर्गमता, दुर्गम्या, दुर्गमा व दुर्गमेश्वरी माता जगदम्बा! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

श्लोक – इदम स्तोत्रं गूहतम गूह प्रकटायति शक्ति मरमम्।
श्रद्धा सह जे पठन्ति ते प्राप्नोति मातु कृपा अपारम् ॥२२॥

व्याख्या – यह स्तोत्र आदिशक्ति के गूढ़ से भी गूढ़ रहस्य को प्रकट करने वाला है, अतः जो लोग श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ते हैं, उन्हें माता आदिशक्ति की अपार कृपा प्राप्त होती है ।

उमा आदिशक्ति परम दयालु । आवहहिं शरण करहिं निहालु ॥
अब कहउँ विधि विधान समुझाई । परम गूढ़ भाव मूल सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति तो परम दयालु सुभाव वाली हैं, इसलिए जो शरण में आ जाते हैं, वे निहाल हो जाते हैं । अब तुम्हें विधि के विधान को समझाकर बताता हूँ, जो परम गूढ़ है तथा जिसके भाव ही मूल होते हैं।

उमा जानहउ क्रिया विधि सोई । करहहिं क्रिया सोई विधि होई ॥
क्रिया मूल जीव भाव सुहाई । बिनु भाव क्रिया सम्भव नाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! क्रिया ही विधि होती है क्योंकि क्रिया करने पर ही विधि बनती है । जीव की क्रियाओं का मूल भाव ही होते हैं क्योंकि बिना भावों के क्रिया नहीं हो पाती है ।

भावन्ह मूल प्राण सुहाए । आदिशक्ति सो प्राण उपजाए ॥
परम पुरुष जेहि चित नारी । ताहहिं धड़कन प्राण आधारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्राणों से ही भाव पैदा होते हैं और आदिशक्ति से ही प्राण पैदा होते हैं । परमपिता के चित की नाड़ी ही आदिशक्ति है तथा उसकी धड़कन से ही प्राण पैदा होते हैं ।

उमा प्राण प्रकार जद्यपि चौरासी । दस प्रधान सकल जन भाषी ॥
प्रति प्राण योनि लच्छ उपजाई । सकल मिलि लख चौरासी कहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वैसे तो प्राण के चौरासी प्रकार होते हैं, परन्तु दश प्राणों को मुख्य प्राण बताया गया है । प्रत्येक प्राण से एक लाख योनियाँ पैदा होती हैं, इसलिए सब मिलकर चौरासी लाख योनियाँ बतायी गई हैं ।

दो०–दस प्राण सोई दिशा दस हैं जो व्यापक सकल ब्रह्माण्ड ।
सकल मूल नारी शक्तिमयी इहँ सकल भाव सिद्धान्त ॥२३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! व्यष्टि के दस प्राण ही दश दिशाएँ होते हैं, जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक रहते हैं । समस्त प्राणों का मूल आदिशक्ति (चित नारी) होती है । यही भावों की उत्पत्ति का मूल सिद्धान्त है ।

पान अपान व्यान उदाना। पंच प्रधान सहित समाना ॥
धनंजय देवदत्त कूर्म नागा। कृकर प्राण सहायक पंच भागा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्राणों में पान, अपान, व्यान, उदान व समान प्राणवायु पुनः प्रमुख होती हैं तथा धनंजय, देवदत्त, कूर्म, नाग व कृकर सहायक प्राण वायु के प्रकार होते हैं ।

सौ एक निकसहिं चित ते नारी। तिन्ह महँ होवत प्राण संचारी ॥
सकल नारीन्ह त्रिनारी प्रधाना। सोई त्रिगुण त्रिधार बखाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता के चित से एक सौ एक नाड़ियाँ निकलती हैं, जिनमें सदैव प्राण का संचार होता रहता है। इन समस्त नाड़ियों में तीन नाड़ियाँ प्रधान होती हैं, उन्हीं तीन नाड़ियों को तीन गुणों की त्रिधार बताया गया है ।

ईड़ा पिंगला अरु सुष्मन नारी। सोई गंग जमुन सरस्वती सारी ॥
त्रिनारी सोई उमा स्वर कहाई। चन्द्र सूरज सुष्मन सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! ईड़ा, पिंगला और सुष्मना नाड़ियों को ही गंगा, यमुना व सरस्वती कहा जाता है तथा इन तीनों नाड़ियों को स्वर भी कहा जाता है, जिनका नाम चन्द्र, सूर्य व सुष्मन स्वर होता है ।

स्वर अनुसार वृति बनाई। वृति पुनि गुणन्ह धार बहाई ॥
सो वृति अनुसार त्रिगुण होई। सत रज तम कह सब कोई ॥

व्याख्या – स्वरों के अनुसार वृति बन जाती है और फिर वृति से गुणों की धारा बहने लग जाती है, इसलिए वृतियों के अनुसार ही तीन गुणों की धारा बन जाती है, जिन्हें सत, रज व तम गुणों की धारा कहा जाता है ।

दो०–गुण अनुरूप भाव उमगहिं भावन्ह समूह सोई मन कहाय ।
भावन्ह माझ द्वन्द चलहिं द्वन्द तबहहिं बुद्धि बनि जाय ॥ २४ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! गुणों के अनुसार भाव पैदा होते हैं और भावों का समूह ही मन कहलाता है। जब भावों में आपसी द्वन्द चलता है, तब उसी द्वन्द से बुद्धि पैदा हो जाती है ।

भावन्ह तें मन अरु मन ते भावा। उमा क्रम इहँ निरन्त चलावा ॥
भाव मन अरु बुद्धि जाल बनाई। इन्द्रिन्ह रूप सोई प्रकटाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भावों से मन और मन से भावों के पैदा होने का क्रम निरन्तर चलता रहता है । इस प्रकार मन, बुद्धि और भावों का जाल बन जाता है, जो इन्द्रियों के रूप में प्रकट हो जाता है ।

बुद्धि बल होई क्रिया सन्देशा। करहिं कारज इन्द्रियाँ हमेशा ॥
भाव अनुरूप होई बुद्धि सरूपा। बुद्धि अनुरूप बनै क्रिया अनूपा ॥

व्याख्या – बुद्धि के द्वारा ही क्रिया करने का सन्देश दिया जाता है और बुद्धि के संदेशानुसार ही इन्द्रियाँ हमेशा कार्य करती हैं। भावों के अनुसार बुद्धि का स्वरूप बनता है तथा बुद्धि के अनुसार ही क्रिया होती है।

फल सदा पाई क्रिया अनुसारा। फल देखि आइ भलमन्द विचारा ॥
भल मन्द राग द्वेष उपजाई। ऐहि भाँति जीव बन्ध उरुझाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जीव सदा क्रिया के अनुसार ही फल की प्राप्ति करता है और फल के अनुसार अच्छे-बुरे का विचार करता है। अच्छे-बुरे से राग व द्वेष पैदा हो जाते हैं और जीव बन्धन में उलझ जाता है।

मन गो बुद्धि अरु सब भावा। उमा मारग श्वासा आवा जावा ॥
प्राण अरु भाव श्वास बनाई। श्वासा मारग प्रकृति जुराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि और सारे भाव श्वास के माध्यम से ही आवागमन करते हैं। प्राण के साथ जब भाव मिल जाते हैं, तब प्राण ही श्वास बन जाती है और श्वास के रास्ते से प्रकृति से जुड़ जाते हैं।

दो०–जेहि स्वर श्वास चलहहिं तेही अनुरूप प्रकृति स्वर जुराय।
स्वर अनुरूप भाव उमगहहिं भाव अनुरूप भवतव्यता बनि जाय ॥२५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिस प्रकार स्वर से श्वास चलती है, उसी स्वर के अनुसार प्रकृति का स्वर जीव के स्वर से जुड़ जाता है और स्वर के अनुसार भाव पैदा होने लग जाते हैं और भावों के अनुसार ही भावों की व्यवस्था बन जाती है।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण विंशति पड़ाव ॥

दो०–उमा जैसी भाव भवतव्यता तेसइ सदा मिलइ सहाय।
सुख दुःख भाव आधार सब जीव बिरथा प्रभु दोष लगाय ॥२६॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जैसी भावों की अवस्था होती है, जीवों को सदा वैसी ही सहायता मिल जाती है। इसलिए सब सुख-दुःखों का आधार भाव ही होते हैं, परन्तु लोग व्यर्थ में ही परमात्मा को दोष लगाते हैं।

उमा ई उ स्वर ईश्वर सोई। भवतव्यता नाम इहँ होई ॥
भावहिं करहिं भोगहिं करमा। इहँ विधि विधान अति परमा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! ई अर्थात जीव का स्वर और उ अर्थात प्रकृति का स्वर ही ईश्वर कहलाते हैं। वास्तव में तो ईश्वर भावों की व्यवस्था का नाम है। भाव ही क्रिया (विधि) करते हैं और भाव ही भोगते हैं, अतः यही विधि का

परम विधान है ।

भाव सोई सुख दुःख मूल सुहाई । उपजहिं भाव वृति अनुयाई ॥
भाव तें वृति अरु वृति तें भावा । ऐहि विधि उमा भव जाल बनावा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भाव ही सुख-दुःख के मूल होते हैं और भाव वृतियों के अनुसार पैदा होते हैं । भाव से वृति बनती है और वृति से भाव पैदा होते हैं । इस प्रकार यह भव जाल बन जाता है ।

उमा वृति प्रकृति संग जुराई । वृति अनुसार प्रकृति चलाई ॥
बनहिं विधि सब भाव अनुसारी । देवइ फल प्रकृति भाव विचारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वृति सदा प्रकृति से जुड़ी रहती है इसलिए प्रकृति हमेशा वृति के अनुसार चलती है । भावों के अनुसार ही समस्त क्रियाएँ बनती हैं, इसलिए प्रकृति भी भावों का विचार कर फल प्रदान करती है ।

भाव विधि विधान मूल सुहाई । क्रिया तें प्रतिक्रिया सहज घटाई ॥
प्रतिक्रिया सोई कहाई विधाना । करहि प्रकृति वृति अनुमाना ॥

व्याख्या – भाव ही विधि के विधान का मूल होते हैं क्योंकि क्रिया से प्रतिक्रिया सहज में ही होती रहती है । प्रतिक्रया ही विधि का विधान कहलाती है, जो कि प्रकृति वृति के अनुसार करती है ।

दो०—भल सोचहहिं भल होइ सदा उमा ऐहि तें संशय नाय ।
प्रकृति प्रतिक्रिया करहहिं सोई क्रिया फल बनि प्रकटाय ॥२७॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अच्छा सोचने पर सदा अच्छा ही होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है क्योंकि प्रकृति शक्ति तो क्रिया के अनुसार प्रतिक्रिया करती है और प्रतिक्रिया ही क्रिया (विधि) का फल बन कर प्रकट हो जाती है ।

सुनहु उमा विधान विस्तारा । राग द्वेष उभय वृति आधारा ॥
राग ते मोह द्वेष ते क्लेशा । पुनि मोह तें निज पर भाव हमेशा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब तुम विधि के विधान के विस्तार को सुनो – राग व द्वेष वृति के आधार होते हैं । राग से मोह और द्वेष से क्लेश पैदा होता है। फिर मोह से अपने-पराए के भाव पैदा होते रहते हैं ।

निज पर भाव सो माया कहाई । ऐहि भांति मोह माया मूल सुहाई ॥
माया सोई जीव जंजाल बनाई । बरबस जीव तहँ उरुझाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अपने-पराए के भाव ही माया कहलाते हैं, इस प्रकार मोह ही माया का मूल होता है । माया ही जीव का बन्धन बन जाती है, जिसमें

जीव जबरदस्ती फँस जाता है ।

मोहवश जीव परबश होई । पर कर्म सुख दुःख पावई सोई ॥
कर्ता कोउ जद्यपि भोगहिं कोई । मोह प्रभाव उमा ऐ सब होई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मोह के बन्धन में पड़ जाने पर जीव पराधीन हो जाता है और दूसरों के कर्मो के सुख-दुःख के फल का भोक्ता बन जाता है । हे पार्वती! मोह के प्रभाव के कारण कर्म कोई करता है और भोक्ता कोई दूसरा हो जाता है ।

मोह सकल व्याधि उपजाई । बरबस जीव उमा दुःख पाई ॥
काम क्रोध मद मत्सर लोभा । मोह कारण करहिं मन क्षोभा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मोह से ही समस्त व्याधियाँ पैदा होती हैं, जिसके कारण जीव जबरदस्ती दुःख पाता है । मोह के कारण ही काम, क्रोध, मद, मत्सर व लोभ के भाव मन में क्षोभ पैदा करते हैं ।

दो०–उमा मोह असुर अति प्रबल जन्म मरण सोउ ताके आधीन ।
जे जनु जीतहहिं मोह को सोई सुखी सोई जानि स्वाधीन ॥ २८ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मोह रूपी असुर बहुत बलवान होता है, जिसके कारण ही जन्म व मरण का आभास होता है । अतः जो लोग मोह को जीत लेते हैं, वे ही सुखी व स्वाधीन होते हैं ।

सब ऋषि मुनि नर भूपाला । मोहवश तिन्हु ग्रसित काला ॥
मोह अभाव नहिं वृति सुहाई । वृति अभाव सोई निवृति कहाई ॥

व्याख्या–ऋषि, मुनि, मनुष्य व राजा सबको मोह के कारण ही काल ब्याप्ता है। मोह नहीं होने पर वृति मिट जाती है और वृति का मिट जाना ही निवृति होती है।

निवृति सोई परम पद होई । प्रभु कृपा पावहहिं कोई कोई ॥
उमा मोह जीतन करउ उपाई । मोह क्षय सोई मोच्छ कहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! निवृति ही परम पद की अवस्था होती है, जिसे परमात्मा की कृपा से ही कोई-कोई ही प्राप्त करते हैं । इसलिए मोह को जीतने का उपाय करना चाहिये क्योंकि मोह का क्षय (समाप्त) होना ही मोक्ष कहलाता है ।

मातु शरण सोइ मोह नसाई । नाहित कोटि जतन नहिं जाई ॥
समरप भाव शरण आधारा। करहहिं जेहि होवइ उद्यारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! माता आदिशक्ति की शरण से ही मोह का नाश होता है, वरना करोड़ों उपायों से भी मोह का नाश नहीं होता है । समर्पण का भाव ही शरण का आधार होता है, अतः उन लोगों का उद्धार हो जाता है, जो

समर्पण कर देते हैं ।

सब तजि जब करहिं भरोसा । हानि लाभ रहहिं पूर्ण संतोषा ॥
समर्पण सोइ जानउ भवानी । मिलहिं शान्ति होइ न ग्लानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब सब कुछ छोड़कर पूर्ण विश्वास हो तथा हानि व लाभ में संतोष बना रहे तो वही अवस्था समर्पण की होती है, जिससे शान्ति मिल जाती है और ग्लानि नहीं होती है ।

दो०– निर्मल मन विनय करहिं सहजहिं हृदय प्रीत उमगाय ।
प्रीत उमगहि संतोष मिलहिं संतोष मिले समर्पण आय ॥२९॥

व्याख्या – निर्मल मन से प्रार्थना करने से हृदय में विश्वास पैदा हो जाता है और विश्वास पैदा होने से संतोष मिल जाता है और संतोष मिल जाने से समर्पण पैदा हो जाता है ।

दो०– मन वसन विनय साबुन जोग जुगति नीर सुहाय ।
गुरु शब्द धोबी भया सहजहि सहज मल हटाय ॥३०॥

व्याख्या – मन रूपी कपड़ा होता है तथा प्रार्थना रूपी साबुन होता है तथा योग की युक्ति रूपी जल होता है तथा गुरु का शब्द धोबी होता है, जिससे सहज में मन रूपी वस्त्र का मैल हट जाता है ।

मन निर्मल मिटहहिं विकारा । अन्तः स्थल होइ हर्ष अपारा ॥
हर्ष भाव जब हियँ उमगाई । बदलहिं वृति सुख बरसाई ॥

व्याख्या – मन के निर्मल हो जाने से विकार मिट जाते हैं, जिससे अन्तःकरण में हर्ष पैदा हो जाता है और हर्ष के भाव पैदा होने से वृतियाँ बदल जाती हैं और सुख की वर्षा होने लग जाती है ।

भल ते सदा भल भाव उमगाई । ताते जीव नित्य सुख मिलाई ॥
भाव अराधन अति सुखदाई । उमा करहिं जेही धन्य सुहाई ॥

व्याख्या – अच्छे भावों से अच्छे भाव पैदा होने लगते हैं, जिससे जीव को नित्य सुख मिलने लग जाता है । अतः हे पार्वती ! प्रार्थना के भाव बहुत सुख देने वाले होते हैं, इसलिए जो कोई प्रार्थना करते हैं, वे धन्य हो जाते हैं ।

प्रार्थना बल शक्ति रिझाई । होई प्रसन्न मनोवांछित दाई ॥
आदि शक्ति प्रसन्न जब होई । प्रभु चित भाव उठहहिं सोई ॥

व्याख्या – प्रार्थना के बल से आदिशक्ति प्रसन्न हो जाती है और प्रसन्न होने पर सब मनोकामना पूर्ण कर देती है । क्योंकि जब आदिशक्ति प्रसन्न होती

हैं, तो परमात्मा के चित में भी प्रसन्नता के भाव उठने लगते हैं ।

प्रभु प्रसन्नता सकल शुभदाई । सो करहिं प्रार्थना होइ भलाई ॥
सोई प्रार्थना सुनहउ भवानी । मंगल दायक चारि फल खानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की प्रसन्नता ही सब शुभों को देने वाली होती है, अतः भावपूर्वक प्रार्थना करने पर भलाई ही होती है । हे पार्वती ! अब तुम प्रार्थना की विधि को सुनिए, जो मंगल को देनेवाली व चारों पदार्थों की खान है।

माता आदिशक्ति की प्रार्थना

रच्छ रच्छ दुर्गायुध धारिणी । रच्छ मातु मोहादि असुर नासिनी ॥
रच्छ रच्छ मातु जगदम्बे । रच्छ जग जननी जग अवलम्बे ॥

व्याख्या – हे मोहादि असुरों का नाश करने वाली व दुर्गम हथियारों को धारण करने वाली माता ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे माता जगदम्बा ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे जगत की आधार माता ! मेरी रक्षा कीजिए ।

रच्छ रच्छ मातु जग धारिणी । रच्छ अम्बे स्वबस विहारिणी ॥
रच्छ रच्छ भव्या भवतारिणी । रच्छ ज्ञाना तू ग्यान दायिनी ॥

व्याख्या – हे जगत को धारण करने वाली माता ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे माता ! आप तो स्वयं के वश में विहार करती है, अतः मेरी रक्षा कीजिए । हे भावों से पार कराने वाली भव्या ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे ज्ञान देनेवाली ज्ञानी ! आप मेरी रक्षा कीजिए ।

रच्छ रच्छ मंगला मंगलायिनी । रच्छ वैभवी वैभवदायिनी ॥
रच्छ रच्छ भैरवी भरितायिनी । रच्छ जननी जन्मदायिनी ॥

व्याख्या – हे मंगल की घर मंगला ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे वैभव देनेवाली वैभवी ! मेरी रक्षा कीजिए । हे भरित अवस्था की मूल भैरवी ! मेरी रक्षा कीजिए । हे जन्म देने वाली ज्ञाना ! मेरी रक्षा कीजिए ।

रच्छ रच्छ मातु शरण दायिनी । रच्छ अभया सब बिपद हारिणी ॥
रच्छ रच्छ अग्यान नाशिनी । रच्छ विधि वधु विधि फलदायिनी ॥

व्याख्या – हे शरण देने वाली माता ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे समस्त विपदाओं को दूर करने वाली अभया ! मेरी रक्षा कीजिए । हे अज्ञान का नाश करने वाली ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे विधि वधु ! आप क्रिया (विधि) का फल देने वाली हैं । आप मेरी रक्षा कीजिए ।

रच्छ रच्छ मूलाधार निवासिनी । रच्छ मातु ब्रह्माण्ड धारिणी ॥
रच्छ रच्छ भगत उर वासिनी । रच्छ ध्याना ध्यान भासिनी ॥

व्याख्या – हे मूलाधार पर निवास करने वाली ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली माता ! मेरी रक्षा कीजिए। हे भक्तों के हृदय में निवास करने वाली ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे ध्यान में आभासित होने वाली ध्याना ! मेरी रक्षा कीजिए ।

रच्छ रच्छ निराकार निरंजनी। रच्छ मातु करंका करंकिणी ॥
रच्छ रच्छ दिव्या दिव्य रूपिणी। रच्छ रक्षा सदा भगत रक्षिणी ॥

व्याख्या – हे निराकार निरंजनी ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे करंका! आप शरीर को धारण करने वाली (करंकिणी) हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिए। हे दिव्यरूप वाली दिव्या ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे भक्तों की रक्षा करने वाली रक्षा ! मेरी रक्षा कीजिए ।

मैं सुत तुम्हार तू मातु मोरी। रच्छ रच्छ घोर नाशक अघोरी ॥
सब विधि अब शरण तिहारी। करहउ अनुकूल सृष्टि सारी ॥

व्याख्या – हे माता ! मैं आपका पुत्र हूँ, अतः माया का नाश करने वाली हे अघोरी ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ, इसलिए समस्त सृष्टि को अनुकूल कर दीजिए ।

देउ भगति मातु अनपायिनी। रच्छ करुणा मातु करुणायिनी ॥
सब तजि आयहुँ शरण तिहारी। करहउ मंगल माँ मंगलकारी ॥

व्याख्या – हे माता ! मुझे निष्काम भक्ति दीजिए । हे करुणा करने वाली करुणा! मेरी रक्षा कीजिए । मैं सब छोड़कर आपकी शरण में आया हूँ । हे मंगल करने वाली माता ! मेरा मंगल कीजिए ।

दो०–स्तुति करहहिं निर्मल भाव ते तुरत आदिशक्ति द्रवाय ।
सहजहिं कृपा बरसन लगहिं उमा ऐहि ते किछु संशय नाय ॥३२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! निर्मल भाव से स्तुति करने पर आदिशक्ति तुरन्त द्रवित हो जाती है, जिससे सहज में ही कृपा बरसने लग जाती है। इसमें बिल्कुल भी संदेह नहीं है।

दो०–उमा विनय भाव वृति बदलहि वृति अनुसार प्रकृति चलाय ।
भाव विज्ञान मरम इहँ सब समझहिं जेहि भव तर जाय ॥३३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रार्थना करने से वृति बदल जाती है और वृति के अनुसार प्रकृति चलने लगती है। यही भावों के विज्ञान का रहस्य है, अतः जो इसे जान लेते हैं, वे भव सागर को पार कर जाते हैं ।

भाव अनुरूप नाना रूप धराई। उमा शक्ति महिमा बरनिन जाई ॥
भावन्ह मूल भावहिं रमाई। मरम परम घट समुझाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आदिशक्ति भावों के अनुसार नाम रूप धारण कर लेती है, अतः शक्ति की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। यह भावों की मूल होती है तथा भावों में ही रमण करती है। यह रहस्य तो हृदय में ही समझ आता है।

उमा शक्ति क्षमता अनन्ता। ऋषि मुनि जन सब भनन्ता ॥
सुर साधन सरस्वती नामा। लक्ष्मी कहाइ लच्छन धामा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! शक्ति की क्षमता अनन्त होती है, ऋषि-मुनि सभी लोग ऐसा बताते हैं। स्वर ही आदि शक्ति के साधन होते हैं, इसलिए सरस्वती नाम होता है तथा समस्त लक्षणों का घर होने के कारण लक्ष्मी नाम होता है।

जेहि भाव रखि विनय कराई। मातु देइ फल ताइ अनुयाई ॥
जय रूप यश वैभव नाना। देवन क्षमता मातु कृपानिधाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो भी भाव रख कर प्रार्थना की जाती है, माता आदिशक्ति भाव के अनुसार फल प्रदान कर देती है। जय, रूप, यश व नाना प्रकार के वैभव को देने की क्षमता कृपा की धाम माता आदिशक्ति में होती है।

जेहि चावहिं धनादि सन्माना। उचित करहिं मातु स्तुति गाना ॥
उमा सुनहु सोइ स्तोत्र पावन। प्रसन्न होइ देइ मातु मन भावन ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अगर कोई धन आदि का सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें माता आदिशक्ति की स्तुति करनी चाहिए। हे पार्वती ! उसी पवित्र स्तोत्र को सुनिए, जिससे माता प्रसन्न होकर मन इच्छापूर्ण कर देती हैं।

महा शक्ति स्तोत्र

ॐ अन्नं चाहि धान्नं चाहि मां भीक्षाम देहि ।
दानं करोति जननी ताजन्यं धानं भीक्षाम देहिमाम् ॥१॥

व्याख्या–हे माता! मुझे अन्न की भीक्षा दीजिए, मैं धन चाहता हूँ, मुझे धन की भीक्षा दीजिए। मैं दान करूँगा, इसलिए दान करने के लिए मुझे धन दीजिए।

ॐ यज्ञं करोति मां यज्ञार्थं धनं घृतं भीक्षाम देहिमाम् ।
शंख पद्यम धारितं मां कोटि कोटिन्ह पणं देहिमाम् ॥२॥

व्याख्या – हे माता ! मुझे यज्ञ करने के लिए धन व घी दीजिए। हे माँ ! आप शंख व पद्यम को धारण करने वाली हैं। अतः हे माँ ! करोड़ों-करोड़ों धन दीजिए।

ॐ कुबेर अति कृपणं कोषाध्यक्ष पदं न योग्यं ।
भीक्षाम देहिमाम् कुबेर पद भिक्षाम देहिमाम् ॥३॥

व्याख्या – हे माता ! कुबेर बहुत कृपण है, इसलिए कोषाध्यक्ष पद के लिए योग्य

नहीं है । हे माँ ! मुझे कुबेर का पद ही दे दीजिए, कुबेर का पद दे दीजिए ।

ॐ यशं चाहि वैभवं चाहि ऐश्वर्यम् देहिमाम् ।
भीक्षाम् देहिमाम् भीक्षाम् देहि माँ भीक्षाम् देहि ॥४॥

व्याख्या – हे माता ! मैं यश चाहता हूँ, वैभव चाहता हूँ इसलिए मुझे ऐश्वर्य दीजिए । हे माँ मुझे भीक्षा दीजिए, भीक्षा दीजिए, भीक्षा दीजिए ।

ॐ जननी अहं त्वमपुत्रं संसार दुस्तरं धनहीन न पारं ।
भवतारणार्थम कोटि कोटि धनं देहिमाम् देहिमाम् ॥५॥

व्याख्या – हे माता ! मैं आपका पुत्र हूँ और यह संसार बहुत दुस्तर है, इससे बिना धन के पार नहीं किया जा सकता है, इसलिए भवसागर को पार करने के लिए मुझे करोड़ों-करोड़ों धन दीजिए ।

ॐ परम पुरुषम् त्वमेव सर्वम त्वम जननी जगत मूलम् ।
गणेश त्वम भ्रातम् भीक्षाम् देहिमाम् भीक्षाम देहिमाम् ॥६॥

व्याख्या – हे माता ! परमपिता ही आपके सब कुछ हैं और आप जगत की मूल हैं । गणेश आपके भाई हैं, अतः हे माता ! मुझे भीक्षा दीजिए, भीक्षा दीजिए।

ॐ माँ सत सत शपथं अहम त्वमाश्रिताम त्वमाश्रिताम ।
कनक वृष्टि करुं करुं करुं दारिद्रायनाशनार्थम् ॥७॥

व्याख्या – हे माता ! सैकड़ों सैकड़ों शपथ हैं, अतः सब प्रकार से आपके ही भरोसे हूँ, मैं आपके ही भरोसे हूँ । इसलिए गरीबी को दूर करने के लिए सोने की वर्षा कीजिए, कीजिए ।

ॐ भीक्षाम देहिमाम् भीक्षाम् देहिमाम् भीक्षाम् देहि ।
अहम् त्वमेव शरणं शरणं भीक्षाम् देहिमाम्॥८॥

व्याख्या – हे माँ ! मुझे भीक्षा दीजिए, भीक्षा दीजिए, भीक्षा दीजिए । हे माँ! मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे भीक्षा दीजिए ।

श्लोक– इदम् महाशक्ति स्तोत्रं श्रद्धा सह जे पठन्ति नराः ।
प्राप्नोति यशवैभवं जय रूपं च सम्पदा बहुधाः ॥९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो इस महाशक्ति स्तोत्र को श्रद्धापूर्वक पढ़ते हैं, उन्हें यश, वैभव, जय, रूप व बहुत सम्पदा की प्राप्ति हो जाती है ।

धन्य नाथ परम हितकारी । जानइ मरम कृपा तुम्हारी ॥
नमामी नाथं नमामी देवम् । नमामी स्वामी अहं तव सेवकं ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप धन्य हैं क्योंकि आप परमहित कारी हैं । मैंनें आपकी कृपा से ही समस्त रहस्य को जाना है । हे नाथ ! आपको नमस्कार । हे देव ! आपको

नमस्कार । हे स्वामी ! आपको नमस्कार । मैं तो आपकी सेवक हूँ ।

त्वम सर्वग्यं शास्त्र शोधकम् । त्वम् मर्मग्यम् आत्म बोधकम् ॥
त्वम् शंभू स्ववस विहारकम् । त्वम् शिवम् सर्व कल्याणकम् ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप तो सब कुछ जानने वाले व समस्त शास्त्रों का शोधन करने वाले हैं । आप तो मर्म को जानने वाले व आ त्मा की अनुभूति करने वाले हैं । आप स्ववश में रहने के कारण शंभू कहलाते हैं तथा सबका कल्याण करने वाले होने के कारण आप शिव हैं ।

त्वम अघोर माया निवारकम् । त्वम नीलकंठम् विषयविष धारकं ॥
त्वम देवाधिदेव देव सहायकम् । त्वम् भूतेश्वर सर्व भूत नायकम् ॥

व्याख्या – आप माया का निवारण करने वाले हैं, इसलिए अघोर हैं । आप विषय रूपी हलाहल को धारण करने वाले हैं, इसलिए नील कण्ठ हैं । आप देवाधिदेव कहलाते हैं क्योंकि आप देवताओं की सहायता करते हैं । आप भूतेश्वर हैं, क्योंकि सभी प्राणियों के आप स्वामी हैं ।

त्वम हर विपद हारकम् । त्वम् तारकेश्वर तारक उद्यारकं ॥
त्वम सर्वव्यापकं ब्रह्मस्वरूपं । त्वम मर्मग्यं तत्व अनूपम् ॥

व्याख्या – आप विपदाओं का हरण करने वाले होने के कारण हर हैं । आप तारक असुर का उद्यार करने के कारण तारकेश्वर हैं । आप ब्रह्म के समान सर्वव्यापक हैं । आप परम तत्व के मर्म को जानने वाले हैं ।

त्वम प्रकृतिलयं प्रलयकारकं । त्वम त्रिनेत्र त्रिगुणवश कारकं ॥
त्वम महेश्वर महाऐश्वर्य धारकं । त्वम असुरारि कामादि असुर नाशकं ॥

व्याख्या – आप प्रकृति को लय करने वाले होने के कारण प्रलयकारी (प्र+लय अर्थात प्रकृति में लय) कहलाते हैं । आप महाऐश्वर्य को धारण करने वाले हैं, इसलिए महेश्वर हैं । आप काम आदि आसुरी भावों का नाश करने वाले हैं, इसलिए असुरारि कहलाते हैं ।

त्वम विषय व्याल गल धारकम् । नमामी नाथं भवताप नाशकं ॥
त्वम जगत गुरुं काम नाशकम् । नमामी देवम् माया निवारकम् ॥

व्याख्या – आप विषय रूपी सर्पो को गले में धारण करने वाले हैं । हे भावों के कष्टों को दूर करने वाले नाथ ! आपको नमस्कार । आप जगत के गुरु व काम का नाश करने वाले हैं । माया को दूर करने वाले हे देव ! आपको नमस्कार ।

दो०–कृपासिन्धु करुणामय नाथ सहज कृपाल ग्यान निधान ।
विधि समझावहु मोहि अब अनुभव करि निज सकहुँ जान ॥३३॥

व्याख्या – हे स्वामी ! आप कृपा के समुद्र, करुणामय, सहज में ही कृपा करने वाले व ज्ञान के घर हैं । अतः मुझे सरल विधि बता दीजिए, जिससे मैं स्वयं अनुभव करके परम रहस्य को जान सकूँ ।

उमा तुम सकल जानिन हारी । तउ कहउँ विधि जग उपकारी ॥
प्रभु बल तुम अनुभव कीन्हा । तप करि वर मनोवांछित लीन्हा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम तो सब कुछ जानती हो, फिर भी जगत के उपकार के लिए ज्ञान की क्रिया को बताता हूँ, सुनो – तुमने परमात्मा की शक्ति का अनुभव तो किया ही है, क्योंकि तप करके तुमने मनोवांछित वर प्राप्त किया ही है ।

तप महिमा उमा अपरम्पारी । जद्यपि विधि भिन्न भावानुसारी ॥
जब तुम कीन्ह तप कठोरा । गगन गिरा सुनि कानन घोरा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तप की महिमा अपरम्पार होती है, हालांकि भावों के अनुसार तप की विधियाँ भिन्न हो सकती हैं । हे पार्वती ! जब तुमने कठोर तप किया था, तब घने जंगल में तुम्हें आकाशवाणी सुनाई पड़ी थी ।

गगन गिरा सोई तप प्रभावा । ताहि बल मनोवांछित तुम पावा ॥
उमा गो बिमुख मन जब होई । गो पार अवस्था तप सोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आकाशवाणी तप का ही प्रभाव थी, जिसके बल से तुमने मनोवांछित फल प्राप्त कर लिया था । हे पार्वती ! जब मन इन्द्रियों से विमुख हो जाता है, तब वह अवस्था इन्द्रियों से परे की अवस्था होती है, उसे ही तप कहते हैं।

अब तुम्हार विधि करउ विचारा । संबत सहस मूल कीन्ह अहारा ॥
किछु दिवस तुम कीन्ह उपवासा । किछु काल खायेउ बारि बतासा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब तुम तुम्हारे तप करने की विधि का विचार करके देखो कि तुमने एक संवत तक नाना प्रकार के कंदमूल फल खाये, फिर कुछ दिन उपवास किया तथा कुछ समय जल के साथ बताशा खाये ।

दो०–सागु खाइ तुम बरस सत पर्णपात पुनि खाए किछु काल।
ऐहि विधि तप कीन्ह भवानी तब भए द्रवित जगतपितु कृपाल ॥३४॥

व्याख्या – तुमने सात वर्षो तक साग खाया तथा कुछ समय पेड़ों की पत्तियाँ खायी । हे पार्वती ! इस प्रकार तप करने पर परमपिता तुम पर द्रवित हुए थे।

भाव अनुसार तुम सब पाई । करहु भाव मरम समझ आई ॥
तुम समान उमा तप कारी । नहिं संभव आज इहँ संसारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुमने भावों के अनुसार फल प्राप्त कर लिया था, इसलिए अब भी मन में भाव ले आओ, तुम्हें सब रहस्य समझ में आ जायेगा । हे

पार्वती ! तुम्हारे समान तप करना आज संसार में संभव नहीं है ।

तप हेतु नहिं किछु दरकारा । तप साफल्य भाव अनुसारा ॥
भाव निर्मल मन निर्मलताई । मन निर्मल सोई तप दृढ़ाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तप करने के लिए कुछ भी नहीं चाहिये । तप की सफलता तो भावों के अनुसार मिलती है । भावों के निर्मल होने पर ही मन में निर्मलता आती है तथा मन की निर्मलता ही तप को दृढ़ता प्रदान करती है ।

भाव निर्मलता प्राण आधारी । इहँ तप विधि मरम अपारी ॥
सुरत निरत प्राण पद सोई । उमा उभय बल प्राण गति होई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भावों की निर्मलता प्राणों पर निर्भर करती है । यह तप की क्रिया का परम रहस्य है । हे पार्वती ! सुरत (शव्द) और निरत (दृश्य) प्राण के दो पैर हैं, जिनके बल पर ही प्राण की गति होती है ।

सुरत निरत जे जानहिं मरमा । पावहहिं ते ग्यान परमा ॥
उमा विधि सरल बताउँ सोई । करत सुरत निरत वश होई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो सुरति व निरति के रहस्य को जान लेते हैं, उन्हें परम ज्ञान हो जाता है । हे पार्वती ! इसलिए तुम्हें सरल क्रिया बताता हूँ, जिसके करने से सुरति व निरति वश में हो जाती है ।

दो०—नाम पाहरु निसि दिवस प्रभु ध्यान लगाय कपाट ।
नयन निज घट जन्त्रित निहारु प्राण चलत केहि बाट ॥३५॥

व्याख्या – परमात्मा के नाम का रात-दिन पहरा लगाकर परमात्मा का ध्यान रूपी दरवाजा लगायें तथा स्वयं के नेत्रों को स्वयं के शरीर रूपी यन्त्र में लगाकर देखना चाहिये कि प्राण किस प्रकार गति कर रहे हैं ।

निज जन्त्र जब नयन लगाई । जपहहिं नाम उमा लय लाई ॥
उठहिं प्राण उर्ध्व सुहाई । सहजहिं शक्ति कुण्डली जगाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब स्वयं की दृष्टि को स्वयं के शरीर पर लगाई जाती है तथा लय लगाकर नाम जपने से प्राण शक्ति उर्ध्वगामी हो जाती है, जिससे सहज में ही कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है ।

उमा मम वचन शंक न लाई । करइब शंका भ्रम उलझाई ॥
भ्रम वश पुनि पुनि जन्माई । बिरथा जीव भव जाल पराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मेरे वचनों पर संदेह मत करना क्योंकि शंका करने से भ्रम का जाल पड़ जायेगा । भ्रम में पड़ जाने के कारण ही पुनः जन्म होता है और जीव भ्रम में पड़कर भावों के जाल में पड़ जाता है ।

सो उमा मम वचन करि विश्वासा । निज घट निज करहु आभासा ॥
उमा नाम मरम संक्षेप बताउँ । चित करि दृढ़ हृदय समझाउँ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मेरे वचनों का विश्वास करो और स्वयं अपने हृदय में आभास करो । तुम चित को स्थिर करो, मैं नाम के रहस्य को तुम्हारे हृदय में ही समझा दूँगा ।

सब नाम सार राम सुहाई । रां बीज सोई रंरकार कहाई ॥
सो लय लाइ जपहिं जब नामा । लगइ खेचुरी द्वार प्रभु धामा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सब नामों का सार नाम राम ही होता है, इसलिए रां ही बीज होता है तथा रां ही रंरकार कहलाता है । इसलिए रंरकार को लय लगाकर जपने से खेचुरी मुद्रा लग जाती है, जो परमपिता को प्राप्त करने का द्वार होती है।

खेचुरी मुद्रा शब्द रंरकारा । जपत निरंतर प्रकाश अपारा ॥
होइ प्रकास सब भ्रम नसाई । खुलहहिं कपाल ब्रह्म निअराई ॥

व्याख्या – खेचुरी मुद्रा लगाकर निरन्तर रंरकार का जप करने से अपार प्रकाश हो जाता है तथा प्रकाश होने पर सब भ्रम का नाश हो जाता है, जिससे कपाल का छिद्र खुल जाता है और जीव ब्रह्म के नजदीक आ जाता है ।

प्रकृति शक्ति होइ अनुकूला । उमगहि आनंद मिटहिं शूला ॥
शक्ति मरम तब परइ चिन्हाई । उमा सो अनुभव कहा न जाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रकृति शक्ति तब अनुकूल हो जाती है, जिससे आनन्द उमड़ने लग जाता है और कष्टों का निवारण हो जाता है । उस अवस्था में शक्ति का रहस्य समझ में आ जाता है । हे पार्वती ! उस अवस्था के अनुभव का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दो०–जीव लोह ब्रह्म अनल तप सोइ अनल तेज समान ।
लोहहि उमा अनल बनहिं जब जरहि तम अग्यान ॥ ३६ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जीव लोहे की तरह और ब्रह्म अग्नि की तरह होता है तथा तप ही अग्नि का तेज होता है । अतः जब जीव रूपी लोहे के अज्ञान रूपी विकार जल जाते हैं, तो जीव रूपी लोहा ही ब्रह्म रूपी अग्नि बन जाता है ।

जानत ब्रह्म जीव ब्रह्म होई । प्रगटहिं सब लच्छन सोई ॥
तोहि ताहि तब रहइ न भेदा । माया विगत ब्यापहिं न खेदा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! ब्रह्म को जान लेने पर जीव भी ब्रह्म ही हो जाता है तथा उसमें ब्रह्म के ही लक्षण प्रकट हो जाते हैं । तब उस अवस्था में मेरे-तेरे का भेद भी नहीं रहता है, जिससे माया मिट जाती है और सब कष्टों का

निवारण हो जाता है ।

उमा मारग सरल दियेउँ बताई । अनुसरइब जेहि मनोवांछित पाई ॥
इहँ ज्ञान उमा परम हितकारी । भगति मूल दायक फल चारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैंने तुम्हें बहुत सरल रास्ता बता दिया है, जो इसका अनुसरण करेंगे, उनकी सब मनोकामना पूर्ण हो जायेंगी । हे पार्वती ! यह ज्ञान परम हित करने वाला है, जो भक्ति का मूल और धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष के चारों फलों को देने वाला है ।

श्रद्धा सह जे पढ़इब इहँ संवादा । मिलहिं शान्ति मिटहिं सब बाधा ॥
नवरात्र करहिं जेहिं पाठा । होइब अनुकूल प्रकृति आठा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो श्रद्धापूर्वक इस संवाद को पढ़ेंगे, उन्हें शान्ति मिल जायेगी तथा समस्त बाधाओं का निवारण हो जायेगा । जो लोग नवरात्रि में इसका पाठ करेंगे, उनके अष्ट प्रकृति अनुकूल हो जायेंगी ।

जय रूप यश वैभव दायक । संवाद इहँ उमा भव तारक ॥
रिपु करिइब आइ मिताई । सह श्रद्धा विश्वास पाठ कराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! यह संवाद जय, रूप, यश व वैभव को देने वाला तथा भव सागर को पार कराने वाला है । जो लोग श्रद्धा व विश्वास के साथ इसका पाठ करेंगे, उनके शत्रु भी अपने आप आकर मित्रता कर लेंगे ।

दो०–पावन परम संवाद इहँ परम शक्ति सहज द्रवाय ।
सुनहिं गुनहिं जेहि जनु सहजहिं परम पद दिवाय ॥३७॥

व्याख्या – हे पार्वती ! यह संवाद परम पवित्र है, जिससे परम शक्ति सहज में ही द्रवित हो जाती है । इसलिए जो लोग इसे सुनेंगे व अनुसरण करेंगे, उन्हें सहज में ही परम पद मिल जायेगा ।

धन्य नाथ परम कृपालु । कृपा तुम्हार भयउँ निहालु ॥
शिव उमा संवाद परम उपकारी । जनावइ शक्ति मरम अपारी ॥

व्याख्या – हे परम कृपालु प्रभु ! आप धन्य हैं । मैं आपकी कृपा से निहाल हो गया हूँ । शिव और पार्वती संवाद तो परम उपकार करने वाला है, जो आदि शक्ति के परम रहस्य को बताने वाला है ।

सब विधि नाथ शरण में तोरी । अब करहउ मति निर्मल मोरी ॥
मार्कण्डेय तप विधि देउ बताई । ताहि बल शक्ति मरम चिन्हाई ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ, इसलिए अब आप मेरी बुद्धि को निर्मल कर दीजिए । हे नाथ ! अब आप मार्कण्डेय मुनि के तप की क्रिया

को बता दीजिए, जिसके बल से उसने आदिशक्ति के रहस्य को जाना था।

सुत हृदय करि देखि विवेका। तप नाना मारग मंजिल ऐका ॥
मम नारी सोई प्रकृति सुहाई। जग जननी जगदम्बा कहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! हृदय में विचार करके देखो कि तप के नाना मार्ग होते हैं, परन्तु सबका परिणाम एक ही होता है। मेरी नारी (नाड़ी) ही प्रकृति शक्ति है, जो जगत को जन्म देनेवाली जगदम्बा कहलाती है।

मार्कण्डेय कीन्ह तप अपारा। ताहि बल जाना मरम सारा ॥
निज घट मुनि निज समुझाई। सोई अनुभव सुत तोहि बताई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मार्कण्डेय मुनि ने कठोर तप किया था और उसी कठोर तप के बल से समस्त रहस्य को जाना था। मुनि मार्कण्डेय ने स्वयं के हृदय में ही सब कुछ जाना था। मैं तुम्हें उसी अनुभव को बता देता हूँ। सुनो –

सुत तोहि पाछिल इतिहास बताउँ। मुनि मार्कण्डे जन्म समझाउँ ॥
कृत जुग भयउ पावन काला। ऋषि मर्कण्डु हुयेउ तपवाला ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तुम्हें मैं पिछला इतिहास बताकर मार्कण्डेय मुनि के जन्म को समझाता हूँ। सतयुग के पवित्र समय में मर्कण्डु ऋषि हुए थे।

दो०–जप तप संयम नियम साधहि निसि दिवस जपहिं मम नाम।
पुत्र इच्छा ऋषि मन प्रबलाई जद्यपि हियँ भगति निष्काम ॥३८॥

व्याख्या – मर्कण्डु ऋषि जप, तप, नियम व संयम की साधना करते थे और रात दिन मेरा नाम जपते रहते थे। परन्तु ऋषि के हृदय में पुत्र प्राप्ति की इच्छा प्रबल हो गयी थी, हालांकि हृदय में निष्काम भक्ति का भाव ही था।

वर दीन्ह पेखि ऋषि मन भावा। समय पाइ मार्कण्डेय जन्मावा ॥
भयउ ऋषि मुदित सुत निहारी। अब सुन सुत इतिहास आगारी ॥

व्याख्या– हे वत्स ! मैंने ऋषि के मन की भावना को देखकर पुत्र प्राप्ति का वर दे दिया, जिससे समय आने पर मार्कण्डेय का जन्म हो गया। पुत्र को देख कर ऋषि मर्कण्डु बहुत प्रसन्न हुए। हे वत्स! अब आगे का इतिहास बताता हूँ, सुनो–

मार्कण्डेय जब भयउ किशोरा। हृदय लहहिं भगति हिलोरा ॥
पितु दीन्ह सुत भल संस्कारा। ताते मिलहहिं भगति आधारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब मार्कण्डेय किशोर अवस्था में पहुँचा, तो उसके हृदय में भक्ति के भाव हिलोरें लेने लगे क्योंकि पिता मर्कण्डु ऋषि ने अपने पुत्र को अच्छे संस्कार दिये थे, जिससे भक्ति को आधार मिल गया।

ध्यान विधि ऋषि समुझाई । ॐ नारायणायः मंत्र बताई ॥
मंत्र संग कीन्ह ध्यान अभ्यासा । लगि समाधि मार्कण्ड अनयासा ॥

व्याख्या – ऋषि अंगिरा ने पुत्र मार्कण्डेय को ध्यान करने की विधि बता दी तथा ॐ नारायणाय नमः मन्त्र बता दिया । मार्कण्डेय मुनि ने मन्त्र के साथ ध्यान का अभ्यास किया, जिससे एक दिन अचानक समाधि लग गयी और नाना प्रकार की अनुभूति हो गयी ।

शुक्ल द्वितीया फाल्गुन मासा । कृत जुग संवत एक पच्चासा ॥
शीत न घाम पावन काल सुहाई । ध्यान मगन मुनि मंत्र जपाई ॥

व्याख्या – सतयुग के संवत इक्यावन के फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया के दिन मुनि मार्कण्डेय ध्यान मगन होकर मन्त्र का जप कर रहा था। उस समय न सर्दी थी और न गर्मी थी ।

मन्त्र बल शक्ति दियेउ जगाई । उठि कुण्डली ब्रह्म लोक पहुँचाई ॥
प्रकृति लय भयउ मुनि ग्यानी । मरम अपार निज घट जानी ॥

व्याख्या – मन्त्र के बल से कुण्डलीनि शक्ति जाग्रत हो गयी और शक्ति ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच गयी । उस अवस्था में मुनि प्रकृति में लय हो गया, जिससे परम रहस्य हृदय में समझ आ गया ।

दो०–प्रलय सोई प्रकृतिलय है तहँ नहिं निज पर आभास रहाय ।
शक्ति मरम तब प्रगटहिं तबहिं जीव मम मुख प्रवेश कराय ॥३९॥

व्याख्या – प्रकृति में लय होना ही प्रलय (प्रकृति + लय) होता है, जिसमें अपने-पराए का कोई आभास नहीं रहता है । उस अवस्था में ही शक्ति का रहस्य प्रकट हो जाता है और जीव मुझ परमात्मा में प्रवेश कर जाता है ।

मुनि जब प्रलय अवस्था पाई । चहुँदिसि मैं ही मैं परा दिखाई ॥
मम शक्ति महिमा मुनि तब जानी । आदि शक्ति जगदम्बा करि मानी ॥

व्याख्या – मुनि मार्कण्डेय जब प्रकृति लय की अवस्था को प्राप्त किया, तो चारों तरफ मैं ही मैं दिखाई पड़ने लगा । उस समय मुनि ने मेरी शक्ति की महिमा को जान लिया तथा उसे ही जगत की माता जगदम्बा मान लिया ।

मुनि हृदय मिला परम विश्रामा । मन शान्त विगत सब कामा ॥
निमिषहिं मुनि समझा मरमा । कर्ता भर्ता हर्ता शक्ति धरमा ॥

व्याख्या – मुनि के हृदय में परम विश्राम मिल गया तथा समस्त वासनाएँ मिट गयी, जिससे मन को परम शान्ति मिल गयी । क्षण भर में मुनि मार्कण्डेय को

समस्त रहस्य समझ में आ गया कि आदिशक्ति ही उत्पत्ति, पालन व संहार करने वाली होती है ।

पुलकित गात नयन बह नीरा । अचरज अति मन लागहि भीरा ॥
मुनि मन मगन ध्यान दृढ़ाई । जलमय सकल सृष्टि दिखाई ॥

व्याख्या – मुनि के शरीर के अंग अंग पुलकित हो रहे थे तथा आँखों से अश्रुधारा बह रही थी । उसे बहुत आश्चर्य हो रहा था तथा मन में भय भी लग रहा था । मुनि का मन ध्यान की दृढ़ता में मगन हो रहा था तथा समस्त सृष्टि जलमग्न दिखाई पड़ रही थी ।

जल देखि मुनि मन घबराई । आदि शक्ति स्तुति लगा कराई ॥
सोई स्तुति सुत अति पावन । करहिं जेहि पावहिं मन भावन ॥

व्याख्या – चारों तरफ जल ही जल देखकर मुनि का मन घबरा गया, तब मुनि आदिशक्ति जगदम्बा की स्तुति करने लगा । हे वत्स ! वह स्तुति बहुत ही पवित्र है, अतः जो करते हैं, उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है ।

आदिशक्ति जगदम्बा स्तुति

ॐ जयन्ती मंगलाकाली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाह स्वधा नमोऽस्तुते ॥१॥

व्याख्या – हे सृष्टि को जन्म देने वाली माँ, हे मंगल करने वाली मंगला, हे कालातीत काली, हे भक्तों का कल्याण करने वाली काली, हे कपाल में आभासित होने वाली कपालिनी, हे दुर्ग के समान दुर्गम दुर्गा, हे क्षमा, हे शिवा, हे जगत को धारण करने वाले धात्री, स्वाह रूप में भोजन ग्रहण करने वाली व स्ववश में रहने वाली स्वधा ! आपको नमस्कार ।

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणी ।
जय सर्वगते देवि काल रात्रि नमोऽस्तुते ॥ २ ॥

व्याख्या – हे चाह पूर्ण करनेवाली चामुण्डा देवी ! आपकी जय हो । हे समस्त प्राणियों के कष्टों को दूर करने वाली देवी ! आपकी जय हो । हे सर्वत्र गमन करने वाली देवी ! आपकी जय हो । हे काल का भी काल कालरात्रि देवी ! आपको नमस्कार ।

मधुकैटभ नाशिनी जय विधातृ वर दायिनि नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥

व्याख्या – हे मधु व कटु अहंकार का नाश करने वाली देवी ! आपकी जय हो। हे विधि (क्रिया) के अनुसार फल देने वाली देवी ! आपको नमस्कार । हे देवी!

मुझे मेरा रूप दीजिए अर्थात आत्म ज्ञान कराइये, मुझे काम, क्रोध व मोहादि भावों पर विजय दिलाइये। मुझे मोह पर विजय व ज्ञान-प्राप्ति करा दीजिए तथा रूप व यश प्रदान कीजिए तथा मेरे अन्दर के द्वेष का अन्त कर दीजिए।

महिषासुर नासिनि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥

व्याख्या – हे अज्ञान रूपी महिषासुर का नाश करने वाली व भक्तों को सुख देने वाली देवी ! आपको नमस्कार। मुझे रूप (आत्मज्ञान) दो, जय दो, यश दो और द्वेष से मुक्त कर दो।

रक्त बीज वधे देवि चण्डमुण्ड विनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥

व्याख्या – हे रक्त बीज अर्थात भावों के मूल को नष्ट करने वाली देवी ! आप चण्डमुण्ड अर्थात वासनाओं के मूल को नष्ट करने वाली हैं। इसलिए मुझे रूप (आत्मज्ञान) दीजिए, जय दीजिए, यश दीजिए और मेरे द्वेष का अन्त कर दीजिए।

शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जय देहि यशो देहि द्विषो जहिं ॥ ६ ॥

व्याख्या – हे देवी ! आप शुभ, अशुभ व भ्रम का नाश करने वाली हैं अर्थात कर्म के बन्धन से मुक्त कराने वाली हैं। इसलिए मुझे रूप (आत्मज्ञान) दीजिए, जय दीजिए, यश दीजिए व मेरे द्वेष को मिटा दीजिए।

वन्दिताऽघ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥

व्याख्या – हे सबके द्वारा वन्दिता देवी ! आप सम्पूर्ण सौभाग्य को देने वाली हैं। इसलिए मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा मेरे द्वेष को मिटा दीजिए।

अचिन्त्यरूप चरिते कामादि सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८ ॥

व्याख्या – हे देवी ! आपका रूप व चरित्र अचिन्त्य है तथा आप काम आदि समस्त शत्रुओं का नाश करने वाली हैं। इसलिए मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा मुझे द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरिताय जे ।
रूपं देहि जयं देहि यशों देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥

व्याख्या – हे चण्डिके देवी ! जो चिन्ता में पड़कर आपको सदा मस्तक झुकाते हैं, उन्हें आत्म ज्ञान कराइये, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥

व्याख्या – हे रोगों का नाश करने वाली चण्डिके देवी ! जो भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं, उन्हें रूप, जय, यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए ।

चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जय देहि यशो देहि द्विषो जहिं ॥ ११ ॥

व्याख्या – हे चण्डिके देवी ! जो भक्तिपूर्वक आपकी पूजा करते हैं, उन्हें आप रूप, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए ।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥

व्याख्या – हे देवी ! आप मुझे सौभाग्य व आरोग्य दीजिए तथा परम सुख अर्थात परमतत्व का बोध करा दीजिए । आप मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा मुझे द्वेष से मुक्त कर दीजिए ।

विद्येहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जय देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३ ॥

व्याख्या – हे देवी ! द्वेषता की प्रक्रिया का ही नाश कर दीजिए तथा मेरे आत्मबल को बढ़ा दीजिए । मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा मुझे द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

विधेहि देवि कल्याण विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥

व्याख्या – हे देवी ! मुझे परम कल्याण की विधि दीजिए तथा परम सम्पत्ति प्रदान कीजिए । मुझे रूप दीजिए, जय दीजिए व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

सुरासुर उभय बन्दितः चरणेम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥

व्याख्या – हे देवी ! देवता व असुर दोनों ही आपके चरणों की वन्दना करते हैं। आप मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए ।

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६ ॥

व्याख्या – हे देवी ! आप भक्तजनों को विद्यावान, यशवान व धनवान बना दीजिए । आप रूप, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दो ।

प्रचण्ड दैत्यदर्पहने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७ ॥

व्याख्या – हे देवी ! आप प्रचण्ड अहंकार रूपी दैत्य का नाश करने वाली हैं तथा आप ही प्राणों की मूल हैं। आप मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८ ॥

व्याख्या – हे चारों भावों (सत, रज, तम व गुणातीत) को धारण करने वाली व चारों भावों से ही स्तुत्य परमेश्वरी। आप मुझे रूप (आत्म ज्ञान) दीजिए, जय दीजिए व यश दीजिए और मुझे द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

विष्णु संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९ ॥

व्याख्या – हे अम्बे ! विष्णु भी आपकी नित्य निरंतर भक्तिपूर्वक स्तुति करते रहते हैं। आप मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा मुझे द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

हिमाचल सुता पति संस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २० ॥

व्याख्या – पार्वती पति शिवजी भी सदा आपकी स्तुति करते रहते हैं। अतः आप मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

इन्द्राणीपति सद्भाव पूजिते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥

व्याख्या – हे परमेश्वरी ! शचीपति इन्द्र भी आपकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं। आप मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा द्वेष से मुक्त कर दीजिए।

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्य दर्प विनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२ ॥

व्याख्या – प्रचण्ड भाव वाले द्वेत भाव के अहंकार का नाश करने वाली हे देवी! मुझे रूप, जय व यश दीजिए तथा मेरे द्वेष का नाश कर दीजिए।

देवि भगतजनेन आनन्ददायिनि अम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३ ॥

व्याख्या – हे देवी ! आप भक्तजनों को आनन्द देने वाली माता हैं। आप मुझे रूप दीजिए, जय दीजिए व यश दीजिए तथा मेरे द्वेष को मिटा दीजिए।

सत बल च बुद्धिम् देहि भक्तिभावानुसारिणीम्।
तारिणी दुर्ग संसारसागरस्य मोक्षदायकम् ॥ २४ ॥

व्याख्या – हे देवी ! मुझे भक्ति के भावों का अनुसरण करने वाला सात्विक

बल व सात्विक बुद्धि दीजिए, जिससे दुर्गम संसार पार हो जाए तथा जो मोक्ष को देने वाले हो ।

इदम् स्तोत्रम् श्रद्धासह जे पठन्ति पुरुषाम्ः ।
आदिशक्ति प्रसीद भवति नाश्यति सर्वकल्मषाम्ः ॥ २५ ॥

व्याख्या – जो लोग इस स्तुति को श्रद्धापूर्वक करते हैं, उन पर आदिशक्ति प्रसन्न हो जाती है तथा समस्त क्लेशों का नाश कर देती है ।

दो०–गदगद विनय सुनि शक्ति गगन गिरा कीन्ह गम्भीर ।
मागु बर मागु बर कहहि देइब मनोवांछित मतिधीर ॥ ४० ॥

व्याख्या – मुनि मार्कण्डेय की भावपूर्वक स्तुति को सुनकर आदि शक्ति ने गम्भीर आकाशवाणी करी और कहा कि हे वत्स ! वर मांगो । मैं तुम्हें मन की इच्छा अनुसार सब कुछ दूँगी ।

सुनि गिरा मुनि अचरज मानी । दिखहिं न चहुँदिसि कोउ आनी ॥
हत चकित मुनि बोल न पाई । अनवरत नयन जल धार बहाई ॥

व्याख्या – आकाशवाणी को सुनकर मुनि मार्कण्डेय को बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि उसे चारों तरफ को कोई दिखाई नहीं पड़ रहा था । आश्चर्य चकित होकर मुनि कुछ बोल नहीं पा रहा था तथा आँखों से अश्रुओं की धारा बह रही थी ।

शक्ति पुनि कीन्ह नभ बानी । करउ न अचरज मुनि ग्यानी ॥
मैं आदि शक्ति जगदम्बा । मैं ही जग जननी जग अवलम्बा ॥

व्याख्या – आदि शक्ति ने फिर आकाशवाणी करी कि हे मुनि ! तुम आश्चर्य मत करो । मैं ही आदिशक्ति जगदम्बा हूँ तथा मैं ही जगत की माता व जगत की आधार हूँ ।

मैं अनादि परमपुरुष की नारी । विधि हरि हर सब सुत हमारी ॥
जन्म दायिनि जननी कहाउँ । बनि भार्या जग भोगहु कराउँ ॥

व्याख्या – मैं अनादि परम पुरुष की नारी हूँ तथा ब्रह्मा, विष्णु व महेश ये सब मेरे पुत्र हैं । मैं जन्म देने के कारण जननी कहलाती हूँ तथा मैं ही भार्या बनकर जगत में भोग कराती हूँ ।

पूजन हेतु दुर्गा रूप धराई । कालहु काल सो कालिका कहाई ॥
सकल चराचर मैं ही समाई । उत्पति पालन प्रलय क्रिया कराई ॥

व्याख्या – मैं ही पूजा कराने के लिए दुर्गा का रूप धारण करती हूँ तथा काल का भी काल होने के कारण ही मैं कालिका कहलाती हूँ । मैं ही समस्त चराचर

में व्याप्त हूँ तथा उत्पत्ति, पालन व संहार मेरी क्रियाएँ हैं ।

दो०—सकल सृष्टि मूल मैं ही जड़ चेतन उभय रही समाय ।
मोर अन्न सृष्टि बीज भया पंचभूतहउ ताते उपजाय ॥ ४१ ॥

व्याख्या — मैं आदिशक्ति ही समस्त सृष्टि का मूल हूँ और मैं ही जड़-चेतन दोनों में व्यापक हूँ । मेरा अन्न ही सृष्टि का बीज है, पाँच भूत भी जिससे ही पैदा होते हैं ।

हकार सकार मैं हंस रूपिणि । मैं ही कात्यायनि सर्वकारिणि ॥
मैं चितनिवासिनि चित मूला । मैं ही हर्ता सब जग शूला ॥

व्याख्या — हकार व सकार के रूप में मैं हंस रूपिणि हूँ तथा समस्त कार्यो को करने वाली होने के कारण कात्यायनि हूँ । मैं चित में निवास करती हूँ तथा मैं ही चित की मूल भी हूँ । मैं ही संसार के दुःखों को दूर करने वाली हूँ ।

सुरता बनि मैं रहउँ समाई । माया महामाया मोर रूप सुहाई ॥
मोते बाहिर जगत किछु नाई । मैं ही आदि मैं ही अन्त सुहाई ॥

व्याख्या — मैं सुरता बनकर व्यापक रहती हूँ, इसलिए माया और महामाया मेरे ही रूप हैं । मुझसे बाहर जगत में कुछ भी नहीं है क्योंकि मैं ही संसार का आरम्भ व अन्त हूँ ।

मैं भव्या भाव्य भव्यता होई । मैं ही मूल भव सागर सोई ॥
क्षुधा बनि सब उदर समाई । भोजन बनि मैं ही तृप्ति कराई ॥

व्याख्या — मैं ही भावों को पैदा करनेवाली भव्या तथा मैं ही भाव हूँ और मैं ही भावों की व्यवस्था हूँ । इसलिए मैं भाव रूपी भवसागर की मूल हूँ । मैं ही सबके पेट में क्षुधा बनकर रहती हूँ तथा मैं ही भोजन बनकर तृप्ति भी कराती हूँ ।

मैं बलादाकृष्य बलदायिनि । नर अयन मैं ही नारायणि ॥
मैं शुभ मति शुभ दायिनि । मैं ही मंगला मंगल कारिनि ॥

व्याख्या — मैं बलात् आकर्षण करती हूँ और मैं ही बल प्रदान करने वाली हूँ । मैं नर (धड़कन) को घर बना कर रहती हूँ, इसलिए नारायणी हूँ । मैं ही सद्बुद्धि बन कर शुभ करने वाली हूँ तथा मैं मंगल करनेवाली मंगला हूँ ।

दो०—जहँ लगि कल्पना जीव की तहँ लगि मोर विस्तार ।
आदि मध्य अन्त मोर नहिं मैं ही करुँ उत्तत्ति पालन संहार ॥ ४२॥

व्याख्या — जहाँ तक जीव की कल्पना होती है, वहाँ तक मेरा विस्तार होता है । मेरा आदि मध्य व अन्त नहीं होता है तथा मैं जगत की उत्पत्ति, पालन

व संहार करने वाली हूँ ।

मुनि मैं सकल आश्रय भूता । सकल चराचर जानि मोर पूता ॥
गुण मूला गुण पार रहाउँ । सकल वेद मैं ही आधार सुहाउँ ॥

व्याख्या – हे मुनि ! मैं समस्त भूतों की आश्रय हूँ, इसलिए समस्त चराचर को मेरी ही सन्तान मानों । मैं समस्त गुणों की मूल होते हुए भी गुणों से परे हूँ तथा समस्त वेदों का आधार भी मैं ही हूँ ।

मोर बल हियँ श्रद्धा उपजाई । मोर कृपा धन वैभव मिलाई ॥
तृष्णा बनि मैं ही जीव नचाउँ । बनि शान्ति मैं ही शान्त कराउँ ॥

व्याख्या – मेरे बल से ही हृदय में श्रद्धा पैदा होती है तथा मेरी कृपा से ही जीव को धन व वैभव मिलता है । मैं ही तृष्णा बनकर जीव को नाच नचाती हूँ तथा मैं ही शान्ति बनकर शान्त कराती हूँ ।

मैं ही आनन्द आनन्दसरूपा । मैं ही ब्रह्म आत्म तत्व अनूपा ॥
मैं ही विग्यान मैं ही अविग्याना । मैं ही विद्या अविद्या परम ग्याना ॥

व्याख्या – मैं ही आनन्द हूँ और मैं ही आनन्द की स्वरूप हूँ । मैं ही ब्रह्म हूँ तथा मैं ही अनुपम आत्म तत्व हूँ । मैं ही विज्ञान और अविज्ञान हूँ तथा मैं ही विद्या व अविद्या का परम ज्ञान हूँ ।

मैं ही ईश्वरी ऐश्वर्य धारी । स्वर वासिनि पंच भूताधारी ॥
प्रकृतिमय प्रकृति पार सुहाउँ । परमारथ बेद बनि प्रगटाउँ ॥

व्याख्या – मैं ही समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली ईश्वरी हूँ तथा मेरा स्वरों में निवास होता है तथा पाँचों भूत तत्वों का आधार भी मैं ही हूँ । मैं ही प्रकृति स्वरूप हूँ तथा मैं प्रकृति से परे भी हूँ । परमार्थ के लिए मैं ही वेदों के रूप में प्रकट होती हूँ ।

दो०–मैं ही वासु मैं ही रुद्र मैं ही आदित्य अश्विनि कुमार ।
ग्रह नक्षत्र ज्योतिय मैं ही मैं ही मन्त्र मैं ही मन्त्र आधार ॥ ४३॥

व्याख्या – मैं ही आठ वसु और मैं ग्यारह रुद्र हूँ तथा मैं ही आदित्य और अश्विन कुमार हूँ । मैं ही ग्रह नक्षत्र व ज्योतिष हूँ तथा मैं ही मन्त्र व मन्त्रों का आधार हूँ ।

सुर असुर मोते उपजाई । भाव अनुसार उभय अलगाई ॥
रुद्र वसु अश्विनि कुमारा । आदित्य सह कोटि तैतीस प्रकारा ॥

व्याख्या – देवता व असुरों दोनों का उद्‌भव मुझसे ही होता है, जो भावना के अनुसार अलग हो जाते हैं । रुद्र, वसु, अश्विनि, कुमार और आदित्य सब

तैतीस स्तर (कोटि) होते हैं ।

सोई देवन्ह कोटि तैतीस सुहाई । रुद्रादित्य कुमारादि कोटि सबाई ।
असुरन्ह वर्णन न संभव होई । काम क्रोध मदादि भाव सब सोई ॥

व्याख्या – इसलिए सब देवों का स्तर तैतीस होता है जिसमें ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, अश्विनि और कुमार आते हैं । असुरों का वर्णन संभव नहीं है क्योंकि असुरों में काम, क्रोध, मद व लोभ आदि सभी भाव आते हैं ।

परम पुरुष संकल्प अनुसराई । मैं ही जड़ चेतन रूप धराई ॥
आदि अन्त मध्य नहिं मोरा । मुनि करहु नहिं संशय थोरा ॥

व्याख्या – मैं परम पुरुष के संकल्प का अनुसरण करती हूँ, इसलिए मैंने जड़ व चेतन का रूप धारण किया है । मेरा आरम्भ, मध्य व अन्त नहीं होता है, इसलिए हे मुनि ! तुम थोड़ा भी संशय मत करो ।

मुनि मैं सकल चराचर धारी । भाव अनुसार दायक फलचारी ॥
एकार्णव मैं रहउँ प्रभु संगा । प्रभु ते प्रीति मोर सदा अभंगा ॥

व्याख्या – हे मुनि ! मैं ही समस्त चराचर को धारण करने वाली हूँ तथा भावों के अनुसार चारों फलों को देने वाली हूँ । मैं एकार्णव होकर सदा परमपुरुष के साथ रहती हूँ, इसलिए मेरा परमात्मा से अटूट प्रेम होता है ।

दो०–मैं जगधात्री विश्व अधीश्वरी मैं कारण उत्पत्ति स्थिति संहार ।
मागु बर मागु बर मुनि धीर असि कहहि शक्ति बारम्बार ॥४४॥

व्याख्या – मैं ही जगत को धारण करने वाली व विश्व की अधीश्वरी हूँ तथा मैं ही उत्पत्ति, पालन व संहार का कारण हूँ । ऐसा कहकर आदिशक्ति बार-बार कहने लगी कि हे मुनि ! वर माँगिये, वर माँगिये ।

नभ बानी सुनि मुनि ग्यानी । भयउ विभोर जाइ न बखानी ॥
पुलकित गात मुख नहिं बानी । हरष अपार हियँ अकुलानी ॥

व्याख्या – आकाशवाणी को सुनकर मुनि मार्कण्डेय भाव विभोर हो गया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । समस्त अंग अंग पुलकित हो रहे थे, जिससे मुँह में शब्द नहीं आ पा रहे थे । अपार हर्ष हो रहा था परन्तु हृदय में व्याकुलता हो रही थी ।

निज सँभारी बोला मुनि ग्यानी । जय जगदम्बा मातु करुणारवानी ॥
जो प्रसन्न मोहि पर जगदम्बा । करावहु प्रभु दर्श जग अवलम्बा ॥

व्याख्या – तब स्वयं को संभालते हुए मुनि बोला कि हे जगत की माता व करुणा की खान ! आपकी जय हो । हे जगत माता ! अगर आप मुझ पर प्रसन्न

हैं, तो हे जगत की आधार ! मुझे परमात्मा के दर्शन कराइये ।

निश्छल भाव देखि मुनिराई । शक्ति पुनि नभ बानी कराई ॥
दरसन दुर्लभ मुनि ग्यानी । मागु अन्य देवउँ मन अनुमानी ॥

व्याख्या – मुनि के निश्छल भाव को देखकर पुनः आदिशक्ति ने आकाशवाणी करी कि हे मुनि ! परमा त्मा के दर्शन बहुत दुर्लभ हैं । तुम दूसरा वर मांग लो, मैं तुम्हें मन की इच्छा के अनुसार सब दे दूँगी ।

गुण गोतीत मुनि प्रभु सरुपा । केहि विधि करहिं दरस अनूपा ॥
शब्द रूप गन्ध स्पर्श स्वादा । सब मम क्रिया काह कहुँ ज्यादा ॥

व्याख्या – हे मुनि ! परमात्मा का स्वरूप तो गुण व इन्द्रियों से परे होता है, तब तुम उनके दर्शन कैसे कर सकते हो । शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्श व स्वाद ये सब तो मेरी (प्रकृति शक्ति) क्रियाएँ हैं, इससे ज्यादा मैं क्या बताउँ ?

दो०–जब लगि मुनि मन कल्पना तब लगि जानि मोर प्रभाव ।
जगत हेतु सब सुख देउँ इच्छा होवइ सोई सकहउ चाव ॥४५॥

व्याख्या – हे मुनि ! जहाँ तक मन की कल्पना होती है, वहाँ तक मेरा (प्रकृति शक्ति) प्रभाव जानना चाहिये । इसलिए मैं जगत में सब सुखों को प्राप्त करा सकती हूँ । अतः तुम इच्छा के अनुसार वर माँग लो ।

मुनि हृदय भा प्रबल बिरागा । बिगत काम उमगा अनुरागा ॥
जग सुख लालसा मन नहिं डोला । विनय सहित मुनि पुनि बोला ॥

व्याख्या – मुनि मार्कण्डेय के हृदय में प्रबल वैराग्य पैदा हो गया था, जिससे काम मिट गया और अनुराग पैदा हो गया । जगत के सुखों की लालसा में मन विचलित नहीं हुआ, अतः विनयपूर्वक मुनि बोलने लगा कि –

जब लगि देह तब लगि सुख होई । नश्वर देह सुख नश्वर सोई ॥
नश्वर वर मातु काह लाभा । दरसन चाहूँ प्रभु मुख आभा ॥

व्याख्या – हे माता ! जब तक शरीर होता है, तभी तक सुखों का अस्तित्व होता है और शरीर नश्वर है, अतः सुख भी नश्वर ही होते हैं । इसलिए नश्वर वरदान को प्राप्त करने से क्या लाभ होगा ? हे माता ! मैं तो परमात्मा के मुख की शोभा को देखना चाहता हूँ ।

जय रूप यश वैभव सदाई । मातु तोर कृपा सहज मिलाई ॥
तुम जननी सहज सुखदाई । बिनु मांगे सो सबु देतु सदाई ॥

व्याख्या – हे माता ! आपकी कृपा से जय, रूप, यश व वैभव तो सहज में

मिलता ही रहता है, क्योंकि तुम तो माता होने के कारण सहज सुख देनेवाली हो, अतः बिना माँगे देती ही रहती हो ।

तोर शरण मातु सुख दायक । प्रभु दरस करहु मोहि लायक ॥
गुण गोतीत चाहे होव अनन्ता । मातु चावहुँ दरस भगवन्ता ॥

व्याख्या – हे माता ! आपकी शरण ही समस्त सुखों को देने वाली होती है अतः आप मुझे परमात्मा के दर्शन करने के योग्य बना दीजिए । हे माता ! परमपिता चाहे गुण व इन्द्रियों से परे व अनन्त हों, परन्तु मैं तो उनके दर्शन करना चाहता हूँ ।

दो०–धन्य धन्य मुनि ग्यानी धन्य तुम्हार पितु मातु ।
मम हृदय उमगत अनुराग अब देखि दृढ़ता तातु ॥ ४६ ॥

व्याख्या – हे मुनि ! तुम धन्य हो, धन्य हो । तुम्हारे माता-पिता भी धन्य हैं। मेरे हृदय में तुम्हारी दृढ़ता को देखकर अनुराग उमड़ रहा है ।

करहउँ सहाय बल अनुरागा । तुम जोग्य विषय रस त्यागा ॥
अब करहु मुनि ध्यान दृढ़ाई । हियँ प्रकटइब जगत गुसाँई ॥

व्याख्या – हे मुनि ! मैं अनुराग के बल पर सहायता करूँगी क्योंकि विषयों के रस को त्यागने के कारण तुम सब प्रकार से योग्य हो । इसलिए अब तुम ध्यान में दृढ़ता ले आओ । परमात्मा तुम्हारे हृदय में ही प्रकट होंगे ।

सुनि नभ बानी मुनि हरषाई । लगा करन मंत्र जाप लय लाई ॥
मन्त्र प्रभाव ध्यान दृढ़ाई । कपाल छिद्र प्रकाश झिलमिलाई ॥

व्याख्या – आकाशवाणी को सुनकर मुनि बहुत हर्षित हुआ और लय लगाकर मन्त्र का जाप करने लगा । मन्त्र के प्रभाव से ध्यान में दृढ़ता आ गयी और कपालछिद्र में प्रकाश झिलमिलाने लग गया ।

तन मन सुधि मुनि बिसराई । कड़कड़ दामिनि नभ गरजाई ॥
मुनि भयउ भयभीत हठाता । चहुँदिसि तम कम्पित गाता ॥

व्याख्या – तब मुनि अपने तन व मन की सुध-बुध भूल गया तथा आकाश में कड़कड़ बिजली गरजने लग गयी । जिससे अचानक मुनि भयभीत हो गया और चारों तरफ को अन्धकार दिखाई पड़ने लगा, जिससे मुनि के अंग-अंग काँपने लगे।

सब जल लय परइ दिखाई । मकर तार शुधु गयउ बचाई ॥
मकर तार दिखहि नहिं छोरा । कम्पित जद्यपि भासहहिं थोरा ॥

व्याख्या – सब कुछ उस समय जल में लीन दिखाई पड़ने लगा और केवल मकर तार का आभास बच गया था । मकर तार का कोई आरम्भ व अन्त नहीं

था, परन्तु वह थोड़ा-थोड़ा हिलता हुआ आभासित हो रहा था ।

दो०—मकर तार सोई शक्ति अनादि समझहिं मुनि हृदय तत्काल ।
तुरत मकर राह मुनि धरहि ताते भयउ उनि निहाल ॥४७॥

व्याख्या — मुनि के हृदय में तुरन्त समझ में आ गया कि मकर तार ही अनादि शक्ति है, इसलिए मुनि ने तुरन्त मकर तार के रास्ते को पकड़ लिया, जिससे वह निहाल हो गया ।

मकर तार मुनि जब चढ़ाई । उनमन अवस्था उनि पाई ॥
भयी प्रकृति तुरत अनुकूला । आनन्द बर्षा विगत सब शूला ॥

व्याख्या — जब मुनि मकरतार पर चढ़ने लगा तो उन्मनी अवस्था आ गयी, जिससे प्रकृति अनुकूल हो गयी और आनन्द की वर्षा होने लग गयी तथा समस्त कष्टों का निवारण हो गया ।

मोह बन्ध सब गयउ बिलगाई । मिटइ तमस निर्भयता पाई ॥
चउथ स्वर तुरीया पाई । गुणातीत सो अवस्था कहाई ॥

व्याख्या — मुनि के मोह का बन्धन छूट गया, जिससे अज्ञान मिट गया और निर्भयता प्राप्त हो गयी । यह अवस्था ही चौथे स्वर की अवस्था होती है, जिसमें तुरीया की प्राप्ति हो जाती है और उसे ही गुणातीत अवस्था कहा जाता है ।

मुनि मन चित कीन्ह प्रवेशा । मोह भ्रम मिटै सकल क्लेशा ॥
भाव मूल तब परहि बुझाई । चित चिन्तइ सोइ होत सबाई ॥

व्याख्या — ध्यान की उस अवस्था में मुनि के मन का चित में प्रवेश हो गया, जिससे मोह के भ्रम से व्यापक समस्त क्लेशों का नाश हो गया । उस समय मुनि को भावों का मूल समझ में आ गया कि चित में जैसा चिन्तन चलता है, वैसा ही सब कुछ होता है।

सकल जगत हय भाव आधारा । उमगहिं भाव चिति अनुसारा ॥
व्यष्टि समष्टि चित सुहाई । व्यष्टि जीव समष्टि मैं रहाई ॥

व्याख्या — भाव ही समस्त जगत का आधार होते हैं और भाव चिंतन के अनुसार पैदा होते हैं । व्यष्टि और समष्टि चित के प्रकार होते हैं, जिसमें व्यष्टि चित जीव का होता है और समष्टि के चित में मैं परमात्मा रहता हूँ ।

दो०—व्यष्टि ते समष्टि जुरहि समष्टि सोई आदिशक्ति कहाय ।
ज्यों ज्यों चिंतहि जीव चित सोई सब प्रकृति अनुसराय ॥४८॥

व्याख्या — व्यष्टि से समष्टि जुड़ी हुई रहती है और समष्टि ही आदिशक्ति कहलाती है, इसलिए जीव जो जो चिन्तन करता है, प्रकृति शक्ति भी उसी का अनुसरण करती है ।

क्षण माझ मुनि समझा सब खेला । भावमय जगत हंस अकेला ॥
असि समझि मुनि मन माहीं । करि अनुराग ध्यान दृढ़ाहीं ॥

व्याख्या – क्षण भर में मुनि ने अपने हृदय में समझ लिया कि यह समस्त जगत भावों के अनुसार ही दिखाई दे रहा है, वास्तव में तो आत्मा रूपी हंस तो अकेला ही है। ऐसा समझ कर मुनि ने अनुराग के भाव पैदा करके दृढ़ता से ध्यान लगा लिया ।

मन्त्र धुनि अरु मकरतारा । भयउ एक जसि वाद्यइकतारा ॥
मकर तार धुनि मधुर सुहाई । मन कुरंग सो धुनि वश आई ॥

व्याख्या – ध्यान की दृढ़ता में मन्त्र की ध्वनि और मकर तार की ध्वनि एकतारा वाद्ययन्त्र की तरह एक हो गई । मकर तार की ध्वनि बहुत मधुर होने के कारण मन रूपी हिरण वश में आ गया ।

मन थिर विगत जग भावा । महा भाव अवस्था तब आवा ॥
मकर तार मुनि चढ़ा अगारी । पंचम स्वर भयी अवस्था प्यारी ॥

व्याख्या – मन के स्थिर हो जाने से सांसारिक भाव मिट गए तथा महाभाव की अवस्था आ गई । अब मुनि मकर तार पर आगे चढ़ गया, जिससे पंचम स्वर की प्रिय अवस्था आ गयी ।

द्वार दया तहँ परइ खुलाई । बोलहिं गूँगा बिनु शब्दाई ॥
बिनु वाणी तब होत बतकाई । मुदित मुनि मन मन मुसकाई ॥

व्याख्या – उस अवस्था (पंचम स्वर) में दया का द्वार खुल गया और गूँगा बिना शब्दों के ही बोलने लग गया । उस समय बिना वाणी के ही बात होने लगी, जिससे मुनि प्रसन्न होकर मन ही मन मुस्कराने लग गया ।

दो०–आत्मा अब परमात्मा भयी व्यष्टि समष्टि भाव मिलाय ।
तेज पुँज अद्‌भुत भया बालरूप गयेउ तब प्रगटाय ॥४९॥

व्याख्या – उस अवस्था में आत्मा ही परमात्मा हो गयी, जिससे व्यष्टि का भाव समष्टि के भाव में लीन हो गया और तेज पुँज बनकर बालक का रूप प्रकट हो गया।

अद्‌भुत शोभा बरनिन जाई । जलधि जलज जसि अलगाई ॥
मुनि मन भ्रमर गयउ लुभाई । गुण गोतीत अवस्था पाई ॥

व्याख्या – उस अद्‌भुत शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता है । वह अवस्था तो समुद्र में कमल के रहने के समान थी । मुनि का मन रूपी भँवरा अब लुभा गया, जिससे गुण व इन्द्रियों से परे की अवस्था प्राप्त हो गयी ।

भयउ चकित मुनि रूप बिलोकि । पेखहिं एकटक प्राण गति रोकि ॥
प्रकाश पुँज झिलमिल कीन्हा । निमिष बाल रूप नाना लीन्हा ॥

व्याख्या – बालक के रूप को देखकर मुनि मार्कण्डेय आश्चर्यचकित हो गया तथा एकटक लगाकर देखने लगा, जिससे प्राणों की गति रुक गयी। फिर अचानक प्रकाश पुँज झिलमिला उठा और क्षणभर में बालक ने नाना रूप धारण कर लिये।

कबहुँ बालक अति विस्तराई। जल थल नभ गयउ समाई ॥
सिन्धु माझ कबहुँ क्रीड़ा कराई। कबहुँ कमल सुमन लिटाई ॥

व्याख्या – उस समय बालक कभी अपना विस्तार करने लगा, जिससे वह जल, थल व आकाश में समा गया तथा कभी सागर में क्रीड़ा करने लगा, तो कभी कमल के फूल पर लेटा हुआ दिखाई पड़ने लगा।

कबहुँ भयउ दैत्य आकारा। काल बनि भक्षहहिं जग सारा ॥
बालक करत कबहुँ रुदनाई। कबहुँ खेलत कबहुँ सुद नाई ॥

व्याख्या – कभी वह बालक दैत्याकार हो गया, तो कभी काल बन कर संसार का भक्षण करने लगा। कभी बालक रोने लगता तो कभी खेलने लगता और कभी सुध बुध ही भूल जा रहा था।

दो०–निमिष निमिष रूप बदलहिं निमिष निमिष मुनि अचरज बढ़ाय।
आदि अन्त किछु दिखत नहिं मुनि अब किछु समझ न पाय ॥५०॥

व्याख्या – बालक क्षण-क्षण में रूप बदलने लगा, जिससे प्रतिक्षण मुनि का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। मुनि को बालक का आदि व अन्त कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण एकाविंशति पड़ाव ॥

कबहुँ बिराट कबहुँ सूच्छम होई। कबहुँ लीन कबहुँ प्रकट सोई ॥
प्रकाश पुँज सम कोटि दिवाकर। देखत मुनि सब अचरज कर ॥

व्याख्या – कभी बालक बहुत बड़ा हो जा रहा था, तो कभी बहुत सूक्ष्म हो जा रहा था। कभी बालक अदृश्य तो कभी प्रकट हो जा रहा था। उस प्रकाश पुँज का तेज सूर्य के स्तर का था, जिसे मुनि आश्चर्यपूर्वक देख रहा था।

सकल चराचर उदर दिखाई। कोटि ब्रह्माण्ड हृदय रहि समाई ॥
दिशा दस अरु वनस्पति सारी। अंग अंग देखहिं सृष्टि धारी ॥

व्याख्या – समस्त चराचर जगत बालक के पेट में दिखाई दिया तथा हृदय में कोटि ब्रह्माण्ड समाए हुए थे। दशों दिशाओं और समस्त वनस्पतियों को भी मुनि देखा तथा अंग अंग में बालक सृष्टि को धारण किये हुए था।

देखे लोक अनन्त मुनि ग्यानी। प्रति लोक बालकहि महिमा जानी ॥
मृत्यु लोक देखा चराचर सारा। प्रति घट समझा बाल पसारा ॥

व्याख्या – मुनि ने अनन्त लोक देखे तथा प्रत्येक लोक में बालक की ही महिमा दिखाई पड़ी। मृत्यु लोक में समस्त चराचर को देखकर मुनि को सर्वत्र बालक का ही विस्तार समझ में आया।

नाना देव बनि बालक प्रकटाई। पूजित नर नारी भाव अनुयाई ॥
होवत देखहिं जहँ सतसंगा। बालक हृदय उठत उमंगा ॥

व्याख्या – मृत्युलोक में बालक ने नाना देवताओं का रूप धारण कर लिया, जिसकी स्त्री व पुरुष पूजा कर रहे थे। जहाँ जहाँ बालक को सत्संग दिखाई दे रहा था, वहाँ उसके हृदय से उमंग उठ रही थी।

दो०–दया दान करुणा सहयोग, बिलोकितहँ बालक अति हरषाय।
काम क्रोध मद मत्सर देखि तहाँ दुखित रुदन कराय ॥५१॥

व्याख्या – दया, दान, करुणा व सहयोग के भावों को देखकर बालक बहुत हर्षित हो रहा था तथा काम, कोध, मद व सत्सर के भावों को देखकर दुखित होकर बालक रो रहा था।

नाना भाँति मृत्यु लोक बिलोका। कहीं अति सुख कहीं अति शोका ॥
धनद दरिद्र सकल दुःखी पाई। दुःखी राजा प्रजा सब लोक लुगाई ॥

व्याख्या – नाना प्रकार से मृत्यु लोक को देखा जिसमें कहीं तो बहुत सुख था तथा कहीं बहुत दुःख था। गरीब व अमीर सभी दुःखी थे तथा राजा-प्रजा व सब स्त्री-पुरुष दुःखी मिले।

देखे प्रसन्न सन्त समुदाई। लोभ लालसा तिन्ह हृदय नांई ॥
मिले सुखी सब भगति रत प्राणी। सपनेउ नहिं भाव अभिमानी ॥

व्याख्या – मृत्यु लोक में सन्त समुदायों को प्रसन्न देखा जिनके हृदय में लोभ व लालच नहीं था। भक्ति रत प्राणी भी सुखी मिले जो सपने में भी अभिमान नहीं करते थे।

तजि मृत्यु लोक चले मुनिराई। असुर लोक पहुँचहहिं जाई ॥
असुर लोक भयंकर सुहाई। देखि निसाचर अति भय पाई ॥

व्याख्या – मृत्युलोक को छोड़कर मुनि अब असुर लोक में पहुँच गया। असुर लोक बहुत भयंकर था, जिसमें असुरों को देखकर मुनि भयभीत हो गया।

नाना रूपा तहँ असुर रहाई। काम क्रोध मदादि लोभ सबाई ॥
मारकाट तहँ रहइ मचाई। घृणा कटुता दुर्गन्ध चलाई ॥

व्याख्या – वहाँ नाना प्रकार के असुरों को देखा जिनमें काम, क्रोध, मद, लोभ आदि सभी थे। उस लोक में मारकाट मच रही थी तथा कटुता व घृणा की

दुर्गन्ध बह रही थी ।

बालक तहँ भयंकर रूप धराई । करत स्तुति असुर सबाई ॥
देत असीस भाव अनुसारी । बिलोकि इहँ मुनि अचरज भारी ॥

व्याख्या – बालक ने असुर लोक में भयंकर रूप धारण कर लिया और असुर स्तुति करने लगा और बालक भावों के अनुसार आशीर्वाद देने लगा । इसे देखकर मुनि को बहुत आश्चर्य होने लगा ।

दो०– असुर लोक तजि मुनि अब बालक संग अमरपुर कीन्ह प्रस्थान ।
मन्द सुगन्ध व्यार बहत तहँ आसरा करहहिं नाना नृत्य गान ॥५२॥

व्याख्या – मुनि अब बालक के साथ असुर लोक को छोड़ कर देवलोक के लिए चले गए । जहाँ मन्द-सुगन्ध हवा बह रही थी तथा अप्सराएँ नाना प्रकार के नृत्य व गान कर रही थी ।

सिंहासन बैठहिं बालक जाई । कर जोरि खड़े इन्द्रादि देव सबाई ॥
स्तुति करत बिलोकहिं देवा । विधि हरि हर करत सब सेवा ॥

व्याख्या – देव लोक में जाकर बालक सिंहासन पर बैठ गया और इन्द्रआदि सभी देवता हाथ जोड़कर खड़े हो गए । मुनि ने सभी देवताओं को बालक की सेवा करते हुए देखा ।

भोग सकल अप्सरा नचाई । नाना सुख साधन मन ललचाई ॥
सकल देव बालक रहे मनाई । बालरूप तहँ दिव्यता झलकाई ॥

व्याख्या – देव लोक में सब प्रकार के भोग थे तथा अप्सराएँ नृत्य कर रही थी। नाना प्रकार के सुखों को देखकर मन ललचा रहा था । समस्त देव बालक को प्रसन्न कर रहे थे तथा वहाँ बालक रूप की दिव्यता प्रकट हो रही थी ।

देवलोक नाना महिमा देखी । सब भाँति अलौकिक जाइ न लेखी ॥
मुनि मन भयउ अचरज भारी । सुर लोक तजि अब चले आगारी ॥

व्याख्या – देवलोक की नाना प्रकार की महिमा को देखा जो सब प्रकार से अलौकिक थी अतः उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । मुनि को बहुत आश्चर्य हो रहा था । जब मुनि देवलोक को छोड़कर आगे चल दिए।

पहुँचे बालक मुनि विष्णु लोका । परम शान्त विगत सब शोका ॥
लय लाई जपत विष्णु प्रभु नामा । भए मुद्रित देखि बाल सुखधामा ॥

व्याख्या – अब मुनि बालक के साथ विष्णु के लोक में पहुँच गए जो परमशान्त व समस्त शोकों से रहित था । वहाँ पर विष्णु लय लगाकर परमपिता के नाम

का जप कर रहे थे । सुख के घर बालक को देखकर विष्णु बहुत प्रसन्न हुए ।

अंक लेन बालक विष्णु ध्याई । अद्‌भुत लीला छुआ न जाई ॥
गदगद गिरा स्तुति तब गाई । भाव विभोर नयन नीर बहाई ॥

व्याख्या – बालक को अपनी गोदी में लेने के लिए विष्णु दौड़ा परन्तु अद्‌भुत लीला हुई कि विष्णु बालक को छू नहीं पा रहे थे । तब भाव विभोर होकर गदगद वाणी में विष्णु स्तुति करने लगे तथा उस समय आँखों से अश्रुओं की धारा बह रही थी।

॥ विष्णु द्वारा परमात्मा के बाल रूप की स्तुति ॥

दो०–नाम न रूप नाथ तुम्हारा तुम्हहिं नाथ तुम्हार समान ।
सब भाँति अब शरण तिहारी करहउ प्रभु मोर कल्यान ॥५३॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आपका न कोई नाम है और न कोई रूप ही होता है । आपके समान तो प्रभु आप ही होते हैं । इसलिए मैं तो अब सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ । आप मेरा कल्याण कीजिए ।

जय अनन्त सचराचर स्वामी । जय सर्वग्य अन्तरयामी ॥
जय कृपाल परमहितकारी । द्रवहउ नाथ शरण तिहारी ॥

व्याख्या – हे अनन्त, हे चराचर के स्वामी ! आपकी जय हो । हे सर्वज्ञ व अन्तर्यामी ! आपकी जय हो । हे कृपाल व परमहितकारी ! आपकी जय हो। आप द्रवित हुजिए, मैं आपकी शरण में हूँ ।

जय अखण्ड एकरस स्वामी । जय भगवंत दयावंत अनामी ॥
जय करुणाकर करुणा धामा । जय परमेश्वर सब सुखधामा ॥

व्याख्या – हे अखण्ड व एक रस प्रभु ! आपकी जय हो । हे भगवंत व दयावान प्रभु ! आपकी जय हो । हे करुणा करने वाले व करुणा के घर ! आपकी जय हो। हे परमेश्वर व सब सुखों के धाम प्रभु ! आपकी जय हो ।

जय प्रणतपाल चराचर नायक । जय दीनबन्धु दीनन सहायक ॥
जय निरञ्जन नाथ निरंकारी । जय सर्वेश्वर सर्व सृष्टि धारी ॥

व्याख्या – हे प्रणतपाल व चराचर के स्वामी ! आपकी जय हो । हे दीनबन्धु व दीनों के सहायक प्रभु ! आपकी जय हो । हे निरञ्जन व निरंकारी प्रभु ! आपकी जय हो । हे सर्वेश्वर व सृष्टि को धारण करनेवाले प्रभु ! आपकी जय हो ।

जय माता पति तुम माया पारा । मोहित देवन्ह सह जग सारा ।
आदि अन्त नहिं नाथ तुम्हारा । तुम्हहिं जानइ मरम तुम्हारा ॥

व्याख्या – हे मायापति प्रभु ! आप तो माया से परे हैं और देवताओं सहित

समस्त संसार आपसे मोहित हो रहा है। हे प्रभु ! आपका आदि व अन्त कुछ भी नहीं है तथा आप ही आपके रहस्य को जानते हैं।

जय भव तारक भव नाथा। बारम्बार नवावहउँ माथा ॥
दयानाथ अब मोहि पर कीजै। भगति अनयायनी अब मोहि दीजै ॥

व्याख्या – हे भव सागर को पार कराने वाले भावों के स्वामी ! मैं आपको बार-बार सीस झुकाता हूँ। हे नाथ ! अब आप मुझ पर दया कीजिए तथा मुझे आपकी अनपायनी भक्ति दीजिए।

एवमस्तु कहहिं भए अन्तर्ध्याना। शिव लोक तब कीन्ह प्रस्थाना ॥
उमा संग शिव बैठहहिं तहाँ। बाल रूप पुनि भयउ प्रकट वहाँ ॥

व्याख्या – ''ऐसा ही होगा'' विष्णु को ऐसा वरदान देकर बालक ने शिवलोक के लिए प्रस्थान कर दिया। शिव लोक में शिवजी पार्वती के साथ बैठे हुए थे। वहाँ पर पुनः बालक रूप में प्रकट हो गया।

दो०–अद्‌भुत छटा शिवलोक की मुनि देखि अति हरषाय।
मन्द सुगन्ध पवन चलहहिं तहँ चहुँदिसि रहइ शान्ति छाय ॥ ५४ ॥

व्याख्या – मुनि शिवलोक की अद्‌भुत छटा को देखकर बहुत हर्षित हुआ। वहाँ पर मन्द-मन्द सुगन्धित हवा चल रही थी तथा चारों तरफ को परमशान्ति छायी हुई थी।

देखि अद्‌भुत बालक रूपा। शिव पायहउ आनन्द अनूपा ॥
उमा बिलोकहिं अचरज संगा। मन मुदित हृदय उमंगा ॥

व्याख्या – अद्‌भुत बालक के रूप को देखकर शिव को परम आनन्द हुआ तथा पार्वती भी आश्चर्य के साथ बालक को देख रही थी तथा हृदय में उमंग और मन में प्रसन्नता थी।

गदगद गिरा उभय कर जोरि। करहहिं स्तुति बालक निहोरि ॥

व्याख्या – दोनों शिव और पार्वती हाथ जोड़कर गदगद वाणी में बालक की स्तुति करने लगे।

''शिव द्वारा परमात्मा की स्तुति''

जय कृपा सिन्धु करुणायतनं। जय भगवन्त परमानन्दम् ॥
जय भवेश भव तारकम्। जय विभूम् भगत उद्यारकम् ॥

व्याख्या – हे कृपा सिन्धु व करुणा के घर प्रभु ! आपकी जय हो। हे भगवन्त व परमानन्द प्रभु ! आपकी जय हो। हे भावों के ईश्वर व भावों से पार कराने वाले! आपकी जय हो। हे विभू व भक्तों के उद्यार करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो।

जय सृष्टि कर्ता जग पालकम् । जय अघारी सब अघनाशकम् ॥
जय असीम अगाध अनन्तम् । जय दीनबन्धु दयावन्तम् ॥

व्याख्या – हे सृष्टि के कर्ता व जगत का पालन करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे अघारी ! आपकी जय हो । आप सब पापों का नाश करने वाले हैं । हे असीम, अगाध व अनन्त प्रभु ! आपकी जय हो । हे दीनबन्धु व दयावान प्रभु! आपकी जय हो ।

जय ज्योतिर्मयम तम नाशकम् । जय कोटि दिवाकर सम प्रकाशकम् ॥
जय असुरारि माया निवारकम् । जय अखण्ड ब्रह्माण्ड धारकम् ॥

व्याख्या – हे ज्योतिर्मय प्रभु ! आपकी जय हो । आप अन्धकार का नाश करने वाले हैं । हे प्रभु ! आपकी जय हो । आप सूर्य के समान प्रकाश करने वाले हैं। हे असुरारि ! आपकी जय हो । आप माया का नाश करने वाले हैं । हे अखण्ड व ब्रह्माण्ड को धारण करने वो प्रभु ! आपकी जय हो ।

जय अकथ घट घट वासितम् । जय अनुभव गम्य ध्यान भासितम् ॥
जय निरञ्जन निरविकारम् । जय जगतपति नाम रूप पारम् ॥

व्याख्या – हे अकथनीय व घट-घट में निवास करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे अनुभव गम्य व ध्यान में आभासित होने वाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे निरञ्जन व निर्विकारी प्रभु ! आपकी जय हो । हे जगतपति ! आपकी जय हो । आप तो नाम व रूप से परे हैं ।

त्वमेव माता पिता च बन्धुसखां । त्वमेव गुरु च ग्यानं रक्षमाम् ॥
प्रसीद भव नाथं प्रसीद भवं । अहम् त्वमेव शरणं त्वम मम् सर्वम् ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आप ही मेरे माता पिता बन्धु व सखा हैं तथा आप ही मेरे गुरु हैं और आप ही ज्ञान हैं । आप मेरी रक्षा कीजिए । हे नाथ ! प्रसन्न हुजिए, प्रसन्न हुजिए । मैं आपकी शरण में हूँ । हे प्रभु ! आप ही मेरे सब कुछ हैं ।

दो०–स्तुति करि गदगद भयउ शिव नयन बहुत जलधार ।
सुमन वृष्टि नभ होन लगी चहुँदिसि भयी जय जयकार ॥ ५५ ॥

व्याख्या – स्तुति करके शिव गदगद हो गए तथा आँखों से आँसुओं की धारा बहने लग गयी थी । उस समय आकाश से फूलों की वर्षा होने लग गयी थी। उस समय आकाश से फूलों की वर्षा होने लग गयी तथा चारों तरफ जय जयकार गूँज उठा।

भगति निष्काम दम्पति दीन्ही । प्रस्थान पुनि तहाँ ते कीन्ही ॥
बालक तब ब्रह्म लोक पिछाई । लिभेउ जात तहँ मुनिराई ॥

व्याख्या – शिव व पार्वती को निष्काम भक्ति का वर देकर बालक ने शिव लोक से प्रस्थान कर दिया और मुनि को साथ लेकर ब्रह्मलोक में चला गया ।

ब्रह्म लोक देखा चकित मुनिराई । सृष्टि उत्पत्ति मरम बुझाई ॥
बीज एक जद्यपि जीव अनेका । समझा मुनि हृदय करि विवेका ॥

व्याख्या – मुनि ने आश्चर्य चकित होकर ब्रह्मलोक को देखा और सृष्टि की उत्पत्ति के रहस्य को समझ लिया । वहाँ बीज तो एक ही था परन्तु जीव अनेक पैदा हो रहे थे । मुनि ने अपने हृदय में विवेक करके ये सब समझ लिया था।

प्रकाश पुँज बालक प्रकटाई । बिलोकि ब्रह्म अति हरषाई ॥
दोउ करि जोरि ब्रह्म भए ठाढ़े । पुलकित गात प्रेम अति बाढ़े ॥

व्याख्या – प्रकाश पुँज बन कर बालक प्रकट हो गए जिसे देखकर ब्रह्म को बहुत हर्ष हुआ । तब ब्रह्मा जी दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए तथा अंग अंग पुलकित हो उठे और प्रेम बढ़ने लग गया ।

उभय नयन जलधार बहाई । दशा सुखद सो बरनिन जाई ॥
पुलकित गात मुख नहिं बानी । गदगद गिरा अब स्तुति ठानी ॥

व्याख्या – दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी । वह अवस्था बहुत ही सुखद थी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । ब्रह्मा के अंग-अंग पुलकित हो रहे थे तथा मुख में वाणी नहीं आ पा रही थी । तब गदगद वाणी से ब्रह्माजी स्तुति करने लगे ।

॥ ब्रह्माजी द्वारा परमपिता की स्तुति ॥

दो०–अखण्ड अखिलेश्वर परमपितु नाम रूप उभय उपाधि पार ।
भाव मूल भाव वश नाथ तुम इहँ लीला अपरम्पार तुम्हार ॥५६॥

व्याख्या – हे अखण्ड, अखिलेश्वर परमपिता ! आप तो नाम व रूप की दोनों उपाधियों से परे हैं । आप तो भावों के मूल व भावों के वश में रहते हैं । आपकी यह लीला अपरम्पार है ।

जय अनाम अरूप अखण्डम् । जय पारब्रह्म धारक ब्रह्माण्डम् ॥
जय अनन्त जय निरञ्जनम् । जय ऋषि मुनि मन रञ्जनम् ॥

व्याख्या – हे अनाम, अरूप व अखण्ड प्रभु ! आपकी जय हो । हे पार ब्रह्म ! आपकी जय हो । आप तो ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले हैं । हे अनन्त ! आपकी जय हो । हे निरञ्जन ! आपकी जय हो । हे ऋषि-मुनियों के मन में रमन करने वाले! आपकी जय हो ।

जय करुणाकर असुर निकन्दनं । जयति जय भगत उर चन्दनं ॥
जय नाथभव दुःख भञ्जनम् । जय भगत रक्षकम् सुख पुँजम् ॥

व्याख्या – हे करुणा करनेवाले व असुरों का नाश करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे भक्तों के मन को शीतल करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । हे भव सागर के दुःखों का नाश करने वाले ! आपकी जय हो । हे भक्तों के रक्षक व सुख के पुँज प्रभु ! आपकी जय हो ।

जय मंगलमूल मंगलायतनम् । जय जगतपति जगतायनम् ॥
जय पारब्रह्म सन्त रक्षकम् । जय भवपति भाव भक्षकम् ॥

व्याख्या – हे मंगल के मूल व मंगल के घर प्रभु ! आपकी जय हो । हे जगत के स्वामी व जगत के घर प्रभु ! आपकी जय हो । हे पारब्रह्म व सन्तों के रक्षक प्रभु ! आपकी जय हो । हे भावों के स्वामी व भावों का आहार करने वाले प्रभु! आपकी जय हो।

रक्षमाम् रक्षमाम् मोहि नाथम् । तव शरणम् देउ भक्ति निष्कामं ॥
अहम् त्वमेव शरणं त्वमेव शरणं । प्रसीद भवं मम हृदय करु वासम् ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । मैं आपकी शरण में हूँ अतः मुझे निष्काम भक्ति दीजिए । मैं आपकी शरण में हूँ, मैं आपके शरण में हूँ । हे प्रभु ! आप प्रसन्न हुजिए और मेरे हृदय में निवास कीजिए ।

दो०–निर्मल मन स्तुति सुनि तेज पुँज बालक अति हरषाय ।
एवमस्तु एवमस्तु कहहिं तजि ब्रह्म लोक बालक चलाय ॥५७॥

व्याख्या – ब्रह्माजी द्वारा निर्मल मन से की गई स्तुति को सुनकर तेज पुँज बालक बहुत प्रसन्न हुआ और ''ऐसा ही होगा'' ''ऐसा ही होगा'' कहकर बालक ब्रह्मलोक को छोड़कर चल दिये ।

बालक गयउ तब शक्ति लोका । परम रम्य विगत सब शोका ॥
शक्ति लोक शोभा बरनिन जाई । जगमग जगमग ज्योति जलाई ॥

व्याख्या – तब बालक शक्ति के लोक में पहुँच गया । शक्ति लोक परम रम्य था तथा समस्त दुःखों से मुक्त था । शक्ति के लोक की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता है । वहाँ जगमग जगमग ज्योति जल रही थी ।

आदि अन्त किछु जानिन पाई । मुनि अचरज बहुरि सुहाई ॥
जोग जोगिनी करहिं सेवकाई । सुर असुर उभय स्तुति गाई ॥

व्याख्या – मुनि को बहुत आश्चर्य हो रहा था क्योंकि शक्ति के आदि व अन्त का कुछ भी पता नहीं चल रहा था । योग-योगिनियाँ सेवा कर रही थी तथा

देवता व असुर सभी शक्ति की स्तुति कर रहे थे ।

विधि हरि हर सह सब देवा । गावत स्तुति करहिं सेवा ॥
चित माझ सकल जग लुकाई । महिमा शक्ति अपार सुहाई ॥

व्याख्या – ब्रह्मा, विष्णु व शिव सहित सभी देवता स्तुति कर रहे थे और सब सेवा कर रहे थे । शक्ति के चित में समस्त जगत छुपा हुआ था । अतः शक्ति की अपार महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

सकल जगत संचालक होई । परम पुरुष वधु शक्ति सोई ॥
कर्म फल इहाँ होई हिसाबा । सुख दुख मिलहिं भाव ख्वाबा ॥

व्याख्या – परम पुरुष की नारी (वधु) ही आदि शक्ति होती है, जो समस्त जगत को संचालन करती रहती है । कर्म के फलों का हिसाब यहाँ पर होता है तथा भावों की इच्छा अनुसार जीव को सुख-दुःख मिलते रहते हैं ।

दो०–उत्पत्ति स्थिति संहारिणि आदिशक्ति सब विधिमहान ।
जस चिन्तहि तस करहि इहँ अद्‌भुत पालहिं विधि विधान ॥५८॥

व्याख्या – आदिशक्ति सब प्रकार से महान है क्योंकि वह आदि जगत की उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता और संहार करने वाली होती है । जैसा चिन्तन किया जाता है वह वैसा ही करती रहती है । वह शक्ति इस अद्‌भुत विधि (क्रिया) के विधान का पालन करती है ।

भल करहिं भल पावहिं जेहि । मन्द करत फल मन्दहि लेहि ॥
सकल जीव इहाँ लेख सुहाई । नहिं कोउ जग जो सके छुपाई ॥

व्याख्या – जो अच्छा करते हैं, उन्हें अच्छा ही फल मिलता है और जो बुरा करते हैं, उनको बुरा ही फल मिलता है । समस्त जीवों का लेखा शक्ति लोक में रहता है, इसलिए संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो अपने किए को छुपा सके ।

सकल वृति इहाँ मूल सुहाए । मूल वृति पुनि प्रति जीव जुराए ॥
वृति अनुसार चलहिं विधाना । भलि भाँति मुनि अब इहँ जाना ॥

व्याख्या – समस्त वृतियों का मूल शक्ति लोक में होता है जिससे जीवों की वृतियाँ जुड़ी हुई रहती है । वृति के अनुसार ही विधि का विधान चलता है । अब इस रहस्य को मुनि ने अपने हृदय में अच्छी प्रकार से समझ लिया ।

जन्म मरण इहाँ विधान रहाई । वृति अनुसार जीव सब पाई ॥
अद्‌भुत लोक गूढ़ मरमा । पालहिं शक्ति सहज धरमा ॥

व्याख्या – जन्म व मरण का विधान रहता है जो जीवों की वृतियों के अनुसार जीवों को फल देता रहता है । इस अद्‌भुत लोक का बहुत गूढ़ रहस्य होता है।

आदिशक्ति तो सहज धर्म का पालन करती है ।

शक्ति सकल विभूतिधारी । चिति रहइ रिद्धि सिद्धि सारी ॥
मुनि बिलोकहिं सहित अचम्बा । जाना हियँ सकल मूल जगदम्बा ॥

व्याख्या – आदि शक्ति समस्त विभूतियों को धारण करने वाली होती है तथा आदिशक्ति के चित की लहर में समस्त रिद्धि-सिद्धियाँ रहती है । मुनि ये सब आश्चर्यपूर्वक देख रहा था तथा आपके हृदय में समझ लिया कि माँ जगदम्बा ही समस्त जगत की मूल है ।

शक्ति लोक सब जग चलाई । भलिभाँति समझा इहँ मुनिराई ॥
बालक भयउ अब पुँज प्रकाशा । ज्योति ज्योति मिलहिं आकाशा ॥

व्याख्या – मुनि ने अपने हृदय में अच्छी तरह समझ लिया कि शक्ति लोक ही समस्त संसार का संचालन करता है । अब बालक प्रकाश का पुँज बन गया और ज्योति-ज्योति में मिल गयी ।

दो०–ज्योति अब गगन चढ़ी मुनि पहुँचाई अब परम लोक ।
अद्‌भुत छटा वा लोक की परमानन्द विगत सब शोक ॥ ५९ ॥

व्याख्या – प्रकाश पुँज बन कर ज्योति अब आकाश में चढ़ने लगी तथा उसके बल पर मुनि अब परमलोक में पहुँच गया । उस परमलोक की अद्‌भुत शोभा थी तथा परम आनन्द था तथा शोकरहित अवस्था थी ।

नयनन देखा कानन सुनाई । सोई सब पाया तहँ मुनिराई ॥
मन्द मन्द बहत सुगंध ब्यारी । दिव्य आसन बैठा पुरुष अघारी ॥

व्याख्या – जो मुनि ने कभी आँखों से देखा नहीं और कानों से सुना नहीं, वो सब मुनि ने परम लोक में देखा । धीरे-धीरे सुगन्धित हवा चल रही थी तथा माया रहित परमपुरुष वहाँ दिव्य आसन पर बैठा हुआ था ।

सन्त जन करहिं स्तुति नाना । करि दर्शन धन्य करि माना ॥
आवत जावत सन्त समुझाई । नर-नारी तहँ भेद किछु नांई ॥

व्याख्या – सन्त लोग नाना प्रकार से स्तुति कर रहे थे तथा दर्शन करके अपने-आपको धन्य करके मान रहे थे । सन्त जनों के समूह के समूह आ और जा रहे थे तथा वहाँ स्त्री व पुरुष का कोई भेद नहीं था ।

ठाढ़हहिं तहँ काल कर जोरि । परम पुरुष आयुस बाट निहोरि ॥
सुर ऋषि मुनि सब दिकूपाला । कहहिं जयति जय परम कृपाला ॥

व्याख्या – काल वहाँ पर दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हुआ था तथा परम पुरुष की आज्ञा का इंतजार कर रहा था । सभी देवता, ऋषि, मुनि व दिग्पाल परम

कृपाल प्रभु की जय जयकार कर रहे थे ।

अचरज सहित देखि मुनिराई । अलख पुरुष नाना रूप धराई ॥
कबहुँ दुर्गा अष्टभुजा धारी । कबहुँ करत ताण्डव त्रिपुरारी ॥

व्याख्या – आश्चर्य के साथ मुनि देख रहा था, तभी अलख पुरुष नाना रूप धारण करने लगा । कभी आठ भुजाधारी दुर्गा के रूप में दिखाई दिए, तो कभी त्रिपुरारि बनकर ताण्डव नृत्य करने लगे ।

दो०–कभी विष्णु कभी ब्रह्मा बनहिं कभी नाना देवी रूप धराय ।
कबहु सूच्छम कबहु बिराट भयउ कबहु चराचर बनि प्रगटाय ॥६०॥

व्याख्या – कभी परमपुरुष विष्णु बनकर, कभी ब्रह्मा बनकर, तो कभी नाना देवियों का रूप धारण करने लगा । कभी वह बहुत सूक्ष्म तो कभी विराट रूप धारण कर रहा था । कभी परमपुरुष चराचर के रूप में प्रकट दिखाई देने लगा।

निमिष निमिष रूप बदलाई । मुनि बिलोकि मन्द मन्द मुसकाई ॥
मुनि देखि सब आलौकिक करणी । व्यापक सर्वत्र गगन जल धरणी ॥

व्याख्या – क्षण-क्षण में अलख पुरुष रूप बदल रहे थे तथा मुनि को देख धीरे-धीरे मुस्करा रहे थे । मुनि ने सब प्रकार से आलौकिक करणी देखि तथा जल, थल व नभ में सब जगह व्यापक देखा ।

पुरुष प्रेरहिं शक्ति कराई । नारी बनि चित रहइ समाई ॥
पुरुष अलख जेहि प्रेरहहिं । शक्ति पलक झपक करहिं ॥

व्याख्या – अलख पुरुष जो भी प्रेरणा करते हैं उसे आदिशक्ति करती हैं तथा शक्ति परमपुरुष के चित में रहती है । जो जो भी अलख पुरुष प्रेरणा करते हैं, उसे आदि शक्ति पलक झपकते ही कर देती है ।

दृष्टा बनि पुरुष रहाई । आदि शक्ति हृदय बसाई ॥
देखि अलौकिक सब घटनाई । मुनि अचरज सीमा न रहाई ॥

व्याख्या – परम पुरुष दृष्टा बनकर रहते हैं और आदि शक्ति परमात्मा के हृदय में निवास करती है । इस प्रकार सब अलौकिक घटनाओं को देखकर मुनि के आश्चर्य की सीमा नहीं रही ।

सब भाँति हार थकेउ मुनि ग्यानी । दोउ कर जोर तब स्तुति ठानी ॥
गदगद गिरा नयन बह नीरा । प्रसन्न चित गावत मुनिधीरा ॥

व्याख्या – जब मुनि सब प्रकार से थक गया तब दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करने लगा । उस समय मुनि की वाणी गदगद हो रही थी तथा आँखों से जल की धारा बह रही थी और मुनि प्रसन्न चित होकर स्तुति गा रहा था ।

॥ मुनि मार्कण्डेय द्वारा स्तुति ॥

दो०–तुम्हार बल प्रभु जग चलहहिं तुम्हार बल ही शक्ति विधान चलाय।
क्षमा करहउ नाथ मोहि अब विधि शरण परउँ मैं आय ॥६१॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आपके बल से ही समस्त संसार चल रहा है तथा आपके बल से ही प्रकृति विधि के विधान को चलाती है । अतः हे नाथ ! अब आप मुझे क्षमा कर दीजिए क्योंकि अब मैं सब प्रकार से आपकी शरण में आ गया हूँ ।

जय भगवत अनंत दया सागरं । जय करुणाकर सब गुण आगरं ॥
त्वम एकम नतोदह अन्यम् । त्वमेव शरणं करोति धन्यम् ॥

व्याख्या – हे भगवन, अनन्त व दया के सागर प्रभु ! आपकी जय हो । हे करुणाकर व सब गुणों के मूल प्रभु ! आपकी जय हो । हे प्रभु ! आप एक ही हैं और आपके अलावा दूसरा कोई नहीं है । आपकी शरण लेने पर जीव धन्य हो जाता है ।

त्वम् विधि हरि हरं सर्व देवम् । भगत रक्षाम् त्वमेव नेमम् ।
त्वम् भावमूलम् भाव स्वरूपम् । जग मोहितं त्वमेव रूप अनुपम ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आप ही ब्रह्मा, विष्णु व महेश आदि सब देवता हैं तथा भक्तों की रक्षा करना ही आपका नियम है । हे प्रभु ! आप भावों के मूल व भावों के स्वरूप हैं । हे प्रभु ! आपके अनुपम रूप को देखकर समस्त संसार मोहित हो रहा है ।

त्वमेव मरमं नाथं अति गूढ़म् । नतोऽह जानन्ति जीव मूढ़म् ॥
जय नाथं कामादि असुर नाशकं । जय महेश महाऐश्वर्य धारकं ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आपका रहस्य तो बहुत गूढ़ होता है जिसे मूर्ख जीव नहीं जान पाते हैं । हे नाथ ! आप तो काम आदि असुरों का नाश करने वाले हैं। हे महेश ! आपकी जय हो । आप तो महान ऐश्वर्य को धारण करने वाले हैं।

जय निरञ्कार च सर्वाकारम् । जय गुणमूलम् च गुणपारम् ॥
रक्षमाम् रक्षमाम् नाथ दयालं । प्रसीद भव प्रसीद भव कृपालं ॥

व्याख्या – हे निरञ्कार व सर्व आकारों में व्यापक प्रभु ! आपकी जय हो। हे गुणों के मूल व गुणों से परे प्रभु ! आपकी जय हो । हे दयाल ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । हे कृपालु ! आप प्रसन्न हुजिए, प्रसन्न हुजिए ।

दो०–भाव विभोर स्तुति करत मुनि हृदय उमंग अपार।
श्रद्धा सिन्धु उमड़ उठहहिं अब झरत गगन आनन्द फुहार ॥६२॥

व्याख्या – भावों में विभोर होकर स्तुति करने से मुनि के हृदय में उमंग उठके लग गई तथा श्रद्धा रूपी समुद्र उमड़ उठा जिससे गगन मण्डल से आनन्द की

वर्षा होने लग गयी ।

महाभाव मुनि कीन्ह प्रवेशा । मिटहिं तुरत सकल क्लेशा ॥
परमानन्द मुनि हृदय उमगाई । भयउ नीर माया हिम पिघलाई ॥

व्याख्या – मुनि तब महाभाव की अवस्था में प्रवेश कर गया और तुरन्त समस्त क्लेशों का नाश हो गया । मुनि के हृदय में परमात्मा छा गया जिससे माया रूपी बर्फ पिघलकर ब्रह्म रूपी जल बन गयी ।

अंशी अंश उभय भयउ ऐका । उमगा हृदय परम विवेका ॥
मुनि पायउ तब निज सरूपा । अकथ अगाध परम अनूपा ॥

व्याख्या – तब अंशी और अंश मिलकर एक हो गए जिससे मुनि के हृदय में परम विवेक पैदा हो गया । उस समय मुनि ने अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर लिया, जो अकथनीय, अगाध व परम अनुपम था ।

बाल रूप हृदय गयउ समाई । सहज परम संतोष मिलाई ॥
सकल विभूति मुनि तब पाई । निज सरूप जो रहइ छुपाई ॥

व्याख्या – उस समय मुनि के हृदय में बाल स्वरूप समा गया जिससे परम संतोष की प्राप्ति हो गयी । जिससे मुनि ने समस्त विभूतियों को प्राप्त कर लिया जो उसके सहज स्वरूप में छुपी हुई थी ।

मुनि हृदय भा ग्यान प्रकाशा । टूटहिं ध्यान सहज आभासा ॥
ऐहि विधि मुनि परम पद पाई । ध्यान माझ सब मरम बुझाई ॥

व्याख्या – मुनि के हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया जिससे ध्यान टूट गया और सहजता का अनुभव हो गया । इस प्रकार मुनि मार्कण्डेय ने परमपद को प्राप्त कर लिया था तथा ध्यान के द्वारा समस्त रहस्यों को जान लिया।

मुनि हियँ समझा सब ग्याना । प्रकृति शक्ति मातु करि माना ॥
परमपुरुष चित शक्ति निवासा । अनुभव करि कीन्ह विश्वासा ॥

व्याख्या – मुनि ने अपने हृदय में सब प्रकार ज्ञान को समझ लिया था तथा प्रकृति शक्ति को माता जगदम्बा मान लिया था । मुनि ने अनुभव करके यह दृढ़ विश्वास कर लिया था कि परमपिता के चित में आदिशक्ति का निवास होता है ।

दो०–सुनि गुनि जे अनुसरहिं ते जनु पावहिं सहज पद निर्वाण ।
विज्ञान सम्मत इहँ मत करइब धर्म अर्थ काम मोच्छ प्रदान ॥ ६३॥

व्याख्या – इस संवाद को जो लोग सुनकर व समझकर अनुसरण करेंगे, उन्हें सहज में निर्वाण के पद की प्राप्ति हो जायेगी । क्योंकि यह विज्ञान आधारित ज्ञान है, जो धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देने वाला है ।

छ०–इहँ संवाद अतिपावन विग्यानमय मन सकल कल्मष हरहहिं ।
श्रद्धा सह सुनि जे अनुसरहहिं ते बिनु श्रम भव सागर तरहहिं ॥
मिलहहिं भगति द्रवहहिं शक्ति सुनत जय रूप यश वैभव मिलहहिं ।
कहत लक्ष्मीनारायण इहँ सुख दायन गुरु कृपा निज हियँ समझहहिं ॥

व्याख्या – यह कथा बहुत ही पवित्र व विज्ञान पर आधारित है तथा मन के समस्त विकारों को मिटाने वाली है । जो लोग श्रद्धापूर्वक इसे सुनकर अनुसरण करते हैं, वे बिना परिश्रम के ही भवसागर पार हो जाते हैं । इस कथा को सुनने से भक्ति की प्राप्ति हो जाती है तथा आदिशक्ति द्रवित होकर कृपा कर देती है, जिससे जय, रूप, यश व वैभव की प्राप्ति हो जाती है । लक्ष्मीनारायण कहते हैं कि यह कथा सुख देने वाली है इसे गुरु कृपा से स्वयं के हृदय में समझा जा सकता है ।

नवरात्र जे करइब पाठा । होइब अनुकूल प्रकृति आठा ॥
नित्य जे जनु पाठ कराई । सहजहिं विपद सब कटाई ॥

व्याख्या – नवरात्रि में जो लोग इसका पाठ करेंगे, उनके आठों प्रकार की प्रकृति अनुकूल हो जायेगी और जो लोग नित्य पाठ करेंगे, उनकी समस्त विपदाएँ सहज में दूर हो जायेगी ।

नियम मानि करहिं अनुष्ठाना । ते जनु पाइब जग वैभव नाना ॥
देइब फल इहँ भाव अनुसारी । करइ न भेद ऊँच नीच नर नारी ॥

व्याख्या – जो लोग नियम मानकर इस कथा का अनुष्ठान करेंगे, उन्हें संसार में नाना प्रकार के वैभव प्राप्त हो जायेंगे । यह पवित्र कथा भाव के अनुसार फल देने वाली है तथा ऊँच नीच व स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं करती है ।

करि पाठ जेवाँवइ कन्या चारी । मिलहिं तिन्ह गृह शान्ति अपारी ॥
नौ जेवाँवइ कन्या पाठ कराई । तिन्हहिं मातु शक्ति कृपा मिलाई ॥

व्याख्या – जो लोग पाठ करके चार कन्याओं को भोजन कराते हैं उनके घर में अपार शान्ति मिल जाती है तथा पाठ कराकर नौ कन्याओं को भोजन कराने से माता आदिशक्ति की कृपा मिल जाती है ।

गुरु मुख इहँ संवाद सुनाई । यश अपार भगति मिलाई ॥
पाठ कराइ जे आचमन लेहि । भूत पिशाच सतावइ न सेहि ॥

व्याख्या – गुरु के मुख से इस संवाद को सुनने से अपार यश व भक्ति की प्राप्ति हो जाती है तथा जो पाठ करके आचमन लेते हैं, उन्हें भूत व पिशाच नहीं सताते हैं ।

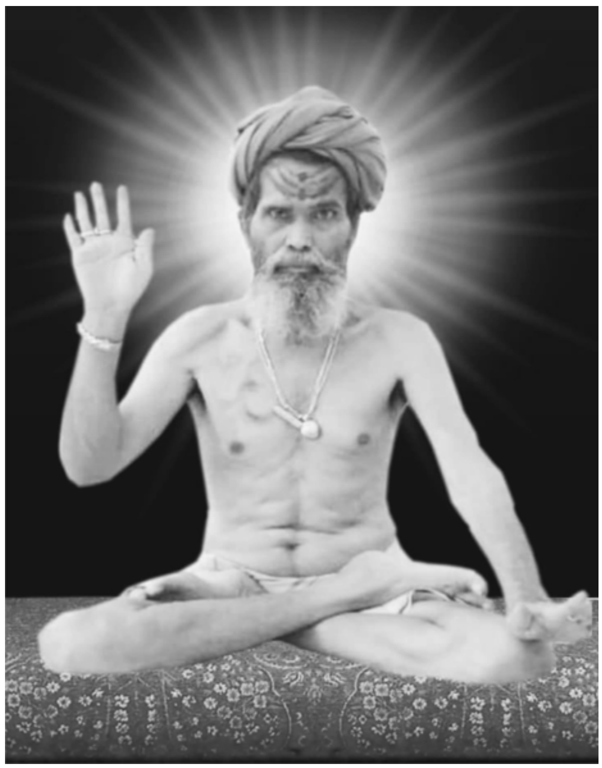
दो०–कलिजुग तारक संवाद इहँ नाशक काम क्रोध मद लोभादि तमाम ।
भगत बछल कामधेनु सुरभि दायक सहज भगति निष्काम ॥६४॥

व्याख्या – यह संवाद कलियुग से पार करानेवाला है तथा काम, क्रोध, मद व लोभ आदि कुभावों का नाश करने वाला है तथा भक्त रूपी बछड़ों के लिए कामधेनु रूपी गाय है, जो सहज में ही निष्काम भक्ति देने वाला है ।

॥ अस्य श्री मानवधर्मशास्त्रस्य धर्म, अर्थ, काम मोक्षार्थम आदिशक्ति मरमार्थम् सप्तम् स्कन्ध सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण द्वाविंशति पड़ाव ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्नपरायण सप्तम पड़ाव ॥



अवधूत देवीदास

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है।

ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है।।

॥ ॐ गुरुवे नमः ॥

॥ ॐ नमः शिवायः ॥

अष्टम स्कन्ध

**ॐ जगतगुरुम् सर्वव्यापकं जटा जूट भष्मांग सुशोभितम् शंकरम् ।
पारब्रह्मायः परमेश्वरम् मंगलमूलम् कल्याणकारकम् शिवायः नमो नमः ॥१॥**

व्याख्या – हे जगत गुरु, सर्वव्यापक ! जटा-जूट और भष्म आपके अंगों पर सुशोभित है । हे शंकर ! पारब्रह्म, परमेश्वर, मंगल के मूल कल्याणकारी शिव! आपको नमस्कार ।

**ॐ गौरवर्णम् एकरसम् आकाश सदृष्यम् सर्वग्यम् भक्त वत्सलम् ।
गुणातीतम् गुणागारम् सर्वविभूति धारकम् शिवायः नमो नमः ॥२॥**

व्याख्या – गौरवर्ण, एक रस, आकाश के समान, सर्वज्ञ, भक्त वत्सल, गुणों से परे, गुणों के घर व समस्त विभूतियों को धारण करने वाले हे शिव ! आपको नमस्कार।

**ॐ नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनायः विश्वेश्वरायः अनाथायःनाथम शंकरम् ।
प्रकृतिसंचालकम् कामादि शत्रुनाशकम् सर्वदायकम् शिवायः नमो नमः ॥३॥**

व्याख्या – वासनारूपी नागों का हार पहने हुए, त्रिनेत्रों वाले, विश्व के ईश्वर, अनाथों के नाथ शंकर, प्रकृति के संचालक, काम आदि असुरों का नाश करने वाले, सब कुछ देने वाले हे शिव ! आपको नमस्कार ।

**ॐ भैरवायः सदा शिवायः चन्द्रशेखरायः मन्मथनाथ महेश्वरायः ।
अहम् त्वमेव सर्वभावेन शरणम् शरणागतेश्वरायः शिवायः नमो नमः ॥४॥**

व्याख्या – भैरव, सदा कल्याणस्वरूप, चन्द्रशेखर, मेरे मन के स्वामी, महेश्वर, शरणागतों के ईश्वर, मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ, हे शिव ! आपको नमस्कार।

**ॐ सकल शास्त्र शोधकम् अघोर साधकम् बन्धन मुक्ति पारम् परम शिवम् ।
भक्तरक्षकम् चराचर धारकम् विभुम आकाश सदृश्यं नाथायः नमो नमः ॥५॥**

व्याख्या – समस्त शास्त्रों का शोधन करने वाले, अघोर साधक, बन्धन व मुक्ति से परे, परम कल्याणकारी, भक्तों के रक्षक, समस्त चराचर को धारण करने वाले, आकाश के समान हे नाथ ! आपको नमस्कार ।

**ॐ मृगाधीश चर्माम्बर धारकम् मदादि असुर नाशकम् सहज स्वरूपम् ।
घट-घट वासितम् निर्वाण सरूपम् गिरा ग्यान गोतीतम् शिवायः नमो नमः ॥६॥**

व्याख्या – बाघम्बर को धारण करने वाले, मद आदि आसुरी भावों का नाश करने वाले, सहज स्वरूप, सबके हृदय में निवास करने वाले, निर्वाण स्वरूप, वाणी, ज्ञान व इन्द्रियों से परे, हे कल्याणकारी शिव ! आपको नमस्कार ।

ॐ अखण्डम् अजं भानुकोटिप्रकाशकम् सर्वबाधा प्रसमनम् नाथं ।
अखिलेश्वरम् विश्वेश्वरम् परमेश्वरम् कल्याणकारकम् शिवायः नमो नमः ॥७॥

व्याख्या – हे अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यो को प्रकाशित करने वाले, समस्त बधाओं को दूर करने वाले, अखिलेश्वर, विश्वेश्वर, परमेश्वर, हे कल्याणकारी शिव ! आपको नमस्कार ।

दो०–संग निसंग पार नाथ तुम नहिं बन्धन मुक्ति लहर उठाय ।
सहज अवस्था सहज रहइ सहज प्रेरणा सब जगत चलाय ॥१॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आप तो संग व निसंग दोनों से परे हैं तथा आपके मन में तो बन्धन व मुक्ति का विचार भी नहीं आता है । आप तो सहज अवस्था में सहज ही रहते हैं तथा आपकी सहज प्रेरणा से ही समस्त संसार का संचालन हो रहा है ।

छ०– **महिमा तुम्हार अपरम्पार नाथ सकल वेद पुराण रहइ बताई ।**
मुनि मन रंजन विपत्ति भंजन आवहिं शरण जेहि जनु आनन्द पाई ॥
ग्यान मान सकल निधान आप समान नाथ आपहहिं सुहाई ।
सहज सरल अति तुम विप्र जटिल कह्र कहहिं जग निजहिं भरमाई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आपकी महिमा तो अपरम्पार है । इस बात को सभी वेद-पुराण बता रहे हैं । आप तो मुनियों के मन में रमण करने वाले व समस्त विपत्तियों को दूर करने वाले हैं । इसलिए जो आपकी शरण में आ जाते हैं, वे आनन्द प्राप्त कर लेते हैं । हे नाथ ! आप ही ज्ञान आदि के मान का कारण हैं । आप ही प्रभु आपके समान हैं । हे प्रभु ! आप तो सहज व सरल हैं परन्तु विद्वान लोग आपको जटिल कह-कह कर जगत में भ्रमित होते रहते हैं ।

छ०– **निज अग्यान जीव निज भ्रमित काल कर्म तुम्हहिं दोष लगावहिं ।**
जानहिं नहिं मूढ़ निजहहिं निजकारण जग सुख दुःख पावहहिं ॥
तुम अति दयाल परम कृपाल बिनु कारण सहज कृपा बरषावहिं ।
जानि मरम आवहिं शरण तिन्हहिं नाथ समान तुम्हार बनावहिं ॥

व्याख्या – हे नाथ ! जीव स्वयं के अज्ञान में भ्रमित रहता है और काल, कर्म व आपको दोष लगाता रहता है। मूढ़ जीव समझ नहीं पाता है कि वह स्वयं ही संसार में स्वयं के सुख दुःख का कारण होता है । आप तो प्रभु बहुत ही दयाल व परम कृपालु हैं, इसलिए जीवों पर बिना कारण के ही कृपा करते

रहते हैं । इसलिए जो आपके मर्म को जान कर आपकी शरण में आते हैं, उन्हें प्रभु आप आपके समान ही बना लेते हैं ।

दो० – तुम्हहिं जानत प्रयास करहिं ते जनु जग जाहिं भरमाय ।
निज जानहिं तुम मिलहहिं इहँ अद्‌भुत तुम खेल रचाय ॥२॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आपको जानने का जो लोग प्रयास करते हैं, वे संसार में भ्रमित हो जाते हैं । परन्तु जो स्वयं को जानने का प्रयास करते हैं, उन्हें आप मिल जाते हैं । यह आपने अद्‌भुत खेल बनाया है ।

नाथ मैं लीन्ह तुम्हार शरणाई । रच्छ रच्छ अब मोहि गुसाई ॥
सब विधि तुम कीन्ह निहाला । धन्य दीनबन्धु सहज कृपाला ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! अब मैंने आपकी शरण ले ली है, इसलिए मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । आपने तो प्रभु, सब प्रकार से मुझे निहाल कर दिया है । आप दीनबन्धु व सहज में ही कृपा करने वाले हैं । अतः प्रभु आप धन्य हैं ।

धर्म कर्म सकल मरम बताई । तत्व परम नाना विधि समुझाई ॥
बहु सिद्धन्ह मरम समुझाई । नाना विधि साधना तुम बताई ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आपने धर्म व कर्म के रहस्य को बताया है और नाना प्रकार से परम तत्व को समझाया है । आपने बहुत से सिद्धों के रहस्य को बताया दिया है तथा साधना की भी नाना विधियाँ बताई हैं ।

नाथ जिग्यासा मोर मन माई । शिव सब सिद्धन्ह सिद्ध सुहाई ॥
केहि विधि भयउ शिव जन्मा । कहउ नाथ मोहि सब मरमा ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! मेरे मन में एक जिज्ञासा है कि शिव समस्त सिद्धों के सिद्ध कहलाते हैं । हे प्रभु ! उनका जन्म कैसे हुआ, वो सब रहस्य मुझे समझाकर बताइये ।

देवन्ह देव महादेव कहाई । कवन विधि परम पद पाई ॥
कोह गुरु काह मन्त्र जपाई । सब कहउ मोहि जगत गुँसाई ॥

व्याख्या – शिव देवों के देव महादेव कहलाते हैं । उन्होंने इस परम पद को किस प्रकार प्राप्त किया था । उनके गुरु कौन थे तथा उन्होंने किस मन्त्र का जप किया? हे जगत के मालिक ! ये सब मुझे समझाकर बताइये ।

दो०– कोह मात पितु कोह पालनहार भा केहि विधि पायउ परम ज्ञान ।
केहि बल शिव शम्भो अविनाशी भए केहि बल करते जग कल्याण ॥३॥

व्याख्या – हे परमपिता ! शिव के माता-पिता कौन थे तथा किस प्रकार परम ज्ञान को प्राप्त किया तथा किस शक्ति के बल पर शिव स्वयं अविनाशी हो गए

तथा किसके बल आज भी जगत का कल्याण करते हैं ?

सुना नाथ अजहुँ शिव देहधारी । केहि विधि संभव इहँ असुरारी ॥
गूढ़ ते गूढ़ नाथ मरम बताउ । भाषा सरल सोइ देहु लिखाउ ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! मैनें सुना है कि शिव आज भी शरीर को धारण किए हुए हैं । यह कैसे संभव है ? हे प्रभु मुझे गूढ़ से भी गूढ़ रहस्य को बता दीजिए और उसे सरल भाषा में लिखवा दीजिए ।

सुत शिव सम नहिं साधक कोई । निज जानिअ पायउ सब सोई ॥
आदि काल जब सृष्टि सुहाई । जन्मा शिव तब संग सबाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! शिव के समान कोई साधक नहीं है । उसने स्वयं को जान करके ही सब कुछ प्राप्त किया है । हे वत्स ! जब सृष्टि की शुरुआत हुई थी, तब शिव सभी चराचर के साथ ही जन्मा था ।

प्रथम हुए जीव बिनु पितु माता । भयउ मूल मोर संकल्प ताता ॥
तेहि काल जीव सहज सुहाए । प्रकृति वश सब बन्धन छाए ॥

व्याख्या – हे वत्स ! पहली बार तो सृष्टि में सभी जीव मेरे संकल्प से बिना पिता व माता के ही पैदा हो गए थे । उस समय सब जीव सहज थे, परन्तु प्रकृति के वश में होने पर धीरे-धीरे बन्धन में पड़ने लग गए ।

वृति बनि प्रकृति नाच नचाई । जन्म मरण सोइ कारण सुहाई ॥
जेहि जीव परहि वृति जाला । निज भूलि बनाइ जग विशाला ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जीव की वृति ही प्रकृति बन कर जीव को नाच नचाने लगती है तथा वृति ही जीव के जन्म-मरण का कारण बन जाती है । जो जीव वृति के जाल में पड़ गए, उन्होंने स्वयं को भूलाकर इस विशाल संसार का निर्माण कर लिया है।

दो०–निज जानि शिव निवृत भया सो नहिं प्रकृति जाल पराय ।
आत्मा अजर अमर अविनासी सोइ शिवात्मा अविनासी कहाय ॥४॥

व्याख्या – हे वत्स ! शिव स्वयं को जानकर निवृत हो गया, इसलिए प्रकृति के जाल में नहीं पड़ा । आत्मा तो अजर, अमर व अविनाशी होती है, इसलिए शिवात्मा आज भी अविनाशी कहलाती है ।

वृति मुक्त आत्मा अविनाशी । वृतिरत सोइ जीवात्मा भासी ॥
वृति सोइ सुत कारण जन्मा । वृति विरत सोइ पद परमा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! वृति से मुक्त आत्मा ही अविनाशी कहलाती है तथा जब आत्मा वृति के जाल में पड़ जाती है, तब उसे जीवात्मा का आभास होने लग जाता है । हे वत्स ! वृति ही जीव के जन्म का कारण बनती है तथा वृति से

मुक्त होना ही परम पद की प्राप्ति होता है ।

जब मोर चित संकल्प उठाई । मोर अंश आत्मा बनि प्रकटाई ॥
मोर अंश सोई आत्मा अविनाशी । वृति अभाव सहज सुख राशी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब मेरे हृदय (चित) में संकल्प पैदा हुआ, तो मेरे नाना अंश आत्मा बन कर प्रकट हो गए । मेरा अंश होने के कारण ही आत्मा अविनाशी होती है तथा वृति के अभाव में सहज में ही सुख स्वरूप होती है ।

आत्मा जानि सुत सोइ भाव मोरे । समझाउँ मरम अब हियँ तोरे ॥
भाव ते भाव पावहहिं विस्तारा । ऐहि भाँति भयी सृष्टि अपारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मेरे भावों को ही आत्मा जानों । अब मैं तुम्हारे हृदय में ही समझाकर बताता हूँ । सुनो – भावों से भावों का विस्तार होने लगा और इस प्रकार इस विशाल सृष्टि का उद्भव हो गया ।

नर नारी मिलि मोर चित बनाई । नर ब्रह्म नारी प्रकृति सुहाई ॥
ब्रह्म बीज प्रकृति योनि सुहाई । भयउ संभोग सृष्टि उपजाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! नर और नारी (नाड़ी) से मिलकर मेरा चित बना हुआ है । मेरा नर ही ब्रह्म और नारी प्रकृति कहलाती है । ब्रह्म अर्थात नर के द्वारा बीज स्थापित होता है और प्रकृति योनि होती है, उसके द्वारा बीज को धारण किया जाता है । इसलिए दोनों के संभोग से सृष्टि पैदा हो गयी।

ब्रह्म काल नारी शक्ति सुहाई । उभय मिलि सृष्टि चलाई ॥
ब्रह्म अहार सदा ब्रह्म सुहाए । ऐहि विधि काल चक्र चलाए ॥

व्याख्या – ब्रह्म (नर) ही काल होता है तथा प्रकृति (नारी) शक्ति होती है और ये दोनों मिलकर सृष्टि का संचालन करते रहते हैं । ब्रह्म का भोजन ब्रह्म ही होता है, इसप्रकार काल का अनवरत चक्र चलता रहता है ।

दो०–ब्रह्म सोई काल निरञ्जन नारी सोई आदि शक्ति महान ।
उभय मम चित्त भए सुत निज घट जानहिं चतुर सुजान ॥ ५ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! ब्रह्म (नर) ही काल निरञ्जन होता है और नारी (प्रकृति) ही आदि शक्ति होती है । ये दोनों नर-नारी मिलकर मेरा चित हैं । इस रहस्य को चतुर साधक अपने हृदय में जान लेते हैं ।

कालहु गति सुत काल सुहाई । सोई चक्र काल निरंत चलाई ॥
प्रकृति रहइ काल अधीना । करहि कारज इच्छा नवीना ॥

व्याख्या – हे वत्स ! काल की गति भी काल ही होती है, इस प्रकार काल का चक्र निरन्तर चलता रहता है । प्रकृति शक्ति भी काल के अधीन होती है,

इसलिए काल की इच्छानुसार नए-नए कार्य करती रहती है ।

रूपान्तरण सदा काल सुभाउ । अनुसरहि प्रकृति सत्य बताउ ॥
वृति सोई प्रकृति साधन सुहाई । वृति बल सकल जीव नचाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! रूपान्तरण काल का स्वभाव होता है, इसलिए प्रकृति सदा रूपान्तरण की प्रक्रिया का अनुसरण करती है । वृति ही प्रकृति का साधन होती है तथा वृति के बल पर ही प्रकृति समस्त जीवों को नाच नचाती है ।

वृति सदा सुत त्रिधार सुहाई । सत रज तम सकल बताई ॥
प्रतिधार हियँ भाव उपजाई । सोई त्रिगुणमय सृष्टि कहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! वृति हमेशा तीन धाराओं में प्रवाहित होती है । उन्हीं तीन धाराओं को सब लोग सत, रज व तम की धारा बोलते हैं । प्रत्येक धारा जीव के हृदय में भावों को पैदा करती है, इसलिए समस्त सृष्टि को त्रिगुणों से युक्त कहा जाता है ।

एकादश मन इन्द्रिन्ह समेता । त्रिगुण करहहिं भाव सचेता ॥
धार अनुरूप भाव उपजाए । सोई कोटि कहहि विप्र समुझाए ॥

व्याख्या – इन्द्रियाँ और मन मिलकर ग्यारह होते हैं, जिनमें सत, रज एवं तम के गुणों की धारा प्रवाहित होकर भाव पैदा करती रहती है । गुणों की धारा के अनुरूप भाव पैदा होते रहते हैं, उन्हीं भावों को स्तर (कोटि) कहकर विद्वानों ने समझाया है ।

प्रति इन्द्रिन्ह त्रिधार सुहाए । सब मिलि कोटि तैतीस बताए ॥
भाव सोइ सुत जग देव कहाई । कोटि तैतीस सोइ संख्या बताई ॥

व्याख्या – प्रत्येक इन्द्रियों की तीन धारा (सत, रज व तम) होती है, इसलिए सब मिला कर तैतीस स्तर (कोटि) बताए जाते हैं । भाव ही वत्स देव कहलाते हैं, इसलिए तैंतीस कोटि (स्तर) होते हैं ।

दो०–भाव स्तर सोइ कोटि कहाए भाव सदा अनगिनत अनन्त ।
कोटि शब्द कोटि समझहिं सुनत सुनत लगे लोग भनन्त ॥ ६ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! भावों का स्तर ही कोटि कहलाता है क्योंकि भावों की संख्या तो अनगिनत व अनन्त होती है । परन्तु लोगों ने कोटि अर्थात स्तर को कोटि अर्थात करोड़ समझ लिया और सुनते-सुनते लोग अब कोटि (स्तर) को करोड़ ही बोलने लग गए ।

ऐहि भांति संख्या देव बताई । कोटि तैंतीस कह जग भरमाई ॥
मन जीत करहि जे वश भावा । सोई साधक देवाधि देव कहावा ॥

व्याख्या – इस प्रकार देवताओं की संख्या बता दी गयी है और संसार में लोग तैंतीस करोड़ देवता मानकर भ्रमित हो रहे हैं। परन्तु जो साधक मन को जीत करके भावों को वश में कर लेता है, वह साधक देवाधिदेव अर्थात भावों का अधिष्ठाता कहलाता है।

तप बल शिव मन वश कीन्हा। ताहि बल पद महादेवा लीन्हा ॥
मोर नर नारी शिव पितु माता। मरम गुप्त इहँ सब ताता ॥

व्याख्या – तप के बल पर शिव ने अपने मन को वश में कर लिया था तथा उसी के बल पर महादेव कहलाए। हे वत्स ! मेरे नर व नारी ही शिव के माता पिता हैं। यह अति गुप्त रहस्य है।

नर ब्रह्म नारी अष्टांगी माता। आदि शक्ति जाहि जग बताता ॥
उभय मिलि माया उपजाई। वृति रूप सब जग रहइ छाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मेरा नर ही ब्रह्म तत्व होता है तथा मेरी नारी ही अष्टांगी प्रकृति शक्ति है, जिसे संसार में आदि शक्ति दूर्गा के नाम से बताया जाता है। ब्रह्म और प्रकृति दोनों मिलकर ही माया पैदा करते हैं, जो वृति (इच्छाओं) के रूप में समस्त संसार में छाई रहती है।

अति कठोर तप शिव कीन्हा। करि वृति क्षीण मरम मोर चीन्हा ॥
वृति अभाव काल जाल कटाई। भयउ लीन शिव मोते सदाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! शिव ने बहुत कठोर तप किया और वृतियों को क्षीण करके मेरे मर्म को जान लिया। वृतियों के अभाव में ब्रह्म (काल) का जाल कट गया और शिव सदा के लिए मुझमें लीन हो गया।

दो०–मोहि जानिअ मोहि सम भयउ नहिं लवलेश भेद रहाय।
परम ग्यान शिव हृदय भया निसि दिवस मोते लीन सुहाय ॥७॥

व्याख्या – शिव ने मुझे जान लिया और वह मेरे समान ही हो गया जिससे उसमें और मुझमें कोई भेद नहीं रहा। शिव के हृदय में परम ज्ञान पैदा हो गया जिससे वह रात-दिन मुझमें लीन हो गया।

ऋषि मुनि सब शिव महिमा गाई। गाथा अनन्त बरनिन जाई ॥
देव दनुज नर किन्नर नागा। सबके हृदय शिव अनुरागा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! शिव के पिता ब्रह्म (काल निरञ्जन) और आदिशक्ति प्रकृति ही माता हैं तथा तप बल से शिव के हृदय में गुरु शक्ति प्रकट हो गयी थी। हे वत्स ! तुम विश्वास करो, मैं परमात्मा ही अनादि गुरु हूँ, जो तप के बल से सहज में ही हृदय में प्रकट हो जाता हूँ।

शिव मम प्रिय शिष्य सुहाई। हृदय प्रगटि जगत गुरु बनाई ॥
शिव प्रथम जगत गुरु कहाए। मम प्रसाद सकल विभूति पाए ॥

व्याख्या – हे वत्स ! शिव मेरे बहुत प्रिय शिष्य थे, इसलिए मैंने उनके हृदय में प्रकट होकर उन्हें जगत गुरु बना दिया। शिव ही प्रथम जगत गुरु कहलाते हैं क्योंकि शिव ने मेरी कृपा से समस्त विभूतियों को प्राप्त कर लिया था।

माया जीत गुणातीत कहाई। भल मन्द पार सहज सुहाई ॥
अजर अमर कीन्ह निज काया। गुण धर्म व्यापहि नहिं माया ॥

व्याख्या – माया को जीत कर शिव गुणातीत कहलाए तथा अच्छे-बुरे की सीमा से परे होकर सहज बन गए। शिव ने तप के बल से अपने शरीर को अजर-अमर बना लिया तथा अब उसे गुण धर्म व गुणों से पैदा माया प्रभावित नहीं करती है।

दो०–सहज सुभाव औढ़रदानी भए वेद पुराण करहिं सब बखान।
भाव देखि द्रवहहिं शिव जगत कहावहिं अब करुणा निधान ॥ ८ ॥

व्याख्या – सहज स्वभाव के कारण शिव औढ़रदानी हो गए हैं, जिनकी महिमा का वेद व पुराण सभी बखान करते हैं। आज भी शिव भाव देखकर द्रवित हो जाते हैं, इसलिए जगत में उन्हें करुणानिधान कहा जाता है।

सकल विभूति शिव सन सुहाई। शिव संकल्प सब संभव कराई ॥
प्रकृति अब शिव अधीन सुहाई। शिव आयुस टारइन सकाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! शिव के पास अब मेरी समस्त विभूतियाँ हैं, इसलिए शिव के संकल्प से सब कुछ संभव हो जाता है। अब प्रकृति शक्ति शिव के अधीन हो गयी है, इसलिए शिव की आज्ञा को टाल नहीं सकती है।

विभूति बल नाना शोध कराई। बहु साधक उनि सिद्ध बनाई ॥
परशुराम मच्छेन्दर नाथा। शिव उभय कीन्ह सनाथा ॥

व्याख्या – विभूतियों के बल पर शिव ने नाना शोध कार्य किये तथा बहुत से साधकों को सिद्ध बना दिया। परशुराम और मत्स्येन्द्र नाथ को भी शरण में लेकर सनाथ बना दिया।

परम विद्या शिव ते रावण पाई। शास्त्र शास्त्र निपुण जग कहाई ॥
देवन्ह बहु संकट शिव टारी। निगम पुराण महिमा पुकारी ॥

व्याख्या – शिव की कृपा से रावण ने परम विद्या प्राप्त कर ली थी, इसलिए संसार में वह शास्त्र व शस्त्र का विशेषज्ञ माना जाने लगा था। शिव ने कृपा करके देवताओं के संकट को भी बहुत बार दूर किया है। शास्त्र व पुराणों में उनकी महिमा को बताया गया है।

साबर मन्त्र मैं शिव दीन्हा । ताही बल जग बहु भल कीन्हा ॥
आवहिं शरण करइ उद्धारा । भल मन्द करहि न विचारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मैंने शिव को साबर मन्त्र दिए, जिनके बल पर उसने संसार का बहुत उपकार किया । शिव शरण में आने वाले का उद्धार कर देते हैं तथा अच्छे-बुरे का विचार भी नहीं करते हैं ।

दो०–भजन लीन गुणातीत सदा जातिपंथादि नहिं तहँ भेद सुहाय ।
समर्पण पूर्ण जेहि करहि सहजहिं शिव भव पार लगाय ॥९॥

व्याख्या – शिव तो हमेशा भजन में लीन रहते हैं तथा सदा गुणातीत अवस्था में रहते हैं । उनके लिए जाति, पंथ व सम्प्रदाय आदि का कोई भेदभाव नहीं होता है । इसलिए जो पूरी तरह से उनके आगे समर्पण कर देते हैं, वे उनको भव पार करा देते हैं ।

धन्य नाथ परम कृपालु । कहा गूढ़ ग्यान अति रसालु ॥
मोर मन नाथ एक शंका आई । काह शिव असल सरूप सुहाई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप परम कृपालु हैं, जो आपने अति रसमय गूढ़ ज्ञान को मुझे बताया है । परन्तु मेरे मन में एक शंका हो रही है कि शिव का वास्तविक रूप क्या है ?

जटा गंग भाल चन्द्र बताए । गले भुजंग रहहिं लिपटाए ॥
कण्ठ हलाहल लोग बताई । कोउ कहहि दिगम्बर सुहाई ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! शिवजी की जटा में गंगा और ललाट पर चन्द्रमा बताया जाता है तथा गले में सर्प लिपटे हुए बताए जाते हैं । कण्ठ में हलाहल विष बताया जाता है तथा कुछ लोग कहते हैं कि शिव दिगम्बर हैं ।

कोउ कहहि शिव त्रिनेत्रधारी । मद मोचक काम नसावनहारी ॥
कोउ शिव कहा घट घट वासी । कोउ कहि अजर अमर अविनाशी ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! कोई तो शिव को त्रिनेत्रों वाला बताते हैं तथा कुछ कहते हैं कि शिव मद का नाश करने वाले व काम को मिटाने वाले हैं । कोई कहते हैं कि शिव सबके घटों में रहने वाले हैं तथा कोई शिव को अजन्मा, अमर व अविनाशी बताते हैं ।

कोउ कहहि शिव कैलाश निवासी । गिरिजा पति वो राम उपासी ॥
सृष्टि संहारक कोउ बताई । कोउ शिव कल्याणकारी जनाई ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! कुछ लोग कहते हैं कि शिव कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं, जो पार्वती के पति और राम के उपासक हैं । कोई कहते हैं कि शिव सृष्टि

के संहार कर्ता हैं तथा कोई शिव को कल्याणकारी कहते हैं ।

दो०—कर कमण्डल अरु डमरू भया त्रिशूल सदा संग सुहाय ।
शिव वाहन नन्दी बतावहिं नाथ किछु समझ न आय ॥१०॥

व्याख्या — शिव के हाथ में कमण्डल और डमरू बताते हैं तथा सदा त्रिशूल को साथ में बताते हैं । शिव का वाहन नन्दी बैल को बताते हैं । हे प्रभु मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है ।

तन विभूति गल मुण्डमाला । संग भूत पिशाच रूप विकराला ॥
शिव काहे भेष अमंगल धारी । समझाय कहउ मोहि मुरारी ॥

व्याख्या — शरीर में भभूति और गले में मुण्डों की माला बतायी गयी है तथा साथ में विकराल रूप वाले भूत व पिशाच बताए गये हैं । हे प्रभु ! शिव ने ऐसा अमंगलकारी भेष क्यों धारण किया है ? हे प्रभु ! मुझे समझाकर कहिए।

सुन सुत कहउँ मरम अति गूढ़ा । सुनि बुध सुखी मूढ़ बनहि मूढ़ा ॥
शिव मम प्रिय वो मोर समाना । जो तुम कहा सो नहिं भेष सुजाना ॥

व्याख्या — हे वत्स ! तुम्हें अति गम्भीर रहस्य को बताता हूँ, जिसे सुनकर विद्वान लोग तो सुखी होंगे और मूर्ख लोग और मूर्ख बन जायेंगे । हे वत्स ! शिव मेरे बहुत प्रिय हैं और वे मेरे समान ही हैं, इसलिए जो भेष तुमने बताया है, वो उनका भेष नहीं है ।

प्रथम साधक मोर मरम जानी । समझाई जगत प्रतीक निसानी ॥
शिव प्रतीक मरम देउँ बताई । मिटहिं भ्रम भगति हियँ आई ॥

व्याख्या — हे वत्स ! शिव तो मेरे प्रथम साधक हैं, जिन्होंने मेरा मर्म जाना था तथा उसी को संसार को समझाने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया था । इसलिए तुम्हें शिव के प्रतीकों का रहस्य बता देता हूँ, जिसे सुनकर हृदय में भक्ति पैदा हो जायेगी तथा सब संशयों का नाश हो जायेगा ।

शिव निज भाषा बहु शास्त्र लिखाई । उपमा देइ नाना विधि समुझाई ॥
तत्व शोधक परम अराधक । सोई गुरु सोई परम विचारक ॥

व्याख्या — शिव ने स्वयं की भाषा में नाना शास्त्रों की रचना करी तथा नाना प्रकार से उपमा दे देकर समझाया । शिव परम तत्व के शोधक और परम अराधक रहे हैं। हे वत्स ! जो तत्व शोधक होता है, वही जगतगुरु व परम विचारक होता है ।

दो०—अखण्ड ब्रह्माण्ड जानि मोहि सकल भेद शिव लियेउ मिटाय ।
जथा पिण्ड यथा ब्रह्माण्ड समझ भयउ लीन निज घट समुझाय ॥११॥

व्याख्या — हे वत्स ! शिव ने अखण्ड ब्रह्माण्ड को मेरा शरीर जान कर समस्त

भेद मिटा लिये और जैसा पिण्ड में वैसा ब्रह्माण्ड में शिव ने स्वयं के हृदय में समझ लिया और वह मुझमें एकाकार हो गया ।

सकल मरम तोहि समझाउँ । प्रथम जटा गंग रहस्य बताउँ ॥
पद पाताल सीस ब्रह्माण्डा । धड़ धरती इहँ पिण्ड अखण्डा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तुम्हें समस्त रहस्य को समझाता हूँ । पहले जटाओं में गंगा के रहस्य को बताता हूँ । सुनो – जीव के पैर पाताल लोक, सिर ब्रह्माण्ड तथा धड़ धरती होता है । इस प्रकार ये समस्त शरीर अखण्ड है ।

देह ब्रह्माण्ड गंग प्रकटाई । जोगी जन अमृत धार बताई ॥
मिलहि आनन्द सुरसरि सुहाए । पावन परम जीव मुक्ति पाए ॥

व्याख्या – शरीर के ब्रह्माण्ड अर्थात सिर से गंगा प्रकट होती है । इसे ही योगी लोग अमृत की धार भी बताते हैं । अमृत धार निकलने पर आनन्द मिलने लगता है और शरीर में सुरसरि होने लगती है, इसलिए गंगा का नाम सुरसरि भी कहा जाता है । अमृत पाने की अवस्था साधक के लिए परम पवित्र होती है, इसलिए जीव मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

जो घटहहि सुत घट माहीं । सोइ होवहि ब्रह्माण्ड सदाहीं ॥
मोर ब्रह्माण्ड जो गंग बहाई । पावन परम अमृत सुहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो जीव के शरीर में होता है, वही ब्रह्माण्ड शरीर में भी होता है । मेरे ब्रह्माण्ड शरीर में जो गंगा बहती है, वह भी परम पवित्र मेरे अमृत की धारा है ।

निज घट गंग जेहि नहिं जानी । तिन्ह हेतु मोर गंग बहता पानी ॥
जो नहावहि नित्य निज गंगा । तिन्ह मन रहहि सदा चंगा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो स्वयं के शरीर में स्थित गंगा को नहीं जान पाते हैं, उनके लिए मेरी गंगा बहते हुए पानी के समान होती है । परन्तु जो लोग स्वयं के शरीर में स्थित गंगा में नहाते है, उनके मन सदा पवित्र रहते हैं ।

दो०–विषय वासना चिन्ता उपजावत चिन्ता सोई जग पाप कहाय ।
गंग स्नान विषय मिटावहिं विगत विषय पाप कट जाय ॥१२॥

व्याख्या – हे वत्स ! विषयों की वासना से ही चिन्ता पैदा होती है और चिन्ता ही संसार में पाप कहलाती है । हे वत्स ! शरीर स्थित गंगा में स्नान करने से विषय-विकार मिट जाते हैं और विषयों के विकार मिट जाने पर स्वतः पाप कट जाते हैं।

खेचुरी मुद्रा सुष्मन नारी । घट गंग उभय घाट सँवारी ॥
सुरत निरत गंग राह सुहाई । शब्द लोटा मलमल नहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! खेचुरी मुद्रा और सुष्मना नाड़ी देह स्थित गंगा के सुन्दर घाट होते हैं, जिन पर जाने के लिए सुरत व निरत रूपी राह होती है । वहाँ पहुँच कर शब्द रूपी लोटा लेकर जीव मलमल स्नान कर सकता है ।

करि स्नान रहउँ मैं पावन । सोई विधि कहहि तोही समझावन ॥
तू करि नित्य गंग स्नाना । सब विधि होइब तोर कल्याणा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मैं नित्य मेरे ब्रह्माण्ड की गंगा में स्नान करके पवित्र रहता हूँ । उसी पवित्र रहने की विधि को तुमको बता दिया है । इसलिए तुम स्वयं के शरीर की गंगा में स्नान करो, जिससे तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो जायेगा।

भाल चन्द्र अब मरम बताउँ । निज घट समझ तोही समझाउँ ॥
गंग स्नान विषय जाइ नसाई । शीतलता जीव परम तब पाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! अब मैं तुम्हें ललाट पर चन्द्रमा होने के प्रतीक के रहस्य को बताता हूँ । तुम स्वयं के हृदय में समझो, मैं समझाता हूँ । हे वत्स ! स्वयं की गंगा में स्नान करने से विषयों की वासना मिट जाती है, जिससे जीव को परम शीतलता महसूस होने लगती है ।

सोई शीतलता चन्द्र प्रतीका । निज घट समझ सुत इहँ नीका ॥
गल सर्प कहउँ अब मरमा । विषय प्रतीक वासना धरमा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! विषयों के शान्त हो जाने से ही शीतलता पैदा होती है, इसलिए चन्द्रमा शीतलता का प्रतीक होता है । इसे तुम स्वयं के हृदय में अच्छी तरह से समझो । अब तुम्हें गले में सर्पो के रहस्य को बताता हूँ । सर्प विषयों का प्रतीक होता है, जिसका वासना धर्म होती है ।

दो०–विषय रस विष हलाहल हय साधक सकहहिं इहँ जान ।
विषय संग निसंग रहइ सोइ कण्ठ अहि माल्य मान ॥१३॥

व्याख्या – हे वत्स ! विषयों का रस हलाहल विष होता है, इसे साधक जान लेते हैं । परन्तु जो साधक विषयों से निसंग रहते हैं, उसी को गले में विषय रूपी सर्पो की माला जानना चाहिये ।

सिन्धु मंथन सोइ मंथन भावा । विषय विष सोइ बाहिर आवा ॥
भोगहिं भोग रहहहिं निसंगा । सोइ कष्ट हलाहल कथा प्रसंगा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! भावों का मंथन ही समुद्र का मंथन कहलाता है जिसमें से विषयों रूपी विष सबसे पहले बाहर निकलता है । परन्तु जब साधक भोगों को भोगते हुए भी भोगों में लिप्त नहीं होता है तब उस अवस्था को हलाहल विष को कण्ठ में धारण करने के प्रतीक के रूप में बताया जाता है ।

सत रज तम प्रतीक त्रिशूला । दृष्टा बनि देखहिं मन निर्मूला ॥
साधक हियँ जब होवइ ग्याना । गुण वश सोई त्रिशूल समाना ॥

व्याख्या – हे वत्स ! त्रिशूल सत, रज व तमों गुणों का प्रतीक होता है क्योंकि गुणों को दृष्टा बन कर देखने पर मन निर्मूल हो जाता है । जब साधक को तीनों गुणों का ज्ञान हो जाता है, तब गुणों को वश में करने के प्रतीक के रूप में त्रिशूल बताया जाता है ।

त्रिगुण कुटि त्रिकुटि कहाई । सत रज तम त्रिशूल बसाई ॥
त्रिकुटि सोइ सुत काशी नगरी । ब्रह्माण्ड देह त्रिशूल बसरी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तीनों गुणों की त्रिकुटि ही सत, रज व तम गुणों के त्रिशूल पर बसी हुई है । हे वत्स ! मेरे ब्रह्माण्ड शरीर की त्रिकुटि ही काशी नगरी है, जो प्रकृति के सत, रज व तम गुण रूपी त्रिशूल पर बसी हुई है ।

निज घट जानहि नहिं जेहि काशी । मृषा करहिं दम्भ शिव उपासी ॥
तिन्ह हृदय नहिं ग्यान लवलेशा । करि पाखण्ड भोगहिं क्लेशा ॥

व्याख्या – जो स्वयं के शरीर में स्थित काशी को नहीं जानते हैं, वे तो शिव उपासना का मिथ्या दम्भ भरते हैं । उनके हृदय में थोड़ा भी ज्ञान नहीं होता है और ऐसे लोग पाखण्ड करके कष्ट पाते रहते हैं ।

दो०–निज घट काशी जानी नहिं ब्रह्माण्ड काशी बिरथा जाय ।
बिनु भूमि गाछ न जामहिं बिनु गाछ न फल आय ॥ १४ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! स्वयं के शरीर में स्थित काशी को तो लोग जानते हैं और व्यर्थ में ही मेरे ब्रह्माण्ड की काशी में जाते रहते हैं । इनका जाना तो वैसे ही होता है जैसे बिना भूमि के पेड़ नहीं लगता है और बिना पेड़ के फल नहीं आ सकता है ।

काशी नगरी गुप्त राह बताउँ । हृदय मारग सहज पहुँचाउँ ॥
हियँ धड़कन सहज सुनाई । सुष्मन द्वार सहज खुलाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तुम्हें काशी नगरी में जाने का सरल रास्ता बता देता हूँ। हृदय के रास्ते से काशी में सरलता से जाया जा सकता है । जो लोग हृदय की धड़कन को सहज होकर सुनते हैं, उससे सुष्मना नाड़ी का दरवाजा तुरन्त खुल जाता है ।

खुलहहिं द्वार काशी प्रवेशा । विगत वासना मिटहिं क्लेशा ॥
मन मरम तहँ परइ बुझाई । सहजहिं हियँ भगति प्रगटाई ॥

व्याख्या – सुष्मना नारी का द्वार खुल जाने पर काशी नगरी में प्रवेश हो जाता है, जिससे विषय वासना व कष्टों का निवारण हो जाता है । उस समय मन का रहस्य भी समझ में आ जाता है तथा सहज में ही हृदय में भक्ति प्रकट हो जाती है ।

मन निर्मूल वृति सुलझाई । वृति अभाव जीव मुक्त कहाई ॥
ऐहि भांति काशी सुत मुक्ति दाई । ऋषि मुनि जन पुराणन गाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मन के निर्मल हो जाने से वृतियाँ सुलझ जाती हैं, जिससे जीव मुक्त हो जाता है । हे वत्स ! इस प्रकार देह स्थित काशी नगरी मुक्ति दायनी होती है । इसलिए ऋषि, मुनियों व पुराणों ने काशी की महिमा को गाया है ।

निज काशी करहि दर्शन ध्याना । पावहिं ते परम पद सुजाना ॥
निज घट जानि आवहिं मोरी नगरी । तिन्ह होहिं कामना पूर्ण सबरी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो लोग ध्यान के द्वारा अपने शरीर में स्थित काशी का दर्शन करते हैं, उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है । जो लोग स्वयं की काशी को हृदय में जान कर मेरे ब्रह्माण्ड स्थित नगरी में आते हैं, मैं उनकी सब मनोकामना पूर्ण कर देता हूँ ।

दो०–जो सुत तेरे देह पिण्ड में सोहि मोर ब्रह्माण्ड रहइ समाय ।
पिण्ड जानि ब्रह्माण्ड समझ तू सकल मरम सहजहि प्रगटाय ॥ १५ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो तेरे शरीर में होता है, वो ही सब कुछ मेरे ब्रह्माण्ड में समाया हुआ है, इसलिए तू अपने शरीर को जान कर ब्रह्माण्ड को समझ ले, सृष्टि का समस्त रहस्य सहज में ही प्रकट हो जायेगा ।

अब सुन सुत मरम कैलाशा । कैवल्य ग्यान सहज उल्लासा ॥
मिटहिं वासना सहजता आई । हिम सम शीत हियँ तब छाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! अब तुम कैलाश के रहस्य को सुनो । केवल्य का ज्ञान होने पर हृदय में सहज ही उल्लास आ जाता है । जिससे वासनाएँ मिट जाती हैं और सहजता आ जाती है । वासनाओं के मिट जाने से हृदय में बर्फ जैसी शीतलता छा जाती है ।

सहज उल्लास कैलाश कहाई । निज घट इहँ अवस्था भाई ॥
ब्रह्माण्ड सुत जे गिरि कैलासा । सो जानउ मोर सहज उल्लासा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जीव की सहज आनन्द (उल्लास) की अवस्था ही कैलाश कहलाती है । यह अवस्था जीव के स्वयं के हृदय में ही आती है ।

हे वत्स ! जो मेरे ब्रह्माण्ड शरीर का कैलाश पर्वत है, वो मेरे मन का सहज उल्लास है ।

सकल दिशा सोइ वसन हमारे । दिगम्बर कहहिं लोग पुकारे ॥
शिव सदा सुत मोते लीन सुहाई । सोइ शिव नाम दिगम्बर कहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! समस्त दिशाएँ ही मेरा वस्त्र हैं, इसलिए लोग मुझे दिगम्बर

कहते हैं और शिव भी सदा मुझमें लीन रहते हैं, इसलिए शिव को भी लोग दिगम्बर कहते हैं ।

भूलहिं जीव जब देह अभिमाना । अणुमय होई अस्तित्व सुजाना ॥
सोई भयउ सुत शिव संगा । देह बिसराइ भयउ अभंगा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब जीव अपने देह अभिमान को छोड़ देता है तो उसका अस्तित्व अणुमय हो जाता है । ऐसे ही शिव के साथ हुआ क्योंकि शिव अपने देह अभिमान को भूलाकर मुझ परमात्मा से एकाकार हो गया ।

दो०–जल बूँद जब सिन्धु समावहि सिन्धुमय होय सिन्धु बनि जाय।
ऐसउ शिव मोते लीन भयउ मोही तें मिलि मोहिमय सुहाय ॥ १६॥

व्याख्या – हे वत्स ! जैसे जल की एक बूँद समुद्र में मिलकर समुद्रमय होकर समुद्र ही बन जाती है, वैसे ही शिव मुझ परमात्मा में लीन होकर मेरे समान ही हो गया।

घट घट वास मोर सुभाव सुहाई । सोई शिव घट घट वासी कहाई ॥
सुत मोर अंश अविनाशी सोई । चेतन अमल अमन जब होई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! घट-घट में निवास करना मेरा स्वभाव होता है, इसलिए शिव को भी घट घट वासी कहा जाता है । मेरा अंश रूपी आत्मा जब चेतन, निर्मल व अमन (मन से मुक्त) हो जाता है, तब वह अविनाशी ही होता है।

अमन आत्मा जन्म न होई । अजर अमर कहावहिं सोई ॥
मन जीत शिव अमन सुहाई । सोई अजर अमर वो कहाई ॥

व्याख्या – जब आत्मा मन से मुक्त हो जाती है, तब वह अजर-अमर कहलाती है । शिव ने भी मन को जीत कर आत्मा को मन से मुक्त कर लिया था, इसलिए वह अजर-अमर कहलाता है ।

मन जीतहिं मिटहिं संसारा । सोई कहावहिं सृष्टि संहारा ॥
मन वश करि करहि संहारा । सोई शिव संहारक पुकारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मन के जीत लेने पर संसार मिट जाता है, उसी को सृष्टि का संहार कहा जाता है । शिव मन को वश में करके अपने भावों का संहार कर लेते हैं, इसलिए शिव को संहारक कहा जाता है ।

मन वश लावहि प्रलय भावा । साधक हेतु सोइ संहार सुहावा ॥
सुत मोर मन होइ बिकलाई । भाव वश प्रयास में कराई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मन के वश में आने पर भावों में प्रलय आ जाती है। इसलिए यह अवस्था साधक के लिए संहार की अवस्था होती है । हे वत्स ! मेरे मन में जब व्याकुलता बढ़ती है तो मैं भी मेरे भावों को वश में करने का प्रयास करता हूँ।

दो०—भाव मोर सृष्टि जीव सब भाव सब मोर मन बनाय।
मन बिकल भाव वश करूँ भाव मरण सोइ प्रलय कहाय ॥ १७ ॥

व्याख्या — हे वत्स ! मेरी समस्त सृष्टि के जीव ही मेरे भाव होते हैं और सब भाव मिलकर ही मेरा मन कहलाते हैं। इसलिए जब मेरा मन व्याकुल होता है, तो मैं मन को वश में करने का प्रयास करता हूँ, जिससे भावों (जीवों) का मरण होने लग जाता है। इस भावों के मरण को ही प्रलय कहा जाता है।

पिण्ड ब्रह्माण्ड घटना समाना। मरम परम इहँ सुजाना ॥
त्रिनेत्र मरम कहुँ समुझाई। ग्यान नेत्र सोई त्रिनेत्र कहाई ॥

व्याख्या — हे वत्स ! पिण्ड शरीर और ब्रह्माण्ड शरीर में घटनाएँ समान रूप से घटती हैं। यह परम सत्य है। हे वत्स ! अब तुम्हें त्रिनेत्र के रहस्य को समझाता हूँ। सुनो — ज्ञान की अनुभूति होना ही त्रिनेत्र कहलाता है।

उभय नयन देखहि संसारा। तीसर नयन ग्यान पसारा ॥
भाव अनुरूप नयन दिखाई। देखहि नयन सो माया सुहाई ॥

व्याख्या — हे वत्स ! दोनों आँखों से जो दिखाई पड़ता है, वह तो संसार होता है। तीसरा नेत्र ही ज्ञान का प्रसार करने वाला होता है। हे वत्स ! भावों के अनुसार ही आँखों को दिखाई पड़ता है, इसलिए जो आँखें देखती हैं, वो माया ही होती है।

भाव मूल जब परइ समुझाई। ग्यान अवस्था सोई कहाई ॥
होवई ग्यान माया मिटाई। काम क्रोध मदादि भाव नसाई ॥

व्याख्या — हे वत्स ! जब भावों का मूल समझ में आ जाता है, तब ज्ञान की अवस्था आ जाती है और ज्ञान होने से माया मिट जाती है, जिससे काम, क्रोध व मद आदि के भावों का नाश हो जाता है।

सोई अवस्था शिव की सुहाई। भाव समझइ त्रिनेत्र खुलाई ॥
त्रिनेत्र खुलहि सहजता आई। सहजता सोई कल्याण कराई ॥

व्याख्या — हे वत्स ! ज्ञान द्वारा कामादि विकारों के मिटने की अवस्था ही शिव की हो गयी थी क्योंकि भावों का मूल समझ में आ जाने से शिव का ज्ञान रूपी तीसरा नेत्र खुल गया था। त्रिनेत्र खुल जाने से सहजता आ जाती है और सहज अवस्था ही कल्याणकारी अवस्था होती है।

दो०—भल मन्द सब भेद मिटहिं जब हृदय सहजता आय।
भूत पिशाच प्रतीक सब मन्द संगउ निसंग सुहाय ॥ १८ ॥

व्याख्या — हे वत्स ! जब हृदय में सहजता आ जाती है, तो अच्छे-बुरे का सब भेद मिट जाता है। इसलिए भूत पिशाच भी अच्छे-बुरे के प्रतीक के रूप में

समझाए गये हैं कि सहज साधक बुरों के साथ भी निसंग बना रहता है ।

होहि सहज सब सिद्धि मिलाई । तन विभूति सोइ प्रतीक सुहाई ॥
सौ वृति सोइ सुत सौभाव कहाई । सत रज तम त्रिगुण मय सुहाई ॥

व्याख्या – सहज हो जाने पर समस्त सिद्धियाँ मिल जाती हैं, उसी को शरीर पर विभूति रमा कर सिद्धियों के प्रतीक के रूप में बताया जाता है । हे वत्स ! जीव की सौ वृतियाँ ही सौभाव (स्वभाव) कहलाती हैं जो सत रज व तम गुणों से युक्त होती हैं ।

पंच तत्व वृति गुण समेता । माला पूर्ण सुमेरु चित चेता ॥
प्रति वृति भाव मुण्ड समानी । सोइ शिव गल मुण्ड माल बखानी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! पाँच भूत तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश) व तीन गुण (सत, रज व तम) तथा सौ वृतियों को लेकर एक सौ आठ की माला पूर्ण हो जाती है, जिसमें चेतन चित सुमेरु का प्रतीक होता है । प्रत्येक वृति भाव के मुण्ड के समान होती है, इसलिए शिव के गले में मुण्डमाला को भावों के प्रतीक के रूप में बताया गया है ।

भल मन्द भेद मिटावन हेतु । अमंगल प्रतीक लीन्ह चित चेतु ॥
इहँ सकल मरम शिव भेषा । समझहिं जेहि अन्तर मन देखा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! अच्छे-बुरे का भेद मिटाने के लिए शिव ने अमंगल प्रतीकों की चित में कल्पना करी । हे वत्स ! यही शिव के भेष का परम रहस्य है, जिसे वे लोग जान पाते हैं, जो अपने अन्तर मन में देखते हैं ।

धन्य प्रभु परम हितकारी । शिव भेष कहा मरम अपारी ॥
लिंग रहस्य अब देहु बताई । कारण कवन लिंग पूजा कराई ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! आप परम हितकारी हैं, जो आपने शिव के भेष के परम रहस्य को बता दिया है । हे प्रभु ! अब आप मुझे लिंग के रहस्य को बता दीजिए और लिंग की पूजा करने के कारण को भी बता दीजिए ।

दो०–केहि विधि लिंग उत्पत्ति भयी काह लिंग पूजा विधि विधान।
सरल भाषा मोहि समझावहु हे जगत पिता कृपा निधान ॥१९॥

व्याख्या – हे जगत के पिता, कृपा निधान ! किस प्रकार लिंग की उत्पत्ति हुई है तथा लिंग पूजा का विधान क्या है ? मुझे यह सब सरल भाषा में समझाकर बताइये ।

मम मन सुत लिंग उपजाई । तामें सकल सृष्टि समाई ॥
लिंग सुनि लिंग आभास कराई । ते जनु मूढ़ महा अग्य कहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! लिंग की उत्पत्ति मेरे मन से हुई है, जिसमें समस्त सृष्टि

समायी हुई रहती है । जो लोग लिंग शब्द सुनकर पुरुष लिंग समझ लेते हैं, वे लोग मूर्ख और महा अज्ञानी होते हैं ।

मन लीन सोई लिंग कहाई । मन अनुरूप सृष्टि सुहाई ॥
सोई लिंग सकल सृष्टि मूला । बनहिं सृष्टि लिंग अनुकूला ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मन का लीन होना ही लिंग कहलाता है, इसलिए समस्त सृष्टि मन के अनुसार ही होती है । इसलिए लिंग समस्त सृष्टि का मूल कहलाता है क्योंकि मन की लीनता के अनुसार ही सृष्टि का स्वरूप बनता है ।

लिंग मरम सुत जानहिं जेही । सहज साधना मोच्छ पद लेही ॥
प्रति वृति मन लीन सुहाए । सोइ जग लिंग अनेक कहाए ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो लोग लिंग के रहस्य को जान लेते हैं, वे सहज साधना द्वारा मोक्ष की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं । प्रत्येक वृति में जीव का मन लीन हो जाता है, इसलिए संसार में अनेक लिंग बताए गए हैं ।

सुत पंच लिंग प्रधान सुहाई । तिन्ह मरम सब देउँ बताई ॥
लिंग अनुरूप मन लीन कराई । सहज पदारथ चारि मिलाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! पाँच लिंग प्रधान होते हैं, जिनका रहस्य मैं तुम्हें बता देता हूँ । सुनो – लिंग के अनुरूप मन को लीन करने से चारो फलों (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) की प्राप्ति सहज में ही हो जाती है ।

प्रथम लिंग ब्रह्माण्ड सुहाई । सकल चराचर ताते समाई ॥
मन करउ लीन ब्रह्माण्डा । अनुभवउ सर्व ब्रह्म अखण्डा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! पहला लिंग ब्रह्माण्ड लिंग होता है, जिसमें समस्त चराचर जगत आता है । इसलिए समस्त ब्रह्माण्ड में मन को लीन करो और सर्वत्र एक अखण्ड ब्रह्म का अनुभव करो ।

दो०–सर्वत्र ब्रह्म एक व्यापक नहिं किछु भेदाभेद सुहाय ।
मन पूर्ण लीन करहउ सुत निजहहिं विराट बनि जाय ॥ २० ॥

व्याख्या – सभी जगह पर एक ही ब्रह्म व्यापक होता है इसलिए कोई भेद-अभेद नहीं होता है । हे वत्स ! मन को ब्रह्माण्ड में पूरी तरह लीन करो, तुम स्वयं भी ब्रह्माण्ड के समान विराट हो जाओगे ।

देह बन्धन भूलहु सबाई । सर्वव्यापक निज आभास कराई ॥
उभय घड़ी करहु इहँ आभासा । होवहि ब्रह्माण्ड लीन अनायासा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! देह के बन्धन को भूलाकर स्वयं को सर्वव्यापक होने का आभास करो । दो घड़ी यह आभास करने पर अनायास ही तुम ब्रह्माण्ड में

लीन हो जाओगे ।

व्यष्टि मन समष्टि जुराई । पूजन लिंग तब पूर्ण सुहाई ॥
ब्रह्माण्ड लिंग इहँ मरम सकला । सकहिं पूज नारी पुरुष अबला ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब व्यक्ति का मन समष्टि के मन से जुड़ जाता है तब ब्रह्माण्ड लिंग का पूजन पूर्ण हो जाता है । यही ब्रह्माण्ड लिंग का सब रहस्य है, जिसकी पूजा स्त्री-पुरुष व अबला सब कर सकते हैं ।

दूसर लिंग सुत पिण्ड कहाई । करहि पूजन सृष्टि समझाई ॥
निज पिण्ड करउ मन लीना । होवहिं अनुभव तब नवीना ॥
सकल दृष्टि निज पिण्ड लगाउ । आवत जावत श्वास संभराउ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! स्वयं के शरीर में मन को लीन करने पर नए-नए अनुभव होते हैं । समस्त दृष्टि को स्वयं के शरीर पर लगा दो और आने जाने वाली श्वास का अनुभव करो ।

मन लीन पिण्ड सीमा मिटाई । पिण्ड ब्रह्माण्ड एक सुहाई ॥
हृदय उमगहि तब विवेका । चहुँदिसि लगहि तब ब्रह्म ऐका ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब मन शरीर में लीन हो जाता है, तो शरीर की सीमा मिट जाती है और पिण्ड व ब्रह्माण्ड एक लगने लग जाता है । तब हृदय में विवेक पैदा हो जाता है तथा चारों तरफ एक ब्रह्म का ही अनुभव होता है ।

दो०–पिण्ड ब्रह्माण्ड भेद मिटई पिण्ड सोइ ब्रह्माण्ड लगाय।
समुद्र बुन्द आइ मिलहहिं सोई अनुभव हियँ घटाय ॥२१॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब पिण्ड व ब्रह्माण्ड का भेद मिट जाता है तो शरीर में ब्रह्माण्ड की अनुभूति होने लगती है । तब हृदय में ऐसा अनुभव होने लगता है, मानो समुद्र ही बूँद में आकर मिल गया हो ।

इहँ पूजा सरल लिंग सुहाए । पिण्ड माझ ब्रह्माण्ड दर्शाए ॥
आत्म लिंग तीसर लिंग सुहाई । चेतन अमल सुखरासी बताई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! यह पिण्ड लिंग की सरल पूजा विधि है, जिसके करने से पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड का आभास हो जाता है । हे वत्स ! तीसरा लिंग आत्म लिंग होता है, जिसे चेतन, अमल व सुखराशी बताया गया है ।

मन जब आत्म लीन सुहाए । तबहहि आत्म लिंग कहाए ॥
सुत करहउ अब मन विचारा । आत्मा सब लीन मन हमारा ॥

व्याख्या – हे व त्स ! मन जब आत्मा में लीन हो जाता है, तब वह अवस्था आत्म लिंग की कहलाती है । इसलिए हे वत्स ! अब तुम मन में विचार करो

कि मन आ त्मा में लीन हो रहा है ।

चित चेतन सोइ आत्मा हमारी । चित धड़कन मन देउ डारी ॥
धड़कन मन जब जाई रमाई । जानहउ तब आत्मा लीन सुहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! चित की चेतना ही आत्मा होती है, इसलिए मन को चित (हृदय) की धड़कन में लगा दो और जब मन हृदय की धड़कन में रम जायेगा, तब मन आत्मा में लीन हो जाता है ।

व्यष्टि समष्टि होइ चेतना ऐका । मिलहि शान्ति हियँ आइ विवेका ॥
विवेक विशुद्ध संसार नसाई । जीवन अरु ब्रह्म तब एक सुहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! व्यष्टि और समष्टि की चेतना एक हो जाने पर परम शान्ति मिल जाती है और हृदय में विवेक आ जाता है तथा हृदय में विशुद्ध विवेक आ जाने से संसार मिट जाता है, जिससे जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं ।

दो०–अमन आत्मा सोइ परमात्मा सोई सुत आत्म लिंग कहाय ।
जेहि पूजहि निज आत्मलिंग को सहजहि परम पद मिलाय ॥२२॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब मन अमन अर्थात आत्मा में लीन हो जाता है, तब आत्मा ही परमात्मा कहलाती है तथा उसी अवस्था को आत्मलिंग भी कहा जाता है । अतः जो लोग स्वयं की आत्मा के लिंग को पूजते हैं अर्थात स्वयं की आत्मा में ही लीन होते हैं, उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है ।

ग्यान लिंग चउथ लिंग सुहाई । एक रस ग्यान तहँ रह सदाई ॥
ग्यान एक रस ब्रह्म जीव अभेदा । तहँ नहिं ब्यापहिं भव खेदा ॥

व्याख्या – चौथा लिंग ज्ञान लिंग होता है, जिसमें एक रस ज्ञान सदा बना रहता है । जब एक रस ज्ञान बना रहता है, तब ब्रह्म और जीव का भेद मिट जाता है, जिससे जीव को भावों का दुःख नहीं व्यापता है ।

सुत मन करउ दृढ़ विवेका । मैं चेतन अमल अंश ब्रह्म ऐका ॥
मोर प्रकाश प्रकाशित संसारा । नहिं कोउ विधि मैं ब्रह्म तें न्यारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! मन में दृढ़ विवेक कर लो कि मैं जीवात्मा चेतन और अमल व एक ब्रह्म का अंश हूँ । यह संसार मेरे प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहा है। मैं आत्मा किसी भी प्रकार से ब्रह्म से अलग नहीं हूँ ।

सकल व्यापक ब्रह्म समाना । रूप नाम भेद घोर अग्याना ॥
मम भीतर जगत विस्तारा । प्रगटहिं बाहिर बनि संसारा ॥

व्याख्या – सर्वत्र ब्रह्म एक समान व्यापक होता है इसलिए रूप व नाम के आधार पर भेद करना घोर अज्ञान है । मेरे अन्दर ही जगत का विस्तार हो

रहा है, जो बाहर संसार बन कर प्रकट हो रहा है ।

काम क्रोध मद मत्सर भावा । मन विकार नहिं मोर सुहावा ॥
मैं अमन शान्त सुख राशी । ईश्वर अंश सदा अविनाशी ॥

व्याख्या – काम, क्रोध, मद व मत्सर के भाव तो मन के विकार होते हैं । ये भाव मुझ आत्मा के नहीं हैं । मैं आत्मा तो मन रहित, शान्त व सुख की राशी हूँ। मैं आत्मा ईश्वर का अंश हूँ, इसलिए सदा अविनाशी हूँ ।

दो०–अजर अमर मैं आत्मा नहिं मोर जन्म मरण सुहाय ।
ब्रह्म जल में लहर सम मन वृति कारण लहर उठाय ॥ २३ ॥

व्याख्या – मैं आत्मा तो अजर-अमर हूँ । मेरे जन्म व मरण नहीं होते हैं । मैं आत्मा तो ब्रह्म जल में उठने वाली लहर हूँ तथा मन की वृति के कारण ही लहर उठ रही है ।

विषय रस मन वृति मिलाए । उभय मिलि मोर देह बनाए ॥
मैं निसंग नहिं देह सुहाउँ । तब काहे सुख दुख फँद लगाउँ ॥

व्याख्या – जब विषयों के रस में मन की वृति मिल जाती है, तब मेरा शरीर बन जाता है । परन्तु मैं आत्मा तो निसंग हूँ, इसलिए मैं शरीर नहीं हूँ और जब मैं शरीर नहीं हूँ तो फिर सुख-दुःख का बन्धन क्यों लगाउँ ?

विषय विकार नहिं मोर सुहाए । तन मन उभय ये उलझाए ॥
तन अरु मन नहिं मोर सरूपा । मैं आनन्दमय तत्व अनूपा ॥

व्याख्या – विषयों के विकार मुझ आत्मा के नहीं होते हैं । ये तो तन और मन दोनों को उलझाते हैं । तन और मन मेरे स्वरूप नहीं हैं क्योंकि मैं आत्मा तो आनन्दमय तथा अनूपम तत्व हूँ ।

बारि बीचि जिमि नहिं किछु भेदा । तेसउ मैं आत्मा ब्रह्म अभेदा ॥
सुत ऐहि भांति करउ विचारा । सहजहिं मिटइ तोर संसारा ॥

व्याख्या – जैसे जल और जल की लहर में कोई अन्तर नहीं होता है, वैसे ही आत्मा और ब्रह्म में भेद नहीं होता है । हे वत्स ! तुम इस प्रकार विचार करो। तुम्हारा सहजता से संसार मिट जायेगा अर्थात ज्ञान हो जायेगा ।

होवहि ग्यान विगत विकारा । बचहिं चेतन आत्मा तुम्हारा ॥
मन लीन जब ग्यान सुहाए । सोइ सुत ग्यान लिंग कहाए ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जब ज्ञान हो जाता है तब सब विकार मिट जाते हैं और तब केवल शुद्ध व चेतन आत्मा बच जाती है । उस अवस्था में मन भी ज्ञान में लीन हो जाता है । उसी को ज्ञान लिंग कहा जाता है ।

दो०–ग्यानमय जानि निज आत्मा जेहि जनु करहिं मन लीन ।
ग्यान लिंग सोई पूजन भया पावहिं मुक्ति वे ज्ञान प्रवीन ॥ २४ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो लोग अपनी आत्मा को ज्ञानमय जानकर मन को ज्ञान में ही लीन कर लेते हैं, उनकी ज्ञान लिंग की पूजा पूर्ण हो जाती है और वे ज्ञानवान लोग मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ।

लिंग पाँचव सदाशिव कहाई । पूजहिं जेहि अमर पद पाई ॥
सुत शिवमय इहँ सृष्टि सारी । प्रेम सोहार्द तहँ रहइ अपारी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! पाँचवा लिंग सदाशिव लिंग होता है, जिसकी पूजा करने पर अमर पद की प्राप्ति होती है । हे वत्स ! समस्त सृष्टि शिवमय अर्थात कल्याणमय होती है, जिसमें अपार प्रेम व सोहार्द होता है ।

सदा शिव सोउ मोर नाम सुहाई । करउ मन लीन परम पद पाई ॥
सकल ब्रह्माण्ड जानि मोर शरीरा । मंगल भाव लावउ मन मतिधीरा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! सदाशिव भी मेरा एक नाम है, इसलिए तुम मुझमें मन को लीन करलो, तुम्हें परम पद की प्राप्ति हो जायेगी । हे वत्स ! समस्त ब्रह्माण्ड को मेरा शरीर मानकर मन में मंगल भाव लाओ ।

मन्द सुगन्ध बहत बयारी । चहुँदिसि निश्छल प्रेम प्रसारी ॥
मोर मन अब शिवमय सुहाई । दिसिदसहु अनुकूलता छाई ॥

व्याख्या – मन्द-मन्द सुगन्धित हवा बह रही है तथा चारों तरफ निश्छल प्रेम छा रहा है । मेरा मन शिवमय (कल्याणमय) हो रहा है और चारों तरफ दसों दिशाओं में अनुकूलता छा रही है ।

प्रति श्वास अब उठत उमंगा । मोतें लगि जुरन प्रीति अभंगा ॥
जहँ लगि मन मोर विस्तारा । तहँ देखहुँ पितु एक करतारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! ऐसा आभास करो कि प्रत्येक श्वास में उमंग उठ रही है और मुझ परमात्मा से अटूट प्रीत जुड़ने लगी है । जहाँ तक मेरा मन जा रहा है, वहाँ सब जगह में एक परमपिता को कर्ता के रूप में देख रहा हूँ ।

दो०–व्यष्टि मन जब समष्टि मिलहहिं जसि बून्द समुद्र मिलाय ।
बून्द सिन्धु मिलि सिन्धु भयी तसि जीव सदाशिव सुहाय ॥ २५ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! व्यष्टि का मन समष्टि के मन में मिल जाता है जैसे बून्द समुद्र में मिल जाती है । हे वत्स ! बून्द समुद्र में मिल कर समुद्र ही हो जाती है, वैसे ही जीवात्मा भी मुझ परमात्मा से मिलकर परमात्मा ही हो जाता है।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण त्रयोविंशति पड़ाव ॥

मोहि तोहि ताहि नहिं किछु भेदा । होवउ लीन मिटहिं सब खेदा ॥
जब तोर मन मोते लीन सुहाई । सोइ अवस्था सदाशिव कहाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तुझमें, मुझमें व उसमें कोई अन्तर नहीं होता है । इसलिए तुम मुझमें लीन हो जाओ, तुम्हारे समस्त कष्ट मिट जायेंगे । हे वत्स ! जब तेरा मन मुझमें लीन होता है, तब वह अवस्था ही सदाशिव की अवस्था होती है।

सदाशिव लिंग इहँ पूजा विधाना । निज मन नित्य करहु सुजाना ॥
करहिं जेहि होइब शिव सरूपा । इहँ लिंग पूजा मरम अनूपा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! यह सदाशिव लिंग पूजा का सारा विधान तुम्हें बता दिया है, अब तुम नित्य स्वयं के मन में ही इस लिंग पूजा को करो । जो लोग नित्य करेंगे, वे शिव स्वरूप हो जायेंगे । हे वत्स ! यही लिंग पूजा का अनुपम रहस्य है।

पंच लिंग नित्य पूजहिं जेहि । तिन्ह जग दुर्लभ किछु नेहि ॥
जय रूप यश वैभव अपारा । मिलहिं सकल इच्छा अनुसारा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो कोई रोज पंच लिंग पूजा करता है, उसे संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । उसे जय, रूप, यश व अपार वैभव, सब इच्छा के अनुसार मिल जाता है ।

सिद्धि सकल करहिं सेवकाई । देव सकल आयुस अनुसराई ॥
लिंग पूजा सम नहिं कोउ पूजा । होवहिं धन्य जो निज घट बूझा ॥

व्याख्या – लिंग पूजा करने वाले की समस्त सिद्धियाँ सेवा करने लगती हैं और सब देवता आज्ञा का अनुसरण करने लगते हैं । हे वत्स ! लिंग पूजा के समान कोई दूसरी पूजा नहीं होती है । इसलिए लिंग पूजा को जो लोग हृदय में जान लेते हैं, वे धन्य हो जाते हैं ।

दो०–धन्य धन्य परम पिता धन्य जगत पति कृपा निधान ।
सब तजि शरण आयहुँ देवहउ मोहि अब अभय दान ॥ २६ ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! आप धन्य हैं, धन्य हैं । हे जगत के मालिक, हे कृपा निधान ! आप धन्य हैं । मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरण मे आया हूँ । मुझे आप अभय कर दीजिए ।

जय जगतेश जग पालन कर्ता । जय शिव प्रिय भव दुःख हर्ता ॥
जय दयाल परम हितकारी । जय करुणामय जय तुम्हारी ॥

व्याख्या – हे जगत के ईश्वर व जग पालन कर्ता प्रभु ! आपकी जय हो । हे शिव प्रिय व दुःखों को दूर करने वाले ! आपकी जय हो । हे दयाल व परमहित

करने वाले ! आपकी जय हो । हे करुणामय ! आपकी जय हो, जय हो ।

जय दिनेश अज्ञान तम नाशकम् । जय विभूम् प्रभु सर्व व्यापकम् ॥
जय कृपाल मदादि भाव भंजनम् । जय नाथम् मुनि मन रंजनम् ॥

व्याख्या – हे अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने वाले सूर्य ! आपकी जय हो । हे विभू व सर्वव्यापक प्रभु ! आपकी जय हो । हे कृपाल ! आप मद आदि के भावों का नाश करने वाले हैं । आपकी जय हो । हे नाथ ! आप मुनियों के मन में रमन करने वाले हैं । आपकी जय हो ।

जय प्रकृति मूलं च प्रकृति पारम् । जय विभूं सर्व संताप हारम् ॥
जय परमम् परमानन्दम् । जय सत चित आनन्दघनम् ॥

व्याख्या – हे प्रकृति के मूल व प्रकृति से परे प्रभु ! आपकी जय हो । हे विभू ! आप सब कष्टों को दूर करने वाले हैं । आपकी जय हो । हे परम के परम आनन्द! आपकी जय हो । हे सत चित आनन्दघन ! आपकी जय हो ।

जय अशेष जगत धारकम् । जय भगत प्रिय भव तारकम् ॥
जय निरञ्जन निर विकारम् । जय ओंकार सरूप सर्वाकारम् ॥

व्याख्या – हे अन्तहीन व जगत को धारण करने वाले ! आपकी जय हो । हे भक्तों के प्रिय व भव सागर को पार कराने वाले ! आपकी जय हो । हे विकारों से रहित निरञ्जन ! आपकी जय हो । हे ओंकार सरूप व सर्वाकारों में रहने वाले ! आपकी जय हो ।

जय अलख अगाध अनन्तम् । जय नेति नेति श्रुति भनन्तम् ॥
जय एकरसम् च निर्द्वन्दम् । जय भाव गम्यं मन मुकुन्दम् ॥

व्याख्या – हे अलख, अगाध व अनन्त प्रभु ! आपकी जय हो । वेदों द्वारा कहा जाने वाले ''ऐसा भी नहीं'' ''ऐसा भी नहीं'' हे प्रभु ! आपकी जय हो । हे एकरस व निर्द्वन्द प्रभु ! आपकी जय हो ! हे भावों से समझ में आने वाले मन के मुकुन्द ! आपकी जय हो ।

प्रसीद भवं नाथं प्रसीद भवं । नाथ जगदीश्वरम् प्रसीद भवम् ॥
सर्व भावेन अहम त्वमेव शरणं । प्रसीद भवं प्रसीद भवं परमेश्वरम् ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आप प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये । हे जगत के ईश्वर ! आप प्रसन्न होइये । हे नाथ ! मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ । हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये ।

दो०–प्रसन्न चित रहउ सुत सदा हृदय रहइब संतोष अपार ।
घट तोर सदा प्रगट रहउँ सुत इहँ सत्य आशीष हमार ॥ २८ ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तुम सदा प्रसन्न रहो और तुम्हारे हृदय में सदा संतोष बना रहेगा । मैं तेरे हृदय में सदा प्रगट रहुँगा । यह मेरा सत्य आशीर्वाद है ।

धन्य कृपाल परम हितकारी । शरण सदा सुखद तुम्हारी ॥
कृपा प्रभाव बरननि जाई । जेहि पावहि निज घट समझाई ॥

व्याख्या – हे कृपाल व परम हितकारी प्रभु ! आप धन्य हैं । आपकी शरण सदा सुख देने वाली होती है । हे परम पिता ! आपकी कृपा के प्रभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योंकि जो कृपा प्राप्त करता है, वो उसे अपने हृदय में ही समझ पाता है ।

विधि हरि हर कृपा जब पाई । कर्ता भर्ता हर्ता जग कहलाई ॥
ध्रुव प्रहलाद परम पद पाई । जब नाथ आप कृपा बरषाई ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! जब ब्रह्मा, विष्णु व महेश को आपकी कृपा प्राप्त हो गयी, तो वे जग के कर्ता, भर्ता व हर्ता कहलाने लग गए । हे नाथ ! ध्रुव व प्रह्लाद भी आपकी कृपा प्राप्त करके परम पद को प्राप्त कर लिये ।

सुतीक्ष्ण शबरी विदित इतिहासा । कृपा बल पाए गति अनायासा ॥
बाल्मीक अरु सदन कसाई । भए पावन जब कृपा पाई ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! सुतीक्ष्ण व शबरी का इतिहास तो सभी को पता ही है कि आपकी कृपा के बल से दोनों ने परम गति प्राप्त कर ली । बाल्मीकि और सदन कसाई आपकी कृपा प्राप्त करके पवित्र हो गए ।

नाम देव छीपा रविदास चमारा । कृपा तुम्हार उभय भा उद्धारा ॥
सीस नवावहिं पण्डित ग्यानी । नहिं दन्त कथा इतिहास बखानी ॥

व्याख्या – नामदेव जाति से छीपा थे और रविदास चर्मकार थे परन्तु आपकी कृपा से दोनों का उद्धार हो गया, जिसके कारण पण्डित लोग भी उनके चरणों में सीस झुकाने लग गए थे । यह कोई दन्त कथा नहीं है, इसका इतिहास वर्णन करता है ।

दो०–कृपा तुम्हार जब होवहिं तबहिं जागे जीव कपाल ।
ऊँच नीच भरम मिटहिं सब विधि होइ भगत निहाल ॥ २९ ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! जब आपकी कृपा होती है, तब ही जीव का भाग्य उदित होता है, जिससे ऊँच-नीच का सब भ्रम मिट जाता है और आपका भक्त निहाल हो जाता है ।

कृपा नाथ जब तुम कीन्हा । कबीर जुलाहु पूज्य पद लीन्हा ॥
भगति मरजाद सदा निभाई । धन्ना सन्मुख तुम प्रगटाई ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! जब तुमने कृपा करी तो कबीर जुलाह होते हुए भी

पूजनीय बन गया । आप सदा भक्ति की मर्यादा की रक्षा करते हैं इसलिए धन्ना भक्त के सामने प्रकट हो गए ।

राम अरु कृष्ण दीन्ह बढ़ाई । अजहुँ जग भगवान कहाई ॥
मीरा हृदय जब तुम प्रगटाई । विष भा अमृत अचरज सुहाई ॥

व्याख्या – हे परम पिता ! आपने राम और कृष्ण को यश दिलाया था, इसलिए लोग आज भी उन्हें भगवान मानते हैं । आप जब मीरा के हृदय में प्रकट हो गए थे, तब जहर भी अमृत बन गया था । यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

ईसा जब पिता कहहि पुकारा । जग तुम दीन्ह यश अपारा ॥
पैगम्बर अल्लाह नाम पुकारा । तुम आइ तिन्ह दीन्ह सहारा ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! जब ईसा ने आपको पिता कहकर पुकारा तो आपने ईसा को संसार में अपार यश दिलवा दिया तथा पैगम्बर ने जब आपको अल्लाह के नाम से पुकारा तो आपने उसे भी आकर सहारा प्रदान किया।

मूसा जानि तुम्हहिं घट माहीं । यश पायउ जग महात्मा कहाहीं ॥
अहुरमज्दा कह जरथुस्त पुकारा । कृपा तुम्हार भा निरविकारा ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! जब मूसा (यहूदी सन्त) ने तुम्हें अपने हृदय में जान लिया, तो आपकी कृपा से संसार में बहुत यश प्राप्त किया और महात्मा कहलाने लगे । जरथ्रुस्त ने आपको अहुरमज्दा अर्थात ईश्वर कह कर पुकारा और आपकी कृपा से वह निर्विकारी हो गया ।

दो०—कृपा प्रभाव जब समझ परहि तब नहिं किछु अन्य सुहाय ।
शरण तिहार सुखद लगहि तब सहजहि जीव परमानन्द पाय ॥ ३० ॥

व्याख्या – हे परम पिता ! जब आपकी कृपा का प्रभाव समझ में आ जाता है, तब संसार में और कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । उस समय तो आपकी शरण ही अच्छी लगने लगती है, जिससे जीव को सरलता से परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

सत्य वचन कृपा सुखदाई । इहँ बूझा मैं निज घट माँई ॥
सुनहु नाथ अब विनय मोरी । कहउ विधि साधन शिव अघोरी ॥

व्याख्या – यह सत्य बात है कि परमात्मा की कृपा सुख देने वाली होती है । यह मैंने स्वयं के हृदय में अनुभव किया है । हे परमपिता ! अब आप मेरी प्रार्थना सुनिए और शिव जी की साधना विधि को मुझे बता दीजिए ।

जप तप काह विधि अपनाई । केहि भांति तुम्हहिं समुझाई ॥
अमर कथा कहउ नाथ बखानी । जो शिव कहि समुझाय भवानी ॥

व्याख्या – हे नाथ ! शिव ने जप-तप की कौन सी विधि का अनुसरण किया

तथा आपको किस प्रकार समझा था ? हे परमपिता ! मुझे उस अमर कथा को भी बता दीजिए, जो शिवजी ने पार्वती को सुनाई थी ।

सुत प्रश्न तुम्हार अति गूढ़ा । भ्रमित होवहिं सुनि इहँ मूढ़ा ॥
बुध जन हेतु अति सुखकारी । सो कहउँ ज्ञान जग हितकारी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत गूढ़ रहस्यों वाला है, इसलिए इसे सुनकर मूर्ख लोग भ्रमित होंगे । परन्तु यह बुध जनों के लिए बहुत ही सुख देने वाला है, इसलिए जगत के कल्याण के लिए तुम्हें बताऊँगा ।

कोह पात्र सुत इहँ ग्याना । प्रथम कहउँ सो तोहि सुजाना ॥
गुरु भगत निर्मल मतिधारी । सहज संतोषी पर उपकारी ॥

व्याख्या – हे वत्स ! इस ज्ञान को प्राप्त करने के पात्र कौन कौन हैं, इस बात को पहले तुम्हें समझाउँगा । हे वत्स ! जिनकी बुद्धि निर्मल होती है तथा गुरु के भक्त होते हैं और सहज में संतोष रखने वाले व पर उपकार करने वाले होते हैं ।

दो०– मातु पितु आयुष मानहहिं सदा जपहहिं मोर पावन नाम ।
अनारम्भ अनिकेत भाव रमहिं हृदय भगति होइ निष्काम ॥३१॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो माता-पिता की आज्ञा मानने वाले हों तथा सदा मेरा पवित्र नाम (गुरु मन्त्र) जपते हों तथा जिन्हें कर्तापन व गृहादि का अभिमान न हो तथा जिनके हृदय में निष्काम भक्ति हो ।

बन्धु स्वामी सेवक सब कोई । निज हृदय मानहिं जेहि मोई ॥
सब भांति रखहिं मोर भरोसा । जथा लाभ हृदय होइ संतोषा ॥

व्याख्या – जो अपने हृदय में बन्धु, स्वामी व सेवक सब कुछ मुझे ही जानते हैं तथा सब प्रकार से मेरा भरोसा करते हैं और यथा लाभ में अपने हृदय में संतोष रखते हैं ।

छल छदम् मद दम्भादि भावा । सहज सुभाव रहहिं अलगावा ॥
करहिं सत्संग सह परिवारा । मोहि न मानहिं निज से न्यारा ॥

व्याख्या – जो छल, छद्म, मद व दम्भ आदि के भावों से दूर रहते हों और सहज हों तथा परिवार सहित सत्संग करते हों तथा मुझ परमात्मा को स्वयं से अलग नहीं मानते हों ।

हरषित सुनहिं मोर कथा प्रसंगा । भोगहहिं भोग विषय असंगा ॥
संग्रह त्याग भरहहिं न दम्भा । जानहिं मोहि व्यापक निरालम्बा ॥

व्याख्या – जो लोग हर्षित हो कर मेरी कथाओं को सुनते हों तथा भोग भोगते हुए भी विषयों मे आसक्त न हों तथा संग्रह व त्याग का दम्भ नहीं भरते हैं

और मुझ परमात्मा को सर्वव्यापक व निरालम्ब मानें ।

चित निर्मल सम्यक बोधा। सन्तन सन करहिं अनुरोधा ॥
लवलेश नहिं हियँ पाखण्डा। देखहिं सर्वत्र मोहि अखण्डा ॥

व्याख्या – जिनका निर्मल व सम्यक बोध वाला चित हो तथा जो सन्त जनों की प्रार्थना करने वाले हों तथा जिनके हृदय में लेशमात्र पाखण्ड नहीं हो तथा सर्वत्र मुझ परमेश्वर को एक अखण्ड देखने वाले हों ।

दो०–सहज विषय बिराग समता मन हृदय होइ भाव पर उपकार ।
मनसा वाचा कर्मणा सहज जे तेहि इहँ ग्यान पावन अधिकार ॥३२॥

व्याख्या – जो सहज में ही विषयों से वैराग्यवान हों तथा मन में सबके प्रति समता हो तथा जिनके हृदय में पर उपकार के भाव हों तथा जो मन, वचन व कर्म से सहज होते हैं, वे ही लोग इस ज्ञान को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

भजन रत विनयी सदाचारी। अमर कथा ते जानिन अधिकारी ॥
सन्तन सेवा करहिं ध्याई। मोर सम मानि भरोस कराई ॥

व्याख्या – जो सदैव भजन में लगे रहते हैं और विनयी व सदाचारी होते हैं, वे लोग अमर कथा को जानने के अधिकारी होते हैं। जो लोग सन्तों की सेवा दौड़ कर करते हैं और सब प्रकार से मुझ परमात्मा के समान ही सन्तों पर भरोसा करते हैं ।

परिगृह नहिं बुद्धि भरमाती। स्वाध्याय करहिं जे दिनु राती ॥
सत्य वचन अहिंसा आचारी। ते जनु इहँ ग्यान अधिकारी ॥

व्याख्या – जिनकी बुद्धि संग्रह करने में भ्रमित नहीं होती है तथा जो रात-दिन स्वयं के अध्ययन में लगे रहते हैं तथा सत्य बोलने वाले व अहिंसा का आचरण करने वाले होते हैं, वे सब इस परम ज्ञान को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं ।

विषय रस नहिं मन ललचाई। मुक्तिउ नहिं हियँ चाह सुहाई ॥
दुःख दुःखी नहिं सुख हरषाई। मोर शरण रहहहिं जे सदाई ॥

व्याख्या – विषयों के रस में जिनका मन नहीं ललचाता है और जिनके हृदय में मुक्ति की भी इच्छा नहीं रहती है तथा दुःख में दुःखी नहीं होते हैं और सुख में हर्षित नहीं होते हैं और सदा मेरी शरण में बने रहते हैं ।

परनिन्दा करहिं नहिं जेहि। चेतन जानि रहहहि विदेहि ॥
तिन्ह हृदय नहिं मोह लवलेशा। रहहिं एकरस सब काल देशा ॥

व्याख्या – जो लोग पराई निन्दा नहीं करते हैं तथा स्वयं को चेतन आत्मा जानकर सदा विदेह भाव में रहते हैं तथा जिनके हृदय में लेशमात्र भी मोह

नहीं होता है तथा सब समय व सब स्थानों पर एक रस बने रहते हैं ।

दो०—परधन परनारी चाह नहिं, राग द्वेष नहिं मन क्षोभ कराय ।
निसि दिवस मोतें प्रीति रखहिं, तिन्ह हृदय ग्यान समझ पराय ॥३३॥

व्याख्या — जिनके मन में पराए धन व परायी स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती है तथा मन में राग व द्वेष के भाव क्षोभ पैदा नहीं करते हैं और रात-दिन मुझ परमा त्मा से प्रीत रखते हैं, वे लोग अपने हृदय में अमर ज्ञान को समझ पाते हैं ।

सुत तुम सब भाँति मोर शरणाई । सोई अमर कथा देउँ तोही बताई ॥
शिव निज प्रिया सन जाहि बखानी । तप बल निज हृदय ताहि जानी ॥

व्याख्या — हे वत्स ! तुम सब प्रकार से मेरी शरण में हो, इसलिए मैं तुम्हें अमर कथा को बता देता हूँ, जिस अमर कथा को शिव ने अपनी प्रिय पत्नी पार्वती को बताया था। उस अमर कथा को शिव ने तप के बल से अपने हृदय में समझा था।

शिव सन सुनि पार्वती उरगादा । सोइ कहउँ तोहि पावन संवादा ॥
एक बार बैठे शिव गिरी कैलासा । विषय विरत हियँ उल्लासा ॥

व्याख्या — हे वत्स ! मैं तुम्हें उसी पवित्र संवाद (अमर कथा) को बताता हूँ, जिसे पार्वती ने प्रसन्न चित होकर शिव से सुना था । एक बार शिव कैलाश पर्वत पर बैठे हुए थे । वे उस समय विषयों से विरक्त और सहज में ही प्रसन्न चित थे ।

पार्वती जानिअ समय अनुकूला । कीन्ह विनय हरउ नाथ मम शूला ॥
परम ग्यान मोहि देउ बताई । काह नाम जपत तुम सदाई ॥

व्याख्या — पार्वती ने अनुकूल समय जानकर शिव जी से प्रार्थना करी कि हे नाथ ! मेरे कष्टों को दूर कर दीजिए । आप मुझे परम ज्ञान बता दीजिए तथा आप निरन्तर किसके नाम का जप करते हो ।

कोह सृजक पालक संहारी । सब कहउ समुझाइ असुरारी ॥
कारण कवन जीव दुःख पाई । सुख काह नाथ सरल उपाई ॥

व्याख्या — हे असुरारि ! सृष्टि का सृजक, पालक व संहारक कौन है ? ये सब मुझे समझा कर कहिये । किस कारण से जीव दुःख पाता है ? तथा सुख प्राप्त करने का सरल उपाय क्या है ?

दो०—जन्म मरण कारण काह नाथ काह बन्धन मोच्छ सुहाय ।
काह कारण माया व्यापहि सब कहउ दयाल मोहि समुझाय ॥ ३४ ॥

व्याख्या — हे नाथ ! जन्म व मृत्यु का कारण क्या है ? तथा बन्धन व मोक्ष क्या हैं ? तथा किस कारण से माया पैदा होती है ? हे दयाल ! ये सब मुझे

समझाकर बता दीजिए ।

नाम रूप नाथ मरम बताउ । जुगति सरल सो मोहि सिखाउ ॥
मन वच क्रम जानि निस दासी । कहउ ग्यान परम अविनासी ॥

व्याख्या – हे नाथ ! नाम व रूप का क्या रहस्य है ? ये सब सरल विधि से मुझे सिखाइये । हे नाथ ! मुझे मन, वचन व कर्म से आपकी दासी जानकर परम अविनाशी ज्ञान को बता दीजिए ।

प्रिया वचन सुनि शिव अविनाशी । भए प्रसन्न आनन्द राशी ॥
प्रेम अबुंध हृदय उमगाई । शिव लगे कहन उमा समुझाई ॥

व्याख्या – आनन्दघन शिव जी अपनी प्रिय धर्म पत्नी के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ने लग गया । तब शिव जी पार्वती जी को समझाकर कहने लगे कि –

प्रिया प्रथम समझउ आत्म सरूपा । ईश्वर अंश परम अनूपा ॥
तोहि मोहि ताहि नहिं किछु भेदा । समझहिं भेद सोइ कारण खेदा ॥

व्याख्या – हे प्रिय ! तुम पहले आत्मा के स्वरूप को समझो । यह आत्मा ईश्वर का अंश व परम अनुपम होती है । हे उमा ! मुझमें, तुझमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं होता है परन्तु भेद जानने पर ही दुःख का कारण बन जाता है ।

तुम आत्मा देह तुम्हार गेहा । भाव द्वेतमूल भाव कारण नेहा ॥
विषय रस जब नेह मिलाई । मोह बनि जग माया उपजाई ॥

व्याख्या – हे उमा ! तुम तो आत्मा हो और तुम्हार शरीर आत्मा का घर बना हुआ है । भावों के कारण द्वेत भाव पैदा होता है और भावों से ही आसक्ति बढ़ती है । हे प्रिय ! जब आसक्ति विषयों के रस के साथ मिल जाती है, तो उससे मोह पैदा हो जाता है और मोह ही माया बन जाती है ।

मोह मोर तोर भाव उपजाई । भाव ते भाव भव सिन्धु बनाई ॥
मोह जाल आत्मा जाइ फँसाई । सोई आत्मा जग जीव कहाई ॥

व्याख्या – मोह से मेरे-तेरे के भाव पैदा हो जाते हैं और फिर भावों से भाव पैदा होकर भावों का समुद्र बन जाते हैं । इस प्रकार आत्मा मोह के जाल में फँस जाती है और मोह जाल में फँसने पर आत्मा ही जीव कहलाने लग जाती है ।

दो०–मोह बल माया दीवार बनहिं अंशी अंश ताते अलगाय ।
विषय रस दीवार दृढ़ करहि कोउ बिरला इहँ समझ पाय ॥३५॥

व्याख्या – मोह के बलवान होने पर माया की दीवार बन जाती है, जिससे अंशी (परमपिता) और अंश (जीवात्मा) अलग हो जाते हैं । यह मायावी दीवार विषयों

के रस से दृढ़ होती रहती है। कोई बिरला ही इस रहस्य को समझ पाता है।

काम क्रोध मद मत्सर भावा। माया दीवार ये नित्य दृढ़ावा॥
देह बन्धन जीव उरुझाई। भाव ते भाव भव चक्र चलाई॥

व्याख्या – काम, क्रोध, मद व मत्सर के भाव माया की दीवार को नित्य दृढ़ता प्रदान करते हैं जिससे जीवात्मा शरीर के बन्धन में उलझ जाती है। इस प्रकार भावों से भाव पैदा होकर भव चक्र बना देते हैं।

मोह वश जीव निज सरूप भुलाई। माया जाल देह आभास कराई॥
मोह कारण तन मन एक लगाई। ऐहि भाँति जीवात्मा जाई उरुझाई॥

व्याख्या – मोह के वशीभूत होकर जीवात्मा अपने सहज स्वरूप को भूल जाती है और माया के जाल में पड़कर अपने आपको शरीर मानने लग जाती है। मोह के कारण ही शरीर और मन एक लगने लग जाते हैं। इस प्रकार जीवात्मा उलझ जाती है।

तन मन जीव त्रिसन्धि बनाई। परहि ग्रन्थि जीव उलझाई॥
माया भाव नित्य ग्रन्थि उरझाई। जीव असहाय चले न बसाई॥

व्याख्या – तन, मन व जीव तीनों की सन्धि हो जाने से ग्रन्थि पड़ जाती है जिसमें जीव उलझ जाता है और माया के भाव नित्य ग्रन्थि को उलझाते रहते हैं, इसप्रकार जीव असहाय हो जाता है और वह कुछ नहीं कर पाता है।

निज जाल जीव जब अकुलाई। परम पिता तब याद पराई॥
बिकल होइ करइ आरत पुकारा। तब हृदय प्रेरहिं जग करतारा॥

व्याख्या – स्वयं के जाल में पड़कर जब जीव व्याकुल हो जाता है, तब उसे परमपिता की याद आती है तथा व्याकुल होकर आर्त पुकार करने लगता है, तब जगत के कर्ता परमपिता जीवात्मा के हृदय में प्रेरणा करने लगते हैं।

दो०–प्रभु प्रेरहहिं कृपा मिलहि कृपा ते सदगुरु शरण मिलाय।
सदगुरु जोग जुगति बल सहजहहिं ग्रन्थि देइ खुलाय॥३६॥

व्याख्या – परमपिता की प्रेरणा से कृपा मिलने लग जाती है तथा परमात्मा की कृपा से सद्गुरु की शरण मिल जाती है और सदगुरु योग की युक्तियाँ सिखाकर सरलता से माया की ग्रन्थि को खुलवा देते हैं।

खुलहिं ग्रन्थि होवइ प्रकासा। सहज सरूप निज निजहिं भासा॥
मिटहहिं तब माया अन्धकारा। जीवात्मा सुतन्त्र निर विकारा॥

व्याख्या – जब माया रूपी ग्रन्थि खुल जाती है, तो प्रकाश होने लग जाता है, जिसमें जीवात्मा को अपना सहज स्वरूप आभासित होने लग जाता है। सहज

स्वरूप के आभासित होने से माया का अन्धकार मिट जाता है और जीवात्मा स्वतन्त्र होकर निर्विकारी हो जाती है ।

निज हृदय ग्यान प्रगटाई । जीवात्मा सोइ परमात्मा बनाई ॥
समझ परहहिं तब जग खेला । आत्मा परम हंस अकेला ॥

व्याख्या – उस समय स्वयं के हृदय में ही ज्ञान प्रकट हो जाता है तथा जीवात्मा निर्विकारी होकर परमात्मा हो जाती है । तब जगत का सब खेल समझ में आ जाता है कि आत्मा रूपी परमहंस अकेला ही होता है ।

अकथ अगाध अनुभूति होई । निज निजहहिं समझहिं सोई ॥
कहउँ समुझाइ उमा संकेता । आत्मा व्यापक जगत सबेता ॥

व्याख्या – उस समय अकथनीय व अगाध अनुभूति होती है, जिससे जीवात्मा स्वयं को समझा सकता है । हे पार्वती ! मैं उसी अनुभूति को संकेतों के माध्यम से तुम्हें समझाता हूँ ।

देह नहिं देह आभास कराई । मन नहिं पर मन उपजाई ॥
नहिं शब्द पर शब्द बुलाई । गन्ध नहिं गन्ध भान कराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा शरीर नहीं होती है परन्तु आत्मा शरीर का आभास कराती है । वह मन भी नहीं होती है परन्तु उसके बल से मन पैदा होता है । आ त्मा शब्द भी नहीं है परन्तु उसके बल पर शब्द बोला जाता है। वह गन्ध नहीं होती है परन्तु उसके बल पर गन्ध का आभास होता है।

दो०–मन बुद्धि गुण गो नहिं लवलेश नहिं तहँ अहंकार ।
सर्वव्यापक जग एक सम अजर अमर सहज निर्विकार ॥३७॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा मन, बुद्धि, गुण व इन्द्रियाँ भी नहीं होती हैं तथा आत्मा में तो लवलेश मात्र भी अहंकार नहीं होता है । वह तो समस्त जगत में एक समान व्यापक रहती है । आत्मा तो अजर-अमर व सहज में ही निर्विकारी होती है ।

ताके बल प्रकाश परै दिखाई । पर नहिं प्रकाश सत्य बताई ॥
रूप स्वाद नहिं किछु सुहाए । एक रस जाहि सब वेद बताए ॥

व्याख्या – आत्मा के बल पर प्रकाश दिखाई देता है परन्तु वह प्रकाश नहीं होती है । यह सत्य बता रहा हूँ । आत्मा का न कोई रूप होता है और न कोई स्वाद ही होता है । उसे तो सभी वेदों ने भी एक रस ही बताया है ।

जाके बल होवहिं सब करमा । पर नहिं कर्ता आत्मा परमा ॥
सकल गुण ताते उपजाई । गुण पार रहइ पर सदाई ॥

व्याख्या – जिसके बल पर समस्त कर्म किए जाते हैं परन्तु फिर भी वह परमआत्मा कर्ता नहीं होती है । समस्त गुण उसी से पैदा होते हैं, फिर भी आत्मा तत्व तो सदा गुणों से परे रहता है ।

जाके बल सूरज करहिं प्रकासा । पालहिं नियम पृथ्वी आकासा ॥
शून्य नहिं शून्य आभास कराई । कवनउ विधि सो बरनिन जाई ॥

व्याख्या – जिसके बल सूर्य प्रकाश करता है और पृथ्वी व आकाश अनुशासन में रहते हैं, वह आत्मा शून्य भी नहीं है परन्तु शून्य का आभास कराता है । अतः उसका किसी भी प्रकार से वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

जाके बल उमा सुनत पराई । सोई आत्मा समझ घट मांई ॥
गिरिजा जाके बल कथहुँ कथना । समझ सोइ आत्म तत्व अपना ॥

व्याख्या – हे उमा ! जिसके बल पर सुनाई पड़ता है, उसी आत्मा तत्व को हृदय में समझना चाहिये । हे पार्वती ! जिसके बल पर मैं वाणी बोल रहा हूँ, उसे ही अपना आत्मा तत्व समझना चाहिये ।

दो०–जाके बल उमा प्रकृति उपजत पर नहिं वह प्रकृति सुहाय ।
ईश्वर अंश पावन परम अति आत्मा सोई परमात्मा कहाय ॥३८॥

व्याख्या – हे उमा ! जिसके बल पर प्रकृति पैदा है, परन्तु वह आत्म तत्व प्रकृति नहीं होता है । वह आत्म तत्व तो ईश्वर का अंश होने के कारण परम पवित्र होता है, इसलिए आत्मा ही परमात्मा कहलाती है ।

ग्यान अग्यान नहिं आभासा । एक रस यथा निर्मल आकाशा ॥
सकल जगत तहँ समाई । क्षमता ताकी बरनिन जाई ॥

व्याख्या – आत्मा में तो ज्ञान व अज्ञान का आभास ही नहीं होता है । क्योंकि आत्मा तो सदा एकरस होकर निर्मल आकाश की तरह होती है । आत्म तत्व में तो समस्त जगत समाया हुआ रहता है अतः उसकी क्षमता का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

आत्मा एकहि नहिं दूसर सुहाई । ऋषि मुनि नाना भाँति समुझाई ॥
काल अकाल नहिं जन्म मरणा । आत्मा अनुपम आनन्द झरणा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा एक ही होती है, दूसरा कोई नहीं होता है । ऋषि-मुनियों ने इसी बात को नाना प्रकार से समझाया है । हे पार्वती ! आत्मा में काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) व अकाल का आभास नहीं होता है तथा उसका जन्म व मरण भी नहीं होता है । वह तो अनुपम तत्व तथा आनन्द का स्रोत होती है।

नाथ आपु आत्मा एक बताई । तब काहे जग नाना रूप दिखाई ॥
सोई मरम मोहि देउ समुझाई । कारण कवन इहँ भ्रम पराई ॥

व्याख्या – पार्वती बोली कि हे नाथ ! आपने तो आत्मा को एक ही बताया है, फिर संसार में आत्मा के नाना रूप क्यों दिखाई पड़ते हैं ? किस कारण से यह भ्रम पड़ गया है ? इस रहस्य को मुझे समझा दीजिए ।

सुनहउ सयानी कहउँ मरमा । आत्मा एक नाना रूप वृति धर्मा ॥
मन बुद्धि गो ग्रन्थि पराई । गुण मेल वृति देई बनाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम्हें परम रहस्य बताता हूँ, सुनो – आत्मा तो एक ही होती है परन्तु वृति के कारण नाना रूप दिखाई पड़ते हैं । हे पार्वती ! जब मन, बुद्धि व इन्द्रियों की ग्रन्थि पड़ जाती है और ग्रन्थि से गुणों का मेल हो जाता है, तो वृति बन जाती है ।

वृति बासन आत्मा जल समाना । बासन अनुरूप आकार नाना ॥
सकल बासन नीर एक सुहाए । बासन आकार सोई भिन्न दिखाए ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वृति को बर्तन के समान तथा आत्मा जल के समान मानो, क्योंकि बर्तन के अनुसार ही जल नाना आकार ग्रहण करता है । जिस प्रकार सभी बर्तनों में जल तो एक ही होता है परन्तु बर्तन के अनुसार अलग आकार दिखाई देने लग जाता है, वैसे ही आत्मा तत्व के साथ होता है ।

दो०–आत्म सिन्धु देह घट भरी बाहिर भीतर आत्म नीर सुहाय ।
देह घट जब टूट परहि घट बिलग नीर ही नीर बचाय ॥३९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा रूपी समुद्र में शरीर रूपी घड़ा भरा हुआ है जिसके बाहर व भीतर आत्मा रूपी जल ही व्याप्त है । जब शरीर रूपी घड़ा टूट जाता है, तब देह रूपी घड़े का आत्मा रूपी जल आत्मा रूपी समुद्र के जल से एकाकार हो जाता है ।

आत्मा समष्टि नहिं व्यष्टि सुहाई । आत्मा एक सब घट रहत समाई ॥
समझत हेतु कहा मैं इहँ ऐका । सोउ नहिं सत्य करउ विवेका ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा तो समष्टिमय होती है । वह व्यक्तिगत नहीं होती है । एक ही आत्मा सभी के हृदय में समाई हुई रहती है । हे पार्वती ! ये भी मैंने तुम्हें समझने के लिए ही कहा है, वरना आत्मा को एक बोलना भी सत्य नहीं होगा । तुम हृदय में विवेक करके देखलो ।

एक कहत द्वेत आभास कराई । जद्यपि तहँ कोउ दूसर नाई ॥
एक कहहि नहिं सत्य सुहाए । सो कोउ कोउ ऐहि शून्य बताए ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! एक कहने पर तो स्वतः ही दूसरे का आभास हो जाता है और आत्म तत्व में तो दूसरा कोई होता ही नहीं है । अतः आत्मा को एक

कहना भी सही नहीं है। इसलिए तो कुछ लोगों ने आत्मा को शून्य बताया है।

शून्य सोउ नहिं सत्य सरूपा। कहत शून्य लेइ आकार अनूपा ॥
कहउँ अनेक सत्य न होई। जानहउ उमा चहुँदिसि सोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा को शून्य कहना भी सत्य नहीं होगा क्योंकि शून्य कहते ही तो एक आकार का आभास हो जाता है। आत्मा को अनेक कहना भी सत्य नहीं है, अतः हे पार्वती ! तुम आत्म तत्व को चारों दिशाओं में व्यापक जानों।

उमा सत्य इहँ कहहिं न जाई। समझत हेतु संकेत कराई ॥
निज अनुभव होवइ विवेका। मिटहिं भ्रम तब एक अनेका ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सत्य तो यह है कि आत्म तत्व का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसे तो केवल समझने के लिए इशारा मात्र किया जा सकता है। हे पार्वती ! स्वयं के अनुभव से विवेक पैदा होता है, जिससे एक व अनेक का भ्रम मिट जाता है।

दो० – कहत चाहत उमा जो मैं सो नहिं मोतें कहत बनाय ।
अकथ अगाध अनन्त आत्मा निज घट जानिन करो उपाय ॥४०॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्म तत्व के बारे में जो मैं कहना चाह रहा हूँ, वो मैं कह नहीं पा रहा हूँ। हे पार्वती ! आत्मा तो अकथनीय, अगाध व अनन्त होती है, इसलिए स्वयं के हृदय में ही उसे जानने का प्रयास करो।

एक ही तत्व अनेक लगाए। अनेक पुनि एक तत्व बनाए ॥
उभय मत नहिं किछु भेदा। समझहुँ घट मिटहिं सब खेदा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! एक ही आत्म तत्व नाना रूपों में दिखने लगता है और फिर अनेकों रूपों में एक ही तत्व का आभास होने लगता है। इसलिए ''आत्मा एक है'' या ''अनेक है'' कहने में कोई अन्तर नहीं है। तुम अपने हृदय में समझो, जिससे समस्त क्लेशों का नाश हो जायेगा।

शून्य अशून्य आकार निराकारा। सर्वत्र आत्मा भाव अनुसारा ॥
भाव मूल तुम जानहु भवानी। निज घट आत्मा परइ पहिचानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! शून्य, अशून्य, आकार व निराकार सबमें आत्मा ही भाव के अनुसार व्याप्त होती है। अतः हे पार्वती ! तुम भावों के मूल को जान लो, जिससे तुम्हारे हृदय में ही आत्म तत्व जानने में आ जायेगा।

आकाशवत उमा आत्मा हमारी। तिहु काल सब दिसि इकसारी ॥
द्वेत सहित व्यापक समाना। गिरिनन्दनी इहँ आत्म ग्याना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! हमारी आत्मा तो आकाश के समान होती है, जो तीनों काल

व सब दिशाओं में समान रूप से व्यापक रहती है। आत्मतत्व तो द्वेत रहित (अर्थात दूसरा कोई नहीं) होकर सर्वत्र व्याप्त रहती है। हे गिरिनन्दनी! यही आत्म ज्ञान है।

आत्मा निजहिं प्रकाशक होई। जग प्रकाशित बल आत्मा सोई ॥
अविद्या हेतु भासित संसारा। रज्जुबत अहि भ्रम अधारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा तो स्वयं ही प्रकाश करने वाली होती है तथा आत्मा के बल पर ही समस्त जगत प्रकाशित हो रहा है। माया के कारण ही संसार का आभास होता है, जैसे भ्रम के कारण रस्सी में सर्प का आभास होता है।

दो०–अविद्या हेतु दुःख भासहिं अविद्या हेतु भासित संसार।
विगत अविद्या सुख बचहि सोइ आत्मा आनन्द आधार ॥४१॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अविद्या के कारण ही संसार में दुःखों का आभास होता है और अविद्या के कारण ही संसार का आभास होता है। अतः जब अविद्या मिट जाती है, तो सुख बच जाता है। इसलिए आत्मा आनन्द का आधार होती है।

सुख स्वरूप आनन्द राशी। आत्मा अजर अमर अविनाशी ॥
आत्म ग्यान सोई नित्य ग्याना। शास्त्र शोधक सकल बखाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा तो सुख स्वरूप, आनन्दराशी, अजन्मा, अमर व अविनाशी होती है। समस्त शास्त्र शोधकों ने भी आत्मा के ज्ञान को ही सत्य ज्ञान बताया है।

पंच भूत नहिं आत्मा सुहाई। ब्रह्म परिपूर्ण सब दिसि छाई ॥
शब्द रूप रस गंध न आई। आत्मा अनुपम छुआ न जाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आत्मा पाँच भूत तत्व भी नहीं होती है। वह तो परिपूर्ण ब्रह्म है, जो सब दिशाओं में छाई हुई है। आत्मा में शब्द, रूप, रस, गन्ध व स्पर्श भी नहीं होता है। वह तो अनुपम तत्व होती है।

ब्रह्माण्ड देह आत्मा धारक। प्रकृति सोई जग विस्तारक ॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड नहिं किछु भेदा। समझहु घट मिटहिं सब खेदा ॥

व्याख्या – यह ब्रह्माण्ड एक शरीर है, जिसको समष्टि स्वरूप आत्मा ने धारण कर रखा है तथा प्रकृति शक्ति ही जगत का विस्तार करने वाली है। जीव के शरीर और ब्रह्माण्ड शरीर में कोई अन्तर नहीं होता है। इसलिए इस रहस्य को हृदय में समझ लेना चाहिए, जिससे सब कष्टों का निवारण हो जाता है।

बिनु जानहि नहिं भ्रम नसाई। जब लगि भ्रम ग्यान न पाई ॥
सो सबु सारन इहँ सार सुहाई। निज अनुभव भ्रम देइ नसाई ॥

व्याख्या – आत्मा को जाने बिना भ्रम (अविद्या) का नाश नहीं होता है और जब

तक भ्रम (अविद्या) रहता है, तब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। इसलिए सब बातों की एक ही बात है कि स्वयं के अनुभव से ही भ्रम का नाश हो सकता है।

दो०—आत्म शोधक नाथ तुम करतल पदारथ चारि तुम्हार।
अनुभूति विधि सरल काह कहउ नाथ होइ मोर उपकार ॥४२॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप तो आत्म तत्व का शोधन करने वाले हैं तथा चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) आपके हाथ में है। अतः हे नाथ ! आत्मा की अनुभूति करने की सरल विधि क्या है ? आप मुझे समझा कर मेरा उपकार कर दीजिए।

गिरिनन्दनी तुम जानत सबाई। पूँछहहि हेतु जगत भलाई ॥
ऐहि मिस तुम चाहत सत्संगा। उमा प्रश्न सुनि उठत उमंगा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम तो सब कुछ जानती ही हो, परन्तु तुम तो जगत के कल्याण के लिए पूछ रही हो। इसी बहाने से तुम सत्संग करना चाहती हो। हे उमा ! आपके प्रश्न को सुनकर मेरे मन में प्रसन्नता हो रही है।

मिस ऐहि गूढ़ मरम प्रकटाई। सुनत भनत जग होइब भलाई ॥
उमा अब कहउँ अनुभव मोरा। होइब धन्य अनुसरइब थोरा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! इसी बहाने से गूढ़ रहस्य प्रकट होगा, जिसे सुनने व कहने पर जगत की भलाई होगी। हे उमा ! अब मैं मेरा अनुभव बताता हूँ, जिसका थोड़ा सा भी अनुसरण करने पर जीव धन्य हो जायेगा।

साधत सुगम नहिं मत कोरा। अनुभव सिद्ध सिद्धान्त मोरा ॥
ध्यान ग्यान भगति विवेका। लगहिं भिन्न पर सब ऐका ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मेरा मत केवल कोई मत नहीं है अपितु मेरा सिद्धान्त तो अनुभव से सिद्ध होने वाला है। हे उमा ! ध्यान, ज्ञान व भक्ति के मार्ग अलग-अलग लगते हैं परन्तु मूल रूप में ये सब एक ही होते हैं।

बिनु ध्यान ग्यान नहिं होई। बिनु ग्यान भगति पाव कि कोई ॥
ध्यान मूल ग्यान तनु समाना। भगति जानहउ उमा शाखा नाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! बिना ध्यान के ज्ञान नहीं हो सकता है और बिना ज्ञान के भक्ति नहीं मिल सकती है। हे उमा ! ध्यान को पेड़ की जड़, ज्ञान को तना और भक्ति को पेड़ की शाखाओं के रूप में जानना चाहिये।

दो०—ध्यान ग्यान भगति एक सब समझउ निज मति अनुसार।
छोट बड़ मानत अग्यता सकल मत उमा इहँ एक सार ॥४३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! ध्यान, ज्ञान व भक्ति सब एक ही होते हैं। इसे स्वयं की बुद्धि के अनुसार समझ लो। इनको आपस में छोटा-बड़ा कहना ही अज्ञान

होता है । यही समस्त मतों का सारांश है ।

तीनउ मूल उमा भाव सुहाई । समझहु भाव सब भ्रम मिटाई ॥
भाव भूमि बिनु लगई न गाछा । अनुभव सिद्ध इहँ मत साँचा ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! ध्यान, ज्ञान व भक्ति इन तीनों का मूल तो भाव ही होते हैं । इसलिए भावों को समझने से सब संशयों का नाश हो जाता है । हे पार्वती ! बिना भाव रूपी भूमि के ध्यान, ज्ञान व भक्ति रूपी पेड़ नहीं लग सकता है । यह मेरा सिद्धान्त अनुभव से सिद्ध किया हुआ है, इसलिए सत्य है।

उमा जीव भाव उभय प्रकारी । समष्टि व्यष्टि मम अनुसारी ॥
व्यष्टि भाव माया उपजाई । काम क्रोध मद लोभ सबाई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! मेरी मति के अनुसार जीव के भाव दो प्रकार के होते हैं, जो एक तो समष्टि के भाव और दूसरे व्यष्टि (वृतिगत) के भाव होते हैं। व्यष्टि के भाव पैदा होने से माया पैदा हो जाती है । काम, क्रोध, मद व लोभ से सब व्यष्टि के भाव होते हैं ।

व्यष्टि भाव जगत आधारा । समष्टि भाव ग्यानादि सहारा ॥
समष्टि भाव चेतन सुहाई । व्यष्टि भाव प्रकृति कहाई ॥

व्याख्या — व्यष्टि के भावों से संसार को आधार मिलता है और समष्टि के भावों से भक्ति, ध्यान व ज्ञान को सहारा मिलता है । समष्टि के भाव चेतन कहलाते हैं और व्यष्टि के भाव प्रकृति कहलाते हैं ।

भाव द्वन्द भव सागर बनाई । वृति भव जल भँवर सुहाई ॥
भव द्वन्द भँवर गूफा होई । गुरु कृपा समझइ कोई कोई ॥

व्याख्या — भावों के आपसी द्वन्द से ही भवसागर बनता है तथा जिसके भाव रूपी जल में वृतिरूपी भँवर पड़ते रहते हैं और भावों के द्वन्द से ही भँवर गूफा बनती है, जिसको गुरु की कृपा से कोई-कोई ही समझ पाते हैं ।

दो०—भाव मरम जब समझ परे तबहिं वृति जाल निरुआय ।
वृति ते जब निवृति होवइ जीव तब सहज परम पद पाय ॥४४॥

व्याख्या — जब भावों का रहस्य समझ में आ जाता है, तब वृति का जाल सुलझ जाता है और वृति से जब निवृत्ति हो जाती है, तब जीव सहज में ही परमपद प्राप्त कर लेता है ।

प्रथम समझहु उत्पत्ति भावा । भाव समूह सोइ मन कहावा ॥
बिनु भाव मन समझ न आई । मन बिनु नहिं मारग मिलाई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! पहले भावों की उत्पत्ति के रहस्य को समझ लो, क्योंकि भावों

का समूह ही मन कहलाता है और बिना भावों को जाने मन समझ में नहीं आता है और बिना मन के जाने रास्ता नहीं मिल सकता है ।

भाव मरम सो कहउँ समुझाई । जानत जेहि भव जाल कटाई ॥
चित ते प्राण अरु प्राण ते भावा । स्वर साधन करहिं आवा जावा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम्हें भावों के रहस्य को समझा कर बताता हूँ, जिसको जानते ही भावों का जाल कट जायेगा । हे पार्वती ! जीव के चित्त से प्राण पैदा होते हैं और प्राणों से भाव पैदा होते हैं तथा स्वरों (चन्द्र, सूर्य, सुष्मना, तुरीया और तुरीयातीत) के माध्यम से भावों का आवागमन होता रहता है ।

प्राण दस सब वेद बखानी । जद्यपि मैं चौरासी अनुमानी ॥
समष्टि व्यष्टि प्राण विधाना । नहिं भेद उभय एक समाना ॥

व्याख्या – हे उमा ! वेदों में दस प्रकार के प्राण बताए गये हैं परन्तु मैंने चौरासी प्रकार के प्राणों का अनुभव किया है । समष्टि के प्राणों और व्यष्टि के प्राणों में कोई भेद नहीं होता है । इन दोनों की समान व्यवस्था होती है।

प्रति प्राण लच्छ भाव उपजाई । सोई योनि लख चौरासी कहाई ॥
जो जो होवई ब्रह्माण्ड शरीरा । सो सब घटहिं निज घट धीरा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्र त्येक प्राण से एक लाख भावों की उत्पत्ति होती है इसलिए समस्त सृष्टि में चौरासी लाख योनियाँ बताई गयी हैं । हे धैर्यवान ! जो जो ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में घटित होता है, वो सब स्वयं के शरीर में भी घटित होता है ।

दो०– तीन लोक सौ वृति पंच स्वर बटहिं पुनि त्रिगुण त्रिधार चलाय ।
वृति स्वर लोक अनुसार भिन्न सब गुण भाव भव सिन्धु बनाय ॥४५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भाव तीन लोक, सौ वृतियाँ व पाँच स्वरों में बट कर सत, रज, तम की त्रिधारा में चलने लगते हैं । फिर ये सब भाव वृति, स्वर व लोक के अनुसार अलग-अलग हो जाते हैं और इस प्रकार गुण व भाव मिलकर भव सिन्धु बन जाते हैं ।

पद पाताल सीस ब्रह्म लोक सुहाई । धड़ धरती पृथ्वी लोक कहाई ॥
मन शत रूप सौ भाव कहाई । सोई वृति बनि जीव नाच नचाई ॥

व्याख्या – शरीर के पैर पाताल लोक व मस्तिष्क ब्रह्मलोक (आकाश लोक) व धड़ ही पृथ्वी लोक कहलाता है । मन के सौ रूप ही सौ भाव (स्वभाव) होते हैं, जो सौ वृति बन कर जीव को नाच नचाते रहते हैं ।

चन्द्र सूरज सुष्मन नारी । तुरीया स्वर चउथ पुकारी ॥
तुरीयातीत पंचम स्वर सुहाई । पहुँचहिं जीव परम पद पाई ॥

व्याख्या – चन्द्र, सूर्य व सुष्मना ये तीन स्वर होते हैं तथा तुरीया चौथा स्वर कहलाता है तथा तुरीयातीत अवस्था पंचम स्वर कहलाती है, जिसमें पहुँचने पर जीव परम पद प्राप्त कर लेता है ।

भाव गुण धार स्वर चलाई । स्वर अनुसार वृति बदलाई ॥
वृति अनुहार गुण प्रकटाई । भाव वृति गुण ग्रन्थि पराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भाव व गुणों की धारा के अनुसार ही स्वर संचालित होते हैं और स्वरों के अनुसार जीव की वृति बदलती रहती है तथा वृति के अनुसार गुणों की धारा प्रकट होती रहती है । इस प्रकार भाव, वृति व गुणों की ग्रन्थि पड़ जाती है ।

जीवात्मा तहँ जाइ उलझाई । उरझ उरझ ग्रन्थि दृढ़ाई ॥
गुरु कृपा ग्रन्थि परइ दिखाई । जोग जुगति जो सकइ खुलाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जीवात्मा उस भाव, वृति व गुणों की ग्रन्थि में उलझ जाती है और उलझ-उलझ कर उस ग्रन्थि को मजबूत करती रहती है । गुरु की कृपा से ही ग्रन्थि दिखायी पड़ती है, जिसे योग की युक्ति से ही खोला जा सकता है।

दो०–भाव ग्रन्थि मरम जानइ बिनु उमा नहिं हियँ ग्यान उमगाय ।
बिनु ग्यान जीव पशु सम मानव जन्म लियेउ बिरथा गवाँय ॥४६ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भावों की ग्रन्थि के रहस्य को जाने बिना हृदय में ज्ञान पैदा नहीं होता है और बिना ज्ञान के तो जीव पशु के समान ही होता है । अतः उसका मनुष्य का जन्म लेना भी व्यर्थ चला जाता है ।

सो कहउँ उमा मरम विस्तारी । नाहिं ताते कोउ ग्यान अगारी ॥
स्वर मरम प्रथम समुझाई । भाव अनुसार केहि विधि चलाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुमको अब विस्तारपूर्वक रहस्य को बताता हूँ, जिससे बड़ा संसार में कोई दूसरा ज्ञान नहीं होता है । सबसे पहले मैं तुम्हें स्वरों के रहस्य को बताता हूँ कि ये स्वर भावों के अनुसार कैसे संचालित होते हैं ।

प्रथम स्वर ईड़ा नारी सुहाई । ऋषि मुनि जाहि चन्द्र बताई ॥
तम गुण तहँ धार चलाई । काम मदादि भाव उपजाई ॥

व्याख्या – पहला स्वर ईड़ा नारी द्वारा चलता है, जिसे ऋषि-मुनियों ने चन्द्र स्वर बताया है । चन्द्र स्वर में तमो गुण की धारा प्रवाहित होती है, जिसमें काम व मद आदि के भाव पैदा होते रहते हैं ।

मत्सर लोभ क्षोभ मोह अपारा । चौर्य अशोच हिंसा नाना प्रकारा ॥
मैथुन प्रमाद तामसिक आहारा । ऐ चन्द्र स्वर लच्छन सारा ॥

व्याख्या – मत्सर, लोभ, क्रोध, मोह, चोरी का भाव, अपवित्रता, नाना प्रकार की हिंसा, मैथुन, प्रमाद व तामसिक भोजन करना, ये सब चन्द्र स्वर के लक्षण होते हैं।

तम प्रभाव होइ देहाभिमाना । सोइ जीव बन्ध घोर अग्याना ।
पूजहहिं भूत प्रेत पिशाचा । तन्त्रादि मूढ़ जन मन राँचा ॥

व्याख्या – तमों गुण के प्रभाव से जीव को देहाभिमान हो जाता है और यही देहाभिमान का भाव जीव का बन्धन बनकर अज्ञान पैदा कर देता है । जिसके कारण मूर्ख जीव भूत, प्रेत व पिशाचों की पूजा करने लग जाता है और उसको तन्त्र विद्या पर विश्वास हो जाता है ।

दो०–देह सुख सोई लच्छ जीव का चन्द्र स्वर जब चलाय ।
श्याम वर्ण तमो गुण धार की सोई ईड़ा जमुना सरित कहाय ॥ ४७॥

व्याख्या – जब चन्द्र स्वर चलता है, तब शरीर का सुख ही जीव का लक्ष्य हो जाता है । तमो गुण से पैदा होने वाले भावों का श्याम वर्ण होता है, इसलिए ही ईड़ा नारी को यमुना नदी की उपमा भी दी जाती है ।

माया मोटी तमो गुण उपजाई । काम लालसा मद लोभ सबाई ॥
भाव माझ उठहहिं जब द्वन्दा । भाव अनुरूप बनहिं बुद्धि फन्दा ॥

व्याख्या – तमो गुणी धारा से मोटी माया पैदा होती है, जिसमें काम, लालसा, मद व लोभ आदि सभी भाव आते हैं । भावों के मध्य जब आपसी द्वन्द होता है, तो भावों के अनुसार बुद्धि का बन्धन पैदा हो जाता है ।

बुद्धि अनुसार होवहिं करमा । बुद्धि आयुस इन्द्रियादि धरमा ॥
कर्म अनुसार फल प्रकटाई । फल सुख दुःख आभास कराई ॥

व्याख्या – बुद्धि के अनुसार ही कर्म होने लगते हैं क्योंकि बुद्धि की आज्ञा मानना ही इन्द्रियों का धर्म होता है । कर्म के अनुसार फल की प्राप्ति होने लगती है तथा फल के अनुसार जीव को सुख दुःख का आभास होता है ।

भाव तें भाव सहज उपजाई । सहजहि माया वट लहलाई ॥
तामस भाव अधोलोक निवासा । करहउ उमा हृदय आभासा ॥

व्याख्या – भावों से भाव सहज में ही पैदा होते रहते हैं, जिससे सहज में ही माया का पेड़ लहलहाने लग जाता है । तामसिक भाव अधोलोक में निवास करते हैं । हे पार्वती ! तुम अपने हृदय में आभास करो ।

दूसर स्वर पिंगला नारी सुहाई । रजो प्रधान सब भाव उपजाई ॥
सुत वित यश लालसा अपारी । सुख आसक्ति बन्धन डारी ॥

व्याख्या – दूसरा स्वर पिंगला नारी द्वारा संचालित होता है, जिससे रजो गुण

प्रधान भाव पैदा होते हैं। रजो गुणी भावों से पुत्र, धन व यश की लालसा प्रबल हो उठती है और सुख के प्रति आसक्ति का भाव बन्धन बन जाता है।

दो०—राजस भाव द्वन्द चलहिं ताते बुद्धि राजस ही उपजाय।
बुद्धि अनुसार कर्म राजस सब फल आसक्ति जीव बहु सताय ॥४८॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जब राजसिक भावों में द्वन्द चलता है तो उससे राजसिक बुद्धि ही पैदा होती है तथा बुद्धि के अनुसार ही राजसी कर्म होते हैं तथा फल की आसक्ति जीव को बहुत सताने लगती है।

राजस भाव मध्यम माया सुहाई। काम क्रोध मद मोहादि सताई ॥
पृथ्वी लोक राजस भाव निवासा। गिरि नन्दनी करहु आभासा ॥

व्याख्या — राजसिक भावों में मध्यम माया का निवास होता है जिसमें काम, क्रोध, मद व मोह आदि के भाव जीव को बहुत सताते हैं। हे पार्वती ! राजसिक भावों का पृथ्वी लोक (उदर लोक) में निवास होता है। तुम इसका अनुभव करो।

तीसर स्वर सुष्मना नारी। सरस्वती जाहि निगम पुकारी ॥
सत प्रधान इहँ भाव उपजाई। दया दान करुणादि भाव सबाई ॥

व्याख्या — तीसरा स्वर सुष्मना नाड़ी द्वारा संचालित होता है, जिसे शास्त्रों में सरस्वती भी कहा गया है। सुष्मना नाड़ी में स्वर चलने पर सात्विक भाव पैदा होते हैं, जिसमें दया, दान व करुणा आदि के सब भाव आते हैं।

झीनी माया सुष्मना निवासा। तजि न जावइ कोटि प्रयासा ॥
यश इच्छा अरु कर्ता भावा। बनि झीनी माया जीव बंधावा ॥

व्याख्या — झीनी माया का निवास सुष्मना नाड़ी में होता है, जिसे करोड़ो प्रयासों से ही छोड़ा नहीं जा सकता है। यश की इच्छा और कर्तापन का आभास ही झीनी माया बन कर जीव को बाँधे रखती हैं।

भाव सात्विक ब्रह्माण्ड निवासा। सहज सुखद ग्यान प्रकासा ॥
भाव द्वन्द सत बुद्धि उपजाई। बुद्धि अनुहार सत कर्म हुआई ॥

व्याख्या — सात्विक भावों का निवास ब्रह्माण्ड लोक (मस्तिष्क) में होता है, जो सहज में सुख देने वाले व ज्ञान का प्रकाश करने वाले होते हैं। सात्विक भावों के आपसी द्वन्द से सात्विक बुद्धि पैदा होती है तथा बुद्धि के अनुसार सात्विक कर्म ही होने लगते हैं।

दो०—सत रज तम भाव सकल मिलहि सोइ तबहिं मन कहाय।
त्रिनारी संगम गिरि त्रिकुट सोइ जीव मन निवास सुहाय ॥४९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सात्विक, राजसिक व तामसिक सारे भाव जब मिल जाते हैं, तो ये सब भाव ही मन कहलाते हैं । तीनों नाड़ियों (ईड़ा, पिंगला व सुष्मना) का संगम स्थल ही त्रिकुट पर्वत कहलाता है, जो कि जीव के मन का निवास स्थान होता है ।

भाव ते भाव सदा उपजाई । गुण अनुरूप वृति धार बनाई ॥
वृति अरु मन ग्रन्थि पराई । उभय विस्तार जगत बनाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भाव से भावों की उत्पत्ति होती रहती है और भावों के गुणों के अनुरूप वृतियाँ बनती रहती हैं । इस प्रकार वृति और मन की ग्रन्थि पड़ जाती है तथा मन व वृति से ही जगत का निर्माण होने लग जाता है ।

मन परिचय सुष्मन कराई । सुष्मन पार मन ग्रन्थि खुलाई ॥
खुलइ ग्रन्थि मन वृति अलगाई । भल मन्द पार गुणातीत कहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सुष्मना नारी के जाग्रत होने से मन का परिचय हो जाता है तथा सुष्मना नारी के पार जाने पर मन की ग्रन्थि खुल जाती है और ग्रन्थि खुलने से मन व वृतियाँ अलग-अलग हो जाती हैं तथा वह अवस्था अच्छे-बुरे से परे गुणातीत कहलाती है ।

स्वर चउथ तुरिया कहाई । गुणातीत तहँ अवस्था सुहाई ॥
मन रहइ पर नहिं मन प्रभावा । अनमन अवस्था सोई कहावा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! चौथा स्वर तुरीया स्वर होता है, जिसके संचालित होने पर गुणातीत अवस्था आ जाती है । गुणातीत अवस्था में मन का अस्तित्व रहता तो है परन्तु मन का प्रभाव नहीं रहता है । उसी अवस्था को उन्मन अवस्था कहा जाता है ।

वृति मरम तहँ समझ पराई । प्रकृति अनुकूल रहइ सदाई ॥
ऋद्धि सिद्धि सब करहिं सेवकाई । पद भगवान जीवात्मा पाई ॥

व्याख्या – तुरीया अवस्था में वृतियों का रहस्य समझ में आ जाता है तथा प्रकृति सदा जीवात्मा के अनुकूल रहने लग जाती है, जिससे सब ऋद्धि-सिद्धियाँ सेवा करने लग जाती हैं तथा जीवात्मा भगवान के पद को प्राप्त कर लेती हैं ।

उमा नहिं मन संशय लाई । भग वश भगवान कहाई ॥
घटहिं तब नाना चमत्कारा । तुरीया स्वर महिमा अपारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मन में संशय मत करो क्योंकि जो प्रकृति (भग) को वश में कर लेता है, वह भगवान के पद को प्राप्त कर लेता है । उस अवस्था में नाना

चमत्कार होने लगते हैं। तुरीया स्वर की महिमा अपरम्पार होती है।

दो०–तुरीया त्रिगुण सन्धि निरुअइ तहँ सहज अवस्था आय।
गुण गुण से बरतहहिं सदा सोई कर्म निष्काम कहाय ॥५०॥

व्याख्या – तुरीया स्वर में पहुँचने पर तीन गुणों (सत, रज, तम) की ग्रन्थि सुलझ जाती है, जिससे जीवात्मा की सहज अवस्था आ जाती है। उस अवस्था में गुण गुणों में बरतने लगते हैं और उसी को निष्काम कर्म की अवस्था कहा जाता है।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण चतुर्विंशति पड़ाव ॥

तुरीया विगत सब मोह भावा। मोह क्षय सोई मोच्छ कहावा ॥
निज स्वरूप जीव तहँ जानी। प्रकृति लय होइ मन अनुमानी ॥

व्याख्या – तुरीया की अवस्था में मोह के भाव मिट जाते हैं और मोह का क्षय (नाश) होना ही मोक्ष (मोक्ष+क्षय) कहलाता है। उस अवस्था में जीव स्वयं के स्वरूप को जान लेता और उसमें प्रकृति लय हो जाती है, जिससे उसकी मन की इच्छानुसार गति होने लग जाती है।

नारी पुरुष मिटहिं सब भेदा। आनन्द मगन विगत सब खेदा ॥
भल भन्द नहिं तहँ विचारु। सब विधि सहज जीव आचारु ॥

व्याख्या – तुरीया अवस्था में स्त्री-पुरुष का भेद भी मिट जाता है तथा जीव आनन्द में मगन हो जाता है और उसके सब कष्ट मिट जाते हैं। उस अवस्था में अच्छे-बुरे का विचार भी नहीं रहता है तथा जीव सब प्रकार से सहज होकर व्यवहार करने लगता है।

चित्रवत लगहिं सब संसारा। तुरीया ध्यान आनन्द अपारा ॥
मन मूल तहँ परइ समुझाई। वासना शांत सहजता आई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुरीया में समस्त चित्रवत लगने लगता है, इसलिए तुरीया की ध्यान अवस्था बहुत ही आनन्द देने वाली होती है। उस अवस्था में मन का मूल समझ में आ जाता है और वासनाएँ शान्त हो जाती हैं, जिससे सहजता आ जाती है।

अचल आत्मा प्रभु प्रीत लगाई। पुलकित गात बरनिन जाई ॥
स्तुति भाव उठहिं तब नाना। सोई सुनु उमा कहउँ बखाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! उस अवस्था में आत्मतत्व स्थिर हो जाता है और परमपिता से प्रीत लग जाती है, जिससे शरीर पुलकित हो उठता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। उस समय परमपिता की स्तुति के नाना भाव

उठने लगते हैं, उसी भाव अवस्था को तुम्हें बताता हूँ । सुनो –

भक्त वत्सलम् सहज दयालम् । घट घट वासितं परम कृपालम् ॥
प्रकृति पारम सर्व गुण धामम् । अनन्त स्वरूपं अनन्त नामम् ॥

व्याख्या – हे भक्त वत्सल ! आप सहज में ही दयाल हैं और सबके हृदय में निवास करने वाले तथा परम कृपालु हैं । आप प्रकृति से परे तथा समस्त गुणों के घर हैं । आपके अनन्त रूप व अनन्त नाम हैं ।

पारब्रह्म आत्माधारं परमेश्वरम् । अन्नमूलम् त्वम् जगतेश्वरम् ॥
सर्वपालकम् त्वम जीव जनकम् । सत् चित आनन्दम् सर्वव्यापकम् ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! आप पारब्रह्म, आत्मा के आधार व परमेश्वर हैं। आप अन्न के मूल (पंच भूत) व जगत के ईश्वर हैं । आप सबके पालनकर्ता व जीव को जन्म देने वाले हैं । आप चित्त की आनन्दमय अवस्था में सर्वव्यापक हैं।

राग द्वेष मदादि नाशकम् । विग्यानघनं आनन्द दायकम् ॥
संशय सर्प ग्रसन हेतु गरुड़म् । नमामी निरन्तर जीव नाथम् ॥

व्याख्या – हे आनन्ददायक ! आप राग, द्वेष व मद आदि का नाश करने वाले हैं । आप विज्ञान के घर हैं । आप संशय रूपी सर्पो के नाश के लिए गरुड़ के समान हैं । अतः हे जीव के स्वामी ! आपको निरन्तर नमस्कार हो ।

निर्गुण सगुणं सदा सर्वाकारम् । अमल अखिलं त्वम मन पारम् ॥
मोह निसा नाशकं दिवाकरम् । दुस्तर भव सागर निस्तारकम् ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आप निर्गुण, सगुण व सभी आकारों में सदैव विद्यमान रहते हैं । आप पवित्र व अखिल रूप हैं तथा मन की सीमा से परे हैं । आप मोहरूपी रात्रि का नाश करने के लिए सूर्य हैं । आप इस कठिन भव सागर को पार कराने वाले हैं ।

नमामी विश्वेश्वरम् नमामी परमेश्वरम् । अहम त्वमेव शरणम् त्वमेव शरणम् ॥
देवहु भगति मोहि निष्कामम् । त्राहिमाम् त्राहिमाम् सर्वनाथम् ॥

व्याख्या – हे विश्व के ईश्वर ! आपको नमस्कार । हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार । मैं आपकी शरण में हूँ । आपकी शरण में हूँ । हे प्रभु ! मुझे निष्काम भक्ति दीजिए । हे सबके मालिक ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

दो०–विनय सिन्धु उमगहिं तब बहवहिं श्रद्धा नदी बहोरि ।
परम पिता शरण भल लगहिं उमा इहँ अनुभव मोरि ॥५१॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुरीयावस्था में विनय का समुद्र उमड़ने लग जाता है

तथा श्रद्धा रूपी नदी बहने लग जाती है । जिससे परम पिता की शरण अच्छी लगने लग जाती है । हे पार्वती ! यह मेरा अनुभव है ।

छ० –**तुरीया ग्याना अद्‌भुत जाना बेद न सकहिं महिमा गाई ।**
लगावहि ध्याना होवइ ग्याना सहज जीव परम गति पाई ॥
चिन्हहि जीव सरूपा आनन्द अनूपा सोइ हरि गुण गन गावहिं ॥
विरह अनल अति प्रबल बिनु प्रियतम विरहन रहन पावहिं ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुरीया का ज्ञान अद्‌भुत ज्ञान होता है, जिसकी महिमा का वर्णन वेद भी नहीं कर सकते हैं । ध्यान लगाने पर ही तुरीया का ज्ञान होता है, जिससे जीव को सहज में ही परम गति प्राप्त हो जाती है । तुरीया में जीव अपने निज स्वरूप को जान लेता है और जीव मन से मुक्त होकर परमात्मा के गुण गान करने लगता है । उस अवस्था में विरह की अग्नि प्रबल हो जाती है, जिससे आत्मारूपी विरहणी परमात्मा रूपी प्रियतम के बिना रह नहीं पाती है।

दो०– **मन अमन चैन परम तहँ पर विरह अनल हियँ सुलगाय ।**
प्रेम बरसा विरहणि भीजै प्रेम जल अरु अनल प्रबलाय ॥५२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मन जब अमन की अवस्था में आ जाता है, तब परम शान्ति आ जाती है परन्तु जीवात्मा के हृदय में विरह रूपी अग्नि जलने लग जाती है और जीवात्मा रूपी विरहणि प्रेम रूपी वर्षा में भींगने लगती है तथा प्रेम रूपी जल से विरह की अग्नि और प्रबल हो उठती है ।

कारण विरह आत्मा अकुलाई । तुरीया तजि लोक प्रियतम जाई ॥
पंचम स्वर सोई तुरीयातीता । तहँ मिलहहिं बिरहणि प्रीता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! बिरह के कारण आत्मा व्याकुल हो उठती है, जिसके कारण तुरीया अवस्था को छोड़कर अपने प्रियतम (परमात्मा) के लोक को जाने लगती है । वही तुरीया से परे की अवस्था पंचम स्वर कहलाती है, जहाँ पर जीवात्मा रूपी बिरहणि को परमात्मा रूपी पति की प्राप्ति हो जाती है।

प्रियतम मिलहिं आनन्द छाई । महाभाव अवस्था तहँ आई ॥
होवहिं जीव तहँ भव पारा । भावातीत सोई योग आधारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! उस अवस्था में जीवात्मा को परमप्रिय परमात्मा मिल जाते हैं, जिससे आनन्द छा जाता है । जीवात्मा की इसी अवस्था को महाभाव की अवस्था कहा जाता है । जीवात्मा जब भावों से मुक्त हो जाती है, तब वह अवस्था भावातीत की होती है, जो कि परमात्मा से मिलने का आधार होती है।

मैं मैं मिटहहिं तहँ मैं मैं होई । निरामय सतचित आनन्द सोई ॥
व्यष्टि समष्टि जुरहहिं संगा । माया विगत होइ प्रीति अभंगा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! उस अवस्था में मैं मैं अर्थात अहंकार पूरी तरह मिट जाता है और मैं ही मैं अर्थात परमात्मामय अवस्था आ जाती है । वह अवस्था ही अहंकार रहित सतचित आनन्द की अवस्था होती है । जिससे समष्टि और व्यष्टि एक हो जाते हैं और माया मिटकर अटूट प्रीत हो जाती है ।

बिनु बाणी तहँ परइ सुनाई । कर बिनु करम होत सबाई ॥
बिनु अहार सकल रस पाई । सब भांति अकथ बरनिन जाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! उस अवस्था में बिना वाणी के ही सुनाई देने लगता है तथा बिना हाथों के ही कर्म होने लगते हैं । तब बिना भोजन किए ही समस्त रसों की प्राप्ति होने लग जाती है । वह अवस्था सब प्रकार से अकथनीय होती है, इसलिए उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दो०- पंचम स्वर प्रभु बोलहहिं करुणा द्वार देवहहिं खुलाय।
हिम बिलगत अब नीर भई नीर नीर नहिं भेद रहाय ॥५३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! पंचम स्वर में परमात्मा बोलने लगते हैं तथा करुणा के द्वार को खोल देते हैं । उस अवस्था में बर्फ पिघलकर जल बन जाती है, जिससे आत्मा रूपी जल और परमात्मा रूपी जल में भेद नहीं रह पाता है ।

नहिं दरकार जप तप ध्याना । रहइ जीवात्मा तहँ मस्ताना ॥
महाभाव मगन रहइ सदाई । भोग मोच्छ नहिं चाह सुहाई ॥

व्याख्या – उस अवस्था में जप, तप व ध्यान की भी आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि जीवात्मा तो वहाँ मस्त होकर रहने लगती है और वहाँ सदा महाभाव में मगन हो जाती है, जिसके कारण मोक्ष और भोग दोनों की ही इच्छा नहीं रहती है ।

ध्यान ग्यान भगति सबाई । होवहिं एक महाभाव समाई ॥
विषय रस सहज तजाई । घट अन्दर समता आई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! ध्यान, ज्ञान व भक्ति सब एक होकर महाभाव में समा जाते हैं तथा विषय रस का सहज में ही त्याग हो जाता है तथा हृदय में समता आ जाती है ।

एकहि तत्व दिखहिं चहुँओरा । माया भाव मिटहिं सब तोरा मोरा ॥
निज निजहिं करहि नमस्कारा । आत्म तत्व भासहहिं इकसारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! चारों तरफ एक ही तत्व दिखाई पड़ने लगता है तथा माया के मेरे-तेरे के सब भाव मिट जाते हैं । उस समय आत्म तत्व एक समान आभासित होने लगता है और स्वयं ही स्वयं को नमस्कार करने लगता है ।

चेतन अमल सहजता आई । सो परम अवस्था बरनिन जाई ॥
निज समझहु निज घट मांई । उमा मरम अरु कहा न जाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब चेतन आत्मा निर्मल हो जाती है, तो सहजता आ जाती है, अतः उस परम अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता है । हे पार्वती! तुम स्वयं के हृदय में ही समझो क्योंकि अब और रहस्य को बताया नहीं जा सकता है ।

दो०–बिनु भाव उमा वाणी नहिं पंचम स्वर नहिं भाव सुहाय ।
परम अवस्था परमानन्द अति बिनु वाणी सोइ कहा न जाय ॥५४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! बिना भाव के वाणी पैदा नहीं हो पाती है तथा पंचम स्वर में भावातीत अवस्था होती है, इसलिए वह परम अवस्था परमानन्द की अवस्था होती है । जिसे बिना बाणी के कहा नहीं जा सकता है ।

धन्य जगतपति प्राण पियारे । जन्म सफल अनुग्रह तिहारे ॥
गूढ़ ग्यान नाथ दीन्ह बताई । विधिहु मोहि अब देउ समुझाई ॥

व्याख्या – हे प्राण प्रिय जगतपति ! आप धन्य हैं । आपकी कृपा से जीव का जन्म सफल हो जाता है । हे नाथ ! आपने ज्ञान के रहस्य को तो बता दिया है, अब कृपा करके ज्ञान प्राप्त करने की विधि (प्रक्रिया)को भी समझा दीजिए।

उमा धन्य धन्य भाग्य तुम्हारा । गदगद होत हृदय हमारा ॥
परम तत्व जेहि जाननि चाई । सोई सम प्रिय मोहि कोउ नाई ॥

व्याख्या –हे पार्वती! तुम्हारा भाग्य धन्य है । मेरा हृदय अब गदगद हो रहा है क्योंकि जो परमतत्व को जानना चाहते हैं, उनके समान मुझे कोई प्रिय नहीं होता है ।

मम हृदय भा उमा विश्वासा । प्रभु अब कीन्ह कृपा अनायासा ॥
उमा बहु जन्म लीन्ह पिछारी । ऐहि सम मति न भयी तुम्हारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब मेरे हृदय में विश्वास हो गया है कि परमपिता ने अचानक कृपा की है । वरना तुम्हारे तो पिछे बहुत जन्म हो चूके हैं, परन्तु अब जैसी बुद्धि तुम्हारी कभी नहीं हुई ।

जब कृपा करहिं जगत के नाथा । हृदय भगति भाव उमगाता ॥
सोई दशा उमा भयी तुम्हारी । धन्य धन्य गिरिराज कुमारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब जगत के मालिक कृपा करते हैं, तब ही हृदय में भक्ति के भाव पैदा होते हैं । हे उमा ! तुम्हारी भी ऐसी दशा हुई है अतः हे पार्वती ! तुम धन्य हो, धन्य हो ।

दो०–सत्संग विधि जग दुर्लभ अति मिलहिं जब द्रवहहिं कृपाल ।
जन्म जन्म बन्ध कटहहिं पावत होवहहिं जीव निहाल ॥५५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! संसार में सत्संग की विधि बहुत दुर्लभ होती है । यह तो तभी मिलती है जब परमपिता कृपा करते हैं । परन्तु सत्संग की विधि प्राप्त हो जाने से जन्म-जन्म के बन्धन कट जाते हैं और जीव निहाल हो जाता है ।

सोई सरल विधि तोहि बताउँ । देश काल अनुकूल समझाउँ ॥
उमा नाम रूप अरु ध्याना । सत्संग साधन सकल बखाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं तुम्हें देश व समय के अनुकूल सरल विधि को बताता हूँ। सुनो – नाम, रूप व ध्यान को सत्संग का साधन बताया गया है ।

प्रथम कहउँ उमा नाम मरमा । ताहि बल चले प्रकृति धरमा ॥
रां नाम सब नाम न मूला । जपहि लय लाय होइ न शूला ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सबसे पहले मैं तुम्हें नाम के रहस्य को बताता हूँ, जिसके बल पर समस्त प्रकृति का धर्म चलता है । राम का नाम ही सभी नामों का मूल होता है, जिसका लय लगाकर जप करने से कोई कष्ट नहीं हो सकता है।

रां सोइ हिरण्यानल मूल सुहाई । रां ते प्रकटै सृष्टि सबाई ॥
शब्द मूल रां ररंकारा । रां ब्रह्म निरंजन निरंकारा ॥

व्याख्या – राम का नाम ही हिरण्यानल का मूल होता है, जिससे समस्त सृष्टि पैदा होती है । रां ररंकार ही शब्द का मूल होता है तथा रां ही ब्रह्म निरंजन व निरंकार होता है ।

मन अन्तर करहि जप रामा । मन अमन शान्ति परम धामा ॥
लय लाइ जपहि साधक जेहि । परम विश्राम पावहहिं तेहि ॥

व्याख्या – रां नाम का जप करने से मन अर्न्तवृति हो जाता है और मन जब अमन (मन का मिट जाना) हो जाता है, तो वह परम शान्ति की अवस्था होती है । जो साधक लय लगाकर रां नाम का जप करते हैं, उन्हें परम विश्राम मिल जाता है ।

दो०–उमा राम सोई मम ईष्ट हय ताहि बल पायहउँ परम विश्राम ।
सब भ्रम तजि राम जपउ पाइब तुम भक्ति निष्काम ॥५६॥

व्याख्या – हे पार्वती ! राम ही मेरे ईष्ट हैं तथा उनके बल पर ही मैंने परम विश्राम की अवस्था को प्राप्त किया है । इसलिए सब संशयों को छोड़ कर राम का जप करो । तुम्हें निष्काम भक्ति की प्राप्ति हो जायेगी ।

रां जप करहि चित निरोधा । थिर चित होहिं सम्यक बोधा ॥
सम्यक बोध ग्यान प्रगटाई । होइ ग्यान सब खेद मिटाई ॥

व्याख्या – राम के नाम का जप करने से चित का निरोध हो जाता है तथा चित का निरोध होने से सम्यक बोध हो जाता है तथा सम्यक बोध होने से ज्ञान

पैदा हो जाता है और ज्ञान पैदा होने पर सब कष्ट मिट जाते हैं ।

नाम जप विधि सरल बताउँ । मुक्ति मारग मरम समझाउँ ॥
निज इच्छा आसन लेउ लगाई । सुखासन जद्यपि भल सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम्हें नाम जप करने की सरल विधि बता देता हूँ तथा मुक्ति के मार्ग को भी समझा देता हूँ । सुनो – स्वयं की इच्छा के अनुसार आसन लगा लेना चाहिये, वैसे सुखासन सबसे अच्छा होता है।

बैठउ सोजा निहारउ श्वासा । आवत जावत करहु आभासा ॥
राम शब्द लेउ श्वास मिलाई । रा लेवहु म श्वास निकसाई ॥

व्याख्या – सीधा बैठकर स्वयं की श्वास को देखना चाहिये तथा आने व जाने वाली श्वास का आभास करना चाहिये तथा राम शब्द को श्वास के साथ मिला लेना चाहिये । रा के साथ श्वास लेनी व म के साथ श्वास छोड़नी चाहिए ।

मास दिवस करहहिं अभ्यासा । होवहिं ग्यान हियँ अनयासा ॥
हृदय रूप मरम प्रकटाई । उमा महिमा अमित नाम सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! एक मास नित्य श्वास को देखने व नाम जप का अभ्यास करने से अनायास हृदय में ज्ञान प्रकट हो जाता है तथा हृदय में रूप का रहस्य भी प्रकट हो जाता है । क्योंकि नाम की महिमा अपरम्पार होती है ।

दो०–रूप अनुसरहि नाम को बिनु नाम न रूप प्रगटाय ।
बिनु जानहिं मरम रूप को नहिं हियँ संशय मिटाय ॥ ५७ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! रूप सदा नाम का अनुसरण करता है, इसलिए बिना नाम के रूप प्रकट नहीं होता है तथा रूप के रहस्य को जाने बिना हृदय का संशय नहीं मिट पाता है ।

हृदय आवइ जब रूप विशेषा । समझ परहि जो नयन न देखा ॥
नाम रूप उभय अकथ कहानी । ऋषि-मुनि सब निज घट जानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब हृदय में रूप विशेष उतर आता है, तब वह सब कुछ समझ में आ जाता है, जिसे आँखों से देखा नहीं जा सकता है । नाम व रूप की कहानी अकथनीय होती है । इसके रहस्य को तो ऋषि-मुनियों ने अपने हृदय में ही जाना है ।

नाम रूप संग जुरहहिं भावा । हृदय स्वतः ग्यान प्रगटावा ॥
सुरता सोई उमा भाव सुहाई । ध्यान आधार सोई सुरताई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब नाम व रूप के साथ भाव जुड़ जाता है, तो हृदय में सहज में ही ज्ञान प्रकट हो जाता है । हे पार्वती ! भाव ही सुरता होता है,

इसलिए ध्यान का आधार भी सुरता ही होती है ।

जगमय भाव महामाया कहाई । प्रभुमय भाव सुरता सुहाई ॥
ध्यान अरु सुरता नहिं भेदा । जानहिं मरम मिटहिं सब खेदा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब भाव संसार में लगते हैं, तो वे भाव ही महामाया कहलाते हैं और जब भाव परमात्मा में लग जाते हैं तो वही भाव सुरता कहलाते हैं । ध्यान और सुरता में कुछ भी भेद नहीं होता है, इसलिए जो इस रहस्य को जान लेता है, उसके सब कष्ट मिट जाते हैं ।

ध्यान मरम सो कहउँ समुझाई । सरल ते सरल विधि देउँ बताई ॥
ईश मिलन मानुष ध्येय सुहाई । भाव साधन सो ध्येय यान कहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब तुम्हें ध्यान के रहस्य को समझाता हूँ तथा ध्यान की सरल से सरल विधियों को बताता हूँ । सुनो – ईश्वर से मिलना ही मनुष्य जीवन का ध्येय होता है और इसलिए ध्येय और साधन मिलकर ही ध्यान कहलाते हैं।

दो०–अनन्त भाव साधन अनन्त भाव मूल प्राण सुहाय।
करहहिं निर्मल प्राण को सहज ही सुरता लग जाय ॥५८॥

व्याख्या – अनन्त भाव होते हैं इसलिए ध्यान की भी अनन्त विधियाँ (साधन) हो जाती हैं क्योंकि भावों का उद्‌गम तो प्राण से होता है । इसलिए प्राण को निर्मल कर लेने से सहज में ही परमात्मा से सुरता लग जाती है ।

होवहिं भल करहहिं प्राणायामा । सहजहि सहज मिले विश्रामा ॥
अनुलोम विलोम जपहहिं रामा । पावन होइ प्राण सुधरहिं कामा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्राणायाम करना अच्छा होता है, जिससे सहज में शान्ति मिलने लग जाती है । अनुलोम और विलोम प्राणायाम के साथ राम नाम का जप करने से प्राण शुद्ध हो जाता है, जिससे परमात्मा को प्राप्त करने में सफलता मिल जाती है ।

दूसर विधि अति सरल सुहाई । मिलहहिं ध्येय जेहि अनुसराई ॥
बनिअ दृष्टा निहारहिं श्वासा । निर्मल होवइ प्राण अनायासा ॥

व्याख्या – प्राण को शुद्ध करने की दूसरी विधि बहुत सरल होती है, जिसका अनुसरण करने पर ध्येय की प्राप्ति हो जाती है । जो लोग दृष्टा बन कर अपनी श्वास को देखते हैं, उनके प्राण अनायास ही निर्मल हो जाते हैं ।

तीसर विधि कुम्भक प्राणायामा । सहज नसावहिं इहँ माया धामा ॥
हठात् करहि श्वास निरोधा । हृदय घटहहिं तब सुरता बोधा ॥

व्याख्या – तीसरी प्राण शुद्ध करने की विधि कुम्भक प्राणायाम होता है, जो

सहज में ही सांसारिक भावों का नाश कर देता है। क्योंकि अचानक श्वास का निरोध करने से हृदय में ध्यान का बोध हो जाता है।

रेचक पूरक करें श्वास निहारी। होवहिं सहज प्राण निरविकारी ॥
करहिं दिवस उभय छठ बारा। रेचक पूरक कुड़ी लगातारा ॥

व्याख्या – रेचक व पूरक प्राणायाम को श्वास को देखते हुए करने से प्राण विकारों से मुक्त हो जाती है, अतः रेचक व पूरक प्राणायाम को दिन में छः बार एक साथ बीस-बीस बार करना चाहिये।

दो०–रेचक पूरक करत करत जग भाव सुरता भाव बदलाय।
सुरता लगे जब हरि चरण में मानुष जन्म धन्य सुहाय ॥५९॥

व्याख्या – रेचक व पूरक प्राणायाम के लगातार करने से सांसारिक भाव सुरता में बदल जाते हैं और जब सुरता परमात्मा के चरणों में लग जाती है, तब मनुष्य का जन्म धन्य हो जाता है।

भस्त्रिका करहिं जे प्राणायाम। होवइ शान्त सहज सब कामा ॥
श्वास निश्वास करहिं लगातारा। मन्द मध्यम तीव्र तीस बारा ॥

व्याख्या – जो भस्त्रिका प्राणायाम करते हैं, उनके काम के भाव शान्त हो जाते हैं। भस्त्रिका प्राणायाम को तीस बार धीरे, तीस बार मध्यम गति से और तीस बार तेज गति से करना चाहिये।

करि भस्त्रिका निहारहिं श्वासा। आवत जावत करहिं आभासा ॥
दृष्टा बनि देखहिं निज श्वासा। प्रभु चरण लगहिं सुरता अनयासा ॥

व्याख्या – भस्त्रिका प्राणायाम करके स्वयं के श्वास को देखना चाहिये तथा आने व जाने वाली श्वास को आभासित करना चाहिये। जब स्वयं की श्वास को दृष्टा बन कर देखते हैं, तो सुरता अनायास ही परमात्मा में लग जाती है।

होई निराधार शवासन लगाई। आवत जावत श्वास संभराई ॥
निमिष होवइ शून्य आकारा। परम शान्त विगत विकारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! निराधार होकर शव आसन में लेटकर, आने व जाने वाली श्वास का अनुभव करने से क्षण मात्र में शून्य में प्रवेश हो जाता है, जिससे परम शान्ति मिल जाती है तथा विकार मिट जाते हैं।

नख शिख निज दृष्टि फैलाई। निमिष माझ सुरता लगाई ॥
मन्द होइ गति निज श्वासा। लगइ होन तब प्रभु आभासा ॥

व्याख्या – पैर के नाखुनों से सिर तक स्वयं की दृष्टि को फैलाने से क्षण मात्र में सुरता लग जाती है तथा श्वास की गति बहुत धीरे हो जाती है। उस अवस्था

में परमात्मा का आभास होने लगता है ।

दो०—हृदय धड़कन दृष्टि लगाइ करि बैठहिं सहज सुखासन लगाय ।
मानव ध्येय ईश मिलन भाव रखि देइ सूरता हरि सहज मिलाय ॥६०॥

व्याख्या — हृदय की धड़कन में दृष्टि को लगाकर सहज होकर सुखासन लगा कर बैठ जाने से तथा मानव जीवन का ध्येय परमात्मा से मिलना ही होता है, का भाव मन में रखने से सूरता सहज में ही परमात्मा से मिला देती है ।

नयनन देखहिं नयन लगाई । जगत सब परहहिं बिसराई ॥
निरंत करहिं जे ऐहि आभासा । सुरता होइ सहज हरि सुपासा ॥

व्याख्या — आँखों से आँखों में देखने से संसार बिस्मरित हो जाता है । अतः जो लोग नित्य आँखों से आँखों में देखने का अभ्यास करते हैं, उनकी सुरता परमात्मा में लग जाती है ।

दाहिन पाँव अगुँष्ठ निहारी । उठत विद्युत करहिं विचारी ॥
विद्युत प्रवाह शिख पहुँचाई । मकर तार सुरता लगाई ॥

व्याख्या — दाहिने पैर के अगुँठे को देखकर मन में विचार करना चाहिये कि विद्युत प्रवाह नाव से शिखा तक पहुँच रहा है । ऐसा विचार करने से मकर तार में सुरता लग जाती है ।

मकर तार जब परइ धराई । जीव तब प्रकृति पार कराई ॥
प्रकृति पार मिलन प्रभु संगा । विगत विषय आनन्द उमंगा ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जब मकर तार जीवात्मा की पकड़ में आ जाता है, तब जीवात्मा प्रकृति से परे हो जाती है और प्रकृति के पार होने पर परमात्मा से मिलन हो जाता है । जिससे विषय विकार मिट जाते हैं और आनन्द की उमंग छा जाती है ।

ओं वं लं रं यं क्षं ओम उच्चराई । सुरता सहज ब्रह्माण्ड पहुँचाई ॥
हं क्षं हं क्षं जपहि लय लाई । नयन तीसर परइ खुलाई ॥

व्याख्या — ओं वं लं रं यं क्षं ॐ का उच्चारण करने से सुरता ब्रह्माण्ड में लग जाती है तथा हं क्षं हं क्षं का लय लगाकर जप करने से तीसरा नेत्र खुल जाता है ।

दो०—बैठत नितम्ब आभास करे सकल देह जाय भुलाय।
मकर तार समझ परइ तामें सुरता सहज लगाय ॥६१॥

व्याख्या — बैठे हुए केवल नितम्बों का आभास करने से शरीर का आभास नहीं रहता है और मकर तार समझ में आ जाता है, जिसमें सरलता से सुरता लग जाती है।

सुखासन बैठि कर बाँगर लगाई । सहजहिं सहज सुरता रमाई ॥
बिसरहिं देह शून्य आभासा । नाना अनुभव सहज प्रयासा ॥

व्याख्या – सुखासन में बैठकर दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में मिला लेने से सरलता से सुरता लग जाती है और जीवात्मा देहाभिमान को भूल शून्य का अनुभव करने लगती है, जिससे सरलता से नाना अनुभव होने लगते हैं ।

बैठि एकान्त गगन निहारी । पुनि पुनि दृष्टि निज देह डारी ॥
करहिं अभ्यास बारम्बारा । नयन मूँदहिं लगे सुरता आपारा ॥

व्याख्या – एकान्त में बैठकर आकाश को देखें तथा बार-बार स्वयं के शरीर पर दृष्टि लगाएँ । इसका बार-बार अभ्यास करके अचानक आँखें बन्द कर लेने से परमात्मा में सुरता लग जाती है ।

मुख बन्द रसना दन्त लगाई । अ अ लय लाइ जोर उच्चराई ॥
ध्वनि माझ सुरता लगाई । शान्त होइ पुनि जाइ बिठाई ॥

व्याख्या – मुँह बन्द करके दाँतों से जीभ्या को लगाकर अ अ का जोर-जोर से उच्चारण करें तथा ध्वनि में सुरता को लगा दें तथा शान्त होकर बैठ जाएँ ।

जेहि करहहिं इहँ अभ्यासा । सुरता पहुँचाई निज आकाशा ॥
नाद माझ तहँ होहहिं प्रवेशा । रमइ सुरता तहँ हमेशा ॥

व्याख्या – जो अ के उच्चारण का अभ्यास करते हैं, उनकी सुरता स्वयं के चिदाकाश में लग जाती है, जहाँ से नाद ब्रह्म में प्रवेश हो जाता है और सुरता वहाँ सदा रमण करने लगती है ।

दो०–उर्द अर्द माझ सुरता लगाय करि बैठहहिं नयन बन्द कराय ।
नाद ध्वनि सहसा प्रगटहिं सुरता तहँ सहज लीन सुहाय ॥६२॥

व्याख्या – आने व जाने वाली श्वास के मध्य में सुरता को लगा कर आँखें बन्द कर बैठने से नाद की ध्वनि अचानक प्रकट हो जाती है, जिसमें सुरता लीन हो जाती है ।

श्वासा संग जेहि हंसा जपाई । हकार सकार सुरता लगाई ॥
बिसरहि जगत प्रभु मिलाई । जीवात्मा परमहंस कहाई ॥

व्याख्या – श्वास के साथ हंस का जप करते हुए हकार व सकार में सुरता लगा लेने से संसार बिस्मरित हो जाता है और परमा त्मा से मिलन हो जाता है । उस अवस्था में जीवात्मा ही परमहंस कहलाने लगती है ।

मुख माझ जीभ्या थीर कराई । ह ह ह इकसार उच्चराई ॥
हठात् पुनि लहहिं विश्रामा । विगत चिन्ता क्रोध मोह कामा ॥

व्याख्या – मुँह खोलकर बीच में जीभ्या को स्थिर करके जोर जोर से ह का उच्चारण करने व पुनः अचानक विश्राम लेने से काम, क्रोध व मोह की सब

चिन्ताएँ मिट जाती हैं ।

दोउ नयनन देखहिं एक संगा । सुरता जुरहहिं संग अनंगा ॥
प्रभु संग जब सुरता जुराई । सहजहि सहज जीव भव तराई ॥

व्याख्या – दोनों आँखों से एक साथ देखने से सुरता परमात्मा से लग जाती है तथा परमात्मा से सुरता लग जाने से सहज में ही जीवात्मा भाव रूपी भव सागर को पार कर जाती है ।

उभय नयनन देखहिं राम नामा । सुरता पहुँचइ सहज निज धामा ॥
बिसरहि जग विगत सब कामा । पावइ जीव तहँ परम विश्रामा ॥

व्याख्या – दोनों आँखों में राम के नाम को देखने से सुरता सहज में ही परमात्मा में लग जाती है, जिससे जगत का आभास मिट जाता है और काम भावना मिट जाती है । उस अवस्था में जीवात्मा परम विश्राम प्राप्त कर लेती है।

दो०–निज इच्छा आसन लगाइ करि बैठहउ दोउ नितम्ब टिकाय ।
नितम्ब बल देह भार रखहु सहजहिं सप्त चक्र चिताय ॥६३॥

व्याख्या – स्वयं की सुविधा के अनुसार दोनों नितम्बों को टेक कर बैठने से व नितम्बों पर शरीर का सब वजन छोड़ देने से सरलता से ही सातों चक्र जाग्रत हो उठते हैं।

नयन बन्द श्रवण ध्याना । एक संग सुनउ उभय काना ॥
ब्रह्माण्ड सुरता सहज लगाई । अद्भुत घटना परै घटाई ॥

व्याख्या – दोनों आँखों को बन्द करके कानों पर ध्यान लगाकर दोनों कानों से एक साथ सुनने का प्रयास करने से सुरता ब्रह्मरन्ध्र में लग जाती है और अद्भुत घटना घटित हो जाती है ।

नयन बन्द नासिका निहारी । खुलहहिं सहज सुष्मन नारी ॥
तीसर नयन परइ खुलाई । पंच घड़ी जेहि अभ्यास कराई ॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके अन्तर्दृष्टि से नाक को देखने से सुष्मना नारी (नाड़ी) खुल जाती है । जो लोग पाँच घड़ी नित्य अभ्यास करते हैं, उनकी त्रिनेत्र खुल जाता है ।

कर देखउ नयन बन्द कराई । अबिलम्ब सुरता थिर सुहाई ॥
करहिं जेहि इहँ नित अभ्यासा । होवइ सहज ग्यान प्रकासा ॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके दोनों हाथों को एक साथ देखने से सुरता तुरन्त स्थिर हो जाती है । इसलिए जो लोग इसका नित्य अभ्यास करते हैं, उन्हें ज्ञान का प्रकाश हो जाता है ।

नयन बन्द जीभ्या निहारी। सुरता चढ़हिं गगन अटारी ॥
करहिं आभास उभय घड़ी जेहि। अमृत पान करहिं नर तेही ॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके जीभ्या को देखने से सुरता गगन मण्डल में चढ़ जाती है। अतः इसका दो घड़ी नित्य अभ्यास करने वाले लोग अमृत पान करने लग जाते हैं।

दो०–नयन बन्द चर्म निहारहिं दीवार सम करहिं आभास ।
भीतर सब शून्य लगहहिं सुरता पहुँचई सहज आकास ॥६४॥

व्याख्या – आँखें बन्द कर स्वयं की त्वचा को देखें तथा दीवार के समान आभास करने से शरीर के भीतर शून्य की अनुभूति होने लग जाती है और सुरता सरलता से आकाश में पहुँच जाती है।

वजन शून्य करहिं शरीरा। सुरता शून्यमय होवइ थीरा ॥
इहँ आभास मन पार कराई। सहजहि सहज अवस्था पाई ॥

व्याख्या – शरीर को वजन शून्य करने से सुरता भी शून्यमय होकर स्थिर हो जाती है। इसका अभ्यास करने से जीवात्मा मन से परे हो जाती है, जिससे सहज में ही सहज अवस्था की प्राप्ति हो जाती है।

मन लावहहिं भाव निराधारा। होवइ मन पार सुरता हमारा ॥
विधि सरल नित्य जेहि कराई। अमरापुर जाइ निज पद पाई ॥

व्याख्या – मन में निराधार का भाव लाने पर सुरता मन से पार हो जाती है। यह बहुत सरल विधि है, जिसका अभ्यास करने पर जीवात्मा अमर लोक में पहुँच कर अपने सहज स्वरूप (निज पद) को प्राप्त कर लेती है।

नयन मीच हियँ दृष्टि लगाई। सुनहहिं धड़कन अमन सुहाई ॥
उभय घड़ी करहिं इहँ अभ्यासा। होवइ ग्यान सहज प्रयासा ॥

व्याख्या – आँखें बन्द कर हृदय पर दृष्टि लगा कर धड़कन की आवाज को सुनने से मन अमन हो जाता है। इसका नित्य दो घड़ी अभ्यास करने से सहज में ही ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

नयन बन्द प्रिय स्मराई। सन्मुख पेरवहहिं परछाई ॥
होवहहिं लीन निज भुलाई। शून्य प्रवेश सहज कराई ॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके अपने प्रियतम को याद करने व आँखों के सामने परछाई देखने से जीव स्वयं को भूल कर लीन हो जाता है तथा सरलता से शून्य में प्रवेश कर जाता है।

दो०—पंकज सुमन मन कल्पना करें दोउ नयन माझ रहइ बिनसाय ।
मन भ्रमर तहँ रसपान करइ सुरता सहज गगन चढ़ चाय ॥६५॥

व्याख्या – दोनों आँखों के बीच में कमल का फूल विकसित हो रहा है, इसकी मन में कल्पना करने से मन रूपी भ्रमर कमल पुष्प का रसपान करने लग जाता है और सुरता गगन मण्डल में पहुँच जाती है ।

नयन बन्द निहारहिं आकाशा । शून्य प्रविसहिं तब अनायासा ॥
नयन खोलि एकटक लगाई । पेरवहिं नभ शून्यता आई ॥

व्याख्या – आँखों को बन्द करके आकाश को देखने से अनायास ही शून्य में प्रवेश हो जाता है तथा आँखें खोलकर लगातार एकटक आकाश को देखने से भी शून्य की अवस्था आ जाती है ।

मुख बन्द रसना दन्त लगाई । चूसहहिं बिनु जीभ्या हिलाई ॥
करहिं अभ्यास इहँ त्रिमासा । होइ अमृत पान सहज उल्लासा ॥

व्याख्या – जीभ को दाँतों से लगाकर व मुख को बन्द करके बिना जीभ हिलाये चूसने का अभ्यास करने से तीन महीने में अमृत पान शुरू हो जाता है और प्रसन्नता छा जाती है ।

जीभ्या मोर ताल्लव लगाई । नयन मीच सहज बिठाई ॥
मन होइ अमन तुरिया पारा । जुरहहिं सुरता ब्रह्म अपारा ॥

व्याख्या – जीभ को मोड़ कर ताल्व में लगा कर आँखें बन्द करके सहज होकर बैठने से मन अमन होकर तुरीया (सत, रज, तम की सीमा) अवस्था को पार कर जाता है और सुरता परमात्मा से जुड़ जाती है ।

अन्तर्दृष्टि भृकुटि लगाई । जपहहिं ओह्म श्वास मिलाई ॥
ओ संग श्वास म तें उत्सासा । लगहहिं सुरता सहज प्रयासा ॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके अन्तर्दृष्टि को भृकुटि में लगाकर श्वास के साथ ॐ का जप करने तथा ओ के साथ श्वास लेने व म के साथ श्वास छोड़ने से सरलता से ही सुरता लग जाती है ।

दो०—सिन्धु सरित सरोवर तट बैठहहिं तहँ आसन सहज लगाय ।
उठत लहर मन लीन करहिं निज भव सिन्धु शान्त सुहाय ॥६६॥

व्याख्या – समुद्र, नदी या सरोवर के तट पर सहज आसन लगाकर बैठ कर मन को उठने वाली लहरों में लीन करने से जीव के स्वयं के भावों का सागर शान्त हो जाता है ।

नयन मीच पद होवहिं ऊंभा। करहिं आभास वात हिलइ तूंबा॥
शनै शनै पुनि निज थिर होई। सुरता गगन मन सब खोई॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके दोनों पैरों पर खड़ा होकर ऐसे आभास करें, जैसे बेल में लगा हुआ तूमड़ा (सूखी हुई लौकी) हिल रहा है। फिर धीरे-धीरे स्वयं को स्थिर करें। ऐसा करने से सुरता गगन मण्डल में चली जाती हैं और मन विलीन हो जाता है।

हरि लता निज जानहहिं तूम्बा। उभय पद रहवहिं ऊम्भा॥
हृदय सहज समर्पण आई। हरि पद सुरता आनन्द पाई॥

व्याख्या – परमात्मा को बेल की तरह और स्वयं को तूम्बा मान कर दोनों पैरों पर खड़े रहने में समर्पण का भाव आ जाता है और सुरता परमात्मा के चरणों में लग जाती है, जिससे आनन्द की प्राप्ति होने लग जाती है।

नयन मीच निज श्वास संभारी। उभय स्तन अन्तः दृष्टि डारी॥
करहि अभ्यास दोउ घड़ी लाई। सुरता सहज गुण पार सुहाई॥

व्याख्या – आँखें बन्द करके श्वास को निहार कर अन्तर्दृष्टि को अपने दोनों स्थनों पर लगा कर नित्य दो घड़ी अभ्यास करने से सुरता गुणातीत हो जाती है।

बिन्दु बिसर्ग रहित अकारा। जपहिं निरंत होई निराकारा॥
शब्द ब्रह्म मूल अः सुहाई। तत्व शोधक सोई अहंकार बताई॥

व्याख्या – अ को बिन्दु व विसर्ग से रहित निरन्तर जपने से निराकार ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। तत्व के चिन्तकों ने भी अ को ही अहंकार का मूल बताया है तथा अ को ही शब्द ब्रह्म भी कहा जाता है।

जपहहिं अ कुम्भक मांई। परहि अहंकार सहज चिनाई॥
अहंकार सोई पूर्णहंता कहाई। जानहि मरम परम पद पाई॥

व्याख्या – कुम्भक की अवस्था में अ का जप करने से अहंकार से परिचय हो जाता है। अहंकार को ही पूर्णहंता कहा जाता है। अतः जो इस रहस्य को जान लेते हैं, वे परम पद प्राप्त कर लेते हैं।

दो०– निराधार नित्य निज आत्मा देश काल दिशा नहिं तहँ भान।
पंच घड़ी निराश्रय ध्यान करहिं तेहि जनु पावहिं सहज पद निर्वान॥ ६७॥

व्याख्या – स्वयं की आत्मा नित्य व निराधार है तथा आत्मा में देश, काल व दिशाओं की भी सीमा नहीं होती है। ऐसा विचार कर दिन में नित्य पाँच घड़ी ध्यान करने से निर्वाण की प्राप्ति हो जाती **है।**

विसर्ग बिन्दु करहहिं ध्याना । होवइ जग अन्त मन भाना ॥
चित होवहि रहित आधारा । ब्रह्म सनातन होइ दीदारा ॥

व्याख्या – विसर्ग बिन्दु का ऐसे ध्यान करें कि सारी बाहरी सृष्टि बिन्दु में समा कर विलीन हो रही है । इस प्रकार करते करते जब चित निराधार हो जाता है, तो सनातन ब्रह्म में प्रवेश हो जाता है ।

चितादि नहिं मोर अन्तरमाहीं । लावहहिं भाव ध्यान लगाहीं ॥
होवइ तबहिं विकल्प मुक्ता । आत्मा परमात्मा बनहिं जुक्ता ॥

व्याख्या – चित आदि मेरे अन्तःकरण में नहीं हैं, ऐसा भाव करके ध्यान लगाने से जीवात्मा विकल्पों से मुक्त होकर परमात्मा से मिल जाती है ।

उठत इच्छा पेखहि तुरन्ता । होवइ लीन सहजहि अन्ता ॥
जब उठहहिं तबहि निहारी । ऐहि विधि शमन इच्छा सारी ॥

व्याख्या – इच्छा के उठते ही उसे तुरन्त देखना शुरु कर देने से इच्छा विलीन हो जाती है । इस प्रकार इच्छा का सरलता से अन्त हो जाता है । इसलिए इच्छा जब भी पैदा हो, तभी उसे देखना शुरु कर देना चाहिये । इस प्रकार इच्छाओं का शमन हो जाता है ।

विगत इच्छा माया नसाई । माया मिटहिं ईश मिलाई ॥
अग्यता हेतु इच्छा उपजाई । करहउ दृढ़ता शान्ति मिलाई ॥

व्याख्या – इच्छाओं के मिट जाने से माया का नाश हो जाता है और माया के मिट जाने पर परमात्मा की प्रप्ति हो जाती है । अज्ञान के कारण ही इच्छा पैदा होती हैं, इस भाव में दृढ़ता लाने से शान्ति मिल जाती है ।

दो०–बिनु आधार इच्छा नहिं बिनु अहंकार न आधार बनाय ।
निरालम्ब निराश्रय में सदा करहिं दृढ़ता भव तर जाय ॥६८॥

व्याख्या – बिना आधार के इच्छा पैदा नहीं होती है और अहंकार के बिना कोई आधार नहीं बन पाता है । अतः स्वयं को निरालम्ब व निराश्रय मानने से जीवात्मा भव सागर पार हो जाती है ।

नहिं इच्छा नहिं क्रिया ग्याना । करहिं भाव मिटहिं अभिमाना ॥
चिदानन्दमय मोर सरूपा । एकरस तत्व आत्म अनूपा ॥

व्याख्या – न कोई इच्छा है और न ही कोई क्रिया ही होती है । इस भाव में दृढ़ता करने से अहंकार मिट जाता है । मैं तो चिदानन्दमय एक रस अनुपम आत्म तत्व हूँ ।

सकल देह आत्मा सुहाई। ईश्वर नहिं किछु भिन्नताई ॥
करहिं भावना जेहि लय लाई। जग विजय ते सहज कराई ॥

व्याख्या – समस्त शरीरों में आत्मा होती है, जो ईश्वर की शक्ति से युक्त होने के कारण ईश्वर से भिन्न नहीं होती है। जो लोग लय लगाकर ऐसी भावना करते हैं वे सहज में ही संसार को जीत लेते हैं।

काम क्रोध मद मोह लोभा। बुद्धि निरोध करहिं न क्षोभा ॥
करहिं निरन्तर इहँ अभ्यासा। चिदानन्दमय वृति होइ अनयासा ॥

व्याख्या – काम, क्रोध, मद, मोह व लोभ के भावों में बुद्धि को नहीं जाने दें तथा क्षोभ न करने का निरन्तर अभ्यास करने से अचानक चिदानन्दमय वृति हो जाती है।

सुख दुःख कबहु न चित लगाई। उभय माझ चिन्तन कराई ॥
बचहहिं शेष भैरव कहाई। आनन्द मूल आत्मा सुहाई ॥

व्याख्या – चित को कभी भी सुख व दुःख में नहीं लगा कर, सुख व दुःख के बीच की अवस्था का चिन्तन करने से जो शेष बचता है, वही आनन्द का मूल आ त्म तत्व होता है।

दो०–नहिं तन मैं नहिं मन मैं व्यापक सर्वत्र मैं समान।
करहहिं भावना दृढ़ इहँ होवहिं सुखी वो इन्सान ॥६९॥

व्याख्या – मैं शरीर भी नहीं हूँ और मन भी नहीं हूँ। मैं तो सर्वत्र एक समान व्यापक हूँ। ऐसी दृढ़ भावना करने से मनुष्य सुखी हो जाता है।

मैं ही एक नहिं जग दूजा कोई। करहहिं भावना निर्भय होई।
बिनु द्वैत न भय उपजाई। भय अभाव आनन्द सदाई ॥

व्याख्या – संसार में मैं अकेला ही हूँ, यह भावना दृढ़ करने से मनुष्य निर्भय हो जाता है। क्योंकि द्वैत के भाव के बिना भय पैदा ही नहीं होता है और भय का अभाव होना ही आनन्द होता है।

घट माहिं विषयन विग्याना। नहिं मम घट सब घट समाना ॥
मन जानहि मोहि आत्म रूपा। मैं जानहउँ सदाशिव अनूपा ॥

व्याख्या – शरीर में जो विषयों का विज्ञान है अर्थात इच्छाएँ व क्रियाएँ जो पैदा होती हैं, वे केवल मेरे शरीर में ही नहीं होती बल्कि सभी के शरीरों में समान रूप से होती हैं। मेरा मन मुझे आत्मा के रूप में जानता है, परन्तु मैं तो मुझे सदाशिव के रूप में ही जानता हूँ।

पर देह निज देह भाव कराई। अल्प काल व्यापक योगी सुहाई ॥
मिलहिं सिद्धि पर काया प्रवेशा। विचरहिं योगी विगत क्लेशा ॥

व्याख्या – दूसरे के शरीर में स्वयं के शरीर का आभास करने के भाव से योगी थोड़े समय में ही सर्व व्यापक हो जाता है। इस अभ्यास से परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त हो जाती है और योगी क्लेशों से मुक्त होकर विचरण करने लगता है।

निज मन करहहिं निराधारा। तजि कल्पना विकल्प सारा ॥
उमा ऐ अनुभव करहिं जेहि। भैरव अवस्था पावहहिं तेहि ॥

व्याख्या – हे उमा ! स्वयं के मन को निराधार करके समस्त विकल्प व कल्पनाओं का त्याग करने का अभ्यास करने वालों को भैरव अवस्था प्राप्त हो जाती है।

दो०–सर्वज्ञ सर्वकर्ता सर्वव्यापक मैं, मैं ही परमेश्वर सदाशिव महान।
निज घट भावना दृढ़ करहिं ते नर पावहहिं सहज परम ग्यान ॥ ७०॥

व्याख्या – मैं सर्वज्ञ, सर्वकर्ता व सर्वव्यापक हूँ तथा मैं ही परमात्मा व सदाशिव हूँ। यह अपने हृदय में दृढ़ भावना करने वाले मनुष्य को सरलता से ही परम ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

जल तरंग अनल लपटाई। तैसउ मैं अरु प्रभु नहिं अलगाई ॥
जग तरंग सोई मोते उठाई। करहि भावना मोक्ष गति पाई ॥

व्याख्या – जैसे जल और जल की लहर तथा अग्नि और अग्नि की लपटें अभिन्न होती हैं, वैसे ही मैं भी परमात्मा से अलग नहीं हूँ। यह संसार रूपी लहर मुझसे ही उठ रही है। इस प्रकार की भावना करने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

कूप आकाश अरु महा आकाशा। अविकल्प पेखन करहिं आभासा ॥
उभय माझ एकता आई। निज चित चेतन लीन सुहाई ॥

व्याख्या – कूपाकाश (गहरे गड्ढे) और महाकाश को अविकल्प बुद्धि से देखने का अभ्यास करने से दोंनो के बीच एकता हो जाती है, जिससे चित चैतन्य में लीन हो जाता है।

कूपाकाश पुनि पेखहिं महाकाशा। बार-बार इहँ करहिं अभ्यासा ॥
चित चिन्मय अवस्था पाई। जग तरंग चित आई मिलाई ॥

व्याख्या – एक बार कूपाकाश (गड्ढ़े के आकाश) को और फिर महाकाश को बार-बार देखने का अभ्यास करने से चित चिन्मय अवस्था (विकल्प मुक्त) को प्राप्त कर लेता है और जगत रूपी लहर चित में आकर लीन हो जाती है।

बाह्य अभ्यन्तर विषय नसाई। जहँ मन जाई तहँहि प्रभु दिखाई ॥
सविकल्प अविकल्प उभय ऐका। आत्म तत्व सर्व होई विवेका ॥

व्याख्या – जब बाहर और भीतर के विषयों का नाश हो जाता है, तब मन जहाँ भी जाता है, वहाँ पर परमात्मा ही दिखाई पड़ते हैं। उस अवस्था में

सविकल्प व अविकल्प दोनों एक हो जाते हैं और आत्म तत्व की सर्वव्यापकता का विवेक हो जाता है ।

दो०—इच्छा ज्ञान उत्पन्न जबहि आत्मा समझ चित देइ मिलाय।
सोई आत्मा ब्रह्म भाव बनहिं सहजहि परमारथ ग्यान सुहाय ॥७१॥

व्याख्या — इच्छा का जब आभास हो तब ही स्वयं को आत्मा जानकर इच्छा को चित में मिलाने से मैं आत्मा ही ब्रह्म हूँ की भावना बन जाती है जिससे परमार्थ का साक्षात्कार हो जाता है ।

बिनु आधार ग्यान भरमाई । मैं निराधार आत्मा सदाई ॥
करहहिं भावना शिव सुहाई । माया बन्धन जाई निरुआई ॥

व्याख्या — बिना आधार के ज्ञान भ्रमित करने वाला होता है और मैं आत्मा तो निराधार हूँ । इस प्रकार की भावना करने से शिवत्व जागृत हो जाता है और माया के बन्धन छूट जाते हैं ।

चेतन आत्मा सकल देह समाना । पीपलि कुंजर कीटादि नाना ॥
सकल घट चैतन्य धरमा । ब्रह्म एकहि इहँ ग्यान परमा ॥

व्याख्या — चेतन आ त्मा चींटी, हाथी व कीट आदि के शरीरों में समान होती है । सभी शरीरों में चैतन्य तत्व होता है, इसलिए सर्वत्र एक ही ब्रह्म की भावना ही परम ज्ञान होती है ।

निज देह घुमावहि बारम्बारा । तीव्र वेग सहशक्ति जमीं ते डारा ॥
पूर्ण विराम परम शान्ति पाई । निर्विकल्प समाधि सहज सुहाई ॥

व्याख्या — स्वयं के शरीर को बार-बार घुमाकर जोर से पूरी शक्ति सहित जमीन पर डालने से और पूरी तरह विश्राम हो जाने से परम शान्ति मिल जाती है । इसके अभ्यास से निर्विकल्प समाधि लग जाती है ।

बैठहिं शान्त सिद्धासन लगाई । अ ह उच्चारहिं कर्ण बंद कराई ॥
ब्रह्म सनातन होवहिं प्रवेशा । माया व्यापित मिटहिं क्लेशा ॥

व्याख्या — सिद्धासन लगा कर शान्त होकर बैठ कर अ व ह के आकार अक्षरों का कान बन्द करके उच्चारण करने से सनातन ब्रह्म में प्रवेश हो जाता है और तथा माया से पैदा होने वाले कष्टों का निवारण हो जाता है ।

दो०—पदारथ वस्तु याद करहिं पुनि तिन्ह आधार मन दें लगाय ।
निज देह निराधार अनुभवहिं प्रभु सत्ता हृदय उदित सुहाय ॥७२॥

व्याख्या — किसी पदार्थ या वस्तु का स्मरण करके उसके देखे हुए स्वरूप में मन को लगा दें तथा स्वयं के शरीर को निराधार मानने से हृदय में परमात्मा की

सत्ता उदित हो जाती है ।

वस्तु एक मन देह लगाई । अन्य नहिं पुनि आभास कराई ॥
पुनि हठात् मन लेहिं फिराई । करहिं आभास शून्यता आई ॥

व्याख्या – किसी एक वस्तु में मन लगाकर दूसरी वस्तुओं का एकदम आभास नहीं करें । फिर अचानक मन को चित में लीन कर दें । ऐसा अभ्यास करने से शून्यता आ जाती है ।

भगति उद्रेक बुद्धि बिरत होई । अवस्था शांकरी कहावई सोई ॥
भावना एक्य लावहिं जे कोई । ईश्वरमय वृति तिन्ह होई ॥

व्याख्या – भक्ति के उद्रेक (तीव्र प्रवाह) से बुद्धि विरक्त हो जाती है, उसी अवस्था को शांकरी शक्ति कहा जाता है । जो परमात्मा से ऐक्य होने की भावना करते हैं, उनकी वृति ईश्वरमय हो जाती है ।

उमा जिन्ह हृदय भगति निवासा । होवइ जगत सकल सुपासा ॥
ईश्वर शरण सकल दिलाई । भगति उद्रेक सहज मिलाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिनके हृदय में भक्ति का निवास होता है, उन्हें संसार में सब कुछ मिल जाता है । क्योंकि ईश्वर की शरण सब कुछ देने वाली होती है और भक्ति के उद्रेक से परमात्मा की शरण सहज में ही मिल जाती है ।

शुद्ध अशुद्ध नहिं जग किछु होई । पंच निर्मित वस्तु सब कोई ॥
बुद्धि ईश्वरी करहिं कल्पना । चित विमर्श सोइ विषय थरपना ॥

व्याख्या – संसार में कोई भी वस्तु शुद्ध व अशुद्ध नहीं होती है क्योंकि सभी वस्तुएँ तो पंच भूतों से ही निर्मित होती है । ईश्वरमय बुद्धि ही जीव का कल्याण करती है क्योंकि चित का विमर्श (चिन्तन) ही विषयों का आधार होता है ।

दो०–सकल घट ईश्वर बसै ईश्वर छाड़ि नहिं दूजा कोय।
मन भावना प्रबल करहिं तिन्ह हृदय प्रभु प्रत्यक्ष होय ॥७३॥

व्याख्या – सबके हृदय हें परमात्मा का निवास होता है और परमात्मा को छोड़कर दूसरा कोई नहीं होता है । इस प्रकार की दृढ़ भावना करने वालों के हृदय में परमात्मा प्रत्यक्ष हो जाते हैं ।

ब्रह्म परिपूर्ण सदा चहुँओरा । अरि मित्र भाव मन भ्रम कोरा ॥
इहँ भावना हृदय जब आई । शान्ति परम सहज मिलाई ॥

व्याख्या – चारों तरफ ब्रह्म सदा परिपूर्ण अवस्था में रहता है, इसलिए मित्र व शत्रु की भावना मन का भ्रम मात्र है । ऐसी दृढ़ भावना हृदय में आने पर परम शान्ति मिल जाती है ।

परहि चिन्हाई निज बिसराई। सोई अवस्था ब्रह्म बोध सुहाई ॥
इन्द्रिन्ह ग्राह विषय जो नाई। ब्रह्म अवस्था शून्य कहाई ॥

व्याख्या – जो पहचान में आने पर स्वयं को भूला देता है, वह अवस्था ही ब्रह्म के बोध की अवस्था होती है। जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने का विषय नहीं होती है, वही ब्रह्म की अवस्था शून्य कहलाती है।

नित्य निराश्रय कल्पना आभासा। व्यापक सर्वत्र बाह्य आकाशा ॥
करहिं थिर मन बाह्य आकाशा। होवइ तुरत अशून्य आभासा ॥

व्याख्या – यह बाह्य आकाश नित्य, निराश्रय , सर्वव्यापक व कल्पनाओं से युक्त है। इसलिए बाह्य आकाश में मन को लगाने से जीवात्मा तुरन्त शून्य आकाश से भी परे अशून्य अवस्था में पहुँच जाती है।

जहँ जहँ विषयन मन जाई। निर्विकल्प होइ लेवउ फिराई ॥
बार-बार इहँ करहि अभ्यासा। तरंग हीन मन सहज प्रयासा ।

व्याख्या – जहाँ जहाँ विषयों में मन जाता है, वहाँ से निर्विकल्प होकर मन को लौटा लेना चाहिये। बार-बार ऐसा अभ्यास करने से मन तरंगहीन हो जाता है।

दो०–भैरव भैरव जब उच्चरहहिं तन उठहहिं तरंग अनन्त।
हृदय ग्रन्थि बन्धन खुलहहि अभय होइ पाइ पद भगवन्त ॥७४॥

व्याख्या – भैरव भैरव शब्द का निरन्तर उच्चारण करने से शरीर में तरंगे उठने लगती हैं, जिससे हृदय की ग्रन्थियों के बन्धन खुल जाते हैं और जीवात्मा निर्भय होकर भगवत् स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

ग्यानी अग्यानी नहिं कहीं कोउ। बोध अबोध संबोध प्रभु सोउ ॥
बोधादि विकल्प जब जाइ नसाई। परम शान्ति भाव हृदय जगाई ॥

व्याख्या – कोई भी ज्ञानी व अज्ञानी नहीं होता है। बोध, अबोध व संबोध सब परमा त्मा की सत्ता से ही होते हैं। इसलिए जब बोध, अबोध व संबोध के विकल्प मिट जाते हैं, तो हृदय में परम शान्ति के भाव पैदा हो जाते हैं।

प्रभु व्यापक नित्य निराधारा। करहिं भावना गुण अनुसारा ॥
ब्रह्म अखण्ड भावना दृढ़ाई। साधक कृत कृत्य सुहाई ॥

व्याख्या – परमात्मा सर्वव्यापक, नित्य व निराधार हैं, गुणों के अनुसार ऐसी भावना करने से अखण्ड ब्रह्म की भावना दृढ़ हो जाती है, जिससे साधक कृत कृत्य हो जाता है।

सब जग इन्द्रिन्ह जाल सुहाई। बिरथा जाल तब काहे भरमाई ॥
करहिं भावना जग तत् हीना। मन शान्त होइ ब्रह्म लीना ॥

व्याख्या – यह समस्त संसार इन्द्रियों का जाल है इसलिए व्यर्थ जाल में क्यों पड़ा जाए। इस प्रकार जगत को तत्वहीन जान कर भावना करने से मन शान्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

गुण कृत विकार नहिं आत्मा होई। क्रिया ग्यान बाहरी जग सोई ॥
आत्मा एकरस सदा निर्विकारी। ग्यानादि भाव सकल संसारी ॥

व्याख्या – गुणों से पैदा होने वाले विकार आत्मा में नहीं होते हैं अतः क्रियाएँ व ज्ञान आदि के भाव बाहरी जगत होता है। आत्मा तो एकरस व सदा निर्विकारी होती है। ज्ञान आदि की भावना सब संसार में आती है।

दो०–नहिं बन्धन नहिं मोक्ष किछु भीतुजन उभय भय सुहाय ।
बुद्धि प्रतिबिम्ब जगत सब जसि भानु मरिचि नीर दिखाय ॥७५॥

व्याख्या – बन्धन व मोक्ष कुछ भी नहीं होते हैं। ये शब्द तो डरने वाले लोगों का डर होता है। क्योंकि यह समस्त संसार तो बुद्धि का प्रतिबिम्ब मात्र होता है, इसलिए इसमें आभासित होने वाला संसार वैसे ही असत्य है, जैसे सूर्य की किरणों में जल का आभास असत्य होता है।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण पंचविंशति पड़ाव ॥

सब सुख दुःख इन्द्रिन्ह आधारा। इन्द्रिन्ह त्याग शान्ति उपचारा ॥
दृष्टा दृश्य दर्शन भेद मिटाई। सोई इन्द्रिन्ह त्याग सुहाई ॥

व्याख्या – समस्त सुख-दुःखों का आधार इन्द्रियाँ ही होती है अतः इन्द्रियों का त्याग करना ही शान्ति का उपाय होता है। जब दृष्टा, दृश्य व दर्शन का भेद मिट जाता है, उसी अवस्था को इन्द्रियों का त्याग कहा जाता है।

सुख दुःख तहँ नहिं भाव सुहाई। सहज सरूप सोइ आत्मा कहाई ॥
ग्याता ज्ञेय नहिं भेद रहाई। चहुँदिस ब्रह्म सनातन छाई ॥

व्याख्या – इन्द्रियों के त्याग से सुख-दुःख का भाव ही नहीं रह पाता है, उसी को आत्मा का सहज स्वरूप कहा जाता है। तब ज्ञाता और ज्ञेय का भेद मिट जाता है, तो चारों तरफ सनातन ब्रह्म की अनुभूति होने लग जाती है।

दाहिन पद अंगुष्ठ ध्यान लगाई। कालाग्नि उठत भावना कराई ॥
औ र क्ष र य ऊँ लय लाइ जपाई। उठत अनल देह भष्म कराई ॥

व्याख्या – दाहिने पैर के अँगुठे पर ध्यान लगाकर मन में भावना करें कि कालाग्नि पैदा होकर ऊपर उठ रही है तथा औ र क्ष र य ऊँ का लय लगाकर जप करते हुए पूरे शरीर को भष्म होता हुआ आभास करना चाहिये।

जो साधक करहिं इहँ आभासा। अणुमय होई पाइ शान्त प्रकासा ॥
कालाग्नि सब विकल्प जलाई। बचहिं शेष सोई ब्रह्म सुहाई ॥

व्याख्या – जो साधक इसका अभ्यास करता है, उसे आणवी भूमिका की प्राप्ति हो जाती है तथा शान्त प्रकाश हो जाता है क्योंकि कालाग्नि सब विकल्पों को जला देती है और जो शेष बचता है, वही ब्रह्म होता है ।

निमिष देह शून्य आभास कराई । निर्विकल्पता सहज उमगाई ॥
ब्रह्म छाड़ि नहिं जग दूसर कोई । ब्रह्म सोई नाना रूप प्रगट होई ॥

व्याख्या – क्षणमात्र के लिए शरीर में शून्यता का अनुभव करने से निर्विकल्प अवस्था पैदा होने लग जाती है । ब्रह्म को छोड़कर दूसरा कोई है ही नहीं क्योंकि ब्रह्म ही नाना रूपों में प्रकट होता है ।

दो०–सब दिसि व्याप्त आकाश हय विकल्पहीन हो करहिं आभास ।
शून्यातिशून्य साधक प्रविसहिं करहिं प्रकाश समग्र आकास ॥७६॥

व्याख्या – सब दिशाओं में आकाश व्याप्त है, इसकी विकल्प हीन होकर भावना करने से साधक शून्य से भी अति शून्य में प्रवेश कर जाता है तथा सम्पूर्ण आकाश (महाकाश) प्रकाश कर देता है ।

ॐ उच्चारहिं जेहि लय लाई । नादान्त शेष शून्यता आई ॥
ॐ सोई पिण्ड मन्त्र कहाई । ओ परमात्मा अहम आत्मा सुहाई ॥

व्याख्या – ॐ का लय लगाकर उच्चारण करने से नाद की ध्वनि के बाद नाद का भी अन्त हो जाता है और शून्यता छा जाती है । ॐ को ही पिण्ड मन्त्र कहा जाता है जिसमें ओ परमात्मा का व अहम आत्मा का प्रतीक होता है ।

सोह्म सोह्म लय लाइ जपाई । सकार हकार शान्त सुहाई ॥
अ उ म शेष जाइ बचाई । सोई मरम ॐ मन्त्र सुहाई ॥

व्याख्या – सोह्म सोह्म का लय लगाकर जप करने से सकार व हकार शान्त हो जाते हैं और अ उ तथा म बच जाते हैं । यही ॐ पिण्ड मन्त्र का रहस्य है ।

कपालछिद्र मन देइ लगाई । नयन मीच उत्तम लक्ष्य दिखाई ॥
करि भावना करहि अभ्यासा । निज सरूप पावइ सहज प्रयासा ॥

व्याख्या – कपाल छिद्र में मन को लगाकर आँखें बन्द कर परमात्मा को देखने की भावना का अभ्यास करने से जीवात्मा अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

लं वं रं यं हं क्षं ओम जपाई । अर्द्ध ते उर्द्ध जपहिं चक्र जगाई ॥
जागहिं चक्र माया निरुआई । मन तन ग्रन्थि परइ समुझाई ॥

व्याख्या – लं वं रं यं हं क्षं व ॐ का नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः जप करने से सब चक्र जाग्रत हो जाते हैं । चक्रों के जाग्रत हो जाने से माया की ग्रन्थि सुलझ जाती है और मन व तन की ग्रन्थि भी समझ में आ जाती है ।

दो०—द्वादशान्त भेदन जब करहिं सर्वव्यापकता तब उदित होय ।
लं वं रं यं हं क्षं ॐ जपहहिं द्वादशान्त सहज विधि सोय ॥ ७७ ॥

व्याख्या — द्वादशान्त को पार करने पर सर्वव्यापकता का अनुभव होता है और लं वं रं यं हं क्षं व ॐ का जप ही द्वादशान्त को पार करने का सहज उपाय है।

नयन मीच इन्द्रिन्ह विचारा । मयूर पंख सम होइ शून्याकारा ॥
पंचक शून्य तन्मात्रा समेता । सकल उद्गम मन निकेता ॥

व्याख्या — आँखे बन्द करके इन्द्रियों के बारे में विचार करने पर ये मयूर के पंख के समान शून्य आकार धारण कर लेती हैं, जिससे पाँचों इन्द्रियों व उनकी तन्मात्राओं का शून्य आकार हो जाता है क्योंकि सब का उद्गम तो मन रूपी घर से ही होता है ।

मूलाधार ते चक्र सहस्रसारा । करहिं भाव उठत शक्ति अपारा ॥
प्रति चक्र शक्ति रहइ ध्याई । द्वादश अंगुल ऊपर पहुँचाई ॥

व्याख्या — मूलाधार से सहस्रसार चक्र में शक्ति तीव्र गति से उठ रही है ऐसी भावना करें तथा आभास करें कि प्रत्येक चक्र में शक्ति दौड़ रही है तथा बारह अंगुल ऊपर तक जा रही है ।

नयन मीच करहहिं आभासा । द्वादशान्त उदित होइ प्रकासा ॥
नित्य करहिं इहँ नियम बनाई । सहजहिं भैरव अवस्था आई ॥

व्याख्या — आँखे बन्द करके शक्ति के प्रवाह का अभ्यास करने से द्वादश के अन्त के बाद प्रकाश का उदय हो जाता है । नियम बनाकर नित्य अभ्यास करने से जीवात्मा भैरव अवस्था को प्राप्त हो जाती है ।

नाक कान मुख नयन बंद कराई । भ्रूमध्य ओम ओम उच्चराई ॥
बिन्दु दर्शन तब सहसा होई । परम स्थिति घट पावइ सोई ॥

व्याख्या — नाक, कान, मुँह व आँखों को (हाथ की अंगुलियों व अंगुठे से) बन्द करके भ्रूमध्य में ॐ ॐ का उच्चारण करने से अचानक बिन्दु का दर्शन हो जाता है, जिससे स्वयं के हृदय में परमस्थिति की अनुभूति हो जाती है ।

दो०—सुष्मन नारी कमलनालवत करत ध्यान निकसत बाहिर प्रान।
इहँ भावना हियँ दृढ़ करहिं होवहिं सहज प्रकट ग्यान ॥७८॥

व्याख्या — सुष्मना नाड़ी कमल की नाल के समान है तथा उसका ध्यान करने पर प्राण शक्ति बाहर निकलती है, ऐसी हृदय में दृढ़ भावना करने से ज्ञान प्रकट हो जाता है ।

मकर तार सोई शब्द आधारी । करहिं ध्यान इहँ भाव विचारी ॥
मकर तार जब थिर सुहाए । अनहद पार निशब्दता आए ॥

व्याख्या – मकर तार शब्द ब्रह्म को धारण करता है अतः ऐसी भावना करके ध्यान करने से मकर तार हिलना बन्द कर देता है और अनहद से पार निशब्दता की अवस्था आ जाती है ।

निःशब्द सोई परम सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
सुरति निरति तहँ होवहिं ऐका । अकथ इहँ अनुभव विवेका ॥

व्याख्या – निशब्द ही परम सत्ता का वास्तविक स्वरूप है, इसलिए वह परमशक्ति, अकथनीय, अगाध, अनादि व अनुपम है । उस निःशब्द अवस्था में तो सुरति व निरति (दृश्य व शब्द) भी एक हो जाते हैं, इसलिए उसका वर्णन करना कठिन है । इसका तो अनुभव से विवेक हो सकता है ।

पान अपान सन्धि स्याना । सहज होहहिं करहिं ध्याना ॥
उभय माझ मन लीन सुहाई । परम शान्ति शून्यता छाई ॥

व्याख्या – पान व अपान के मिलने के स्थान पर सहज होकर ध्यान करने से दोनों के बीच में मन लीन हो जाता है, जिससे परम शान्ति व शून्यता छा जाती है ।

सकल जग सह निज शरीरा । परिपूर्ण आत्मानन्द नीरा ॥
करहिं भाव परमानन्द पाई । जीव नहिं अब अलग लगाई ॥

व्याख्या – स्वयं के शरीर सहित समस्त संसार आत्मानन्द के जल से परिपूर्ण है । ऐसी भावना करने से परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है तथा जीवात्मा व परमात्मा का भेद मिट जाता है ।

दो०–नख ते शिख सकल देह मानहि चिन्मय सब जग समेत ।
बाहिर भीतर चिन्मय भावना साधक बनहि आनन्द निकेत ॥७९॥

व्याख्या – नाखुनों से सिर तक पूरे शरीर को व सब संसार को चिन्मय मानकर बाहर व भीतर चिन्मय भावना करने से साधक आनन्द का घर बन जाता है ।

सकल इन्द्रिन्ह द्वार लगाई । मूल ते सहस्रसार प्राण चढ़ाई ॥
चढ़त प्राण आनन्द पाई । उर्ध्व प्राण हिंय ग्यान उमगाई ॥

व्याख्या – समस्त इन्द्रियों के द्वार को बन्द करने से प्राण वायु मूलाधार से सहस्रसार में चढ़ने लगती है, जिससे आनन्द मिलने लग जाता है । प्राण के उर्ध्वगामी होने से हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है ।

नर-नारी संग आनन्द जो होई । ब्रह्मतत्व सुख जानहउ सोई ॥
लिंग भग न रज सृष्टि उपजाई । आत्म आनन्द आत्मा सृजाई ॥

व्याख्या – नारी-पुरुष के मिलन से जो आनन्द होता है, ब्रह्म तत्व का आनन्द मानना चाहिये । क्योंकि सृष्टि न तो लिंग से न भग से और न वीर्य से ही पैदा होती है बल्कि

आत्मा के आनन्द की शक्ति से आत्मा ही आत्मा को पैदा करती है ।

लेहन मन्थन कल्पना अकोरा । नारी अभाव आनन्द पलोरा ॥
सोई आनन्द आत्म आनन्दा । रज क्षोभ आत्मा एकरस मुकुन्दा ॥

व्याख्या – चुम्बन, आलिंगन व पुनः पुनः मर्दन की कल्पना से नारी के अभाव में भी आनन्द की बाढ़ आ जाती है । यह आनन्द ही आत्मा का आनन्द होता है । आनन्द की शक्ति से वीर्य में क्षोभ पैदा हो जाता है परन्तु आत्मा तो एकरस ही बनी रहती है ।

जहँ जहँ मन पावहि संतोषा । प्रभु व्यापक करहिं भरोसा ॥
प्रभु सर्वत्र जेहि भाव कराई । तिन्ह मन नहिं क्षोभ उठाई ॥

व्याख्या – जहाँ-जहाँ मन को संतोष मिलता है, वहाँ सब जग परमात्मा की व्यापकता का भरोसा करने से व सर्वत्र परमात्मा को व्यापक मानने की भावना से मन में क्षोभ की लहरें नहीं उठती हैं ।

दो०–निद्रा अभाव विषय दृश्य मिटें सोई अवस्था करहिं विचार ।
अक्षय आनन्द सहज मिलहहिं साधक पावइ पराशक्ति दीदार ॥८०॥

व्याख्या – निद्रा न आने की अवस्था में जब बाहरी विषयों के दृश्य मिट जाते हैं, उस अवस्था का चिन्तन करने से सहज में ही अक्षय आनन्द की प्राप्ति हो जाती है और साधक को पराशक्ति का अनुभव हो जाता है ।

भलि भाँति बैठहिं आसन लगाई । बाहँ समेट कक्षाकाश मिलाई ॥
करहि मन थिर तहँ बारम्बारा । मिलहिं शान्ति साधक अपारा ॥

व्याख्या – अच्छी प्रकार से आसन पर बैठ कर दोनों बाहों को समेट कर कक्षाकाश में लगाकर मन को बार-बार स्थिर करने से साधक को शान्ति मिल जाती है ।

कोमल आसन कटि बल बिठाई । हाथ पाँव तब निराधार कराई ॥
जेहि जनु इहँ अभ्यास कराई । मति थिर मन चंचलता जाई ॥

व्याख्या – कोमल आसन पर कमर के बल बैठकर हाथ पैरों को निराधार करने के अभ्यास से बुद्धि स्थिर हो जाती है व मन की चंचलता मिट जाती है ।

विषय स्थूल दृष्टि लगाई । मन निराश्रय शिवत्व पाई ॥
निर्मल करि देखहहिं आकासा । भैरव अवस्था होई आभासा ॥

व्याख्या – किसी वस्तु के स्थूलरूप में दृष्टि लगाकर देखने से मन निराधार होकर शिवत्व को प्राप्त कर लेता है । आकाश को निर्मल देखने से भैरव अवस्था का आभास हो जाता है ।

चंचल आसन बैठहिं जाई। शनै शनै देह चालित कराई ॥
होवहिं शान्त सकल मन भावा। दिव्य धाम अनुभव तब आवा ॥

व्याख्या – चंचल आसन पर बैठ कर धीरे-धीरे शरीर को चलायमान करने से मन के सब भाव शान्त हो जाते हैं और साधक को दिव्यता की अनुभूति होने लग जाती है ।

दो०–शयनासन देह निराधार करि निज मानहिं चेतन आकास ।
मन क्षय होवइ शनै शनै हृदय मिलहहिं शान्ति आभास ॥८१॥

व्याख्या – शयनासन लगाकर शरीर को निराधार करके स्वयं को चेतन आकाश मानने से धीरे-धीरे मन का क्षय होने लगता है और हृदय में परम शान्ति की अनुभूति होने लगती है ।

नयन मीच रोकहहिं श्वासा। होवइ तुरत शून्य आभासा ॥
छाड़हि श्वास करि देह विश्रामा। पावहि साधक परम धामा ॥

व्याख्या – आँखे बन्द करके अचानक श्वास को रोकने से शून्य की अनुभूति हो जाती है तथा शरीर को विश्राम करते हुए श्वास को बाहर निकालने के अभ्यास से साधक को परम शान्ति मिल जाती है ।

भलि भाँति रसना दन्त लगाई। आवत जावत श्वास अनुभवाई ॥
वासना अनल सहज निभाई। इहँ अभ्यास भव पार कराई ॥

व्याख्या – अच्छी प्रकार से जीभ्या को दाँतों से लगाकर आने व जाने वाली श्वास का अनुभव करने से वासनाओं की अग्नि शान्त हो जाती है तथा यह अभ्यास भावों को शान्त करा देता है ।

श्वास छाड़न करहिं आभासा। लेन श्वास करहिं न प्रयासा ॥
नित्य जे इहँ अभ्यास कराई। अल्प काल परम शान्ति पाई ॥

व्याख्या – केवल श्वास बाहर निकल रही है, ऐसा आभास करें तथा श्वास लेने का प्रयास न करें, (स्वतः आने दें) ऐसा अभ्यास करने से अल्प समय में ही परम शान्ति मिल जाती है ।

उमा निर्मल जब होई श्वासा। शब्द ब्रह्म तब होई आभासा ॥
प्रभु निशब्द सत्य बताई। शब्द बनि निशब्द प्रकटाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब श्वास निर्मल हो जाती है तब शब्द ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है। परमात्मा निःशब्द हैं, यह बात सत्य है परन्तु निशब्द परमात्मा ही शब्द बनकर प्रकट हैं ।

दो०—निशब्द सोइ परमपिता परमात्मा ऐहि ते किछु संशय नाय ।
सोहृम ओहृम ररंकार प्रकृति अरु निरंञ्जन शब्द ध्वनि समाय ॥८२॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमपिता परमेश्वर तो निशब्द हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हैं तथा परमात्मा ही सोह्म, ओंकार, ररंकार, प्रकृति और निरञ्जन शब्द की ध्वनि में समाए हुए हैं ।

पंच शब्द सोई मरम बताई । जानइ जेहि निशब्द चिन्हाई ॥
पंच शब्द पंचउ मुद्रा धारी । कहउँ समुझाई विधि उपकारी ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! अब तुम्हें पाँच शब्दों के रहस्य को बताता हूँ क्योंकि जो इनके रहस्य को जान लेता है, वह निशब्द परमात्मा को जान लेता है। पाँचों शब्दों की पाँच ही मुद्राएँ होती हैं, अतः जनकल्याण के लिए उनकी सरल क्रियाओं को समझाकर बताता हूँ । सुनों —

सोहृम शब्द राह सूरज चन्दा । मन बनि गोचर माया फन्दा ॥
जानि मरम अगोचर होई । सोहृम सोहृम गति श्वासा सोई ॥

व्याख्या — सूर्य व चन्द्र स्वर ही सोह्म शब्द के मार्ग होते हैं तथा सोह्म ही मन बन कर इन्द्रियों में रमण करता हुआ माया पैदा करता है । अतः जो सोह्म के रहस्य को जानकर इन्द्रियों से परे (अगोचर) हो जाते हैं, तब श्वास में ही सोह्म सोह्म की ध्वनि होने लगती है ।

बैठि सुखासन अर्द्ध नयन खुलाई । नासिका अग्र दृष्टि लगाई ॥
सोहृम शब्द श्वासा मिलाई । मुद्रा अगोचर परम फलदाई ॥

व्याख्या — सुखासन लगाकर आधी आँखें खोलकर नाक के अग्रभाग पर दृष्टि लगाने से और सोह्म को श्वास के साथ मिलाने से अगोचरी मुद्रा लग जाती है, जो परम फल को देने वाली होती है ।

सो श्वास अहम् उत्सासा । मुद्रा अगोचर करहिं आभासा ॥
जेहि जनु इहँ विधि अपनाई । सुष्मन नारी श्वास चलाई ॥

व्याख्या — अगोचरी मुद्रा लगाकर जो लोग सोऽ के साथ श्वास के आने का तथा अह्म के साथ श्वास के जाने का अनुभव करते हैं, उनका श्वास सुष्मना नाड़ी में चलने लग जाता है ।

दो०—सुष्मन प्राण जब चलहहिं हृदय गुण मरम प्रकटाय ।
विषय जाल ढ़ीला परहहिं सहज बिराग तब प्रबलाय ॥८३॥

व्याख्या — सुष्मना नाड़ी में प्राणों की गति होने से हृदय में गुणों का रहस्य प्रकट

होने लग जाता है, जिससे विषयों का जाल ढ़ीला पड़ने लग जाता है और सहज वैराग्य बढ़ने लग जाता है ।

सोहम्‌ सोहम्‌ निरंत जपाई । सकार हकार शान्त सुहाई ॥
अ उ म तब ध्वनि बचाई । सोई शब्द ओंकार कहाई ॥

व्याख्या – सोह्म सोह्म के निरंतर जप करने से सकार व हकार अर्थात सो और ह शान्त हो जाते हैं और अउम शब्द बच जाते हैं, उन्हीं शब्दों को ॐ कहा जाता है।

त्रिनारी जहँ सन्धि सुहाई । त्रिकुटि भृकुटि भूचरी कहाई ॥
तहँ होवइ ध्वनि ओंकारा । सोइ मन मूल मरम अपारा ॥

व्याख्या – इड़ा-पिंगला व सुष्मना नाड़ियों का सन्धि स्थल ही त्रिकुटि, भृकुटि व भूचरी के नाम से जाना जाता है । तहाँ पर ॐ की ध्वनि होती है तथा यह त्रिकुटि ही मन के मूल का रहस्य होती है ।

ॐ सोउ श्वासा संग मिलाई । ओ आवत म जावत अनुभवाई ॥
बिन्दु तहँ संघट श्वासा । सोइ करइ सन्धि ग्यान प्रकासा ॥

व्याख्या – ॐ भी जब श्वास के साथ मिल जाता है और ओ के साथ श्वास लेने का व म के साथ छोड़ने का अनुभव होने लगता है । तब ॐ के चन्द्र बिन्दु पर आने व जाने वाली श्वास का मिलन होने लगता है, तब दोनों श्वासों के मिलने का स्थान ही ज्ञान का प्रकाश करने लगता है ।

माया मूल तहँ परइ जानी । मन माझ सो रहइ छुपानी ॥
गो मन बुद्धि सहित अहंकारा । सकल अवयव चित विस्तारा ॥

व्याख्या – माया का मूल भृकुटि पर साधक को पहचानने में आ जाता है कि माया मन के भीतर ही छुपी रहती है । इन्द्रियों, मन, बुद्धि व अहंकार ये सब चित के विस्तार हैं ।

दो०–चित विस्तार मन हय अरु मन विस्तार जगत सुहाय ।
भृकुटि धरि ॐ जपहिं सहजहिं मरम समझ पराय ॥८४॥

व्याख्या – चित का विस्तार मन होता है और मन का विस्तार सम्पूर्ण जगत होता है । यह मर्म भृकुटि पर निरन्तर ॐ का जप करने से सहज में ही समझ में जाता है ।

ॐ जपहिं शुधु बिन्दु बचाई । सोई ररंकार ध्वनि प्रकटाई ॥
मुद्रा खेचुरी जपहिं ररंकारा । मिलहिं मारग अमृत धारा ॥

व्याख्या – जब ॐ ॐ जपते हुए केवल बिन्दु मात्र बच जाता है, तब ररंकार की ध्वनि पैदा हो जाती है । इसलिए खेचुरी मुद्रा लगाकर ररंकार को जपने

से अमृतधारा की राह मिल जाती है ।

उलट जीभ्या तालव लगाई । तबहिं खेचुरी सहज लगाई ॥
करहहिं लय ध्वनि ररंकार । होवहिं सहज मिटहिं विकारा ॥

व्याख्या – जीभ को उल्टाकर ताल्व में लगाने से सहज में खेचुरी मुद्रा लग जाती है तथा ररंकार की ध्वनि में लय हो जाने पर सहजता आ जाती है और सब विकार मिट जाते हैं ।

तुरीयापद सहज मिलाई । अवस्था गुणातीत तहँ आई ॥
गुण धर्म हियँ समझ पराई । गुण गुण बरतहिं सहजता आई ॥

व्याख्या – ररंकार ध्वनि में लय हो जाने से सहज में ही तुरीयापद मिल जाता है और गुणातीत अवस्था आ जाती है, जिससे गुणों का धर्म हृदय में समझ आ जाता है और गुण गुणों में बरतने लगते हैं, जिससे सहजता आ जाती है ।

जपहिं जब निरंत ररंकारा । ब्रह्मरन्ध्र तब खुलइ द्वारा ॥
खुलत द्वार रस बरसाई । सोई सोमरस जाइ वेद बताई ॥

व्याख्या – जब ररंकार को निरन्तर जपा जाता है, तो ब्रह्मरन्ध्र का दरवाजा खुल जाता है और अमृत रस की वर्षा होने लग जाती है, जिसे वेदों ने सोमरस बताया है ।

दो०—जब सोमपान होवन लगे तब चित इन्द्र होई बलवान ।
भव सिन्धु बिन्दु समावई उमगहि हृदय परम ग्यान ॥८५॥

व्याख्या – जब सोमरस का पान शुरु हो जाता है तब चितरूपी इन्द्र बलवान हो जाता है और भावों का भवसागर बिन्दु में समाने लग जाता है, जिससे हृदय में परम ज्ञान उमड़ने लगता है ।

प्रकृति शक्ति परइ बुझाई । मन बुद्धि चित भूत भुजा अष्टाई ॥
अहंकार सिंह शक्ति सवारी । चलहिं जेहि भाव अनुसारी ॥

व्याख्या – तब प्रकृति शक्ति समझ में आ जाती है कि प्रकृति शक्ति के मन, बुद्धि चित व पंच भूत रूपी आठ भुजाएँ हैं तथा अहंकार रूपी शेर प्रकृति शक्ति की सवारी होता है, जो भाव के अनुसार चलता है ।

प्रकृति शक्ति अपरम्पारी । दुर्ग सम अभेद जग महतारी ॥
भल मन्द तहँ नहिं विचारा । करहिं कारज भाव अनुसारा ॥

व्याख्या – प्रकृति की शक्ति अपरम्पार होती है तथा जगत जननी दुर्ग के समान अभेद होती है । प्रकृति शक्ति के लिए अच्छे-बुरे का विचार नहीं होता है, वह तो भावना के अनुसार चलती है ।

जेहि चिन्तन चलइ मन माहिं। करहिं पूरन शक्ति सबाहिं ॥
नहिं कारज असंभव कोई। शक्ति अनुकूल जो नहिं होई ॥

व्याख्या – जो जो चिन्तन मन में चलता है, उसको प्रकृति शक्ति पूर्ण कर देती है। संसार में ऐसा कोई भी कार्य असंभव नहीं है, जो शक्ति के अनुकूल होने पर नहीं होता है।

जो शक्ति होइ प्रतिकूला। दुःख दारुण होइ भवशूला ॥
प्रकृति अनुकूल रक्षक मातु समाना। सुख वैभव शान्ति देवइ नाना ॥

व्याख्या – अगर प्रकृति शक्ति प्रतिकूल हो जाती है तो संसार में भयंकर दुःख होता है तथा प्रकृति शक्ति के अनुकूल होने पर वह माता के समान रक्षक होती है तथा अपार सुख, वैभव व शान्ति प्रदान करती है।

दो०–कर्ता भर्ता हर्ता सब प्रकृति सो जगत जननी प्रकृति जान।
वृति तें प्रकृति चलहहिं इहँ प्रकृति शक्ति मरम महान ॥८६॥

व्याख्या – प्रकृति शक्ति ही कर्ता, भर्ता व हर्ता होती है, इसलिए प्रकृति शक्ति ही जगत की माता होती है। वृति के अनुसार प्रकृति चलती है, यही प्रकृति शक्ति का परम रहस्य है।

धन्य नाथ सब मरम बताई। वचन तुम्हार शान्ति दाई ॥
शक्ति अनुकूलता काह उपाई। सोउ नाथ देउ मोहि समुझाई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप धन्य हैं, जो मुझे सारा रहस्य बता दिया है। आपके वचन शान्ति देने वाले हैं। हे नाथ ! शक्ति की अनुकूलता का क्या उपाय है? यह सब मुझे समझा दीजिए।

सुनहु भवानी सरल उपाई। अनुभव गम्य जेहि मैं कराई ॥
वृति मूल सब भाव सुहाई। भाव अनुरूप प्रकृति रहाई ॥

व्याख्या – हे भवानी ! मैं तुम्हें सरल उपाय बताता हूँ, जो अनुभव से जानने में आने वाला है और जिसे प्रकृति को अनुकूल रखने के लिए मैं स्वयं करता हूँ। हे पार्वती ! सब वृतियों का मूल भाव ही होते हैं और भावों के अनुसार प्रकृति शक्ति रहती है।

निर्मल भाव प्रकृति अनुकूला। ममतामयी शक्ति सब सुख मूला ॥
सकल सिद्धि शक्ति बल पाई। मम अनुभव सत्य बताई ॥

व्याख्या – निर्मल भावों से प्रकृति शक्ति अनुकूल होती है। प्रकृति शक्ति तो ममतामयी व सब सुखों का मूल होती है। शक्ति के बल से ही समस्त सिद्धियों की प्राप्ति होती है। हे पार्वती ! यह मेरा अनुभव है, सत्य बता रहा हूँ।

भूल न करहि जेहि राग द्वेषा । तिन्ह नहिं व्यापहिं कोउ क्लेशा ॥
रखहिं सद्भाव सकल प्राणी । तिन्ह अनुकूल शक्ति भवानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो भूल कर भी किसी से राग व द्वेष नहीं करते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं होता है । क्योंकि जो समस्त प्राणियों के प्रति सद्भाव रखते हैं, उनके प्रकृति शक्ति अनुकूल रहती है ।

दो०–भाव ते भाव उपजत सदा भाव अनुहार जग व्यवहार घटाय ।
भल सोचहहि भलहि होवहिं इहँ शक्ति विधि विधान सुहाय ॥ ८७॥

व्याख्या – भाव से सदा भाव पैदा होते हैं और भावों के अनुसार जगत का व्यवहार होता है, इसलिए अच्छा सोचने पर अच्छा ही होता है, क्योंकि शक्ति की क्रिया (विधि) का तो यही नियम है ।

जपहिं जब निरंत ररंकारा । मिलहि साधक समता आधारा ॥
हृदय आवइ जब समता भावा । राग द्वेष तब सहज नसावा ॥

व्याख्या – जब निरन्तर ररंकार शब्द का जप किया जाता है, तो साधक को समता का आधार मिल जाता है । जिससे हृदय में समता का भाव आ जाता है और राग-द्वेष के भावों का सरलता से नाश हो जाता है ।

जपहिं ररंकार जब लय लाई । शक्ति निजहिं निज मरम बताई ॥
जानहिं मरम वृति निरुआई । मन माया खेल समझ पराई ॥

व्याख्या – जब ररंकार का लय लगाकर जप किया जाता है, तो शक्ति स्वयं ही स्वयं के रहस्य को बता देती है तथा जब मर्म समझ में आ जाता है, तब वृति की ग्रन्थियाँ सुलझने लग जाती हैं, जिससे मन और माया का खेल समझ में आ जाता है ।

मन माया जब ग्रन्थि खुलाई । शक्ति सहज कृपा बरसाई ॥
मातु सम करहहिं रखवारी । जिमि पलक गोलक संवारी ॥

व्याख्या – जब मन और माया की ग्रन्थि खुल जाती है, तब प्रकृति शक्ति कृपा बरसाने लग जाती है और माता के समान साधक की रक्षा करने लग जाती है, जैसे पलकें आँखों के गोलकों की रक्षा करते हैं ।

शनै शनै जीव सहज सुहाई । निसि दिवस शक्ति अनुकूलाई ॥
जपहिं रां चांचरी लगाई । अवस्था निरंजन तहँ आई ॥

व्याख्या – धीरे-धीरे जीवात्मा सहज होने लगती है तथा प्रकृति शक्ति रात दिन अनुकूल रहने लग जाती है तथा चांचरी मुद्रा लगाकर राम शब्द का जप करने से निरञ्जन की अवस्था आ जाती है ।

दो०–विगत माया सोई निरअंजन तहँ नहिं किछु आकार सुहाय ।
मायावश आकार भासहहिं मायावश ही शब्द परइ सुनाय ॥ ८८ ॥

व्याख्या – जब माया मिट जाती है तब वह अवस्था ही माया रहित अर्थात निर + अंजन (निरंजन) की होती है क्योंकि आकार का आभास तो माया के कारण ही होता है और माया के कारण ही शब्द सुनाई पड़ता है ।

निरंजन निरंजन ध्वनि उठाई । रां शब्द सोउ शान्त सुहाई ॥
मकर तार तहँ थिरता पाई । अलख लखन सुरता ध्याई ॥

व्याख्या – जब साधना में निरंजन निरंजन की ध्वनि उठने लग जाती है, तब रां शब्द शान्त हो जाता है तथा मकर तार की गति भी स्थिर होने लग जाती है, जिससे सुरता अलख पुरुष को जानने के लिए दौड़ पड़ती है ।

सुरति निरति उभय होहिं ऐका । आप्त अवस्था घट होई विवेका ॥
सुरति निरति अब केलि कराई । शब्द दृश्य तहँ भेद मिटाई ॥

व्याख्या – सुरति और निरति एक जाती हैं, जिससे हृदय में आप्त अवस्था का विवेक हो जाता है तथा सुरति और निरति क्रीड़ा करने लगती है, जिससे शब्द और दृश्य का भेद मिट जाता है ।

शब्द निःशब्द करहि प्रवेशा । रूप अरूप विगत क्लेशा ॥
परम पुरुष तब होई अलापा । शान्त सिन्धु तहँ नहिं संतापा ॥

व्याख्या – उस अवस्था में शब्द की ध्वनि निःशब्द में प्रवेश कर जाती है और रूप अरूप में समा जाता है, जिससे सब क्लेशों का नाश हो जाता है । हे पार्वती! उस अवस्था में परम पिता से मिलन होता है जो कि शान्ति के समुद्र हैं और वहाँ किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता है ।

होई अलाप सब भेद मिटाई । जिमि हिम पिघल नीर सुहाई ॥
अकथ अगाध अवस्था सोई । गुण गो अतीत वर्णन न होई ॥

व्याख्या – जब परमात्मा से मिलन हो जाता है, तब सब प्रकार के भेद मिट जाते हैं, जैसे बर्फ पिघल कर जल में जल हो जाती है । वह अवस्था अकथनीय व अगाध होती है, जो गुण व इन्द्रियों से परे होने के कारण वर्णन करना सम्भव नहीं होता है।

दो०–लोहा अनल संग अनल भया कठोरता सहज बिलगाय ।
तैसउ जीवा त्मा परमात्मा भए उमा निज घट समझ पराय ॥८९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जैसे लोहा अग्नि में जलकर अग्नि ही बन जाता है और उसकी कठोरता सहज में ही चली जाती है, वैसे जीवात्मा विषयों रूपी कठोरता को छोड़कर परमात्मा बन जाती है । यह अवस्था स्वयं के हृदय में ही समझ आती है।

उमा परमपिता परम कृपालु । करुणा सिन्धु सहज दयालु ॥
ममतामयी प्रभु मातु समाना । निज अनुभव इहँ मैं जाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता तो परम कृपालु, करुणा के समुद्र व सहज में दया करने वाले होते हैं । परमपिता तो माता की तरह ममता करने वाले होते हैं । यह मैंने मेरे अनुभव से जाना है ।

बहु जुगति उमा तुम्हहिं बताई । प्रेम सम जुगत दूसर नाई ॥
पूजा जप तप नहिं दरकारा । प्रेम ते द्रवहहिं पितु हमारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैंने तुम्हें परमात्मा को प्राप्त करने की बहुत सी विधियाँ बताई हैं, परन्तु प्रेम की युक्ति के बराबर दूसरी कोई नहीं है । मेरे परमपिता तो प्रेम से ही द्रवित हो जाते हैं, उसको द्रवित करने के लिए किसी भी प्रकार के पूजा, जप व तप की आवश्यकता नहीं होती है ।

जबहिं हृदय उमगहि प्रेमा । तत्क्षण करहहिं प्रभु क्षेमा ॥
प्रेम पियासे उमा पितु मोरे । सकहहिं जानि अनुभव थोरे ॥

व्याख्या – जिस क्षण हृदय में प्रेम पैदा होता है, उसी समय परमात्मा कृपा कर देते हैं । हे पार्वती ! मेरे परमपिता तो प्रेम के प्यासे हैं । इस बात को थोड़े अनुभव से ही जाना जा सकता है ।

उमा हृदय करहउ विचारा । सृष्टि मूल प्रभु जग करतारा ॥
प्रेम छाड़ि उनि काह किछु चाई । सकल सम्पदा दाता सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! हृदय में विचार करके देखो कि परमपिता परमेश्वर तो समस्त सृष्टि के मूल व सर्व कर्ता हैं, फिर उन्हें प्रेम के अलावा क्या चाहिये ? वे समस्त सम्पदा को देने वाले हैं ।

दो०–दाता जो सकल जगत का धन दौलत वैभव सके न रिझाय ।
प्रेम पियासा जगत पितु सदा सोई प्रेम पेखि तुरत प्रगटाय ॥९०॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो समस्त जगत का दाता है, वह धन, दौलत व वैभव से प्रसन्न नहीं होता है । वह जगतपिता तो सदा प्रेम का प्यासा होता है, इसलिए वह प्रेम देखकर ही तुरन्त प्रकट हो जाता है ।

प्रेम सिन्धु प्रभु करहिं निवासा । मोहि भा इहँ अनुभव आभासा ॥
उमा प्रेम छाड़ि नहिं जग सारा । अनुभवगम्य वचन सत्य हमारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा प्रेम के समुद्र में ही निवास करते हैं । मुझे ऐसा अनुभव हुआ है । इसलिए प्रेम के अलावा संसार में कोई सार नहीं है । मेरा यह अनुभव सत्य है ।

निश्छल प्रेम करहिं बड़भागी। निसि दिवस प्रभु चरण अनुरागी ॥
प्रेम राह अति सकरी सुहाई। एक चलत कठिन दोउ न जाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! निश्छल प्रेम तो कोई बहुत भाग्यशाली लोग ही करते हैं, जो रात-दिन परमपिता के चरणों में अनुराग रखते हैं। प्रेम की राह बहुत सकड़ी होती है, जिस पर अकेला चलना ही कठिन होता है, अतः दो का जाना तो असम्भव ही होता है।

जब लगि राग द्वेष हियँ सुहाई। तब लगि उमा भाव द्वेष रहाई ॥
द्वेत भाव सोई माया मूला। तेहि ते व्यापहिं जग सब शूला ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जब तक हृदय में राग-द्वेष के भाव रहते हैं, तब तक जीव का द्वेत भाव बना रहता है और द्वेत भाव से ही माया पैदा होती है, जो संसार के सब दुःखों का मूल होती है।

जब लगि माया रहइ आभासा। तब लगि जानउ वासना प्यासा ॥
जहँ वासना तहँ न प्रेम सुहाए। सोई बड़भागी प्रेम कोउ पाए ॥

व्याख्या – जब तक माया का आभास रहता है, तब तक जीव को वासना का प्यासा जानना चाहिये और जहाँ वासना होती है, वहाँ प्रेम नहीं प्रकट होता है। इसलिए कोई भाग्यशाली ही प्रेम को प्राप्त कर पाता है।

दो०–प्रेम मिले द्वेत मिटहहिं द्वेत मिटे हरि प्रगटाय ।
हरि मिले सर्वस्व मिले हंसा प्रेम सिन्धु नहाय ॥९१॥

व्याख्या – प्रेम के प्रकट हो जाने से द्वेत भाव मिट जाता है और द्वेत भाव मिट जाने पर परमात्मा प्रकट हो जाता है तथा परमात्मा का मिलना ही सब कुछ मिलना होता है। उस अवस्था में तो हंसा प्रेम सागर में गोता लगाने लगता है।

वासना अनल प्रेम जल सुहाई । उभय संग सकहहिं न रहाई ॥
उमा परम संग एक जब होई । सोई प्रेम हय कह सब कोई ॥

व्याख्या – वासना अग्नि के समान व प्रेम जल की तरह होता है, इसलिए वासना और प्रेम एक साथ नहीं रह सकते हैं। हे पार्वती ! परमपिता से जब एकत्व का भाव आ जाता है, तब उसी अवस्था को प्रेम कहा जाता है।

ध्यान ग्यान जब करहिं विवेका। चहुँदिसि दिखहिं परमपिता ऐका ॥
सकल जगत प्रभु उपजाई। भेद बिरथा समझ तब आई ॥

व्याख्या – जब ध्यान व ज्ञान के द्वारा विचार किया जाता है तब चारों तरफ एक परमात्मा ही दिखाई पड़ते हैं। जब समस्त संसार को परमपिता ने ही पैदा किया है, तब भेद करना व्यर्थ होता है। यह रहस्य तब समझ में आ जाता है।

मोर पितु सोई जग पितु होई। सकल प्राणी मम सम सोई ॥
सोई करहउँ सकलहिं प्रेमा। सकल अधिकारी प्रभु क्षेमा ॥

व्याख्या – मेरे पिता ही जगत के पिता हैं, इसलिये समस्त जगत के प्राणी मेरे समान ही होते हैं । इसलिये मैं तो सब से ही प्रेम करता हूँ क्योंकि सभी प्राणी परमपिता की कृपा पाने के अधिकारी होते हैं।

दूसर प्रेम जानहु प्रभु प्रेमा। प्रसन्न होइ प्रभु करहिं क्षेमा ॥
निश्चल प्रेम वासना न होई। पावइ पद अचल जीव सोई ॥

व्याख्या – दूसरे प्राणियों के प्रति प्रेम करना ही परमात्मा से प्रेम करना होता है, जिससे प्रभु प्रसन्न होकर कृपा करते हैं । जो वासना रहित निश्छल प्रेम करते हैं, वे परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ।

दो०–उमा प्रेम महिमा अमित अति राह नाम ध्यान ग्यान बिराग।
प्रेम वश प्रेमी जगत पितु धन्य सोइ जिन्ह हियँ प्रेम अनुराग ॥ ९२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रेम की अमित महिमा होती है तथा नाम कीर्तन, ध्यान, ज्ञान व वैराग्य प्रेम को प्राप्त करने के रास्ते होते हैं। प्रेम प्रेमी जगत पिता को अपने वश में कर लेता है, इसलिए वे लोग धन्य हैं जिनके हृदय में प्रेम का अनुराग होता है।

शिव वचन सुनि उमा हरषाई। धन्य धन्य कहहिं सीस नवाई ॥
गदगद गिरा पुलकित गाता। प्रेम मगन उमा सहित जग त्राता ॥

व्याख्या – शिवजी के वचन सुनकर पार्वतीजी बहुत हर्षित हो गयी तथा धन्य, धन्य कहकर शिवजी के चरणों में सीस झुकाया। उस समय वाणी गदगद हो गयी तथा शरीर पुलकित हो गया और पार्वती सहित जग को पार कराने वाले शिव जी प्रेम में मगन हो गए ।

प्रेम मरम उमा सब जानी। करहि जिज्ञासा सम अग्यानी ॥
प्रेम प्रसंग अति आनन्द दाई। सोई पुनि पुनि उमा प्रश्न कराई ॥

व्याख्या – यद्यपि पार्वती प्रेम के रहस्य को जानती थी, परन्तु अज्ञानी के समान शिवजी से जिज्ञासा कर रही थी क्योंकि प्रेम की चर्चा भी आनन्द देने वाली होती है इसलिये ही पार्वती बार-बार प्रश्न कर रही थी ।

प्रेम महिमा नाथ तुम पुकारी। कहउ मारग मोहि विस्तारी ॥
उमा वचन सुनि शिव मुसकाई। जानि घट सब उमा चतुराई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आपने प्रेम की महिमा को तो बता दिया है, परन्तु मुझे अब प्रेम के मार्ग के बारे में विस्तारपूर्वक बता दीजिए। पार्वती की बातें सुनकर शिवजी हँसने लगे, क्योंकि शिवजी ने अपने हृदय में उमा की चतुराई को जान लिया था।

ऐहि मिस तुम चाहत सत्संग। जद्यपि जानत सब प्रसंगा ।
अस कहहि सहित अनुरागा। लगे कहन प्रेम रस पागा ॥

व्याख्या – पुलकित होते हुए शिवजी बोले कि हे पार्वती ! तुम सब जानती हो परन्तु इसी बहाने सत्संग करना चाहती हो। ऐसा कहकर उमंग के साथ शिवजी प्रेम रस का वर्णन करने लगे ।

दो०–प्रेम दुधारि तलवार हय कोउ बिरला सकइ धार ।
वासना सुख प्रेम भ्रम करहि सोई डूबहि बीच संसार ॥९३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रेम दो धारों वाली तलवार की तरह होता है, जिसे कोई बिरला ही धारण कर पाता है। वासना के सुख में प्रेम का भ्रम हो जाने पर, तो जीव बीच संसार में डूब जाता है ।

इन्द्रिन्ह जहँ होई आनन्दा। सो नहिं प्रेम जानि वासना फन्दा ॥
धीर वीर सोई प्रेम कराई। कायर नहिं इहँ राह चलाई ॥

व्याख्या – जहाँ जहाँ इन्द्रियों को सुख मिलता है, वह प्रेम नहीं होता है। उसे तो वासनाओं का जाल समझना चाहिये । हे पार्वती ! धैर्यवान व वीर पुरुष ही प्रेम कर सकता है, कायर तो प्रेम के रास्ते पर चलता भी नहीं है ।

प्रेम समर्पण नहिं किछु आशा। प्रेमीमय जग अन्यन भासा ॥
प्रेमी इच्छा राह प्रेमी होई। निज मिटहहिं सच्चा प्रेमी सोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रेम में समर्पण होता है, उसमें कोई अपेक्षा का भाव नहीं होता है तथा समस्त संसार अपने प्रेमीमय ही लगता है, उसे और दूसरा कोई दिखाई ही नहीं देता है। अपने प्रेमी की इच्छा ही प्रेम करने वाले का रास्ता होती है। इसलिये सच्चा प्रेम करने वाला वो ही होता है, जो स्वयं को मिटा लेता है।

लेन देन नहिं प्रेम व्यवहारु। प्रगाढ़ समर्पण होहि आचारु ॥
जहँ चाह तहँ नहिं प्रेम सुहाई। प्रेम परीच्छा इहँ एक उपाई ॥

व्याख्या – प्रेम में लेने व देने का व्यवहार नहीं होता है, उसमें तो गहरे समर्पण का आचरण होता है। हे पार्वती ! जहाँ पर चाह होती है, वहाँ प्रेम नहीं होता है। यही प्रेम की परीक्षा का एक उपाय है ।

बिनु बाणी उमा प्रेम प्रगटाई। अंग अंग लच्छन झलकाई ॥
मन मगन जग रहइ उदासी। सुरति विरहि प्रेम रस प्यासी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रेम तो बिना वाणी के ही प्रकट हो जाता है और अंग अंग में प्रेम के लक्षण झलकने लगते हैं। प्रेम करने वाला तो मन में मगन होकर जगत से उदास रहता है तथा उसकी विरहि सुरति प्रेम रस की प्यासी बनी रहती है।

दो०—भल मन्द गुण गोतीत प्रेमी निसि दिवस प्रेमी विरह तड़फाय ।
प्रेम अनल जिन हियँ प्रगटइ तिन्ह विषय वासना जलि जाय ॥९४॥

व्याख्या — प्रेम करने वाला तो अच्छे-बुरे गुणों से परे व इन्द्रियों से भी परे होकर रात-दिन अपने प्रेमी (परमा त्मा) के विरह में तड़फता रहता है । हे पार्वती ! जिनके हृदय में प्रेम की अग्नि प्रकट हो जाती है, उनकी विषय-वासनाएँ जलकर समाप्त हो जाती हैं ।

मान अपमान न भय सताई । पीव पीव रटत प्रेमी सदाई ॥
करत प्रेम प्रेमी लच्छन आई । प्रेमीमय जगत अरु न सुहाई ॥

व्याख्या — सच्चे प्रेमी को मान अपमान का भय नहीं सताता है तथा प्रेम करने वाला तो रात-दिन अपने प्रिय (परमात्मा) को रटता रहता है । जब प्रेमी प्रेम में लीन हो जाता है, तो उसमें अपने प्रिय (परमात्मा) के लक्षण आ जाते हैं तथा समस्त जगत प्रेमीमय हो जाता है ।

उमा कहउँ प्रेम राह सरला । गुरु कृपा चलहिं कोउ बिरला ॥
नाम जप एक मारग सुहाई । प्रगटहि प्रेम लय लाइ जपाई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! अब तुम्हें प्रेम का सरल रास्ता बताता हूँ, जिस पर गुरु की कृपा से कोई बिरला ही चल पाता है । नाम का जप करना प्रेम का एक रास्ता होता है क्योंकि लय लगाकर नाम का जप करने से प्रेम प्रगट हो जाता है ।

श्रद्धा अनुसार नाम अनन्ता । निज मति ऋषि मुनि भनन्ता ॥
सकल सार राम नाम सुहाई । निज अनुभव उमा मैं बताई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! श्रद्धा के अनुसार परमात्मा के अनन्त नाम होते हैं, जिनका वर्णन ऋषि-मुनि अपनी बुद्धि के अनुसार करते हैं । परन्तु सभी नामों का सार राम का नाम ही होता है । यह मैं अपने अनुभव से बता रहा हूँ ।

जपहहिं नाम जेहि जब रामा । लगहि मिलन तुरत विश्रामा ॥
राम नाम सकल सिद्धि दाता । जपत जीव परम गति पाता ॥

व्याख्या — जो लोग राम के नाम का जप करते हैं, उन्हें तुरन्त शान्ति मिल जाती है । राम का नाम समस्त सिद्धियाँ को देने वाला होता है, इसलिए जो जीव राम नाम जपता है, वह परमगति को प्राप्त कर लेता है ।

दो०—र रकार द्योतक जगतपिता ममकार जीव आभास कराय ।
अर्द्ध स्वर अकार सन्धि भयी जीव ब्रह्म सोई प्रतीक सुहाय ॥९५॥

व्याख्या — राम नाम में र रकार परमात्मा का प्रतीक होता है तथा मकार जीव का प्रतीक होता है, जो अकार की सन्धि द्वारा मिला हुआ है । इस प्रकार

राम का नाम परमात्मा और जीवात्मा का प्रतीक होता है ।

जपहिं नाम मन अगोचर होई । बिषय विमुख शान्ति साधन सोई ॥
उमा राम नाम मणि सम सुहाई । अन्तर घट जो प्रकाश कराई ॥

व्याख्या – नाम के जपने से मन इन्द्रियों से परे होने लग जाता है और मन का विषयों से मुक्त होना ही शान्ति का साधन होता है । हे उमा ! राम का नाम मणि के समान होता है, जो हृदय के अन्दर प्रकाश करता है ।

राम मणि जब करहिं प्रकासा । बाहिर भीतर होइ उजासा ॥
गुप्त मरम सब प्रगटाई । राम नाम महिमा बरनिन जाई ॥

व्याख्या – राम नाम रूपी मणि जब प्रकाश करती है, तो बाहर और भीतर दोनों जगह प्रकाश हो जाता है, जिससे सब गुप्त रहस्य प्रकट हो जाते हैं । इसलिए राम के नाम की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

विषय तम सब जाइ नसाई । प्रेम प्रकाश चहुँ दिसि छाई ॥
होई प्रगट तब गुप्त खजाना । ग्यान मणि सिद्धि मुक्ता नाना ॥

व्याख्या – राम नाम के जप करने से विषयों का अन्धकार मिट जाता है तथा चारों तरफ प्रेम रूपी प्रकाश छा जाता है तथा प्रेम का प्रकाश होने से गुप्त खजाना प्रकट हो जाता है, जिसमें ज्ञान रूपी मणि व सिद्धि रूपी मुक्ता होते हैं ।

उदित प्रेम सब माया नसाई । विगत माया तबहि राम मिलाई ॥
प्रेम मारग उमा अति सुखदाई । नाम जप विधि सरल सुहाई ॥

व्याख्या – प्रेम का उदय हो जाने पर सब माया का नाश हो जाता है और माया के मिट जाने पर परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है । हे पार्वती ! प्रेम का मार्ग बहुत सुख देने वाला होता है तथा राम नाम का जप ही प्रेम मार्ग पर चलने की सरल विधि होता है ।

दो०–नाम जपहिं निज बिसमरहिं निज बिस्मरण प्रेम उमगाय ।
प्रेम प्रगटहहिं हरि मिलहिं जीवात्मा तब परमानन्द पाय ॥ ९६ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! नाम के जपने से जीव स्वयं को भूल जाता है और स्वयं को भूलने से प्रेम पैदा हो जाता है तथा प्रेम के पैदा होते ही परमात्मा मिल जाते हैं, जिससे जीवात्मा को परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

प्रेम मारग दूसर ध्याना । करहहिं नित्य होवहिं ग्याना ॥
करत ध्यान मन वश होई । जिन्ह मन वश प्रेम पात्र सोई ॥

व्याख्या – प्रेम को प्राप्त करने का दूसरा मार्ग ध्यान करना होता है, इसलिए जो लोग नित्य ध्यान करते हैं, उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । ध्यान के अभ्यास से मन वश

में हो जाता है और जिनका मन वश में होता है, वे ही प्रेम के पात्र होते हैं ।

ध्यान विषयन जाल कटाई । जीव सहज सहजता पाई ॥
जीव सहजता प्रेम उमगाई । प्रेम धारणा तब प्रबलाई ॥

व्याख्या – ध्यान के अभ्यास से विषयों का जाल कट जाता है और जीवात्मा सहज में ही सहजता की अवस्था को प्राप्त कर लेती है । जीव की सहजता से प्रेम पैदा होने लग जाता है, जिससे प्रेम की धारणा प्रबल हो जाती है ।

प्रेममय तब होवइ ध्याना । हृदय प्रगटई कृपा निधाना ॥
प्रेम बढ़ावहिं प्रेम सयानी । अनुभव गम्य जाइ न बखानी ॥

व्याख्या – जब ध्यान भी प्रेममय हो जाता है, तब हृदय में ही परमात्मा प्रकट हो जाते हैं । हे पार्वती ! उस अवस्था में प्रेम ही प्रेम को बढ़ाने लगता है, जिसका अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

ध्यान विधि मैं बहुरि बखानी । करहु निज अनुभव भवानी ॥
बिनु प्रेम जीव बिरथा जन्माई । जानहहिं प्रेम परम पद पाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैंने बहुत सी ध्यान विधियों का वर्णन कर दिया है, इसलिये स्वयं अनुभव करके देख लो । बिना प्रेम की प्राप्ति के जीव का जन्म लेना व्यर्थ होता है; क्योंकि जो प्रेम को जान लेते हैं, वे परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ।

दो०–करहहिं ध्यान नित ध्येय का भूल परहि सब देह अभिमान ।
बिनु देहाभिमान विषय न सतावई उमा इहँ जानि परम विग्यान ॥९७॥

व्याख्या – हे पार्वती ! नित्य ईष्ट का ध्यान करने से जीवात्मा देहाभिमान को भूल जाती है और बिना देहाभिमान के विषय वासनाएँ नहीं सताती हैं । यह परम विज्ञान है ।

ग्यानहु मारग प्रेम सुहाई । लागहि निरस रस बरसाई ॥
निज परिचय ग्यान आधारा । जानहिं निज विषय निस्तारा ॥

व्याख्या – ज्ञान भी प्रेम का मार्ग होता है, जो प्रारम्भ में निरस लगता है परन्तु वास्तविकता में प्रेम रस की वर्षा करने वाला होता है । स्वयं को जान लेना ही ज्ञान प्राप्त करने का आधार होता है और स्वयं को जान लेने पर जीवात्मा विषयों से मुक्त हो जाती है ।

नश्वर जग नश्वर माया । काहे बिरथा तब माया भरमाया ॥
भूत रूपान्तरण प्रकृति अनुहारी । अजर अमर आत्मा हमारी ॥

व्याख्या – यह समस्त संसार नश्वर है, इसलिए माया भी नश्वर है, फिर माया के जाल में क्यों भ्रमित होते हो । पाँच भूत तत्वों में प्रकृति के अनुसार रूपान्तरण

होता है क्योंकि हमारी आत्मा तो अजर-अमर होती है ।

सुख दुःख कारण देह अभिमाना । आत्मा निर्लेप सोइ तत् ग्याना ॥
निज पर नहिं आत्मा धरमा । प्रेममय सोई ग्यान परमा ॥

व्याख्या – सुख दुःख का आभास देह अभिमान के कारण होता है क्योंकि आत्मा तो निर्लेप होती है, यह जानना ही तत्व ज्ञान है । अपना पराया आत्मा का धर्म नहीं होता है । आत्मा तो प्रेममय होती है, यह जानना ही परम ज्ञान है।

सकल सृष्टि प्रभु उपजाई । ईश्वर अंश सो जीव सबाई ॥
हृदय सकल प्रभु अंश निवासा । करहहिं भाव होई प्रेम आभासा ॥

व्याख्या – समस्त सृष्टि परमात्मा की पैदा की हुई है, इसलिए सभी जीव परमात्मा के ही अंश होते हैं । सबके हृदय में परमात्मा का अंश होता है, ऐसी भावना करने से प्रेम की अनुभूति होती है ।

दो०–नाम ध्यान ग्यान सब प्रेम सिन्धु मिलि एक सुहाय ।
भगति नीर उमंग उठहि आत्मा तब परमात्मा मिलाय ॥९८॥

व्याख्या – नाम कीर्तन, ध्यान व ज्ञान सब प्रेम रूपी समुद्र में मिलकर एक हो जाते हैं तथा भक्ति रूपी जल में उमंग रूपी लहरें उठने लग जाती हैं, तब आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है ।

सकल मारग प्रेम परिणामा । बिनु प्रेम मिलहिं न सुखधामा ॥
उमा सब विधि दियेउ बताई । अनुसरइब जेहि प्रेम फल पाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! नाम, ध्यान व ज्ञान के सब मार्गों का परिणाम प्रेम ही होता है क्योंकि प्रेम के बिना सुख का घर नहीं मिल पाता है । मैंने सब विधियाँ बता दी हैं । जो लोग इन विधियों का अनुसरण करेंगे, उन्हें ही प्रेम रूपी फल की प्राप्ति हो जायेगी ।

धन्य नाथ धन्य त्रिपुरारी । सब विधि मैं शरण तिहारी ॥
करि उपदेश कीन्ह उपकारा । भयउ मन अब शान्त हमारा ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप धन्य हैं । हे त्रिपुरारी ! आप धन्य हैं । मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ । आपने उपदेश देकर बहुत उपकार किया है । जिससे अब मेरा मन शान्त हो गया है ।

तुम सर्वग्य सर्व हितकारी । करतल भयेउ पदारथ चारी ॥
विधि सरल सब नाथ बताई । प्रभु चरित अब देउ समुझाई ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप तो सर्वज्ञ व सबका हित करने वाले हैं तथा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फल आपको प्राप्त हैं । आपने सरल विधियाँ तो बता दी

हैं । अब आप परमात्मा के चरित के बारे में मुझे समझा दीजिए ।

उमा प्रभु चरित कहा न जाई । मोहि सम सहस्र करहिं उपाई ॥
प्रभु मन बुद्धि गुण गो पारा । कहन सुनन नहिं किछु आधारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भले ही मेरे जैसे हजारों शिव प्रयास करें फिर भी परमात्मा के चरित्र का वर्णन नहीं किया जा सकता है । क्योंकि परमात्मा तो मन, बुद्धि, गुण व इन्द्रियों से परे होता है । परमात्मा के चरित्र का वर्णन करने का कहना और सुनना आधार होता ही नहीं है ।

दो०– जेहि जाना निज घट जानहि बाहिर सकै नहिं बताय।
निशब्द परमपिता परमात्मा शब्द माझ कैसे समाय ॥९९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता को जिसने भी जाना है उसने अपने हृदय में ही जाना है और उसे बाहर नहीं बता सके हैं । परमपिता परमेश्वर तो निशब्द हैं, फिर वे शब्द से कैसे व्यक्त हो सकते हैं ।

जो कहिइब सो होइब ईशारा । समझहु उमा मति अनुसारा ॥
सर्वपालक प्रभु जग नियन्ता । भगत व त्सल उर बसन्ता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं जो कहूँगा वो परमात्मा की ओर ईशारा मात्र होगा। तुम अपनी बुद्धि के अनुसार समझ लेना । हे पार्वती ! परमपिता तो सबके पालनकर्ता व जगत को नियन्त्रण करने वाले, भक्त वत्सल व सबके हृदय में निवास करने वाले हैं ।

उमा मोहि असि अनुभव होई । प्रभु छाड़ि नहिं जग कर्ता कोई ॥
कर्ता प्रभु तउ अकर्ता लगाई । मोर घट इहँ समझ पराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि परमपिता के अलावा संसार में दूसरा कोई करने वाला नहीं है । परमपिता सब कुछ करने वाले होकर भी अकर्ता ही लगते हैं । यह रहस्य मुझे मेरे हृदय में समझ आया है।

प्रभु बल निसि दिवस घटाई । जद्यपि दिवाकर स्थिर सदाई ॥
जाहि बल नयनन परे दिखाई । सोई क्षमता मोर प्रभु सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सूर्य सदा स्थिर रहता है, फिर भी परमात्मा की शक्ति से रात-दिन होते हैं । जिसके बल से आँखों को दिखाई पड़ता है, वो ही मेरे परमात्मा की शक्ति है ।

पंचभूत जो सब उपजाई । सोई पंचउ मोर प्रभु बनाई ॥
प्रकृति बल सब चलत संसारा । प्रकृति शक्ति सोउ प्रभु आधारा ॥

व्याख्या – पंच भूतों से सब कुछ पैदा होता है परन्तु पाँचों तत्वों को भी

परमात्मा ने ही बनाया है। प्रकृति के बल से समस्त सृष्टि संचालित होती है, परन्तु प्रकृति की शक्ति का आधार भी मेरे परमात्मा ही होते हैं।

दो०—कीरी कुंजर खग खगेश सब जाके बल उदर भराई ।
सोई सर्व समर्थ उमा परमात्मा चरित नहिं बरननि जाई ॥१००॥

व्याख्या — चींटी सी लेकर हाथी और पक्षी से लेकर गरूड़ जिसकी क्षमता से पेट भरते हैं, वो ही सर्व शक्तिशाली परमात्मा हैं, जिनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण षष्ठविंशति पड़ाव ॥

जाके बल भानु करहिं प्रकाशा। सोई परमपिता करहु आभासा ॥
नियम मानि जाके बल ऋतु होई। जगत पिता उमा परमात्मा सोई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जिसके बल से सूर्य प्रकाशित होता है, अनुभव करके देखों, वही परमपिता हैं। जिसके बल से नियमानुसार ऋतु चक्र चलाता है, वही जगत के पिता परमात्मा हैं।

जेहि बनाई सकल ब्रह्माण्डा। व्यापक सम एकरस अखण्डा ॥
जाहि बल क्षुधा लगई सब प्रानी। करावई तृप्त सोई भवानी ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की है और सर्वत्र समान एकरस व अखण्ड रूप में व्यापक रहता है और जिसके बल से समस्त प्राणियों को भूख लगती है और वही समस्त प्राणियों की क्षुधा को तृप्त भी करवाता है।

जाहि भरोस लहहिं जोग सब सन्ता। कृपा सिन्धु प्रभु नाम अनन्ता ॥
सकल घट प्रभु अन्तरयामी। सोइ उमा मम पितु मातु स्वामी ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जिसके भरोसे सभी सन्त योग धारण करते हैं, वे परमपिता तो कृपा के समुद्र हैं, जिनके अनन्त नाम हैं। हे पार्वती ! परमात्मा तो सबके हृदय की अन्तर की जानने वाले हैं। वे ही मेरे माता-पिता व स्वामी हैं।

उमा प्रभु सकल विभूति धारी। उत्पति पालन प्रलय आचारी ॥
ग्यान विग्यान पार प्रभु असीमा। सूच्छम ते सूच्छम भीमा तें भीमा ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमात्मा तो समस्त विभूतियों को धारण करने वाले हैं तथा उत्पत्ति, पालन व प्रलय उनका सहज स्वभाव है। वे तो ज्ञान-विज्ञान से भी परे सीमा रहित हैं तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और विराट से भी विराट हैं।

दो०—जाके बल निर्भय निर्द्वन्द मैं जन्म-मरण नहिं मोय सताय ।
सोई सर्वसमर्थ प्रभु मम पिता उमा कवनउ विधि बरननि जाय ॥१०१॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जिसके बल से मैं सदा निर्भय व निर्द्वन्द रहता हूँ तथा जन्म व मृत्यु भी मुझे नहीं सताते हैं। वे सर्वशक्तिशाली परमात्मा ही मेरे पिता

हैं, जिनका किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

छ०- नाम के भी नाम परम सुख धाम सहज दयाल वो तो करुणा निधान हैं।
जग के सृष्टा रहहिं दृष्टा सहज कृपाल वो तो सब गुणों की खान हैं ॥
सब घटवासी रहते अविनाशी भाव वश वो तो भक्त वत्सल भगवान हैं।
मुनि मन रंजन भव भय भंजन करुणामय कृपाल वो तो कृपा निधान हैं॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता तो नाम के भी नाम (अर्थात नाम की भी सीमा से परे हैं) और परमसुख के घर हैं । वे तो सहज में दया करने वाले व करुणानिधान हैं । वे तो जगत की उत्पत्ति करके दृष्टा बन कर रहते हैं तथा सहज कृपाल व सब गुणों की खान हैं । परमपिता तो सबके हृदय में निवास करने वाले हैं तथा सदा अविनाशी हैं । वे तो भाव के वश में रहते हैं और भक्त वत्सल भगवान हैं । वे तो मुनियों के मन को सन्तुष्ट करने वाले और भव सागर के भय को दूर करने वाले करुणामयी हैं तथा कृपा के निधान हैं ।

छ०- अनुभव गम्य कहत दुर्गगम्य मन बुद्धि गुण गो पार निर्मूल हैं ।
जग करतार नहिं विकार सुखधाम सुख स्वरूप सुख मूल हैं ॥
अद्भुत करनी जाई नहिं बरनी अकथ अगाध असीम निःशब्द हैं ।
भाव अनुसार प्रकट करतार देखि विभूति अनन्त मन मोर स्तब्ध है ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता तो अनुभव से जानने में आने वाले हैं उनका वर्णन करना कठिन है । वे तो मन, बुद्धि, वाणी, गुण व इन्द्रियों से परे हैं तथा बिना मूल के हैं । वे तो जगत के कर्ता, विकार रहित, सुख के घर, सुखमय, सुख स्वरूप व सुख के मूल हैं । परमात्मा की करणी तो अद्भुत होती है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे तो अकथनीय, अगाध, सीमा रहित व निशब्द हैं । हे पार्वती परमात्मा तो भावों के अनुसार प्रकट होते हैं । उनकी अनन्त विभूतियों को देखकर मेरा मन आश्चर्यचकित है ।

दो०–प्रभु स्वरूप निःशब्द उमा निशब्द शब्द न जाय बखान ।
कृपा करहहिं जब पिता हृदय करावहहिं निज पहिचान ॥१०२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा का स्वरूप तो निशब्दमय होता है इसलिए निशब्द का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता है । हे पार्वती ! जब परमपिता कृपा करते हैं, तब वे स्वयं ही हृदय में अपनी पहचान करा देते हैं ।

छ०–ऋषि मुनि जोगी सिद्ध सन्त जन बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।
नेति नेति कहहिं जाहि वेद निजहिं निज नित्य समझावहीं ॥
सोइ प्रभु व्यापक सर्व भुवन अकथ अनादि ब्रह्माण्डपति माया धनी ।
अवतरहिं भगत हिंय जगत हित तम नाशक ग्यान बनि प्रकाश मनी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिसे ऋषि-मुनि, योगी, सिद्ध व सन्त जन निर्मल मन से भजते हैं और वेद भी जिसे नेति-नेति कहकर स्वयं को समझाते हैं। वो ही परमात्मा समस्त भुवनों में व्यापक, अकथनीय, अनादि ब्रह्माण्ड का स्वामी व माया को पैदा करने वाला है तथा वो जगत के कल्याण के लिए भक्तों के हृदय में अन्धकार रूपी अज्ञान को नाश करने वाली ज्ञान रूपी मणी बन अवतरित होते हैं।

दो०–ब्रह्म सर्वव्यापक एकरस अज अकल अनीह अभेद ।
उमा शरण आवहि जीव जब मिटहिं तुरत सब खेद ॥१०३॥

व्याख्या – परमात्मा तो सर्वव्यापक, एकरस, अजन्मा, अकल, अखण्ड व अभेद हैं। हे पार्वती ! उनकी शरण में जाने पर तो जीव के समस्त कष्टों का तुरन्त निवारण हो जाता है।

सगुनहि अगुनहि नहिं किछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सगुण व निर्गुण में कोई अन्तर नहीं होता है। ऐसा सभी वेद, पुराण, विद्धान व मुनि लोग बताते हैं। जो ब्रह्म निर्गुण, अरूप, अलख व अजन्मा होता है, वो ही भक्त के प्रेम के भावों के अनुसार गुणों से युक्त दिखाई पड़ने लगता है।

जो गुण रहित सगुण सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम नश तिमिर पतंगा। तेहि किसि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥

व्याख्या – जो गुणों से रहित होता है, वो सगुण वैसे ही होता है, जैसे जल और जल से बनी हुई बर्फ अलग नहीं होते हैं। जिस परमात्मा के नाम से अज्ञान रूपी पतंगे का नाश हो जाता है, वहाँ कैसे मोह हो सकता है।

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकाशरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विग्यान बिहाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता तो सत्चितआनन्द रूपी सूर्य हैं, अतः वहाँ तो मोहरूपी रात्री का नामो-निशान नहीं हो सकता है। परमात्मा तो सहज में ही प्रकाश के रूप हैं तथा वहाँ तो विज्ञान की भी पहुँच नहीं है।

हरष-विषाद ग्यान अग्याना। जीव भाव अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! हर्ष-विषाद व ज्ञान-अज्ञान तो जीव के अहंकार व अभिमान के भाव होते हैं। परमपिता तो समस्त जग में व्यापक, परमानन्द व अनादि परमपुरुष हैं।

दो०–परम पुरुष प्रकास निधि सर्वत्र सचराचर नाथ ।
परम कृपाल मम स्वामी उमा नवावहूँ तिन्ह मैं माथ ॥१०४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता तो प्रकाश के मूल, सर्वत्र व चराचर के नाथ हैं। वे मेरे स्वामी बहुत ही कृपाल हैं । अतः मैं उन्हें सीस झुकाता हूँ ।

सबकर परम प्रकासक जोई । ब्रह्म अनादि जगतपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥

व्याख्या – जो सब जगत को प्रकाशित करने वाले हैं, वे ही अनादि ब्रह्म जगत के पति हैं । परमात्मा प्रकाश करने वाले हैं तथा जगत परमात्मा से प्रकाशित हो रहा है । परमात्मा तो माया के पति व गुणों के घर हैं ।

जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥
जासु कृपा माया भ्रम मिट जाई । गिरिजा सोई परमात्मा सुहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिस शक्ति की सत्ता से जड़ माया भी सत्य लगने लग जाती है और मोह को बढ़ा देने लग जाती है तथा जिसकी कृपा होने से माया का सब भ्रम मिट जाता है, वही शक्ति परमात्मा हैं ।

आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिसका कोई भी आदि व अन्त नहीं जान पाया है तथा वेदों ने भी अपनी मति के अनुसार ही जिसका वर्णन किया है । वह परमपिता तो बिना पैर के चलते हैं तथा बिना कानों के सुनते हैं और बिना हाथों के कर्म करते हैं ।

आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥

व्याख्या – वे परमात्मा तो बिना मुख के समस्त रसों का भोग करते हैं तथा बिना वाणी के ही कुशलतापूर्वक बोलते हैं और बिना शरीर के ही स्पर्श करते हैं तथा बिना आँखों के देखते हैं । वे तो बिना नासिका के ही समस्त गन्धों का अनुभव करते हैं ।

अस सब भांति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
ब्रह्म चिन्मय सदा अबिनासी । सर्व रहित सब उर पुर बासी ॥

व्याख्या – इस प्रकार परमात्मा की अलौकिक करणी होती है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । हे पार्वती ब्रह्म तो चिन्मय व अविनाशी शक्ति है, जो सबके हृदय में निवास करती है ।

दो०–जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोई सर्वनाथ परमात्मा उमा सब घट व्यापक एक समान ॥१०५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिसे वेदों व विद्वानों द्वारा बताया गया है और मुनि भी जिसका ध्यान करते हैं, वे ही सबके स्वामी परमात्मा सबके हृदय में एक समान व्यापक रहते हैं ।

कासी मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम बल करउँ बिसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । सर्वस्व सब उर अंतर जामी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिसके नाम के बल से मैं काशी में मरने वाले जीवों को मुक्ति देता हूँ, वो चराचर के स्वामी, सर्वस्व व सब के हृदय की जानने वाले मेरे परमात्मा हैं ।

बिबसहुँ जासु नामु नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं । भव बारिधि गोपद इव तरहीं ॥

व्याख्या – जिस परमात्मा का नाम विवश होकर भी जीव ले लेते हैं, उनकी अनेक जन्मों की चिन्ताओं (पाप) का नाश हो जाता है तथा जो आदरपूर्वक परमात्मा का नाम लेते हैं, वे तो गोपद की तरह भव सागर को पार कर जाते हैं ।

राम सोइ परमात्मा भवानी । तहँ नहिं भ्रम पार मन सयानी ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहु सयानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वे ही परमात्मा हैं जिनके पास जाने से सब संशय मिट जाते हैं । वे तो मन व बाणी से परे हैं । हे उमा ! मेरा तो यह मानना है कि परमात्मा तो तर्क, बुद्धि, मन व बाणी से परे होते हैं ।

तदपि संत मुनि बेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही । समुझि परइ जस अनुभव मोही ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! यद्यपि वेदों व पुराणों ने अपनी मति के अनुसार परमात्मा का बखान किया है, अतः हे प्रिय ! मैं मेरे अनुभव के अनुसार उसी को तुम्हें बताता हूँ । सुनो –

दो०–हरि गुन नाम अपार कथा महिमा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार कहउँ जगतपति पावन चरित ॥१०६॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा के गुण व नाम की कथा तो अपार है तथा रूप भी अनगिनत व अपार होते हैं । इसलिए मैं तुम्हें परमात्मा के पावन चरित को मेरी बुद्धि के अनुसार ही बताऊँगा ।

प्रभु करहिं चाहहि सोइ होई । करै अन्यथा अस नहिं कोई ॥
मोरें हित प्रभु सम नहिं कोऊ । करहउँ बिनय जोरि कर दोऊ ॥

व्याख्या – जो परमात्मा करना चाहते हैं, वो ही होता है, ऐसा कोई भी नहीं

है, जो उसे मिटा सके। अतः मेरे तो परमपिता ही हित करने वाले हैं, इसलिए मैं तो दोनों हाथ जोड़कर उनकी प्रार्थना करता हूँ।

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहिं प्रभु सोई ॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहिं। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहिं ॥

व्याख्या – परमात्मा तो परम स्वतन्त्र होते हैं, उनसे ऊपर कोई नहीं होता है। अतः वे तो मन के भावों के अनुसार करते रहते हैं। वे तो अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा कर देते हैं तथा कभी भी हर्ष व आश्चर्य कुछ भी नहीं करते हैं।

करम सुभासुभ प्रभुहि न बाधा। महिमा अमित अनन्त अगाधा ॥
प्रेम सह जपहिं जेहि प्रभु नामा। होइहि हृदय तुरत बिश्रामा ॥

व्याख्या – परमपिता को कर्मों के अच्छे-बुरे का बन्धन नहीं होता है। उनकी तो महिमा अमित, अनन्त व अगाध होती है। जो प्रेमपूर्वक परमात्मा का जप करते हैं, उनके हृदय में तुरन्त विश्राम मिल जाता है।

प्रभु उर धरि महि बिचरइ जेहि। माया सतावइ न कबहुँन तेहि ॥
जेहि पर कृपा करहिं प्रभु मेरे। तिन्ह हियँ भगति ललहि हिलोरें ॥

व्याख्या – जो लोग परमात्मा को अपने हृदय में याद करते रहते हैं, उन्हें कभी भी माया नहीं सता सकती है। हे पार्वती ! जिस पर मेरे परमात्मा कृपा करते हैं, उनके हृदय में भक्ति हिलोरें लेती रहती है।

दो०–सुर नर मुनि सिद्ध सकल हरिमाया देइ नचाय।
प्रभु शरण जे जनु रहहिं तिन्ह माया सकहिं नहिं सताय ॥१०७॥

व्याख्या – देवता, नर, मुनि, सिद्ध आदि सभी को परमात्मा की माया नचाती रहती है, परन्तु जो लोग परमात्मा की शरण में रहते हैं, उन्हें माया नहीं नचा सकती है

प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुःखहारी ॥
उमा प्रगटहिं प्रभु भाव बिलोकि। सकल सुखदायक सहज अशोकि ॥

व्याख्या – हे पावती ! परमात्मा तो लीला करने वाले और प्राणी मात्र का हित करने वाले हैं। उनकी सेवा करना सरल है और वे सब दुःखों को दूर करने वाले हैं। हे उमा ! परमात्मा तो भावों को देखकर प्रकट होते हैं। वे तो सबको सुख देनेवाले व सहज में ही दुःखों से परे हैं।

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा ॥
उर अभिलाष निरंतर होई। देखन चाह परम प्रभु सोई ॥

व्याख्या – हे उमा ! शाक, फल व कंदों का भोजन करके सत्चितआनन्द ब्रह्म का सुमिरण करना चाहिये तथा परमात्मा को देखने की अभिलाषा सदा हृदय

में होनी चाहिये ।

करहिं तप हरि चरण लागी । विषय वासना फल सब त्यागी ॥
हियँ उठइ मिलन भाव उमंगा । निसि दिवस रत हरि कथा प्रसंगा ॥

व्याख्या – समस्त विषय वासनाओं के फल की इच्छा का त्याग करके परमात्मा के चरणों में अनुराग रखते हुए तप करना चाहिए तथा हृदय में परमात्मा से मिलने की उमंग उठनी चाहिये और रात-दिन परमात्मा की कथा में रत रहना चाहिये ।

उमा प्रभु भाव बस अहई । भगत हेतु हृदय अवतरई ॥
जो जो आवई भाव मन माहिं । सोई सोई रूप प्रभु दिखाहिं ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो भावों के वश में रहते हैं और भक्तों के हृदय में अवतरित होने वाले हैं । क्योंकि जो जो भाव मन में आते हैं, परमात्मा वैसा-वैसा ही रूप दिखाते रहते हैं ।

दो०–प्रभु करणी अलौकिक सदा उमा भाव अनुसार समझ पराय ।
सबु तजि शरण जे लहहिं नहिं संशय तिन्ह हियँ प्रगटाय ॥१०८॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की करणी तो सदा अलौकिक ही होती है, जो भावों के अनुसार जीव को समझ में आती है । इसलिए जो सब कुछ छोड़कर परमात्मा की शरण ले लेते हैं, उनके हृदय में निसन्देह परमात्मा प्रकट हो जाते हैं ।

अगुन अखण्ड अनंत अनादी । जेहि चिंतहि परमारथबादी ॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद निरूपाधि अनूपा ॥

व्याख्या – हे उमा ! जिसका परमार्थबादी अगुन, अखण्ड, अनन्त व अनादि मानकर चिन्तन करते हैं तथा वेदों ने भी नेति नेति कहकर समझाया है, वे परमात्मा तो निजानंद, उपाधि रहित व अनुपम हैं ।

मम सहित बिरंचि बिष्णु सुजाना । उपजहिं जासु अंश ते नाना ॥
सेवक सुलभ सकल सुखदायक । प्रनतपाल सचराचर नायक ॥

व्याख्या – मुझ सहित ब्रह्मा व विष्णु उस परमात्मा के अंश से पैदा हुए हैं। परमपिता तो भक्तों के लिए सुलभ व सबको सुख देने वाले हैं । वे तो प्राणीमात्र के पालक व समस्त चराचर के स्वामी हैं ।

जो सरूप बस निज मन माहीं । सोई रूप प्रभु देइ प्रगटाहीं ॥
नाम मूल मन मानस हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥

व्याख्या – जो स्वरूप भक्त के मन में रहता है, परमात्मा उसी रूप को प्रकट कर देते हैं । नाम ही मन के मानस रूपी हंस का मूल होता है । मानस ही सगुण व अगुन होता है, जिसे वेदों ने बताया ।

सकहिं देखि रूप भरि लोचन । करहिं कृपा प्रनतारित मोचन ॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना । बिस्वबासे प्रकटे भगवाना ॥

व्याख्या — मानस (मन की चेतना) के अनुसार परमात्मा के रूप को आँखों से देखा जा सकता है और परमात्मा कृपा करके प्राणियों के संकटों को भी दूर कर देते हैं। भगवान तो भक्त वत्सल व कृपा निधान होते हैं, जो विश्वास से प्रकट होते हैं।

दो०—महिमा अमित जगत नाथ की मन वाणी तहँ सब मौन सुहाय ।
भाव अनुसार रूप अनन्त कोउ कबि सकइ न बताय ॥१०९॥

व्याख्या — जगतपिता की महिमा तो अनन्त होती है तथा वहाँ पर तो मन व वाणी भी मौन हो जाते हैं तथा भावों के अनुसार परमात्मा के रूप भी अनन्त हो जाते हैं, इसलिए कोई भी कवि वर्णन नहीं कर सकता है।

प्रभु चित नर नारी जग मूला । बाम भाग रहहहिं अनुकूला ॥
नारी अंस उपजहिं गुन खानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमात्मा के चित की नर-नारी (नाड़ी) ही जगत का मूल होते हैं तथा बायें दिशा में अनुकूलता बनी रहती है। हे ब्रह्ममयी उमा! नाड़ी से ही समस्त गुणों की उत्पत्ति होती है तथा गुणों से उत्पन्न लक्षण अनगिनत होते हैं।

भृकुटि बिलास जासु जग होई । प्रभु नारी बाम दिसि सोभित सोई ॥
प्रभु ब्रह्मादि जनक जग स्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥

व्याख्या — जिसके भृकुटि पर हिलने मात्र से जगत की उत्पत्ति हो जाती है अर्थात जगत का आभास हो जाता है, वही परमात्मा की नाड़ी बाएँ दिशा में शोभित रहती है। परमात्मा ब्रह्म आदि (बीज तत्व) के पैदा करने वाले व जगत के स्वामी हैं। परमात्मा तो सबके हृदय को जानने वाले हैं।

आदिशक्ति नारी जग उपजाया । सोइ व्यापक जग बनि माया ॥
अस समुझत मन संसय होई । प्रभु विश्वास प्रवान पुनि सोई ॥

व्याख्या — परमात्मा की आदिशक्ति नारी (नाड़ी) से जग पैदा हुआ है और नारी ही माया बन कर जगत में व्यापक रहती है। ऐसा समझने से हालांकि मन में संशय हो जाता है, परन्तु परमात्मा का विश्वास ही इसका प्रमाण करा देता है।

हृदय न कहु फल अनुसंधाना । तिन्ह पर प्रसन्न होइ भगवाना ॥
शरणागत जे करम मन बानी । ते जनु जानहिं मरम प्रभु भवानी ॥

व्याख्या — जिनके हृदय में फल की कोई इच्छा नहीं रहती है, उन पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं। हे पार्वती! जो मन, कर्म व वाणी से परमात्मा की शरण में रहते

हैं, वे ही परमात्मा के रहस्य को जान पाते हैं ।

दो०—सहज प्रसन्नता सुभाव प्रभु शरणागत प्रिय प्राण समान ।
अस जियँ जानि भवानी निसि दिवस करउ प्रभु गान ॥११०॥

व्याख्या — सहज में ही प्रसन्न रहना परमात्मा का स्वभाव होता है तथा उन्हें शरण में आया हुआ जीव प्राणों के समान प्रिय होता है । अतः हे पार्वती ! ऐसा मन में विचारकर रात-दिन परमात्मा के गुणों का गान करो ।

जनि आचरजु करहु मन माहीं । उमा तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तप बल तें जग सृजइ बिधाता । तप बल बिष्णु भए परित्राता ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! मेरी बातें सुनकर आश्चर्य मत करो क्योंकि तप करने से कुछ भी प्राप्त करना दुर्लभ नहीं होता है । तप के बल से विधाता सृष्टि की रचना करते हैं और तप के बल से ही अणु-अणु में व्याप्त होकर जगत का पालन करते हैं ।

तप बल संभु करहिं संघारा । तप तें अगम न कछु संसारा ॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी । तप बल हियँ जानहु भवानी ॥

व्याख्या — तप के बल से ही स्वयं परमात्मा (शंभू) सृष्टि का संहार करते हैं। तप के बल से संसार में कुछ भी अगम (छुपा हुआ) नहीं रहता है । हे पार्वती! उत्पत्ति, पालन व प्रलय की व्यवस्था को तप करके अपने हृदय में जान लो ।

तप बल कृपा सिन्धु दर्शन होई । चारि पदारथ करतल सोई ।
तप बल प्रभु प्रसन्न सदाई । मन भावन मिलइ संशय नाई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! तप के बल से ही परमात्मा के दर्शन होते हैं जिससे चारों पदार्थ करतल हो जाते हैं । तप के बल से ही परमात्मा सदा प्रसन्न रहते हैं, जिससे मन की भावना के अनुसार फल की प्राप्ति हो जाती है । इसमें संशय नहीं है ।

गुरु प्रसाद सोई तप आधारा । गिरि नन्दनी मत अस हमारा ॥
इन्द्रिन्ह लय मन जब होई । जानहु तप मरम उमा सोई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! मेरा तो यह मानना है कि गुरु की कृपा ही तप का आधार होती है । जब इन्द्रियाँ और मन एक हो जाते हैं, तब वही तप की अवस्था होती है ।

दो०—गुरु प्रसाद तप बल बढ़हिं जसि रवि उदित बढ़हि प्रकास ।
गुरु शरण तप भल भवानी होवहिं पूरण सहज सब अभिलास ॥ १११॥

व्याख्या — हे पार्वती ! गुरु की कृपा से तप का बल बढ़ता है, जैसे सूर्य के उदय होने से प्रकाश बढ़ता है । अतः गुरु की शरण में ही तप करना अच्छा होता है, जिससे सहज में ही सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

जाके हृदय भगति जसि प्रीति । प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीति ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिसके हृदय में भक्ति का जैसा प्रेम होता है, परमात्मा उसी भावना के अनुसार प्रकट हो जाते हैं। परमात्मा तो सर्वत्र समान रूप से व्यापक रहते हैं, वे तो प्रेम से प्रकट होते हैं। ऐसा मेरा मानना है।

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जगमग सब रहित बिरागी । प्रेम तें प्रभु प्रगटई जिमि आगी ॥

व्याख्या – सब जगह सब समय व सब दिशाओं में ऐसी कौन सी जगह है, जहाँ परमात्मा नहीं होते हैं ? अर्थात परमात्मा सर्वत्र होते हैं। परमात्मा तो समस्त जगतमय व सबसे परे वैराग्यवान होते हैं, जो प्रेम से वैसे ही प्रकट हो जाते हैं, जैसे लकड़ी से अग्नि पैदा हो जाती है।

मोर मत अस जानि भवानी । मति अनुसार सब ब्रह्म बखानी ॥
रूप सकहिं नहिं कहिं श्रुति सेषा । सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मेरा तो ऐसा मानना है कि परमात्मा का लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है। उनके रूप का वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते हैं। वे तो वही बता सकते हैं, जिन्होंने परमात्मा को स्वपन में देखा हो।

ब्रह्म निरंजन विगत बिनोदा । प्रेमवश करहिं भगत मन मोदा ॥
सकल सील रूप गुण धामा । सुख सागर दायक परम बिश्रामा ॥

व्याख्या – परमात्मा तो माया से परे (निर + अंजन) तथा लीला से भी परे होते हैं, परन्तु भक्त के प्रेमवश होकर भक्त के मन में ही मोद (प्रेममय खेल) करते रहते हैं। परमात्मा तो समस्त शील, रूप व गुणों के धाम होते हैं तथा वे तो सुख के समुद्र व परम विश्राम को देने वाले होते हैं।

दो०–सर्वत्र ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण ग्यान गिरा गोतीत ।
साधक प्रेम बिलोकि हियँ समझावहिं निज चरित पुनीत ॥ ११२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो सर्वत्र व्यापक, माया से रहित, निर्गुण, ज्ञान, वाणी व इन्द्रियों से परे होते हैं। वे तो साधक के हृदय में प्रेम को देखकर अपने पावन चरित को स्वयं ही समझाते हैं।

उमा प्रभु सकल जग पितु माता । शरणागत रक्षक सदा सुखदाता ॥
जीव चराचर बस जेहि राखे । सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो समस्त संसार के माता-पिता हैं तथा वे तो शरण में आने वालों के रक्षक व सदा सुख देने वाले हैं। जिस माया ने समस्त चराचर को

अपने वश में कर रखा है, वह माया भी परमात्मा से भय खाती है।

भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही ॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। ध्यावहिं प्रभु कृपा बरसाई ॥

व्याख्या – परमात्मा उसी माया को अपनी भृकुटि पर नचाते हैं अतः हे पार्वती! ऐसे प्रभु को छोड़कर किसका भजन करना चाहिये ? अर्थात निरन्तर परमात्मा का भजन करना चाहिये। जब मन, वचन व कर्म की चतुराई को छोड़कर परमात्मा का भजन करते हैं, तब परमात्मा कृपा की वर्षा करते हैं।

काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। प्रभु सब पार सुना न काऊ ॥
देखउ माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो कभी किसी ने सुना भी नहीं है, ऐसा परमात्मा काल, कर्म, गुण व ज्ञान से परे होते हैं। सब प्रकार से प्रबल माया भी उनके सामने हाथ जोड़कर भयभीत खड़ी रहती है।

माया जीव नचावइ जाही। प्रभु शरण जो छोरइ ताही ॥
बिसमयवंत रचा जे संसारा। सोइ परम कृपाल प्रभु हमारा ॥

ही अपनी विशेषताओं को समझाते हैं।

धरम सेतु पालक जगत्राता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता ॥
ब्यापक ब्रह्म अलखु अबिनासी। चिदानंद निरगुन गुन रासी ॥

व्याख्या – परमात्मा तो धर्म के आधार, सबके पालन कर्ता व जगत के उद्धारक हैं तथा वे तो प्रेम के वश में रहनेवाले व सबको सुख देने वाले हैं। वे तो अलख व अविनाशी सर्वत्र व्यापक ब्रह्म हैं तथा आनन्दमय, गुणों से परे व गुणमय हैं।

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपत्ति बिनहिं बोलाएँ। प्रभु भगत पहिं जाहिं सुभाएँ ॥

व्याख्या – जिस जीव को माया नाच नचाती है, उसे भी परमात्मा की शरण में जाने पर माया छोड़ देती है। हे पार्वती ! जिसने इस आश्चर्य चकित करने वाले संसार की रचना की है, वे ही हमारे परमपिता हैं।

दो०–ब्यापक कण कण अनीह अज निर्गुण नाम न रूप।
भगत हृदय अवतरहि समझावहिं निज चरित अनूप ॥११३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो कण-कण में ब्यापक, अखण्ड, अजन्मा, निर्गुण, नाम व रूप से परे होते हैं। वे तो भक्त के हृदय में अवतरित होकर

व्याख्या – हे पार्वती ! जैसे नदियाँ सहज में ही सागर में मिलती रहती है, हालांकि सागर की कोई कामना नहीं रहती है, वैसे ही सुख, वैभव व सम्पत्ति

बिना बुलाए ही परमात्मा के भक्त के पास आती रहती हैं ।

समरथ प्रभु सम जग माहीं । भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं ॥
प्रभु सामर्थ्य किमि जाइ बखाना । बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना ॥

व्याख्या – परमात्मा के समान समर्थवान न तो कोई है, न हुआ है और न होगा। अतः परमात्मा की क्षमता का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? उन्होंने ते आश्चर्य चकित करने वाले संसार की रचना की है ।

प्रभो करौ केहि भांति प्रसंसा । ऋषि मुनि मन मानस हंसा ॥
लहहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता मद त्यागी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं परमात्मा की प्रशंसा कैसे करूँ, वे तो मुनियों के मन की चेतना के हंस हैं । उनके भरोसे तो योगी क्रोध, ममता व मद का त्याग करके योग धारण करते हैं ।

दो०–अगम अगोचर विगत बिषय प्रभु समस्त सुख मूल ।
जीव लाह तबहि जानि उमा होइ जगपितु अनुकूल ॥११४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो अगम्य, अगोचर व विषय वासनाओं से परे तथा समस्त सुखों के मूल होते हैं । हे पार्वती ! जीव की भलाई तो तभी जाननी चाहिये, जब परमात्मा अनुकूल होते हैं ।

रामहिं केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जानिन हारा ॥
राम सदा सेवक रूचि राखी । बेद पुरान साधु सुर साखी ॥

व्याख्या – परमात्मा को तो केवल प्रेम ही प्रिय होता है, इस रहस्य को जानने वाले जान सकते हैं । वेद, पुराण, साधु व देवता सभी इस बात के साक्षी होते हैं कि परमात्मा तो भक्तों की रूचि के अनुसार ही करते हैं ।

जनम मरन उमा दुख सुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं सदाई । बरबस राति दिवस की नांई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सुख व दुःखों का भोग, जन्म व मरण, हानि, लाभ, प्रिय मिलन व वियोग सब काल (समय) व कर्म के अनुसार होते हैं, जैसे रात-दिन की प्रक्रिया होती रहती है ।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहिं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

व्याख्या – इसलिए मूर्ख लोग ही सुख में हर्षित और दुःख में रोते हैं । धैर्यवान तो सुख-दुःख में एक समान रहते हैं । यह समस्त संसार तो कर्म प्रधान है, इसलिए जैसा कर्म वैसा फल मिलता है ।

राम करहिं सम बिषम बिहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
अगुन अलेष अमान एक रस । प्रभु होहिं सगुन भगत प्रेम बस ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा का तो भक्त की भावना के अनुसार सम व विषम व्यवहार होता है । वे तो गुणों से रहित, निर्लेप, मान आदि से परे, एकरस होते हैं तथा भक्त के प्रेम को देखकर गुणों में बरतते हैं ।

दो०–राम सदा भगत हित निरत भगत दुख दुखी दयाल ।
भगत रक्षक प्रभु सदा सो भगत तें डरपहिं सुरपाल ॥११५॥

व्याख्या – परमात्मा तो भक्त के हित को देखते रहते हैं, इसलिए भक्त के दुःख को देखकर दुःखी होते हैं और सदा अपने भक्त की रक्षा करते हैं, इसलिए भक्त से देवइन्द्र भी डरता रहता है ।

सत्य सरूप पालक श्रुति सेतू । राम कृपा जग मंगल हेतू ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ॥

व्याख्या – परमात्मा तो सत्य के स्वरूप तथा वेद मत पालक हैं तथा उनकी कृपा जगत में मंगल करने वाली होती है । नीति और प्रेम सब परमार्थ या स्वार्थ में होते हैं परन्तु परमात्मा के समान तो परमात्मा ही होते हैं ।

बिधि हरि ससि रबि दिसिपाला । माया जीव करम कुलि काला ॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥

व्याख्या – ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, दिग्पाल, माया, जीव, कर्म, काल, शेषनाग, राजा और भी अन्य प्रभुताधारी, योग व सिद्धियों, जिनका वर्णन शास्त्र व पुराणों में किया गया है ।

करि बिचार जियँ देखहु नीकें । राम रजाइ सीस सब ही कें ॥
सो गोसाई बिधि गति जेहि छेंकि । सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! हृदय में विचार करके देखलो सभी परमात्मा की आज्ञा से ही चलते हैं । वे परमात्मा तो बिधि (क्रिया) की गति को भी मिटा देते हैं, उनकी इच्छा को कोई नहीं मिटा सकता है ।

उमा बात फुरि राम कृपाहीं । राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥
सकल जगत राम पितु माता । करम सुभासुभ फल देइ बिधाता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की कृपा से ही बात सिद्ध होती है क्योंकि परमात्मा से विमुख जीव को तो सपने में भी सिद्धियाँ नहीं मिलती हैं । परमात्मा ही समस्त जगत के माता पिता हैं । अच्छा-बुरा फल तो कर्म की शुभता

व अशुभता के अनुसार विधि का विधान देता है ।

दो०—राखें राम रजाइ रूख जीव तब सहज हित होइ ।
समुझि भगत जन करहिं सब मिलि संमत सोइ ॥११६॥

व्याख्या — जब जीव परमात्मा के रूख को देखकर व्यवहार करता है, तभी जीव का सहज हित होता है । अतः भक्त जन इस रहस्य को जान कर परमात्मा की इच्छानुसार रहते हैं । यह सभी लोगों का मत है ।

बिषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभाँ बड़ आदर तासू ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! वेदों ने विषयी, सिद्ध व ज्ञानी तीन प्रकार के जीव बताएँ हैं परन्तु जिसका मन राम (परमात्मा) के प्रेम में लगा रहता है, उसी का साधु समाज में बड़ा आदर होता है ।

सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥
प्रभु शरण फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! वे लोग अभागी होते हैं, जो परमात्मा को छोड़कर विषयों में अनुराग करते हैं । परमात्मा की शरण का परम फल तो यह होता है कि जीव को सहज में ही अपना स्वरूप प्राप्त हो जाता है ।

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अन्तर जामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमपिता तो गुणों से परे, सचराचर के स्वामी व सबके हृदय की जानने वाले हैं । वे कामियों के हृदय में दीनता दिखा देते हैं और धैर्य वानों के मन में बैराग्य बढ़ा देते हैं ।

क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजन जगत सब सपना ॥

व्याख्या — परमात्मा की कृपा से क्रोध, काम, लोभ, मद व माया का नाश हो जाता है । हे पार्वती ! मैं मेरा अनुभव बताता हूँ कि परमात्मा का भजन ही सत्य है, बाकी संसार तो सपने की तरह मिथ्या है ।

दो०—बिनु हरि जाने भ्रम न मिटहिं उमा इहँ सिद्धान्त अपेल ।
सब घट घट प्रभु बसहहिं जसि काठ अनल तिल माहिं तेल ॥११७॥

व्याख्या — हे पार्वती ! बिना परमात्मा को जाने भ्रम नहीं मिटता है, यह सिद्धान्त अटल है । परमात्मा तो सबके हृदय में वैसे ही बसते हैं, जैसे लकड़ी

में अग्नि और तिलों में तेल रहता है ।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका । जपत निरन्त होवइ विवेका ॥

व्याख्या – हालांकि परमात्मा के अनेक नाम हैं और श्रुतियों ने भी एक से बढ़कर एक नाम बताया है । परन्तु सबसे बड़ा नाम तो राम ही का है, जिसका निरन्तर जप करने से हृदय में विवेक पैदा हो जाता है ।

प्रभु सम नहिं कोउ दयालु । सहज सुभाव जग प्रतिपालु ॥
सन्तन हृदय बसहिं रामा । भगत रक्षक दायक विश्रामा ॥

व्याख्या – परमात्मा के समान कोई दया करने वाला नहीं है । प्रभु तो सहज व जगत के पालनकर्ता हैं । सन्तों के हृदय में परमात्मा निवास करते हैं, जो भक्तों के रक्षक और परम शान्ति को देने वाले होते हैं ।

उमा कहउँ सुनु संत सुभाउ । तिन्ह हृदय प्रभु रहइ सदाउ ॥
षट विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ॥

व्याख्या – हे उमा ! सुनो मैं तुम्हें सन्त का स्वभाव बताता हूँ, जिनके हृदय में सदा परमात्मा निवास करते हैं । सन्त काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर व ईर्ष्या आदि विकारों को जीत कर पाप रहित व निष्काम रहते हैं । वे स्थिर बुद्धि व पवित्रता के घर होते हैं ।

अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्य सार कवि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रवीना ॥

व्याख्या – सन्त सम्यक बोध वाले, अखण्ड, भोगों से मुक्त, सत्य को जानने वाले, कवि, कोविद व योगी होते है तथा संयमी, मान-अपमान से परे, मद हीन, धैर्यवान व धर्म के आचरण में पारंगत होते हैं ।

दो०–गुनागार संसार दुःख रहित बिगत सब संदेह ।
तजि प्रभु चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥११८॥

व्याख्या – सन्त लोग समस्त गुणों के भण्डार होते हैं तथा संसार के दुःखों से रहित व सब संशयों से परे होते हैं । उनके तो परमात्मा के चरण कमलों को छोड़कर अपना शरीर व घर भी प्रिय नहीं होता है ।

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाही । पर गुन सुनत अधिक हरषाही ॥
निज सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥

व्याख्या – सन्त तो अपनी तारीफ सुनकर संकोच कर जाते हैं तथा दूसरों की प्रशंसा सुनकर हर्षित होते हैं । सन्त तो सदा शान्त रहते हैं तथा कभी भी नीति का त्याग

नहीं करते हैं तथा उनका स्वभाव सरल होता है तथा सभी से प्रेम करते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद पद सहज प्रेमा ॥
हियँ श्रद्धा छमा मयत्री अरु दाया। मुदिता प्रभु पद प्रीति अमाया ॥

व्याख्या – सन्त जप, तप, व्रत, संयम, दम आदि के नियमों का पालन करते हैं तथा गुरु और परमात्मा के चरणों में सहज प्रेम करते हैं। उनके हृदय में श्रद्धा, क्षमा, मैत्री और दया के भाव होते हैं तथा प्रसन्नतापूर्वक परमात्मा के चरणों में निश्छल प्रेम होता है।

बिरति बिवेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥

व्याख्या – सन्त वैराग्यवान, विवेकी, विनयी, विज्ञानी और वेद पुराणों का वास्तिक ज्ञान जानने वाले होते हैं तथा दम्भ, मान व मद नहीं करते हैं और भूल कर भी कुमार्ग पर नहीं चलते हैं।

गावहिं सुनहिं प्रभु गुण लीला। हेतु रहित परहितरत सीला ॥
उमा सुनु सन्तन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सन्त लोग तो सदा परमात्मा के गुण व लीलाओं की चर्चा करते रहते हैं तथा परहित करने वाले व शीलवान होते हैं। हे उमा ! सन्तों के गुणों का वर्णन तो सरस्वती व वेद भी नहीं कर पाते हैं।

दो०–सन्त महिमा अनन्त उमा परमपिता तिन्ह की लाज रखाय।
विगत वासना सहज सदा अवनि पतिहु सन्तन सीस झुकाय ॥११९॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सन्तों की महिमा तो अनन्त होती है क्योंकि परमात्मा स्वयं की मर्यादाओं की रक्षा करते हैं। सन्त लोग तो वासनाओं से मुक्त व सदा सहज होते हैं, इसलिए तो राजा भी सन्तों को सीस झुकाते हैं।

उमा प्रभु जब होइ अनुकूला। हृदय हरष बीती सब सूला ॥
प्रभु शरण सुखी जीव सदाई। सोइ सन्त जन निर्भय रहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा जब अनुकूल हो जाते हैं, तब हृदय में प्रसन्नता आ जाती है और समस्त कष्ट मिट जाते हैं। परमात्मा की शरण में तो जीव सदा सुखी रहता है, इसलिए सन्त लोग भी परमात्मा के बल पर निर्भय रहते हैं।

उमा प्रभु सम नहिं दूसर कोई। लहहिं शरण कृत कृत्य होई ॥
प्रभु समदरसी कह सब कोई। सेवक प्रिय अनन्य गति सोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा के समान संसार में दूसरा कोई नहीं होता है, क्योंकि परमात्मा की शरण में आने वाला जीव कृत कृत्य (कर्म बन्धन से मुक्त) हो जाता

है। परमात्मा को सभी ने समदर्शी बताया है और उन्हें अनन्य भाव (परमात्मा के अलावा दूसरा कोई नहीं) वाला सेवक अति प्रिय होता है।

उमा दारु जोषित की नांई। सबहिं नचावत रामु गोसांई ॥
उमा राम सम हित जग माही। गुरु पितु मातु बन्धु स्वामी नाहीं ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मदारी के बन्दर की तरह परमात्मा ही सब संसार को नचाते हैं। अतः परमात्मा के समान हित करने वाला संसार में गुरु, पिता, माता, भाई, स्वामी व मित्र कोई नहीं होता है।

सुर नर मुनि सबके यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति ॥
बिनु स्वारथ प्रभु प्रीति कराई। सो नहिं कोउ जग सम गुसांई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! देवता, मनुष्य व मुनिजन तो स्वार्थ के कारण प्रीत करते हैं परन्तु परमात्मा तो बिना स्वार्थ के ही प्रीत करते हैं, इसलिए परमात्मा के समान संसार में दूसरा कोई नहीं है।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
जासु कृपा छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा ॥

व्याख्या – जैसे भारी मात्रा के जल में मछली सुखी रहती है, वैसे ही परमात्मा की शरण में जीव सुखी रहता है। हे पार्वती ! जिसकी कृपा से मद व मोह आदि के विकार मिट जाते हैं, तब क्या वे परमात्मा किसी पर क्रोध कर सकते हैं ?

निज दोष बिरथा प्रभु लगाई। जानहिं नहिं मूढ़ निज मूढ़ताई ॥
जानहिं यह चरित मुनि ग्यानी। जिन्ह परमात्मा चरन रति मानी ॥

व्याख्या – जो लोग स्वयं के दोषों को परमात्मा पर लगाते रहते हैं, ऐसे मूर्ख लोग अपनी स्वयं की मूर्खता को नहीं जानते हैं। परमात्मा के चरित्र को तो वे ज्ञानी मुनि ही जान पाते हैं, जिनका परमात्मा के चरणों में अटूट प्रेम होता है।

दो०–सुनहु उमा प्रभु सन करिअ सकइ न कोउ चतुराई ।
सर्व समर्थ परमपिता परमात्मा तुरत लहहहिं उनि धराई ॥१२०॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा के सामने कोई चतुराई नहीं चल पाती है क्योंकि सर्व समर्थ परमात्मा चतुराई करने वाले को तुरन्त पकड़ लेते हैं।

सो तजि माया सेइअ पितु लोका। मिटहि सकल भव संभव सोका ॥
देह धरे कर उमा यह फलु पाई। भजिअ राम सब काम बिहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! इसलिए समस्त माया का त्याग करके समस्त लोकों के पिता का भजन करना चाहिये। जिससे भावों से पैदा होने वाले समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है। हे पार्वती ! शरीर धारण का ध्येय भी यही होता

है कि सबको छोड़कर परमात्मा का भजन करना चाहिये ।

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी । जो सदा प्रभु चरण अनुरागी ॥
उमा राम चराचर हितकारी । सगुन अगुन महिमा अपारी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वही गुणी और भाग्यवान होता है, जो सदा परमात्मा के चरणों में अनुराग रखता है । हे उमा ! परमात्मा तो समस्त चराचर का हित करने वाले हैं तथा वे तो सगुण व निर्गुण दोनों हैं, अतः उनकी महिमा तो अपरम्पार होती है ।

प्रभु सेवक हम उमा बड़ भागी । रखहु भाव हियँ अनुरागी ॥
पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं । अति अपार भव सागर तरहीं ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हम परमात्मा के सेवक हैं । अतः हृदय में परमात्मा के प्रति अनुराग का भाव रखो । हे पार्वती ! पापी लोग भी परमात्मा का नाम सुमिर कर अति दुस्तर भव सागर को पार कर जाते हैं ।

नहिं कोउ काज कठिन जग माहीं । जो नहिं होइ प्रभु कृपा पाहीं ॥
उमा करहु अस हृदय बिचारा । सर्व जगत परमात्मा करतारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! संसार में ऐसा कोई भी कार्य नहीं होता है, जो परमात्मा की कृपा प्राप्त करने से नहीं होता हो । अतः हृदय में ऐसा विचार कीजिए कि समस्त जगत के कर्ता परमपिता परमेश्वर ही हैं ।

दो०–सर्व समरथ प्रभु शरण रहउ उमा तब पाइब परम धाम ।
सुख दुःख कर्म फल सब अस विचारहिं लहहिं विश्राम ॥ १२१ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सर्व समर्थ परमात्मा की शरण में रहने से परम धाम की प्राप्ति होती है तथा सुख व दुःख कर्मो के फल होते हैं, ऐसा विचार करने से परमशान्ति मिलती है ।

गरल सुधा रिपु करहि मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही । प्रभु शरण जे जनु रहाही ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो लोग परमपिता की शरण में रहते हैं, उनके लिए जहर अमृत की तरह, शत्रु मित्र की तरह, समुद्र गोपद की तरह हो जाते हैं और अग्नि शीतल तथा गरुड़ व सुमेरु पर्वत धूल के कणों के समान हो जाते हैं ।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारी त्यागि मद मोहा ॥
प्रभु बिमुख संपति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! इसलिए मद व मोह का त्याग करके सोचो कि बिन परमात्मा के नाम के वाणी भी शोभा नहीं पाती है । परमात्मा से विमुख को

सम्पत्ति व प्रभुता की प्राप्ति होना भी न पाने के बराबर ही होता है ।

बचन काँय मन प्रभु गति जाही । सपनेहु बुझिअ बिपति कि ताही ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो मन, वचन व कर्म से परमात्मा की शरण में रहते हैं, उन्हें सपने में भी विपत्ति नहीं सता सकती है । प्रभु की शरण में रहने वालों पर तो देवता, मनुष्य व मुनि जन सदा प्रसन्न रहते हैं ।

उमा प्रभु सुभाउ जेहि जाना । ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
प्रभु कृपा सब काज सफलाई । उमा इहँ मैं अनुभव कराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो परमात्मा के स्वभाव को जान लेते हैं, उन्हें भजन के अलावा कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । हे पार्वती ! मैंने यह अनुभव किया है कि परमात्मा की कृपा से सभी कार्यो में सफलता मिल जाती है ।

दो०–मोहमूल बहु सूल प्रद त्याग भल मोह अभिमान ।
भजन करहि नित्य राम का तिन्ह सब विधि कल्याण ॥ १२२ ॥

व्याख्या – मोह के कारण बहुत कष्ट होते हैं, अतः मोह के अभिमान का त्याग कर देना अच्छा होता है । हे पार्वती ! जो लोग नित्य परमात्मा का भजन करते हैं, उनका सब प्रकार से कल्याण हो जाता है ।

उमा राम सकल जग प्रतिपाला । भुवनेश्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अजित अनादि अनंता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो समस्त संसार के पालन करने वाले भुवनेश्वर व काल के भी काल होते हैं । परमात्मा तो नाम रहित, अजन्मा व प्रकृति के स्वामी हैं तथा सर्व व्यापक, अजेय, अनादि व अनन्त हैं ।

जन रंजन भंजन खल ब्राता । बेद धर्म रच्छक सुख दाता ॥
आवइ प्रभु शरण जीव जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहि तबहीं ॥

व्याख्या – परमात्मा तो जीवों को सुख देने वाले व मूढ़ भावों का नाश करने वाले, वेदों में वर्णित धर्म की रक्षा करने वाले व सुख दाता होते हैं । इसलिए जीव जब परमात्मा की शरण में आ जाते हैं, तभी उसके करोड़ों पापों (चिन्ताओं) को नाश हो जाता है ।

पापवंत कर सहज सुभाऊ । प्रभु भजन तेहि भाव न काऊ ।
जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई । प्रभु भजनु करहि कि सोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! पापियों का तो सहज स्वभाव ऐसा होता है कि उन्हें परमात्मा के भजन करने का भाव भी नहीं आता है । अतः जो दुष्ट हृदय वाले

लोग होते हैं, वे परमात्मा का भजन नहीं करते हैं ।

निर्मल मन जन सो प्रभु पावा । उनि कपट छल छिद्र न भावा ॥
जौ दुष्टहिं आवहिं शरणाई । तिन्हूँ प्रभु उद्धार कराई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा को तो निर्मल मन वाले लोग ही प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि उन्हें तो कपट व छल-छिद्र सुहाता ही नहीं है । हे पार्वती ! अगर दुष्ट लोग भी निर्मल मन से परमात्मा की शरण में आ जाते हैं, तो परमात्मा उन्हें भी प्राणों के समान प्रिय रखते हैं ।

दो०–शरणागत प्रभु रक्षक सदा पाप पुण्य करहि न अनुमान ।
ते पाँवर पापमय मूढ़ जन तउ न लहहि शरण भगवान ॥१२३॥

व्याख्या – परमात्मा तो सदा शरण में आने वाले की रक्षा करते हैं । वे रक्षा करने समय पाप-पुण्य का विचार भी नहीं करते हैं । अतः हे पार्वती ! वे लोग पापी मूर्ख होते हैं, जो ऐसे दयालु भगवान की भी शरण में नहीं आते हैं ।

जो निसिचर अति अघम सुभाऊ । सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ॥
सोउ सभीत जेहि शरणन आवा । तेउ पर प्रभु कृपा बरसावा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो राक्षस वृति के अधम स्वभाव वाले लोग होते हैं और जिनका आचरण भी शुभ नहीं होता है, ऐसे लोग भी अगर भयभीत होकर परमात्मा की शरण में आ जाते हैं, तो उन पर भी परमात्मा कृपा कर देते हैं ।

प्रभु कृपाल जा पर अनुकूला । ताहि न व्यापइ त्रिविध भव सूला ॥
सुनहु उमा कहउँ प्रभु सुभाऊ । जद्यपि तुम जानत इहँ सबाऊ ॥

व्याख्या – परमपिता जिस पर कृपा कर देते हैं, उसे सत, रज व तामसिक भावों के कष्ट नहीं सताते हैं । हे पार्वती ! तुम तो परमात्मा के स्वभाव को जानती हो, फिर भी तुम्हें बताता हूँ । सुनो –

तजहि मद मोह कपट छल नाना । करहि पावन तिन्ह साधु समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो लोग मद, मोह, कपट व नाना प्रकार के छल का त्याग कर देते हैं, उन्हें परमपिता साधु के समान पवित्र कर देते हैं । जो माता, पिता, बंधु, पुत्र व स्त्री सहित तन, धन घर व प्रिय परिवार –

सबके ममता ताग बटोरी । प्रभु पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष शोक भय नहिं मन माहीं ॥

व्याख्या – सबकी ममता का त्याग करके परमपिता के चरणों में अपने मन रुपी डोरी से जुड़ जाते हैं तथा समदर्शी, निर इच्छावान, हर्ष शोक व भय से परे होते हैं ।

अस सज्जन प्रभु उर बस कैसे । लोभी हृदय बसइ धनु जैसे ॥
सब प्रकार प्रभु अति कृपाला । भगत रच्छक दीन दयाला ॥

व्याख्या – ऐसे लोग परमात्मा के हृदय में ऐसे निवास करते हैं, जैसे लोभी के हृदय में धन निवास करता है । हे पार्वती ! परमात्मा तो सब प्रकार से कृपालु और भक्तों के रक्षक व दीन दयाल होते हैं ।

दो०–प्रभु शरणागत परहित रत निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान सम प्रभु प्रिय तिन्ह पर बरषावहिं क्षेम ॥१२४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की शरण में आने वाले परहित (आत्मा के हित) में रत और नित्य नीति व नियमों का दृढ़ता से पालन करने वाले होते हैं । ऐसे लोग परमात्मा को प्राणों के समान प्रिय होते हैं और परमात्मा उन पर कृपा की बर्षा करते रहते हैं ।

उमा प्रभु सचराचर स्वामी । प्रनतपाल उर अंतर जामी ॥
अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो समस्त चराचर जगत के स्वामी हैं तथा प्राणी मात्र के पालन कर्ता व सबके हृदय की जानने वाले हैं अतः जो दूसरे किसी का भजन करते हैं, वे तो बिना पूँछ के पशु के समान होते हैं ।

प्रभु सर्वग्य सर्ब उर बासी । सर्वरूप सब रहित उदासी ॥
निज जन जानि मोहि अपनावा । प्रभु सुभाव उमा तोहि बतावा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता तो सर्वज्ञ व सबके हृदय में निवास करने वाले, सब रूपों में तथा सबसे उदासीन होते हैं । हे पार्वती ! परमपिता ने मुझे भी अपना सेवक जान कर अपना लिया है । प्रभु का ऐसा स्वभाव उमा मैंने तुम्हें बता दिया है ।

भजत कृपा सब पर करिही । उर अपराध न एकउ धरिही ॥
अति कोमल परमात्म सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भजन करने वाले सभी पर परमात्मा कृपा करते हैं और हृदय में एक भी अपराध नहीं मानते हैं । वे अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, फिर भी उनका सुभाव अति कोमल होता है ।

जानहु उमा सब मम सत्य बानी । निज अनुभव निज घट जानी ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । निज मति सोइ कहा समुझाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मेरी बातों को सत्य मानो । मैंने यह सब अपने अनुभव से जाना है तथा उसी को परमात्मा की कृपा से मेरी बुद्धि के अनुसार तुम्हें समझाया है ।

दो०—सकल सुमंगलदायक उमा परमपिता गुणगान।
सादर सुनहिं गुनहिं जे तरहिं भव सिन्धु जल जान ॥१२५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता के गुणों का बखान करना सब मंगलों को देने वाला होता है तथा जो आदरपूर्वक परमात्मा के गुणों को सुनते व समझते हैं, वे भी भव सागर को पार कर जाते हैं ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण सप्तविंशति पड़ाव ॥

दो०—बिस्वरूप परमपिता परमात्मा करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद करहिं अंग अंग प्रति भाव जासु ॥१२६॥

व्याख्या – हे पार्वती ! तुम मेरे वचनों का विश्वास करो कि परमपिता परमेश्वर तो विश्वरूप में प्रकट हैं तथा वेदों ने भावों के अनुसार उसके अंगों में लोकों की कल्पना की है ।

पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अंग अंग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घन माला ॥

व्याख्या – परमात्मा के पैर ही पाताल लोक हैं तथा सीस ब्रह्म लोक हैं तथा अन्य अंगों में दूसरे लोक अवस्थित हैं । भृकुटि पर भावों का विलास ही काल होता है । आँखें सूर्य हैं तथा बाल ही मेघ हैं ।

जासु घ्रान अस्विनी कुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत श्वास निगम निज बानी ॥

व्याख्या – परमात्मा की नासिका ही देव वैद्य अश्विनी कुमार हैं तथा आँखों का पलक झपकना ही रात व दिन हैं । कान ही दश दिशाएँ हैं जिनका वेदों ने वर्णन किया है और हवा ही परमात्मा की श्वास होती है तथा वेद ही वाणी है ।

अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा । उत्पत्ति पालन प्रलय समीहा ॥

व्याख्या – होठ ही लोभ व दाँत ही यमराज हैं तथा माया परमात्मा की हँसी होती है और भुजाएँ ही दिग्पाल हैं । मुख ही अग्नि व जीभ्या ही बरुण देव हैं तथा उत्पति, पालन व प्रलय उनकी सहज क्रियाएँ हैं ।

रोम राजि अष्टा दस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कल्पना ॥

व्याख्या – परमात्मा के रोम रोम ही अठारह प्रकार की वनस्पति हैं तथा हड्डियाँ ही पर्वत व नदियाँ ही नसों का जाल हैं । परमात्मा का पेट ही समुद्र है तथा नीचे की इन्द्रियाँ ही नरक है । हे पार्वती ! परमपिता ही जगत के रूप

में प्रकट हैं । इनकी तो बहुत कल्पनाएँ हैं ।

दो०—अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित महान ।
सचराचर घट प्रभु बास करहिं उमा इहँ परम ग्यान ॥१२७॥

व्याख्या — अहंकार ही शिव व बुद्धि ही ब्रह्म होती है तथा मन चन्द्रमा होता है, जिनका उत्पत्ति करता चित ही होता है । हे पार्वती ! परमात्मा तो समस्त प्राणियों के घट में निवास करते हैं, यही परम ज्ञान है ।

उमा प्रभु मृदुचि करुनाकर । सब सुख मूल संपदा रत्नाकर ॥
देहि परम गति भाव अनुमानी । अस कृपाल को कहहु भवानी ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमपिता तो मधुर व करुणाकर हैं तथा सब सुखों के मूल व सब सम्पदाओं के समुद्र हैं । वे तो जीव के भावों के अनुसार गति प्रदान करते हैं । अतः हे पार्वती ! कहो ऐसा कृपाल और कौन होगा ?

अस प्रभु सुनि न भजहि भ्रम त्यागी । नर मतिमंद ते परम अभागी ॥
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर । सहज दयाल प्रभु करुणाकर ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! ऐसे परमात्मा के बारे में सुनकर भी जो लोग भजन नहीं करते हैं, वे मूर्ख और अभागी होते हैं । हे उमा ! परमपिता तो सर्वव्यापक ब्रह्म, अजित, भुवनेश्वर, सहज दयाल व करुणा करने वाले हैं ।

प्रभु कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा प्रभु कै होई ॥
उमा एक अखण्ड रघुराई । नर गति भगत कृपाल देखाई ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमात्मा की लीला को तो वे ही समझ सकते हैं, जिन पर परमात्मा की कृपा होती है । परमपिता तो एक व अखण्ड होते हैं तथा नर (धड़कन) के माध्यम से भक्तों को परमात्मा अपनी गति महसूस कराते हैं ।

जग पावनि कीरति बिस्तरहहिं । गाइ गाइ भव निधि नर तरिहहिं ॥
प्रभु सम नहिं कोउ जग आना । जयति जयति जय कृपानिधाना ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जगत को पवित्र करने वाली परमा त्मा की कीर्ति का गुणगान करके जीव भव सागर को पार कर जाते हैं । इसलिए परमात्मा के समान संसार में कोई दूसरा नहीं होता है । अतः हे कृपानिधान ! आपकी जय हो, आपकी जय हो ।

दो०—बचन कर्म मन कपट तजि जेहि भजहिं कृपानिधान ।
परम सुख शान्ति मिलहहिं पावहिं जीवत पद निर्वान ॥१२८॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जो मन, वचन व कर्म से कपट का त्याग करके परमात्मा का भजन करते हैं, उन्हें परम सुख व शान्ति मिल जाती है तथा जीते जी

निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ।

प्रभु समरूप ब्रह्म अबिनासी । सदा एकरस सहज उदासी ॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय । अजित अमोघशक्ति करुणामय ॥

व्याख्या – परमात्मा तो समरूप व अविनाशी ब्रह्म हैं, जो सदा एकरस व सहज में ही उदासीन रहते हैं । वे तो अकल, अगुन, अजन्मा, पापरहित, नाम रहित, अजेय, अमोघशक्ति व करुणामय होते हैं ।

जन रंजन भंजन सोक भयं । गत क्रोध सदा प्रभु बोधमय ॥
भज व्यापकमेक मनादि सदा । करुनाकर प्रभु नमामी मुदा ॥

व्याख्या – परमपिता तो जन जन के पालन कर्ता, भय आदि शोकों को दूर करने वाले हैं । परमात्मा तो क्रोध आदि आसुरी भावों के शान्त होने पर अनुभव में आते हैं । वे तो अजन्मा तथा मन आदि भावों में एक रूप से व्यापक रहते हैं। परमपिता तो करुणाकर हैं, इसलिए मैं प्रसन्न होकर नमस्कार करता हूँ ।

असरन सरन बिरदु संभारी । प्रभु छाड़ि उमा नहिं गति हमारी ॥
उमा प्रभु मोरे गुरु पितु माता । तिन्ह पद पंकज मोर मन राता ॥

व्याख्या – हे उमा ! परमपिता तो असहायों को शरण देने वाले व विपदाओं से रक्षा करने वाले हैं । अतः हे पार्वती ! परमात्मा के अलावा हमारी कोई गति नहीं है । हे उमा ! परमात्मा ही मेरे गुरु, पिता व माता हैं, इसलिए मेरा मन तो उनके चरणों में लगा हुआ है ।

दैहिक दैविक भौतिक तापा । प्रभु शरण काहुहि नहिं व्यापा ॥
प्रभु भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥

व्याख्या – परमात्मा की शरण में रहने पर शारीरिक, दैवीय व भौतिक कष्ट किसी को भी नहीं सताते हैं । जो परमात्मा की भक्ति में रत रहते हैं, वे स्त्री हो या पुरुष सभी परम गति के अधिकारी होते हैं ।

दो०–उमा प्रभु भरोस करहिं नारी पुरुष जेहि जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुःख तिन्ह सकै न सताहिं ॥ १२९ ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो स्त्री-पुरुष परमात्मा पर पूर्ण भरोसा करते हैं, उन्हें काल, कर्म व गुणों के भावों से पैदा होने वाले दुःख कभी नहीं सता सकते हैं ।

सुनि शिव वचन हरषी भवानी । पुलकित तन अस्तुति ठानी ॥
भाव विभोर वचन उचारी । गिरा गदगद गिरिजा कुमारी ॥

व्याख्या – शिवजी के वचनों को सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हो गयी तथा पुलकित होकर स्तुति के भाव आने लगे । तब भाव-विभोर होकर पार्वती

गदगद वाणी में स्तुति करने लगी ।

जय भगवंत अनंत अनामय । अनघ अनेक एक करुनामय ॥
जय निर्गुण जय गुन सागर । सुख मंदिर सुंदर अति नागर ॥

व्याख्या – हे भगवन् ! आपकी जय हो । आप तो अनन्त व अनाम हैं । हे प्रभु! जीव तो अनेक हैं परन्तु कृपा करने वाले तो आप एक ही हैं । हे गुणों से निर्लिप्त व गुणों के सागर ! आपकी जय हो । आप सुख के घर और सुन्दर व मनोहर हैं।

जय इंदिरा रमन जय भूधर । अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥
ग्यान निधान अमान मान प्रद । पावन सुजस पुरान बेद बद ॥

व्याख्या – हे इन्द्रियों में रमण करने वाले तथा शरीर को धारण करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो । आप अनुपम, अजन्मा, अनादि व शोभायुक्त हैं । आप ज्ञान के घर, मान रहित परन्तु मान को देने वाले हैं । आपके पवित्र यश का वर्णन पुराण व वेदों में किया गया है ।

तग्य कृतग्य अग्यता भजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ॥
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय । कृपा करहु हम कहुँ परिपालय ॥

व्याख्या – आप कर्म के बन्धन व अज्ञान का नाश करने वाले हैं । आपके नाम तो अनेक हैं परन्तु बिना नाम के आप निरंजन (निर + अंजन) अर्थात माया से रहित हैं । आप सब कुछ, सब जगह जाने वाले व सबके हृदय में निवास करने वाले हैं । हे पालनकर्ता भगवान ! आप हम पर कृपा कीजिए।

द्वदं बिपत्ति भव फंद विभंजय । हृदय बसहु प्रभु काम मद गंजय ॥
जय करुणाकर जग पालकम् । कृपा करहु हम तव बालकम् ॥

व्याख्या – हे प्रभु ! आप द्वन्द, विपत्ति व भावों के बन्धन का नाश करने वाले हैं । हे काम व मद आदि का नाश करने वाले प्रभु ! हमारे हृदय में निवास कीजिए । हे करुणाकर व जगत के पालनकर्ता ! आपकी जय हो । हम आपकी सन्तान हैं, हम पर कृपा कीजिए ।

दो०–परमानन्द कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि कृपा धाम ॥१३०॥

व्याख्या – हे परमानन्द व कृपा के घर ! आप मेरे मन की इच्छा को पूर्ण कर दीजिए और मुझे प्रेम व अनपायनी भक्ति प्रदान कर दीजिए ।

करि स्तुति भइ शान्त भवानी । प्रेम विहृवल नहिं मुख बानी ॥
उमा दशा देखि शंभू सुख पाई । गदगद गिरा पुनि प्रभु गुण गाई ॥

व्याख्या – परमात्मा की स्तुति करके पार्वती शान्त हो गयी तथा उनके हृदय में प्रेम का

प्रवाह हो उठा तथा मुख से वचन नहीं निकल रहे थे । पार्वती की ऐसी दशा देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और पुनः गदगद वाणी से परमात्मा का गुणगान करने लगे।

तारन तरन हरन सब दूषन। उमा सोइ प्रभु त्रिभुवन भूषन ।
महिमा अमित बेद नहिं जानी। मैं केहिं भाँति कहउँ सुजानी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! भव सागर से पार कराने वाले व समस्त दोषों को दूर करने वाले परमात्मा ही तीनों लोकों के भूषण हैं । उनकी अपार महिमा को तो वेदों ने भी नहीं जाना है, तब मैं कैसे बता सकता हूँ ।

प्रभु शरण करहिं विश्वासा । तिन्ह पूरण सकल अभिलाषा ॥
व्यापक ब्रह्म एक रस भवानी । माया मोह पार सब गुण खानी ॥

व्याख्या – जो परमात्मा की शरण में आकर परमात्मा पर पूर्ण विश्वास करते हैं, उनकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं । हे पार्वती ! परमात्मा तो सर्वत्र एकरस होकर व्यापक रहते हैं । वे तो माया व मोह से परे व सब गुणों की खान हैं ।

प्रभु अनंत अनंत गुनानी । जन्म रहित अनंत नामानी ॥
उपजइ प्रभु चरण विश्वासा । भव तरहिं नर बिनहिं प्रयासा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो अनन्त व अनन्त गुणों की खान हैं । वे जन्म रहित तथा अनन्त नामों वाले हैं । जब परमात्मा के चरणों में विश्वास पैदा हो जाता है, तब जीव बिना ही प्रयास के भव सागर को पार कर जाता है ।

मिलहि न प्रभु बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा बिना अनुराग के योग, तप, ज्ञान व वैराग्य से भी नहीं मिलते हैं । परमात्मा तो प्रकृति से परे व सबके हृदय में निवास करने वाले माया रहित, कण-कण में व अविनाशी होते हैं ।

दो०–भगत हेतु भगवान प्रभु जो सर्व व्यापक अखण्ड अनंत।
भाववश सोइ समरथ प्रभु निगम पुराण सब भनन्त ॥१३१॥

व्याख्या – जो सर्वव्यापक, अखण्ड व अनन्त प्रभु हैं, वे भक्त के लिए भगवान कहलाते हैं । वे सामर्थ्यवान प्रभु भक्त के भावों के वश में होते हैं । ऐसा शास्त्र व पुराण सभी बताते हैं ।

जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहुँ न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास गिरिनन्दनी । नाच नटी माया जीव बन्धनी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो माया समस्त जगत को नाच नचाती है तथा जिसके चरित को संसार में कोई जान भी नहीं पाता है, वही माया परमात्मा की

भृकुटि पर निवास करती है, जो नटनी बनकर जीव का बन्धन बन जाती है।

सोइ सच्चिदानंद करुणा धामा । अज विग्यान रूप पूर्ण कामा ॥
ब्यापक ब्याप्य अखण्ड अनंता । अखिल एकरस दयालु भगवंता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा सतचितआनन्दमय व करुणा के घर हैं तथा अजन्मा, विज्ञान रूप व पूर्ण काम हैं । परमात्मा सर्वत्र व्यापक, अखण्ड, अनन्त, अखिल, एकरस व दयालु हैं ।

सगुन अगुन गिरा गोतीता । सब दरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख संदेहा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा तो सगुण, निर्गुण, वाणी व इन्द्रियों से परे हैं। वे तो सब कुछ देखने वाले, अमर व अजय हैं । वे निर्मम, निराकार व निर्मोही है तथा सदा निरंजन (माया से परे) व सुख स्वरूप हैं ।

प्रभु लीला अनन्त गिरिजा कुमारी । दनुज बिमोहनि जन सुख कारी ॥
हरि सेवक न ब्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित ब्यापहिं तेहि विद्या ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की लीला अनन्त होती है, जो असुरों को मोहित करने वाली व सेवकों को सुख देने वाली होती है । हे पार्वती ! परमात्मा के भक्तों को माया नहीं सताती है क्योंकि प्रभु की प्रेरणा से उनके हृदय में विद्या प्रकट रहती है ।

दो०– जथा अनेक बेष धारि नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव प्रभु प्रगटहि आपुन होइ न सोइ ॥१३२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जैसे अनेक भेष धारण करके नट नाच करता है, वैसे ही भावों के अनुसार परमात्मा अपने रूप प्रकट करते रहते हैं परन्तु वो तो नट का असली स्वरूप नहीं होता है ।

प्रभु कृपा बिनु सुनु भवानी । प्रभु प्रभुता जाइ न जानी ॥
जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीती होइ नहिं प्रीती ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! बिना परमात्मा की कृपा के परमात्मा की प्रभुता को जाना नहीं जा सकता है तथा बिना जाने विश्वास नहीं होता है और बिना विश्वास के प्रेम नहीं पैदा होता है ।

प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि गिरिजा जल कै चिकनाई ॥
बिनु विश्वास श्रद्धा न होई । बिनु महि गंध कि पावई कोई ॥

व्याख्या – बिना प्रेम के भक्ति में दृढ़ता नहीं आती है, जैसे चिकनाई और जल का सम्बन्ध होता है, वैसे ही प्रीत और भक्ति का सम्बन्ध होता है । बिना विश्वास

के कभी श्रद्धा नहीं होती है तथा बिना भूमि के गंध का आभास नहीं होता है।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप सुहाई ॥

व्याख्या – बिना तप के तेज का विस्तार नहीं होता है तथा बिना जल के संसार में रस नहीं होता है । बिना विद्वानों की सेवा के शील नहीं मिलता है, जैसे कि बिना तेज के रूप नहीं निखरता है ।

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ॥
प्रभु भजनु बिनु नहिं संतोषा । बिनु संतोष कि होइ न भरोसा ॥

व्याख्या – बिना संतोष के काम का नाश नहीं होता है और बिना काम के शान्त हुए सपने में भी सुख नहीं मिल सकता है । परमात्मा के भजन के बिना संतोष नहीं पैदा होता है तथा बिना संतोष के परमात्मा पर भरोसा भी नहीं होता है।

दो०–बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥१३३॥

व्याख्या – बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता है और बिना ज्ञान के वैराग्य नहीं होता है और वेद-पुराण सभी बताते हैं कि परमात्मा की भक्ति अर्थात वैराग्य के बिना किसी को सुख नहीं मिलता है ।

बिनु ग्यान न विग्यान सुहाई । बिनु विग्यान न समता आई ॥
बिनु समता नहिं भगति दृढ़ाई । कोउ अवकास कि नभ बिनु पाई ॥

व्याख्या – बिना ज्ञान के विज्ञान की अवस्था नहीं आती है और बिना विज्ञान के समता का भाव नहीं आता है तथा बिना समता के भाव के भक्ति में दृढ़ता नहीं आती है, जैसे कि बिना आकाश के विश्राम नहीं मिलता है ।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ विहीन समीरा ॥
कबनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

व्याख्या – बिना स्वयं के सुख के मन स्थिर नहीं होता है, जैसा कि बिना वायु के स्पर्श का आभास नहीं होता है । बिना विश्वास के कभी सिद्धियों की प्राप्ति नहीं हो पाती है तथा बिना परमात्मा के भजन के भावों से उत्पन्न भय का नाश नहीं होता है ।

उमा प्रभु सत्ता जाइ न बखानी । जेहि जाना सोइ निज घट जानी ॥
बिष्णु कोटि सम पालनकर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की सत्ता का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसे तो जिसने भी जाना है, केवल अपने स्वयं के हृदय में ही जाना है । वे तो करोड़ों

विष्णुओं के समान पालन करने वाले और करोड़ों रुद्रों के समान संहारकर्ता है।

धनद कोटि सत सम धनवाना । माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
कामधेनु सत कोटि समाना । सकल काम दायक भगवाना ॥

व्याख्या – वे तो करोड़ों धनवानों के समान धनवान व माया के करोड़ों प्रपंचों का नाश करने वाले हैं तथा वे करोड़ों कामधेनुओं के समान हैं । परमात्मा तो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान (भग+वान) अर्थात प्रकृति के स्वामी हैं ।

तीरथ अमित कोटि सम पावन । नाम अखिल अघपूग नसावन ॥
प्रभु अगाध सत कोटि पाताला । समन कोटि सत सरिस कराला ॥

व्याख्या – वे तो करोड़ों तीर्थो के समान पवित्र हैं । वे तो अखिल व पापों का नाश करने वाले हैं । परमात्मा तो करोड़ों पातालों के समान अगाध है तथा करोड़ों विषयों वासनाओं को शान्त करने के लिए करोड़ों शान्ति के समुद्र के समान हैं ।

दो०–प्रभु अमित गुन सागर उमा थाह कि पावइ कोई ।
सन्तन सन निज अनुभव जान कहा मैं सब सोई ॥१३४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमपिता अपार गुणों के सागर हैं, उनकी कोई थाह नहीं पा सकता है । मैंने तो सन्त जनों के साथ रहकर जो अनुभव किया है, वो सब तुमको बता दिया है ।

प्रभु चरित गिरिजा मैं बरनी । कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग संजीवन मूरी । प्रभु कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमा त्मा के चरित्र का मैंने वर्णन कर दिया है, जो कलि (देह बुद्धि) के दोषों को शान्त करने वाला व मन के विकारों को दूर करने वाला है । यह परमात्मा की कथा जिसे वेदों ने भी गाया है सांसारिक रोगों के निवारण के लिए संजीवन जड़ी है ।

दो०–मैं कृत कृत्य भयउँ उमा प्रभु प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी हृदय भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥१३५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की कृपा से मैं कृत-कृत्य (कर्म बन्धन से मुक्त) हो गया हूँ और हृदय में परमात्मा की दृढ़ भक्ति पैदा हो गयी है, जिससे समस्त क्लेशों का निवारण हो गया है ।

धन्य धन्य शिव शंभू स्वामी । तुम सर्वग्य सब अन्तरजामी ॥
सरल भाषा प्रभु चरित बताई । जिज्ञासु अरु ग्यानी समुझाई ॥

व्याख्या – हे शिव शंभू स्वामी ! आप धन्य हैं, आप धन्य हैं । आप तो सब कुछ जानने वाले व सबके अन्तर्यामी हैं । आपने बहुत ही सरल भाषा में परमात्मा

की विशेषताओं का वर्णन कर दिया है, जिसे जिज्ञासु व ज्ञानी भक्त परमात्मा के रहस्य को समझ पायेगें ।

सकल हेतु जद्यपि राह बताई । अनुसरइब सो परम पद पाई ॥
आरत अर्थी गृहस्थ जग माहीं । तिन्ह हेतु नाथ किछु देउ बताहीं ॥

व्याख्या – हे नाथ ! हालांकि आपने सभी के लिए रास्ता बताया है, इसलिए जो भी आपकी बतायी हुई विधि का अनुसरण करेंगे, वे परम पद प्राप्त कर लेंगे । परन्तु आज के युग में संसार आरत और अर्था-अर्थी गृहस्थ बहुत सारे हैं, अतः उनके लिए कुछ सरल रास्ता बता दीजिए ।

काह कर्तव्य काह सुख उपाई । सरल सुगम होव समयानुयाई ॥
पथ बिराग नाथ अति कठिना । गृह कारज नित जंजाल नवीना ॥

व्याख्या – हे नाथ ! गृहस्थों के क्या कर्तव्य होने चाहियें तथा सुख प्राप्ति के उपाय क्या हैं ? आप समय के अनुसार सरल व सुगम उपाय बताइये । वैराग्य के पथ पर चलना तो बहुत कठिन होता है और गृहस्थ के लिए तो नित्य नये नये जंजाल पैदा होते रहते हैं ।

सो कहउ नाथ नीति व्यवहारी । भगति दायक सरल सुखकारी ॥
विगत पाखण्ड रहित जंजाला । होइ जुगति सोइ नाथ कृपाला ॥

व्याख्या – हे नाथ ! ऐसी व्यवहारिक नीति बताइये, जो भक्ति को देने वाली, सरल व सुखकारी हो तथा समस्त पाखण्डों और जटिलताओं से मुक्त हो । हे कृपाल ! ऐसी युक्ति बताइये ।

दो०–जाति पंथ नस्ल भेद रहित सरल सुगम देश काल अनुसार ।
सर्वजन सुलभ सर्वहित करउ नाथ सो जगत व्यवहार ॥१३६॥

व्याख्या – हे नाथ ! ऐसी जगत की नीति बताइये जो जाति, पंथ व नस्ल के भेदभावों से रहित हो तथा समय व स्थान के अनुसार सरल व सुगम हो तथा सबके लिए सुलभ व सबका कल्याण करने वाली हो ।

सुनु उमा कहउँ नीति बखानी । सरल सुगम समय अनुमानी ॥
प्रथम कर्तव्य मातु पितु पूजा । प्रभु भरोस आस नहिं दूजा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब तुम सुनो, तुम्हें समय के अनुसार सरल व सुगम नीति बताता हूँ । पहला कर्तव्य तो यह है कि माता-पिता की पूजा की जाए तथा परमात्मा को छोड़कर और किसी से अपेक्षा न रखी जाए।

गुरु पद पंकज प्रीति सदाई । पालहिं आयुस अहम् भूलाई ॥
प्रति वेशी संग सद् व्यवहारा । लोभ लालसा नहि होब आचारा ॥

व्याख्या – गुरु के चरणों में सदा प्रीति हो तथा अहंकार भूलाकर गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये । अपने पड़ोसी के प्रति अच्छा व्यवहार करना चाहिये तथा लोभ व लालसा का आचरण कभी नहीं करना चाहिये।

संत संगत करहहिं ध्याई । गुणीजन श्रद्धा सह सीस नवाई ॥
धर्म शास्त्र करहिं नित्य पाठा । मंत्र गुरु जपहिं एक सौ आठा ॥

व्याख्या – संतजनों की दौड़कर संगत करें तथा विद्वानों का श्रद्धापूर्वक सम्मान करें । धर्मशास्त्र का प्रतिदिन पाठ करें तथा गुरु मन्त्र का नित्य एक सौ आठ बार जप करना चाहिये ।

प्रातः उठि प्रकृति सीस नवाहीं । जगत मातु जानि आशीष चाहीं ॥
नाम जपहिं नहिं पाखण्ड दूजा । धर्मशास्त्र करहिं नित पूजा ॥

व्याख्या – प्रातः काल उठकर माता प्रकृति शक्ति को नमस्कार करें तथा जगत जननी जानकर आशीर्वाद चाहें । नित्य नाम का जप और धर्मशास्त्र आने पर परम शान्ति मिल जाती है ।

परहि चिन्हाई निज बिसराई । सोई अवस्था ब्रह्म बोध सुहाई ॥
इन्द्रिन्ह ग्राह विषय जो नाई । ब्रह्म अवस्था शून्य कहाई ॥

व्याख्या – जो पहचान में आने पर स्वयं को भूला देता है, वह अवस्था ही ब्रह्म के बोध की अवस्था होती है । जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने का विषय नहीं होती है, वही ब्रह्म की अवस्था शून्य कहलाती है ।

नित्य निराश्रय कल्पना आभासा । व्यापक सर्वत्र बाह्य आकाशा ॥
करहिं थिर मन बाह्य आकाशा । होवइ तुरत अशून्य आभासा ॥

व्याख्या – यह बाह्य आकाश नित्य, निराश्रय , सर्वव्यापक व कल्पनाओं से की पूजा करनी चाहिये तथा दूसरा कोई पाखण्ड न करें ।

दो०—मानस पूजा सम पूजा नहिं कहउँ उमा सत्य ग्यान ।
मन पावन सिद्धि सकल मन मल सोई जानि अग्यान ॥१३७॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं तुम्हें सत्य ज्ञान बताता हूँ कि मानसिक पूजा के समान दूसरी कोई पूजा नहीं होती है तथा मन की पवित्रता ही समस्त सिद्धियों को देने वाली होती है और मन की अपवित्रता ही अज्ञान होती है ।

बड़ जन संग बिनय व्यवहारु । जथा संभव सात्विक अहारु ॥
नहिं परधन परनारी बिचारु । पालहिं नीति बेद अनुहारु ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अपने से बड़ों के साथ विनय पूर्वक व्यवहार करना चाहिये तथा जहाँ तक सम्भव हो, वहाँ तक सात्विक भोजन करना चाहिये। पराई

स्त्री और पराए धन की मन में इच्छा नहीं होनी चाहिये तथा वेदमत के अनुसार व्यवहार होना चाहिये ।

प्रतिवेशी प्रसन्नता सुखकारी । करउ पूजा बरस इक बारी ॥
कल्मष सकल देहहिं भुलाई । पावन पर्व गुरु पूर्णिमा आई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! पड़ोसी की प्रसन्नता सुख देने वाली होती है, इसलिए वर्ष में एक बार पड़ोसी की पूजा करनी चाहिये । जब गुरु पूर्णिमा का त्यौहार आता है, तब समस्त कटुता को भुला देना चाहिये ।

श्रद्धा अनुरूप देवहिं उपहारा । नाना बिंजन करावहिं आहारा ॥
उचित करहिं क्षमा अपराधा । मिलि जुल रहहिं सब निरबाधा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! श्रद्धा के अनुसार पड़ोसी को भेंट देनी चाहिये तथा नाना प्रकार के व्यंजन बनाकर भोजन कराना चाहिये । उचित तो यह है कि पड़ोसी के समस्त अपराधों को क्षमा कर दें और बिना किसी बाधा के मिल जुलकर रहना चाहिये ।

प्रतिवेशी करइ न पूजा स्वीकारा । सो अधम जानि नरक अधिकारा ॥
देवहिं भेंट बिनु अहसाना । सोइ पूजा प्रसन्न कृपा निधाना ॥

व्याख्या – जो प्रतिवेशी पूजा स्वीकार नहीं करता है, वो नीच होता है तथा नरक का अधिकारी होता है । जो लोग अपने पड़ोसी को बिना अहसान के भेंट देते हैं, उनकी पूजा से परमात्मा प्रसन्न होते हैं ।

लेन देन नहिं हो भेंट अधारा । करहिं जानिअ कर्तव्य अपारा ॥
तिन्ह पर प्रभु कृपा बरसाई । उमा सत्य सकै देखि अजमाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! पड़ोसी को भेंट देने का आधार लेन-देन अर्थात बदले में उपहार लेना नहीं होना चाहिये । इसे तो अपना कर्तव्य समझ कर करना चाहिये। जो लोग प्रतिवेशी की पूजा करते हैं, उन पर परमात्मा कृपा करते हैं । हे पार्वती ! यह सत्य है, इसे कोई भी करके देख सकते हैं ।

दो०–प्रतिवेशी पूजा जेहि करें तिन्ह गृह वैभव आय ।
जय रूप यश शान्ति मिले सहज प्रभु कृपा बरसाय ॥१३८॥

व्याख्या – जो लोग पड़ोसियों की पूजा करते हैं, उनके घर में वैभव आ जाता है तथा जय, रूप, यश व शान्ति मिल जाती है और परमात्मा कृपा की वर्षा करने लग जाते हैं ।

प्रतिवेशी पूजा काह विधाना । सोइ कहउ समझाई कृपानिधाना ॥
सरल सुगम हो समय अनुसारी । विगत पाखण्ड निर विकारी ॥

व्याख्या – हे नाथ ! पड़ोसी की पूजा का क्या विधान होता है ? आप कृपा करके समझा कर कहिये । पड़ोसी की पूजा की विधि सरल, सुगम व समय के अनुसार हो तथा पाखण्ड रहित व निर्विकारी हो ।

सुनु उमा कहउँ विधि समुझाई । करइब जेहि आनन्द पाई ॥
बैसाख शुक्ल चतुर्दशी बारा । देवहहिं बुलाव पड़ोसी परिवारा ॥

व्याख्या – हे उमा ! प्रतिवेशी पूजा का विधान बताता हूँ, जिसका जो भी पालन करेंगे, उन्हें आनन्द की प्राप्ति होगी । बैशाख मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन पड़ोसी के परिवार को निमन्त्रण देना चाहिये कि –

आगामी काल आवहउ नाथा । करहिं बिनय जोरि दोउ हाथा ॥
प्रातः हम निहारइब बाटा । होइब धन्य जो आइब ताता ॥

व्याख्या – दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ ! आप कल हमारे घर पधारिए । हम सुबह से आपका इन्तजार करेंगे । आप आयेंगे तो हम धन्य हो जायेंगे ।

विनय दिखाई देवहिं बुलावा । सह परिवार करहिं अवगावा ॥
देवही आसन चरण पखारी । हर्षित मन करहिं मनुहारी ॥

व्याख्या – इस प्रकार विनय दिखाकर निमन्त्रण देंवे तथा परिवार सहित स्वागत करें और पड़ोसी के आने पर चरण धोकर आसन देवें तथा प्रसन्न मन से सत्कार करें ।

दो०–आसन सुखद बिठाय करि चावहहीं क्षमा बारम्बार ।
पुनि प्रतिवेशी स्तुति करहिं लेइ संग सकल परिवार ॥१३९॥

व्याख्या – प्रतिवेशी को सुखद आसन पर बिठा कर बार-बार क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये और फिर प्रतिवेशी की परिवार सहित स्तुति करनी चाहिये ।

जय जय प्रतिवेशी हमारे । सब विधि हम शरण तिहारे ॥
मंगल होइब सदा तुम्हारा । चावहहिं हम तिहार दुलारा ॥

व्याख्या – हे हमारे पड़ोसी ! आपकी जय हो, जय हो । हम सब प्रकार से आपकी शरण में हैं । आपका सदैवम मंगल हो । हम सदा आपका प्यार चाहते हैं ।

सह परिवार हम शरण तिहारी । करउ विनय स्वीकार हमारी ॥
करइब क्षमा नाथ अपराधा । चावहहिं तुम्हार कृपा प्रसादा ॥

व्याख्या – हे पड़ोसी देव ! हम परिवार सहित आपकी शरण में हैं । आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार कीजिए । हे देव ! आप हमारे अपराधों को क्षमा कर दीजिए । हम तो सदा आपकी कृपा चाहते हैं ।

मंगल करहि भगवान तुम्हारा । फूलइ फलहु सह परिवारा ॥
विनय विवेक करहिं निवास । वैभव होव तुम्हहिं सुपासु ॥

व्याख्या – हे पड़ोसी देव ! भगवान आपका मंगल करे तथा आपका समस्त परिवार फूले-फले । आपको सदा वैभव की प्राप्ति हो ।

दया दान क्षमादि गुण सारे । बसहहिं सकल हिंय तुम्हारे ॥
धन दौलत नहिं होव अभावा । यश वैभव चहुँदिसि रहइ छावा ॥

व्याख्या – हे पड़ोसी देव ! दया व क्षमा आदि के समस्त सद्गुण आपके हृदय में निवास करें तथा आपके घर में धन व दौलत का अभाव नहीं रहे तथा आपका यश व वैभव चारों दिशाओं में फैले ।

दो०–मंगल चावहिं मंगल हो मंगलमय हो सब परिवारा ।
मंगलमय प्रीति मन रहे मंगल करहिं सदा करतार ॥१४०॥

व्याख्या–हम मंगल चाहते हैं तथा आपका भी मंगल हो और सब परिवारों में मंगल रहे तथा हमारे मनों में मंगलमय प्रेम बना रहे और भगवान सबका मंगल करें।

सहित बिनय करावहिं अहारा । श्रद्धा अनुसार देहिं उपहारा ॥
करि बिनय विदा देइ कराई । इहँ सरल विधान दियेउँ बताई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! फिर विनय पूर्वक प्रतिवेशी को भोजन कराएँ तथा क्षमता के अनुसार उपहार देवें और विनयपूर्वक प्रतिवेशी को विदा कर दें । हे पार्वती ! यही सरल पूजा का विधान है ।

जेहि करहहिं प्रतिवेशी पूजा । निज हियँ प्रभाव सकहिं बूझा ॥
प्रतिवेशी मंगल निज मंगलदाई । नहिं संशय देखहु सब अजमाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो लोग प्रतिवेशी की पूजा करते हैं, वे इसका प्रभाव स्वयं के हृदय में समझ सकते हैं । पड़ोसी का मंगल करना स्वयं को मंगल देने वाला होता है । इसे सब लोग करके अनुभव कर सकते हैं ।

गुप्त मत अरु कहुँ बखानी । पूजक पूजित उभय समानी ॥
मेहमान होउ चाहे मेजबाना । उभय करहिं कृपा भगवाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब तुम्हें एक गुप्त रहस्य और बताता हूँ कि पूजा करने वाला व पूजा कराने वाला दोनों बराबर होते हैं । चाहे कोई मेहमान हो या चाहे मेजवान हो, भगवान तो दोनों पर समानरूप से कृपा करते हैं।

मिटावहिं कल्मष उभय परिवारा । देवहहिं सुख शान्ति अपारा ॥
भ्रातत्व प्रेम अरु सदाचारा । रहवइ सदा उनि परिवारा ॥

व्याख्या – परमात्मा तो दोनों परिवारों की कटुता को मिटा देते हैं और सुख व अपार शान्ति प्रदान कर देते हैं। प्रतिवेशी पूजा करने वाले परिवारों में प्रेम, भ्रातत्व व सदाचार के भाव सदा बने रहते हैं ।

दो०–प्रतिवेशी पूजा भल अति उत्तम इहँ जगत व्यवहार ।
सहज सरल जे अनुसरहिं तिन्ह हियँ बसइब करतार ॥१४१॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रतिवेशी पूजा बहुत अच्छी होती है तथा संसार में यह सर्वश्रेष्ठ व्यवहार है। इसलिये जो सहजता व सरलता से प्रतिवेशी पूजा करते हैं, उनके हृदय में परमात्मा का निवास होता है ।

प्रकृति पूजा सकल उपकारी। उचित करहिं सब नर नारी ॥
उमा कहउँ प्रकृति पूजा विधाना। विपद सकल होवइ निधाना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रकृति की पूजा सभी के लिए बहुत उपकारी होती है, अतः उचित तो यही है कि स्त्री-पुरुषों को प्रकृति की पूजा करनी चाहिये । हे पार्वती ! अब मैं प्रकृति की पूजा के विधान को बताता हूँ, जो समस्त विपदाओं को दूर करनेवाला है ।

प्रकृति सोइ प्रभु मन सुहाई। सोइ विधि विधान बेद सब गाई ॥
बेद सकल जानि प्रकृति सरूपा। अनुभव गम्य अनादि अनूपा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! प्रकृति ही परमात्मा का मन होती है और प्रकृति शक्ति ही विधि (क्रिया) का विधान होती है, जिसका वर्णन सब वेदों ने किया है। समस्त वेद भी प्रकृति का ही स्वरूप हैं, इसलिए वे अनुभव गम्य, अनादि व अनुपम हैं।

प्रकृति पूजा विधान अति सरला। सकहिं करि बाल वृद्ध अबला ॥
प्रकृति शरण जे जनु रहहिं। चिन्ता नरक कबहुँ न परहिं ॥

व्याख्या – प्रकृति की शरण में जो लोग रहते हैं, वे कभी भी चिन्ता रूपी नरक में नहीं पड़ते हैं। प्रकृति की पूजा का विधान भी बहुत ही सरल होता है, जिसे बालक, वृद्ध व अबला नारी सब कर सकते हैं ।

आसोज कार्तिक माघ चैत्र मासा। पुनि बैशाख पूजहिं तजि आसा ॥
पूजा पंच बार बरस दरकारा। शुक्ल पक्ष अष्टमी पावन बारा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! आषाढ़, कार्तिक, माघ, चैत्र व बैशाख के महीने में निरासक्त होकर प्रकृति शक्ति की पूजा करनी चाहिये। वर्ष में शुक्ल पक्ष की अष्टमी की पावन तिथि पर पाँच बार प्रकृति शक्ति की पूजा करनी चाहिये ।

प्रातः उठि करहिं सूरज पूजा। पूर्ण भरोस आस नहिं दूजा ॥
हो सम्भव करहिं उपवासा। देवहहिं अर्घ जल बातासा ॥

व्याख्या – मन मे पूर्ण विश्वास के साथ सुबह उठकर श्रद्धापूर्वक सूर्य की पूजा करें तथा सम्भव हो तो उस दिन का उपवास करें और जल में बतासा डालकर सूर्य को अर्घ्य देंवे ।

दोपहर करहहिं फलाहारा। भल होवइ करें सह परिवारा ॥
स्तुति प्रकृति करहिं पंचबारा। घरी दो होव अन्तर इकसारा ॥

व्याख्या – दोपहर को फलाहार करें तथा अच्छा तो यह होता है कि परिवार सहित करें तथा दिन में दो दो घड़ी के अन्तराल से प्रकृति शक्ति की स्तुति करें।

दो०–पंचभूतहउ पूजा करें प्रातः दोपहर अरु संध्याकाल ।
निसि पुनि मयंक पूजहहिं होवहहिं ते जनु निहाल ॥१४२॥

व्याख्या – सुबह, दोपहर व शाम को उस दिन पाँच भूत तत्वों की भी पूजा करनी चाहिये तथा रात्रि में पुनः चन्द्रमा की पूजा करें । ऐसा करने वाले निहाल हो जाते हैं ।

पंचभूत स्तुति देउँ बताई। होवइ भल श्रद्धा सह जे गाई ॥
पंच तत्व स्तोत्र अति पावन। गावहिं जेहि पावहिं मन भावन ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब मैं यहाँ पंच तत्वों की स्तुति को बताता हूँ, जिसको श्रद्धापूर्वक गाने वालों का कल्याण होगा । पंचतत्व स्तोत्र बहुत ही पवित्र हैं, जिसको गाने से मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है ।

पंच तत्व स्तोत्र

ॐ रसरूपं औषधिमूलम् सर्वव्याप्तम् सृष्टिकारकम् जलतत्वं नमोः नमः ॥
ॐ सृष्टिआधारम् धारणामूलम् सर्वपालकम् मातृरूपं पृथ्वी तत्वं नमोः नमः॥
ॐ तेजरूपम् हिरण्यानलम् क्षुधाकारकम् रूपवानम् अग्नि तत्वं नमोः नमः ॥
ॐ स्पर्शकारकम् मधुरम शीतलम् प्राणमूलम् सर्ववाहकम् वायु तत्वं नमोः नमः ॥
ॐ शून्याकारम विराटम् आनन्दमयं शब्दमूलम् निराकारं आकाश तत्वं नमोः नमः ॥

व्याख्या – रस के रूप, औषधि के मूल, सबमें व्याप्त, सृष्टि के कारण हे जल तत्व ! आपको नमस्कार, नमस्कार । सृष्टि के आधार, धारणा के मूल, सबके पालनकर्ता, माता के स्वरूप हे पृथ्वी तत्व ! आपको नमस्कार, नमस्कार । तेज रूप, हिरण्यानल, क्षुधा के कारण, रूपवान हे अग्नि तत्व ! आपको नमस्कार, नमस्कार । स्पर्श के कारण, मधुर, शीतल, प्राणों के मूल, सब का वहन करने वाले हे वायु तत्व ! आपको नमस्कार ! शून्याकार, विराट, आनन्दमय, शब्द के मूल, निराकार हे आकाश तत्व ! आपको नमस्कार, नमस्कार ।

श्लोक– रूपं देही जयं देही यशं देही, वैभवं देही मोहि आरोग्यम् ।
पंच तत्वं जग मूलं अनुकूल भवं अहम् त्वमेव शरणम् ॥

व्याख्या – मुझे रूप दीजिए, जय दीजिए, यश दीजिए, वैभव दीजिए और आरोग्य प्रदान कीजिए । हे पंच तत्व ! आप जगत के मूल हैं । आप अनुकूल होइये । मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

श्लोक– बिनय विवेकम् देहि मोहि देहि सद्गुण युक्तम् वैभव अपारम् ।
सद्बलम् बुद्धिः च विधाम् देहि मोहि च देहि भगति निष्कामम् ॥

व्याख्या – हे पंच तत्व देव ! मुझे विनय व विवेक दीजिए तथा मुझे सद्गुणों से युक्त अपार वैभव प्रदान कीजिए । मुझे सात्विक बल, बुद्धि व विद्या दीजिए तथा निष्काम भक्ति प्रदान कीजिए ।

स्तोत्र गाई करहिं नमस्कारा । मिटहिं तन मन सकल विकारा ॥
ऐहि पंच भूत पूजा विधाना । सकल शुभदायक कल्याना ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! पंचतत्वों की स्तुति करके नमस्कार करने से तन व मन के समस्त विकार मिट जाते हैं । यही पाँच भूतों की पूजा का विधान है, जो समस्त शुभों को देने वाला व कल्याणकारी हैं ।

अब कहउँ चन्द्रपूजा विधाना । सरल सुगम दायक कल्याणा ॥
निसि पावन सदा पूर्ण मासी । देखहहिं शशि श्रद्धा उल्लासी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! अब मैं तुम्हें चन्द्र पूजा के विधान को बताता हूँ, जो सरल, सुगम व कल्याण करने वाला है । पूर्णिमा की रात्रि सदा पवित्र होती है, इसलिए पूर्णिमा के दिन प्रसन्नता के साथ चन्द्रमा के दर्शन करने चाहिये ।

करि दर्शन स्तुति शशि गाई । बाढ़हि वैभव सुख शान्ति आई ॥
स्तुति मयंक देवउँ बताई । गावहिं तेहि मनोवांछित पाई ॥

व्याख्या – चन्द्रमा के दर्शन करके चन्द्र स्तुति गाने से वैभव, सुख व शान्ति मिल जाती है । अतः चन्द्र स्तुति को बता देता हूँ, जो मनोकामना पूर्ण करने वाली है ।

चन्द्र स्तुति

जय जय देव निसा भूषणम् । जय जय मंगलमय निरदूषणम् ॥
जय प्रकृति मनं शिव ललाट भूषितम् । त्रयताप नाशकं पतिव्रताम् पूजितम् ॥

व्याख्या – हे रात्रि को सुशोभित करने वाले देव ! आपकी जय हो । हे निर्विकार मंगल स्वरूप ! आपकी जय हो । हे प्रकृति के मन व शिव के ललाट पर शोभा पाने वाले ! आपकी जय हो । आप तीनों तापों का नाश करने वाले व पतिव्रताओं द्वारा पूजे जाने वाले हैं ।

जय जय निश्छल प्रेम दायकं । जय मनोजम काम कारकम् ॥
जय गगन प्रियं मन तोषणम् । जय आनन्दमयं कुमुद पोषणम् ॥

व्याख्या – हे निश्छल प्रेम पैदा करने वाले ! आपकी जय हो । हे काम स्वरूप व काम के कारण ! आपकी जय हो । हे आकाश प्रिय व मन को सन्तुष्ट करने वाले ! आपकी जय हो । हे आनन्द स्वरूप व कुमुद पुष्प के पोषणहार ! आपकी जय हो । आपकी जय हो ।

जय मद मत्सरादि नाशकम् । जय कृपालम सुख दायकम् ॥
जय काम मूलम् रूप नायकम् । नर मादा हृदय प्रेम पालकम् ॥

व्याख्या – हे मद व मत्सर आदि का नाश करने वाले, हे कृपाल, हे सुखदायक! आपकी जय हो ! हे काम के मूल व रूप के स्वामी ! आपकी जय हो । हे नर-मादा के हृदय में प्रेम पैदा करने वाले ! आपकी जय हो ।

जय चकोर प्रियम् शशि हिमकरम् । जाय विधु शशांक सुधाकरम् ॥
जय रोहणी पतिम मन मोहकम् । जय हिमांशु शीतांशु शुभांकरम् ॥

व्याख्या – हे चकोर के प्रिय, हे शशि, हे हिमकर ! आपकी जय हो । हे विधु, हे शशांक, हे सुधाकर ! आपकी जय हो । हे रोहणी के पति व मन को मोहित करने वाले ! आपकी जय हो । आपकी जय हो । हे हिमांशु, हे शीतांसु, हे शुभांकर ! आपकी जय हो ।

जयं रूपं देहिं प्रेमं निष्कामं । तन मन प्रसन्नं करुम नाथम् ॥
अहम् त्वमेव शरणं त्वमेव शरणं । प्रसीद भवं नाथं प्रसीद भवम् ॥

व्याख्या – हे नाथ ! आप हमें जय, रूप व निष्काम प्रेम दीजिए । हे देव ! आप तन व मन को प्रसन्न कर दीजिए । हे नाथ ! आप प्रसन्न हुजिए, प्रसन्न हुजिए। मैं आपकी शरण में हूँ । मैं आपकी शरण में हूँ ।

स्तुति गाइ करहिं नमस्कारा । शशि सन्मुख छाड़हिं जलधारा ॥
पुरुष पत्र चढ़ावहिं श्रद्धाअनुहारी । विधि सरल इहँ पूजा सारी ॥

व्याख्या – चन्द्रमा की स्तुति करके नमस्कार करें तथा चन्द्रमा को जल चढ़ाएँ तथा श्रद्धा के अनुसार फल व फूल भेंट करें । बस यही चन्द्रमा की पूजा का विधान हैं ।

चन्द्र पूजा सौभाग्य दायक । प्रेम उमंग मूल मन भायक ॥
तिथि पूनम होइ कार्तिक मासा । पूजहहिं शशि पूर्ण अभिलाषा ॥

व्याख्या – चन्द्रमा की पूजा सौभाग्य प्रदान करने वाली होती है तथा प्रेम व उमंग का मूल व मन को अच्छी लगने वाली होती है । कार्तिक महिने की पूर्णिमा की तिथि को चन्द्र पूजा करने पर सब मनोकामना पूर्ण हो जाती है ।

प्रतिमास पूनम पावन सुहाई। करहिं पूजा सुख वैभव पाई ।
वर सुन्दर मिलहिं कन्या कुँवारी। धन धान्य सम्पन्न परिवारी ॥

व्याख्या – प्रत्येक महीने की पूर्णिमा की तिथि पवित्र होती है, इसलिए जो पूर्णिमा को चन्द्रमा की पूजा करते हैं, उन्हें सुख व वैभव मिल जाता है तथा कुँवारी लड़कियों को सम्पन्न परिवार वाला सुन्दर वर प्राप्त हो जाता है।

सुहागिनि रहहिं सुहाग अखण्डा। पूजा सरल नहिं किछु पाखण्डा ॥
करि पूजा जेवाँवइ कन्या कुँवारी। रहवइ प्रसन्न जग महतारी ॥

व्याख्या – चन्द्रमा की पूजा से सुहागिनों का सुहाग अखण्ड रहता है तथा पूजा विधि भी सरल व पाखण्ड रहित होती है। जो लोग चन्द्रमा की पूजा करके कुँवारी कन्याओं को भोजन कराते हैं, उन पर जगत की माता प्रकृति शक्ति प्रसन्न हो जाती है।

मिलि दम्पत्ति जे पूजा करहिं। नहिं संशय प्रेम अटल रहहिं ॥
पावहिं फल मन अनुकूला। मिटहिं जग जंजट भव शूला ॥

व्याख्या – जो दम्पत्ति मिलकर चन्द्रमा की पूजा करते हैं, उनमें अटूट प्रेम बना रहता है तथा मन के अनुकूल फल मिल जाता है और संसार की समस्त समस्याएँ मिट जाती हैं।

गृहस्थ मिलहिं सुख अपारी। शशि पूजा हय महिमा अपारी ॥
दैहिक, दैविक भौतिक ताप नसाई। करि देखहुँ कलिजुग अजमाई ॥

व्याख्या – गृहस्थ लोगों को चन्द्रमा की पूजा से अपार सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए चन्द्र पूजा की महिमा अपरम्पार है। चन्द्रमा की पूजा दैहिक, दैविक व भौतिक कष्टों को दूर कर देती है। कलियुग में इसे करके परखा जा सकता है।

दो०–शशि पूजहिं जय रूप यश मिले सब जग होय अनुकूल ।
दाम्पत्य जीवन सुख बरषहिं ब्यापहिं नहिं कोउ भवशूल ॥१४३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! चन्द्रमा की पूजा करने पर जय, रूप, यश व वैभव की प्राप्ति हो जाती है तथा समस्त जगत अनुकूल हो जाता है और दाम्पत्य जीवन में सुख की बरसात होने लग जाती है, जिससे भावों का कष्ट मिट जाता है।

गृहस्थ भल सत् व्यवहारी। देहिं दान देश काल अनुहारी ॥
परनिंदा नहिं हो हृदय विचारा। ताकहिं नहिं परधन परदारा ॥

व्याख्या – गृहस्थ तो सात्विक व्यवहार वाला अच्छा होता है तथा गृहस्थ को देश, काल व पात्र के अनुसार दान भी करना चाहिये। परनिंदा का भाव तो गृहस्थ को हृदय में लाना भी नहीं चाहिये तथा पराए धन व परायी स्त्री की तरफ देखना भी नहीं चाहिये।

जथा संभव जपहि गुरु मन्त्र। रखहिं मन निर्मल अन्तर ॥
करहिं सत्संग प्रति रविवारा। गुरु पूजहिं सहित परिवारा ॥

व्याख्या - जहाँ तक सम्भव हो गुरु मन्त्र का जप करते रहना चाहिये तथा मन के अन्तःकरण को निर्मल रखना चाहिये। प्रत्येक रविवार को सत्संग करना चाहिये तथा परिवार सहित गुरु की पूजा करनी चाहिए।

करहिं निर्मल मन मानस पूजा। दिखावादि नहिं हो पाखण्ड दूजा ॥
सब जग जानहि प्रभु सन्ताना। प्रभु सब देव प्रभु भगवाना ॥

व्याख्या – मन को निर्मल करके मानसिक पूजा करना चाहिये तथा पूजा में पाखण्ड आदि का दिखावा नहीं करनी चाहिये। समस्त संसार को परमात्मा की सन्तान मानना चाहिये और परमात्मा को सब देवों का रूप और परमात्मा को ही भगवान मानना चाहिये।

रहवहिं सहज प्रभु शरणाई। ते गृहस्थ प्रभु प्रिय सदाई ॥
पालहिं कर्तव्य जे मन लाई। उमा तिन्हके प्रभु सदा सहाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो गृहस्थ सदा परमात्मा की शरण में रहते हैं, वे परमात्मा को सदा प्रिय होते हैं और जो गृहस्थ सच्चे मन से कर्तव्यों का पालन करते हैं, उनकी परमात्मा सदैव सहायता करते हैं।

दो०–गृहस्थ सम कोउ आश्रम नहिं उमा करहु मम वचन बिस्वास।
धर्म अर्थ काम मोच्छ प्रद होवहिं पूरण सब अभिलाष ॥१४४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! गृहस्थ के समान दूसरा कोई आश्रम नहीं होता है। तुम मेरे वचनों का विश्वास करो क्योंकि गृहस्थ आश्रम धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देने वाला होता है तथा गृहस्थ आश्रम में सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

जय महेश विशेष कृपालकम्। जय त्रयम्बकम् काम नाशकम् ॥
जय सहज सरूप शास्त्र शोधकं। जय असुरारि काम मदादि मोचकं ॥

व्याख्या – हे महेश, हे विशेष कृपालु ! आपकी जय हो। हे त्रयम्बकम्, हे काम का नाश करने वाले ! आपकी जय हो। हे सहज स्वरूप ! आपकी जय हो। आप समस्त शास्त्रों की खोज करने वाले हैं। काम व मद आदि असुरों का नाश करने वाले हे असुरारि ! आपकी जय हो।

जय त्रिकालग्य मम नाथम्। जय त्रिपुरारि रक्षक सतपाथम् ॥
जय वासनाव्याल गल धारकम्। जय राम प्रियायः भव तारकम ॥

व्याख्या – हे नाथ, हे त्रिकालज्ञ ! आपकी जय हो। हे त्रिपुरारि ! आपकी जय हो। आप सत्य के पथ की रक्षा करने वाले हैं। हे वासना रूपी सर्पो को गले

में धारण करने वाले ! आपकी जय हो । हे परमात्मा के प्रिय ! आपकी जय हो । आप भव सागर पार कराने वाले हैं ।

जय भलमन्द पार गुणातीतं । जय आदि नाथम सिद्ध अतीतम् ॥
जय साबर सृजकं तन्त्र शोधकं । जय नाथ परम तत्व बोधकम् ॥

व्याख्या – अच्छे-बुरे से परे हे गुणातीत ! आपकी जय हो । हे आदि नाथ व परम सिद्ध ! आपकी जय हो । हे साबर मन्त्रों के सृजक व तन्त्र की खोज करने वाले! आपकी जय हो । हे परमतत्व का अनुभव करने वाले नाथ ! आपकी जय हो।

जय पतित पावन शरणागत रक्षकं । जय जग हिताय कालकूट भक्षकं ॥
जय बिमलनाथ परम साधकं । जय मुक्त स्वरूपायः माया निवारकं ॥

व्याख्या – हे पतितों को पावन व शरणागतों की रक्षा करने वाले ! आपकी जय हो । हे जगत हित में कालकूट जहर को पीने वाले ! आपकी जय हो। हे विमलनाथ व परम साधक ! आपकी जय हो । हे मुक्त स्वरूप ! आपकी जय हो। आप माया का नाश करने वाले हैं ।

दो०–जय सुरेश महेश करुणेश जय प्राण प्रिय मम नाथ ।
कृपा कीन्ह विशेष तुम मैं सब विधि भयी सनाथ ॥१४५॥

व्याख्या – हे सुरेश, महेश व करुणा के ईश्वर ! आपकी जय हो । हे प्राणप्रिय मेरे स्वामी ! आपकी जय हो । हे नाथ ! आपने मुझ पर विशेष कृपा की है, जिससे में सब प्रकार से सनाथ हो गयी हूँ ।

धन्य देव परम ग्यान बताई । सब विधि मैं कृतार्थ सुहाई ॥
सुख दुःख मूल नाथ देउ बताई । मोहादि भाव काहे जीव सताई ॥

व्याख्या – हे देव ! मैं बहुत आभारी हूँ कि आपने मुझे परम ज्ञान बता दिया है, जिसको सुनकर मैं सब प्रकार से कृतार्थ हो गयी हूँ । हे नाथ ! अब सुख दुःख के मूल कारण को बता दीजिए तथा मोह आदि के भाव जीव को क्यों सताते हैं ? यह भी बता दीजिए ।

मोहादि भाव काह मुक्ति उपाई । सब कहउ नाथ मोहि समुझाई ॥
धरम नीति उपदेसहु मोही । कीरति भूति सुगति जाते होही ॥

व्याख्या – हे नाथ ! मुझे समझाकर बताइये कि मोह आदि के भावों से मुक्ति का उपाय क्या है ? हे नाथ ! मुझे धर्म नीति का उपदेश भी दीजिए, जिससे यश, वैभव व अच्छी गति की प्राप्ति हो जाए ।

सुनहु उमा सब मुनि कहहीं । रामु चराचर नायक अहहीं ॥
राम शरण कीरती सुगति दाई । मम वचन सत्य संशय नांई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सभी मुनि लोग कहते हैं कि परमात्मा ही समस्त सृष्टि के मालिक हैं, इसलिए परमात्मा की शरण ही समस्त यश व सुगति को देने वाली होती है । मेरे ये वचन सत्य हैं, इसमें संशय नहीं है ।

सुभ अरु अशुभ करम अनुहारी । प्रभु देइ फल हृदय बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! शुभ और अशुभ तो कर्म के अनुसार ही होता है क्योंकि परमात्मा तो कर्म के भाव का हृदय में विचार करके ही फल प्रदान करते हैं। अतः जो जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है । सभी शास्त्रों में इसी मत को कहा गया है ।

दो०–औरु करें अपराध कोउ और पाव नाथ फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति काह मरम इहं जोगु ॥१४६॥

व्याख्या – हे नाथ ! अपराध कोई और करता है और फल किसी और को भोगना पड़ता है । ये भगवान की विचित्र व्यवस्था है । इसका क्या रहस्य है ?

मोह जन्य ब्यापहिं पर दोषू । ग्यानी गुन करहिं न रोषू ॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हहीं । मोह दोष ब्यापहिं नहिं तिन्हहीं ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मोह के कारण ही दूसरे के कर्मो के दोष लगते हैं अतः ज्ञानी लोग इस रहस्य को जानकर परमात्मा पर दोष नहीं लगाते हैं । जिन्हें परमात्मा प्रिय होते हैं, उन्हें मोह से पैदा होने वाले दोष नहीं लगते हैं ।

जोगवहि जे प्रभु प्रान की नाँई । तिन्हहिं कबहुँन मोह सताँई ॥
निजहि निज सुख दुःख कर दाता । मोहवश बिरथा परदोष लगाता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो परमात्मा से प्राणों के समान जुड़ जाते हैं, उन्हें कभी भी मोह नहीं सताता है । जीव स्वयं ही स्वयं के सुख दुःख का कारण होता है परन्तु मोह के कारण दूसरों पर दोष लगाता रहता है ।

जोग बियोग भोग भलमंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू । संपत्ति बिपत्ति करम अरु कालू ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मिलना-बिछुड़ना, अच्छे-बुरे भोग, हित व अनहित का भ्रम, जन्म, मरण व जगत का व्यवहार, सम्पत्ति, विपत्ति, कर्म और काल ।

धरनि धामु धनु पुर परिवारु । सरगु नरकु जहँ व्यवहारु ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं । मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

व्याख्या – भूमि, घर, धन, गाँव, परिवार, स्वर्ग, नरक व जगत का व्यवहार को देखकर व सुनकर चिन्तन करके देख लो, इन सबका मूल मोह ही होता है।

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

परमार्थ के भावों में ये सब नहीं होते हैं ।

दो०—सपने होइ भिखारि नृपु रंक आकपत्ति होई ।
जागें लाभु न हानि कहु तिमि प्रपंच जियँ जोई ॥१४७॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जैसे भिखारी सपने में राजा और राजा भिखारी हो जाता है परन्तु जागने पर हानि व लाभ कुछ भी नहीं होता है, वैसे ही ये सब चित्त में मोह के प्रपंच होते हैं ।

अस विचारि प्रभु न दोष लगाई । उमा मोहवश सुख दुख सदाई ॥
मोह निसाँ सबु सोबनि हारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! ऐसा विचार कर परमात्मा पर दोष नहीं लगाना चाहिये क्योंकि सुख व दुःख तो सदा मोह के कारण ही होते हैं । मोह रूपी रात्रि में सब जीव सोते रहते हैं और नाना प्रकार के सपने देखते रहते हैं ।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब विषय बिलास बिरागा ॥

व्याख्या — इस संसार रूपी रात्रि में तो योगी लोग ही जागते हैं, जो परमार्थी माया के प्रपंचों से परे होते हैं । जीव को जागा हुआ तो तब जानना चाहिये, जब उसे विषयों से वैराग्य पैदा हो जाए ।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । प्रभु चरण जगहिं अनुरागा ॥
उमा परम परमारथ ऐहू । मन क्रम बचन प्रभु पद नेहू ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जब परमात्मा के चरणों में अनुराग पैदा हो जाता है तब विवेक हो जाता है तथा मोह का भ्रम मिट जाता है । हे उमा ! परम परमार्थ तो परमात्मा के चरणों में मन, वचन व कर्म से प्रेम करना होता है ।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥

व्याख्या — परमात्मा ही परमार्थ के रूप होते हैं, जो अविगत, अलख, अनादि व अनुपम हैं । वे तो समस्त विकारों से रहित होते हैं, जिन्हें वेद नेति नेति कहते रहते हैं ।

दो०—भगत भाव भूमि देखि सदा द्रवहहिं प्रभु सहज कृपाल ।
शरणागत रक्षक प्रनतपाल सो शरण ब्यापै न मोह जाल ॥१४८॥

व्याख्या — हे पार्वती ! भक्तों के भावों को देख कर परमात्मा द्रवित होते हैं। परमात्मा शरणागतों की रक्षा करने के प्रण का पालन करते हैं, इसलिए जो

शरण में आ जाते हैं, उन्हें मोह का जाल नहीं सताता है ।

दो०—करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि शरण न आय करतार ।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं करउ चाहि कोटि उपचार ॥१४९॥

व्याख्या — जब तक मन, वचन व कर्म की कपटता को त्याग करके परमात्मा की शरण में नहीं आते हैं तब तक सपने में भी दुःख नहीं मिट पाते हैं, चाहे करोड़ों प्रयास कर लें ।

प्रभु भगति सुमंगल मूला । मिटहिं मोह जनित सब शूला ॥
उमा सुनु मम सत्य बचना । प्रभु अधीन जानि सब रचना ॥

व्याख्या — परमात्मा की भक्ति ही समस्त मंगलों का मूल होती है, जिससे मोह से पैदा होने वाले सब कष्टों का निवारण हो जाता है । हे पार्वती ! मेरी सत्य बात को सुनो — समस्त सृष्टि परमात्मा के अधीन ही होती है ।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
गुरु भगत प्रभु भगति पाई । लोक परलोक उभय सुधराई ॥

व्याख्या — जो लोग गुरु के चरणों में अनुराग रखते हैं, वे लोक नीति व वेद नीति दोनों से यश प्राप्त करते हैं तथा गुरु के भक्तों को परमात्मा की भक्ति मिल जाती है, जिससे लोक व परलोक दोनों सुधर जाते हैं ।

गुरु प्रसन्न प्रभु अनुकूला । मिटहिं सब मन कल्पित शूला ॥
उमा मैं जानउँ प्रभु सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! गुरु के प्रसन्न होने पर परमात्मा अनुकूल हो जाते हैं, जिससे मन की कल्पना से उठने वाले कष्ट दूर हो जाते हैं । हे उमा ! मैं परमात्मा के स्वभाव को जानता हूँ, वे तो अपराधियों पर भी क्रोध नहीं करते हैं ।

समरथ सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघ हारी ॥
प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परम हित अंतर जामी ॥

व्याख्या — हे पार्वती ! परमात्मा तो सर्वसमर्थ व शरणागतों का हित करने वाले, गुणों को ग्रहण करने वाले तथा अवगुण व पापों का नाश करने वाले हैं । परमात्मा ही पिता-माता, सुहृदय, गुरु व स्वामी हैं इसलिए वे अन्तर्यामी परमात्मा परमपूज्य व परमहित करने वाले हैं ।

दो०—प्रान प्रान के जीव के जीव सुख के सुखधाम ।
भगत वत्सल परम हितकर उमा जगतपति राम ॥१५०॥

व्याख्या — हे पार्वती ! जगत के पति परमात्मा तो प्राणों के प्राण, जीव का

जीवन, सुखों के घर, भक्त वत्सल व परमहित करने वाले हैं ।

दो०—उमा प्रभु गुन सुभाव गूढ़ अति मुनि जन सुनि सुख पायँ ।
हरि बिमुख विषयी मूढ़ जन सुनि सुनि बिस्मय करॉय ॥१५१॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा के गुण और स्वभाव बहुत गूढ़ होते हैं, जिन्हें सुन सुन कर मुनि लोग प्रसन्न होते हैं परन्तु जो परमात्मा से विमुख, विषयी और मूर्ख होते हैं, उन्हें आश्चर्य ही होता है ।

श्रुति सिद्धान्त कहउँ निचारी। प्रभु भजिअ सब काज बिसारी ॥
प्रभु बिग्यान रूप नहिं मोहा। भगति भाव पेखि करहिं छोहा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैं तुम्हें वेदों के सिद्धान्त को निष्कर्म रूप में बताता हूँ कि समस्त कार्यो को छोड़कर परमात्मा का भजन करना चाहिये। परमात्मा तो मोह से परे व विज्ञान रूप हैं, जो भक्ति का भाव देखकर कृपा करते हैं ।

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। प्रभु भगति बिनु सुख कछु नाहीं ॥
अंधकारु बरु रविहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वेद, पुराण व समस्त ग्रन्थों का यही मत है कि परमात्मा की भक्ति के बिना कुछ भी सुख नहीं होता है। चाहे अंधकार सूर्य को ही नष्ट कर दे परन्तु परमात्मा के विमुख को सुख नहीं मिल सकता है।

सब कर मत गिरिनन्दनी एहा। करिअ प्रभु पद पंकज नेहा ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। प्रभु बिमुख सुख पाव न कोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! सभी का मत यही है कि परमात्मा के चरणों में प्रेम रखना चाहिये क्योंकि चाहे बर्फ से अग्नि पैदा हो जाए परन्तु परमात्मा के विमुख को सुख नहीं मिल सकता है ।

फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
सो करउ बिचारि हृदय माहीं। प्रभु शरणहहिं सुख मिलाहीं ॥

व्याख्या – भले ही आकाश में नाना फूल खिल जाएँ परन्तु परमात्मा के प्रतिकूल होने पर जीव को सुख नहीं मिल सकता है। अतः हे पार्वती ! तुम हृदय में विचार करके देख लो परमात्मा की शरण में ही सुख मिलता है ।

दो०—जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल ।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल ॥१५२॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जिस परमात्मा का नाम संसार में तीनों प्रकार के घोर कष्टों को दूर करने वाला होता है, वे कृपालु परमात्मा सदा तुम और मुझ पर अनुकूल बने रहें ।

दो०–गिरिनन्दनी हरि चर्चा सम नहिं लाभ कछु आन ।
बिनु प्रभु कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥१५३॥

व्याख्या – हे पार्वती ! परमात्मा की चर्चा के समान दूसरा संसार में कोई लाभ नहीं होता है परन्तु परमात्मा की चर्चा बिना परमात्मा की कृपा के नहीं मिलती है । सभी बेद पुराण भी ऐसा ही बताते हैं ।

कहेउँ परम पुनीत प्रसंगा । सुनत श्रवण हृदय होइ उमंगा ॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा । उपजइ प्रीति प्रभु पद कंजा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैंने जो पवित्र प्रसंग तुम्हें सुनाया है, इसे सुनते ही हृदय में आनन्द पैदा हो जायेगा । परमात्मा तो कल्पवृक्ष की तरह व करुणा के पुँज हैं, अतः इसे सुनने से परमात्मा के चरणों में प्रेम पैदा हो जायेगा ।

मन क्रम बचन जनित अघजाई । सुनहिं जे कथा श्रवण मन लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो लोग इस प्रसंगों को मन लगाकर सुनेंगे उनकी मन, वचन व कर्म की चिन्ताएँ मिट जायेंगी । यह प्रसंग तीर्थो के फल को देने वाले साधनों का समूह है तथा इससे योग, वैराग्य व ज्ञान में निपुणता आ जायेगी।

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥
विद्या बिनय बिवेक बड़ाई । सब फल इहँ प्रसंग सुनाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! नाना प्रकार के धर्म सम्बन्धी कर्म, दान, व्रत, संयम, दम, जप, तप व यज्ञ आदि तथा विद्या, विनय व विवेक सबके फल के समान इस प्रसंग को सुनने का फल होता है ।

जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल प्रभु कृपा भवानी ॥
इहँ प्रसंग सब सिद्धान्त निचोरा । भगति दायक इहँ मत मोरा ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जहाँ तक वेदों ने जो साधन बताएँ हैं, उन सबका फल परमात्मा की कृपा होता है । परन्तु पार्वती यह प्रसंग जो तुम्हें सुनाया है समस्त सिद्धान्तों का निचोड़ है इसलिए यह मेरा दृढ़ मत है कि यह परमात्मा की भक्ति देने वाला है ।

दो०–मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जे यह प्रसंग निरंतर सुनहि हृदय राखि बिस्बास ॥१५४॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो लोग हृदय में विश्वास रख करके इस प्रसंग को सुनेंगे, उन्हें मुनियों को दुर्लभ परमात्मा की भक्ति सहज में ही प्राप्त हो जायेगी ।

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । प्रभु चरन जाकर मन राता ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वही सर्वज्ञ, गुणवान, ज्ञानी, यशस्वी, पण्डित, धर्मपरायण व कुल को तारने वाला होता है, जिसका मन परमात्मा के चरणों में लग जाता है ।

नीति निपुन सोइ परम सयाना । भगति रस नीक तेहि पाना ॥
सोइ कबि कोबिद धीरज धारी । जाहि प्रभु चरण प्रीति अपारी ॥

व्याख्या – वही नीति में निपुण व परम सयाना होता है, जो भक्ति के रस का अच्छी तरह पान करता है तथा वही कवि, कोविद व धैर्यवान होता है, जिसके मन में परमात्मा के चरणों में अपार प्रेम होता है ।

धन्य देस जहँ होइ सत्संगा । धन्य जीव प्रभु पद प्रीति अभंगा ॥
धन्य करम जो हरि रिझाई । धन्य साधक किछु चाह नाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वही स्थान धन्य हैं, जहाँ पर सत्संग होता हो और वही जीव धन्य है, जिसके हृदय में परमात्मा से अटूट प्रेम हो तथा वही कर्म धन्य है, जिससे परमा त्मा प्रसन्न होते हैं तथा वही साधक धन्य है, जो निष्काम होता है।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य मति प्रभु चरण रत पाकी ॥
धन्य आचार्य हरि गुण भाखे । धन्य भगत प्रभु पद चित राखे ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वही धन अच्छा है, जो परमात्मा के कार्यो में लगाया जाता है तथा परमात्मा के चरणों में दृढ़ रत बुद्धि धन्य होती है । आचार्य वही धन्य है, जो परमात्मा के गुणों का गान करे तथा भक्त वही धन्य है, जो अपने चित को परमा त्मा के चरणों में लगाकर रखता है ।

दो०–सो कुल धन्य उमा तहँ हरि भगत संतति जन्माय ।
निसि दिवस प्रभु भजन रत सोइ कुल तारक कहाय ॥१५५॥

व्याख्या – हे पार्वती ! वही कुल धन्य होता है, जिसमें परमात्मा का भक्त पैदा होता है और रात-दिन परमात्मा के भजन में लगा रहता है । ऐसी सन्तान को ही कुल का उद्धारक कहा जाता है ।

मति अनुरूप कथा मैं भाषी । अनुभव गम्य परमात्मा साखी ॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई । तोहि मैं प्रभु चरित सुनाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! मैंने मेरी बुद्धि के अनुसार तुम्हें परमात्मा को साक्षी रखकर मेरे अनुभव को सुना दिया है । तुम्हारे मन में परमात्मा के प्रति विशेष प्रेम देखकर ही मैंने यह परमात्मा चरित तुमको सुनाया है ।

जेहि सुनहिं इहँ दम्भ बिसारी । तिन्ह हृदय करहिं उजियारी ॥
जो हठ करि सुनइ न मन लाई । तिन्ह कहेउ बक्ता लाभ सदाई ॥

व्याख्या – जो लोग अपने अहंकार का त्याग करके इस प्रसंग को सुनेंगे, उनके हृदय में ज्ञान का उजियाला हो जायेगा और जो लोग हठ कर के मन से नहीं सुनते हैं, उनको सुनाने से भी वक्ता को तो लाभ होगा ही होगा ।

कामी क्रोधी सुनहिं इक बारा । तिन्हहुँ करहहिं इहँ उद्यारा ॥
जन्म जन्म कोटि अघ नसाई । कहत सुनत इहँ लाभदाई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! कामी व क्रोधी भी एक बार इस प्रसंग को सुन लेंगे, उनका भी उद्धार हो जायेगा । इस पवित्र प्रसंग को कहने व सुनने से जन्म-जन्मों के करोड़ों पापों का नाश हो जायेगा ।

गुर पद प्रीति नीति रत जेई । उमा जानि परम अधिकारी तेई ॥
ता कहँ यह विशेष सुखदाई । जाहि प्रभु छाड़ि किछु गति नांई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो गुरु के चरणों में प्रेम रखते हैं और सदा नीति का पालन करते हैं, वे इस पवित्र प्रसंग के सुनने के विशेष पात्र हैं और यह उन लोंगो को विशेष सुख देने वाली है, जिनको परमात्मा के अलावा और कुछ नहीं चाहिये ।

दो०–प्रभु चरण रति जो चह अथवा चाइब जेहि पद निर्बान ।
भाव सहित इहँ चरित करउ सब बिधि होइब कल्याण ॥१५६॥

व्याख्या – जो लोग परमात्मा के चरणों में प्रेम चाहते हैं या निर्वाण चाहते हैं, उन्हें भाव सहित इस प्रभु चरित को करना चाहिये । उनका सब प्रकार से कल्याण हो जायेगा ।

प्रभु चरित गिरिजा मैं बरनी । कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग संजीवन मूरी । प्रभु चरित गावहिं श्रुति सूरी ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! यह पवित्र परमात्मा की विशेषताएँ मैंने बता दी हैं, जो कलि अर्थात देह बुद्धि के विकारों व मन के विकारों को दूर करने वाली हैं । संसार के रोगों से मुक्ति के लिए ये संजीवन जड़ी की तरह हैं, इसलिए वेदों ने भी परमात्मा की विशेषताओं का गान किया है ।

एहि महँ ध्यान ग्यान सोपाना । प्रभु भगति केर इहँ पंथाना ॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइब ऐहि मारग सोई ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! इस कथा में ध्यान व ज्ञान रूपी सीढ़ियाँ हैं तथा यह परमात्मा की भक्ति का रास्ता है । इस रास्ते पर तो वे ही लोग पैर रखेंगे, जिनपर परमात्मा की विशेष कृपा होगी ।

मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह चरित्र कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहिं । ते गोपद इव भव निधि तरहिं ॥

व्याख्या – हे पार्वती ! जो परमात्मा की विशेषताओं का कपट का त्याग करके गान करेंगे, वे मनोकामना पूर्ण करने वाली सिद्धियों को प्राप्त कर लेंगे तथा जो मन लगाकर कहेंगे, सुनेंगे व अनुसरण करेंगे, वे गाय के खुर के समान भवसागर को पार कर जायेंगे ।

सुनि सब चरित हृदय अति भाई । गिरिनन्दनी बोली विनय सुनाई ॥
नाथ कृपा मम गत संदेहा । प्रभु चरण उपजेउ नव नेहा ॥

व्याख्या – परमात्मा की विशेषताओं को सुनकर पार्वती को बहुत अच्छा लगा, तब पार्वती शिवजी से बोली कि हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरे संदेह का नाश हो गया है और परमात्मा के चरणों में नया प्रेम पैदा हो गया है ।

दो०–मैं कृत कृत्य भयी नाथ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी हृदय प्रभु भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥१५७॥

व्याख्या – हे नाथ ! में आपकी विशेष कृपा से कृतार्थ हो गयी हूँ और मेरे हृदय में दृढ़ भक्ति पैदा हो गयी है तथा समस्त क्लेशों का नाश हो गया है ।

यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन बिषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा । जन रंजन सज्जन प्रिय ऐहा ॥

व्याख्या – हे वत्स ! यह शिव-पार्वती का बहुत ही शुभ संवाद है, जो सुख पैदा करने वाला व दुखों का नाश करने वाला है । यह संवाद भावों से उत्पन्न संशय का नाश करने वाला, भक्तों को संतुष्ट करने वाला व सज्जनों को प्रिय लगने वाला है ।

मोर भगत जे जग माहीं । एहि सम प्रिय तिन्ह के कछु नाहीं ॥
एहि पावन चरित सुहाई । तोर हृदय जो मैं समझाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! जो संसार में मेरे भक्त हैं, उनके लिए इससे प्रिय और कुछ भी नहीं है । यह पवित्र चरित्र मैंने स्वयं तेरे हृदय में समझा दिया है ।

एहि कलि काल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
एहि चरित सुनि सब फल पाई । हरउँ संकट कृपा बरसाई ॥

व्याख्या – हे वत्स ! इस कलियुग में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत व पूजा का दूसरा कोई साधन नहीं है । केवल इस पवित्र चरित्र को सुनने से ही सब फलों की प्राप्ति हो जायेगी तथा मैं उनके संकटों को दूर कर कृपा कर दूँगा ।

धन्य नाथ मोहि पै कृपा कीन्हीं । मैं अबुध तउ महा जस दीन्ही ॥
तुम्हहिं नाथ तुम्हार समाना । धन्य धन्य प्रभु कृपा निधाना ॥

व्याख्या – हे परमपिता ! आप धन्य हैं, जो मुझ पर कृपा कर दी है । मैं तो अबुध हूँ फिर भी आपने मुझे महान यश प्रदान किया है । हे नाथ ! आपके समान तो आप ही हैं । हे कृपानिधान ! आप धन्य हैं, आप धन्य हैं ।

दो०–तोर चरण सीस नवाइ करि इहँ वर चाहूँ भगवान ।
निरंतर मम हृदय निवास करु भगत वत्सल कृपा निधान ॥१५८॥

व्याख्या – हे परमपिता ! मैं आपके चरणों में सीस नवा कर यह वरदान चाहता हूँ कि हे भक्त वत्सल कृपानिधान ! आप सदैव मेरे हृदय में निवास कीजिए ।

छ०–इहँ चरित पावन कलिमल नसावन सुख संपादन सब शूल नसाहीं ।
प्रभु कृपाला सहज दयाला भगत बछल पतितहु पावन कराहीं ॥
पढ़ि सुनि गावहिं गुनहिं जे जनु बिनु ही प्रयास भव निधि तराहीं ।
कहत लक्ष्मीनारायण इहँ सुखआयन प्रभु निजहि कृपा करि समझाहीं ॥

व्याख्या – यह चरित्र बहुत ही पवित्र और कलियुग के विकारों का नाश करने वाला, सुख दायक व समस्त कष्टों को मिटाने वाला है । परमपिता तो कृपालु और दयालु हैं तथा वे तो भक्त वत्सल व पतितों को भी पावन करने वाले हैं। इस प्रभु चरित को पढ़कर व सुनकर जो गायेंगे व चिन्तन करेंगे, वे बिना ही प्रयास भवसागर पार कर जायेंगे । लक्ष्मीनारायण कहते हैं कि यह चरित तो सुख का घर है, जिसे परमात्मा ने स्वयं कृपा करके समझाया है ।

॥ मानव धर्मशास्त्रस्य शिव पार्वती पावन संवादं भगति ग्यान ध्यान च मोक्षार्थम अष्टम् स्कन्धम सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण अष्टविंशति पड़ाव ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण अष्टम पड़ाव ॥



ॐ गुरुदेवाय नमः

ॐ परमात्मने नमः

नवम स्कन्ध

ॐ करुणा धामम् मंगलमूलम् चराचर पालकम् जगत नायकम् ।
अखण्डम् एक रसम् सहज दयालम् अजं अखिलेश्वरम् नमो नमः ॥ १ ॥

व्याख्या - हे करुणा के घर, मंगलमूल, चराचर के पालन कर्ता, जगत के मालिक, अखण्ड, एकरस, सहज दया करने वाले, अजन्मा, अखिलेश्वर प्रभु ! आपको नमस्कार ।

सर्व मूलम् सर्वकारकम् गुणधामम् विभूति धारकम् ।
सृष्टि संचालकम् च जग पालकम् परमेश्वराय नमो नमः ॥ २ ॥

व्याख्या - सबके मूल, सबके कारण, गुणों के धाम, विभूतियों को धारण करने वाले, सृष्टि के संचालक व जगत के पालन कर्ता प्रभु ! आपको नमस्कार ।

दो०- सकल मंगल सुख वैभव हो जग में सबका हो कल्याण ।
सकल तजि शरण आवहउँ करहउ कृपा कृपा निधान ॥ १ ॥

व्याख्या - सभी का मंगल हो व सभी को सुख व वैभव की प्राप्ति हो तथा जगत में सबका कल्याण हो । मैं सब छोड़ कर प्रभु ! आपकी शरण में आया हूँ, हे कृपा निधान ! आप कृपा कीजिए ।

बन्धु बाँधव सकल परिवारा । हो सुख वैभव सम्पदा अपारा ॥
सकहिं पाइ सकल तोरी शरणा । सोइ कहउ नाथ जुगति बरणा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! सभी बन्धु-बान्धव व परिवारों को सुख, वैभव व सम्पदा प्राप्त हो तथा सभी को आपकी शरण प्राप्त हो सके, ऐसी कोई युक्ति बताइए ।

सब चाहवहिं आनन्द अपारा । दुर्लभ पर इहँ सकल संसारा ॥
काम क्रोध मद मत्सरादि भावा । अकारण जीव नित्य सतावा ॥

व्याख्या - सब लोग अपार आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं । परन्तु इस संसार में आनन्द प्राप्त करना बहुत कठिन है । क्योंकि काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि के भाव अकारण जीव को सताते रहते हैं ।

सोइ नाथ दया मोहि पर कीजै । जुगति शरण सरल कह दीजै ॥
सपनेउ करउँ नहिं बैर भावा । कहउ नाथ सो मोहि समझावा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! इसलिए मुझ पर दया कीजिए और आपकी शरण में आने का सरल उपाय बता दीजिए । मैं सपने में भी किसी से बैर-भाव नहीं करूँ,

ऐसा उपाय मुझे समझा दीजिए ।

जुगति सरल सुगम सब हेतु । सोई कहवउ नाथ भव सेतु ॥
सरल भाषा समझाइब नाथा । करउँ बिनय जोरि दोउ हाथा ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! उपाय सरल, सुगम व सबके लिए हो, ऐसा भव पार करने की विधि बताइए । हे प्रभु ! मैं दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सरल भाषा में समझाइए ।

दो०- मंगल भावना जिन्ह हियँ सुत तिन्ह नहिं दुर्लभ जग कोय ।
कृपा मूल कृपा कुञ्जि कहुँ कल्याण सकल करइब सोय ॥ २॥

व्याख्या - हे वत्स ! जिनके हृदय में मंगल भावना होती है, उनके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । इसलिए मैं तुम्हें कृपा की मूल ''कृपा कुंजी'' बताता हूँ, जो सबका कल्याण करेगी ।

मन वच तजि छल कपटाई । करहिं पाठ तुरत फल पाई ॥
भूल वश जो होइ अपराधा । करइब क्षमा इहँ मोर वादा ॥

व्याख्या - मन, वचन की कपटता को छोड़ कर जो इसका (कृपा कुंजिका) का पाठ करेंगे, उनको तुरन्त फल की प्राप्ति हो जायेगी और अगर वे भूलवश अपराध कर देंगे, तो भी उनको क्षमा कर दूँगा, यह मेरा वादा है ।

चित्त वित्त पाइब समाधाना । हियँ उपजाइब परम ग्याना ॥
देइब सहज पदारथ चारी । पाइब आशीष श्रद्धा अनुसारी ॥

व्याख्या - चित्त व वित्त की समस्याओं का तुरन्त समाधान मिल जायेगा और हृदय में परम ज्ञान पैदा हो जायेगा । यह सहज में चारों पदार्थो को देने वाली है तथा श्रद्धा के अनुसार मेरा आशीर्वाद प्राप्त होगा।

सकल चराचर कृपा अधिकारी । कृपा कुञ्जिका सकल हितकारी॥
श्रद्धा विश्वास कुञ्जि विधि भाई । पल माझ सकै कृपा प्रगटाई ॥

व्याख्या - समस्त चराचर जगत मेरी कृपा प्राप्त करने का अधिकारी है, इसलिए ''कृपा कुंजिका'' सबके हित के लिए है । श्रद्धा और विश्वास ही कुंजी की विधि है, जिससे मेरी कृपा तुरन्त प्रकट हो जाती है ।

सरल सुगम मंगल दायक । नहिं संशय कुञ्जिका भव तारक ॥
विपद काल जो करहिं पाठा । होइब अनुकूल प्रकृति आठा ॥

व्याख्या - यह कुञ्जिका सरल, सुगम, मंगल करने वाली तथा भव सागर पार कराने वाली है । इसमें संदेह नहीं है । जो आपत्ति काल में इसका पाठ करते हैं, उनके लिए अष्ट प्रकार की प्रकृति अनुकूल हो जाती है ।

दो०- सुख दुःख जेहि पाठ करै तिन्ह मिलहिं भगति अगाध ।
सरल सुगम कुञ्जिका कहुँ सोइ मोर प्रगट प्रसाद ॥ ३ ॥

व्याख्या - सुख-दुःख में जो इस कुंजिका का पाठ करते हैं, उनको अगाध भक्ति की प्राप्ति होती है । उसी सरल व सुगम कुंजिका को मैं यहाँ बता रहा हूँ, जो मेरी कृपा का प्रकट प्रसाद है ।

कृपा कुञ्जिका

ॐ सृष्टि संचालकम् गुण धामम् प्रकृति मूलम परमम् ।
सहज दयालम् कृपा निधानम् परमपिता परमेश्वराय नमो नमः ॥ १ ॥

व्याख्या - हे सृष्टि के संचालक, गुणों के घर, प्रकृति के मूल, परम, सहज दयालु, कृपा निधान, परमपिता हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार।

शरणागत रक्षकम् भक्त वत्सलम् सहज कृपा प्रदारकम् ।
भल मन्द पारम् भव तारकं सुखमूलं सुखेश्वराय नमो नमः ॥ २ ॥

व्याख्या - हे शरण में आने वालों की रक्षा करने वाले, भक्त वत्सल, सहज में ही कृपा प्रदान करने वाले, अच्छे-बुरे से परे, भाव रूपी भव सागर से पार कराने वाले, सुख के मूल, हे सुख के ईश्वर ! आपको नमस्कार ।

विभुम सर्वव्यापकम् परमार्थमूलम् सर्व भव दुःख भंजनम् ।
अखण्डम् अजम् सर्वत्रम् सर्वकारकम् सर्वेश्वराय नमो नमः ॥ ३ ॥

व्याख्या - हे विभु, सर्वव्यापक, परमार्थ के मूल, समस्त भव दुःखों का नाश करने वाले, अखण्ड, अजन्मा, सर्वत्र सबके कारण व सबके ईश्वर ! आपको नमस्कार ।

त्वम् सहजम् दयालम् निराकारम् निर्विकारम् निर्मलम् ।
अस्ति-नास्ति पारम् भावरूपम् प्रगटम् भावेश्वरायः नमो नमः ॥ ४ ॥

व्याख्या - आप सहज दयाल, निराकार, निर्विकार, निर्मल, हैं और नहीं हैं की सीमा से परे, भाव के रूप में प्रकट होने वाले भावों के ईश्वर ! आपको नमस्कार।

चराचर नायकम् अहम् त्वमेव शरणम् त्वमेव शरणम् नाथम् ।
ममेव सकल अपराधम् क्षमा करूम क्षमा करूम क्षमेश्वरायः नमो नमः ॥ ५॥

व्याख्या - हे चराचर के नायक ! मैं आपकी शरण में हूँ, आपकी शरण में हूँ। मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर दीजिए । हे क्षमा के ईश्वर ! मेरे अपराध क्षमा कर दीजिए ।

रूपम् चाहि जयम् चाहि वैभवम् चाहि चाहि परमम् सुखम् ॥
शान्ति चाहि आरोग्यम् चाहि चाहि भक्ति भक्तेश्वराय नमो नमः ॥ ६ ॥

व्याख्या - मैं रूप चाहता हूँ, जय चाहता हूँ, वैभव चाहता हूँ, परम सुख चाहता

हूँ, शान्ति चाहता हूँ, आरोग्य चाहता हूँ, भक्ति चाहता हूँ, हे भक्तों के ईश्वर! आपको नमस्कार ।

ग्रह नक्षत्रम् अनुकूलम् चाहि चाहि विनयःयुक्तः व्यवहारम् ।
दिव्य ज्ञानम् चाहि चाहि मनः विजयम् मनेश्वराय नमो नमः ॥ ७ ॥

व्याख्या - मैं चाहता हूँ कि ग्रह-नक्षत्र मेरे अनुकूल हों तथा मेरा व्यवहार विनय युक्त हो । मैं दिव्य ज्ञान चाहता हूँ और मन पर विजय प्राप्त करना चाहता हूँ । हे मन के ईश्वर ! आपको नमस्कार।

क्षमा चाहि अपराधर्हेतवे क्षमा करुम मोहि क्षमा धामम् ।
करुणामूलम् करुणा करुम करुम करुणेश्वराय नमो नमः ॥ ८ ॥

व्याख्या - मैं मेरे अपराधों के लिए क्षमा चाहता हूँ । हे क्षमा के धाम! मुझे क्षमा कर दीजिए । हे करुणा के मूल ! मुझ पर करुणा कीजिए। हे करुणा के ईश्वर! आपको नमस्कार ।

भगति वैराग्यम् विद्या ज्ञानम् मनः शान्तिम् देही मोहि नाथम् ।
अहम त्वमेव शरणम् त्वमेव शरणम् शरणागतेश्वराय नमो नमः ॥ ९ ॥

व्याख्या - हे नाथ ! मुझे भक्ति, वैराग्य, विद्या, ज्ञान व मन को शान्ति दीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ, आपकी शरण में हूँ । हे शरणागतों के ईश्वर ! आपको नमस्कार।

करुम अनुकूलम् सकल प्रकृतिम् च चराचरम् नाथम् ।
करुम् मम् अनुकूलम सकल भूतम् भूतेश्वरायः नमो नमः ॥ १० ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! समस्त प्रकृति को मेरे अनुकूल कर दीजिए तथा समस्त चराचर जगत को भी मेरे अनुकूल कर दीजिए । समस्त भूतों को मेरे अनुकूल कर दीजिए । हे भूतों के ईश्वर ! आपको नमस्कार।

देहिम् मोहि सत बलम् च सत बुद्धिम् च देहि भगति निष्कामम् ।
सर्व रूपेण अहम त्वमेव शरणम् शरणम् सर्वेश्वराय नमो नमः ॥ ११॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मुझे सात्विक बल दीजिए, सात्विक बुद्धि दीजिए और निष्काम भक्ति दीजिए । हे प्रभु ! मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ । हे सबके ईश्वर ! आपको नमस्कार ।

इहँ कृपा कुञ्जिकाम् श्रद्धा च विश्वासं सहः पठन्ति जे नराः ।
रूपम् जयम् यशम् वैभवम् प्राप्नोति च तरन्ति भवः सागराः ॥ १२॥

व्याख्या - जो इस कृपा कुञ्जिका को श्रद्धा व विश्वास के साथ पढ़ते हैं, उनको रूप, जय, यश व वैभव की प्राप्ति होती है तथा भव सागर पार कर जाते हैं ।

दो०- जे पढ़हि सुनहिं कृपा कुञ्जिका होइब सब विधि कल्याण ।
सुख वैभव यशादि मिलइब इहँ कुञ्जिका फल महान ॥ ४ ॥

व्याख्या - जो कृपा कुञ्जिका को पढ़ते व सुनते हैं, उनका सब प्रकार से कल्याण होता है तथा उन्हें सुख, वैभव व यश आदि की प्राप्ति होती है । यह कृपा कुञ्जिका का महान फल है ।

छ० - जय असुरारि सकल हितकारी शरण तिहारी हम आवहहिं ।
जानि निज सन्ताना क्षमा करहु भगवाना विनय सुनावहिं ॥
तुम समान तुम्हहिं नाथ सकल वेद पुराण यह गावहहिं ।
दीन बन्धु दयाल परम कृपाल देउ भगति इहँ मागहहिं ॥

व्याख्या - हे असुरारि ! आपकी जय हो, आप सबका हित करने वाले हैं, इसलिए हम आपकी शरण में आते हैं । हे प्रभु ! आपकी सन्तान जान कर क्षमा कर दीजिए, हम प्रार्थना करते हैं । समस्त वेद-पुराण बताते हैं कि हे प्रभु ! आपके समान तो आप ही हैं । हे दीन बन्धु ! हे कृपालु! आप हमें भक्ति प्रदान कीजिए, हम यह बार-बार माँगते हैं ।

दो०- मम अवगुण चित्त न धरउ अज अखण्ड कृपा सिन्धु भगवान ।
सुख वैभव भगति अविरल देउ जानि मोहि निज सन्तान ॥ ५॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे अवगुणों को माफ कर दीजिए । हे अजन्मा, अखण्ड, कृपा सिन्धु भगवान ! मुझे अपनी सन्तान समझ कर सुख, वैभव और अविरल भक्ति दीजिए।

धन्य सुत तुम अति बड़भागी । मोर चरण प्रीति हियँ लागी ॥
सदा पाइब मोर कृपा विशेषा । भगति रस होवइ न अशेषा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम भाग्यशाली हो कि मेरे चरणों में तुम्हारे हृदय में प्रीत पैदा हो गयी है । तुम सदा मेरी विशेष कृपा प्राप्त करते रहोगे तथा भक्ति का रस कभी भी समाप्त नहीं होगा ।

लेखनि तुम्हार मोर निवासा । सत्य इहँ करइब लोग आभासा ॥
पढ़हि सुनहिं मन चित्तलाई । होइब पूर्ण सद्काम सबाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हारी लेखनी में मैं सदा निवास करूँगा । यह सत्य है कि लोग इसकी अनुभूति कर सकेंगे । जो मन को चित में लगा कर पढ़ेंगे व सुनेंगे, उनके समस्त सद्कार्य पूर्ण होंगे ।

ग्यान विवेक हियँ उपजावई । मारग सुगम भगति पावई ॥
भूत प्रेतादि मिटहिं सब बाधा । उमगहिं हियँ भगति अगाधा ॥

व्याख्या - ज्ञान और विवेक हृदय में पैदा होगें तथा यह भक्ति प्राप्त करने का सुगम व सरल रास्ता है । भूत-प्रेत आदि की सब बाधाएँ मिट जायेंगी तथा हृदय में अगाध भक्ति पैदा हो जायेगी ।

सत् इच्छा पूरण होइब सारी । जेहि पढ़इब इहँ ग्रन्थ विचारी ॥
सरल सुगम इहँ महापंथा । सहजइ होइब संशय अंता ॥

व्याख्या - जो इस ग्रन्थ को विचार कर पढ़ेंगे, उनकी सात्विक इच्छाएँ सब पूर्ण होगीं । यह सरल व सुगम महापंथ है । सहज में ही समस्त संशयों का अन्त हो जायेगा ।

दो०- अबिरल भगति ग्यान विवेक सब मिलइब सहज उपाई ।
पढ़ि सुनि गुनि श्रद्धा करहिं तेहिं मिलहिं मोहि ते आई ॥ ६॥

व्याख्या - इस ग्रन्थ के पढ़ने से अविरल भक्ति, ज्ञान व विवेक सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं तथा जो पढ़ कर, सुन कर व मनन करके श्रद्धा रखते हैं, वे मुझ परमात्मा को प्राप्त कर लेगें ।

धन्य प्रभु मैं दास तुम्हारा । कृपा तुम्हार सोइ मोर सहारा ॥
तुम्हहिं छाड़ि नहिं दूसर कोई । भजहिं तुम्हहिं तुम्हहिं होई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप धन्य हैं । मैं तो आपका दास हूँ और आपकी कृपा ही मेरा सहारा है । आपको छोड़कर प्रभु मेरा कोई नहीं है । जो आपको भजते हैं, वे आपको ही प्राप्त हो जाते हैं ।

ग्यान विवेक हियँ नहिं मोरे । सकल लिखहउँ प्रेरणा तोरे ॥
सत्य असत्य नहिं किछु ग्याना । तुम्हीं भए सहाय कृपा निधाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे हृदय में ज्ञान-विवेक कुछ नहीं है । बस मैं तो आपकी प्रेरणा से ही लिख रहा हूँ । मुझे सत्य-असत्य का ज्ञान नहीं है । हे प्रभु ! मेरे तो आप ही सहाय हैं ।

कृपा करि मोहि दीन्ह बढ़ाई । सत्य इहँ सब तुम्हहिं लिखाई ॥
संशय न करउ जगत निवासी । सकल कर्ता एक अविनासी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपने तो कृपा करके मुझे यश दिया है । परन्तु सत्य तो यह है कि आपने जो लिखवाया है, मैंने तो वही लिखा है । हे जगत के लोगो ! आप संदेह मत करना, क्योंकि सब कुछ करने वाले तो एक ही अविनाशी परमात्मा हैं ।

सत्य कहुँ नहिं मोर बड़ाई । लिखा वही जेहि प्रभु लिखाई ॥
मोर गुणावगुण करउ न चर्चा । ग्रन्थ इहँ बरषाइब प्रभु कृपा॥

व्याख्या - मैं सत्य कह रहा हूँ कि मेरी इसमें कोई बड़ाई नहीं है क्योंकि मैंने तो वही लिखा है,जो प्रभु ने मुझसे लिखवाया है । इसलिए मेरे गुण व अवगुणों की चर्चा मत करना । क्योंकि यह ग्रन्थ ही प्रभु की कृपा बरसाने वाला है ।

छ०- जय जय प्रभु सर्व व्यापकम् । अजं अजेय प्रभु श्रेष्ठतरम् ॥
पूरनम् चराचर पालकम् । जय गुण धामम् भूत धारकम् ॥

व्याख्या - हे सर्व व्यापी प्रभु ! आपकी जय हो, जय हो । हे प्रभु ! आप अजय, अजन्मा और श्रेष्ठतम् हैं । आप पूर्ण और चराचर के पालन कर्ता हैं । हे गुणों के धाम व समस्त भूतों को धारण करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो ।

आनन्द घनं सहज सरूपम् । प्रेरणा रूपं सृष्टि संचालकम् ॥
सर्व सिद्धि दायकम् सुख मूलम् । जय दयालं नाशकं भवशूलं ॥

व्याख्या - हे आनन्द घन, सहज स्वरूप वाले, प्रेरणा के द्वारा सृष्टि का संचालन करने वाले, सब सिद्धियों को देने वाले, सुख के मूल, हे दयालु, भव सागर के कष्टों का निवारण करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो ।

उत्पत्ति पालन प्रलय कारकम् । एक रसम् सदा निर्विकारकम् ॥
जय सर्व देवम् जय सर्वस्वं । शब्द ब्रह्म त्वम् बीज ब्रह्म त्वम् ॥

व्याख्या - उत्पत्ति, पालन व प्रलय के कारण, एकरस व सदा निर्विकार रहने वाले, आप ही शब्द-ब्रह्म हैं और आप ही बीज-ब्रह्म हैं । हे सबके देव ! आपकी जय हो, हे सर्वस्व प्रभु ! आपकी जय हो।

अखण्डम् ब्रह्मानन्द स्वरूपम् । समतामूलम् सत्य सनातनम् ॥
नाम अनेकं अनाम निरंजनम् । मुक्ति धामम् जय नारायणम् ॥

व्याख्या - हे अखण्ड, ब्रह्मानन्द स्वरूप, समता के मूल, सनातन, आपके नाम अनेक हैं और बिना नाम के निरञ्जन हैं । हे मुक्ति के धाम, नर को घर बना कर रहने वाले प्रभु नारायण ! आपकी जय हो ।

नर धड़कनम् हृदय वासितम् । प्राण रूपम् सर्व घट व्यापकं ॥
सोइ नारायणं नाम रहस्यम् । जय परमानन्दम् परमम् ॥

व्याख्या - नर की धड़कन के रूप में हृदय में निवास करने वाले, प्राण रूप में सर्व व्यापी ! प्रभु यही आपके नारायण नाम का रहस्य है । हे परमानन्द, परम प्रभु ! आपकी जय हो ।

त्रिगुणमयं जगतं मन विलासं । पुरुष प्रकृति पारम त्वम सत्यं ॥
जप तपादि क्रियाः ग्यान साधनम् । श्वास सुरति साधना मूलम् ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! यह तीन गुणों से युक्त संसार मन का विलास मात्र है। आप तो प्रभु पुरुष और प्रकृति दोनों से परे सत्य स्वरूप हैं। जप, तप आदि की क्रियाएँ ज्ञान प्राप्त करने के साधन हैं, परन्तु श्वास की अनुभूति करना ही साधना का मूल है।

जय भक्त वत्सलं त्रिताप हरणं। जय प्रभु शरणागत रक्षकम् ॥
जय माया पारं जय माया पतिम्। अहम् त्वमेव शरणम् शरणम् ॥

व्याख्या - हे भक्त व त्सल भगवान ! आपकी जय हो, हे त्रितापों को दूर करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे शरणागतों की रक्षा करने वाले प्रभु ! आपकी जय हो। हे माया से परे प्रभु ! आपकी जय हो, हे माया के स्वामी ! आपकी जय हो। हे प्रभु ! मैं तो आपकी शरण में हूँ, शरण में हूँ।

दो०- तुम दयाल कृपाल अति मैं कपटी कुटिल अग्यान।
अब चावहउँ शरण तिहारी करहु प्रभु मोर कल्यान ॥ ७ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप तो बहुत दयालु व कृपा करने वाले हैं और मैं तो कपटी, कुटिल और अज्ञानी हूँ। परन्तु मैं अब सब प्रकार से आपकी शरण में आना चाहता हूँ, इसलिए प्रभु ! अब मेरा कल्याण कीजिए।

विप्र बदति मति अनुसारा। तुम्हीं नाथ सब जग आधारा ॥
व्यापक सर्वत्र एक समाना। भाव अनुहार नाम रूप नाना ॥

व्याख्या - विद्वान लोग तो अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करते हैं। परन्तु नाथ आप तो समस्त संसार के आधार हैं। आप तो प्रभु ! सब जगह समान रूप से व्यापक रहते हैं। आपके भावों के अनुसार ही नाना रूप व नाना नाम हैं।

तुम्हीं स्तुति स्तुत्य भगवाना। जीव सकल तुमार सन्ताना ॥
भाव बन्धन जीव दुःख पाई। सोइ कहउ नाथ सुख उपाई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप ही स्तुति और स्तुत्य है तथा समस्त जीव आपकी ही सन्तान हैं। भावों के बन्धन में पड़ कर जीव दुःख पाते हैं। इसलिए प्रभु ! सुख प्राप्ति का उपाय बताइये।

सुन सुत जुगति सुख दायक। जीव निजहिं सुख दुःख कारक ॥
ग्यान अज्ञान मान अपमाना। सकल जानि मन खेल सुजाना ॥

व्याख्या - हे वत्स ! सुख देने वाला उपाय बताता हूँ, सुनो। जीव स्वयं ही सुख-दुःख का कारण होता है। मान, अपमान, ज्ञान, अज्ञान ये सब मन के खेल हैं।

मन इच्छा मन ही उपजाई। इहँ देह नश्वर हय सदाई ॥
सो इहँ दृढ़ करि मन माहि। तजि सब भाव शरण मोरी आहि॥

व्याख्या - मन की इच्छाएँ मन से ही पैदा होती हैं तथा यह शरीर तो सदा

नाशवान है। इसलिए यह अपने मन में दृढ़ करके, जो सब भावों को छोड़ कर मेरी शरण में आते हैं।

तिन्हहिं करउँ निहाल सुजाना। रखहउँ ख्याल निज सन्ताना ॥
शरण मोर सकल फल दाई। नहिं भेद तहँ लोग लुगाई ॥

व्याख्या - उनको मैं निहाल कर देता हूँ और निज सन्तान मान कर उनका सदा खयाल रखता हूँ। मेरी शरण ही सब फल देने वाली होती है। जिसके लिए स्त्री-पुरुष किसी का कोई भेद-भाव नहीं होता है।

दो०- शरण आवइ सोइ पावइ इहँ ते किछु संशय नाय।
धर्म अर्थ काम मोच्छ मिलै सहजहि कर्म बन्ध कटाय ॥ ८ ॥

व्याख्या - जो मेरी शरण में आते हैं, वे सब कुछ पाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। उनको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है तथा सहज में ही कर्म के बन्धन कट जाते हैं।

काह मारग नाथ शरण तुमारी। सो कहउ सुगम सरल विचारी ॥
सुन सुत शरण मारग अनेका। ध्यान ग्यान भगति विवेका ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपकी शरण में आने का रास्ता क्या है ? कृपा करके सरल व सुगम रास्ता बताइए। हे वत्स ! मेरी शरण में आने के ध्यान, ज्ञान, भक्ति व विवेक रूपी अनेक मार्ग हैं।

जप तप संयम नियम नाना। इहँ सब साधन विप्र बखाना ॥
पर ऐ सब साघत कठिनाई। सो तोहि कहुँ अति सरल उपाई ॥

व्याख्या - जप, तप, संयम, नियम आदि मार्ग भी विद्वान लोगों ने बताये हैं। परन्तु ये सब मार्ग साधने में कठिन होते हैं, इसलिए मैं तुम्हें सरल उपाय बताता हूँ।

समरप सम नहिं मारग दूजा। नहिं दरकार जप तप पूजा ॥
करि समरप श्वास संभारहिं। तेहि क्षण कृपा जीव मोरी पावहिं ॥

व्याख्या - समर्पण के समान दूसरा कोई रास्ता नहीं होता है। क्योंकि समर्पण करने पर जप, तप व पूजा किसी की भी आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए जो समर्पण करके अपनी श्वास को निहारते हैं, वे जीव तुरन्त मेरी कृपा प्राप्त कर लेते हैं।

भल मन्द तब नहिं करूँ बिचारा। देखउँ भाव करहुँ उपकारा ॥
जाति-पाँति तहँ नहिं करूँ भेदा। आवहि शरण मिटावउँ खेदा ॥

व्याख्या - शरण में आने पर मैं भले-बुरे का विचार नहीं करता हूँ और जीव का भाव देख कर उपकार करता हूँ। मैं जाति-पाति का भी भेद नहीं करता हूँ। मैं तो शरण में आने वाले के कष्टों का निवारण कर देता हूँ।

दो०- श्वासा सोइ मोर श्रुति सब श्वासहि मोहि संग जुड़ाय ।
श्वासा निर्मल जे करहि सो ही जीव सहज आइ मिलाय ॥ ९ ॥

व्याख्या - श्वास ही मेरी सुरता है तथा श्वास के माध्यम से ही जीव मुझसे जुड़ता है। इसलिए जो श्वास को निर्मल कर लेते हैं, वे जीव सहज में ही मुझसे आकर मिल जाते हैं ।

प्राणमय हय सकल संसारा। जड़ चेतन जीव चराचर सारा ॥
प्राण डोर जुरहहिं मोरे संगा। तिन्ह हियँ रहइ प्रीति अभंगा ॥

व्याख्या - यह समस्त संसार जड़, चेतन व समस्त चराचर प्राणमय है। इसलिए प्राण डोर से मेरे साथ जो जुड़ जाते हैं, उनके हृदय में अटूट प्रेम पैदा हो जाता है ।

अकथ अगाध नाम अनन्ता। होइब लाभ इहँ सब भनन्ता ॥
पर कहउँ अति सरल उपाई। नाना साधन तहँ नहिं दरकाई ॥

व्याख्या - मुझ अकथनीय, अगाध के अनन्त नाम हैं। जिनका बखान करने पर लाभ होता है। परन्तु मैं तुम्हें अति सरल उपाय बताता हूँ। जहाँ पर किसी भी प्रकार के साधनों की जरुरत नहीं है ।

करि समरप करहि विश्वासा। तिन्ह हियँ करूँ सहज प्रकासा ॥
रथी बनि मैं होउँ संचालक। सब विधि बनहउँ प्रति पालक ॥

व्याख्या - जो समर्पण करके मेरा विश्वास करते हैं, उनके हृदय में मैं सहज प्रकाश कर देता हूँ और मैं स्वयं जीव का रथी बन कर संचालन करने लगता हूँ और सब प्रकार से पालन करता हूँ ।

शरणागत बनहि शरणदाता। इहँ सत मोर विधि विधान ताता ॥
सब तजि जे मोहि ध्यावहिं ताता। तिन्ह नहिं ब्यापहहिं संतापा ॥

व्याख्या - मेरी शरण में आने वाला भी दूसरों को शरण देने वाला बन जाता है, यह मेरी विधि का सत्य विधान है। जो सब कुछ छोड़ कर मुझे चाहते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं होता है ।

दो०- मोर शरण सोइ निर्वाण सुत अशरण सोइ माया जाल ।
मोहि तजि जे माया फँसहि तिन्हहिं जान बुद्धि कंगाल ॥ १० ॥

व्याख्या - मेरी शरण में आना ही निर्वाण है तथा मुझसे दूर रहना ही माया का जाल है। इसलिए जो लोग मुझे छोड़ कर माया में फँसते हैं, उन्हें अल्प बुद्धि जानना चाहिए।

धन्य अनन्त धन्य गुणागारी। धन्य सर्वस्व धन्य असुरारी ॥
जब लगि मन बुद्धि उलझावन। तब लगि तुम करहिं खिलावन ॥

व्याख्या - हे अनन्त ! आप धन्य हैं। हे गुणों के घर ! आप धन्य हैं। हे सर्वस्व! आप

धन्य हैं। हे असुरारि ! आप धन्य हैं। जब तक मन और बुद्धि की उलझन रहती है, तब तक आप जीव के साथ खेल खेलते रहते हैं।

बिनु कृपा खुलइ नहिं ग्रन्थी। सोइ भरमित जीव जग पन्थी ॥
तुम समान तुम्हहिं भगवाना। मोर मन इहँ अब भल माना ॥

व्याख्या - बिना आपकी कृपा के बन्धन की ग्रन्थि नहीं खुल पाती है। इसलिए जगत रूपी राह में जीव भटकता रहता है। हे भगवन् ! आपके समान तो आप ही हैं। अब मेरे मन ने यह अच्छी प्रकार से मान लिया है।

सो नाथ आवउँ अब शरणाई। करउ कृपा अपराध भुलाई ॥
विषय वासना सब बन्धनकारी। बस शरण तुम्हार सुखकारी ॥

व्याख्या - इसलिए हे प्रभु ! मैं अब आपकी शरण में आता हूँ, आप मेरे सब अपराधों को भूला कर मुझ पर कृपा कर दीजिए। विषय-वासनाएँ तो सब बन्धनकारी होती हैं। केवल आपकी शरण ही सुख देने वाली है।

सोइ नाथ कृपा मोहि पर कीजै। निज दास जानि अभय पद दीजै ॥
गुरु बनि चलावउ मोहि नाथा। बाँधउ प्राण डोर तुमरे साथा ॥

व्याख्या - इसलिए प्रभु ! मुझ पर कृपा कीजिए और आपका दास मान कर अभय पद दीजिए। हे प्रभु ! आप गुरु बन कर मेरा मार्ग दर्शन कीजिए और प्राणों की डोर से सदा आपके साथ बाँध लीजिए।

दो०- निमिष निमिष सुमिरण करूँ निसि दिवस सब काल।
ऐसी कृपा मोहि पर करहु जगत पति दीन दयाल ॥ ११ ॥

व्याख्या - हे जगतपति, हे दीन दयाल ! मैं क्षण-क्षण, रात-दिन और सब समय आपका स्मरण करूँ, ऐसी कृपा मुझ पर कीजिए।

सुत तुम मोर चरण अनुरागी। धन्य तोर हियँ प्रीति जो जागी ॥
होइब पूर्ण अभिलाष तुम्हारी। सुन इहँ सत्य आशीष हमारी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हें मेरे चरणों में अनुराग है। इसलिए तुम धन्य हो। तुम्हारी मेरे प्रति जो प्रीत है, वह भी धन्य है। तुम्हारी मेरी शरण में आने की अभिलाषा पूर्ण होगी, यह मेरा सत्य आशीर्वाद है।

मोर भगति बसइब हियँ तोरे। प्रीति प्रेम तुम्हीं मोहि संग जोरे ॥
शास्त्र सकल आइब हियँ तोरे। जन जन समझाइब कृपा मोरे ॥

व्याख्या - मेरी भक्ति तुम्हारे हृदय में बसेगी तथा प्रीत और प्रेम के भाव तुम्हें मुझसे जोड़ देंगे। समस्त शास्त्र तुम्हारे हृदय में समझ आ जायेंगे तथा तुम मेरी कृपा से जन साधारण को समझाओगे।

विषय वासना अब नहिं सतावै । भोगउ भोग तउ नहिं बँध परावै ॥
हियँ तुम्हार करहुँ निवासा । सिद्धि सकल पावइ अनयासा ॥

व्याख्या - वत्स ! अब तुमको विषय-वासनाएँ नहीं सतायेंगी और भोग भोगने पर भी भोगों का बन्धन नहीं पड़ेगा । मैं तुम्हारे हृदय में निवास करूँगा और तुम अनायास ही समस्त सिद्धियों को प्राप्त करोगे ।

बिनु प्रयास परम पद पाइब । अन्तः काल मोहि आइ मिलाइब ॥
जीवन मरण होइब मुक्ति । जन जन सिखाव जोग जुगति ॥

व्याख्या - बिना प्रयास के ही तुमको परम पद की प्राप्ति हो जायेगी तथा अन्तकाल में मुझसे आकर मिल जाओगे । तुम जीवन-मरण से मुक्त हो जाओगे । अतः अब जन-जन को योग के उपाय बताओ ।

दो०- जोग सिखा उपदेश कर तोर संग संग मैं रहाउँ ।
सुनि गुनि अनुसरहिं जे तिन्हहिं अघ मुक्त कराउँ ॥ १२ ॥

व्याख्या - हे व त्स ! तुम योग सिखाओ और उपदेश दो, मैं तुम्हारे साथ-साथ रहूँगा । जो लोग सुन और गुनन कर के अनुसरण करेंगे, मैं उनको समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा ।

छ०- धन्य-धन्य प्रभु कृपा करि मोर सकल भव बंधन काट दियो ।
डूबत रह्यो जाई मैं आपहि कर गहहि प्रभु मोहि उभार लियो ॥
क्षमा करइब मोर अपराध निज सुत जानि कबहुन प्रभु तजियो ।
मन बच कर्म रहउँ तोरी शरण इहँ इच्छा मोर नाथ पूर्ण करियो ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप धन्य हैं कि आपने कृपा करके मेरे सब भव बन्धन काट दिये । मैं तो विषय रूपी सागर में डूबता जा रहा था परन्तु आपने ही मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बचा लिया । हे प्रभु ! मेरे अपराध क्षमा करना और मुझे आपका ही पुत्र जान कर कभी त्याग मत करना । हे प्रभु ! मैं मन, वचन व कर्म से आपकी शरण में रहूँ, मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर दीजिए ।

छ० - प्रभु तुम पूरण काम परम धाम इहँ अब मन मेरो मान लियो ।
झूँठा जग झूँठ विषय सुख मन निजहहिं निज समझ रहयो ॥
ज्योंहि जपहिं नाम सुधरहिं काम अब मन सहज विश्राम पाई गयो ।
तजि विषय रस भगति रस पग मन शरण तिहारी चाहइ रह्यो ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप पूर्ण काम व आप ही परम धाम हैं । अब यह मेरे मन ने मान लिया है । यह संसार झूठा है तथा विषयों का सुख भी झूठा है । इस बात को अब मन ही मन को समझा रहा है। जैसे-जैसे आपका नाम जपते हैं, त्यों-त्यों

कार्य सुधर गये हैं। जिससे मन को शान्ति मिल गयी है । इसलिए अब मेरा मन विषय रस को छोड़ भक्ति-रस पीकर आपकी शरण चाहता है ।

दो०- डूबत मैं जाइ रह्यो गुरु लियेउ मोहि बचाय ।
विषय नीर अगाध अति मोहि न मिलती थाय ॥ १३ ॥

व्याख्या - मुझे तो गुरुदेव ने बचा लिया वरना मैं तो विषय रूपी अथाह जल में डूबता जा रहा था । अगर गुरुदेव नहीं बचाते, तो मुझे थाह ही नहीं मिलती ।

धन्य भाग्य सतुगुरु पाई । सरल सुगम मोहि राह दिखाई ॥
सुख वैभव पदारथ चारी । गुरु भगत सहज अधिकारी ॥

व्याख्या - मेरा भाग्य धन्य है कि मुझे सतगुरु मिल गये । जिन्होंने मुझे बहुत ही सरल व सुगम रास्ता दिखा दिया । सुख, वैभव, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों को प्राप्त करना, गुरु भक्त का सहज अधिकार होता है ।

इहँ अनुभव कीन्ह अपारा । पायउँ सकल मैं कृपा प्रसारा ॥
विषय जाल मैं परयो फँसाई । धन्य देव आपुन लीन्ह बचाई ॥

व्याख्या - मैंने गुरु कृपा का बहुत अनुभव किया है और गुरु की कृपा से ही मैंने सब कुछ पाया है । मैं तो विषय रूपी जाल में फँसा जा रहा था, परन्तु धन्य गुरुदेव, आपने ही मुझे बचा लिया ।

काम क्रोध मद मत्सर लोभा । करहिं नहिं अब मम मन क्षोभा ॥
इहँ फल नाथ कृपा तुम्हारी । कहउँ इहँ अनुभव विचारी ॥

व्याख्या - काम, क्रोध, मद, मत्सर व लोभ आदि के भाव अब मेरे मन में क्षोभ पैदा नहीं करते हैं । यह गुरुदेव आपकी कृपा का ही प्रभाव है । यह मैं मेरे अनुभव से कह रहा हूँ ।

अब मन हरि चरणन लागा । कृपा तुम्हार भाग्य मोर जागा ॥
हियँ उठहहिं ग्यान हिलोरा । विषय विमुख भयउ मन मोरा ॥

व्याख्या - हे गुरुदेव ! आपकी कृपा से मेरा भाग्य जाग उठा है और मेरा मन परमात्मा के चरणों में लग गया है । मेरे हृदय में ज्ञान की लहरें उठ रही हैं तथा मेरा मन विषयों से विमुख हो गया है ।

दो०- ग्यान अमृत पिलाई करि विषय विष दियो मिटाय ।
बलिहारी गुरु आपकी हरि प्रगट्यो निज आय ॥ १४ ॥

व्याख्या - हे गुरुदेव ! मैं आपका आभारी हूँ कि आपने ज्ञान रूपी अमृत पिलाकर विषय रूपी जहर को मिटा दिया, जिससे परमात्मा स्वयं प्रकट हो गये ।

ग्यान मणि मोहि दीन बताई। सकउँ देखि हियँ मोर गुँसाई ॥
बिनु घृत बाती करइ उजियारा। पायउँ सहजहि हरि दीदारा ॥

व्याख्या - आपने मुझे ज्ञान रूपी मणि दे दी है, जिससे मैं मेरे हृदय में स्थित परमात्मा को देख पाता हूँ। यह ज्ञान रूपी मणि बिना घी और बाती के ही प्रकाश करने वाली है । जिससे सहज में परमात्मा दिखाई पड़ जाते हैं।

विषय वासना अन्धकार मिटाई। दिन दिन बढ़त प्रकाश सदाई ॥
भगति कमल खिला हियँ माहिं। मन भ्रमर तहाँ रहा लुभाहिं ॥

व्याख्या - ज्ञान रूपी मणि ने विषय वासना रूपी अन्धकार को मिटा दिया है और दिन-प्रतिदिन इस मणि का प्रकाश बढ़ता ही रहता है। भक्ति रूपी कमल मेरे हृदय में खिल गया है, जहाँ पर मन रूपी भँवरा रमण करने लगा है।

अमृत रस बनि बरसइ पानी। वासना ज्वासा नित होवइ हानी ॥
बिरख बिराग रहा लहलाई। ताहि छाँह जीव आनन्द पाई ॥

व्याख्या - अमृत रूपी वर्षा होने लगी है, जिससे वासना रूपी ज्वासा नष्ट होने लग गये हैं । अब वैराग्य रूपी पौधा लहराने लगा है, जिसकी छाया में जीव को आनन्द मिलने लगा है ।

चहुँदिसि चलइ मुक्ति वाता। राम रहहहिं मन दिनु राता ॥
मन मगन करइ अमृत पाना। धन्य गुरुदेव कृपा निधाना ॥

व्याख्या - चारों तरफ मुक्ति रूपी हवा चलने लग गयी है तथा मन रात दिन राम नाम में रम गया है । अब मन मगन हो कर अमृत रस पीने में लग गया है। हे गुरुदेव ! आप धन्य हैं । हे कृपानिधान! आप धन्य हैं।

दो०- सच्चा गुरु ना मिलिया तिन्ह के फूटे जानि कपाल ।
ग्यान भगति मणि छाड़ि परहिं मूढ़ विषयन जाल ॥ १५ ॥

व्याख्या - जिनको सत्गुरु नहीं मिला है, उनके भाग्य को फूटा हुआ मानना चाहिए। क्योंकि वे लोग ज्ञान व भक्ति रूपी मणि को छोड़ कर विषयों रूपी जाल में पड़ जाते हैं ।

लालच वश करे गुरु सेवकाई। तिन्ह हियँ कि ग्यान उपजाई ॥
निर्मल मन विषय नहिं आसा। तबहिं होइ हियँ ग्यान उजासा ॥

व्याख्या - जो लालच के कारण गुरु बनाते हैं, उनके हृदय में ज्ञान नहीं हो पाता है । जब मन निर्मल होता है तथा मन में आशाएँ नहीं होती हैं, तभी हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है ।

साधक गुरु महिमा कम नहिं भाई । अन्तः गुरु सहजहिं देइ मिलाई ॥
देइ नाम शब्द दिसा दिखावई । कुपथ छाड़ि सुपथ चलावई ॥

व्याख्या - साधक गुरु की महिमा कम नहीं होती है । क्योंकि साधक गुरु सरलता से अन्तःकरण के गुरु से मिला देते हैं । वह नाम रूपी शब्द देकर दिशा बता देते हैं और बुरे रास्ते को छुड़ा कर अच्छे रास्ते पर चलाते हैं।

जेहि गुरु परम रहइ समाई । तिन्ह अरु हरि भेद किछु नाई ॥
गुरु महिमा नहिं जाइ बखानी । जेहि जाना सोइ निज हियँ जानी ॥

व्याख्या - जो गुरु परम में लीन रहते हैं, उनमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं होता है । गुरु की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योंकि गुरु की महिमा को जिसने भी जाना है, उसने स्वयं के हृदय में ही जाना है।

गुरु वचन जो होइ हिय प्रीति । पावहिं सकल विधि इहँ रीति ॥
श्रद्धा रहित मन बहु कुटिलाई । मिलइ न सिद्धि सपनेउ भाई ॥

व्याख्या - गुरु के वचनों पर विश्वास होने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यह विधि का विधान है । परन्तु जिनके मन में कुटिलता होती है और श्रद्धा नहीं होती है, उनको सपने में भी अभिष्ट की प्राप्ति नहीं होती है ।

दो०- गुरु अन्धरा शिष्य बहरा करै विषयन को व्यापार ।
काम, क्रोधादि मग चलहि तिन्हहिं न मिलै करतार ॥ १६ ॥

व्याख्या - जो गुरु अन्धा व शिष्य बहरा होता है और विषय रूपी व्यापार करते हैं तथा काम, क्रोध, मद, लोभ रूपी रास्ते पर चलते हैं, उनको कभी भी परमपिता नहीं मिलते हैं ।

स्वारथ खेल खेलहिं खेला । परहिं नरक गुरु अरु चेला ।
पल पल उभय भय सताई । कहीं न होइ प्रकट कुटलाई ॥

व्याख्या - जो स्वार्थ का खेल खेलते हैं, वे दोनों गुरु और चेला चिन्ता रूपी नरक में पड़ते हैं तथा क्षण-क्षण उनको भय सताता रहता है कि कहीं कपट प्रकट न हो जाये।

गुरु पाखण्डी कह मधुर वाणी । विषय रस भीगी जाइ न जाणी ॥
निसि दिवस उभय जुगत बनाई । केहि विधि सकइ धन कमाई ॥

व्याख्या - पाखण्डी गुरु विषय रस में भीगी हुई बहुत मीठी वाणी बोलते हैं। जिसे जानना बहुत कठिन होता है । पाखण्डी गुरु व चेला दोनों धन कमाने की युक्ति खोजते रहते हैं ।

निज नहिं जानइ निज भेदा। तब कैसे कटहहिं भव खेदा ॥
हरि विमुख विषय प्रिय जेहि। सपनेउ सुख लाभ न लेहि ॥

व्याख्या - जब स्वयं ही स्वयं के मर्म को नहीं जानते हैं, तब भाव रूपी कष्टों से कैसे मुक्त हो सकते हैं ? जो परमात्मा से विमुख रहते हैं और विषयों को चाहते हैं, उनको सपने में भी लाभ नहीं हो सकता ।

मन जंजाल फँसहि अनयासा। परहिं माया बन्धन पासा ॥
दुःख चिन्ता बहुरि सताई। बिरथा भरम जन्म गवाँई ॥

व्याख्या - ऐसे लोग अचानक ही मन के बनाए हुए जाल में फँस जाते हैं । जिससे माया का बन्धन पड़ जाता है । उनको दुःख व चिन्ता बहुत सताते हैं तथा वे भ्रमित होकर ही जीवन खो देते हैं ।

दो०- जग की कहता जगी भया निजहहिं निज गयउ भूल ।
काम क्रोध मदादि बेड़ी परी चुभ रह्यो भव त्रिशूल ॥ १७ ॥

व्याख्या - जग की चर्चा करते-करते जीव संसारी ही बन जाता है तथा जीव स्वयं को भूल जाता है। जिसके कारण काम, क्रोध, मद, लोभ आदि की बेड़ियाँ पड़ जाती हैं, जिससे भाव रूपी त्रिशूल कष्ट देने लगता है ।

सत रज तम जानि त्रिगुण धारा। तहाँ पावइ माया विस्तारा ॥
मन माया माया ही मन भाई। सतगुरु इहँ मरम सिखाई ॥

व्याख्या - सत, रज व तमों गुणों की त्रिगुणी धारा बहती है, जहाँ से माया विस्तार प्राप्त करती है। सतगुरु देव ने रहस्य बताया है कि मन ही माया होता है और माया ही मन होती है ।

निज हियँ माया जाइ चीन्ही। माया सकल जगत दुःख दीन्ही ॥
मन जानइ मिटहिं विकारा। मन ही रोग मन ही उपचारा ॥

व्याख्या - स्वयं के हृदय में ही माया जानने में आती है । ये माया ही समस्त संसार को दुःख देती है । मन को जान लेने पर सब विकार मिट जाते हैं। क्योंकि मन ही रोग होता है और मन ही औषधि होता है ।

मन बाहिर जगत किछु नाई। ऋषि मुनि निज अनुभव बताई ॥
गुरु कृपा मन परै पहिचानी। मन ही भल मन्द गुण खानी ॥

व्याख्या - मन के बाहर संसार में कुछ भी नहीं है। ऋषि-मुनियों ने भी अपना यही अनुभव बताया है। गुरु की कृपा से ही मन जानने में आता है। क्योंकि मन ही अच्छे-बुरे सब गुणों की खान होता है ।

भाव अनुहार रूप मन धारी । मन ही मोच्छ मन ही संसारी ॥
मन विषयी मन ही बिरागी । बरतहिं गुण जेहि प्रीत लागी ॥

व्याख्या - भावों के अनुसार मन रूप धारण कर लेता है, इसलिए मन ही मोक्ष होता है और मन ही माया होता है । मन ही विषयों में रमण करता है और मन ही वैराग्य पैदा करता है । जो गुण प्रीत करता है, मन उसी के अनुसार बरतने लग जाता है ।

दो०- मन निर्मल मन विकारी हय मन चोर मन ही साहूकार ।
मन चिन्ता मन ही शान्ति मन ही जगत मन ही करतार ॥ १८॥

व्याख्या - मन ही निर्मल व मन ही विकारों वाला होता है । मन ही चोर व मन ही साहूकार है । मन ही चिन्ता व मन ही शान्ति है तथा मन ही जगत है और मन ही परमात्मा होता है ।

विषय चिन्तन वासना बढ़ाई । जिमि अनल घृत बल पाई ॥
जस सोच तस होवइ विचारा । ताइ अनुरूप भासहिं संसारा ॥

व्याख्या - विषयों का चिन्तन करने से वासनाएँ बढ़ जाती हैं । जैसे घी पड़ने पर अग्नि बलवती हो जाती है । जैसा सोचा जाता है, वैसे ही विचार आ जाते हैं और जैसे विचार आयेगें, वैसा ही संसार आभासित होने लगता है ।

माया चादर जेहि लिपटाई । उरझ उरझ बहु उरझाई ॥
काम बस जीव बहु बिकलाई । होइ मदान्द समझ न पराई ॥

व्याख्या - माया की चादर में जो लिपट जाते हैं, वे उलझते ही चले जाते हैं तथा जीव काम के वशीभूत होकर बहुत व्याकुल हो उठता है। वह मद में अन्धा हो जाता है, परन्तु समझ नहीं पाता है ।

एहि भाँति देह काम आधीना । नित बाढ़त अभिलाष नवीना ॥
करहिं उपद्रव इच्छा भावा । नाना रूप धर धरहि नचावा ॥

व्याख्या - इस प्रकार शरीर भी काम के अधीन हो जाता है । जिससे नित्य नयी-नयी इच्छाएँ पैदा होती रहती हैं । इच्छाओं के भाव नाना उपद्रव करने लगते हैं तथा जीव को नाना रूप धारण कर नचाने लगते हैं ।

सुभ आचरण कतहुँ न होई । ग्यान ध्यान मानइ नहि कोई ॥
नहिं करहि जप तप ग्याना । सपनेउ बुझइ न वेद पुराना ॥

व्याख्या - उस अवस्था में कोई भी शुभ आचरण नहीं करते हैं तथा ध्यान व ज्ञान

को भी कोई नहीं मानते हैं। जप, तप व ज्ञान का प्रयास भी कोई नहीं करता है। वेद-पुराण तो सपने में भी समझने का प्रयास नहीं करते हैं।

दो०- बिषयन को व्यापार करै काम क्रोध बरकत होय ।
मद लोभ का घर बनाए कैसे कोउ सुख ते सोय ॥ १९ ॥

व्याख्या - विषयों का व्यवहार करने पर तो काम, क्रोध ही पैदा होते हैं। जो लोग मद-लोभ रूपी घर बनाते हैं, वे कैसे सुख से सो सकते हैं ?

वासना अनल जलहि भगति नीरा। भावी देखि चलइ भय समीरा ॥
करहि कर्म भाव अनुसारा। जीव असहाय देखि भाव आचारा ॥

व्याख्या - वासना रूपी अग्नि में भक्ति रूपी जल सूख जाता है तथा भावी को देखकर भय रूपी हवा चलने लगती है। जीव भावों के अनुसार कर्म करने लगता है तथा भावों के आचरण के आगे असहाय हो जाता है।

बरतमान भूलि भावी विचारी। शान्ति भंग होवइ इच्छाचारी ॥
मन बिकल मिलइ न टेका। मद लोभादि बाढ़हिं अविवेका ॥

व्याख्या - वर्तमान को भूल कर जीव भविष्य की चिन्ता करने लग जाता है। जिससे शान्ति भंग हो जाती है और जीव इच्छाचारी हो जाता है। जिससे मन व्याकुल हो उठता है और उसे कोई आधार नहीं मिल पाता है तथा मद, लोभ आदि का अविवेक बढ़ने लग जाता है।

नाना कर्म करहिं फल हेतु। परहिं बँध मिलइ न भव सेतु ॥
सुख हेतु कर्म सकल करहिं। उल्ट पर फल दुःख लहहिं ॥

व्याख्या - तब जीव नाना कर्म फल की इच्छा से करने लगता है। जिससे बन्धन बढ़ने लगता है और भावों से पार होने का रास्ता नहीं मिल पाता है। समस्त कर्म वह सुख के लिए करता है, परन्तु परिणाम में उल्टा दुःख ही मिलता है।

दान पुण्य करइ हेतु दिखावा। इच्छा परबल जीव अकुलावा ॥
छल छद्म द्वेष फँसहिं बहुताई। देह बिकल मन अकुलाई ॥

व्याख्या - जीव दान-पुण्य का दिखावा करने लगता है। परन्तु मन में फल की इच्छा प्रबल होने से जीव व्याकुल होता रहता है। जीव छल, छद्म, कटुता आदि में फँस जाता है। जिससे शरीर व्याकुल हो जाता है और मन अकुला उठता है।

दो०- काम क्रोध मद लोभ ते नासहि विशुद्ध प्रकाश ।
विषय जाल जीव परइ वासना करहहिं विलास ॥ २० ॥

व्याख्या - काम, क्रोध, मद, लोभ आदि से सहज ज्ञान का नाश हो जाता है

और जीव विषयों के जाल में पड़ जाता है। जिससे वासनाएँ खिलवाड़ करने लग जाती हैं।

करहिं कर्म दिन अरु राती। दम्भ प्रबल इच्छा मदमाती ॥
इच्छा सोइ भव बन्धन नाना। उपजावइ सो माया अग्याना ॥

व्याख्या - जीव रात-दिन कर्म करने में लग जाते हैं। जिससे दम्भ प्रबल हो उठता है और इच्छाएँ बलवती होने लगती हैं। इच्छाएँ ही भव बन्धन होती हैं। जिनसे माया सहित अज्ञान पैदा होता है।

फल इच्छा प्रारब्ध हय सोई। नचाव जीव निसि दिवस वोई ॥
पावहि फल प्रारब्ध अनुसारी। परबस जीव विपद अति भारी ॥

व्याख्या - फल की इच्छा ही प्रारब्ध का संस्कार बनती है। जो जीव को नाना नाच नचाती रहती है। जीव प्रारब्ध के अनुसार फल प्राप्त करता है। इस प्रकार जीव प्रारब्ध के अधीन होकर विपदा में पड़ जाता है।

जीतन चाहइ सकल संसारा। जीव परबस भयउ लाचारा।
भाव अधीन जीव तब भयउ। इच्छा जाल राह भरमउ ॥

व्याख्या - जीव के मन में तो समस्त जगत को जीत लेने की इच्छा रहती है। परन्तु पराधीन होकर जीव लाचार हो जाता है। जीव जब भावों के अधीन हो जाता है, तब इच्छाओं के जाल में पड़ कर रास्ता भूल जाता है।

इच्छा नाना वासना जननी। सोइ जानउ सब सुख हननी ॥
इच्छा प्रबल जीव दुःखदाई। त्रिगुणमय जाल जीव फँसाई ॥

व्याख्या - इच्छाओं से नाना प्रकार की कल्पनाएँ पैदा होती हैं तथा वासनाओं से सुख का हनन होता है। इच्छाएँ जब प्रबल होती हैं, तो दुःख देने वाली होती हैं और जीव इच्छाओं के त्रिगुणमय जाल में फँस जाता है।

दो०- वासना अति प्रबल जब हिलहिं भृकुटि बिलास।
चिंता बाढ़हि अति तब जानहउ मिटत उल्लास ॥ २१ ॥

व्याख्या - वासनाएँ जब बहुत प्रबल हो जाती हैं, तो ललाट पर बल पड़ने लग जाता है। जिससे चिंता बढ़ने लग जाती है तथा मन का उल्लास मिटने लग जाता है।

छ०- जप जोग बिरागा तप मख भागा भल लगहि नहिं कोई।
सत्य नित छिजहिं वासना रिझहिं भाव उलझ विकल जीव होई ॥
अस भ्रष्ट आचारा होवहि अपारा गो बिकल धरम तजहहिं।
वासना बहु विधि त्रासइ जीव सतावइ निगम पुराण कहहिं ॥

व्याख्या - उस अवस्था में जप, योग, वैराग्य, तप, यज्ञ आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता है तथा नित्य सत्य का ह्रास होने लगता है और वासनाएँ बढ़ने लगती हैं। जिससे जीव भावों में उलझ कर व्याकुल होने लगता है। इस प्रकार भ्रष्ट आचरण होने से इन्द्रियाँ व्याकुल होकर धर्म का त्याग कर देती हैं। इसलिए वेद-पुराण सब कहते हैं कि वासनाएँ बहुत प्रकार से जीव को कष्ट देती हैं।

इन्द्रियाँ विकल मन असहाई। तम प्रबल सत्व छिजाई ॥
मद कामादि खल जिनस अनेका। दुःखद भयंकर विगत विवेका ॥

व्याख्या - उस अवस्था में इन्द्रियाँ व्याकुल और मन असहाय हो जाता है। जिससे तमों गुण प्रबल हो उठता है तथा सतो गुण का नाश होने लग जाता है। काम, क्रोध, मद आदि भाव भयंकर दुख देने वाले होते हैं। जिससे विवेक भी मिट जाता है।

धरम रहित हिंसक सब पापी। बरनिन जाइ देह परितापी ॥
मद मत्सर काम लोभादि भावा। नाना भाँति जीव नाच नचावा ॥

व्याख्या - मद, मत्सर, काम, लोभ आदि के भाव जीव को नाना प्रकार से नाच नचाते हैं। ये सब भाव धर्म रहित व हिंसक होते हैं। शरीर को कष्ट देने वाले, इन भावों का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

बाढ़इ खल भाव चोर जुआरी। सदा चिंतन परधन पर नारी ॥
मानहिं नहिं मातु पितु गुरुदेवा। सब ते मूढ़ करवावहिं सेवा ॥

व्याख्या - जब तामसिक भाव चोरी, जुआ, परधन हरण, परायी स्त्री चिन्तन आदि बढ़ जाते हैं, तब मूर्ख लोग माता-पिता व गुरु को नहीं मानते हैं तथा इन सबसे स्वयं सेवा करवाते हैं।

सकल कर्म करहिं विपरीता। बिरथा दम्भ मन भयभीता ॥
तमस प्रबल अज्ञान उपजाई। विवश जीव भाव सिन्धु पराई ॥

व्याख्या - उस समय सब कर्म उल्टे होने लगते हैं तथा जीव व्यर्थ का दम्भ भरता रहता है। जबकि उसका मन भयभीत रहता है। जब तमोगुण प्रबल हो जाता है, तो अज्ञान पैदा हो जाता है, जिससे विवश होकर जीव भाव रूपी सागर में फँस जाता है।

दो०- बरनिन जाइ अनीति घोर जो तामस भाव प्रबलाय।
हिंसा होवइ प्रीति अति सत्य नहिं परइ दिखाय ॥ २२ ॥

व्याख्या - अगर तमो गुण प्रबल हो जाता है, तो उस अवस्था की अनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि तब हिंसा पर बहुत प्रीत होने लग

जाती है तथा सत्य दिखाई भी नहीं पड़ता है ।

मन गो बिकल संताप अति भारी । होइ विरक्ति देखि काम विकारी ॥
उपजइ तब हियँ ग्लानि भावा । विराग गाछ मन लगावन चावा ॥

व्याख्या - जब मन और इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं और घोर संताप में पड़ जाती हैं, तब काम को विकार युक्त जान कर विरक्ति होने लगती है । उस समय हृदय में ग्लानि का भाव आने लगता है तथा अब मन वैराग्य रूपी वृक्ष लगाना चाहने लगता है ।

भाव विराग लगहि अब नीका । गुरु मुखी होवइ मन जी का ॥
धरम अंकुरित होवन लागे । तब जानउ सोवत जीव जागे ॥

व्याख्या - अब वैराग्य का भाव अच्छा लगने लग जाता है तथा मन गुरुमुखी होने लगता है तथा अब धर्म का अंकुर फूटने लगता है । तब जान लेना चाहिए कि सोता हुआ जीव जाग उठा है ।

साधु संगति करइ उपकारा । विरागादि आवहिं भाव विचारा ॥
सुसंग लाभ कुसंगत हानी । वेद पुराण सकल इहँ बखानी ॥

व्याख्या - अब साधु संगति उपकार करने लगती है तथा वैराग्य आदि के अच्छे भाव आने लगते हैं । अच्छी संगत से लाभ होता है और बुरी संगत नुकसान करती है, इसको सभी वेद-पुराण कहते हैं ।

सुसंग सुखद कुसंग दुःखदाई । लोक वेद इहँ जानहिं सबाई ॥
गुरु प्रीत सुसंग राह दिखाई । धन्य तेहि इहँ राह चलाई ॥

व्याख्या - सुसंगत सुखद होती है तथा कुसंगत दुःख देने वाली होती है । इसको संसार में सभी लोग जानते हैं । गुरु के प्रति प्रेम सुसंगत का रास्ता दिखाता है, इसलिए जो गुरु से प्रीत करते हैं, वे धन्य हैं ।

ईश भजन सोई मार्ग सुसंगा । चहुँदिसि लाभ तन रहइ चंगा ॥
वासना ज्वासा वर्षा भजनाई । मिलहि शान्ति सहज उपाई ॥

व्याख्या - ईश्वर का भजन करना ही सुसंगत का मार्ग होता है । जिस पर चलने से चारों तरफ लाभ ही लाभ होता है और शरीर भी निरोगी रहता है । वासना रूपी ज्वासा होता है तथा ईश्वर का भजन वर्षा की तरह है, इसलिए भजन से तुरन्त शान्ति मिल जाती है ।

विगत वासना दुख न सताई । आनन्द मगन जीव सुख पाई ॥
भल मन्द उभय जग माहि । चिन्तइ सोइ जीव बन जाहि ॥

व्याख्या - जब वासनाएँ मिट जाती हैं, तो दुःख नहीं सताता है और जीव आनन्द मगन होकर सुख पाने लग जाता है। अच्छा-बुरा दोंनो ही संसार में होता है। अतः जीव जैसा चिन्तन करता है, वैसा ही बन जाता है।

दो०- सत्संग का व्यापार करो भगति मुनाफा होय ।
ग्यान का भवन बनाओ तहँ रह्यो आपा खोय ॥ २३ ॥

व्याख्या - इसलिए जीव को सत्संग रूपी व्यापार करना चाहिए। जिससे भक्ति रूपी लाभ प्राप्त हो सके तथा ज्ञान रूपी भवन बना कर, अहंकार छोड़ कर रहना चाहिए।

श्वासा सोइ मूल सब आशा। ताहि हेतु सकल जग भासा ॥
श्वासा पय श्रद्धा अनल समाना। मन्त्र जामिन प्राण घृत जाना ॥

व्याख्या - जीव का श्वास ही समस्त आशाओं का मूल होता है और श्वास के माध्यम से ही समस्त जगत का आभास होता है। श्वास दूध के समान और श्रद्धा दूध गर्म करने वाली अग्नि के समान तथा मन्त्र दूध में जामिन देने के समान है और प्राण तत्व ही घी के समान है।

सुरता लग्न सोइ बाति कपासा। आत्म दीप ग्यान प्रकासा ॥
विषय रस चलइ बतासा। सोइ निभावइ दीप अनयासा ॥

व्याख्या - सुरता रूपी लग्न ही रुई की बत्ती होती है तथा आत्मा रूपी दीपक है, जिससे ज्ञान रूपी प्रकाश होता है। विषयों रूपी हवा चलती रहती है, जो अचानक दीपक को बुझा सकती है।

सोई पण्डित ग्यानी कहाई। विषय बतास दीप लेइ बचाई ॥
विनय विवेक संतोष आचारा। करहिं ओट दीप बचावन हारा ॥

व्याख्या - वही पण्डित और ज्ञानी होता है, जो विषय रूपी हवा से दीपक को बचा लेता है। दीपक को बचाने वाला विनय, विवेक और संतोष का आचरण कर, विषय रूपी हवा से ओट कर लेता है।

ध्यान कपाट लगावहिं राखी। निभहिं न दीप सत्य मैं भाषी ॥
देवहु सकइ नहिं करि कुचाली। ईश कृपा करै दीप रखवाली ॥

व्याख्या - जो ध्यान रूपी किवाड़ लगा कर रखते हैं, उनका ज्ञान रूपी दीपक कोई नहीं बुझा सकता है। मैं सत्य बता रहा हूँ। देवता भी वहाँ कुचाल नहीं कर पाते हैं और परमात्मा की कृपा स्वयं दीपक की रक्षा करने लगती है।

दो०- ध्यान लगै मन मरा मन मरइ विषय मर जाइ ।
विषय मरइ विकार मिटै विगत विकार आनन्द आइ ॥ २४ ॥

व्याख्या - ध्यान लगने पर मन मर जाता है और मन के मरने पर विषय नहीं

रह पाते हैं और विषय नहीं रहने पर सब विकार मिट जाते हैं और विकार मिटने पर आनन्द आ जाता है ।

विगत विकार आइ अनुरागा । जानउ जीव कपाल तब जागा ॥
अनुरागी साधक अति बड़भागी । तरहिं भव ममता मद त्यागी ॥

व्याख्या - विकारों के मिट जाने पर अनुराग पैदा हो जाता है । तब जानना चाहिये कि जीव का भाग्य उदय हो गया है । अनुरागी साधक बहुत भाग्यशाली होता है । क्योंकि वह ममता, मद आदि को त्याग कर भाव रूपी भव सागर को पार कर जाता है ।

नित नव उमगहि भाव बिरागा । जिमि वर्षा ऋतु भरहिं तड़ागा ॥
नाना विधि मन भाव भजनाई । प्रभु खोजन आवहिं हियँ उपाई ॥

व्याख्या - नित्य प्रतिदिन वैराग्य का भाव उठने लगता है, जैसे वर्षा ऋतु में वर्षा से तालाब भरने लगते हैं । उस समय भजन के नाना भाव आने लगते हैं तथा परमात्मा को खोजने के उपाय मन में आने लगते हैं ।

जाके हृदय होवइ जैसी प्रीति । प्रभु मिलहिं पालहिं भाव रीति ॥
सब देस दिशा दस काल माहीं । नाना रूप धरि प्रभु प्रगटाहीं ॥

व्याख्या - जिसके मन में जैसी प्रीत का भाव रहता है, परमात्मा उसी भाव के अनुसार मिल जाते हैं । क्योंकि वे भाव की रीति का अनुसरण करते हैं । सब स्थान, काल व सब दिशाओं में नाना रूपों में एक ही परमात्मा प्रगट होते हैं ।

मन क्रम बचन छाडि चतुराई । भजहिं जेहि पावहिं रघुराई ॥
जप तप ध्यान साधन नाना । निज मति सब ऋषि मुनि बखाना ॥

व्याख्या - जो मन, वचन व कर्म की चतुराई को छोड़ कर परमात्मा को भजते हैं, उनको वे प्राप्त हो जाते हैं । सब ऋषि मुनियों ने बताया है कि जप, तप व ध्यान परमात्मा को प्राप्त करने के साधन हैं ।

दो०- परमपिता दीन दयाल अति अकारण सहज दयाल ।
सुनहु बन्धु जन भजन भल मिटहिं सकल जग जाल ॥ २५ ॥

व्याख्या - परमपिता तो बहुत दीन-दयालु और अकारण दया करने वाले हैं। इसलिए बन्धुओं भजन करना ही अच्छा है, जिससे संसार के सब जंजाल मिट जाते हैं ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण नवविंशति पड़ाव ॥

बरनिन सकै निगम पुराणा । जेहि जानहहिं अपनेउ जाना ॥
हरि बिमुख जतन कर कोही । भव बंधन मुक्ति सकै न होही ॥

व्याख्या - परमात्मा का वर्णन वेद-पुराण कोई नहीं कर सकते हैं । उसे तो

वे ही जान पाते हैं, जिन्होंने अपने आपको जाना है। हरि से विमुख होकर कोई कितना भी प्रयास करे, वह भाव रूपी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है।

सो भल आवइ हरि शरणाई। सहजहि भव बन्ध कट जाई ॥
भजहहिं हरि अनुभव होई। मति अनुरूप कहें सन्त सोई ॥

व्याख्या - इसलिए भगवान की शरण में आना ही अच्छा होता है। जिससे भाव रूपी बन्धन कट जाते हैं। भगवान के भजन करने से नाना प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। उन्हीं को सन्त जनों ने अपनी बुद्धि के अनुसार बताया है।

भजन प्रभाव ग्यान प्रगटाई। निज हियँ जग परइ बुझाई ॥
निज देह दिखहिं रूप अखण्डा। रोम रोम लगै कोटि ब्रह्माण्डा ॥

व्याख्या - प्रभु के भजन के प्रभाव से हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है, जिससे जीव को स्वयं के मन में ही जगत का रहस्य समझ में आ जाता है। स्वयं के शरीर में ही अखण्ड रूप दिखायी पड़ने लगता है तथा रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्माण्डों का आभास होने लगता है।

अगनित रवि ससि देह माहिं। बहु गिरि सरित सिन्धु समाहिं ॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाउ। सकल दिखाहिं जो सुना न काउ ॥

व्याख्या - अनगिनत सूर्य व चन्द्रमा शरीर में ही आभासित होते हैं। बहुत से पर्वत, नदियाँ व समुद्र भी शरीर में ही हैं। काल, कर्म व गुणों का ज्ञान व स्वभाव आदि भी शरीर में ही दिखाई पड़ता है, जो कभी सुना भी नहीं गया है।

विस्मयवंत लगहिं जग सारी। मति अनुरूप सन्त पुकारी ॥
हरि प्रेरणा बहु विधि समुझाई। अनुभव दुर्गम कहि न जाई ॥

व्याख्या - समस्त सृष्टि आश्चर्यजनक लगने लगती है। उसी अनुभूति को सन्तों ने अपनी मति के अनुसार बताया है। परमात्मा की प्रेरणा से बहुत प्रकार से सृष्टि समझ में आने लगती है, जिसका वर्णन करना बहुत कठिन है।

दो०- सोभा देह भवन की कोह कबि बरनै पार ।
सकल लोक देह बसै ब्रह्माण्ड बह अमृत धार ॥ २६ ॥

व्याख्या - शरीर रूपी घर की शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है क्योंकि इस देह में समस्त लोक समाहित रहते हैं और इसमें ही ब्रह्माण्ड अर्थात सिर से अमृत की धारा निकलती रहती है।

बहु भांति सजइ भाव फुलवारी। भल मन्द उभय प्रकारी ॥
अभिरुचि बृन्द तुरंग की नाई। बरन बरन बहु कहा न जाई ॥

व्याख्या - इस शरीर रूपी घर में अच्छे-बुरे भाव रूपी फुलवारी सजी रहती

है तथा अभिरुचि रूपी घोड़ों के समूह रहते हैं, जो नाना प्रकार के होते हैं। अतः उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

भाव सकल चंचल करनी। अकारण जरत देह धरनी ॥
गरजहिं भोग घंटा धुनि घोरा। इच्छा हय हिनन चहुँओरा ॥

व्याख्या - सब भावों की चंचल वृत्ति होती है, जिससे अकारण शरीर रूपी धरती जलती रहती है। इसमें भोग रुपी घण्टा बजता रहता है तथा इच्छा रूपी घोड़े हिनहिनाते रहते हैं।

बहु घुर्म्म रहिं भाव निसाना। निज पर करहहिं अनुमाना ॥
भाव चंचल मुनि मन बिचलाई। वासना देखि ग्यान बिसराई ॥

व्याख्या - भाव रूपी सेना उठती रहती है, जिससे अपने-पराये का आभास होता रहता है। भावों की चंचलता मुनियों के मन को भी विचलित कर देती है। क्योंकि वासना पैदा होने से ज्ञान विस्मृत हो जाता है।

देह भवन किमि जाई बखाना। मन बिमोहन रचेउ बिताना ॥
सुन्दर द्वार श्रवण देह माहीं। जस अपजस सुनि बिचलाहीं ॥

व्याख्या - शरीर रूपी घर का कैसे वर्णन किया जा सकता है ? क्योंकि इसका निर्माण तो मन को मोहित करने के लिए ही हुआ है। इसमें कान रूपी सुन्दर द्वार हैं, जो यश-अपयश की बातें सुन कर शरीर को विचलित कर देते हैं।

दो०- देह रचना अति दुस्तर बिरला समझइ कोय।
गुरु चरण रति रखहिं तिन्ह हियँ देह ग्यान होय ॥ २७ ॥

व्याख्या - शरीर की रचना बहुत कठिन होती है, जिसको कोई विरला ही जान पाता है। जो गुरु के चरणों में विश्वास रखते हैं, उनके हृदय में ही शरीर का ज्ञान पैदा हो पाता है।

गुरु जब करहिं हियँ प्रकासा। विद्या सब मिलहिं अनयासा ॥
विद्या विनय निपुण गुण शीला। करहिं कर्म सकल जिमि लीला ॥

व्याख्या - सत्गुरु जब हृदय में प्रकाश कर देते हैं, तो अचानक समस्त विद्याएँ आ जाती हैं तथा जीव विद्या, विनय, गुणों व शील में निपुण होकर समस्त कर्म ऐसे करता है, जैसे लीला कर रहा हो अर्थात पूरी अनासक्ति के साथ कर्म होना शुरू हो जाते हैं।

इच्छा मृग मारहहिं हियँ जानी। आनन्द मगन माया पहिचानी ॥
सहज सुभाव इन्द्रियन काजा। नहिं हरष विषाद किछु लाजा ॥

व्याख्या - वह जीव अब इच्छा रूपी हिरणों को हृदय में जान कर मारने लगता है,

तो माया पहचान में आ जाती है और तब आनन्द छा जाता है। समस्त इन्द्रियाँ सहज होकर कार्य करने लगती हैं। वहाँ कोई हर्ष-विषाद व लज्जा नहीं रहती है।

आनन्द रस साधक नहाए। भाव शान्त सहज सुहाए ॥
आनन्द गिरी सरित बह ग्याना। सुधा नीर साधक करहिं पाना ॥

व्याख्या - साधक उस समय आनन्द रूपी रस में नहाने लगता है तथा भाव शान्त हो जाते हैं, जिससे वह सहज हो जाता है। आनन्द रूपी पर्वत से ज्ञान रूपी नदी बहने लगती है, जिसके अमृतमय पानी को साधक पीने लगता है।

बनइ न बरनत देह निकाई। पुर रम्य गो वृन्द तहँ लुभाई ॥
सकल भाव विचित्र अँबारी। मनमय विधि स्वकर संवारी ॥

व्याख्या - शरीर रूपी घर का वर्णन नहीं किया जा सकता है। यह बहुत ही सुन्दर नगर है, जहाँ पर इन्द्रियाँ अपने समूह में रमण करती रहती हैं। यह समस्त भावों से बना हुआ विचित्र नगर है, जिसको मन ने अपनी स्वयं की विधि से सजाया है।

दो०- कबहुँ सत गुण निबिड़ तम कबहुँक राजस उछंग ।
बिनसइ उपजइ भाव सब जैसी पाइ कुसंग सुसंग ॥ २८ ॥

व्याख्या - कभी इस शरीर में सतो गुण पैदा हो जाता है, कभी तमो गुण का अन्धकार छा जाता है, तो कभी राजस गुण का उत्साह आ जाता है। सुसंगत व कुसंगत के अनुसार भावों का आना-जाना लगा रहता है।

इच्छा शान्त आनन्द अगाधा। विगत इच्छा नहिं कोउ बाधा ॥
विगत वासना लगहहिं कैसा। निर्गुण ब्रह्म अनुभवहिं जैसा ॥

व्याख्या - इच्छाएँ शान्त हो जाने पर अगाध आनन्द हो जाता है, जिससे समस्त बाधाएँ मिट जाती हैं। यह शरीर वासनाओं के मिट जाने पर निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति जैसा लगता है।

बहुरि इच्छा पिशाचनि रूपा। भोग त्रास दिखावहिं लोभ कूपा ॥
बहुरि वासना मनहुँ कृसानु। काल निसा सम यह सब जानु ॥

व्याख्या - बहुत सी इच्छाएँ तो पिशाचनी स्वभाव की होती हैं। जो भोगों की तृष्णा पैदा करके, लोभ रूपी कुआं दिखाती हैं तथा बहुत-सी वासनाएँ मन से भी सूक्ष्म होती हैं, उन सबको काल रात्रि के समान समझना चाहिए।

वासना बिपिन बहु रखवारे। काम क्रोध मद लोभ अपारे ।
वासना प्रीत कबहुँ नहिं कीजै। सकल तजि हरि शरण लीजै ॥

व्याख्या - वासना रुपी उपवन के काम, क्रोध, मद, लोभ रूपी बहुत से रक्षक

होते हैं। इसलिए वासनाओं से कभी प्रीत नहीं करनी चाहिए और सब छोड़ कर परमात्मा की शरण लेनी चाहिए।

हरि शरण मिटहिं सब बाधा। समझ इतेनउ नहिं किछु ज्यादा॥
बिनु हरि शरण संभव नहि छोहा। देखु विचारि त्यागि मद मोहा॥

व्याख्या - परमात्मा की शरण में जाने पर सब बाधाएँ मिट जाती हैं। बस इतना ही समझ लेना चाहिये, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। मद, मोह आदि को छोड़ कर, विचार करके देख लो कि बिना प्रभु की शरण में जाये कृपा प्राप्त नहीं होती है।

दो०- ते साधक धन्य अति रहहिं जेहि प्रभु ध्यान रत।
लहहिं परम विश्राम सहजइ काम क्रोधादि सब गत॥ २९॥

व्याख्या - वे साधक धन्य होते हैं, जो हमेशा परमात्मा का ध्यान करते रहते हैं। वे सहजता से ही परम विश्राम ले लेते हैं, जिससे उनके काम, क्रोध आदि भाव मिट जाते हैं।

तजहिं मद मोह मत्सर नाना। तेहि छन होइ जीव साधु सुजाना॥
निज पर भाव सकल त्यागी। रहहिं सदा प्रभु चरण अनुरागी॥

व्याख्या - जिस क्षण मद, मोह, मत्सर आदि के भावों का त्याग कर दिया जाता है, जीव उसी समय साधु-सज्जन बन जाता है तथा अपना-पराया भाव छोड़ कर, सदा परमात्मा के चरणों में अनुराग रखने लग जाता है।

समदरसी हियँ भाव सदाहीं। सुख दुख उद्वेग न मन माहीं॥
आवइ सहज विरत भावा। तबहिं जीव परम सुख पावा॥

व्याख्या - जब हृदय में समता का भाव रहता है, तो सुख दुःख भी मन में उद्वेग पैदा नहीं कर पाते हैं। उससे सहज में ही वैराग्य भाव आ जाता है और उसी समय जीव को परम सुख मिल जाता है।

होवइ ग्यान संशय अन्ता। परै जान जीव अंश भगवन्ता॥
अविरल कृपा प्रभु करहहिं। जन्म जन्म बन्धा कटहहिं॥

व्याख्या - ज्ञान होने पर संशयों का अन्त हो जाता है, जिससे समझ में आ जाता है कि जीव ईश्वर का ही अंश होता है। उस समय परमात्मा निरन्तर कृपा करने लगते हैं। जिससे जन्म-जन्म के बन्धन कट जाते हैं।

मन तन अरु धन परितापा। हरि शरण काहउ न ब्यापा॥
बिरती विवेक भगति करनी। भव सिन्धु कहुँ सुन्दर तरनी॥

व्याख्या - परमात्मा की शरण में आने पर मन, तन व धन के कष्ट नहीं व्यापते हैं। वैराग्य, विवेक व भक्ति भाव रूपी समुद्र को पार करने के लिए सुन्दर नाव

की तरह होते हैं ।

दो०- भाव आधार सकल जग वासनाउ भाव प्रचण्ड ।
भाव लगा मन राम में हारहिं ताते काल अखण्ड ॥ ३० ॥

व्याख्या - समस्त संसार का आधार भाव ही होते हैं तथा सब जगह वासना में भी भाव प्रचण्ड रूप से व्याप्त रहते हैं । इसलिए हे मन ! तू परमात्मा में भावों को लगा, जिससे काल भी हार जाये ।

दो०- भाव शान्त मन उमंग अति हरि शरण इहँ परिणाम ।
अब तो शरण चल मूढ़ मन सुधरहिं सकल काम ॥ ३१ ॥

व्याख्या - परमात्मा की शरण में आने पर समस्त भाव शान्त हो जाते हैं तथा मन में उमंग छा जाती है । अतः हे मूर्ख मन ! अब तो परमात्मा की शरण में चल, जिससे सारे कार्य सुधर जायें ।

छ०- जय सगुन निर्गुण बहु रूप व्यापक भाव सिरोमने ।
काम मोहादि प्रचण्ड असुर प्रबल खल प्रेरणा बल हने ॥
विषम माया बस सुरासुर नर सब चराचर बन्धन परे ।
भाव भ्रमित अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ॥

व्याख्या - हे गुणों से पार व गुणों सहित विभिन्न रूपों में व्यापक भावों के अधिष्ठाता प्रभु ! आपकी जय हो । हे प्रभु ! आपकी प्रेरणा से ही काम, क्रोध, मोह आदि प्रचण्ड आसुरी भावों का हनन हो पाता है । आपकी कठिन माया के वश में पड़ कर समस्त सुर-असुर व चराचर के प्राणी बंधन में पड़ जाते हैं । जिससे रात-दिन भावों में भ्रमित होकर काल, कर्म व गुणों में उलझ जाते हैं ।

छ०- जेहि नाथ करि करुणा बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे ।
भाव खेद छेदन दच्छ हम जीव रच्छ प्रभु नमामहे ॥
जेहि ग्यान मान बिमत्त भव दुःख हारनि भक्ति न आचरी ।
तेहि पाइ सिद्ध दुर्लभ पदादपि परत न प्रभु लगहि घरी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप जब करुणा करके जीव को देख लेते हैं, तो जीव दैहिक, दैविक व भौतिक तापों से मुक्त हो जाता है । हे प्रभु ! आप ही भाव रूपी कष्टों को मिटाने में दक्ष हैं तथा जीव की रक्षा करने वाले हैं । अतः प्रभु ! आपको नमस्कार हो । हे परमपिता ! जो ज्ञान के अभिमान में भर कर भाव रूपी दुःखों का हरण करने वाली भक्ति का आचरण नहीं करते हैं, वे सिद्ध आदि का दुर्लभ पद प्राप्त कर लेने के बाद भी पल भर में गिर जाते हैं ।

छ०- विश्वास करि सब आस तजि हरि दास जब जे होइ रहे ।
श्वास निर्मल नाम जीभ्या धरि बिनु प्रयास भव तर गहे ॥
अव्यक्त संसार बिटप मूल गभीर प्रभु निगमागम भने ।
पंच तत्व छठ मन तना दस शाखा पर्न भाव सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधु बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवत फलत नवल नित संसार विटप हरि नमामहे ॥

व्याख्या - जो विश्वास करके समस्त आशाओं का त्याग करके परमात्मा की शरण में आ जाते हैं और श्वास को निर्मल करके प्रभु का नाम जीह्वा पर रख लेते हैं, वे बिना प्रयास के ही भाव रूपी भव सागर को पार कर जाते हैं। संसार रूपी वृक्ष जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं, वे परमात्मा ही हैं। वेद- पुराण सब ने यही बताया है। इस संसार रूपी वृक्ष के पाँच तत्व व मन रूपी तना होता है तथा दस इन्द्रियों रूपी शाखाएँ हैं तथा भाव रूपी पत्ते व फूल हैं। इस संसार वृक्ष की एक ही बेल होती है, जिसमें कड़वे व मधुर दोनों प्रकार के फल लगे रहते हैं। यह संसार-वट नित्य फलता फूलता रहता है। अतः संसार रूपी वट के मूल परमात्मा आपको नमस्कार।

छ०- जेहि ब्रह्म अजम अद्वैत अनुभव गम्य मन गो पर बतावहीं ।
ते कहहु जानहु नाथ हम नारायण कहहिं जस नित गावहीं ॥
करुणायतन प्रभु सद्गुनाकर देव अब यह बर हम मागहीं ।
मन बच कर्म विकार तजि प्रभु शरण तुम्हार अब चावहीं ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आपको चाहे कोई ब्रह्म, अजन्मा, अद्वैत, अनुभव से जानने में आने वाला, मन व इन्द्रियों से परे बतायें, वे चाहे जो भी कहें या जो भी जानते हों, मैं तो प्रभु आपको नारायण (अर्थात हृदय की धड़कन ही आपका घर है) कह कर ही जानता हूँ। हे परमेश्वर ! आप तो करुणा के धाम हैं तथा सद्गुण आपका आकार है। अतः हे देव ! मैं तो अब यह वर माँगता हूँ कि मन, वचन व कर्म की चतुराई छोड़ कर, हमें आपकी शरण प्राप्त हो जाये।

छ०- नमामी परम तत्वं नमामी ईश्वरम् नमामी परमेश्वरम् ।
नमामी भक्त वत्सलम् करुणाधामं नमामी जगतेश्वरम् ॥
त्वम मम् सर्वस्वं त्वम् मम रक्षकम् त्वम ममेव नाथम् ।
कुटिलम् अग्यम् अहम् त्वमेव शरणम् त्वमेव शरणम् ॥

व्याख्या - हे परम तत्व ! आपको नमस्कार, हे ईश्वर ! आपको नमस्कार, हे

परमेश्वर ! आपको नमस्कार, हे भक्त वत्सल ! आपको नमस्कार, हे करुणा के धाम! आपको नमस्कार, हे जगत के ईश्वर ! आपको नमस्कार । हे प्रभु ! आप ही मेरे सब कुछ हैं, आप ही मेरे रक्षक हैं और आप ही मेरे मालिक हैं । मैं तो प्रभु अज्ञानी और कुटिल हूँ । परन्तु अब मैं आपकी शरण में हूँ, आपकी शरण में हूँ ।

दो०- सब अवगुण क्षमा करहउ सब तजि चाउँ शरण तोरी नाथ ।
भगति ग्यान वैराग्य देवहु करउँ विनय जोरि जुगल हाथ ॥ ३२॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मेरे समस्त अवगुणों को क्षमा कर दो । मैं सब छोड़ कर आपकी शरण में आना चाहता हूँ । हे प्रभु ! मैं दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मुझे भक्ति, ज्ञान व वैराग्य प्रदान कर दीजिए ।

सुत तुम्हार अति बड़भागा । उपजा मोर चरण अनुरागा ॥
देहुँ तुम्हहि भगति अनपायनी । ग्यान बिराग सब सुख दायनी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम्हारा अच्छा भाग्य है कि मेरे चरणों में अनुराग पैदा हो गया है । मैं तुम्हें मेरी अनपायनी भक्ति प्रदान करता हूँ । जो ज्ञान, वैराग्य व सब सुखों को देने वाली है ।

हियँ तुम्हार आइब संतोषा । तुम करइब मोर भरोसा ॥
रहइब सहज अनुग्रह मोरे । मंगल भाव आइब हियँ तोरे ॥

व्याख्या - तुम्हारे हृदय में संतोष पैदा होगा तथा तुम सदा मुझ पर भरोसा करोगे। मेरे अनुग्रह से तुम सदा सहज रहोगे तथा तुम्हारे मन में सदा मंगल भाव आयेंगे।

सुनु सुत सत्य आशीष हमारी । निर्मल होइब मति तुम्हारी ॥
जो कहिइब सोइ होवइ साँचा । मोर भगति मन रहइब राँचा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो जायेगी तथा जो कहोगे, वही होगा तथा तुम्हारा मन मेरी भक्ति में रमण करेगा ।

भय न सताइब मान अपमाना । पाइब गुरु अनुग्रह सुजाना ॥
मन उमंग रहइब सदाई । सत्य सत्य मोर वचनाई ॥

व्याख्या - तुम को मान-अपमान का भय नहीं सतायेगा तथा सदा गुरु की कृपा बनी रहेगी । तुम्हारे मन में सदा उत्साह बना रहेगा । ये मेरे सत्य वचन हैं।

दो०- दिव्य ग्यान हियँ रहइब चहुँदिसि आनन्द पाइब ।
मंगल सोच मंगल करइब प्रेरणा मोरि तोहि चलाइब ॥ ३३ ॥

व्याख्या - तुम्हारे हृदय में दिव्य ज्ञान रहेगा तथा चारों तरफ तुम्हें आनन्द मिलेगा। तुम मंगल ही सोचोगे तथा मंगल ही करोगे । क्योंकि मेरी प्रेरणा ही तुम्हें चलायेगी।

धन्य देव कृपा कीन्ह अपारी । कहउ किछु विधि जग उपकारी ॥
जगत भगत चारि प्रकारी । वृत्ति भिन्न मति अनुसारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपने मुझ पर अपार कृपा की है । अब आप जगत के कल्याण के लिए उपाय बताइये । संसार में चार प्रकार के भक्त होते हैं और उनकी वृत्तियाँ बुद्धि के अनुसार अलग-अलग होती हैं ।

मत भिन्न सो कारण मतभेदा । मत भिन्नता हेतु जग खेदा ॥
सोइ नाथ जुगति सरल बताउ । मत साम्यता जाते सकइ आउ ॥

व्याख्या - अलग मत होने के कारण मतभेद पैदा हो जाते हैं और मतभेदों के कारण ही संसार में कष्ट होता है । हे नाथ ! इसलिए ऐसा सरल उपाय बताइए, जिससे मतों में समता आ जाये ।

सकल मन हो एक समाना । सोइ कहउ नाथ विधि ग्याना ॥
पूजा जप तप होइ विधि एका । सब घट सकइ उपज विवेका ॥

व्याख्या - ऐसी ज्ञान की विधि बताइए, जिससे सब के मन एक हो जायें । पूजा, जप व तप की विधि भी एक हो जाए । जिससे मन में विवेक पैदा हो सके ।

मारग सरल कहवउ नाथा । चलै समाज सकल इक साथा ॥
विधि हो सरल विगत पाखण्डा । बनहिं समाज सहज अखण्डा॥

व्याख्या - हे प्रभु ! सरल रास्ता बताइए, जिससे समस्त समाज एक साथ चल सके । विधि सरल व पाखण्ड रहित होनी चाहिए । जिससे समाज में सहज ही एकता आ सके ।

दो०- राग द्वेष अग्यता नहिं हो तहँ नहिं हो पाखण्ड वाद ।
विधि सरल सकल हेतु हो विगत सकल बाद विवाद ॥ ३४॥

व्याख्या - विधि सरल व सबके लिए हो तथा किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं होना चाहिए तथा राग-द्वेष की अज्ञानता व पाखण्डवाद भी नहीं होना चाहिए ।

सुन सुत कहउँ तोही समुझाई । मत सकल चाहिं मोहि रिझाई ॥
फँसहिं मतवाद जाइ भरमाई । प्रयास सकल विफल जाई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुमको मैं समझा कर कहता हूँ, सुनो - सभी मत मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं । परन्तु लोग मत वादों में पड़ कर भ्रमित हो जाते हैं और उनके सब प्रयास विफल हो जाते हैं ।

करहिं फसाद करि करि रोषा । देवहहिं लोग मोहि बिरथा दोषा ॥
राग द्वेष जाल परै उरुझाई । बिरथा जन्म देवइ गवाँई ॥

व्याख्या - लोग आपस में क्रोध कर झगड़ा करने लग जाते हैं और व्यर्थ में मुझे दोष देने लगते हैं। वे लोग राग-द्वेष के जाल में उलझ कर व्यर्थ में जन्म को गवाँ देते हैं।

शिष्य बनावहिं स्वारथ राखी। देवहहिं मृषा मोर जग साखी ॥
गुरु शिष्य स्वारथ बन्धन। होवइ न मुक्ति इन अन्धन ॥

व्याख्या - स्वार्थ के कारण शिष्य बनाते हैं और संसार में मेरी झूठी गवाही देते रहते हैं। गुरु व शिष्य का स्वार्थ का बन्धन होता है। इसलिए ऐसे अन्धों को मुक्ति नहीं मिल सकती है।

स्वारथ हेतु चलावहिं पंथा। भ्रमित जगत जन्म अनन्ता ॥
सोइ कहुँ उपदेश हितकारी। पावहिं लाभ सकल इकसारी ॥

व्याख्या - स्वार्थ के लिए लोग पंथ चलाते हैं, जिससे जीव अनन्त जन्मों तक जगत में भ्रमित होता रहता है। इसलिए अब मैं हितकारी उपदेश कहूँगा, जो सबके लिए समान रूप से उपकारी होगा।

दो०- प्रथम नाम रूप मरम कहुँ जो मूल जथारथ रूप।
पुनि सरल सुगम विधि कहुँ तरावहि जो भव कूप ॥ ३५ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! सबसे पहले मैं मेरे नाम व रूप का रहस्य बताता हूँ, जो वास्तविक है। फिर सरल व सुगम उपाय कहूँगा, जो भव कूप को पार कराने वाला है।

छ०- नाम का भी नाम राम का भी राम मैं ही तो पूर्ण काम हूँ।
गुणों का भी गुण सुखों का भी सुख मैं तो परम धाम हूँ ॥
काम का भी काम माया का धाम मैं तो सहज निष्काम हूँ।
शबरी का राम मीरा का श्याम घट घट वासी मैं तो अनाम हूँ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! नाम का भी नाम, राम का भी राम मैं ही हूँ तथा मैं पूर्ण काम हूँ। मैं गुणों का गुण हूँ तथा समस्त सुखों का सुख हूँ तथा मैं ही परम धाम हूँ। मैं काम का काम हूँ और माया का घर हूँ। फिर भी मैं तो निष्काम हूँ। मैं शबरी का राम व मीरा का कृष्ण हूँ। मैं तो सबके हृदय में निवास करने वाला अनाम परमात्मा हूँ।

छ०- ईसा का ईश्वर इस्लाम का नूर मानों तो मैं जरुर हूँ।
ज्ञानियों का ज्ञान अभिमानियों का मान सबका हजूर हूँ ॥
महावीर का भगवान बुद्ध का ग्यान सबका मैं बोध हूँ।
मन का भी मन घट का भी घटवासी बाकी सब शोध हूँ।

व्याख्या - मैं ही ईसा का ईश्वर हूँ तथा इस्लाम का नूर हूँ। मुझे मानने पर मैं जरूर हूँ। मैं ज्ञानियों का ज्ञान व अभिमानियों का मान हूँ तथा मैं तो सबका

मालिक हूँ । महावीर का भगवान व बुद्ध का ज्ञान भी मैं ही हूँ तथा सबका अनुभव भी मैं ही हूँ । मैं तो मन का भी मूल मन हूँ तथा मैं ही सब घटों में निवास करने वाला हूँ । बाकी सब मेरे शोध हैं ।

छ०- नर मेरा अयन वाणी मेरा वचन सोई नारायण हूँ ।
पालन मेरा धर्म प्रलय हय कर्म मैं प्रकृति का अयन हूँ ॥
उत्पत्ति मेरा सुभाव नहिं दबाव मैं तो सब रस की खान हूँ ।
दृष्टि का भी दृष्टा सृष्टि का सृष्टा मैं तो सबका भगवान हूँ ॥

व्याख्या - देह स्थित नर (धड़कन) मेरा घर है तथा वाणी ही मेरा वचन है । इसलिए मैं ही नारायण हूँ। पालन करना मेरा धर्म है तथा प्रलय मेरा कर्म है और मैं प्रकृति का घर हूँ। उत्पत्ति करना मेरा स्वभाव है तथा मैं समस्त रसों की खान हूँ। मैं दृष्टि का दृष्टा व सृष्टि का सृजन करने वाला, सबका भगवान हूँ।

छ०- रूप का भी रूप कुरूप का भी कुरूप मैं तो सुंदरता का घर हूँ ।
प्राणों का प्राण जगत का भी जगत मैं तो चराचर का नर हूँ ॥
ज्योति का भी ज्योति चैतन्य का भी चैतन्य मैं ही तो भगवान हूँ ।
मानो तो मानो जानो तो जानो मैं ना हिन्दू ना मुसलमान हूँ ॥

व्याख्या - मैं रूपों का रूप व कुरूपों का कुरूप हूँ तथा मैं ही सुन्दरता का घर हूँ। मैं ही प्राणों का प्राण हूँ तथा जगत भी मैं ही हूँ तथा मैं ही समस्त चराचर का नर (धड़कन) हूँ। मैं ज्योति की भी ज्योति व चैतन्य हूँ तथा मैं ही भगवान हूँ । मुझे कोई माने या नहीं माने, मैं न हिन्दू हूँ और न मैं मुसलमान हूँ ।

छ०- दासों का भी दास करि विश्वास मैं तो रहता सदा तेरे पास हूँ ।
अन्नमय तनमय भूतमय मैं तो सर्वव्यापक आनन्दमय आकाश हूँ ॥
पहले जानो फिर मानो फिर धारण करो मैं तो धारणा का शौकीन हूँ।
जैसा लोगे नाम वैसा होगा काम मैं तो सदा भगतों के भावाधीन हूँ ॥

व्याख्या - मैं तो दासों का भी दास हूँ तथा मैं सदा तुम्हारे पास ही रहता हूँ, मेरा विश्वास कीजिए । मैं तो अन्नमय, तन्मय, भूतमय, सर्वव्यापक आनन्द आकाश हूँ । पहले मुझे जानो और फिर मान कर धारणा कीजिए । क्योंकि मैं तो धारणा के अनुरूप ही प्रकट होता हूँ। जैसा नाम लोगे, वैसा ही काम होगा। क्योंकि मैं तो सदा भक्तों के भावों के अधीन रहता हूँ ।

छ०- बलों का भी बल चल के अचल मैं तो सबका करतार हूँ ।
पुरुष का भी पुरुष नारी का भी नारी मैं तो दया का सागर हूँ ॥
विराट का भी विराट सबका सम्राट मैं तो ब्रह्म एक ब्रह्माण्ड हूँ ।
अनुभूति गम्य बोली ते दुर्गम्य मुझ सम मैं तो मैं ही अखण्ड हूँ॥

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

व्याख्या - मैं तो समस्त बलों का बल हूँ तथा चलायमान होकर भी स्थिर हूँ तथा सब कुछ करने वाला करतार हूँ। मैं पुरुषों का पुरुष व नारियों का नारी हूँ तथा मैं तो दया का सागर हूँ। मैं विराट का भी विराट व समस्त जगत का अधिष्ठाता हूँ तथा मैं ही एक अखण्ड ब्रह्म हूँ। मैं अनुभूति में आने वाला व बोलने में कठिन हूँ। क्योंकि मेरे समान तो इस ब्रह्माण्ड में मैं ही हूँ।

दो०- मैं ही नारायण विट्ठल हरि मैं ही जगत बनि प्रगटाउँ।
सकल घट मैं निवास करूँ सत्य इहँ सुत तोही बताउँ ॥ ३६॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं तुम्हें सत्य बता रहा हूँ कि मैं ही समस्त जीवों के हृदय में निवास करता हूँ तथा मैं ही नारायण व विट्ठल हूँ तथा मैं ही जगत बन कर प्रकट होता हूँ।

नाना मत नाना रूप बताई। बिरथा जीव तहँ रहइ फँसाई ॥
सत्य इहँ मैं एकहि सृष्टि मूला। सरिता सागर उपवन फूला ॥

व्याख्या - नाना मत मेरे नाना रूप बताते हैं, जिनमें जीव व्यर्थ में फँस जाता है। सत्य तो यह है कि मैं अकेला ही सृष्टि का मूल हूँ तथा मैं ही नदियाँ, सागर, उपवन व फूल हूँ।

मैं ही सूरज चन्द्र ब्रह्माण्डा। कण कण व्याप्त अखण्डा ॥
मैं गिरि कानन कन्दर खोहा। मैं ही पालक सृजक संहारी सोहा ॥

व्याख्या - मैं ही सूर्य, चन्द्र व ब्रह्माण्ड हूँ तथा मैं ही कण-कण में व्यापक व अखण्ड हूँ। मैं ही पालक, सृजक व संहार कर्ता हूँ।

ऋतु गर्म वर्षा शरद बसन्ता। मैं ही ब्रह्मादि मसक प्रजन्ता ॥
सुत मैं ही विष्णु शिव कैलासी। कृष्ण नट नागर रास विलासी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं ही गर्मी, वर्षा, सर्दी व वसन्त ऋतु हूँ तथा मैं ही ब्रह्मा आदि से लेकर मच्छर तक हूँ। मैं ही विष्णु व कैलाश निवासी शिव हूँ तथा मैं ही कृष्ण हूँ।

मैं ही ईश्वर अल्लाह कहाउँ। भाव अनुरूप सदा प्रगटाउँ ॥
मैं दुर्गा दुर्गनी महाशक्ति काली। सकल जगत मातु बनि पाली ॥

व्याख्या - मैं ही ईश्वर व अल्लाह कहलाता हूँ तथा भावों के अनुसार सदा प्रकट होता हूँ। मैं ही दुर्ग रूपिणी दुर्गा व महाशक्ति काली हूँ तथा समस्त जगत को माता की तरह मैं ही पालन करता हूँ।

दो०- अखण्ड अजन्मा मैं एकरस सकल ब्रह्माण्ड मोर विस्तार।
श्रुति सकल श्वासा मोरी मैं ही सकल जगत करतार ॥ ३७ ॥

व्याख्या - मैं अखण्ड, अजन्मा व एकरस हूँ तथा समस्त ब्रह्माण्ड मेरा ही विस्तार है तथा समस्त श्रुतियाँ मेरी श्वास ही हैं तथा मैं ही समस्त जगत का कर्ता हूँ ।

सकल जीव प्राण इकसारा । परहिं ग्रन्थि तहँ संस्कारा ॥
संस्कार सोइ वृत्ति उपजाई । वृत्ति अनुहार बुद्धि उमगाई ॥

व्याख्या - समस्त जीवों में प्राण तत्व एक समान रहता है । परन्तु संस्कारों की ग्रन्थि पड़ जाती है और संस्कारों से जीव की वृत्ति पैदा होती है तथा वृत्ति के अनुसार ही बुद्धि पैदा होती है ।

बुद्धि अनुरूप बनइ मत भाई । इहँ मत मूल दियउँ बताई ॥
संस्कार सोइ गियर समाना । चलहि देह वाहन गति नाना ॥

व्याख्या - बुद्धि के अनुरूप मत पैदा होते हैं । यही मत पैदा होने का मूल कारण है । संस्कार गियर के समान होते हैं, जिसके अनुरूप शरीर रूपी वाहन नाना प्रकार की गति ग्रहण करता है ।

नाना देह नाना संस्कार सुहाई । सोई गति नाना भिन्नता आई ॥
सकल जीव जद्यपि एक समाना । हेतु संस्कार वृत्ति विधि नाना ॥

व्याख्या - नाना शरीरों के नाना संस्कार होते हैं । इसलिए नाना गति की भिन्नता आ जाती है । हालांकि समस्त जीव एक समान ही होते हैं, परन्तु संस्कार के कारण नाना प्रकार की वृत्तियाँ बन जाती हैं ।

सुख दुःख कारण संस्कारा । बिरथा देइ दोष मोहि संसारा ॥
मोर नाम देह गियर सुहाई । श्रद्धा विश्वास ऐक्सलेटर भाई ॥

व्याख्या - जीव के सुख-दुःख का कारण संचित संस्कार होते हैं और लोग मुझ परमात्मा को व्यर्थ में दोष लगाते रहते हैं । मेरा नाम ही देह रूपी वाहन का गियर होता है तथा श्रद्धा-विश्वास शरीर के ऐक्सलेटर होते हैं ।

दो०- नियम संयम ब्रेक देह वाहन के लग्न सोई ईंधन सुहाय ।
गुरु कृपा सोइ चालक हय सहजहि मंजिल पहुँचाय ॥३८॥

व्याख्या - नियम-संयम देह रूपी वाहन के ब्रेक हों तथा लग्न रूपी डीजल हो तथा गुरु कृपा रूपी चालक होने पर सहज में ही जीव मंजिल पर पहुँच जाता है ।

सकल हेतु कहउँ विधि एका । सुनहिं गुनइ होइ हियँ विवेका ॥
नाम जपहहिं जेहि लय लाई । सहजइ भव सागर तराई ॥

व्याख्या - सबके लिए अब एक ही विधि कहता हूँ । जिसको सुनने व मनन करने से हृदय में ज्ञान पैदा हो जायेगा । जो लोग लय लगा कर नाम जप करते हैं, वे सहज में ही भव सागर पार कर जाते हैं ।

नाम मरम अब कहउँ बखानी । नाम अनन्त एक करि जानी ॥
गुरु देवइ सोइ उत्तम नामा । बूझहिं मरम सधै सब कामा ॥

व्याख्या - अब मैं नाम का रहस्य बताता हूँ कि मेरे अनन्त नाम हैं, परन्तु सबको एक ही मान लेना चाहिए । गुरु जो नाम देते हैं, वही उत्तम नाम होता है । क्योंकि मर्म जान लेने पर सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं ।

गुरु वचन हो हियँ विश्वासा । जपहिं नाम संग प्रति श्वासा ॥
इहँ शास्त्र करइब गुरु काजा । सोइ कहउँ नाम मरम आजा ॥

व्याख्या - गुरु के वचनों पर हृदय में विश्वास हो तथा प्रत्येक श्वास के साथ नाम का जप करें । यह शास्त्र ही गुरु-शक्ति का कार्य करेगा, इसलिए आज मैं नाम के रहस्य को बताता हूँ ।

राम नारायण राम पावन नामा । जपहिं साधक पावहिं विश्रामा ॥
घरि भर जपहि नित त्रिमासा । तिन्ह हियँ होइब ग्यान प्रकासा ॥

व्याख्या - राम नारायण राम पवित्र नाम हैं । इसलिए जो साधक इस नाम को जपते हैं, उनको सहज विश्राम मिल जाता है । जो एक घड़ी नित्य तीन महीने इस नाम को जपते हैं, उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश पैदा हो जाता है ।

संग करहि जेहि ध्यान अभ्यासा । मिटहि संताप सहज प्रयासा ॥
ध्यान संग नाम जपहि छः मासा । तिन्ह पूर्ण सकल अभिलाषा ॥

व्याख्या - जो लोग नाम जप के साथ ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनके सहजता से ही समस्त संकट मिट जाते हैं । जो लोग ध्यान के साथ छः महीने नाम का जप करते हैं, उनकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

दो०- नाम जप अरु प्रकृति मोरी उभय सकल विपद मिटाय ।
आरत अरथी भगत हेतु सहजहिं जग सुख दिलाय ॥ ३९ ॥

व्याख्या - नाम का जप और मेरी प्रकृति दोनों समस्त विपदाओं को मिटा देते हैं और आरत व अर्थी प्रवृत्ति वाले भक्तों को संसार में सहज में ही सुख दिला देते हैं ।

नाम जप करहिं पावन भावा । भाव अनुरूप सब फल पावा ॥
जपहिं नाम इन्द्रियँ वश आई । सहजहि सोइ विराग बढ़ाई ॥

व्याख्या - नाम का जप करने पर भाव पवित्र हो जाते हैं और भावों के अनुसार फल की प्राप्ति होती है । नाम के जपने पर इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं और इन्द्रियों के वश में आने पर वैराग्य बढ़ने लग जाता है ।

सहज बिराग सोइ सुख मूला । रहवहिं मन मस्त सदा फूला ॥
बाढ़हिं बिराग मोह छिजाई । विगत मोह कष्ट कि रहाई ॥

व्याख्या - सहज वैराग्य ही सुख का मूल होता है । जिससे मन मस्त होकर प्रसन्न रहता है । वैराग्य के बढ़ने पर मोह कम होने लग जाता है तथा मोह के मिट जाने पर कष्ट नहीं रह पाते हैं ।

विगत दुःख सोइ सहज सुभाउ । नाम जप इहँ प्रगट प्रभाउ ॥
नित्य निरत जपहिं जेहि नामा । पावहिं सहज परम विश्रामा ॥

व्याख्या - दुःखों का मिट जाना ही सहज स्वभाव होता है । इसलिए नाम जपने का यही प्रकट प्रभाव होता है कि जीव सहज हो जाता है। जो नित्य निरंतर नाम जपते हैं, वे सहज में ही परम विश्राम प्राप्त कर लेते हैं ।

बरस द्वादस जे करहिं ध्याना । तिन्ह हियँ प्रगटइ सिद्धि नाना ॥
रिद्धि सिद्धि आइ करहिं सेवकाई । तिन्ह महिमा जाइ नहिं गाई ॥

व्याख्या - जो बारह वर्ष तक नित्य ध्यान करते हैं, उनके हृदय में नाना सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं और ऋद्धि-सिद्धियाँ आकर सेवा करने लगती हैं, जिनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दो०- मास छः राम नारायण राम जपै पुनि बरस द्वादस राम ।
तिन्ह हियँ ब्रह्म ग्यान प्रगटइ सब विधि सुधरहिं काम ॥ ४०॥

व्याख्या - छः महीने राम नारायण राम नाम का जप तथा छः महीने बाद बारह वर्ष केवल राम नाम का जप करने पर हृदय में ब्रह्म ज्ञान पैदा हो जाता है । जिससे समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं ।

मन ही मन मैं करूँ बतकाई । अँगुरी पकरि भगत चलाई ॥
नित्य प्रेरहउँ ब्रह्म ग्याना । बसहुँ निरन्तर सुरति ध्याना ॥

व्याख्या - मैं मन ही मन में साधक से बातें करने लग जाता हूँ तथा अँगूली पकड़ कर चलाने लगता हूँ । मैं नित्य उसके हृदय में ब्रह्म ज्ञान की प्रेरणा देने लग जाता हूँ तथा निरन्तर उसकी सुरता और ध्यान में रहने लग जाता हूँ ।

करउँ शान्त सब ज्ञान पिपासा । रहइ न किछु मन जिग्यासा ॥
निमिष निमिष भगति बढ़ाउँ । सहजहिं धरम हियँ उमगाउँ ॥

व्याख्या - मैं साधक की समस्त ज्ञान-पिपासा को शान्त करा देता हूँ । जिससे मन में और कोई जिज्ञासा नहीं बची रह पाती है । मैं क्षण-क्षण उसके हृदय में भक्ति बढ़ाता रहता हूँ तथा सहज धर्म का पालन करवाता रहता हूँ ।

सुख दुःख उभय नसाउँ मूला । ब्यापन देवहुँ जग त्रिशूला ॥
देउँ मन संतोष भगति अपारा । सकहि करि भगत मोर दीदारा ॥

व्याख्या - मैं सुख व दुःख दोनों के मूल को ही नष्ट कर देता हूँ । जिससे त्रिगुणों

वाले शूल जीव को नहीं व्यापते हैं । मैं साधक के मन में संतोष और अपार भक्ति दे देता हूँ, जिससे वह मेरी अनुभूति कर सके ।

नाम मरम जब परै बुझाई । नित नव मोद हियँ मंगल छाई ॥
बाढ़हिं पल पल सहज धर्मा । प्रेरणा मोर करहिं सब कर्मा ॥

व्याख्या - नाम का रहस्य जब समझ में आ जाता है, तब नित्य प्रसन्नता व मंगल के भाव पैदा हो जाते हैं । जिससे क्षण-क्षण सहज धर्म बढ़ने लगता है तथा मेरी प्रेरणा से ही जीव सब कर्म करने लगता है ।

दो०- नाम भ्रम सकल मिटै उपाधि बनि रहइ नाम राम ।
श्वासा श्वासा राम रमइ पावइ अब जीव परम धाम ॥ ४१ ॥

व्याख्या - नाम का भ्रम जब मिट जाता है, तब राम का नाम मेरी उपाधि बन कर रह जाता है तथा श्वास-प्रतिश्वास में राम नाम रमण करने लग जाता है, जिससे जीव को परम विश्राम प्राप्त हो जाता है।

राम सोइ सुत मोर प्रिय नामा । नारायण सो मोर पावन धामा ॥
राम नाम सुनि जनि भरमाउ । राम मरम तोहि सकल बताउँ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! राम का नाम ही मुझे प्रिय है और नर का घर (नर+अयन) ही मेरा रहने का स्थान है । राम का नाम सुनकर भ्रमित मत होवो । मैं तुम्हें राम के नाम का रहस्य बताता हूँ ।

रां सोइ मोर सकल सृष्टि धारी । मूल इड़ा पिंगला सुष्मना नारी ॥
हिरण्य अनल सोइ रां सुहाई । नाभी मण्डल जो बसत सदाई ॥

व्याख्या - रां ही मेरी समस्त सृष्टि को धारण करने वाला है और रां ही इड़ा, पिंगला व सुष्मना तीनों नाड़ियों का मूल होता है । हिरण्याग्नि भी रां ही है, जो जीव के नाभी मण्डल में रहती है ।

त्रिगुण मय सब सृष्टि लगाई । रां हय मूल इहँ मरम सबाई ॥
सोइ राम नाम जीव अनुकूला । जपहिं जेहि मिटहिं सब शूला ॥

व्याख्या - समस्त सृष्टि तीन गुणों (सत, रज व तम) से युक्त लगती है और इस रहस्य का मूल रां नाम ही है । इसलिए राम का नाम जीव के अनुकूल होता है, जिसे जो भी जपते हैं, उनके सब कष्ट मिट जाते हैं ।

सोइ राम नाम मोर उपाधी । जद्यपि मैं अज अखण्ड अगाधी ॥
राम नाम मरम देउँ बताई । सुन सुत मन बुद्धि चित्तलाई ॥

व्याख्या - इसलिए राम का नाम ही मेरी उपाधी है, हालांकि मैं तो अजन्मा, अखण्ड व अगाध हूँ । अब मैं तुम्हें राम के नाम का रहस्य बता देता हूँ, तुम

मन व बुद्धि को स्थिर करके सुनो ।

दो०- रां जपै कुण्डली जगै कुण्डली जागत भ्रम मिट जाय ।
भ्रम मिटइ भव तरहहिं जीव सहज मोहि आय मिलाय ॥ ४२॥

व्याख्या - राम का नाम जपने से कुण्डलनि शक्ति जागृत हो जाती है, जिससे समस्त संशयों का नाश हो जाता है और संशय मिट जाने पर जीव भाव रूपी भव सागर को पार कर जाता है । इस प्रकार सहज में ही जीव मुझ परमात्मा से आकर मिल जाता है ।

सो रां उपासक इन्द्रादि देवा । गणेशादि जपहिं सहित सनेहा ॥
हनुमंत सोउ राम नाम उपासी । राम अनादि घट घट वासी ॥

व्याख्या - इसलिए इन्द्र आदि देवता राम की ही उपासना करते हैं और गणेश आदि देव भी प्रेमपूर्वक राम नाम का जप करते हैं । हनुमान भी राम नाम के उपासक हैं क्योंकि राम तो अनादि और सबके हृदय में निवास करने वाले हैं ।

अलख निरञ्जन राम अविनासी । दसरथ सुत सोउ राम उपासी ॥
जपहिं जाइ महेश दिनु राति । अकथ अगाध सोइ राम अनादि ॥

व्याख्या - रां तो अलख, निरञ्जन व अविनाशी हैं, इसलिए दशरथ पुत्र राम भी राम की ही उपासना करते थे । जिस राम के नाम को महादेव रात-दिन जपते हैं, वह तो अकथनीय व अगाध है ।

ब्रह्मा विष्णु धरहिं जाइ ध्याना । सोइ हिरण्य अनल राम सुजाना ॥
मुनि तजहिं जाके बल संसारा । राम सोइ सर्वव्यापक इकसारा ॥

व्याख्या - ब्रह्मा व विष्णु भी जिसका ध्यान करते हैं, वो हिरण्यगर्भ की अग्नि रां ही है । मुनि जन जिसके बल पर संसार को छोड़ देते हैं, वो रां तो सब जगह एक समान व्याप्त है ।

जाके बल होहिं अलौकिक करणी । सोई राम नाम हेतु भव तरणी ॥
अनन्त भानु सम सो प्रकासी । जगमूल सोउ जगत उदासी ॥

व्याख्या - जिस रां के बल (हिरण्यगर्भ) से समस्त अलौकिक घटनाएँ घटित हो रही हैं, वही राम का नाम भाव रूपी सागर को पार करने के लिए नाव होता है । रां अनन्त सूर्यो के समान प्रकाश करने वाला है तथा समस्त जगत का मूल होते हुए भी जगत से उदास है ।

अनुभव गम्य गुण गो पारा । रां जगत मूल नहिं कोउ न्यारा ॥
गुण पार सकल गुण खानी । राम सोइ मोर नाम सुत जानी ॥

व्याख्या - रां अर्थात् हिरण्यानल ही समस्त जगत का मूल होती है, उसके

अलावा दूसरा कोई नहीं है । इसलिए वह अनुभव गम्य, गुण व इन्द्रियों से परे है । राम नाम को ही मेरा नाम जानना चाहिए क्योंकि रां गुणों से परे व समस्त गुणों का मूल है ।

दो०- मोर नाम रूप रेख नहिं तहँ नहिं ग्यान अग्यान ।
एक रस अज अखण्ड मैं राम ही मोहि सुत करि जान ॥ ४३ ॥

व्याख्या - मेरा कोई नाम, रूप व रेखा नहीं है तथा मैं तो ज्ञान-अज्ञान से भी परे, एक रस, अजन्मा व अखण्ड हूँ, इसलिए रां के नाम से ही मुझे समझ लेना चाहिए।

निज मुख निज मरम बखानी । सत्य सरल इहँ मम बानी ॥
जहँ वासना तहँ नाना विवादा । इहँ सिद्धान्त अपेल अबाधा ॥

व्याख्या - मैंने स्वयं ही मेरा रहस्य बता दिया है । यह सत्य व सरल है तथा मेरी स्वयं की वाणी है । जहाँ पर वासनाएँ होती हैं, वहीं पर विवाद होते हैं। यह सिद्धान्त अकाट्य है ।

तजि विवाद जे ध्यावहिं मोही । राम जपहिं चहुँदिस मंगल होही ॥
सत्य जानि संशय करइ न सुजाना । राम मानि मोहि धरहहिं ध्याना ॥

व्याख्या - इसलिए जो विवाद में नहीं पड़कर मुझे भजते हैं और राम नाम जपते हैं, उनका चारों दिशाओं में मंगल ही मंगल हो जाता है। इसलिए सज्जन लोग इसको सत्य जानकर संदेह नहीं करेंगे तथा मुझे राम के नाम से ही जानकर मेरा ध्यान करेंगे ।

तिन्ह हृदय निज प्रगटाउँ । नाम रूप मैं मरम समझाउँ ॥
तिन्हहिं करउँ मैं मोर समाना । सत्य वचन मोर विधि विधाना ॥

व्याख्या - उनके हृदय में मैं स्वयं प्रकट हो जाता हूँ तथा नाम व रूप के रहस्य को समझाकर, उनको मैं मेरे समान ही कर लेता हूँ । यह मेरी विधि का विधान है, इसलिए ये सत्य बात है ।

पीर पैगम्बर सब रां जपाई । रां जपत मैं अल्लाह मिलाई ॥
बुद्ध महावीर जपै नाम रामा । पायहउ सकल मोर धामा ॥

व्याख्या - सब पीर व पैगम्बरों ने रां नाम का ही जप किया है तथा रां के जप से ही मुझ अल्लाह को प्राप्त किया है । बुद्ध, महावीर ने भी रां का नाम ही जपा था, जिससे मुझ परमात्मा को प्राप्त कर लिया ।

दो०- राम जपा सन्त कबीर ने मिटा लिया सब मन का खेद ।
ताकि महिमा जानि व्यास ने सहजहिं लिख दिए चारों वेद ॥ ४४ ॥

व्याख्या - राम के नाम का जप सन्त कबीर ने किया, जिससे उनके समस्त कष्ट

मिट गए तथा राम नाम की महिमा को वेद व्यास ने जानकर सहज में ही चारों वेदों की रचना कर डाली ।

रां जपत शबरी गति पाई । नाम बल तर गयउ कसाई ॥
सुतीक्षण लय लाइ जपा रामा । पायहउ सहज परम धामा ॥

व्याख्या - राम नाम जपने से ही शबरी ने गति प्राप्त की और नाम के बल पर ही सदन कसाई भी तर गये । सुतीक्षण ने लय लगाकर राम का नाम जपकर परम धाम को प्राप्त कर लिया ।

नामदेव रां जपत पाया ग्याना । विगत विकार भयउ ब्रह्म समाना ॥
राम जपा रविदास चमारा । भयउ मोहि वो अति प्यारा ॥

व्याख्या - नामदेव ने भी राम का नाम जपकर ज्ञान प्राप्त कर लिया, जिससे समस्त विकार मिट गये और वह ब्रह्म के समान हो गया । राम का नाम जपकर ही रविदास जाति से चमार होने पर भी मुझे अतिप्रिय हो गये ।

रां जपहि शिव शंकर कैलासी । पाय लियउ पद सदा अविनासी ॥
नाम राम जपहिं सन्त साँई । महिमा विदित कहाई गुसाँई ॥

व्याख्या - राम का नाम जपकर ही कैलाश निवासी शिव ने सदा के लिए अविनाशी परमपद प्राप्त कर लिया । सन्त साँई ने भी राम नाम का जप किया, जिससे वे भगवान कहलाने लग गये। उनकी यह महिमा सर्वविदित है ।

लोकनाथ सोउ राम राम जपाई । जपत नाम परम पद पाई ॥
रां नाम हय महिमा अनन्ता । जुग जुग जाहि जपहिं सब सन्ता ॥

व्याख्या - सन्त लोकनाथ ने भी राम नाम जपकर ही परमपद प्राप्त कर लिया । इसलिए राम नाम की महिमा अनन्त है, जिसका सभी सन्त लोग युग-युगों में जप करते रहते हैं ।

दो०- राम जपत अनल प्रबल, तहँ वासना सब जल जाय ।
विगत वासना आनन्द घना जन्म जीव सफल सुहाय ॥ ४५ ॥

व्याख्या - राम के जपने से हिरण्याग्नि प्रबल हो जाती है, जिसमें समस्त वासनाएँ जलकर नष्ट हो जाती हैं और वासनाओं के मिट जाने पर आनन्द बच जाता है, जिससे जीव का जन्म सफल हो जाता है ।

रा संग लेवहहिं जेहि प्राना । म संग छाड़हहिं वायु अपाना ॥
पान अपान उभय मिलाई । ध्यान नाम सब संग सुहाई ॥

व्याख्या - रा के साथ प्राण वायु को ग्रहण करने व म के साथ अपान वायु को छोड़ने से प्राण व अपान वायु एक हो जाती हैं । जिससे ध्यान व जप एक साथ

ही हो जाते हैं ।

इहँ साधना परम कहाई । जीव अरु मोर तहँ भेद मिटाई ॥
मिटहहिं भेद विगत सब खेदा । साधना पूर्ण होइ जीव अभेदा ॥

व्याख्या - यह साधना की सर्वोत्तम अवस्था होती है, जिससे मेरा और जीव का अन्तर मिट जाता है तथा अन्तर मिट जाने पर कष्टों का निवारण हो जाता है । यह साधना की पूर्णता होती है, जिससे जीव अभेद हो जाता है ।

राम मय लगहि सब संसारा । मन शान्त विगत विकारा ॥
सुत सोइ मुक्ति मोच्छ कहाई । एहि परम पद सत्य बताई ॥

व्याख्या - उस समय समस्त संसार राममय लगने लग जाता है तथा विकार मिट जाते हैं । जिससे मन शान्त हो जाता है । हे वत्स ! यह अवस्था ही मोक्ष व मुक्ति कहलाती है । यही परम पद की प्राप्ति है । मैं सत्य बता रहा हूँ ।

एहि साधना करहि पूर्ण जेहि । विभूति सकल सहजहिं लेहि ॥
सोहि जन सुत अवतार कहाई । विभूति सकल हियँ प्रकटाई ॥

व्याख्या - जो ऐसी साधना की पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं, उनको सरलता से ही समस्त विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं । ऐसे साधक ही अवतार कहलाते हैं, और उनके हृदय में समस्त विभूतियाँ प्रकट हो जाती हैं ।

दो०- राम मय लगत संसार जब ॐ मरम परइ समझाई ।
ओ उ म ओ अरु अह्म वोहि अरु मैं इक सुहाई ॥ ४६ ॥

व्याख्या - जब समस्त संसार राममय लगने लगता है, तब ॐ का रहस्य समझ में आ जाता है कि ओ और मैं (अर्थात जीव और मैं) एक ही हैं ।

ओम ओम जब चलहिं श्वासा । मिटहिं भेद सब अनयासा ॥
अब घटहिं अचरज अति भारी । बूँद समावइ समुंदर सारी ॥

व्याख्या - जब ओम के साथ श्वास चलने लगता है, तब अचानक सब भेद मिट जाता है । जिससे आश्चर्य घटित होने लगता है कि बूँद में समुद्र समाने लगता है अर्थात मैं स्वयं जीव में विलीन होने लगता हूँ ।

बूँद अरु सागर मिटै सब भेदा । तेसउ मैं अरु जीव होहिं अभेदा ॥
ओम ओम अब सोहम सुहाई । ओहम सोहम नहिं भेद रहाई ॥

व्याख्या - जैसे बूँद और सागर का अन्तर मिट जाता है, वैसे ही मेरा और जीव का भेद मिट जाता है । अब ओम ओम सोहम में बदल जाता है और ओहम और सोहम का अन्तर मिट जाता है ।

ओह्म सोह्म वृत्ति अखण्डा । तिन्ह हियँ प्रगटै शक्ति प्रचण्डा ॥
तेहि साधक सिद्ध अरिहन्ता । मोहि सम तिन्ह महिमा अनन्ता ॥

व्याख्या - जिनकी ओह्म-सोह्म की वृत्ति अखण्ड हो जाती है, उनके हृदय में प्रचण्ड शक्ति पैदा हो जाती है तथा ऐसे साधक ही सिद्ध व अरिहन्ता कहलाते हैं । जिनकी महिमा मेरे समान ही अनन्त हो जाती है ।

करि बोध निज हियँ हरषाई । सोइ अनुभूति नाना विधि गाई ॥
विधि साधना जग बहुरि बताई । नाम ध्यान सम सुत किछु नाई ॥

व्याख्या - वे लोग अनुभूति करके स्वयं के मन में हर्षित होने लगते हैं तथा उसी अनुभूति को नाना प्रकार से गाते हैं । वे संसार को नाना प्रकार की विधियाँ बताते हैं । हे वत्स ! परन्तु नाम व ध्यान साधना के बराबर दूसरी कोई साधना नहीं होती है ।

दो०- सकल भ्रम तजि नाम जपउ रूप तजि करउ मोर ध्यान ।
आवत जावत श्वास संभारउ करहउँ सुत तोही मोर समान ॥ ४७ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! इसलिए समस्त भ्रम को छोड़ कर नाम का जप करो और रूप की कल्पना छोड़ कर मेरा ध्यान करो तथा आने-जाने वाले श्वास को देखो । मैं तुम्हें मेरे समान ही कर लूँगा ।

नाम ध्यान मोर कुञ्जि सुहाई । मरम सत्य इहँ दियउ बताई ॥
नाम ध्यान उभय भगति दाई । पावहिं भगति मिटै शूल सबाई ॥

व्याख्या - नाम और ध्यान ही मुझे प्राप्त करने की कुंजी हैं, यह सत्य रहस्य बता दिया है । नाम और ध्यान दोनों ही भक्ति देने वाले हैं तथा भक्ति मिल जाने पर सब कष्ट स्वतः मिट जाते हैं ।

सो नहिं दरकार अन्य मारग । नाम ध्यान उभय भव तारक ॥
नाम ध्यान जेहि करै सहाई । सोइ कहउँ सुत तोहि उपाई ॥

व्याख्या - नाम व ध्यान ही भव तारने वाले होते हैं । इसलिए कोई दूसरे मार्ग की आवश्यकता नहीं है । अब मैं वह उपाय बताता हूँ, जो नाम जप व ध्यान के लिए सहायक है ।

श्रद्धा सह करहि स्तुति गाना । होवइ मन निर्मल सुजाना ॥
दया दान परहित सेवकाई । करहिं अमल मन ऐ सबाई ॥

व्याख्या - जो श्रद्धापूर्वक मेरी स्तुति गाते हैं, उनके मन निर्मल हो जाते हैं तथा दया, दान, परहित व सेवा के भाव भी मन को निर्मल करते हैं ।

बिनय विवेक होइ व्यवहारु। होहि सात्विक अल्प अहारु ॥
गुरुमुखी करि मन रखहहिं। तेहि जनु सुखी सदा रहहहिं ॥

व्याख्या - विनय व विवेकपूर्ण व्यवहार हो तथा हल्का व सात्विक भोजन हो तथा जो मन को गुरुमुखी करके रखते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं ।

दो०- सत्य आचरण मधुर वचन गुरु चरण हो अटल विश्वास ।
समय पाइ मोहि याद करहिं तिन्ह नहिं ब्यापइ भव त्रास ॥ ४८॥

व्याख्या - सत्यता का आचरण हो व मधुर बोलते हों तथा गुरु के चरणों में अटल विश्वास हो तथा जो समय मिलते ही मेरा स्मरण करते हैं, उनको भाव रूपी कष्ट कभी नहीं व्यापते हैं ।

निज ठगहिं पर जग न ठगाई। ते नर प्रिय मोहि सुत सदाई ॥
पर मन्द नहिं आव मन विचारा। रखहहिं भाव सदा उपकारा ॥

व्याख्या - जिनके मन में दूसरों का बुरा करने का विचार नहीं आता है तथा सदा पर उपकार का भाव रखते हैं और जो भले ही स्वयं ठगे जाते हैं, परन्तु दूसरों को ठगने का विचार नहीं करते हैं, वे लोग सदा मुझे प्रिय होते हैं ।

रहवहिं समान भाव अभावा। तिन्ह नहिं कोउ दुःख सतावा ॥
दया दान करहिं नहिं बखाना। ते जनु जानहउँ देव समाना ॥

व्याख्या - जो भाव अभाव में समान रहते हैं ,उन्हें कोई दुःख नहीं सताता है तथा जो दया व दान आदि का बखान नहीं करते हैं, उन्हें देव तुल्य मानना चाहिए ।

रहहिं जग बड़ गृह चेरी समाना। पालहिं परिवार मोह न आना ॥
सहज करहि नित्य सेवकाई। भूलेउ नहिं मोह जाल फँसाई ॥

व्याख्या - संसार में बड़े घर की नौकरानी की तरह रहना चाहिए तथा परिवार का पालन करते हुए मोह नहीं करना चाहिए । जैसे कि नौकरानी नित्य सेवा करती है, परन्तु भूल कर भी मोह में नहीं पड़ती है ।

करहिं गुरु पद पंकज पूजा। पूरण भरोस हियँ आस न दूजा ॥
मातु-पितु करहिं जे सेवकाई। नहिं संशय कृपा मैं बरसाई ॥

व्याख्या - जो गुरु की पूजा करते हैं तथा कोई दूसरे की अपेक्षा नहीं करके गुरु पर ही पूर्ण भरोसा रखते हैं और माता-पिता की सेवा करते हैं, उन पर मैं निःसंदेह कृपा की वर्षा करता हूँ ।

दो०- साधु सन्तन की सेवा करें, निस्वार्थ भाव हियँ अपार ।
तिन्ह सब विधि मंगल करूँ, काज सँवारु बनि करतार ॥ ४९ ॥

व्याख्या - जो साधु-सन्तों की सेवा करते हैं और जो हृदय में निस्वार्थ भाव रखते हैं, मैं उनका सब प्रकार से मंगल करता हूँ और स्वयं उनके कार्यो को सुधारता हूँ ।

सब भाँति करहिं मोर विश्वासा । तिन्ह पूरण करूँ सब अभिलाषा ॥
पंथ मतादि जे नहिं उरझाई । महापुरुषन करहिं सेवकाई ॥

व्याख्या - जो सब प्रकार से मेरा विश्वास करते हैं, मैं उनकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण कर देता हूँ । जो पंथ आदि में नहीं उलझते हैं और महापुरुषों की सेवा करते हैं ।

प्रतिवेशी मानहिं सम परिवारी । भूल न देवइ निन्दित गारी ॥
परहित रत मन मंगल भावा । कंचन कामिनि नहिं बिचलावा ॥

व्याख्या - जो पड़ोसियों को परिवार के समान मानते हैं और भूल कर भी उनको गाली नहीं देते हैं तथा परहित व मंगल के भाव मन में रखते हैं और कंचन व कामिनी से विचलित नहीं होते हैं ।

बोलहिं मधुर सत्य बिचारी । सपनेउ नहिं सोचहिं पर नारी ॥
परधन परनारी विष समाना । तजहिं जेहि सुत जानि सुजाना ॥

व्याख्या - जो विचार कर मधुर सत्य बोलते हैं और सपने में भी परनारी का चिन्तन नहीं करते हैं तथा पराये धन व परायी स्त्री को विष के समान जान कर त्याग कर देते हैं, उनको सज्जन पुरुष मानना चाहिए ।

ते जनु सदा मोहि प्रिय सुहाई । बिनु हेतु मैं कृपा बरसाई ॥
गुरु आयुष पालहिं मन लाई । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ किछु नाई ॥

व्याख्या - ऐसे लोग मुझे सदैव प्रिय होते हैं और मैं उन पर बिना कारण के ही कृपा करता हूँ । जो मन लगा कर गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।

दो०- गुरु गोरक्ष गुरु शिव हय गुरु हृदय मोर शक्ति अपार ।
मोर कृपा सतगुरु मिलै सहजहिं करावइ भव पार ॥ ५० ॥

व्याख्या - गुरु ही इन्द्रियों के रक्षक व गुरु ही कल्याणकारी हैं । क्योंकि गुरु के हृदय में मेरी अपार शक्ति निवास करती है । मेरी कृपा से ही सत्गुरु की प्राप्ति होती है, जो सरलता से ही भव सागर पार करा देते हैं ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण त्रिंशत पड़ाव ॥

मैं रुठउँ गुरु लेवइ बचाई । करि विनय मोहि लेइ रिझाई ॥
रुठहिं गुरु नहिं किछु उपाई । कहउँ सुत तोहि सत्य बताई ॥

व्याख्या - मैं अगर नाराज हो जाऊँ, तो गुरु विनय करके मुझे प्रसन्न करके बचा लेते हैं । परन्तु गुरु नाराज हो जाने पर कोई उपाय नहीं है । हे वत्स ! मैं यह

सत्य बता रहा हूँ ।

गुरु कृपा सदा शुभ फलदाई । धन्य जेहि जनु गुरु कृपा पाई ॥
गुरु बनि जो करहिं व्यवसाया । निज जाल निजहहिं फँसाया ॥

व्याख्या - गुरु की कृपा हमेशा शुभ फल देने वाली होती है । अतः वे लोग धन्य हैं, जो गुरु की कृपा प्राप्त कर लेते हैं । गुरु बन कर परन्तु जो लोग व्यवसाय करते हैं, वे स्वयं अपने बनाये हुए जाल में फँस जाते हैं ।

गुरु बधिर शिष्य अन्धरा बनाई । ते जनु सकहिं कि मुक्ति पाई ॥
उभय करहिं जग ठेलम ठेला । गुरु की गुरु भोगहिं चेला की चेला ॥

व्याख्या - गुरु बहरा और शिष्य अन्धा बनने पर क्या वे लोग मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं ? दोनों मिल कर संसार में धक्का-धक्की करते रहते हैं और गुरु की करनी गुरु भोगता रहता है और चेला की करनी चेला भोगता रहता है ।

गुरु निर्मल मोर रूप सुहाई । निसि दिवस करै शिष्य भलाई ॥
सत्‌गुरु भरहिं न कहीं मेला । मम पद मन रहहिं अकेला ॥

व्याख्या - निर्मल गुरु मेरा ही रूप होता है, जो रात-दिन शिष्य की भलाई की सोचता रहता है । सत्‌गुरुओं के कहीं मेले नहीं भरते हैं । सच्चा गुरु तो मेरे चरणों में मन लगा कर अकेला ही रहता है ।

दो०- भाग्य जगे सत्‌गुरु मिलै सब विधि जो करै उपकार ।
भाव संताप सकल मिटावइ सहज मिलइ पदारथ चार ॥ ५१ ॥

व्याख्या - भाग्य के जगने पर ही सत्‌गुरु मिलते हैं । जो शिष्य का सब प्रकार से उपकार करते हैं और भावों के संताप को मिटा देते हैं । जिससे सरलता से चारों पदार्थो की प्राप्ति हो जाती है ।

दो०- गुरु वचन विश्वास रखि करहहिं नाम जप अरु ध्यान ।
तिन्ह मन कल्मष मिटै पावहहिं निज हियँ ब्रह्म ग्यान ॥ ५२॥

व्याख्या - गुरु के वचनों में विश्वास रख कर, जो नाम जप व ध्यान करते हैं, उनके मन के विकार मिट जाते हैं तथा उन्हें हृदय में ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

नाम मरम नाथ तुम बताई । ध्यान मरम अब देउ सिखाई ॥
सरल सुगम हो विधि हितकारी । सोइ कहउ नाथ संकट हारी ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आपने नाम का रहस्य तो बता दिया, अब मुझे ध्यान के रहस्य को सिखा दीजिए । ध्यान की विधि सरल व सुगम हो तथा सबका हित करने वाली हो । अतः हे प्रभु ! संकट दूर करने वाली विधि कहिए ।

मोर ध्यान विधि सुत अनेका । सरल सकल भल एक ते एका ॥
मोर भयउ भगत शिव असुरारि । हुआ न कोइ होइब न अगारी ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मेरे ध्यान की अनेक विधियाँ हैं तथा सभी सरल व एक से एक अच्छी हैं । शिव मेरा बहुत प्रिय भक्त हुआ है । जैसा न कोई हुआ है और न कोई होगा ।

मन मस्त सदा ध्यान मगनाई । अजहुँ अबहु रहइ सदाई ॥
नाना विधि गवेषणा कीन्ही । श्रद्धा अनुसार फल सब दीन्ही ॥

व्याख्या - वह मन में मस्त व ध्यान में आज भी मगन रहता है । उसने बहुत सी ध्यान विधियों की खोज की है, जो श्रद्धा के अनुसार फल देने वाली हैं।

सोइ सुत कहउँ इहाँ बखानी । करि अनुभव शिव निज जानी ॥
मन निर्मल नहिं भाव दिखावा । करहिं जेहि तुरत फल पावा ॥

व्याख्या - हे व त्स ! उसी विधि को मैं तुम्हें यहाँ बताता हूँ । जिसको अनुभव करके स्वयं शिव ने जाना है । जो मन को निर्मल करके, दिखावा नहीं करके करते हैं, उन्हें तुरन्त फल की प्राप्ति हो जाती है।

दो०- मन पसन्द आसन बैठि करि मन लावहउ विनय विचार ।
अकथ अगाध अनन्त प्रभु लेवहउ मोहि शरण तिहार ॥ ५३॥

व्याख्या - मन पसन्द आसन पर बैठ कर मन में विनयपूर्वक विचार लाना चाहिए कि हे अकथ, अनन्त प्रभु ! मुझे आपकी शरण में ले लीजिए ।

आवत जावत संभारउ श्वासा । नयन बन्द करु सहज आभासा ॥
लेवउ छाड़उ श्वास गभीरा । करहु क्रिया बार छठ इहँ धीरा ॥

व्याख्या - आती हुई व जाती हुई श्वास को अनुभूत करना चाहिए तथा नयन बन्द करके सहजता का आभास करें । छः बार गहरी श्वास लें और छोड़ें ।

पुनि लेवहउ सहज श्वासा । आवत जावत करउ आभासा ॥
मुख बन्द स्थिर करि रसना । करउ शुरू अब नाम जपना ॥

व्याख्या - फिर दोबारा सहज श्वास लें तथा आने-जाने वाली श्वास को अनुभूत करें। फिर मुँह बन्द करके जिह्वा को स्थिर कर लें और नाम का जप शुरू कर दें ।

नाम जपहिं जीभ्या न हिलाई । मन तन नहिं होवइ तनाई ॥
नाम संग लेउ श्वास मिलाई । सहजहिं सहज ध्यान लगाई ॥

व्याख्या - नाम का जप करें, परन्तु जिह्वा नहीं हिले तथा मन व शरीर में तनाव नहीं हो । अब नाम के साथ श्वास को मिला दीजिए, जिससे सहजता

से ही ध्यान लगने लग जायेगा ।

उभय घरी करहिं अभ्यासा । पावहहिं ग्यान हियँ अनयासा ॥
रिद्धि सिद्धि सब सहजहिं आई । साधक सिद्धि इहँ सरल उपाई ॥

व्याख्या - दो घड़ी नित्य अभ्यास करने पर हृदय में अचानक ज्ञान पैदा हो जाता है और सहज में ही समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ आ जाती हैं। साधक की सिद्धि का यह बहुत सरल उपाय है ।

दो०- अहो भाव मन लाइ करि मोहि करै प्रगट आभार ।
धीरे धीरे नयन खोलहहिं पुनि निज लहहिं संभार ॥ ५४ ॥

व्याख्या - मन में अहो भाव लाकर मुझ परमात्मा के प्रति आभार व्यक्त करें तथा धीरे-धीरे आँखें खोल कर पुनः अपने आपके प्रति सचेत हो जायें ।

कर्ता जानि मोहि मन माहिं । करहहिं कर्म सहज सबाहिं ॥
मन लावहिं इहँ दृढ़ विचारा । मैं कर्ता सकल कर्म व्यवहारा ॥

व्याख्या - मुझे अपने मन में सब कुछ करने वाला जान कर, सब कर्म सहज होकर करें तथा मन में यह दृढ़ विचार लें आयें कि मैं परमात्मा ही समस्त कर्म व्यवहार का कर्ता हूँ ।

मोहि सुमरि करहिं सब काजा । तिन्ह रखहउँ सब विधि लाजा ॥
गुण अमार समझहिं निज दोषा । हियँ रखहहिं सहज संतोषा ॥

व्याख्या - जो मेरा स्मरण करके सब कार्य करते हैं, मैं उनकी सब प्रकार से लाज रखता हूँ । जो गुण तो मेरे जाने और दोष स्वयं के माने तथा हृदय में संतोष भाव रखें ।

ते सज्जन अति प्रिय मोहि सुहाई । करउँ कृपा भव बन्ध कटाई ॥
निज सहहिं दूसर कष्ट न देही । तिन्ह रखहउँ विशेष स्नेही ॥

व्याख्या - ऐसे लोग मुझे बहुत प्रिय होते हैं । अतः मैं उन पर कृपा करके भव बन्धन काट देता हूँ । जो स्वयं कष्ट सह कर भी दूसरों को कष्ट नहीं देते हैं, उन पर मैं विशेष स्नेह रखता हूँ ।

निमिष निमिष मोहि करहिं यादा । कबहुँ न ब्यापइ तिनु बाधा ॥
दूसर जेहि करहहिं सन्माना । पावहहिं ते जग यश नाना ॥

व्याख्या - जो क्षण-क्षण मुझे याद करते हैं, उनको कभी कोई कष्ट नहीं हो सकता है । जो दूसरों को सम्मान देते हैं, वे संसार में नाना यश प्राप्त करते हैं ।

दो०- विधि विधान सुतन्त्र अति विधि ही कर्म फल दिलाय ।
भाव भल रखि कर्म करहि तेहि जनु भल ही फल पाय ॥ ५५॥

व्याख्या - विधि का विधान स्वतन्त्र होता है और विधि ही कर्म का फल प्रदान करती है । अतः जो अच्छा भाव रख कर कर्म करते हैं, उनको अच्छे फल की प्राप्ति होती है ।

विधान सुतन्त्र मैं दृष्टा सुहाउँ । सुख दुःख कबहु न उरझाउँ ॥
लोक बिरथा मोहि दोष लगाई । जानहिं नहिं निज कारण सुहाई ॥

व्याख्या - विधि का विधान स्वतन्त्र होता है और मैं तो मात्र दृष्टा बन कर रहता हूँ, इसलिए कभी भी सुख दुःख में नहीं उलझता हूँ । लोग व्यर्थ में ही मुझे दोष लगाते हैं । क्योंकि वे जानते ही नहीं हैं कि स्वयं ही सुख-दुःख का कारण होते हैं।

भाव देखि करूँ मैं हस्तक्षेपा । नहिं रखउँ किछु अरु अपेक्षा ॥
समर्पण देखि विधान बदलाउँ । भगति अनुसार फल दिलाउँ ॥

व्याख्या - मैं जीव की भावना देख कर विधान में हस्तक्षेप करता हूँ। क्योंकि मेरी और कोई अपेक्षा नहीं रहती है । मैं समर्पण का भाव देख कर ही विधान को बदलता हूँ और जीव को उसकी भक्ति के अनुसार फल प्रदान करता हूँ ।

प्रकृति पार मैं मुक्त विधाना । इहँ मरम अपार सुजाना ॥
जेहि जानि आवहहिं शरणाई । तिन्ह कहउँ सुलभ सब भाई ॥

व्याख्या - मैं तो प्रकृति से परे व विधान से मुक्त हूँ । यह मेरा परम रहस्य है। जो मेरे इस रहस्य को जानते हैं, वे मेरी शरण में आ जाते हैं और उनके लिए सब कुछ प्राप्त हो जाता है ।

निर्मल मन सुमरहिं जेहि मोही । मन चिन्तइ सोइ सब होही ॥
प्रकृति पालहिं आयुस मोरी । मानहि नहिं मूढ़ समझ जिन थोरी ॥

व्याख्या - जो निर्मल मन से मेरा स्मरण करते हैं, उनके सब कार्य मन के चिन्तन के अनुसार हो जाते हैं । प्रकृति मेरी समस्त आज्ञाओं का पालन करती है । परन्तु जो मूर्ख होते हैं, वे इसे नहीं मानते हैं ।

दो०- अस्ति नास्ति नाम रूपादि मूढ़ जन बिरथा उलझाई ।
सब तजि शरण जे आवहिं तिन्ह होइ सब विधि भलाई ॥ ५६ ॥

व्याख्या - मैं हूँ, नहीं हूँ तथा नाम व रूप आदि के विवाद में मूर्ख लोग व्यर्थ में ही उलझते हैं । अतः जो सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जाते हैं, उनका सब प्रकार से भला हो जाता है ।

दया दान परहित रखहिं भावा । तिन्ह नहिं होवइ गृह अभावा ॥
मैत्री भाव रखहहिं मन माहीं । नहिं जग रिपु उनके सुहाहीं ॥

व्याख्या - जो दया, दान और परहित के भाव रखते हैं, उनके घरों में किसी

प्रकार का अभाव नहीं होता है तथा जो मन में मैत्री भाव रखते हैं, उनके संसार में कोई दुश्मन नहीं होते हैं ।

बिरथा करहिं नहिं वाद विवादा । पंथ मतादि चिन्तन काह लाभा ॥
रहहिं शरण बिगत सब बाधा । मरम सरल नहिं किछु ज्यादा ॥

व्याख्या - पंथ आदि के चिन्तन का क्या लाभ है ? यह सोचकर जो व्यर्थ वाद-विवाद नहीं करते हैं और मेरी शरण में रहते हैं, उनकी सब बाधाएँ मिट जाती हैं । यही सीधा-सा रहस्य है, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है ।

नाम रूप जानि सकल मरमा । भल सोइ पालहिं प्रकृति धरमा ॥
अस्ति नास्ति बिरथा गाल बजाई । रहवउ शरण सोइ सुखदाई ॥

व्याख्या - नाम व रूप के रहस्य को जान कर, अच्छा यही है कि प्रकृति के धर्म का पालन किया जाय । मैं हूँ या नहीं हूँ, तो व्यर्थ का विवाद होता है । मेरी शरण में रहना ही सुख देने वाला है ।

निज पावइ कष्ट दूसर न देही । तेहि जनु जगु बहु सुख लेही ॥
संक्षेपउ सब कहउँ बखानी । आवउ शरण तजि सब नादानी ॥

व्याख्या - जो स्वयं कष्ट पा लेते हैं, परन्तु दूसरों को कष्ट नहीं देते हैं, वे लोग संसार में बहुत सुख प्राप्त करते हैं । मैं संक्षेप में ही सब कहता हूँ कि सब नादानी छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ ।

दो०- आवत का सम्मान करै जावत नहिं मोह लगाय ।
यथा शक्ति सेवा करे सहज गृहस्थ सध जाय ॥ ५७ ॥

व्याख्या - आने वाले का सम्मान करें तथा जाने वाले से मोह नहीं करें तथा यथा शक्ति अतिथि की सेवा करने से सहजता से ही गृहस्थ धर्म का पालन हो जाता है।

गृहस्थ हेतु नीति समझाउँ । पालइब तिन्हहिं मुक्त कराउँ ॥
बिनय विवेक करहिं आचारी । ताकहिं नहिं परधन पर नारी ॥

व्याख्या - अब मैं गृहस्थों के लिए नीति बताता हूँ । जो इसका पालन करेंगे, उनको मुक्त कर दूंगा । विनय व विवेक पूर्ण व्यवहार करना चाहिए तथा परायी स्त्री व पराए धन की तरफ देखना नहीं चाहिए।

गुरु पितु मातु करहिं सेवकाई । करहहिं न अभिमान भुलाई ॥
धर्म शास्त्र करहिं अनुसरणा । नाम जप ध्यान नित्य करना ॥

व्याख्या - माता-पिता और गुरु की सेवा करनी चाहिए तथा भूल कर भी अभिमान नहीं करें । जो इस धर्म शास्त्र का अनुसरण करते हैं और नित्य नाम का जप व ध्यान करते हैं ।

गुरु सम मानहिं इहँ शास्त्र जेहि । बिनु प्रयास सकल सुख लेहि ॥
पावन परम हय गंग समाना । स त्य सरूप मम बचन प्रमाना ॥

व्याख्या - गुरु के समान जो इस ग्रन्थ को मानते हैं, वे बिना प्रयास के ही समस्त सुखों को प्राप्त कर लेते हैं । यह शास्त्र गंगा के समान पवित्र है तथा सत्य का स्वरूप है और मेरे वचनों का प्रमाण है ।

इहँ शास्त्र धर्म वेद सुहाई । परम ते परम ग्यान बताई ॥
बुध जन हेतु ग्यान आधारा । साधक हेतु इहँ धर्म आचारा ॥

व्याख्या - यह शास्त्र धर्म का वेद है तथा परम से परम ज्ञान को इसमें बताया गया है । बुध जनों के लिए यह ज्ञान का आधार है तथा साधकों के लिए धर्म का आचरण है ।

दो०- सरल सुचि सुलभ अति सरस मधुर सुधा समान ।
ध्यान ग्यान मरम बुझाहिं इहँ सत्गुरु करि जान ॥ ५८ ॥

व्याख्या - यह शास्त्र सरल, पवित्र व सुलभ है तथा अमृत के समान सरस व मधुर है । यह ध्यान व ज्ञान के रहस्य को समझाने वाला है। इसलिए इसी को सत्गुरु मानना चाहिए ।

राज धर्म इहँ हेतु सरकारा । आचरण हेतु जग व्यवहारा ॥
सिद्ध जन हेतु इहँ सिद्धि मूला । करइ प्रकृति सब अनुकूला ॥

व्याख्या - सरकार के लिए यह राज धर्म है तथा आचरण के लिए जगत का व्यवहार है । सिद्ध लोगों के लिए यह समस्त सिद्धियों का मूल है तथा समस्त प्रकृति को अनुकूल करने वाला है ।

कामना पूर्ण कल्पतरू गाछा । कामधेनु सम इहँ भगत बाछा ॥
इहँ माझ मैं करहउँ निवासा । मोर नाम रूप सब भ्रम नासा ॥

व्याख्या - कामनाओं को पूर्ण करने के लिए यह कल्पतरू का पेड़ है तथा भक्त रूपी बछड़ों के लिए कामधेनु गाय है । मैं स्वयं इस ग्रन्थ में निवास करता हूँ तथा यह शास्त्र मेरे नाम व रूप के भ्रम को मिटाने वाला है ।

तन्त्र मन्त्र इहँ मरम बुझाई । गुरु कृपा बिनु हेतु बरसाई ॥
भूत प्रेतादि मिटहिं सब ब्याधा । कामद सिन्धु कहा कहुँ ज्यादा ॥

व्याख्या - यह शास्त्र तन्त्र व मन्त्र के रहस्य को समझाने वाला है तथा बिना कारण के भी गुरु कृपा बरसाने वाला है । इससे भूत, प्रेत आदि की बाधाएँ मिट जाती हैं । यह शास्त्र कामनाओं को पूर्ण करने के लिए समुद्र की तरह है । इससे ज्यादा और क्या कहूँ ?

इहँ शास्त्र पूजा मोर समाना। प्रगट रूप मोर जानि सुजाना ॥
जेहि पढ़हिं सुनहिं इक बारा। पावहहिं पुण्य फल अपारा ॥

व्याख्या - इस शास्त्र की पूजा मेरी ही पूजा के समान है। इसलिए इसे मेरा ही प्रकट रूप जानना चाहिये। जो लोग इसे एक बार भी पढ़ते व सुनते हैं, उनको अपार पुण्य-फल की प्राप्ति होती है।

दो०- सत कोटि रामायण सम सहस्र दस भागवत गीता समान।
वेद पुराण सकल मरम इहाँ वास बाइबिल अरु कुरान ॥ ५९ ॥

व्याख्या - यह शास्त्र करोड़ों रामायणों के समान व दस हजार भागवत व गीताओं के समान है तथा इसमें समस्त वेद व पुराणों का रहस्य है तथा इसमें बाइबिल और कुरान का निवास है।

सकल ग्रन्थ इहँ सार सुहाई। एहि सम एहि अरु कोउ नाई ॥
गृहस्थ हेतु कामधेनु गाई। पावहिं सकल जेहि मन आई ॥

व्याख्या - यह शास्त्र समस्त ग्रन्थों का सार है। इसलिए इसके समान तो यही है। गृहस्थ लोगों के लिए यह कामधेनु गाय की तरह है, जो मन की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण कराने वाला है।

साधक हेतु पथ मंजिल भाई। सरल प्रयास सकइ मोहि पाई ॥
इहँ ग्रन्थ महापंथ अखण्डा। मानहिं एक सकल ब्रह्मण्डा ॥

व्याख्या - साधकों के लिए यह मंजिल प्राप्त करने का रास्ता है, जिससे सरल प्रयास से ही मुझे प्राप्त कर सकते हैं। यह ग्रन्थ अखण्ड महापंथ है, जो समस्त ब्रह्माण्ड को एक अखण्ड मानने वाला है।

जेहि अनुसरहिं होइब संता। मुक्ति मार्ग सरल इहँ पंथा ॥
इहँ माझ रहइ शक्ति प्रचण्डा। सतावइ न भूत पिशाचादि चण्डा ॥

व्याख्या - जो इसका अनुसरण करेंगे, वे सन्त हो जायेंगे। यह मुक्ति प्राप्त करने के लिए बहुत ही सरल रास्ता है। इसके अन्दर प्रचण्ड शक्ति निवास करती है, इसलिए भूत, प्रेत, पिशाच आदि चाण्डाल परेशान नहीं कर सकते हैं।

सकल पंथ इहाँ आई मिलाई। नहिं भेद भाव इहाँ किछु भाई ॥
ग्रन्थ सब करहिं मोर ईसारा। प्रथम ग्रन्थ देइब सहारा ॥

व्याख्या - समस्त पंथ यहाँ आकर मिल जाते हैं, जिससे यहाँ कोई भेद भाव नहीं होता है। समस्त ग्रन्थ केवल मेरी तरफ इशारा करते हैं। परन्तु यह पहला ग्रन्थ है, जो साधकों को सहारा प्रदान करता है।

पंथ भ्रम परइब नहिं जोहि । ग्रन्थ इहँ देइब चावइ सोहि ॥
कामद सिंधु इहँ मोर सरूपा । अनुसरहिं पावहिं भगति अनूपा ॥

व्याख्या - जो लोग पंथो के भ्रम जाल में नहीं पड़ेगें, उनको यह ग्रन्थ मन चाहा फल प्रदान करेगा । कामना पूर्ण करने के लिए यह कामद सिन्धु है तथा मेरा ही स्वरूप है । इसलिए जो भी अनुसरण करेंगे, उनको अनुपम भक्ति प्राप्त होगी।

दो०- जेहि गृहस्थ नित्य पूजहिं मोर रूप जानि इहँ ग्रन्थ ।
पदारथ चारि सकल मिलहिं पाइब जग यश अनन्त ॥ ६०॥

व्याख्या - जो गृहस्थ लोग मेरा ही रूप जान कर इस ग्रन्थ की नित्य पूजा करेगें, उनको चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) प्राप्त हो जायेंगे तथा संसार में अनन्त यश की प्राप्ति होगी ।

निन्दा स्तुति इहँ उभय पारा । सत्य सनातन नहिं मोते न्यारा ॥
मंगल मूल सकल सुख दाई । चराचर सब कल्याण कराई ॥

व्याख्या - यह ग्रन्थ निन्दा व स्तुति दोनों से परे व सत्य-सनातन स्वरूप है तथा मुझ से अलग नहीं है । यह मंगल का मूल व सबको सुख देने वाला है तथा समस्त चराचर का कल्याण करने वाला है ।

मास दिवस जेहिं करहिं पाठा । पावहिं फल तीर्थ षष्ठी आठा ॥
जेहि पाठ करहिं बरस इक्कीसा । तिन्ह आइ मिलहुँ मैं जगदीसा ॥

व्याख्या - जो एक महीने इसका पाठ करते हैं, उनको अड़सठ तीर्थो का फल प्राप्त हो जाता है तथा जो इक्कीस वर्ष तक पाठ करते हैं, उनको मैं स्वयं आकर मिल जाता हूँ ।

श्रद्धा सह करहिं पाठ इकबारा । कटहहिं अघ सहस्र अपारा ॥
जेहि करहहिं पाठ अखण्डा । हियँ प्रगटइ शक्ति प्रचण्डा ॥

व्याख्या-जो श्रद्धापूर्वक एक बार पाठ करते हैं, उनके हजारों घोर पाप कट जाते हैं तथा जो अखण्ड पाठ करते हैं, उनके हृदय में प्रचण्ड दिव्यशक्ति पैदा हो जाती है।

जय रूप यश वैभव अपारा । धन धान्य सुख शान्ति परिवारा ॥
भगति ग्यान बिराग हियँ आई । ग्रन्थ पढ़हिं इहँ फल भाई ॥

व्याख्या - इस ग्रन्थ को पढ़ने से जय, रूप, यश, वैभव, धन-धान्य, सुख व परिवार में शान्ति आ जाती है तथा हृदय में भक्ति, ज्ञान व वैराग्य पैदा हो जाते हैं ।

दो०- सत्य सनातन इहँ शास्त्र जो कोई पढ़इब श्रद्धा लगाय ।
सकल मनोरथ पूर्ण होइब सहजहिं जीव भव तर जाय ॥ ६१ ॥

व्याख्या - यह शास्त्र सत्य व सनातन है। इसलिए जो श्रद्धा सहित इसे पढ़ेगें, उनके समस्त मनोरथ पूर्ण होगें तथा जीव सरलता से ही भव सागर पार कर जायेंगे।

छ०- मैं ही जगत जगत ही मैं सब विधि शास्त्र समझाइ दियो।
हिम अरु जल भिन्न अभिन्न बस एहि भांति मैं समाय रह्यो॥
जेहि खोजहिं घट निजहिं तेहि जनु बिनु प्रयास मोहि पाइ लियो।
पय घृत जिमि श्वासा प्राण बनि सब घट घट मैं ही ब्याप रह्यो॥

व्याख्या - इस शास्त्र ने अच्छी तरह सबको समझा दिया है कि मैं ही जगत हूँ तथा जगत ही मेरा स्वरूप है। जैसे बर्फ और जल अलग हैं और अलग नहीं भी हैं, उसी प्रकार मैं जगत में समाया हुआ हूँ। जो लोग स्वयं के हृदय में मुझे खोजते हैं, वे सहज में ही मुझे प्राप्त कर लेते हैं। जैसे दूध में घी होता है, वैसे ही मैं श्वास में प्राण के रूप में सबके हृदय में रहता हूँ।

छ०- श्रद्धा विश्वास हियँ राखि जेहि जनु मोहि नित्य ध्यावहहिं।
धर्म अर्थ काम मोच्छ पदारथ चारि सहजहहिं वे पावहहिं॥
विगत सब आस प्रबल हियँ विश्वास तिन्ह हेतु दुर्लभ किछु नाहीं।
सुख वैभव रूप यशादि मिलहिं धरम हियँ नित नव उमगाहीं॥

व्याख्या - जो लोग अपने हृदय में श्रद्धा -विश्वास रख कर नित्य मेरा भजन करते हैं, उनको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों पदार्थ सहज में ही मिल जाते हैं। जिनकी समस्त आशाएँ मिट जाती हैं तथा हृदय में मेरे प्रति प्रबल विश्वास हो जाता है, उनको संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। उनको सुख, वैभव, रूप व यश की प्राप्ति होती है तथा हृदय में नित्य प्रति धर्म पैदा होने लगता है।

छ०- इहँ शास्त्र पावन पाप नसावन सुगम सुलभ सब हेतु सदाई।
पढ़हिं सुनहिं गुनहिं जीवन सफल अक्षय पुण्य फल दिलाई॥
मिटावइ सब भेदा हरहिं खेदा इहँ आनन्द सरोवर जीव नहावई।
निज मुख में कहि जुगत सरल सब भव फन्द मुक्त करावई॥

व्याख्या - यह शास्त्र बहुत ही पवित्र है तथा पापों का नाश करने वाला है तथा सबके लिए सुगम व सुलभ है। जो लोग इसे पढ़ेगें, सुनेंगे व मनन करेंगे, उनको अक्षय पुण्य की प्राप्ति होगी। यह समस्त भेदों को मिटाने वाला व समस्त दुःखों को दूर करने वाला है। यह आनन्द सरोवर है, जिसमें जीव नहा सकते हैं। यहाँ स्वयं मैंने भव फन्दों से मुक्त कराने वाली सरल युक्तियाँ बतायी हैं।

दो०- कृत कृत्य अब मैं भयउँ सब विधि शरण तिहारी नाथ।
कर जोरि विनय करूँ सदा मोहि पर रखइव कृपा हाथ॥६२॥

व्याख्या - हे प्रभु ! अब मैं कृत कृत्य हो गया हूँ तथा सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ । मैं दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि आप सदा मेरे ऊपर आपका कृपा हस्त रखना ।

छ०- जोइ प्रेरहहि सोइ लिखहहि नहिं इहाँ प्रभु किछु मोर बड़ाई ।
गुरु दीन्ह सहारा इहँ मरम अपारा सकल जन देहुँ मैं बताई ॥
विनय करहउँ सत्य कहउँ गुरु कृपा ही भयी लेखनि सहाई ।
मैं अल्पज्ञ विषय रस कामी मूढ़ जन ही मोर यश गान कराई ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! जो आपने प्रेरित किया, मैंने तो वही लिखा है । अतः इसमें मेरा कोई बड़प्पन नहीं है । गुरुदेव ने कृपा करके मुझे सहारा प्रदान किया है, यह सत्य मैं सबको बता देता हूँ । मैं विनयपूर्वक सबको सत्य कह देना चाहता हूँ कि मेरी लेखनी में गुरु कृपा ही सहाय रही है । मैं तो अल्प बुद्धि और विषय रस की कामना में लिप्त हूँ, इसलिए मूर्ख लोग ही लेखन के लिए मेरा यशोगान करेंगे।

छ०- सब भाँति मैं कृत कृत्य भयउ नाथ अब इहँ बर माँगहुँ ।
जेहि करहिं शास्त्र प्रचार पावहिं तोर दुलार बस इहँ चावहुँ ॥
यश रूप वैभव तिन्ह गृह आइ सोइ कृपा नाथ बरसाइब ।
दीन दयाल सहज कृपाल भगति निष्काम तिन्ह दिलाइब ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! मैं सब प्रका से कृत-कृत्य हो गया हूँ, बस अब मैं आपसे यह वरदान मांगता हूँ कि जो इस शास्त्र का प्रचार करें, उनके ऊपर आपका स्नेह बना रहे तथा उनके घरों में यश, रूप व वैभव आ जाये, ऐसी अनुकंपा की वर्षा करना। हे दीनदयाल व सहज कृपालु ! आप उनको निष्काम भक्ति देना ।

दो०- एवमस्तु होइब सुत इहँ देवहउँ तोहि बचन मोर ।
यश रूप वैभव देइब भगति अनपायनि देइब ओर ॥ ६३ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! ऐसा ही होगा । मैं तुम्हें वचन देता हूँ । मैं उनको यश, रूप व वैभव दूँगा तथा मेरी अनपायनी भक्ति भी प्रदान करूँगा।

श्लोक -ब्रह्म अभिजायति ब्रह्म ब्रह्म रक्षन्ति ब्रह्म ।
ब्रह्म बदन्ति ब्रह्म ब्रह्म सत्यम् सत्यः ही ब्रह्म ॥ ६४ ॥

व्याख्या - ब्रह्म ही ब्रह्म को पैदा करता है तथा ब्रह्म ही ब्रह्म की रक्षा करता है और ब्रह्म ही ब्रह्म को बताता है, अतः ब्रह्म ही सत्य है और सत्य ही ब्रह्म है ।

श्लोक- सर्व जगतम् ब्रह्मः ब्रह्म ही व्यापकम् सर्व जगतम् ।
ब्रह्म भूतम् भूतः ही ब्रह्म सो सर्व जगतम् ब्रह्ममय ॥ ६५ ॥

व्याख्या - समस्त जगत ही ब्रह्म है और समस्त जगत में ब्रह्म ही व्याप्त है। ब्रह्म

ही भूत तत्व हैं तथा भूत तत्व ही ब्रह्म हैं। इसलिए समस्त संसार ब्रह्ममय है।

श्लोक - ब्रह्म ही भासति ब्रह्म ब्रह्म ही श्रवन्ति ब्रह्म ।
ब्रह्म ही लिखन्ति ब्रह्म ब्रह्म ही वर्णनन्ति ब्रह्म ॥ ६६ ॥

व्याख्या - ब्रह्म ही ब्रह्म को आभासित करता है तथा ब्रह्म ही ब्रह्म को सुनता है तथा ब्रह्म ही ब्रह्म को लिखता है ।

श्लोक - इदम सत्यम् सर्वम ब्रह्मः च ब्रह्ममयं सर्वम ।
इदम ग्रन्थः वर्णनन्ति ब्रह्म सो इदम् ब्रह्मम् ॥ ६७ ॥

व्याख्या - यह सत्य है कि सभी ब्रह्म हैं और सब कुछ ब्रह्ममय ही है। इस ग्रन्थ में ब्रह्म का ही वर्णन है । इसलिए यह ग्रन्थ ब्रह्म ही है ।

दो०- श्रद्धा विश्वास हियँ रखहि नित्य करहिं धर्मशास्त्र पाठ ।
ते गृहस्थ सहजहिं पाइब मोर कृपा सब अपने आप ॥ ६८ ॥

व्याख्या - जो गृहस्थ लोग श्रद्धा व विश्वास के साथ नित्य धर्म शास्त्र का पाठ करेगें, वे गृहस्थ सहज में ही मेरी सब प्रकार से कृपा प्राप्त कर लेंगें।

कहउँ अरु जुगति हितकारी । मिटहिं कल्मष गृहस्थ सारी ॥
सहज सरल मारग बताउँ । अनुसरइब जेहि भव पार लगाउँ ॥

व्याख्या - अब मैं जनकल्याणकारी उपाय और बताता हूँ, जिससे गृहस्थ लोगों के सब विकार मिट जायेंगे । मैं बहुत ही सरल व सुगम रास्ता बता रहा हूँ, जिसका अनुसरण करने वालों को मैं भव सागर से पार कर दूँगा ।

पूजा जप तप मख विधि आदि । नहिं दरकार तहँ घृत बातादि ॥
निर्मल मन सोई साधना मूला । मिटहिं सहज सकल जग शूला ॥

व्याख्या - वहाँ पर पूजा, जप, तप, यज्ञ व दीपक-बाती आदि की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि मन की निर्मलता ही साधना का मूल होती है, जिससे ही संसार के सब कष्ट मिट जाते हैं ।

सार इहँ मैं ब्रह्म अखण्ड अनादि । आवइ शरण मिटहिं सब ब्यादि ॥
मन जगत मन हेतु भगवाना । सुनहउ सुत इहँ सत्य ग्याना ॥

व्याख्या - सारतत्व तो यह है कि मैं ब्रह्म तो एक, अखण्ड व अनादि हूँ इसलिए जो मेरी शरण में आते हैं, उनके सब कष्ट मिट जाते हैं । मन के कारण ही संसार का आभास होता है और मन से ही भगवान का आभास होता है । हे वत्स ! यह सत्य ज्ञान है ।

निज मन अनुरूप जग सारा । मन इन्द्रियन विलास संसारा ॥
सो मन निर्मल करन दरकाई । इहँ भगति मारग एक उपाई ॥

व्याख्या - स्वयं के मन के अनुसार सारा जगत दिखाई पड़ता है क्योंकि यह समस्त संसार तो मन व इन्द्रियों का खेल मात्र है । इसलिए मन को निर्मल करने की आवश्यकता होती है और मन की निर्मलता ही भक्ति प्राप्त करने का एक मात्र रास्ता होता है ।

दो०- **निर्मल मन भगति मिलै भगति हय सकल सुख खान ।**
मन निर्मल जेहि जनु कीन्हे पाइ गयउ सब पद निर्वान ॥ ६९ ॥

व्याख्या - निर्मल मन से ही भक्ति की प्राप्ति होती है और भक्ति ही सब सुखों की खान होती है । जिन्होंने भी मन को निर्मल किया है, वे सब मोक्ष के पद को प्राप्त कर लिये हैं ।

निर्मल मन हेतु कहुँ जुगति । पालहिं ताहि मिलइब भगति ॥
प्रथम जुगत सत्गुरु ग्याना । दूसर उपाय नित्य मोर ध्याना ॥

व्याख्या - अब मैं मन को निर्मल करने के उपाय बताता हूँ, जिनका अनुसरण करने से भक्ति प्राप्त हो जायेगी । पहला उपाय तो सत्गुरु से ज्ञान प्राप्त करना है तथा दूसरा उपाय नित्य मेरा ध्यान करना है।

तीसर जुगत करहिं प्राणायामा । चउथ उपाइ निरस सब कामा ॥
पंचम मारग करहिं सत्संगा । छठ साधन मोर भरोस अभंगा ॥

व्याख्या - तीसरा उपाय नित्य प्राणायाम करना है तथा चौथा उपाय विषय रस में निरसता का भाव लाना है । पाँचवा उपाय सत्संग करना तथा छठा उपाय मुझ परमात्मा पर पूर्ण भरोसा करना है ।

सप्तम हियँ संतोष सदाई । संग्रह त्याग विचार किछु नाई ॥
अष्टम मोर समर्पण भावा । रहवहिं सदा सहज सुभावा ॥

व्याख्या - हृदय में सदा संतोष का भाव रखना तथा संग्रह व त्याग का कुछ भी विचार नहीं करना, सातवाँ उपाय है । मुझ परमात्मा के प्रति पूर्ण रूप से समर्पण करके सदा सहज स्वभाव में रहना आठवाँ उपाय है ।

मोहि छाड़ि जग कोउ दूसर नाहीं । इहँ ध्यान ग्यान भगति सबाहीं ।
सरल मारग मैं दियेउ बताई । आचरहिं आव मन निर्मलताई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मुझे छोड़कर संसार में दूसरा कोई नहीं है, यह भाव ही ध्यान, ज्ञान व भक्ति का मूल होता है । मैंने बहुत सरल रास्ता बता दिया है, जो भी अनुसरण करेंगे, उनके मन में निर्मलता आ जायेगी ।

दो०- **कथनी कथै करणी न करै तिन्ह नहिं किछु लाभ सुहाय ।**
जेहि करइब सोहि पाइब जुगति सब सत्य दियेउँ बताय ॥ ७० ॥

व्याख्या - जो लोग केवल कहते हैं परन्तु आचरण नहीं करते हैं, उनको कुछ लाभ नहीं होता है। जो आचरण करेंगे, वे ही लाभ प्राप्त करेंगे, मैंने तो सब सत्य उपाय बता दिये हैं।

धन्य नाथ मोहि उपाय बताई। कृपा करि विधि देहु समुझाई ॥
केहि विधि पावइ सत्गुरु ग्याना। कहउ समुझाय कृपा निधाना ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप धन्य हैं कि आपने मुझे उपाय बता दिये हैं, परन्तु नाथ कृपा करके मुझे विधि भी बता दीजिए कि किस प्रकार से सतगुरु के ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। हे कृपा निधान ! आप समझा कर कहिये।

मन वच कर्म गुरु शरणाई। परम ग्यान हियँ प्रगटाई ॥
श्रद्धा सह सतगुरु वचन विश्वासा। हियँ उमगहि ग्यान अनयासा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मन, वचन व कर्म से गुरु की शरण में जाने पर हृदय में परमज्ञान प्रकट हो जाता है। श्रद्धा पूर्वक गुरु के वचनों पर विश्वास करने से हृदय में अपने-आप ही ज्ञान आने लग जाता है।

ज्यों ज्यों बढ़हहिं श्रद्धा दिनुराति। त्यों त्यों हियँ ग्यान उमगाती ॥
समर्पण भाव मारग सरला। पावहिं ग्यान बाल बृद्ध अबला ॥

व्याख्या - ज्यों-ज्यों रात दिन श्रद्धा बढ़ती है, त्यों-त्यों हृदय में ज्ञान पैदा होने लगता है। समर्पण का भाव ही सरल रास्ता होता है, जिस पर चल कर बालक, बूढ़े व स्त्रियाँ सभी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अब कहउँ विधि ईश्वर ध्याना। करइब जेहि पाइब सुख नाना ॥
ई उ स्वर सो ईश्वर कहाई। स्वर आभास सोइ ध्यान लगाई ॥

व्याख्या - अब मैं मुझ परमात्मा के ध्यान करने की विधि बता देता हूँ, जो भी इसका पालन करेंगे, उनको ही सुख प्राप्त होगा। ई और उ अर्थात चन्द्र और सूर्य ही ईश्वर कहलाते हैं तथा इन दोनों स्वरों को आभासित करने से ही तुरन्त ध्यान लग जाता है।

दो०- आवत जावत श्वास समारहि लगहि ध्यान सहज प्रयास।
स्वर सेहि प्रकृति चलत हय सो प्रकृति बस होइ अनायास ॥ ७१ ॥

व्याख्या - आने-जाने वाली श्वास को देखने पर सहज में ध्यान लग जाता है क्योंकि स्वरों के माध्यम से प्रकृति चलती है, इसलिए स्वरों के द्वारा प्रकृति सहज में ही वश में हो जाती है।

प्राण मरम अब कहुँ समुझाई। त्रिगुण ग्रन्थि जाई निरुआई ॥
हृदय देश सोइ प्राण निवासु। सकल भाव तहँ करत विलासु ॥

व्याख्या - अब मैं प्राणों के रहस्य को समझाता हूँ, जिससे तीनों गुणों की गाँठ खुल जायेगी। हृदय देश ही प्राणों का निवास स्थान होता है, जहाँ पर सभी भाव क्रीड़ा करते रहते हैं।

सौ एक निकसहिं हियँ ते नारी। सोइ सब जानि मन वृत्ति सारी॥
प्रति वृत्ति सदा भाव उपजाई। सौ कारण सोइ सौभाव कहाई॥

व्याख्या - हृदय देश से एक सौ नाड़ियाँ निकलती हैं और वे सभी मन की वृत्ति बनाती हैं। प्रत्येक वृत्ति के अनुसार भाव पैदा होते हैं, इसलिए सौ वृत्तियों के भावों को सौभाव (स्वभाव) कहते हैं।

सौभाव ही भयउ स्वभावा। जानहि जेहि मन बस आवा॥
ईड़ा पिंगला सुषमना नारी। त्रिगुण सोइ बहत सदा बयारी॥

व्याख्या - सौ भाव ही बोलचाल की भाषा में स्वभाव कहा जाने लगा है। जो सौभावों के मर्म को जान लेते हैं, उनके मन वश में आ जाता है। ईड़ा, पिंगला और सुष्मना नाड़ियों के माध्यम से ही त्रिगुणी (सत, रज व तम) हवा चलती रहती है।

त्रिगुण मय सब सृष्टि सुहाई। त्रिनारी त्रिधार कारण हय भाई॥
ईड़ा पिंगल जब होई इकसारा। खुलहि तबहि सुषमना द्वारा॥

व्याख्या - तीन नाड़ियों के माध्यम से गुणों की तीन धाराएँ (सत, रज व तम) बहती रहती हैं, इसलिए समस्त सृष्टि त्रिगुणमयी होती है। जब ईड़ा व पिंगला एक समान हो जाती हैं, तो सुष्मना नारी का द्वार खुल जाता है।

प्राण मरम तब परै बुझाई। सहजहि हृदय ग्यान उमगाई॥
प्राण आधार सकल संसारा। प्राणमय हय चराचर सारा॥

व्याख्या - तब प्राण का रहस्य समझ में आ जाता है तथा सहजता से ही हृदय में ज्ञान पैदा हो जाता है कि समस्त संसार का प्राण ही आधार है तथा समस्त चराचर भी प्राणमय ही है।

दो०- प्राण ही मन इन्द्रियादि जनक प्राण ही सूक्ष्म देह आधार।
प्राणमय सकल जगत हय प्राण तेही बनहि सब देह आकार॥ ७२॥

व्याख्या - प्राण ही मन व इन्द्रियों को पैदा करते हैं तथा प्राण ही सूक्ष्म शरीर के आधार होते हैं। यह समस्त संसार ही प्राणमय होता है तथा प्राण से ही समस्त शरीरों का आकार बनता है।

प्राण भेद सुत दसहिं प्रकारा। दिशा दस जाहि निगम पुकारा॥
अपान समान उदान के रूपा। व्यान नाग कूर्म प्राण अनूपा॥

व्याख्या - प्राण दस प्रकार के होते हैं, इसलिए ही वेदों ने दस दिशाओं का वर्णन

किया है । अपान, समान, उदान, व्यान, नाग कूर्म व प्राण, ये प्राण वायु के अनुपम रूप हैं ।

कृकर देवदत्त धनंजय होई । सकल प्राण प्रकार सुत सोई ॥
सकल जगत हय प्राण पसारा । बरनिन जाइ महिमा अपारा ॥

व्याख्या - कृकर, देवदत्त व धनंजय ये सब प्राण के प्रकार हैं । समस्त संसार प्राण का ही प्रसार है, इसलिए प्राण की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

श्वास बनि सकल देह समाई । पाचन रस रजादि काज सबाई ॥
हृदय अरु मुख मण्डल छाई । पान सोइ जीवन जीव सुहाई ॥

व्याख्या - प्राण ही श्वास के रूप में समस्त शरीर में व्याप्त रहती है। प्राण से ही पाचन क्रिया, रस बनना व पसीना आदि बनने के कार्य होते हैं । हृदय और मुख मण्डल पर जो छाई रहती है, वह पान वायु होती है, जो जीव का जीवन होती है ।

सकल इन्द्रिय बस जो राखहिं । ताहि नाम अपान बखानहिं ॥
नवल भाग वायु समान सुहाई । रसादि वितरण काज कराई ॥

व्याख्या - जो समस्त इन्द्रियों को संचालित करती है, वह अपान वायु कहलाती है । नाभी मण्डल में समान वायु निवास करती है, जो भोजन से तैयार रस का वितरण शरीर के अंगों को करती है ।

दो०- अपान प्रबल वासना बढ़ै तेज बढ़हि जो समान प्रबलाय ।
प्राण प्रबल भगति बढ़हि सहजहि जीव आनन्द पाय ॥ ७३॥

व्याख्या - अपान वायु प्रबल होने से वासनाएँ बढ़ने लग जाती हैं तथा समान वायु प्रबल होने से तेज प्रबल हो जाता है । प्राण वायु के प्रबल होने से भक्ति बढ़ने लग जाती है, जिससे जीव सहज में ही आनन्द पाने लग जाता है ।

उपस्थ मूल व्यान पुकारहिं । सकल अंग लहू संचारहिं ॥
कण्ठ करहि उदान निवासा । सूच्छम देह कराई आभासा ॥

व्याख्या - उपस्थ मूल पर व्यान वायु निवास करती है, जो शरीर के समस्त अंगों को रक्त का संचार करती है । कण्ठ प्रदेश में उदान वायु निवास करती है । जो सूक्ष्म शरीर का आभास कराती है ।

व्यष्टि जुरहिं समष्टि संगा । जे जनु जानहिं उदान प्रसंगा ॥
सूच्छम देह भ्रमण संभव होई । जन्म पाछिल बतावइ सोई ॥

व्याख्या - जो लोग उदान वायु के प्रसंग को जान लेते हैं, तो उनकी व्यष्टि प्राण वायु समष्टि प्राण वायु के साथ मिल जाती है, जिससे सूक्ष्म शरीर में भ्रमण

सम्भव हो जाता है तथा पिछले जन्म का ज्ञान हो जाता है ।

कूर्म संकोच उद्‌गार नागा । कृकर क्षुधा तृष्णादि जागा ॥
देवदत्त उपजावइ निदरा । पोषणादि काज धनंजय मुदरा ॥

व्याख्या - कूर्म प्राण वायु से शरीर के संकोचन का कार्य होता है तथा उद्‌गार नाग प्राण वायु का कार्य है । कृकर से भूख व प्यास लगती है । देवदत्त से नींद आती है तथा धनंजय प्राण वायु से पोषण आदि के कार्य होते हैं ।

कूर्म रहइ सकल शरीरा । कृकर बास उदर मति धीरा ॥
देवदत्त ब्रह्मरन्ध्र निवासी । मूलाधार सोइ धनंजय वासी ॥

व्याख्या - कूर्म प्राण वायु समस्त शरीर में रहती है तथा कृकर पेट में निवास करती है । देवदत्त ब्रह्मरन्ध्र में निवास करती है तथा मूलाधार पर धनंजय प्राण वायु होती है ।

दो०- प्राणायाम करहिं जेहि जनु तेही पावहिं प्राण ग्यान ।
मन इन्द्रयादि बस होवहिं सहज मिलै पद निर्वान ॥ ७४॥

व्याख्या - जो लोग प्राणायाम करते हैं, उनको प्राण का ज्ञान हो जाता है, जिससे मन व इन्द्रियाँ वश में हो जाती है और सहज में ही निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है ।

त्रिभुवन तीनि लोक जग माहीं । सकल तन अन्दर बाहिर नाहीं ॥
कटि नीचे अंग सकल पाताला । उदर वक्ष सो धरनी विसाला ॥

व्याख्या - जो तीन भवन और तीन लोक संसार में बताये गये हैं, वे सब शरीर के अन्दर ही होते हैं, बाहर नहीं होते हैं । कमर से नीचे के समस्त अंग पाताल हैं तथा पेट और छाती वाला भाग ही पृथ्वी लोक है ।

सीस ब्रह्माण्ड आकाश कहाई । लोक भुवन सब देह बसाई ॥
जीवन मन इन्द्रियन जाला । चेतन आत्मा एक रस निराला ॥

व्याख्या - मस्तिष्क ब्रह्माण्ड लोक है, जिसे आकाश कहा जाता है । इस प्रकार तीनों लोक शरीर में ही होते हैं । जीवन तो मन और इन्द्रियों का जाल मात्र होता है क्योंकि चेतन आत्मा तो एकरस व निराली होती है ।

प्राण ते मन मन ते इन्द्रियाँ सारी । सोइ ग्यान कर्म उभय प्रकारी ॥
वेद मत सो ज्ञानेन्द्रियँ भाई । इन्द्रियाँ कर्म लोकमत कहाई ॥

व्याख्या - प्राण से मन पैदा होता है और मन से इन्द्रियाँ पैदा होती हैं तथा उसी से ज्ञान और कर्म पैदा होते हैं । ज्ञानेन्द्रियाँ वेदमत कहलाती हैं और कर्मेन्द्रियाँ

लोकमत कहलाती हैं ।

प्राण मरम जब परइ जाना । मन उमंग जाइ नहिं बखाना ॥
निर्मल प्राण वासना मिटाई । सकहि जान तब मोर प्रभुताई ॥

व्याख्या - जब प्राण का रहस्य समझ में आ जाता है, तो मन में उमंग छा जाती है । प्राण की निर्मलता वासना को मिटा देती है तथा उसी से मुझ परमात्मा की प्रभुता समझ में आ पाती है ।

दो०- बिनु प्राण ग्यान के सुख दुःख जीत न सकै कोय ।
बिनु सुख दुःख जीतहि जग मुक्ति कबहु न होय ॥ ७५ ॥

व्याख्या - बिना प्राण के ज्ञान के सुख-दुःख को जीता नहीं जा सकता है और बिना सुख-दुःख से मुक्त हुए संसार में कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती है ।

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण एकत्रिंशत पड़ाव ॥

विधि प्राणायाम कहउँ समुझाई । करहि नित तन मन सुख पाई ॥
सकल जगत प्राणमय हय भाई । प्राणहि मन बुद्धि आधार सुहाई ॥

व्याख्या - अब प्राणायाम की विधि बताता हूँ, जिसको नित्य करने से मन व तन को सुख की प्राप्ति होगी । हे वत्स ! यह समस्त जगत प्राणमय होता है तथा मन व बुद्धि का आधार भी प्राण ही होते हैं ।

प्राण पावन तौ मन पावन ताई । मन पावन माया जाल निरुआई ॥
विगत माया सब मोहादि मिटाई । बिनु मोह जीव नहि दुःख पाई ॥

व्याख्या - अगर प्राण शुद्ध होते हैं, तो मन भी पवित्र हो जाता है और मन पवित्र रहने पर माया की गुत्थी सुलझ जाती है तथा माया के मिट जाने से मोह आदि विकार मिट जाते हैं और बिना मोह के जीव को कोई दुःख नहीं हो सकता है ।

रेचक पूरक करहिं छठ बारा । कुम्भक करहिं ताई अनुसारा ॥
माया प्रभाव होवहहिं निस्तारा । प्राणायाम विधि मूल इहँ सारा ॥

व्याख्या - रेचक व पूरक प्राणायाम को छः बार करें और उसी के अनुसार कुम्भक को भी छः बार करें । यह विधि ही प्राणायाम की मूल होती है, जिससे माया से छुटकारा मिल जाता है ।

अनुलोम विलोम मन सुखदाई । नाड़ी शोधन इहँ भल उपाई ॥
रक्तादि मिटहिं सकल विकारा । नित्य करहिं सुबह तीस बारा ॥

व्याख्या - अनुलोम-विलोम भी मन को सुख देने वाले होते हैं तथा नाड़ी शुद्धि के लिए उत्तम उपाय हैं । नित्य सुबह तीस बार करने से रक्त आदि सम्बन्धी

समस्त विकार मिट जाते हैं ।

कपाल भाति करहिं मन लाई । अधो गो चिन्तन बिसराई ॥
उदर रोग मिटहिं अनेका । प्राण उर्ध्व उपजई विवेका ॥

व्याख्या - जो मन लगा कर कपालभाति प्राणायाम करते हैं, तो उनका अधोइन्द्रिय चिन्तन मिट जाता है और पेट सम्बन्धी रोग मिट जाते हैं और प्राण उर्ध्वगामी होकर ज्ञान पैदा कर देता है ।

संयम नियम पालहिं नित्य नाना । करहिं प्राणायाम लगावहिं ध्याना॥
तिन्ह मन सहज निर्मलता आई । सुख पावन इहँ सरल उपाई ॥

व्याख्या - जो संयम-नियमों का पालन करके नित्य प्राणायाम करके ध्यान लगाने का अभ्यास करते हैं, उनके मन निर्मल हो जाते हैं । अतः सुख प्राप्त करने का यह बहुत ही सरल उपाय है ।

दो०- मज्जन पान स्ननादि करि जेहि जनु धरहि नित्य ध्यान ।
नित प्रति अभ्यास से तिन्ह हियँ उपजहिं परम ग्यान ॥ ७६ ॥

व्याख्या - जो स्नान आदि नित्य क्रिया करके रोजाना ध्यान करते हैं, तो नित्य अभ्यास से उनके हृदय में परमज्ञान पैदा हो जाता है ।

नाम जप करहिं नित्य ध्याना । छूटहिं सहज देह अभिमाना ॥
निज देह मरम परै बुझाई । सृष्टि सकल समझ तब आई ॥

व्याख्या - नाम का जप करते हुए नित्य ध्यान करने से सहज में ही देह का अभिमान छूट जाता है तथा स्वयं के शरीर का रहस्य समझ में आ जाता है, जिससे समस्त सृष्टि समझ में आ जाती है ।

तन अरु मन बाहिर किछु नाहीं । देह माझ सब मरम छुपाहीं ॥
पंच भूत अन्नमय हयँ सारे । उपजत ग्रह नक्षत्र सब तारे ॥

व्याख्या - शरीर और मन के बाहर कुछ भी नहीं होता है, क्योंकि समस्त रहस्य तो शरीर में ही छुपे रहते हैं । समस्त ग्रह-नक्षत्र व तारा मण्डल आदि सब पंच भूत के अन्न से ही बने हुए हैं ।

भूतमय हय स्थूल शरीरा । सूच्छम सोइ प्राणमय मतिधीरा ॥
पंच भूत प्राण दस प्रकारी । उभय मिलहिं बनइ देह सारी ॥

व्याख्या - यह स्थूल शरीर भूत तत्वों से बना होता है और सूक्ष्म शरीर प्राणमय होता है । भूत तत्व पाँच व प्राण दस प्रकार के होते हैं । भूत और प्राण दोनों के मिलने से शरीर बनता है ।

पंच भूत सोइ अन्न सुहाई । मनादि इन्द्रियाँ प्राण प्रगटाई ॥
अन्न संग जब प्राण मिलाई । वृत्ति अनुहार जीव जन्माई ॥

व्याख्या - पाँचों भूत तत्व मिलकर अन्न कहलाते हैं तथा मन व इन्द्रियाँ प्राण से पैदा होते हैं । इसलिए जब प्राण भूत तत्वों से मिल जाता है, तो वृत्ति के अनुसार जीव का जन्म हो जाता है ।

जेहि जनु जानिअ स्थूल मूला । तिन्ह नहिं ब्यापहि भवशूला ॥
जानहि जेहि मरम सब भूता । सोइ जीव पाव पद अवधूता ॥

व्याख्या - जो लोग स्थूल शरीर के रहस्य को जान लेते हैं, उन्हें संसार में कोई कष्ट नहीं सताते हैं । जो लोग पंच भूतों का रहस्य जान लेते हैं, उन्हें अवधूत का पद मिल जाता है ।

करहिं सिद्ध तत्व निज प्रयासा । पावहिं सिद्धि सकल अनयासा ॥
प्रति तत्व कहुँ मरम समुझाई । अनुसरइब जेहि जनु फलपाई ॥

व्याख्या - इसलिए जो लोग स्वयं प्रयास करके तत्वों को सिद्ध कर लेते हैं, उन्हें समस्त सिद्धियाँ मिल जाती हैं । अब मैं प्रत्येक तत्व के रहस्य को समझा कर बताता हूँ, जिसका जो भी अनुसरण करेंगे, उन्हें फल की प्राप्ति होगी।

पीत वर्ण चतुर्भुज मूलाधारा । मन्त्र लं० जाहि पृथ्वी विचारा ॥
होवइ सिद्ध गत मानस विकारा । भूव प्रतीक सुष्मना द्वारा ॥

व्याख्या - जो पीले रंग का व चतुर्भज के आकार का होता है और मूलाधार पर जिसका मूल स्थान होता है तथा मन्त्र लं० होता है, उसे पृथ्वी तत्व के नाम से जाना जाता है । पृथ्वी तत्व सिद्ध हो जाने से मानसिक विकार मिट जाते हैं तथा यह भू लोक का प्रतीक होता है और सुष्मना नाड़ी का द्वार होता है ।

अर्द्ध चन्द्राकार वर्ण अति सादा । गुण रस उपजाय मोहादि बाधा ॥

व्याख्या - जो अर्द्ध चन्द्राकार व सफेद रंग का होता है और जिसका गुण रस पैदा करना है तथा मोह आदि को पैदा करने वाला होता है।

दो०- कटु तिक्त अम्लादि गुण कर्मेन्द्रिय लिंग करि जानि ।
मन्त्र वं० ज्ञानेन्द्रिय जल वास तत्व स्वाधिष्ठानि ॥ ७७ ॥

व्याख्या - जल तत्व का गुण कटु व अमल आदि का होता है और लिंग ही जल तत्व का कर्मेन्द्रिय होता है तथा वं बीज मन्त्र होता है । जल तत्व की ज्ञानेन्द्रिय जल होता है और स्वाधिष्ठान चक्र पर निवास होता है ।

रंग लाल तेजस गुण रूपा । मणिपूरक वास अनल अनूपा ॥
नवल वास प्रतीक स्वलोका । मन्त्र रं मरम इहँ कुण्डलिका ॥

व्याख्या - लाल रंग व तेज गुण व रूप होता है तथा मणिपूरक चक्र पर जिसका निवास होता है, वह अग्नि तत्व होता है। यह नाभी मण्डल पर निवास करता है तथा स्व लोक का प्रतीक होता है तथा रं मन्त्र होता है, जो कुण्डलिनि शक्ति का रहस्य बताने वाला है।

उपजहि क्रोध जो होई विकारी। करिअ सिद्ध देइ शक्ति अपारी ॥
बाढ़हि तेज मन निरविकारा। अनल तत्व सोइ कुण्डलि आधारा ॥

व्याख्या - अग्नि तत्व विकारी होने पर क्रोध बढ़ जाता है तथा सिद्ध होने पर अपार शक्ति प्रदान करता है, जिससे तेज बढ़ जाता है और मन निर्विकारी हो जाता है। अग्नि तत्व ही कुण्डलिनि शक्ति का आधार होता है।

अनाहत वास महः लोक अपारा। तत्व समीर जाइ सिद्ध पुकारा ॥
यं बीज भयउ गोल आकारा। रंग सबूज गुण स्पर्श प्यारा ॥

व्याख्या - अनाहत चक्र में जिसका वास होता है तथा महर्लोक का प्रतीक होता है, उसे ही सिद्ध जनों ने वायु तत्व बताया है। वायु तत्व का यं० बीज मन्त्र होता है तथा गोलाकार व रंग हरा व स्पर्श गुण होता है।

वायु दमादि उपजावन हारा। साधत उड़हहिं गगन अपारा ॥
होइ सिद्ध हियँ प्रेम उपजाई। शास्त्र ग्यान स्वतः उमगाई ॥

व्याख्या - वायु तत्व में विकार आने पर दमादि बिमारी पैदा हो जाती हैं। परन्तु सिद्ध कर लेने पर आकाश में उड़ने की क्षमता आ जाती है तथा हृदय में प्रेम पैदा हो जाता है और शास्त्रों का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है।

रंग नील रूप अण्ड आकारी। शब्द गुण सोइ आकाश अपारी ॥
हं बीज सोइ जानि जन लोका। वास विशुद्धिचक्र मिटाइ सब शोका॥

व्याख्या - नीला रंग व अण्डाकार होता है तथा शब्द जिसका गुण होता है, उसी को आकाश तत्व कहा जाता है। उसका हं बीज मन्त्र होता है तथा जन लोक का प्रतीक होता है। आकाश तत्व का विशुद्धि चक्र पर निवास होता है, जो सिद्ध हो जाने से समस्त कष्ट मिट जाते हैं।

होइ सिद्ध हियँ काव्य प्रगटाई। नाना भांति सृष्टि मरम लिखाई ॥
मन निर्विकार समता उमगाई। सूक्ष्म देह मरम परै बुझाई ॥

व्याख्या - आकाश तत्व के सिद्ध हो जाने पर हृदय में काव्य के लेखन की क्षमता आ जाती है, जिससे नाना प्रकार से सृष्टि का रहस्य लिखने में आ जाता है। मन निर्विकार हो जाता है और समता का भाव आ जाता है, जिससे सूक्ष्म शरीर का रहस्य समझ में आ जाता है।

दो०- पंच तत्व की जग करनी जो कोइ लेइ पहिचानि ।
अष्ट सिद्धि नव निधि मिलहि दासी मुक्ति करि मानि ॥ ७८ ॥

व्याख्या - यह समस्त जगत पंच भूतों से आभासित हो रहा है, जो कोई इस रहस्य को जान लेता है, उसे अष्ट सिद्धियाँ और नव निधियाँ मिल जाती हैं और मुक्ति भी दासी हो जाती है ।

ब्रह्माण्ड जो जो रहहि समाई । देह भीतर सकल हय भाई ॥
मन हय समूह भाव अनेका । प्रति भाव रसायन करि विवेका ॥

व्याख्या - ब्रह्माण्ड में जो जो समाया हुआ है, वह सब शरीर में भी समाया हुआ है । मन भावों के समूह को कहते हैं और प्रत्येक भाव के हार्मोन होते हैं।

मन सदा शतवृत्ति धारी । हार्मोन सोइ होय वृत्ति अनुहारी ॥
हार्मोन सोहि कहाई रसायन । रोग-आरोग्य उभय आयन ॥

व्याख्या - मन की सौ वृत्तियाँ होती हैं और हार्मोन वृत्तियों के अनुसार पैदा होता है तथा हार्मोन ही रसायन कहलाते हैं । रसायन ही रोग व आरोग्य दोनों के कारण होते हैं ।

रसन असम उपजावई रोगा । हेतु कुभाव बनहिं सब जोगा ॥
रसन मरम जे लेइ समुझाई । रहई निरोग सदा सुख पाई ॥

व्याख्या - रसायनों में असन्तुलन पैदा होने से रोग पैदा होते हैं तथा बुरे भावों के कारण ही रसायनों में असन्तुलन पैदा होता है । अतः जो रसायनों के रहस्य को जान लेते हैं, वे सदा सुखी व निरोगी रहते हैं।

भाव भल आरोग्य बढ़ाई । भाव कुभाव रोग उपजाई ॥
विषय चिन्तन हेतु कुभावा । उपजाई चिन्ता जीव डरावा ॥

व्याख्या - अच्छे भाव आरोग्य बढ़ाते हैं तथा बुरे भाव रोग पैदा करते हैं। विषयों के चिन्तन के कारण कुभाव पैदा होते हैं तथा कुभाव ही रोग पैदा करते हैं ।

भगति भाव गृह राम रसायन । श्रद्धा अनुपान सदा सुख दायन ॥
नित्य बाढ़हहि हृदय बिरागा । विगत चिन्ता मन अनुरागा ॥

व्याख्या - भक्ति के भाव ही राम रसायन के घर होते हैं, जिसका श्रद्धापूर्वक पान करने से सुख की प्राप्ति होती है । राम रसायन के पीने से नित्य वैराग्य बढ़ने लग जाता है, जिससे चिन्ताएँ मिटने लग जाती हैं और मन में अनुराग पैदा होने लग जाता है ।

दो०- कहत कठिन समुझत सरल कवि सकहिं न बखान ।
रसायन मरम गंभीर अति कोउ बिरला करहि पान ॥ ७९ ॥

व्याख्या - रसायनों का रहस्य बहुत गम्भीर होता है, जिसको कहना बहुत कठिन होता है, परन्तु समझना आसान होता है। जिसका वर्णन तो कवि लोग भी नहीं कर सकते हैं।

जब जब उठहिं कुभाव विचारा। बढ़हहिं तब रसन विकारा ॥
विषम रसन उपजावहि रोगा। जीव अग्य बिरथा दुःख भोगा ॥

व्याख्या - जब बुरे विचार आते हैं, तो रसायनों में विकार पैदा हो जाते हैं, जिससे रोग पैदा हो जाते हैं और जीव अज्ञानता वश दुःख भोगते रहते हैं।

मन्त्र जाप सदा कुभाव मिटाई। होइब भल जपहु लय लाई ॥
राम नारायण राम मन्त्र भल भाई। जपत राम रसायन प्रकटाई ॥

व्याख्या - मन्त्र का जप करने से बुरे भाव मिट जाते हैं, इसलिए लय लगाकर जपने से भलाई होती है। राम नारायण राम मन्त्र अच्छा है, जिसके जपने से राम रसायन प्रकट हो जाता है।

राम अनल नर अयन सुहाई। सोई राम नारायण राम कहाई ॥
इहँ मन्त्र मरम दियेउँ बताई। जपत सकल होवहि भलाई ॥

व्याख्या - राम हिरण्याग्नि है तथा नर (धड़कन) उसका घर है, इसलिए राम नारायण (नर + अयन) राम मन्त्र कहलाता है। मैंने यहाँ मन्त्र का रहस्य बता दिया है, जिसका जप करने से सबकी भलाई होगी।

मन्त्र जपत अनल प्रबलाई। विषय वासना तहँ जाइ जलाई ॥
विगत वासना आनन्द बचाई। सोई आनइ राम रसायन भाई ॥

व्याख्या - मन्त्र के जप करने से हिरण्यानल प्रबल हो उठती है, जिसमें विषय-वासनाएँ जलकर भष्म हो जाती हैं। विषय-वासनाओं के मिट जाने से आनन्द बच जाता है और आनन्द ही राम रसायन पैदा करता है।

प्राणायाम अरु नित्य मंत्र जापा। उपजावहिं भाव भल आपहि आपा ॥
संयम नियम भाव निरुआई। भृकुटि ध्यान ग्यान उपजाई ॥

व्याख्या - प्राणायाम और नित्य मंत्र के जप करने से अपने आप अच्छे भाव पैदा होने लग जाते हैं। संयम-नियम भावों की उलझन को दूर कर देते हैं तथा भृकुटि में ध्यान का अभ्यास करने पर ज्ञान पैदा होने लग जाता है।

सकहिं सकल अनुभूति एही। कारण संशय इहाँ किछु नेही ॥
जेहि जानहिं रसायन भेदा। ब्यापहिं नहिं तिन्ह किछु खेदा ॥

व्याख्या - जो रसायन के रहस्य को जान लेते हैं, उन्हें कुछ भी कष्ट नहीं सताता है। इसकी अनुभूति सभी लोग कर सकते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

दो०- मन शीतल तन पुलकित रहइ नहिं तहँ भाव उलझान ।
जगमय में मोहि सम जग हियँ उमगहि सहज ग्यान ॥ ८० ॥

व्याख्या - मन शान्त होने पर शरीर प्रफुल्लित रहने लगता है तथा वहाँ भावों की उलझन भी नहीं रहती है। उस समय समस्त संसार मुझ परमात्मामय लगने लग जाता है और हृदय में सहज ज्ञान पैदा हो जाता है ।

मोर गुण गान करहिं सत्संगा। रखहिं एक रस प्रीति अभंगा ॥
कण कण वास मोर हियँ जानी। सेवक चराचर निज करि मानी ॥

व्याख्या - जो मेरे गुणगान करके सत्संग करते हैं तथा एकरस होकर मुझसे अटूट प्रीत रखते हैं और कण-कण में मेरा वास होता है, इसे अपने हृदय में जानकर समस्त चराचर का स्वयं को सेवक मानते हैं।

दम्भ भाव सपनेउ नहिं लाई। करहहिं भरोस मोर सदाई ॥
देव योग करहिं पूर्ण भरोसा। तिन्ह हिय मैं उपजाउँ संतोषा ॥

व्याख्या - जो सपने में भी दम्भ भाव नहीं लाएँ तथा मुझ परमात्मा पर पूर्ण भरोसा रखें और देवयोग पर विश्वास करें, तो उनके हृदय में मैं संतोष पैदा कर देता हूँ।

सहज संतोष सो आनन्द परमा। इहँ मूल हय भाई सब धरमा ॥
आनन्द सहज सुभाव प्रानी। जानइ इहँ जेहि आत्म ग्यानी ॥

व्याख्या - सहज संतोष ही परम आनन्द होता है और यही सब धर्मो का मूल है। आनन्द ही जीव का सहज सुभाव होता है, जो इस रहस्य को जानते हैं, वे ही आत्म ज्ञानी होते हैं ।

सुख तजइ सुख आवइ ध्याई। मोर विधि इहँ विधान बनाई ॥
सुख ध्यावई दुःख उपजाई। जानइ नहिं इहँ मरम सबाई ॥

व्याख्या - सुख के भाव का त्याग करने पर सुख दौड़ कर आता है, यह मेरी विधि का विधान है। परन्तु सुख के पीछे दौड़ने पर दुःख पैदा होने लगता है, इस रहस्य को सब लोग नहीं जानते हैं ।

दो०- आनन्दमय सृष्टि सकल आनन्द ही आनन्द उपजाय ।
आनन्द हेतु कर्म करहिं सोइ मोर सच्चा दास कहाय ॥ ८१ ॥

व्याख्या - समस्त सृष्टि आनन्दमय है तथा आनन्द ही आनन्द को पैदा करता है। इसलिए आनन्द के लिए जो कर्म करते हैं, वे ही मेरे सच्चे दास होते हैं

मोहि छाड़ि कोउ दूसर नाहीं। करहिं विश्वास समरप आहीं ।
समर्पण सोइ सकल आधारा। ध्यान ग्यान भगति अपारा ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा को छोड़कर संसार में दूसरा कोई नहीं है, यह विश्वास

ही समर्पण पैदा कर देता है और समर्पण ही भक्ति, ध्यान व ज्ञान सबका आधार होता है ।

पूर्ण भरोस होइ निरोगी काया । प्रथम सुख जाहि सब बताया ॥
तब न प्रभाव काह कहिइब लोगा । लोक भाव सोइ जड़ सब रोगा ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा का पूर्ण भरोसा करने से शरीर निरोग हो जाता है और निरोगी शरीर को ही सबने पहला सुख बताया है । क्योंकि लोक भाव ही सब रोगों की जड़ होती है और मुझ परमात्मा का भरोसा ही लोक भाव से मुक्त करवाता है ।

मोर शरण स्वाधीन कराई । सोइ लोक लाज सकइ न सताई ॥
स्वाधीन सम सुख नहिं कोई । विगत कल्मष सहज सोई ॥

व्याख्या - मेरी शरण ही जीव को स्वाधीन कराती है, जिससे लोक लाज का भय नहीं सताता है । स्वाधीनता के बराबर कोई सुख नहीं होता है तथा विकारों का मिट जाना ही सहजता होती है ।

असहज न रहइ निरोगी काया । मरम परम दियेउ बताया ॥
होवइ भल तजहिं भाव लोका । ब्यापहिं नहिं तिन्ह मदादि शोका ॥

व्याख्या - असहज रहने पर शरीर निरोगी नहीं रह सकता है । यह परम रहस्य मैंने बता दिया है । इसलिए अच्छा होगा अगर लोकभावको त्याग दिया जाए क्योंकि उससे मद आदि के कष्ट नहीं सताते हैं ।

दो०- दूजा सुख हय घर माया तीसर सुख सुलक्षणा नारी ।
संत संग पाँचव सुख चउथ सुख पुत्र आज्ञाकारी ॥ ८२ ॥

व्याख्या - दूसरा सुख घर में माया का होना बताया गया है तथा तीसरा सुख नारी की सुलक्षणता होती है । चौथा सुख पुत्र का आज्ञाकारी होना तथा पाँचवाँ सुख संत जनों की संगत करना बताया है ।

मन भाव सोइ माया हय भाई । भाव वश होई सदा सुखदाई ॥
निज वश रहइ जब मन भावा । सोइ सुख घर माया कहावा ॥

व्याख्या - मन के भाव ही माया होते हैं, इसलिए मन के भाव वश में रहने से सदा सुख की प्राप्ति होती है । जब मन के भाव स्वयं के वश में रहते हैं, तो उसी को माया का घर में रहना कहा जाता है ।

घर माया सुख सन्त पुकारी । कहा भाव मरम हियँ विचारी ॥
भाव वश होवहिं नहिं विकारी । धड़कहिं सहज तब देह नारी ॥

व्याख्या - माया के घर में रहने को ही सन्त लोगों ने अपने हृदय में विचार

कर सुख बताया है । भावों के वश में रहने से विकार नहीं आते हैं, जिससे शरीर की नाड़ी (नारी) सहजता से धड़कने लगती है।

देह नारी सोई भाव उपजाई । रहइ सहज सुलच्छन आई ॥
सुलच्छन सोई सुख दायक । कहा तीसर सुख कवि गायक ॥

व्याख्या - शरीर की नाड़ी (नारी) ही भावों को पैदा करती है, इसलिए नाड़ी (नारी) सहज रहने पर सुलक्षण ही पैदा करती है । सुलक्षण ही सुख देने वाले होते हैं, इसलिए ही कवि लोगों ने सुलक्षणों को तीसरा सुख बताया है ।

पुत्र प्रतीक मोह भाव सुहाई । निज बस रहइ सुख उपजाई ॥
जो मोह भाव लगहहि संसारा । फँसहि तहँ जीव बिरथा विचारा ॥

व्याख्या - पुत्र संसार में मोह का प्रतीक होता है, इसलिए मोह रूपी पुत्र स्वयं के वश में रहने पर सुख दायक होता है । अगर मोह का भाव संसार में लग गया, तो जीव को व्यर्थ में ही वहाँ फँसा देता है।

निज पर भाव मोह उपजाई । बरबस जीव माया जाल फँसाई ॥
जीव उरुझ उरुझ उरुझाई । बूझ न परइ निज फाँस लगाई ॥

व्याख्या - मोह अपने पराए के भाव पैदा करके बरबस जीव को माया के जाल में फँसा देता है, जिससे जीव उलझता ही चला जाता है और समझ ही नहीं पाता है कि स्वयं ने जाल का फन्दा लगाया है ।

दो०- मोर संग मोह लगावहिं तौ हियँ उमगहि प्रेम अपार ।
प्रेम सोई सुख साधन हय कहहिं सब सन्त विचार ॥ ८३॥

व्याख्या - अगर मोह मुझ परमात्मा से लग जाए, तो अपार प्रेम पैदा हो जाता है और प्रेम ही सुख का साधन होता है । इस बात को सभी सन्त लोग विचार कर कहते हैं ।

सोइ भल मोह सुत आज्ञाकारी । सकहिं दिलाय भगति अपारी ॥
जो लगावहिं मोह मोते अभंगा । बाढ़हहि प्रीत सन्तन संगा ॥

व्याख्या - इसलिए अच्छा यही है कि मोह रूपी पुत्र आज्ञाकारी होना चाहिए, जिससे अपार भक्ति प्राप्त हो सके । क्योंकि मुझसे मोह लगने से सन्तों से प्रीत बढ़ने लग जाती है ।

सन्त संग सदा माया निरुआई । माया बिगत सुख ही सुख बचाई ॥
मिटहिं संशय होवहिं सन्ता । पंचम सुख ताहि सकल भनन्ता ॥

व्याख्या - सन्तों के संग से माया का निवारण हो जाता है और माया मिट जाने से सुख ही सुख बच जाता है । संशयों का मिट जाना ही सन्त पद की प्राप्ति

होता है और उसी को सभी ने संसार में पाँचवाँ सुख बताया है ।

भृकुटि ध्यान राजयोग कहाई । सहज सुभाव जीव बरताई ॥
सहजता सदा सुख उपजाई । सोई सुख छठ राज पास सुहाई ॥

व्याख्या - भृकुटि पर ध्यान लगाना ही राज योग कहलाता है, जिससे जीव सहज सुभाव में बरतने लगता है । सहजता ही सुख देने वाली होती है, इसलिए उसी को राज में पासा बोलकर छठा सुख बताया गया है ।

सप्तम् सुख भगति निष्कामा । पावहहिं जेहि लहहिं विश्रामा ॥
सब बड़ सुख मैं कहा बखानी । सकल सन्त कहा निज हियँ जानी ॥

व्याख्या - सातवाँ सुख निष्काम भक्ति की प्राप्ति होना होता है । जिसको निष्काम भक्ति मिल जाती है, वही परम विश्राम प्राप्त कर लेता है । मैंने सबसे बड़े सात सुखों का वर्णन कर दिया है, जिनको सन्त लोगों ने अपने हृदय में जानकर ही बताया है ।

दो०- गूढ़ ते गूढ़ मरम कहा भोग रोग सब खोला भेद ।
जेहि सुनि अनुसरहिं मिटहहिं तिन्हके सब खेद ॥ ८४ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैंने यहाँ गूढ़ से गूढ़ रहस्य को बता दिया है और सुख-दुःख के सब मर्म को भी खोल दिया है । इसलिए जो इसे सुनकर अनुसरण करेंगे, उनके सब कष्ट मिट जायेंगे ।

धन्य धन्य जगत गुंसाई । कृपा तुम्हार सदा सुखदाई ॥
पाप पुण्य भय नहिं डराई । चिन्ता साँपिन सकइ न सताई ॥

व्याख्या - हे परम पिता ! आप धन्य हैं, धन्य हैं । आपकी कृपा हमेशा सुख देने वाली होती है । आपकी कृपा से पाप-पुण्य का भय नहीं सताता है तथा चिन्ता रूपी सर्पनि भी नहीं सता पाती है ।

अबिरल रहइ तोर विश्वासा । सोइ कहउ नाथ मग सुपासा ॥
दीन दयाल कृपाल अन्तर्यामी । कहउ जुगत सरल स्वामी ॥

व्याख्या-हे परमपिता ! आपका विश्वास निरन्तर बना रहे, इसलिए कोई सरल रास्ता बताइये। हे दीन दयाल, हे कृपाल, हे अन्तर्यामी! कोई सरल उपाय बताइये।

पूरण ग्यान हो सहज बिरागा । कहउ मरम जगत हित लागा ॥
भूल न होवहि देह अभिमाना । सोइ कहिइब नाथ कृपा निधाना ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! ऐसा रहस्य बताइये, जिससे पूर्ण ज्ञान हो जाए और सहज में ही वैराग्य आ जाए । हे कृपानिधान ! ऐसा उपाय बताइये, जिससे भूलकर भी देह का अभिमान नहीं हो ।

कृत कृत्य होइ जीव अनुसराई। सरल सुगम हो सहज उपाई ॥
सुन सुत मरम गभीर बताउँ। बन्धन सब निमिष नसाउँ ॥

व्याख्या - हे प्रभु ! ऐसा सरल व सुगम उपाय हो, जिसका अनुसरण करने से जीव कर्म बन्धन से मुक्त हो जाए। हे वत्स ! सुनो मैं तुम्हें गम्भीर रहस्य बताता हूँ, जिससे क्षणभर में ही सब बन्धन मिट जायेंगे।

दो०- चेतन आत्मा देह बसहि अहंकार रहइ संग सदाई ।
अहंकार संकल्प उपजावत सोई पुनि माया बन जाई ॥ ८५ ॥

व्याख्या - चेतन आत्मा शरीर में रहती है, जिसके साथ में सदा अहंकार रहता है। अहंकार से संकल्प पैदा होता है और संकल्प ही माया बन जाता है।

अदेह आत्मा देह सदन सुहाई। मन्त्री अहंकार रह संग सदाई ॥
देह सदन आत्मा ताहि स्वामी। मन्त्री अहंकार मोहादि पथ गामी ॥

व्याख्या - आत्मा तो अशरीरी होती है तथा शरीर ही आत्मा का घर होता है। अहंकार ही आत्मा का मन्त्री बन कर सदा साथ रहता है। शरीर रूपी घर की आत्मा स्वामी होती है तथा मोह आदि पथ पर चलने वाला अहंकार आत्मा का मन्त्री होता है।

अहंकार मन माया जाल बुनाई। देह तहँ परहहिं उरुझाई ॥
संकल्प विकल्प कारण शोका। लगहहिं काया चिन्ता पोका ॥

व्याख्या - अहंकार ही मन और माया का जाल बना देता है, जिसमें शरीर उलझ जाता है। संकल्प व विकल्प के भावों के कारण कष्ट होता है, जिससे शरीर में चिन्ता रूपी कीड़ा लग जाता है।

चेतन आत्मा परै उरुझाई। मृषा माया तउ बन्धन पराई ॥
भूत भविष्य चिंतहि बिरथा। चंचल मन रहइ न थिरता ॥

व्याख्या - चेतन आत्मा भी माया के झूठे बन्धन में उलझ जाती है तथा भूत-भविष्य का व्यर्थ में चिन्तन करने लग जाती है। जिससे मन चंचल हो उठता है और शान्ति नहीं रह पाती है।

भावी सोच सोइ भय उपजाई। भय सोइ चिन्ता कारण भाई ॥
भूतकाल जो करहिं चिन्तन। कामादि कटहहिं कि बन्धन ॥

व्याख्या - भविष्य के चिन्तन से भय पैदा हो जाता है और भय के कारण चिन्ता सताने लगती है। जो लोग भूतकाल का चिन्तन करते हैं, उनके काम आदि के बन्धन क्या कट सकते हैं ?

दो०- भविष्य ते भय उपजत पुनि भय पुनि चिन्ता भाव ।
चिन्ता सोइ बन्धन हय जीव बिरथा जाइ फँसाव ॥ ८६ ॥

व्याख्या - भविष्य से भय पैदा हो जाता है और भय से पुनः भय पैदा होता रहता है और भय से चिन्ता हो जाती है। चिन्ता ही जीव का बन्धन होती है, जिसमें जीव व्यर्थ में ही फँस जाता है ।

तात कहउँ अति गुप्त मरमा। सुनत जाहि मिटहिं सब भरमा ॥
गुप्त मत नाम आत्म गीता। मोर प्रताप प्रगट हिय पुनीता ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब तुम्हें अति गुप्त रहस्य बताता हूँ, जिसके सुनने से समस्त संशयों का नाश हो जाता है। उस गुप्त मत का नाम आत्म गीता है, जो मेरे प्रताप से हृदय में प्रकट होती है ।

आगम निगम कोउ नहिं बखाना। सुनहु सोइ गुप्ततम ग्याना ॥
जप तप संयम नियम नाना। नहिं तहँ किछु दरकार सुजाना ॥

व्याख्या - मैं उस गुप्त से गुप्त ज्ञान को बताता हूँ, जिसको वेद-पुराणों ने भी नहीं बताया है। वहाँ पर जप, तप, संयम व नियम आदि की भी आवश्यकता नहीं होती है ।

स्वर्ग नरग भ्रम नहिं मन माहीं। सहज आचार जीव मस्त सदाहीं ॥
जब लगि भेद ग्यान अग्याना। तब लगि बन्धन जानि सुजाना ॥

व्याख्या - वहाँ पर स्वर्ग-नरक का भ्रम मन में नहीं रहता है और जीव सहज होकर सदा मस्त रहने लग जाता है। हे वत्स ! जब तक ज्ञान व अज्ञान का भेद रहता है, तब तक बन्धन मानना चाहिये ।

कर्म अकर्म अरु दोष अदोषा। पाप पुण्य भाव तोष परितोषा ॥
भल मन्द जो भाव हियँ आना। तौ जानउ अबहु देह अभिमाना ॥

व्याख्या - कर्म, अकर्म, दोष, अदोष, पाप, पुण्य, सन्तोष, असन्तोष, अच्छे व बुरे भाव जब तक हृदय में आते रहते हैं, तब तक देह का अभिमान ही मानना चाहिये ।

दो०- जब लगि अभिमान देह का तब लगि मुक्ति न होय ।
भाव मूल जब समझ परइ पावइ मुक्ति जीव सोय ॥ ८७ ॥

व्याख्या - जब तक देह का अभिमान रहता है, तब तक मुक्ति नहीं होती है। परन्तु जब भावों का मूल समझ में आ जाता है, तब जीव मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

बिनु मुक्ति सुख सपनेउ नाहीं । ऋषि मुनि जन कहत सबाहीं ॥
सोइ कहउँ मुक्ति सरल उपाई । आचरहिं जेहि तुरत फल पाई ॥

व्याख्या - बिना मुक्ति के सपने में भी सुख नहीं मिल सकता है । ऋषि व मुनि लोग सभी यही बात कहते हैं । इसलिए यहाँ मुक्ति प्राप्त करने का सरल रास्ता बताता हूँ, जिसका आचरण करने वाला जीव तुरन्त फल प्राप्त कर लेगा ।

जीव बरतहिं सहज सुभाउँ । घट भीतर मय प्रगटाउँ ॥
अन्तः करण प्रकाशउँ सकला । कारण सहित करूँ माया अबला ॥

व्याख्या - हे वत्स ! जब जीव सहज सुभाव में बरतने लगता है, तो मैं परमात्मा उसके हृदय में प्रगट हो जाता हूँ और अन्तःकरण को पूरी तरह से आलोकित करके माया को माया के कारण सहित निर्बल कर देता हूँ।

सहज असहज प्राण आधारा । प्राण प्रबल जीव निर्विकारा ॥
प्राण निरबल माया बलकाई । बन्धन मुक्ति इहँ मरम भाई ॥

व्याख्या - सहज व असहज रहना प्राण की अवस्था पर निर्भर करता है । प्राण के प्रबल होने पर जीव निर्विकारी हो जाता है और प्राण कमजोर पड़ने पर माया प्रबल हो उठती है । हे वत्स ! यही बन्धन व मोक्ष का रहस्य है।

देह अन्दर जिमि पान-अपाना । समष्टि तहँउ रहइ समाना ॥
देह प्राण मिलहि समष्टि संगा । तबहिं मिलन मोते प्रीत अभंगा ॥

व्याख्या - जैसे शरीर के अन्दर पान-अपान वायु रहती है, उसी प्रकार समष्टि की व्यवस्था में भी पान-अपान वायु होती है । इसलिए जब देह की पान वायु समष्टि की पान वायु से मिल जाती है, तो उसी से मेरा मिलन हो जाता है और मुझसे जीव की अटूट प्रीत हो जाती है ।

प्राण डोर जुरहि जीव मोतें । विगत कल्मष सत्य कहुँ तोतें ॥
सकल जगत तब एक लगाई । जीव अरु मोर नहिं भेद रहाई ॥

व्याख्या - प्राणों की डोर से जीव जब मुझसे जुड़ जाता है, तो जीव के समस्त विकार मिट जाते हैं । उस अवस्था में सारा संसार एक लगने लग जाता है, जिससे मुझ परमात्मा और जीव का भेद मिट जाता है ।

दो०- भिन्न होइ अभिन्न लगहि अन्तर चेतन करै प्रकाश ।
जपा अजपा अनहद मिटहि मन होवइ सहज उल्लास ॥ ८८ ॥

व्याख्या - अलग होते हुए भी उस अवस्था में जीव मुझसे अभिन्न लगने लग जाता है और जीव का अन्तःस्थल प्रकाशित हो उठता है । उस समय जपा-अजपा व अनहद भी मिट जाते हैं और मन सहज में उल्लासित हो उठता है ।

मन गो बुद्धि अरु अहंकारा । सकल एक होवहि निरविकारा ॥
भल मन्द पाप पुण्य भ्रम मिटाई । आनन्द मगन जीव हरषाई ॥

व्याख्या - उस अवस्था में मन, इन्द्रियाँ और अहंकार सब एक हो जाते हैं और जीव निर्विकारी हो जाता है । उससे अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य आदि का भ्रम मिट जाता है और जीव आनन्द मग्न होकर हर्षित हो उठता है ।

चारु अवस्था मिलि एक सुहाई । ताही तुरीया गुण पार बताई ॥
सोई साधक होइ मोर समाना । विगत विकार रहइ बर्तमाना ॥

व्याख्या - चारों अवस्थाएँ (जागृत, सुषुप्त, स्वपन व तुरीया) मिलकर एक हो जाती हैं, उसी अवस्था को गुणों से पार तुरीया अवस्था कहते हैं। ऐसा साधक मुझ परमात्मा के समान ही हो जाता है तथा उसके समस्त विकार मिट जाते हैं और वह वर्तमान में रमण करने लगता है ।

संकल्प विगत प्रेरणा चलाई । मोर कृपा तब जीव बरसाई ॥
निमिष निमिष उठहिं उमंगा । नहावहि हंसा आनन्द गंगा ॥

व्याख्या - जब संकल्प का भाव मिट जाता है और प्रत्येक कर्म प्रेरणा से होने लगता है, तब जीव पर मुझ परमात्मा की कृपा बरसने लग जाती है तथा क्षण-क्षण में हृदय में उमंग उठने लग जाती है और जीव आनन्द रूपी गंगा में नहाने लग जाता है ।

कामना पूर्ण सन्तोष सदाई । निर्भय जीव अब नहिं डराई ॥
प्रकृति मानहि निज महतारी । रहवहि सदा सहज आचारी ॥

व्याख्या - तब उसके हृदय में पूर्ण रूप से संतोष आ जाता है और उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा तब जीव निर्भय हो जाता है । वह प्रकृति को अपनी माता मानने लग जाता है तथा सदा सहज आचरण करने लग जाता है।

दो०- प्रकृति नियम पालन करहि मानहि ताहि निज मात ।
मोर भरोस हियँ रखहहिं जानहउ तब मुक्ति तात ॥ ८९ ॥

व्याख्या - प्रकृति को जीव जब अपनी माता मानकर प्रकृति के नियमों का पालन करने लग जाए और हृदय में मुझ परमपिता का पूर्ण भरोसा रखने लग जाए, तब मुक्ति की अवस्था मानना चाहिये ।

मय पिता मातु प्रकृति भवानी । होउ सजग तात छाड़ि नादानी ॥
जेहि रहवहहिं मातु शरणा । पावहिं ममता आनन्द झरणा ॥

व्याख्या - मैं पिता हूँ और प्रकृति शक्ति ही भावों को पैदा करने वाली माता है, इसलिए वत्स, नादानी छोड़कर समझ लो । जो माता प्रकृति की शरण में रहते

हैं, उनको ममता रूपी आनन्द का झरना प्राप्त हो जाता है ।

निर्भय खेलहहिं जेहि मातु अंका । बन्धन मुक्त रहहिं निशंका ॥
सिद्धि होहिं जसि करतल मोदक । प्राण मरम जेहि जनु शोधक ॥

व्याख्या - जो निर्भय होकर माता प्रकृति की गोद में खेलते हैं, वे बन्धन मुक्त होकर निशंक रहते हैं तथा जो प्राण के रहस्य को जान लेते हैं, उनको सिद्धियाँ हाथ में रखे हुए लड्डू की तरह हो जाती हैं।

नहिं ऊँच नीच अरु कुल भेदा । आवहि शरण मिटहिं सब खेदा ॥
मय सर्वत्र पंथ सब बाधक । मोहि ध्यावहि सोइ सच्चा साधक ॥

व्याख्या - मैं परमात्मा तो सब जगह समान रूप से व्यापक रहता हूँ और पंथ आदि तो सब बाधा पहुँचाने वाले हैं । इसलिए जो मुझे भजते हैं, वे ही सच्चे साधक होते हैं । मुझे प्राप्त करने के लिए ऊँच-नीच और कुल का कोई भेद नहीं होता है । जो भी मेरी शरण में आ जाते हैं, उनके सब कष्ट मिट जाते हैं ।

हियँ जानि अनुसरहिं एहि बाता । मिलहि मोच्छ विगत संतापा ॥
रोग शोक मिटहिं काया क्लेसा । श्रद्धा सह सुनहिं जो इहँ उपदेशा ॥

व्याख्या - जो हृदय में जानकर इन बातों का अनुसरण करेंगे, उनको मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी तथा समस्त कष्टों का निवारण हो जायेगा और जो श्रद्धापूर्वक इस उपदेश को सुनेंगे, उनके शरीर के रोग व शोक मिट जायेंगे ।

सुत अरु कहउँ गुप्त मरमा । सुनत उमगहि हियँ धरमा ॥
कहत सुनत सरल संदेशा । मरम जथारथ मोर जगतेशा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! अब तुम्हें और भी गुप्त रहस्य बताता हूँ, जिसके सुनने से हृदय में धर्म पैदा हो जायेगा । यह उपदेश कहने व सुनने में सरल है तथा मुझ परमेश्वर का यथार्थ रूप है ।

सुन सुत कहउँ परम उपकारी । सुनत मिटइब कल्मष सारी ॥
ऊँच नीच नहिं सुत जग कोई । मोही भजहहिं मोरहि होई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! परम उपकारी उपदेश सुनो, जिसके सुनने से सब विकार मिट जायेंगे । हे वत्स ! संसार में ऊँच-नीच कोई नहीं होता है, जो मुझे भजता है, वो मेरा ही हो जाता है ।

अस्थि रुधिर सब एक समाना । जाति पांति सब जानि अग्याना ॥
प्राण कण हय जीव सकला । जड़ चेतन बाल बृद्ध अबला ॥

व्याख्या - जाति-पाति सबको अज्ञान जानना चाहिये क्योंकि सभी में हड्डी और रक्त तो एक समान ही होता है । समस्त जड़-चेतन, बालक, वृद्ध व

अबला जीव प्राण के कण ही हैं ।

एकहि प्राण सकल घटवासी । सोइ जीव ब्रह्म अंश अविनाशी ॥
सकल पितु मातु मय विधाता । भाव अनुरूप जन्म जीव दाता ॥

व्याख्या - एक ही प्राण तत्व सब जीवों में निवास करता है, इसलिए ही जीव मुझ ब्रह्म का अंश व अविनाशी कहलाता है । समस्त जीवों का माता-पिता मैं विधाता ही हूँ तथा भावों के अनुरूप जीवों को जन्म देता हूँ ।

दो०- कण कण मोर निवास हय जड़ चेतन सब एक समान ।
भाव अनुहार रूप धरहउँ निज हियँ सकहि सब जान ॥ ९०॥

व्याख्या - समस्त जड़-चेतन जीवों में मैं एक समान रहता हूँ क्योंकि प्रत्येक कण-कण में मेरा निवास होता है । मैं तो भावों के अनुसार रूप धारण कर लेता हूँ । इस रहस्य को सब अपने हृदय में जान सकते हैं।

सूच्छम ते सूच्छम बनि समाउँ । मैं अनन्त अनन्त ही रहाउँ ॥
हद अनहद नहिं किछु सीमा । सूच्छम ते सूच्छम भीमा ते भीमा ॥

व्याख्या - मैं अति सूक्ष्म में भी सूक्ष्म बन कर रहता हूँ क्योंकि मैं तो अनन्त हूँ और सदा अनन्त ही रहता हूँ । हद-अनहद मेरी कोई सीमा नहीं होती है क्योंकि मैं तो सूक्ष्म में भी सूक्ष्म व विराट में भी विराट होता हूँ ।

भाव मोर परिचय आधारा । नहिं किछु मोर अन्य सहारा ॥
ग्यान विग्यान मोर विभुताई । जानिन सकइ कोउ प्रभुताई ॥

व्याख्या - भाव ही मेरे परिचय के आधार हैं, अन्य कोई मेरे परिचय का आधार नहीं है । ज्ञान और विज्ञान तो मेरी विभूतियाँ हैं । मेरी प्रभुता को कोई नहीं जान सकता है ।

कर्म ही वर्ण कर्म भाव आधारा । जाति पाति सकल भ्रम संसारा ॥
भाव सोइ भव सागर सुहाई । भाव तें प्राण नाना रूप धराई ॥

व्याख्या - कर्म से ही वर्ण बनते हैं और भाव कर्मो का आधार होता है, इसलिए जाति-पाति का भ्रम तो संसार में व्यर्थ होता है । भाव ही भव सागर होता है तथा भाव से ही प्राण नाना रूप धारण करता है।

भाव बस्य जानि सकल जहाना । भाव ही ग्यान भाव ही अग्याना ॥
भाव कण मोर सुन्दर धामा । भाव बिराग भाव ही कामा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! समस्त संसार को भाव के अधीन समझना चाहिए क्योंकि भाव ही ज्ञान व अज्ञान का रूप धारण करता है । भाव का कण ही मेरा सुन्दर घर होता है और भाव से ही वैराग्य और भाव से ही काम पैदा होता है ।

दो०- भाव माझ में निवास करूँ सकल चराचर एक समान ।
भाव बस्य ग्यानी विग्यानी भाव ते प्रगटउँ हियँ इन्सान ॥ ९१ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मैं समस्त चराचर जगत में एक समान भाव में निवास करता हूँ । ज्ञानी व विज्ञानी सभी भाव के अधीन होते हैं तथा भाव से ही मैं मनुष्यों के हृदय में प्रकट होता हूँ ।

सुनहउ सुत कहुँ अति मरमा । सहज भाव सोई धर्म परमा ॥
विगत वासना मुक्ति सुहाई । विषय रस सोइ बन्धनताई ॥

व्याख्या - हे वत्स ! परम रहस्य यह है कि सहजता ही परम धर्म है। जब वासनाएँ मिट जाती हैं, तभी मुक्ति होती है और विषयों में रस आना ही बन्धन होता है ।

जगत मोह सकल माया मूला । सोइ भयउ त्रिगुणमय शूला ॥
मोह कारण जन्म अरु मरणा । मोह ही मूल सकल तृष्णा ॥

व्याख्या - संसार में मोह ही माया का मूल होता है और मोह से ही त्रिगुणी कष्ट व्यापते हैं । मोह के कारण ही जन्म और मरण का आभास होता है तथा मोह ही समस्त वासनाओं का मूल होता है ।

सुत वित्त लोक ईषणा गाढ़ी । मोह कारण निसि दिवस बाढ़ी ॥
मिटइ मोह मोर अनुकम्पा । सोइ जान सुत असल सम्पदा ॥

व्याख्या - पुत्र, धन और लोक प्रतिष्ठा की इच्छा बहुत गहरी होती है, जो मोह के कारण रात-दिन बढ़ती रहती है । मोह केवल मेरी कृपा से ही मिट पाता है, इसलिए मेरी कृपा ही जीव की वास्तविक सम्पत्ति होती है ।

धन दौलत अरु यश बढ़ाई । घटत-बढ़त जिमि चन्द कलाई ॥
मोर भगति सोई परमारथ मूला । पावहिं जीव मिटहिं सब शूला ॥

व्याख्या - धन, दौलत और यश आदि तो चन्द्रमा की कलाओं की तरह घटते-बढ़ते रहते हैं । मेरी भक्ति ही परमार्थ का मूल होती है। अतः जीव को मेरी भक्ति मिलते ही समस्त कष्टों का निवारण हो जाता है ।

दो०- शरण आवै कष्ट मिटै एहि ते किछु संशय नाय ।
निज अनुभव निज बुझहिं ऋषि मुनि सब रहे बताय ॥ ९२ ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मेरी शरण में आने पर सब कष्ट मिट जाते हैं, इसमें संशय नहीं है । स्वयं के अनुभव से इसे समझा जा सकता है । सब ऋषि मुनि यही बता रहे हैं।

करहउ विचार सुत मन माहिं । नश्वर जग सच किछु नाहिं ॥
मैं ही हूँ पिता सकल संसारा । सोइ मैं ही सब जीव सहारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! मन में विचार करो, इस नश्वर जगत में कुछ भी सत्य नहीं है। मैं परमात्मा ही समस्त संसार का पिता हूँ, इसलिए मैं ही सब जीवों का सहारा हूँ।

सकल करउँ मैं ही गुँसाई । इहँ विश्वास मन शान्त कराई ॥
सुख दुःख सकल देव जोगा । क्षणिक जगत मिलन बियोगा ॥

व्याख्या - मैं परमात्मा ही सब कुछ करने वाला हूँ, यह विश्वास मन में आने पर तुरन्त शान्ति मिल जाती है । सुख-दुःख सब देवयोग से होते हैं तथा संसार में मिलना-बिछुड़ना क्षणिक होता है ।

जब आवइ समरप भावा । तबहिं जीव परम सुख पावा ॥
निज पर मोह जीव उलझाई । परत ग्रन्थि छूटत कठिनाई ॥

व्याख्या - जब समर्पण का भाव आ जाता है, तब ही परम सुख की प्राप्ति हो जाती है । अपने-पराये के मोह में जीव उलझ जाता है, जिससे ग्रन्थि पड़ जाती है और ग्रन्थि से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है ।

मोर भगति एकमात्र उपाई । कहउँ सोई जुगति समुझाई ॥
सब तजि करहु मोर भरोसा । तत्क्षण मिटहिं जीव क्लेशा ॥

व्याख्या - मेरी भक्ति ही एक मात्र उपाय है, अतः भक्ति प्राप्त करने का उपाय समझाकर बताता हूँ । सब कुछ छोड़कर मेरा भरोसा करने से तुरन्त जीव के क्लेश मिट जाते हैं ।

दो०- जेहि क्षण मोर भरोस करै तेही क्षण जीव निर्भय होय ।
भयगत सोई भगति हय समझइ जेहि ग्यानी सोय ॥ ९३ ॥

व्याख्या - जिस क्षण जीव मेरा विश्वास कर लेता है, उसी समय वह निर्भय हो जाता है तथा निर्भय होना ही भक्ति है । जो इसको समझ लेते हैं, वे ज्ञानी होते हैं।

जन्म संग सदा मरण विधाना । तब काह लाभ संग्रह नाना ॥
सत्त शाश्वत् मोर भजनाई । करहिं जीव पाव सुख सदाई ॥

व्याख्या - जन्म के साथ सदा मरने का विधान होता है, फिर संग्रह करने का क्या लाभ है । सत्त व शाश्वत तो मेरा भजन ही है अतः जो जीव मेरा भजन करता है, वो सदा सुख पाता है ।

अकथ अगाध मय अनूपा । ऋषि मुनि कहहिं मति अनुरूपा ॥
सो सुत करउ मन विश्वासा । जपउ मोहि तजि सब अभिलासा ॥

व्याख्या - मैं अकथनीय, अगाध व अनुपम हूँ । ऋषि-मुनियों ने तो अपनी मति के अनुसार मेरा वर्णन किया है । इसलिए वत्स, मेरी बातों का विश्वास करो

और सब आशा छोड़कर मेरा जप करो ।

मोर सुमिरण विधि सरल बताउँ । धर्म अर्थ काम मोच्छ दिलाउँ ॥
जब जब लहहहिं उसासा । सोइ जप करइ मोर आभासा ॥

व्याख्या - मेरे जप की सरल विधि बताता हूँ, जिससे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी । जब जब श्वास लिया जाए, तब तब मेरा आभास करना ही मेरा जप है ।

करि आभास करउ करमा । जानउ सुत इहँ परम मरमा ॥
प्रति कर्म करउ समरप मोही । सहजहि करूँ मुक्त मैं तोही ॥

व्याख्या - मेरा आभास करते हुए कर्म करना चाहिये, यही मेरा परम रहस्य है । प्रत्येक कर्म को मुझे समर्पित करने पर, मैं सहज में ही तुम्हें मुक्त कर दूँगा।

दो०- समरप करिअ कर्म सब फल बन्धन सकहि न रहाय ।
भल होवहि सोइ करहउँ सुत तोही दियेउँ सत्य जनाय ॥ ९४॥

व्याख्या - समर्पण करके समस्त कर्म करने पर फल का बन्धन नहीं रह पाता है तथा मैं परमात्मा वही करता हूँ, जो अच्छा होता है । हे वत्स ! मैंने तुम्हें यह सत्य बता दिया है ।

धन्य धन्य गुरूदेव स्वामी । जग पालक घट अन्तर्यामी ॥
जुग तामस मन तामस ताई । सरल धर्म मोहि देहु बताई ॥

व्याख्या - हे गुरुदेव ! आप धन्य हैं, धन्य हैं । आप जग के पालनकर्ता व सब के हृदय को जानने वाले हैं । आज कलियुग है और मन में भी तामसिकता है । इसलिए मुझे सरल धर्म बता दीजिए ।

सुनु सुत सरल धर्म उपदेशा । अनुसरइब मिटै सब अंदेशा ॥
मानवता सोइ धर्म आधारा । सुखद सदगुणशील आचारा ॥

व्याख्या - हे वत्स ! तुम धर्म के सरल उपदेश सुनो । जो भी इन उपदेशों का पालन करेगा, उसका अज्ञान मिट जायेगा । मानवता ही धर्म का मूल आधार होती है और सद्गुणों व शीलता का आचरण ही सुख देने वाला होता है ।

ऊर्जा शक्ति शक्ति ब्रह्म सुहाई । ब्रह्म अखण्ड एक मानवताई ॥
सकल योनि ब्रह्म उपजाई । मानव सब योनि भूप सुहाई ॥

व्याख्या - ऊर्जा हा शक्ति है और शक्ति ही ब्रह्म है और ब्रह्म अखण्ड होता है तथा सब मानव एक है । समस्त योनियाँ एक अखण्ड ब्रह्म से ही पैदा हुई है । परन्तु मनुष्य योनि समस्त योनियों का राजा होती है ।

सब योनि मानव सुख-दुख दाता । निज कर्म निज फल सब पाता ॥
मानव जो रहइ निर विकारा । चहुदिसि होवइ सुख अपारा ॥

व्याख्या - सब योनियों को सुख-दुःख देने वाला मनुष्य ही होता है और स्वयं भी स्वयं के कर्मो का फल पाता रहता है । इसलिए अगर मनुष्य विकारों से रहित रहता है, तो चारों तरफ अपार सुख होता है ।

दो०- दया दान क्षमा मैत्री धीरज परहित परउपकार ।
भ्रातत्व सहयोग प्रेम सब सद्‌गुण शील आधार ॥ ९५ ॥

व्याख्या - दया, दान, क्षमा, मैत्री, धैर्य, आत्म चिन्तन (परहित), परोपकार, भ्रातत्व, आपसी सहयोग और प्रेम ये सब सद्‌गुण और शीलता के आधार होते हैं ।

सद्‌गुण शील सदा सुखदाई । होवइ भल जे अनुसराई ॥
परम धर्म अहिंसा भाई । विषय विकार तहँ किछु नाई ॥

व्याख्या - सद्‌गुण व शीलता सदैव सुख देने वाले होते हैं, इसलिए जो इनका पालन करते हैं उनका कल्याण हो जाता है । हे भाई ! अहिंसा परमधर्म होती है, जिसमें विषयों का लेशमात्र भी विकार नहीं होता है ।

इन्साँ अल्लाह नर नारायण । जन सेवा मूल धर्म पारायण ॥
करहिं सेवा देव कहाहहिं । ब्रह्म लीन सेवक दुर्लभ भाई ॥

व्याख्या - इन्सान ही अल्लाह व नर नारायण होता है । इसलिए मानव की सेवा ही धर्म के पालन का मूल होती है । जो सेवा करते हैं, वे देवता कहलाते हैं। ब्रह्म में लीन सेवक तो बहुत दुर्लभ होते हैं ।

तजि छल छद्‌म कपटाई । जे जनु करहहिं सेवकाई ॥
से जनु पुरुषार्थ अधिकारी । पावहिं जय रूप यश वैभव अपारी ॥

व्याख्या - इसलिए जो छल, छदम् व कपट का त्याग करके मानव सेवा करते हैं, वे सहज में ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों फलों को प्राप्त कर लेते हैं और अपार जय, रूप, यश व वैभव को प्राप्त कर लेते हैं ।

काम क्रोध मद लोभ अपारा । जानउ सब अधर्म आधारा ॥
अधर्म सोई नरक द्वारा । पाप मूल इहँ मरम सारा ॥

व्याख्या - काम, क्रोध, मद व लोभ आदि के भाव ही अधर्म के आधार होते हैं और अधर्म ही नरक का द्वार होता है । अधर्म ही पाप की जड़ होता है। यही सब अधर्म का रहस्य है ।

दो०- शुभ कर्म सब धर्म है अशुभ कर्म अधर्म मूल ।
भल कर्म सुखदायक मन्द कर्म सब कारक शूल ॥ ९६ ॥

व्याख्या - शुभ कर्म ही धर्म होते हैं और अशुभ कर्म ही अधर्म का मूल होते हैं। अच्छे कर्म सुख को देने वाले होते हैं और बुरे कर्म दुःख के मूल कारण होते हैं।

भल मंद कर्म भाव आधारा। भाव स्वरूप उर्जा अनुसारा ॥
ऊर्जा धारणा मूल सुहाई। धारण सोई धरम बताई ॥

व्याख्या - अच्छे-बुरे कर्मो का आधार जीव के भाव होते हैं और भाव ऊर्जा शक्ति के अनुसार पैदा होते हैं। ऊर्जा ही भावों को धारण करने का मूल होती है और भावों की धारणा को ही धर्म बताया गया है।

भल धारणा करहिं प्रयासा। पुरुषार्थ चारि मिलहिं अनयासा ॥
धारणा भल सो जुगति बताउँ। अनुसरइब जिन्हहिं मुक्त कराउँ ॥

व्याख्या - जो लोग अच्छे भावों को धारण करने का प्रयास करते हैं, उन्हें सहज में ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों पुरुषार्थ मिल जाते हैं। अब मैं अच्छी धारणा की सरल युक्ति बताता हूँ। जिसका जो भी अनुसरण करेगें उनको मैं मुक्ति प्रदान कर दूँगा।

ईश्वर एक नहिं कोउ दूजा। असल उपासना मानव पूजा ॥
मानस सुधरहिं जग सुधराई। ऊर्जा समष्टि पावनता छाई ॥

व्याख्या - ईश्वर एक है और दूसरा कोई नहीं है तथा मानव की सेवा पूजा ही असली ईश्वर की उपासना है। क्योंकि मनुष्य सुधर जाने पर समस्त संसार सुधर जाता है और समष्टि की उर्जा शक्ति में पवित्रता बढ़ जाती है।

दया दान मैत्री अरु करुणाई। व्यष्टि ऊर्जा पावन कराई ॥
धीरज सहयोग पर उपकारा। मानव मानस करहिं निरविकारा ॥

व्याख्या - दया, दान, मैत्री और करुणा के भाव व्यक्ति की प्राण ऊर्जा को पवित्र कर देते हैं और धैर्य, सहयोग व परोपकार की भावना मानव के चिन्तन को विकारों से मुक्त कर देती है।

दो०- चिन्तन मानव धर्म का सद्‌गुण प्रबल कराय।
सद्‌गुण प्रबल प्रभु मिलै ऐहि तें कछु संशय नाय ॥ ९७ ॥

व्याख्या - मानव धर्म का चिन्तन करने से सद्‌गुण प्रबल हो जाते हैं और सद्‌गुणों की प्रबलता से परमात्मा मिल जाते हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

परनिन्दा कारक मन कुंदा। पर प्रशंसा मूल आनन्दा ॥
सो भूल न करहिं निंदा पराई। जे चावहहिं निज भलाई ॥

व्याख्या - पराई निंदा करने से मन कुण्ठित होता है और दूसरों की प्रशंसा करने से आनन्द की प्राप्ति होती है। इसलिए अगर स्वयं की भलाई चाहते हो तो

भूलकर भी पराई निंदा मत करो ।

काम क्रोध मद लोभादि सबाई । तजहहिं जीव होवहिं भलाई ॥
मानव धर्म शास्त्र पढ़ाई । भाव आसुरी सहज नसाई ॥

व्याख्या - काम, क्रोध, मद व लोभ आदि के सब भावों का त्याग करने से जीव का कल्याण हो जाता है । मानव धर्म शास्त्र का अध्ययन करने से समस्त आसुरी भाव सरलता से ही नष्ट होने लग जाते हैं ।

प्रचार मानव शास्त्र कराई । चिन्तन सहज भल सुहाई ॥
भल चिन्तन जय रूप यश दायक । मानव धर्मी जीव सब लायक ॥

व्याख्या - जो मानव धर्म शास्त्र का प्रचार करते हैं, उनका चिन्तन अच्छा हो जाता है और चिन्तन जय, रूप व यश को देने वाला होता है । इसलिए मानव धर्म का पालन करने वाला जीव जय, रूप व यश को प्राप्त करने का पात्र हो जाता है।

बिरथा करहिं मूरत पूजा । ईश्वर एक लाभ नहिं दूजा ॥
मूरति जनक मानव सुहाई । मानस पूजा सम नहिं किछु भाई ॥

व्याख्या - मूर्तियों की पूजा करना व्यर्थ होता है, क्योंकि जब ईश्वर एक है तो दूसरों को पूजने से क्या लाभ है ? मूर्तियाँ तो मनुष्य के द्वारा बनायी जाती है अतः मानव पूजा के समान दूसरी कोई पूजा नहीं होती है ।

मन्दिर-मस्जिद भेद बढ़ाई । बिरथा जग जीव भरमाई ॥
उचित सरोपरी मानस मानी । करहहिं प्रेम निज सम जानी ॥

व्याख्या - मन्दिर-मस्जिद तो मनुष्य-मनुष्य में भेद बढ़ाते हैं, जिससे जीव संसार में भ्रमित हो जाते हैं । उचित तो यह है कि मानव को सबसे ऊपर मानकर अपने समान ही जानकर प्रेम करें ।

दो०- ऊँच नीच कोउ नहिं सब ईश्वर की सन्तान ।
सम मानि सम्मान करें प्रकट होय हियँ भगवान ॥ ९८ ॥

व्याख्या - कोई ऊँचा व नीचा नहीं होता है क्योंकि सभी तो एक परमात्मा की सन्तान हैं । अतः जो सबको समान मानकर सम्मान करते हैं, उनके हृदय में परमात्मा प्रकट हो जाते हैं ।

जाति-पाँति निपट अज्ञाना । मूढ़ जेहिं करहिं जाति अभिमाना ॥
ईश सन्तान ईश समाना । इहँ जानिअ परम ज्ञान सुजाना ॥

व्याख्या - जाति-पाति में विश्वास करना विशुद्ध अज्ञान होता है । इसलिए जो मुर्ख लोग होते हैं, वे ही जाति का अभिमान करते हैं । ईश्वर की सन्तान ईश्वर के समान ही होती है । हे वत्स ! यही परम ज्ञान जानना चाहिए ।

असहाय सहाय कराई । क्षुधावंत भोजन खिलाई ॥
प्यासे को जल देइ पिलाई । वृद्ध रोगी करें सेवकाई ॥

व्याख्या - असहाय की सहायता करना, भूखे को भोजन खिलाना, प्यासे को पानी पिलाना, वृद्ध व रोगी की सेवा करना ।

गुरुजन सम्मान लघुन्ह प्रेमा । रखहहिं हियँ करुणा क्षेमा ॥
निज कर सहज दान कराई । शील सदाचार सदा अनुसराई ॥

व्याख्या - अपने से बड़ों का सम्मान व छोटों से प्रेम करें । हृदय में करूणा और कृपा करने की भावना रखें । स्वयं श्रद्धा अनुसार दान करें तथा शील व सदाचार के भावों का आचरण करें ।

मात-पितु गुरु आज्ञा मानी । रहहहिं सहज निर अभिमानी ॥
ईश चिन्तन करहिं दिन राती । मानुष योनि मानहिं एक जाती ॥

व्याख्या - माता-पिता व गुरु की आज्ञा मानकर सहज व अभिमान रहित रहें तथा रात-दिन परमात्मा का चिन्तन करें तथा समस्त मानव योनि को एक ही जाति माने।

दो०- निर्मल मन मानुष सेवा हियँ रखहहिं प्रेम का भाव ।
मानव धर्म शास्त्र अनुसरें सहजहिं चारि पदारथ पाव ॥ ९९ ॥

व्याख्या - निर्मल मन से मनुष्यों की सेवा करें और हृदय में प्रेम का भाव रखें। मानव धर्म शास्त्र का अनुसरण करें, जिससे सरलता से ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चारों पदार्थो की प्राप्ति हो जायेगी ।

ध्यान ग्यान प्रार्थना भावा । राम रसायन देह बढ़ावा ॥
राम प्रबल काम नसाई । काम नाश सोई आनन्द दाई ॥

व्याख्या - ध्यान, ज्ञान व प्रार्थना के भाव शरीर में राम रसायन अर्थात् ऊर्जा शक्ति को बढ़ाते हैं और ऊर्जा शक्ति की प्रबलता से काम के विकार मिट जाते हैं तथा काम के विकार मिटने से आनन्द मिलने लग जाता है ।

युवा जन हेतु विशेष संदेशा । तजहउ सब जाति-पाँति अंदेशा ॥
मानुष सेवा करहु तजि कपटाई । कलिजुग सहज भव तर जाई ॥

व्याख्या - युवा लोगों के लिए यह विशेष संदेश है कि जाति-पाँति के भ्रम का त्याग कर दें और सब कपट का त्याग करके मानव सेवा करें । कलियुग में मानव सेवा करने से सहज में ही भव सागर पार हो जायेगा ।

मद्यपान तन विकार बढ़ाए । होवइ भल जो नहिं कराए ॥
तजिअ पाखण्ड जुग बिज्ञानी । मानहु सकल जीव ईश समानी ॥

व्याख्या - मद्यपान शरीर में विकार पैदा करता है, इसलिए मद्यपान नहीं करना अच्छा होता है । आज विज्ञान का युग है इसलिए पाखण्ड का त्याग करके समस्त प्राणियों को ईश्वर का अंश मानना चाहिए ।

मानवता सोई मानव धर्मा । असि जानि करहउ शुभ कर्मा ॥
शुभ कर्म सब भाँति सुखदाई । मरम इहँ जीव धर्म सुहाई ॥

व्याख्या - मानवता ही मानव धर्म होती है, अतः ऐसा जानकर सदैव शुभ कर्म करने चाहिए । शुभ कर्म सब प्रकार से सुख देने वाले होते हैं । यही जीव के धर्म का रहस्य है ।

दो०- बिनु भगति मानवता नहिं बिनु मानवता धर्म न होय ।
मूरत पूजै बाँग लगाए भव सागर तरै नहिं कोय ॥१००॥

व्याख्या - बिना परमात्मा की भक्ति के हृदय में मानवता पैदा नहीं हो पाती है और बिना मानवता के कोई धर्म नहीं होता है । इसलिए मूर्ति पूजा करने व मस्जिद में बाँग लगाने से कोई भी भव सागर को पार नहीं कर सकता है ।

करहिं मोर चिंतन सदाहीं । ग्यान परम होवइ दृढ़ाहीं ॥
अनन्य मति होइ जीव जबहीं । कृपा वृष्टि मैं करहउँ तबहीं ॥

व्याख्या - जो मेरा हमेशा चिन्तन करते हैं, उनकी परम ज्ञान में दृढ़ता हो जाती है । जब जीव की अनन्य मति हो जाती है, तब मैं परमात्मा कृपा की बरसात करने लग जाता हूँ ।

तबहि जीव शुभ कुशल निरंतर । चराचर सब प्रसन्न ता ऊपर ॥
मोर कृपा अधीन करै सब काजू । जनम सफल मोच्छ निवाजू ॥

व्याख्या - उस समय ही जीव का शुभ होता है और निरंतर कुशलता बनी रहती है तथा समस्त चराचर उस पर प्रसन्न रहता है । जो मेरी कृपा के अधीन ही सब कार्य करता है, उसका जन्म सफल हो जाता है और मोक्ष भी मिल जाती है ।

अनन्य भाव अद्भुत करनी । कबि कोबिद सकइ न बरनी ॥
अनन्य मति सम उपकारी । नहिं कोउ भाव परम शुभकारी ॥

व्याख्या - अनन्य भाव की अद्भुत करनी को कवि-कोविद कोई नहीं बता सकते हैं। अनन्य मति के समान उपकारी व शुभ करने वाला अन्य कोई भाव नहीं होता है।

अनन्य मति ग्यान आगारी । नासै बिपद वासना अपारी ॥
अनन्य भाव रखहिं मन माहीं । सपनेउ नहिं विपद सताहीं ॥

व्याख्या - मुझ परमात्मा के प्रति अनन्य भाव रखना ज्ञान का घर होता है,

जिससे वासनाओं की विपदा मिट जाती है। जो अनन्य भाव मन में रखते हैं, उनको सपने में भी विपद नहीं सता सकती है।

दो०- नाम जपै निसि दिवस मोर ध्यान कपाट लगाय।
आवत जावत श्वास संभारहिं अनन्य भाव प्रगटाय ॥ १०१ ॥

व्याख्या - रात-दिन मेरा नाम जपने व ध्यान लगाने तथा आने-जाने वाली श्वास को अनुभूत करने से अनन्य भाव प्रकट हो जाता है।

दो०- अनन्य भाव दृढ़ होइ जब मुख गात हरषि अत्यन्त।
भल लागइ शरण मोरि तब समावहिं जीव सहज अनन्त ॥ १०२ ॥

व्याख्या - अनन्य भाव दृढ़ होने पर चेहरा और अंग अंग हर्षित हो उठते हैं तथा मेरी शरण अच्छी लगने लग जाती है तथा जीव सहज में ही मुझ अनन्त में समाने लग जाता है।

छ०- भव सागर दुस्तर काम क्रोध मद मत्सर तहँ कुर्मी भय दिखावहिं।
सकल तजि भाव शरण जेहि आव तिन्हहिं ऐ नहिं सतावहिं ॥
करि समर्पण ध्यान लगाई निसि दिवस श्वास जे संभारहिं।
विगत देहाभिमान उमगई ग्यान सहजहि परमपद से पावहिं ॥

व्याख्या - यह भावों का भवसागर बहुत ही दुस्तर होता है, जिसमें काम, क्रोध, मद व मत्सर रूपी मगरमच्छ भय दिखाते रहते हैं। परन्तु जो सब भावों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाते हैं, उन्हें ये नहीं सताते हैं। जो समर्पण करके ध्यान लगाते हैं और रात दिन अपनी श्वास को अनुभूत करते हैं, उनका देहाभिमान मिट जाता है और ज्ञान पैदा हो जाता है, जिससे वे सहज में ही परम पद प्राप्त कर लेते हैं।

दो०- सत्य सरल सुगम कथा इहँ जो कोइ पढ़ै चित्त लाय।
रिद्धि सिद्धि सेवा करहिं मन सब कुण्ठा मिट जाय ॥ १०३ ॥

व्याख्या - यह कथा सत्य, सरल व सुगम है, इसलिए जो कोई मन लगा कर पढ़ेगा, उसकी ऋद्धि-सिद्धियाँ सब सेवा करने लगेंगी तथा मन की सब कुण्ठा मिट जायेगी।

छ०- कथा पावनि ताप नसावनि जे सुनहिं मन माही।
ध्यान धरहिं भव तरहिं मार्ग सुगम किछु संशय नाही ॥
घट घट वासी रहइ उदासी नर ही अयन सो नारायण कहाही।
मरम बुझाई भेद भुलाई जीव अमर नश्वर देह सदाही ॥

व्याख्या - यह कथा पवित्र है तथा जो मन लगाकर सुनते व समझते हैं, उनके कष्टों का निवारण करने वाली है। ध्यान का अभ्यास करने से भाव रूपी भव

सागर पार हो जाता है, इसमें संशय नहीं है, यह बहुत सरल रास्ता है। परमपिता परमेश्वर तो सबके हृदय में निवास करने वाले व जगत से उदास रहते हैं। नर (धड़कन) ही उनका घर (अयन) होने के कारण उनका नाम नारायण है। जब यह रहस्य समझ में आ जाता है, तब सब भेद दूर हो जाते हैं। जीव तो सदा अमर होता है, केवल शरीर का ही नाश होता है।

छ०- प्रभु दीन दयाला अति कृपाला परम अनुग्रह मैं चाउँ।
तोर विश्वासा नहिं नर आसा वासना तजि शरण अब आउँ॥
तू ही पिता तू ही माता नाथ तोहि छाड़ि अब कहाँ मैं जाउँ।
सब संसारा भयउ असारा शरण तोरी प्रभु आनन्द पाउँ॥

व्याख्या - हे परमपिता ! आप दीन दयाल व अति कृपालु हैं, इसलिए मैं आपकी कृपा चाहता हूँ। हे प्रभु ! अब मुझे तेरा पूर्ण भरोसा है और मुझे जगत की आशा नहीं है, इसलिए सब वासनाओं को छोड़कर मैं तेरी शरण में आता हूँ। हे प्रभु ! आप ही पिता हैं और आप ही माता हैं, इसलिए मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ ? हे परमपिता ! यह समस्त संसार सारहीन है, इसलिए मैं तो आपकी शरण में ही आनन्द पाता हूँ।

दो०- कृत कृत्य मैं भयउँ प्रभु करि तोहि पर विश्वास।
कृपा तुम सदा रखहउ एहि मोर मन आस॥ १०४॥

व्याख्या - हे प्रभु ! आप पर विश्वास करके मैं कर्म बन्धनों से मुक्त हो गया हूँ। हे नाथ ! आप मुझ पर सदा कृपा रखना, बस मेरे मन में यही आशा है।

॥ इति श्री मानवधर्मशास्त्रस्य चराचर कल्याणार्थम् सर्व सिद्धिदायकम् च ब्रह्मरूपेणः नवम् स्कन्धम् सम्पूर्णम् ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य मासपरायण द्वात्रिंशत पड़ाव ॥

॥ मानवधर्मशास्त्रस्य नवाह्परायण नवम पड़ाव ॥

॥ आरती धर्मशास्त्र की ॥

आरती कीजै नित्य धर्म शास्त्र की ।
सहज सरल सुचि भव तारक की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

धर्म धुरी सत्य सरूपा सुख सागर की ।
ग्यान सिन्धु गुरु सम अघनाशक की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

सकल सन्त मत अखण्ड महापथ की ।
शास्त्र शिरोमणि भगति सागर की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

निर्गुण सगुण सब भ्रम नाशक की ।
ग्रन्थन सार सकल मुनि जन हियँ की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

कलि मल हरण सत्य सनातन की ।
कबि कोबिद नारद शारद सब घट की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

वेद पुराण मरम कपिल मुनि मन की ।
आरत हरण सम्मत सब सन्तन की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

धर्म वेद वाणी लक्ष्मीनारायण की ।
मनोवांछित दायक अनुभूति देवगिरि की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

आरती कीजै नित्य धर्म शास्त्र की ।
सहज सरल सुचि भव तारक की ॥
आरती कीजै नित्य धर्म............

मानव धर्मशास्त्र का महत्व

- मानव धर्मशास्त्र का पाठ करने से परमात्मा की कृपा बरसना शुरू हो जाती है।
- मानव धर्मशास्त्र के चिंतन-मनन से आत्मज्ञान हो जाता है।
- मानव धर्मशास्त्र के पाठ करने से भूत, प्रेत व पिशाच आदि नहीं सताते हैं।
- मानव धर्मशास्त्र के अध्ययन से समस्त ग्रह-नक्षत्र अनुकूल हो जाते हैं।
- समस्त सात्विक इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।
- जन्मोत्सव व विवाह के शुभ अवसर पर मानव धर्मशास्त्र की प्रतियाँ बाँटने से जीव का कल्याण हो जाता है।
- किसी ग्राम व कस्बे में फैली हुई महामारी व प्राकृतिक बिपदा मानव धर्मशास्त्र के पाठ करने से मिट जाती है।
- किसी घर में अशांति हो तो मानव धर्मशास्त्र का पाठ करने से शांति मिल जाती है।
- मानव धर्मशास्त्र का पाठ करने से जय, रूप, यश व वैभव की प्राप्ति होती है।
- मानव धर्मशास्त्र का पाठ करने से व्यवसाय में बृद्धि होती है व कुसंस्कारों से मुक्ति मिल जाती है।
- मानव धर्मशास्त्र का पाठ करने से गुरु शक्ति प्रसन्न होकर कृपा करने लगती है।

अवधूत देवीदास, *अखण्ड महापंथ* (नारायणीधाम, अलवर)

मानव के सुख के सूत्र

- पड़ोसी से मधुर सम्बन्ध रखेंगे। अगर भूल हो गयी तो मन ही मन क्षमा याचना करेंगे।
- पराई निंदा नहीं करेंगे। अगर भूलवश निंदा कर दी तो गुरुदेव से क्षमा याचना करेंगे।
- अकारण दिन में कम से कम एक व्यक्ति की प्रशंसा करेंगे।
- अपने से असहाय की सहायता करेंगे।
- नित्य मानव धर्मशास्त्र का पाठन या श्रवण करेंगे।

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

मानव सेवा संकल्प पत्र

- **हम प्रतिज्ञा करते हैं कि मानव धर्म का पालन करेंगे।**
- **हम मानवता में विश्वास करेंगे।**
- **हम नित्य मानवधर्म शास्त्र का पाठ करेंगे।**
- **हम धर्म के पंथों के नाम पर झगड़ा नहीं करेंगे।**
- **हम मानव-मानव में प्रेम व भाईचारे की भावना का प्रसार करेंगे।**
- **हम ऊँच-नीच व जाति-वर्ण का भेदभाव नहीं करेंगे।**
- **हम प्रकृति में संतुलन बनाये रखने का प्रयास करेंगे।**
- **हम पर्यावरण की रक्षा के लिए वर्ष में कम से कम एक वृक्ष जरूर लगायेंगे।**
- **हम जल का अपव्यय नहीं करेंगे तथा जल संसाधनों का यथासम्भव संरक्षण करेंगे।**
- **हम मानवता को बढ़ावा देने के लिए मानव धर्मशास्त्र का प्रचार-प्रसार करेंगे।**
- **हम नारी जाति का सम्मान करेंगे।**
- **हम अपने पड़ोसी से मधुर सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास करेंगे।**
- **हम दहेज नहीं देंगे।**
- **हम अन्धविश्वास व पाखण्ड में विश्वास नहीं करेंगे।**
- **हम अपनों से बड़ों का सम्मान करेंगे व छोटों से स्नेह करेंगे।**
- **हम नित्य कम से कम एक व्यक्ति से मधुर व्यवहार करेंगे।**
- **हम समाज में व्याप्त भ्रष्ट आचरण दूर करने का प्रयास करेंगे।**
- **हम मद्यपान व धूम्रपान नहीं करेंगे।**
- **हम अपने से असहाय की यथाशक्ति सहायता करेंगे।**
- **हम थैलेसिमिया रोग के उन्मुलन के लिए जन जागृत का प्रयास करेंगे।**

अवधूत देवीदास

अखण्ड महापंथ

नारायणी धाम,

अलवर (राजस्थान)

लेखक की अन्य कृतियाँ

1. अद्भुतानन्द रहस्य संहिता
2. अद्भुतानन्द गीता भाष्य
3. अद्भुत ज्ञान सागर
4. मूल नारायण चरित (संक्षिप्त)
5. मूल नारायण चरित (व्याख्या सहित)
6. अदभुत् वाणी
7. नारायण स्मृति
8. ब्रह्माण्ड काण्ड (व्याख्या सहित)
9. काया काण्ड (व्याख्या सहित)
10. तूरीया काण्ड (व्याख्या सहित)
11. बल काण्ड (व्याख्या सहित)
12. बुद्धि काण्ड (व्याख्या सहित)
13. वासना काण्ड (व्याख्या सहित)
14. उत्तर काण्ड (व्याख्या सहित)
15. भयहीन कैसे हो ?
16. चार युगों का रहस्य
17. मूर्ति रहस्य और तीर्थ रहस्य
18. भव बन्धन एवं आत्म गीता
19. स्त्रोत
20. प्रलय और चार युग क्या है ?
21. रामायण, पुराण एवं बाईबिल रहस्य
22. श्रद्धा और विश्वास क्या है ?
23. गुरु स्त्रोत एवं गुरु चालीसा
24. ध्यान विधियाँ
25. ज्योतिष क्या है ?
26. रोग कारण और निवारण
27. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार क्या है ?
28. भगति कैसे मिले
29. अहिंसा परमधर्म क्यों ?
30. मन को जीतें
31. उपवन जीवन का और मेरा जीवन
32. गृहस्थ क्या करें ?
33. पाप-पुण्य और स्वर्ग-नरक
34. परमात्मा नाम रहस्य
35. त्रिदेव एवं इन्द्र रहस्य
36. चिंता कारण और निवारण
37. संसार वट
38. शरीर की उत्पत्ति
39. काशी एवं गुप्त काशी
40. प्रकृति व आत्मा का स्वरुप
41. मन का स्वरुप और कैसे रोकूँ रे मनवा
42. ध्यान योग
43. ब्रह्म निरुपण और शरीर की उत्पत्ति
44. ज्ञान योग
45. अवतार किसके
46. गुरु कृपा का साक्षात्कार कैसे करें ?
47. जन्म की अवधारणा
48. निष्काम कर्म कैसे करें ?
49. प्राण रहस्य
50. परमात्मा घट-घट में कैसे ?
51. क्रोध
52. मोह
53. काम
54. अहंकार
55. यथार्थ साम्यवाद
56. परमात्मा सूत्र
57. गोवर्धन महिमा
58. आलस्य
59. परनिंदा क्यों ?
60. सहज साधना पद्धति
61. अनुभूति ज्ञान सागर
62. लक्ष्मीनारायण कृत गीताभाष्य
63. अवधूत देवीदास चरित

ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है, ऊर्जा ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्म है, ब्रह्म अखण्ड है, मानव सब एक है

64. मन बन्धन व मोक्ष
65. मानव धर्मशास्त्र
66. जगत के राम
67. तुलसी के राम
68. व्यास के कृष्ण
69. गोरखनाथ चरित
70. कपिल चरित
71. दादू दयाल चरित
72. रामचरित मानस मूल भाष्य
73. सत्यवाणी भाग-1
74. सत्यवाणी भाग-2
75. सत्यवाणी भाग-3
76. सत्यवाणी भाग-4
77. पराशर चरित
78. भृर्तहरि चरित्र
79. झूठी किताब
80. आनन्द चालीसा
81. प्रकृति चालीसा
82. तन-मन और मैं
83. एकलव्य की गुरुभक्ति
84. शिव महिमा
85. शक्ति महिमा
86. मूल भागवत
87. परमात्मा को पत्र
88. मानवधर्म क्या है?
89. प्रकृति चालीसा
90. गोवर्द्धन चालीसा
91. दादू चालीसा
92. मंगला स्तुति
93. दत्तात्रेय चरित
94. आनन्द चालीसा
95. एकलव्य चालीसा
96. नारायणी चालीसा
97. मन बन्धन और मोक्ष
98. आरोग्य चालीसा
99. शुभ कार्य सरल विधि
100. कर्म फल से मुक्ति
101. सन्तजनों का मर्डर
102. गुलामी की जंजीर
103. अवधूत देवीदास ध्यान विधि

अन्य......

मानव धर्मशास्त्र का प्रचार व प्रसार करके धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति करें।



अवधूत देवीदास

संस्थापक : अखंड महापंथ

नारायणी धाम, अलवर,

राजस्थान



अवधूत देवीदास सेवा संस्थान, कोलकाता - 156